☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ अर्थ-सहयोग
श्रीमान् सेठ एस० रिखबचन्द चोरड़िया

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाण संवत् २५११
वि. सं. २०४१
ई. सन् १९८५

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [illegible] रुपये

[illegible]शोधित प[illegible]र्धित मू[illegible]

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Compiled by Fifth Gandhar Sudharma Swami
FIFTH ANGA

VYAKHYĀPRAJNAPTI SŪTRA

[Bhagwati Sutra–III Part, Shatak 11-19]
[Original Text, Hindi Version, Notes etc]

Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Shri Amar Muni
Sri Chand Surana 'Saras'

Chief Editor
Pt. Shobha Chandra Bharill

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No. 22

☐ **Board of Editors**

Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharilla

☐ **Managing Editor**

Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**

Munisri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

☐ **Financial Assistance**

Sri Seth S Rikhab Chand Choradiya

☐ **Date of Publication**

Vir-nirvana Samvat 2511
Vikram Samvat 2041, April 1985

☐ **Publisher**

Sri Agam Prakashan Samiti,
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [India]
Pin 305 901

☐ **Printer**

Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price** Rs. 61/-

संशोधित परिवर्धित मूल्य

समर्पण

जो जैन जगत् के जाज्वल्यमान नक्षत्र
आचार्यवर्य श्री जयमलजी महाराज के
उत्तराधिकारी—द्वितीय पट्टधर थे,

जिन्होंने जिनशासन की प्रभावना में
बहुमूल्य योगदान दिया अपनी मधुर
वाणी और आचार-व्यवहार से,

जिनकी काव्यमय ऐतिहासिक एवं
पौराणिक रचनाएँ आज भी धर्मप्रिय जनों
को रुचि को परितोष प्रदान करती हैं,
जिनका साधनामय जीवन स्वयं ही
आध्यात्मिक प्रेरणा का पावन स्रोत रहा,
उन महामना महर्षि

□ **आचार्य श्री रायचन्द्रजी महाराज**

की पवित्र स्मृति में
सादर सविनय सभक्ति समर्पित

प्रकाशकीय

व्याख्याप्रज्ञप्ति का द्वादशाङ्गी मे यद्यपि पाचवां स्थान है तथापि वर्त्तमान मे उपलब्ध आगमो मे यह सब से अधिक विशाल आगम है। विशालता के साथ इसमे विषयो का वैविध्य भी ऐसा है कि एक-एक शतक, यहा तक कि एक-एक उद्देशक मे भी पृथक्-पृथक् विषयो का कही-कही प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति के दो खण्ड पूर्व मे प्रकाशित किए जा चुके है। तीसरा खण्ड पाठको के कर-कमलो मे प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमे ग्यारहवें से उन्नीसवें शतक तक का समावेश हुआ है। आशा है अगले खण्ड मे शेष भाग का समावेश कर यथासभव शीघ्र जिज्ञासु पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा।

जैसा कि पाठको को विदित है, इस खण्ड का भी अनुवाद मुनिराज श्री पदमचन्दजी महाराज के विद्वान् शिष्य प र श्री अमरचन्द्रजी म ने किया है। आगम प्रकाशन-समिति इस महत्त्वपूर्ण सहयोग के लिए दोनो मुनिराजो के प्रति अत्यन्त आभारी है।

हम अपने समस्त अर्थसहयोगी महानुभावो के प्रति भी कृतज्ञ है, जिनके उदार सहयोग से आगम-प्रकाशन का यह परम पावन प्रयास चालू हुआ और अग्रसर हो रहा है। प्रस्तुत आगम के प्रकाशन मे श्रीमान् सेठ एम गिरधचन्दजी सा चोरडिया का विशिष्ट आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, अत उनका आभार स्वीकार करना भी हम अपना कर्त्तव्य मानते हैं। सम्पादन-सहयोगी महानुभाव भी, जिनकी नामावली अलग दी जा रही है, हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है भविष्य मे भी इसी प्रकार आगमप्रेमी धर्मनिष्ठ महानुभावो का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

समिति ने आगम प्रकाशन का कार्य स्व. श्रद्धेय पडितप्रवर युवाचार्य मुनिश्री मिश्रीमलजी म सा की आगमज्ञान के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार की पावनतम भावना से प्रेरित होकर आरभ किया था। आज युवाचार्यश्रीजी हमारे मध्य विद्यमान नही हैं। किन्तु उन महापुरुष की भावना को सफल बनाने मे आप सबका सहयोग प्राप्त होना आवश्यक है और वह इस रूप मे कि आगमो के ग्राहक अधिक से अधिक बनें। प्रत्येक उपाश्रय और ग्रन्थालय मे ये पहुचे, जिससे समाज मे सैद्धान्तिक ज्ञान की चेतना जागृत हो। आशा है पाठकगण इसके लिए प्रयत्नशील होंगे।

रतनचन्द मोदी	**जतनराज मेहता**	**चादमल विनायकिया**
कार्यवाहक अध्यक्ष	प्रधान मत्री	मत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर (राज)

सम्पादन-सहयोगी-सत्कार

[भगवतीसूत्र जैसे विशाल आगम का सम्पादन-प्रकाशन वास्तव मे बहुत ही श्रमसाध्य और व्ययसाध्य कार्य है। इसका सम्पादन प्रवचनभूषण श्री अमर मुनिजी के सान्निध्य मे उन्ही के प्रमुख सहयोग से सम्पन्न हुआ। इसमे गुरुदेव भडारी श्री पदमचन्दजी म की प्रेरणा सदा कार्य को गति देती रही। साथ ही अन्य साधन जुटाने, विद्वानो आदि की व्यवस्था मे जो व्यय हुआ, उसका सहयोग नि लि उदार सद्‌गृहस्थो से प्राप्त हुआ, तदर्थ हार्दिक धन्यवाद।]

१. **सुश्रावक श्री आत्मारामजी जैन**
कुरुक्षेत्र (अम्बाला)

२. **श्री शान्तिकुमार अजयकुमार जैन**
रूपनगर (दिल्ली)

प्रस्तुत आगम-प्रकाशन के सहयोगी

श्रीमान् सेठ एस. रिखबचन्दजी चोरड़िया

[जीवन-रेखा]

अकवर इलाहावादी का एक प्रसिद्ध शेर है—

आतप को खुदापत कहो आतप खुदा नही
लेकिन खुदा के नूर से, आतप जुदा नही।

आशय यह है कि मनुष्य ईश्वर नही है किन्तु उसमे ईश्वरीय गुण अवश्य हैं और यही ईश्वरीयगुण— दया, सत्यनिष्ठा, सेवा-भावना, उदारता और परोपकारवृत्ति मनुष्य को मनुष्य के रूप मे, या कहे कि ईश्वर के पुत्र के रूप मे प्रतिष्ठित करते है।

स्वर्गीय रिखवचन्दजी चोरडिया सच्चे मानव थे। उनका जीवन मानवीय सद्‌गुणो से ओतप्रोत था। सेवा और परोपकारवृत्ति उनके मन के कण-कण मे रमी थी।

आपने अपने पुरुषार्थ-बल से विपुल लक्ष्मी का उपार्जन किया और पवित्र मानवीय भावना से जन-जन के हितार्थ एव धर्म तथा समाज की सेवा के लिए उस लक्ष्मी का सदुपयोग भी किया। वे आज हमारे वीच नही हैं, किन्तु उनके सद्‌गुणो की सुवास हमारे मन-मस्तिष्क को आज भी प्रफुल्लित कर रही है।

आपका जन्म नोखा (चादावतो का) के प्रसिद्ध चोरडिया परिवार मे हुआ। आपके पिता श्री सिमरथमलजी सा चोरडिया स्थानकवासी, जैन समाज के प्रमुख श्रावक तथा प्रसिद्ध पुरुप थे। आपकी माता श्री गट्टू वाई भी वडी धर्मनिष्ठ, सेवाभावी और सरलात्मा श्राविका थी। इस प्रकार माता-पिता के सुसस्कारो मे पले-पुसे श्रीमान् रिखवचन्दजी भी सेवा, सरलता, उदारता तथा मधुरता की मूर्त्ति थे।

श्रीमान् सिमरथमलजी सा के चार सुपुत्र थे—

(१) श्री रतनचन्दजी सा चोरडिया
(२) श्री वादलचन्दजी सा चोरडिया
(३) श्री सायरचन्दजी सा चोरडिया
(४) श्री रिखवचन्दजी सा. चोरडिया

मद्रास मे आपका फाइनेन्स का प्रमुख व्यापार था। आपने सदैव मधुरता एव प्रामाणिकता के साथ, न्याय-नीतिपूर्वक व्यवसाय किया।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती उमरावकवर वाई वडी धर्मशीला श्राविका है। सन्त-सतियो की सेवा मे सदा तत्पर रहती हैं और सन्तान मे धार्मिक सस्कारो का वीजारोपण करने मे दक्ष हैं।

सम्पादन-सहयोगी-सत्कार

[भगवतीसूत्र जैसे विशाल आगम का सम्पादन-प्रकाशन वास्तव मे बहुत ही श्रमसाध्य और व्ययसाध्य कार्य है। इसका सम्पादन प्रवचनभूषण श्री अमर मुनिजी के सान्निध्य मे उन्ही के प्रमुख सहयोग से सम्पन्न हुआ। इसमे गुरुदेव भडारी श्री पदमचन्दजी म की प्रेरणा सदा कार्य को गति देती रही। साथ ही अन्य साधन जुटाने, विद्वानो आदि की व्यवस्था मे जो व्यय हुआ, उसका सहयोग नि लि उदार सद्गृहस्थो से प्राप्त हुआ, तदर्थ हार्दिक धन्यवाद।]

१. सुश्रावक श्री आत्मारामजी जैन
कुरुक्षेत्र (अम्बाला)

२. श्री शान्तिकुमार अजयकुमार जैन
रूपनगर (दिल्ली)

प्रस्तुत आगम-प्रकाशन के सहयोगी

श्रीमान् सेठ एस. रिखबचन्दजी चोरड़िया

[जीवन-रेखा]

अकवर इलाहावादी का एक प्रसिद्ध शेर है—

आतप को खुदापत कहो आतप खुदा नही
लेकिन खुदा के नूर से, आतप जुदा नही।

आशय यह है कि मनुष्य ईश्वर नही है किन्तु उसमे ईश्वरीय गुण अवश्य हैं और यही ईश्वरीयगुण—दया, सत्यनिष्ठा, सेवा-भावना, उदारता और परोपकारवृत्ति मनुष्य को मनुष्य के रूप मे, या कहे कि ईश्वर के पुत्र के रूप मे प्रतिष्ठित करते है।

स्वर्गीय रिखवचन्दजी चोरडिया सच्चे मानव थे। उनका जीवन मानवीय सद्गुणो से ओतप्रोत था। सेवा और परोपकारवृत्ति उनके मन के कण-कण मे रमी थी।

आपने अपने पुरुषार्थ-वल से विपुल लक्ष्मी का उपार्जन किया और पवित्र मानवीय भावना से जन-जन के हितार्थ एव धर्म तथा समाज की सेवा के लिए उस लक्ष्मी का सदुपयोग भी किया। वे आज हमारे वीच नही है, किन्तु उनके सद्गुणो की सुवास हमारे मन-मस्तिष्क को आज भी प्रफुल्लित कर रही है।

आपका जन्म नोखा (चादावतो का) के प्रसिद्ध चोरडिया परिवार मे हुआ। आपके पिता श्री सिमरथमलजी सा चोरडिया स्थानकवासी, जैन समाज के प्रमुख श्रावक तथा प्रसिद्ध पुरुष थे। आपकी माता श्री गट्टू वाई भी वडी धर्मनिष्ठ, सेवाभावी और सरलात्मा श्राविका थी। इस प्रकार माता-पिता के सुसस्कारो मे पले-पुसे श्रीमान् रिखवचन्दजी भी सेवा, सरलता, उदारता तथा मधुरता की मूर्त्ति थे।

श्रीमान् सिमरथमलजी सा के चार सुपुत्र थे—

(१) श्री रतनचन्दजी सा चोरडिया
(२) श्री वादलचन्दजी सा चोरडिया
(३) श्री सायरचन्दजी सा चोरडिया
(४) श्री रिखवचन्दजी सा चोरडिया

मद्रास मे आपका फाइनेन्स का प्रमुख व्यापार था। आपने सदैव मधुरता एव प्रामाणिकता के साथ, न्याय-नीतिपूर्वक व्यवसाय किया।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती उमरावकवर वाई वडी धर्मशीला श्राविका है। सन्त-सतियो की सेवा मे सदा तत्पर रहती है और सन्तान मे धार्मिक सस्कारो का वीजारोपण करने मे दक्ष हैं।

श्री रिखवचन्दजी सा. के तीन सुपुत्र हैं—१. श्री शान्तिलालजी, २ श्री उत्तमचन्दजी और ३ श्री कैलाशचन्दजी । एक सुपुत्री श्री चपलाकवर बाई हैं ।

प्राय देखा गया है कि ससार मे दुर्जनो की अपेक्षा सत्पुरुष-सज्जन अल्पजीवी होते हैं । श्री रिखवचन्दजी सा पर भी यह नियम घटित हुआ । आप ४२ वर्ष की अल्प आयु मे ही हमे छोडकर स्वर्गवासी हो गए । हृदयगति रुक जाने से आपका अवसान हो गया ।

आपने अपनी अल्प आयु मे भी समाज की महत्त्वपूर्ण सेवा की । अनेकानेक सस्थाओ को दान दिया । जो भी आपके द्वार पर आता, निराश होकर नही लौटता था ।

आप स्व पूज्य स्वामीजी श्रीव्रजलालजी महाराज तथा स्व युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी महाराज के परम निष्ठावान् भक्त थे । आगम प्रकाशन के महान् भगीरथ-कार्य मे भी आपश्री का सहकार मिलता रहा है । प्रस्तुत आगम के प्रकाशन मे विशिष्ट सहयोग आपसे प्राप्त हुआ है ।

मद्रास का आपका पता—

एस. रिखबचन्द एण्ड सन्स,
रामानुज अय्यर स्ट्रीट, साउकार पेट,
मद्रास-६०० ०७९

—मंत्री
आगमप्रकाशनसमिति, ब्यावर (राज.)

विषयानुक्रम

ग्यारहवाँ शतक

बारहवाँ शतक

तेरहवां शतक

चौदहवाँ शतक

पन्द्रहवां शतक . गोशालकचरित

तेजोलेश्याप्रहार, गोशालकरक्षार्थ भगवान् द्वारा शीतलेश्या द्वारा प्रतीकार ४५२, भगवान् द्वारा तेजोलेश्या शमन का वृत्तान्त तथा गोशाला को तेजोलेश्याविधि का कथन ४५४, गोशालक द्वारा भगवान् के साथ मिथ्यावाद, एकान्त परिवृत्यपरिहारवाद की मान्यता और भगवान् से पृथक् विचरण ४५६, गोशालक को तेजोलेश्या की प्राप्ति, अहकारवश जिनप्रलाप एव भगवान् द्वारा स्ववक्तव्य का उपसहार ४५८, भगवान् द्वारा अपने-गोशालक के-अजिनत्व का प्रकाशन सुन कर कुभारिन की दुकान पर कुपित गोशालक का ससघ जमघट ४५९, गोशालक द्वारा अर्थलोलुप वणिक्-वर्ग-विनाशदृष्टान्त-कथनपूर्वक आनन्द स्थविर को भगवत्विनाशकथन-चेष्टा ४६०, गोशालक के साथ हुए वार्त्तालाप का निवेदन, गोशालक के तप-तेज का निरूपण, श्रमणो को उसके साथ प्रतिवाद न करने का भगवत्सदेश ४६७, गोशालक के साथ धर्मचर्चा न करने का आनन्दस्थविर द्वारा भगवदादेश-निरूपण ४७०, भगवान् के समक्ष गोशालक द्वारा अपनी ऊटपटाग मान्यता का निरूपण ४७१, भगवान् द्वारा गोशालक को चोर के दृष्टान्त-पूर्वक स्वभ्रान्तिनिवारण-निर्देश ४७७, भगवान् के प्रति गोशालक द्वारा अवर्णवाद-मिथ्यावाद ४७८, गोशालक को स्वकर्त्तव्य समझाने वाले सर्वानुभूति अनगार का गोशालक द्वारा भस्मीकरण ४७८, गोशालक द्वारा भगवान् के किये गये अवर्णवाद का विरोध करने वाले सुनक्षत्र अनगार का समाधिपूर्वक मरण ४८०, गोशालक को भगवान् का उपदेश, क्रुद्ध गोशालक द्वारा भगवान् पर फेंकी हुई तेजोलेश्या से स्वय का दहन ४८१, क्रुद्ध गोशालक की भगवान् के प्रति मरणघोषणा, भगवान् द्वारा प्रतिवादपूर्वक गोशालक के अन्धकारमय भविष्य का कथन ४८२, श्रावस्ती के नागरिको द्वारा गोशालक के मिथ्यावादी और भगवान् के सम्यग्वादी होने का निर्णय ४८३, निर्ग्रन्थ श्रमणो को गोशालक के साथ धर्मचर्चा करने का भगवान् का आदेश ४८४, निर्ग्रन्थो की धर्मचर्चा मे गोशालक निरुत्तर, पीडा देने मे असमर्थ, आजीविक स्थविर भगवान् की निश्राय मे ४८५, गोशालक की दुर्दशा-निमित्तकविविध चेष्टाएँ ४८७, भगवत्प्ररूपित गोशालक की तेजोलेश्या की शक्ति ४८८, निजपापप्रच्छादनार्थ गोशालक द्वारा अष्ट चरम एव पानक-अपानक की कपोल-कल्पित मान्यता का निरूपण ४८९, अयपुल का सामान्य परिचय, हल्ला के आकार की जिज्ञासा का उद्भव, गोशालक से प्रश्न पूछने का निर्णय, किन्तु गोशालक की उन्मत्तवत् दशा देख अयपुल का वापिस लौटने का उपक्रम ४९२, अयपुल की डगमगाती श्रद्धा स्थिर हुई, गोशालक से समाधान पाकर सन्तुष्ट, गोशालक द्वारा वस्तुस्थिति का प्रलाप ४९३, प्रतिष्ठालिप्सावश गोशालक द्वारा शानदार मरणोत्तर क्रिया करने का शिष्यो को निर्देश ४९६, सम्यक्त्वप्राप्त गोशालक द्वारा अप्रतिष्ठापूर्वक मरणोत्तर क्रिया करने का शिष्यो को निर्देश ४९७, आजीविक स्थविरो द्वारा अप्रतिष्ठापूर्वक गुप्त मरणोत्तर क्रिया करके प्रकट मे प्रतिष्ठापूर्वक मरणोत्तरक्रिया ४९९, भगवान् का मेढिक ग्राम मे पदार्पण, रोगाक्रान्त होने से लोकप्रवाद ५००, अफवाह सुन कर सिंह अनगार को शोक, भगवान् द्वारा सन्देश पाकर सिंह अनगार का उनके पास आगमन ५०२, रेवती गाथापत्नी का दान ५०४, सुनक्षत्र अनगार की भावी गति-उत्पत्ति सबधी निरूपण ५०९ गोशालक का भविष्य ५१०, गोशालक देवभव से लेकर मनुष्यभवतक विमलवाहन राजा के रूप मे ५१०, सुमगल अनगार की भावी गति सर्वार्थसिद्ध विमान एव मोक्ष ५१७, गोशालक के भावी दीर्घकालीन भवभ्रमण का

सोलहवाँ शतक

सत्तरहवाँ शतक

अठारहवाँ शतक

सिद्धिक के विषय मे भवसिद्धिकत्वादि दृष्टि से प्रथम-अप्रथम प्ररूपणा ६५२, जीव, चौवीस दण्डक एव सिद्धो मे सज्ञी, असज्ञी, नोसज्ञी-नोअसज्ञी भाव से अपेक्षा की प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण ६५३, सलेश्यी, कृष्णादिलेश्यी एव अलेश्यी जीव के विषय मे सलेश्यादि भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण ६५४, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एव मिश्रदृष्टि जीवो के विषय मे एक-बहुवचन से सम्यग्दृष्टिभावादि की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण ६५५, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकत्व-बहुत्व से सयतभाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण ६५६, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकत्व-बहुत्व की दृष्टि से यथायोग्य कषायादि भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण ६५७, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकवचन-बहुवचन से यथायोग्य ज्ञानी-अज्ञानीभाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण ६५८, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकत्व-बहुत्व को लेकर यथायोग्य सयोगी-अयोगीभाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्वकथन ६५९, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकवचन-बहुवचन से साकारोपयोग-अनाकारोपयोग भाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्व कथन ६६०, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकवचन और बहुवचन से सवेद-अवेद भाव की अपेक्षा से यथायोग्य प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण ६६०, जीव चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकवचन-बहुवचन से यथायोग्य सशरीर-अशरीरभाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण ६६१, जीव चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकवचन-बहुवचन से यथायोग्य पर्याप्तिभाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण ६६१, प्रथमत्व-अप्रथमत्व लक्षण निरूपण ६६२, जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे पूर्वोक्त चौदह द्वारो के माध्यम से जीवभावादि की अपेक्षा से, एकवचन-बहुवचन से यथायोग्य चरमत्व-अचरमत्वनिरूपण ६६२

द्वितीय उद्देशक . विशाख ६६९

विशाखानगरी मे भगवान् का समवसरण ६६९, शक्रेन्द्र का भगवान् के सान्निध्य मे आगमन और नाट्य प्रदर्शित करके पुन प्रतिगमन ६६९, गौतम द्वारा शक्रेन्द्र के पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न, भगवान् द्वारा कार्तिक श्रेष्ठी के रूप मे परिचयात्मक उत्तर ६७०, मुनिसुव्रत स्वामी से धर्म-श्रवण और प्रव्रज्याग्रहण की इच्छा ६७१, एक हजार आठ व्यापारियो सहित (कार्तिक श्रेष्ठी) का) दीक्षाग्रहण तथा सयमसाधन ६७४, कार्तिक अनगार द्वारा अध्ययन, तप, सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण एव सौधर्मेन्द्र के रूप मे उत्पत्ति ६७६

तृतीय उद्देशक माकन्दिक ६७८

माकन्दीपुत्र द्वारा पूछे गये कापोतलेश्यी पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकायिको को मनुष्यभवानन्तर सिद्ध-गति सम्बन्धी प्रश्न के भगवान् द्वारा उत्तर, माकन्दीपुत्र द्वारा तथ्यप्रकाशन पर सदिग्ध श्रमण निर्ग्रन्थो का भगवान् द्वारा समाधान, उनके द्वारा क्षमापना ६७८, चरम निर्जरा-पुद्गलो सम्बन्धी प्रश्नोत्तर ६८१, बन्ध के मुख्य दो भेदो के भेद-प्रभेदो का तथा चौवीस दण्डको एव ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्म की अपेक्षा भावबन्ध के प्रकार का निरूपण ६८५, जीव एव चौवीस दण्डको द्वारा किए गए, किए जा रहे तथा किए जाने वाले पापकर्मों के नानात्व का दृष्टान्तपूर्वक निरूपण ६८७, चौवीस दण्डका द्वारा आहार रूप मे गृहीत पुद्गलो मे से भविष्य मे ग्रहण एव त्याग का प्रमाणनिरूपण ६८९

उन्नीसवाँ शतक

पचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइय पंचम अग

वियाहपण्णत्तिसुत्तं

[भगवई]

तृतीय खण्ड

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्मस्वामिविरचितं पञ्चममङ्गम्

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रम्

[भगवती]

एक्कारसमं सयं : ग्यारहवाँ शतक

प्राथमिक

- ※ यह भगवतीसूत्र का ग्यारहवाँ शतक है। इसके १२ उद्देशक है।

- ※ जीव और कर्म का प्रवाहरूप से अनादिकालीन सम्बन्ध है। जिनके कर्मों का क्षय हो जाता है, वे सिद्ध हो जाते है। परन्तु सभी जीव कर्मो का क्षय करने मे समर्थ नही होते। विशेषत: एकेन्द्रिय जीव, जिनकी चेतना अल्पविकसित होती है, वे कर्मवन्ध, उसके कारण और बन्ध से मुक्त होने के उपाय को नही जानते। उनके द्रव्यमन नही होता। ऐसी स्थिति मे एक शका सहज ही उठती है, जो कर्मवन्ध को जानता ही नही, जिनके जीवन मे मनुष्य या पचेन्द्रिय जीवो (पशु-पक्षी आदि) की तरह प्रकटरूप मे शुभ-अशुभ कर्म होता दिखाई नही देता, फिर उन जीवो के कर्मवन्ध कैसे हो जाता है ? वहुसख्यक जनो की इसी शका का निवारण करने हेतु उत्पल आदि एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीवो की उत्पत्ति, स्थिति, वन्ध, योग, उपयोग, लेश्या, आहार आदि कर्मवन्ध से सम्वन्धित ३२ द्वारो के माध्यम से प्रथम उत्पल से लेकर आठवे नलिन उद्देशक तक मे प्रश्नोत्तर अकित है। उन्हे पढने से जीव और कर्म के सम्बन्ध का स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है तथा विभिन्न जीवो मे इनकी उपलब्धि का अन्तर भी स्पष्टत: समझ मे आ जाता है।

- ※ नौवे उद्देशक मे शिव राजा का दिशाप्रोक्षक तापसजीवन अगीकार करने का रोचक वर्णन दिया गया है। उसके पश्चात् प्रकृतिभद्रता तथा वालतप आदि के कारण उन्हे विभगज्ञान प्राप्त हो जाता है, जिसे भ्रान्तिवश वे अतिशयज्ञान समझ कर झूठा प्रचार एव दावा करने लगते है। किन्तु भगवान् महावीर द्वारा उनके उक्त ज्ञान के विषय मे सम्यक् निर्णय दिये जाने पर उनके मन मे जिज्ञासा होती है। वे भगवान् के पास पहुँच कर समाधान पाते है और निर्ग्रन्थमुनि-जीवन अगीकार कर लेते है। अगशास्त्राध्ययन, तपश्चरण तथा अन्तिम समय मे सलेखना-सथारा करके समाधिपूर्वक मृत्यु प्राप्त करके वे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाते है। शिवराजर्षि के जीवन मे उतार-चढाव से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि जीवकर्मवन्धन को काटने का वास्तविक उपाय न जानने से, सम्यग्दर्शन न पाने से सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्र से वचित रहता है। किन्तु सम्यग्दर्शन पाते ही ज्ञान और चारित्र भी सम्यक् हो जाते है और जीव कर्म का सर्वथा क्षय कर देता है।

- ※ दसवे उद्देशक मे लोक का स्वरूप, द्रव्यादि चार प्रकार, क्षेत्रलोक तथा उसके भेद-प्रभेद, अधोलोकादि का सस्थान तथा अधोलोकादि मे जीव, जीवप्रदेश है, अजीव, अजीव प्रदेश हैं, इत्यादि प्रश्नोत्तर है तथा समुच्चय रूप से जीव-अजीव आदि के विषय मे प्रश्नोत्तर है। फिर लोक-अलोक मे जीव-अजीव द्रव्य तथा वर्णादि पुद्गलो के अस्तित्व सवधी प्रश्नोत्तर हैं। अन्त मे लोक और अलोक कितना-कितना वडा है ? इसे रूपक द्वारा समझाया गया है। अन्त मे एक

आकाशप्रदेश मे एकेन्द्रिय जीवादि के परस्पर सम्बद्ध रहने की वात नर्तकी के दृष्टान्त द्वारा समझाई गई है। इस प्रकार लोक के सम्बन्ध मे स्पष्ट प्ररूपणा की गई है।

* ग्यारहवे उद्देशक के पूर्वार्द्ध मे काल और उसके चार मुख्य प्रकारो का वर्णन है। फिर इन चारो का पृथक्-पृथक् विश्लेपण किया गया है। प्रमाणकाल मे दिन और रात का विविध महीनो मे विविध प्रमाण वताया गया है। उत्तरार्द्ध मे पल्योपम और सागरोपम के क्षय और उपचय को सिद्ध करने के लिए भगवान् ने सुदर्शनश्रेष्ठी के पूर्वकालीन मनुष्यभव एव फिर देवभव मे पचम ब्रह्मलोक कल्प की १० सागरोपम की स्थिति का क्षय—अपचय करके पुन मनुष्यभव प्राप्ति का विस्तृत रूप से उदाहरण जीवनवृत्तात्मक प्रस्तुत किया है। अन्त मे सुदर्शनश्रेष्ठी को जातिस्मरणज्ञान होने से उसकी श्रद्धा और सविग्नता वढी और वह निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुआ, इसका वर्णन है।

* बारहवे उद्देशक मे दो महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किए है—(१) पूर्वार्द्ध मे ऋपिभद्रपुत्र श्रमणोपासक का, जिसने देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति यथार्थ रूप मे वताई थी, परन्तु आलभिका के श्रमणोपासको ने उस पर प्रतीति नही की, तव भगवान् ने उनका समाधान कर दिया। (२) उत्तरार्द्ध मे मुद्गल परिव्राजक का जीवन-वृत्तान्त है, जो लगभग शिवराजर्पि के जीवन जैसा ही है। इन्होने भी सच्चा समाधान पाने के वाद निर्ग्रन्थ-प्रव्रज्या लेकर अपना कल्याण किया। वे कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो गए।

□□

एक्कारसं सयं : ग्यारहवाँ शतक

[१- संग्रह-गाथार्थ—]

१. उप्पल १ सालु २ पलासे ३ कुंभी ४ नालीय ५ पउम ६ कण्णीय ७ ।
नलिण ८ सिव ९ लोग १० कालाऽऽलभिय ११-१२ दस दो य एक्कारे ।।१।।

ग्यारहवें शतक के बारह उद्देशक इस प्रकार हैं—(१) उत्पल, (२) शालूक, (३) पलाश, (४) कुम्भी, (५) नाडीक, (६) पद्म, (७) कर्णिका, (८) नलिन, (९) शिवराजर्षि, (१०) लोक, (११) काल और (१२) आलभिक ।

विवेचन—बारह उद्देशकों का स्पष्टीकरण—प्रस्तुत सूत्र १ में ग्यारहवें शतक के १२ उद्देशकों के नाम क्रमशः दिये गए हैं । इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—(१) उत्पल के जीव के सम्बन्ध में चर्चा-विचारणा, (२) शालूक के जीवों से सम्बन्धित विचार, (३) पलाश के जीवों के सम्बन्ध में चर्चा, (४) कुम्भिक के जीवों के सम्बन्ध में चर्चा, (५) नाडीकजीव-सम्बन्धी चर्चा, (६) पद्मजीव-सम्बन्धी चर्चा, (७) कर्णिकाजीवविषयक चर्चा (८) नलिनजीव-सम्बन्धी चर्चा, (९) शिवराजर्षि का जीवन-वृत्त, (१०) लोक के द्रव्यादि के आधार से भेद, (११) सुदर्शन के कालविषयक प्रश्नोत्तर एवं महाबलचरित्र तथा (१२) आलभिका में प्ररूपित ऋषिभद्र तथा पुद्गलपरिव्राजक की धर्मचर्चा और समर्पण ।

एकार्थक उत्पलादि का पृथक् ग्रहण क्यों ?—यद्यपि उत्पल, पद्म, नलिन आदि शब्दकोश के अनुसार एकार्थक हैं, तथापि रूढिवशात् इन सब को विशिष्ट मान कर पृथक्-पृथक् ग्रहण किया है ।[1]

□□

१. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा. २, पृ ५०६
(ख) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ५११

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

उप्पल : उत्पल (उत्पलजीव-चर्चा)

[२- द्वार-सग्रह-गाथाएँ]

२ उववाओ १ परिमाण २ अवहारुच्चत्त ३-४ बध ५ वेदे ६ य ।
उदए ७ उदीरणाए ८ लेसा ९ दिट्ठी १० य नाणे ११ य ॥२॥
जोगुवओगे १२-१३ वण्ण-रसमाइ १४ ऊसासगे १५ य आहारे १६ ।
विरई १७ किरिया १८ बंधे १९ सण्ण २० कसायित्थि २१-२२ बंधे २३ य ॥३॥
सण्णिंदिय २४-२५ अणुबंधे २६ सवेहाऽऽहार २७-२८ ठिइ २९ समुग्घाए ३० ।
चयण ३१ मूलादीसु य उववाओ सव्वजीवाण ३२ ॥४॥

१ उपपात, २ परिमाण, ३ अपहार, ४ ऊँचाई (अवगाहना), ५ वन्धक, ६ वेद, ७ उदय, ८ उदीरणा, ९ लेश्या, १० दृष्टि, ११ ज्ञान, १२ योग, १३ उपयोग, १४ वर्ण-रसादि, १५ उच्छ्वास, १६ आहार, १७ विरति, १८ क्रिया, १९ वन्धक, २० सज्ञा, २१ कषाय, २२ स्त्रीवेदादि, २३ वन्ध, २४ सज्ञी, २५ इन्द्रिय, २६ अनुवन्ध, २७ सवेध, २८ आहार, २९ स्थिति, ३० समुद्घात, ३१ च्यवन और ३२ सभी जीवो का मूलादि मे उपपात ।

विवेचन—बत्तीद्वारसग्रह—प्रस्तुत द्वितीय सूत्र मे क्रमश तीन गाथाओ मे द्वितीय उद्देशक मे प्रतिपाद्य विषयो का नामोल्लेख किया गया है ।

ये सग्रहगाथाएँ अन्य प्रतियो मे मूल मे नही पाई जाती । अभयदेवीय वृत्ति मे ये वाचनान्तर कह कर उद्धृत की गई है ।

वन्धक शब्द यहाँ दो वार प्रयुक्त किया गया है, प्रथम वधक द्वार मे एक जीव कर्म-वन्धक है या अनेक जीव कर्मबन्धक ? इसकी चर्चा है । द्वितीय वन्धक द्वार मे सप्तविध बन्धक है या अष्टविध-वन्धक ? यह चर्चा है । तीसरे वन्धद्वार मे स्त्रीवेदवन्धक हैं, पुरुषवेदवन्धक या नपुसकवेदवन्धक ? इसकी चर्चा है ।[1]

१. उपपातद्वार

३. तेण कालेण तेण समएणं रायगिहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—

[३] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । वहाँ पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

४ उप्पले णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे अणेगजीवे ?

गोयमा ! एगजीवे, नो अणेगजीवे । तेण पर जे अन्ने जीवा उववज्जंति ते णं णो एगजीवा, अणेगजीवा ।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५०६

[४ प्र] भगवन् ! एक पत्र वाला उत्पल (कमल) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला ?

[४ उ] गौतम ! एक पत्र वाला उत्पल एक जीव वाला है, अनेक जीव वाला नही। उसके उपरान्त जब उस उत्पल मे दूसरे जीव (जीवाश्रित पत्र आदि अवयव) उत्पन्न होते है, तब वह एक जीव वाला नही रह कर अनेक जीव वाला बन जाता है।

विवेचन—उत्पलः एकजीवी या अनेकजीवी ?—प्रस्तुत चतुर्थ सूत्र मे बताया गया है कि उत्पल जब एक पत्ते वाला होता है तब उसकी वह अवस्था किसलय अवस्था से ऊपर की होती है। जब उसके एक पत्र से अधिक पत्ते उत्पन्न हो जाते है तब वह अनेक जीव वाला हो जाता है।[1]

५. ते णं भंते ! जीवा कतोहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जति, देवेहितो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरतिएहिंतो उववज्जति, तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति, मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, देवेहिंतो वि उववज्जंति। एवं उववाओ भाणियव्वो जहा वक्कतीए वणस्सतिकाइयाणं जाव ईसाणो त्ति। [दारं १]।

[५ प्र] भगवन् ! उत्पल मे वे जीव कहाँ से आ कर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आ कर उत्पन्न होते है, या तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है अथवा मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है या देवो मे से आकर उत्पन्न होते है ?

[५ उ] गौतम ! वे जीव नारको से आ कर उत्पन्न नही होते, वे तिर्यञ्चयोनिको से भी आ कर उत्पन्न होते है, मनुष्यो से भी और देवो से भी आ कर उत्पन्न होते है। इस प्रकार प्रज्ञापना-सूत्र से छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार—वनस्पतिकायिक जीवो मे यावत् ईशान-देवलोक तक के जीवों का उपपात होता है। [—प्रथम द्वार]

विवेचन—उत्पल जीवो की अपेक्षा से प्रथम उपपातद्वार—प्रस्तुत पचम सूत्र मे उत्पल जीवो की उत्पत्ति तीन गतियो से बताई गई है—तिर्यंच से, मनुष्य से और देव से। वे नरकगति से आकर उत्पन्न नही होते।[2]

२. परिमाणद्वार

६. ते णं भते ! जीवा एगसमएणं केवतिया उववज्जति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति। [दारं २]।

[६ प्र] भगवन् ! उत्पलपत्र मे वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६ उ] गौतम ! वे जीव एक समय मे जघन्यत एक, दो या तीन और उत्कृष्टत सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है। [—द्वितीय द्वार]

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ५११-५१२

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा. २, पृ. ५०७

विवेचन—**उत्पल जीव की अपेक्षा से द्वितीय परिमाणद्वार**—प्रस्तुत छठे सूत्र में बताया गया है कि वे जीव कम से कम एक समय में एक, दो या तीन, और अधिक से अधिक संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

३. अपहारद्वार

७. ते णं भंते ! जीवा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवतिकालेणं अवहीरंति ?

गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया। [दारं ३]।

[७ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव एक-एक समय में एक-एक निकाले जाएँ तो कितने काल में पूरे निकाले जा सकते हैं ?

[७ उ] गौतम ! यदि वे असंख्यात जीव एक-एक समय में एक-एक निकाले जाएँ और उन्हें असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक निकाला जाय तो भी वे पूरे निकाले नहीं जा सकते।

[—तृतीय द्वार]

विवेचन—**उत्पल जीव की अपेक्षा से अपहारद्वार**—प्रस्तुत सप्तम सूत्र में यह प्ररूपणा की गई है कि यदि उत्पल के असंख्यात जीव प्रतिसमय एक-एक के हिसाब से निकाले जाएँ और वे असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकालपर्यन्त निकाले जाते रहें तो भी पूरे नहीं निकाले जा सकते। तात्पर्य यह है कि असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में जितने समय हैं, उनसे भी अधिक संख्या उन जीवों की है।

४ उच्चत्वद्वार

८. तेसि णं भंते ! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं। [दारं ४]।

[८ प्र] भगवन् ! उन (उत्पल के) जीवों की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

[८ उ] गौतम ! उन जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन होती है। [—चतुर्थ द्वार]

विवेचन—**उत्पल जीवों की अवगाहना**—अवगाहना का अर्थ है—ऊँचाई। उत्पलजीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन है। जो तथाविध समुद्र, गोतीर्थ आदि में उत्पन्न उत्पल की अपेक्षा से कही गई है।[1]

५ से ८ तक—ज्ञानावरणीयादि-बन्ध-वेद-उदय-उदीरणाद्वार—

९. ते णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधगा, अबंधगा ?

गोयमा ! नो अबंधगा, बंधए वा बंधगा वा। एवं जाव अंतराइयस्स। नवरं आउयस्स पुच्छा।

गोयमा ! बंधए वा १, अबंधए वा २, बंधगा वा ३, अबंधगा वा ४, अहवा बंधए य अबंधए य ५, अहवा बंधए य अबंधगा य ६, अहवा बंधगा य अबंधगे य ७, अहवा बंधगा य अबंधगा य ८, एते अट्ठ भंगा। [दारं ५]।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५१२

[९ प्र] भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव ज्ञानावरणीय कर्म के वन्धक हैं या अवन्धक ?

[९ उ] गौतम ! वे ज्ञानावरणीय कर्म के अवन्धक नही, किन्तु एक जीव वन्धक है, अथवा अनेक जीव वन्धक हैं। इस प्रकार (आयुष्यकर्म को छोड कर) यावत् अन्तराय कर्म (के वन्धक-अवन्धक) तक समझ लेना चाहिए।

[प्र] विशेषत (वे जीव) आयुष्य कर्म के वन्धक है, या अवन्धक ?, यह प्रश्न है।

[उ] गौतम ! (१) उत्पल का एक जीव वन्धक है, (२) अथवा एक जीव अवन्धक है, (३) अथवा अनेक जीव वन्धक हैं, (४) या अनेक जीव अवन्धक है, (५) अथवा एक जीव बन्धक है, और एक अवन्धक है, (६) अथवा एक जीव वन्धक और अनेक जीव अवन्धक है, (७) या अनेक जीव वन्धक हैं और एक जीव अवन्धक है, एव (८) अथवा अनेक जीव वन्धक हे और अनेक जीव अबन्धक हैं। इस प्रकार ये आठ भग होते है। [—पचम द्वार]

१०. ते णं भते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं वेदगा, अवेदगा ?

गोयमा ! नो अवेदगा, वेदए वा वेदगा वा। एव जाव अतराइयस्स।

[१० प्र.] भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव ज्ञानावरणीय कर्म के वेदक है या अवेदक ?

[१० उ[गौतम ! वे जीव अवेदक नही, किन्तु या तो (एक जीव हो तो) एक जीव वेदक है और (अनेक जीव हो तो), अनेक जीव वेदक है। इसी प्रकार यावत् अन्तराय कर्म (के वेदक-अवेदक) तक जानना चाहिए।

११. ते णं भते ! जीवा किं सातावेदगा, असातावेदगा ?

गोयमा ! सातावेदए वा, असातावेयए वा, अट्ठ भगा। [दार ६]।

[११ प्र] भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव सातावेदक है या असातावेदक ?

[११ उ] गौतम ! एक जीव सातावेदक है, अथवा एक जीव असातावेदक है, इत्यादि पूर्वोक्त आठ भग जानने चाहिए। [—छठा द्वार]

१२. ते णं भते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं उदई, अणुदई ?

गोयमा ! नो अणुदई, उदई वा उदइणो वा। एवं जाव अंतराइयस्स। [दारं ७]।

[१२ प्र] भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदय वाले हैं या अनुदय वाले ?

[१२ उ] गौतम ! वे जीव अनुदय वाले नही है, किन्तु (एक जीव हो तो) एक जीव उदय वाला है, अथवा (अनेक जीव हो तो) वे (सभी) उदय वाले है। इसी प्रकार यावत् अन्तराय कर्म तक समझ लेना चाहिए। [—सातवाँ द्वार]

१३. ते ण भते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं उदीरगा, अणुदीरगा ?

गोयमा ! नो अणुदीरगा, उदीरए वा उदीरगा वा। एव जाव अतराइयस्स। नवरं वेदणिज्जाउएसु अट्ठ भगा। [दार ८]।

[१३ प्र] भगवन् ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदीरक है या अनुदीरक ?

[१३ उ] गौतम ! वे अनुदीरक नही, किन्तु (यदि एक जीव हो तो) एक जीव उदीरक है, अथवा (यदि अनेक जीव हो तो) अनेक जीव उदीरक हैं। इसी प्रकार यावत् अन्तराय कर्म (के उदी-

रक—अनुदीरक) तक जानना चाहिए; परन्तु इतना विशेष है कि वेदनीय और आयुष्य कर्म (के उदीरक) मे पूर्वोक्त आठ भग कहने चाहिए। [—आठवाँ द्वार]

विवेचन—उत्पलजीव के अष्टकर्म बन्धक-अबन्धक, वेदक-अवेदक, उदयी—अनुदयी, उदीरक—अनुदीरक सम्बन्धी विचार—प्रस्तुत ५ सूत्रो (९ से १३ तक) मे उत्पलजीवो के ज्ञानावरणीयादि अष्टकर्म के बन्धक-अबन्धक, वेदक-अवेदक, उदयी-अनुदयी एव उदीरक-अनुदीरक होने के सम्बन्ध मे भगवान् का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है।

ज्ञानावरणीयादि कर्मों के बंध आदि क्यो और कैसे ?—जैनेतर दर्शनिक या अन्य यूथिक प्राय यह समझते हैं कि उत्पल (कमल) का जीव एकेन्द्रिय होने से उसमे सज्ञा (समझने-सोचने की बुद्धि) नहीं होती, द्रव्यमन न होने से वह कोई विचार कर नही सकता। ऐसी स्थिति मे वह ज्ञानावरणीयादि कर्मों का बन्ध, वेदन, उदय या उदीरणा कैसे कर सकता है ? इसी हेतु मे प्रेरित हो कर पहले से आठवे उद्देशक तक श्री गौतमस्वामी ने ये बधादिविषयक प्रश्न उठाए हो और भगवान् ने इनका अनेकान्तदृष्टि से उत्तर दिया हो, ऐसा सम्भव है। भगवान् के उत्तरो से ध्वनित होता है कि एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीवो मे अन्तश्चेतना (भावसज्ञा) तथा भावमन होता है, जिसके कारण वे चाहे विकसित चेतना वाले न हो, परन्तु मिथ्यात्वदशा मे होने से विपरीतदिशा मे सोच कर भी ज्ञानावरणीयादि कर्मबन्ध कर लेते है। वे कर्मों को वेदते भी है, उदय वाले भी होते है और उदीरणा भी विपरीत दिशा मे कर लेते हैं।

एक-अनेक जीव बंधक आदि कैसे ? उत्पल के प्रारम्भ मे जव उसके एक ही पत्ता होता है, तव एक ही जीव होने से एक जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का वन्धक होता है, परन्तु जव उसके अनेक पत्ते होते हैं तो उसमे अनेक जीव होने से अनेक जीव वन्धक होते है। आयुष्यकर्म तो पूरे जीवन मे एक ही वार बधता है, उस वन्धकाल के अतिरिक्त, जीव आयुष्यकर्म का अवन्धक होता है। इसलिए आयुष्यकर्म के वन्धक और अवन्धक की अपेक्षा से आठ भग होते हैं, जिनमे चार असयोगी और चार द्विकसयोगी होते हैं।[1]

वेदक एवं उदीरक भग—वेदकद्वार मे एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा से दो भग होते हैं, परन्तु सातावेदनीय और असातावेदनीय की अपेक्षा से पूर्वोक्त आठ भग होते हैं। उदीरणाद्वार मे छह कर्मों मे प्रत्येक मे दो-दो भग होते है, किन्तु वेदनीय और आयुष्य कर्म के पूर्वोक्त आठ भग होते हैं।[2]

९. लेश्याद्वार

१४. ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा तेउलेस्सा ?

गोयमा ! कण्हलेस्से वा जाव तेउलेस्से वा, कण्हलेस्सा वा नीललेस्सा वा काउलेस्सा वा तेउलेस्सा वा, अहवा कण्हलेस्से य नीललेस्से य, एव एए दुयासंजोग-तियासंजोग-चउक्कसंजोगेण य असीतिं भंगा भवंति। [दारं ९]।

[१४ प्र.] भगवन् ! वे उत्पल के जीव, कृष्णलेश्या वाले होते है, नीललेश्या वाले होते है, या कापोतलेश्या वाले होते हैं, अथवा तेजोलेश्या वाले होते हैं ?

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ५१२
२ वही, अ वृत्ति, पत्र ५१२

[१४ उ] गौतम ! एक जीव कृष्णलेश्या वाला होता है, यावत् एक जीव तेजोलेश्या वाला होता है। अथवा अनेक जीव कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले अथवा तेजोलेश्या वाले होते है। अथवा एक कृष्णलेश्या वाला और एक नीललेश्या वाला होता है। इस प्रकार ये द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी और चतु सयोगी सब मिला कर ८० भग होते है। [—नौवाँ द्वार]

विवेचन—उत्पलजीवों मे लेश्याएँ—उत्पल वनस्पतिकायिक होने से उसमे पहले से पाई जाने वाली चार लेश्याओ (कृष्ण,नील, कापोत और तेजोलेश्या) के विविध ८० भगो की प्ररूपणा प्रस्तुत १४ वे सूत्र मे की गई है।

लेश्याओं के भंगजाल का नक्शा

असंयोगी ८ भग

१ एक कृष्ण	५ एक कापो
२ अनेक कृष्ण	६ अनेक कापो
३ एक नील.	७ एक तेजो
४ अनेक नील	८ अनेक तेजो

द्विकसंयोगी २४ भंग

१ ए कृष्ण, एक नील	१३ ए नील एक कापो
२ ए क्रृ, अनेक नील	१४ ए नील, अ कापो
३ अ कृ, ए नी	१५ अ नील, ए कापो
४ अ कृ, अ नी	१६. अ नील, अ कापो
५ एक कृ, ए कापो	१७ ए नी, ए तेजो
६ ए कृ, अने कापो	१८ ए नी, अ तेजो
७ अ कृ, ए कापो	१९ अ नी, ए तेजो
८ अ कृ, अ कापो	२० अ. नी, अ तेजो
९ ए कृष्ण, ए तेजो	२१ ए का, ए तेजो
१० ए कृ, अ तेजो	२२ ए का, अ तेजो
११ अ कृ, ए तेजो	२३ अ का, एक तेजो
१२ अ कृ, अ तेजो	२४ अ का, अ ते

त्रिकसयोगी ३२ भंग

१ ए कृ, ए नी, ए का	६ अ कृ, ए नी., अ का
२ ए कृ, ए नी, अ का	७ अ कृ, अ नी, ए का
३ ए कृ, अ नी, ए का	८ अ कृ, अ. नी, अ का.
४ ए कृ, अ नी, अ का.	९ ए कृ, ए नी, ए ते
५ अ कृ, ए नी, ए का	१० ए कृ., ए नी, अ ते

११ ए कृ. अ नी, ए ते	२२ अ कृ, ए का, अ ते
१२ ए कृ, अ नी, अ ते	२३ अ कृ, अ का, ए ते
१३ अ कृ, ए नी, ए ते	२४ अ कृ, अ का, अ का
१४ अ कृ, ए नी, अ ते	२५ ए नी, ए का, ए ते
१५ अ कृ, अ नी, अ ते	२६ ए नी, ए का, अ ते
१६ अ कृ, अ नी, ए ते	२७ ए नी, अ का, ए ते
१७ ए कृ, ए. का, ए ते.	२८ ए नी, अ का, अ ते
१८ ए कृ, ए. का, अ ते	२९. अ नी, ए का, ए ते
१९ ए कृ, अ का, अ ते	३० अ नी., ए का, अ ते
२० ए कृ, अ का, अ ते	३१ अ नील, अ का, ए ते
२१ अ कृ, ए का, ए ते	३२. अ नी, अ का, अ ते

चतुःसंयोगी १६ भग

१ ए कृ, ए नी, ए का, ए ते	९ अ कृ, ए नी, ए का, ए तेजो
२ ए कृ, ए नी, ए का, अ ते	१० अ कृ, ए नी, ए का, अ ते
३ ए कृ, ए नी, अ का, ए ते	११ अ कृ, ए नी, अ का, ए ते
४ ए कृ, ए नी, अ का, अ ते	१२ अ कृ, ए नी, अ का, अ ते
५ ए कृ, अ नी, ए का, ए ते	१३ अ कृ, अ नी, ए का, ए ते
६ ए कृ, अ नी, ए का, अ ते	१४ अ कृ, अ नी, ए का, अ ते
७ ए कृ, अ नी, अ का, ए ते	१५ अ कृ, अ नी, अ का, ए ते
८ ए कृ, अ नी, अ का, अ ते	१६ अ कृ, अ. नी, अ का, अ ते

इस प्रकार असयोगी ८, द्विकसयोगी २४, त्रिकसयोगी ३२ और चतु सयोगी १६ भग, मिला कर कुल ८० भग होते है।[1]

१० से १३—दृष्टि-ज्ञान-योग-उपयोग-द्वार

१५. ते ण भते ! जीवा किं सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ?

गोयमा ! नो सम्मद्दिट्ठी, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी वा मिच्छादिट्ठिणो वा। [दार १०]।

[१५ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है, अथवा सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि है ?

[१५ उ] गौतम ! वे सम्यग्दृष्टि नही, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि भी नही, वह मात्र मिथ्यादृष्टि है, अथवा वे अनेक भी मिथ्यादृष्टि हैं। [—दशम द्वार]

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १८५२-१८५४

१६. ते ण भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी वा अन्नाणिणो वा । [दार ११] ।

[१६ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव ज्ञानी है, अथवा अज्ञानी हैं ?

[१६ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नही है, किन्तु वह एक अज्ञानी है अथवा वे अनेक भी अज्ञानी है। [—ग्यारहवाँ द्वार]

१७. ते णं भते ! जीवा किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

गोयमा ! नो मणजोगी, णो वइजोगी, कायजोगी वा कायजोगिणो वा । [दारं १२] ।

[१७ प्र] भगवन् ! वे जीव मनोयोगी है, वचनयोगी है, अथवा काययोगी है ?

[१७ उ] गौतम ! वे मनोयोगी नही है, न वचनयोगी है, किन्तु वह एक हो तो काययोगी है और अनेक हो तो भी काययोगी है। [—बारहवाँ द्वार]

१८. ते णं भते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ते वा अणागारोवउत्ते वा, अट्ठ भगा । [दार १३] ।

[१८ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव साकारोपयोगी है, अथवा अनाकारोपयोगी है ?

[१८ उ] गौतम ! वे साकारोपयोगी भी होते है और अनाकारोपयोगी भी होते है। इसके पूर्ववत् आठ भग कहने चाहिए। [—तेरहवाँ द्वार]

विवेचन—उत्पलजीवो मे दृष्टि, ज्ञान, योग एव उपयोग की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (१५ से १८ तक) मे उत्पलजीवो में दृष्टि आदि की प्ररूपणा की गई है।

उत्पल-जीव एकान्त मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होते है, एकेन्द्रिय होने से उनके मन और वचन नही होते, इसलिए काययोग ही होता है। साकारोपयोग और अनाकारोपयोग—५ ज्ञान और ३ अज्ञान को साकारोपयोग तथा चार दर्शन को अनाकारोपयोग कहते है। ये दोनो सामान्यतया उत्पलजीवो मे होते है।[1]

१४-१५-१६—वर्णरसादि-उच्छ्वासक-आहारक द्वार

१९. तेसि ण भते ! जीवाण सरीरगा कतिवण्णा कतिरसा कतिगधा कतिफासा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचवण्णा, पंचरसा, दुगधा, अट्ठफासा पन्नत्ता । ते पुण अप्पणा अवण्णा अगधा अरसा अफासा पन्नत्ता । [दारं १४] ।

---

१ भगवती विवेचन भा ४, (प घेवरचन्दजी), पृ १८५४

[१९ प्र] भगवन् ! उन (उत्पल के) जीवो का शरीर कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाला है ?

[१९ उ] गौतम ! उनका (शरीर) पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाला है। जीव स्वय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श-रहित है। [—चौदहवाँ द्वार]

२०. ते ण भते ! जीवा किं उस्सासा, निस्सासा, नोउस्सासनिस्सासा ?

गोयमा ! उस्सासए वा १, निस्सासए वा २, नोउस्सासनिस्सासए वा ३, उस्सासगा वा ४, निस्सासगा वा ५, नोउस्सासनिस्सासगा वा ६, अहवा उस्सासए य निस्सासए य ४ (७-१०), अहवा उस्सासए य नोउस्सासनिस्सासए य ४ (११-१४), अहवा निस्सासए य नोउस्सासनीसासए य ४ (१५-१८), अहवा उस्सासए य नीसासए य नोउस्सासनिस्सासए य-अट्ठ भगा (१९-२६), एए छव्वीस भंगा भवति। [दार १५]।

[२० प्र] भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव उच्छ्वासक है, नि श्वासक है, या उच्छ्वासक-नि श्वासक है ?

[२० उ] गौतम ! (उनमे से) १—कोई एक जीव उच्छ्वासक है, या २—कोई एक जीव नि श्वासक है, अथवा ३—कोई एक जीव अनुच्छ्वासक-नि श्वासक है, या ४—अनेक जीव उच्छ्वासक हैं, ५—या अनेक जीव नि श्वासक हैं, अथवा ६—अनेक जीव अनुच्छ्वासक-नि श्वासक है, (७-१०) अथवा एक उच्छ्वासक है और एक नि श्वासक है, इत्यादि। (११-१४) अथवा एक उच्छ्वासक और एक अनुच्छ्वासक-नि श्वासक है, इत्यादि। (१५-१८) अथवा एक नि श्वासक और एक अनुच्छ्वासक-नि श्वासक है, इत्यादि। (१९-२६) अथवा एक उच्छ्वासक, एक नि श्वामक और एक अनुच्छ्वासक-नि श्वासक है इत्यादि आठ भग होते हैं। ये सब मिलकर २६ भग होते हैं। [—पन्द्रहवाँ द्वार]

२१. ते ण भते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

गोयमा ! [1] आहारए वा अणाहारए वा, एव अट्ठ भगा। [दार १६]।

[२१ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव आहारक है या अनाहारक हैं ?

[२१ उ] गौतम ! (वे सब अनाहारक नही,) कोई एक जीव आहारक है, अथवा कोई एक जीव अनाहारक है, इत्यादि आठ भग कहने चाहिए। [—सोलहवाँ द्वार]

विवेचन—उत्पलजीवो के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श—उत्पल के शरीर वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले है, किन्तु उनका आत्मा (जीव) वर्णादि से रहित है। क्योकि वह अमूर्त्त है।

उच्छ्वास-निःश्वास—पर्याप्त अवस्था मे सभी जीवो के उच्छ्वास और नि श्वास होते है,

---

१ अधिक पाठ—'**नो अणाहारगा।**'

परन्तु अपर्याप्त अवस्था मे जीव अनुच्छ्वासक-निःश्वासक होता है। अतः उच्छ्वासक-निःश्वासक द्वार के २६ भग होते हैं। वे इस प्रकार—

असयोगी ६ भग

१, एक उच्छ्वासक	४ बहुत उच्छ्वासक
२ एक निःश्वासक	५ बहुत निःश्वासक
३ एक अनुच्छ्वासक-निःश्वासक	६ बहुत अनुच्छ्वासक-निःश्वासक

द्विकसयोगी १२ भग

१ ए उ, ए नि	७ ब उ, ए नोउ
२ ए उ, ब नि	८ ब उ ब नोउ
३ ब उ, ए नि	९ ए नि, ए नोउ
४ ब उ, ब नि	१० ए नि, ब नोउ
५ ए उ, ए नोउ	११ ब नि ए नोउ
६ ए उ, ब नोउ	१२ ब नि, ब नोउ

त्रिकसंयोगी ८ भग

१ ए उ, ए नि, ए नोउच्छ्वासक निश्वासक	५ ब उ, ए नि, ए नोउ०
२ ए उ, ए नि, ब नोउ०	६ ब उ, ए नि, ब नोउ०
३ ए उ, ब नि, ए नोउ०	७ ब उ, ब नि, ए नोउ०
४ ए उ, ब नि, ब नोउ०	८ ब उ, ब नि, ब नोउ०

आहारक-अनाहारक—विग्रहगति मे जीव अनाहारक होता है, शेप समय मे आहारक। इस लिए आहारक-अनाहारक के ८ भग कहे गए हैं। वे पूर्ववत् समझ लेने चाहिए।[1]

१७-१८-१९—विरतिद्वार, क्रियाद्वार और बन्धकद्वार

२२. ते णं भंते ! जीवा किं विरया, अविरया, विरयाविरया ?

गोयमा ! नो विरया, नो विरयाविरया, अविरए वा अविरता वा। [दारं १७]।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या वे उत्पल के जीव विरत (सर्वविरत) है, अविरत है या विरताविरत हैं ?

[२२ उ] गौतम ! वे उत्पल-जीव न तो सर्वविरत है और न विरताविरत है, किन्तु एक जीव अविरत है अथवा अनेक जीव भी अविरत है। [—सत्रहवाँ द्वार]

---

१. (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ५१२-५१३
(ख) भगवती. विवेचन (प. घेवरचन्दजी), भा ४, पृ. १८५६

२३. ते ण भते ! जीवा किं सकिरिया, अकिरिया ?

गोयमा ! नो अकिरिया, सकिरिए वा सकिरिया वा । [दार १८] ।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या वे उत्पल के जीव सक्रिय है या अक्रिय है ?

[२३ उ] गौतम ! वे अक्रिय नही है, किन्तु एक जीव भी सक्रिय है और अनेक जीव भी सक्रिय है । [—अठारहवाँ द्वार]

२४. ते णं भते ! जीवा किं सत्तविहबधगा, अट्ठविहबधगा ?

गोयमा ! सत्तविहबधए वा अट्ठविहबंधए वा, अट्ठ भंगा । [दारं १९] ।

[२४ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव सप्तविध (सात कर्मों के) वन्धक है या अष्टविध (आठो ही कर्मो के) वन्धक है ?

[२४ उ] गौतम ! वे जीव सप्तविधवन्धक है या अष्टविधवन्धक है । यहाँ पूर्वोक्त आठ भग कहने चाहिए । [—उन्नीसवाँ द्वार]

विवेचन—विरत, अविरत, विरताविरत—विरत का अर्थ यहाँ हिसादि ५ आश्रवो से सर्वथा विरत है । अविरत का अर्थ है—जो सर्वथा विरत न हो और विरताविरत का अर्थ है—जो हिसादि ५ आश्रवो से कुछ अशो मे विरत हो, शेष अशो मे अविरत हो, इसे देशविरत भी कहते हैं । उत्पल के जीव सर्वथा अविरत होते है । वे चाहे वाहर से हिंसादिसेवन करते हुए दिखाई न देते हो, किन्तु वे हिंसादि का त्याग मन से, स्वेच्छा से, स्वरूप समझबूझ कर नही कर पाते, इसलिए अविरत हैं ।

सक्रिय या अक्रिय ?—मुक्त जीव अक्रिय हो सकते है । सभी ससारी जीव सक्रिय—क्रियायुक्त होते है ।

बन्ध : अष्टविध एव सप्तविध का तात्पर्य—आयुष्यकर्म का वन्ध जीवन मे एक ही वार होता है, इसलिए जव आयुष्यकर्म का बन्ध नही करता, तव सप्तविधवन्ध करता है, जव आयुकर्म का भी वन्ध करता है, तब अष्टविध वन्ध करता है । इसी दृष्टि से इसके ८ भग पूर्ववत् होते हैं ।[1]

२०-२१—संज्ञाद्वार और कषायद्वार

२५. ते ण भते ! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता, मेहुणसन्नोवउत्ता, परिग्गह-सन्नोवउत्ता ?

गोयमा ! आहारसण्णोवउत्ता वा, असीती भंगा । [दारं २०] ।

[२५ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव आहारसज्ञा के उपयोग वाले हैं, या भयसज्ञा के उपयोग वाले हैं, अथवा मैथुनसज्ञा के उपयोग वाले है, या परिग्रहसज्ञा के उपयोग वाले है ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५१०

[२५ उ] गौतम ! वे आहारसंज्ञा के उपयोग वाले है, इत्यादि (लेश्याद्वार के समान) अस्सी भंग कहना चाहिए।

२६. ते णं भंते ! जीवा किं कोहकसायी, माणकसायी, मायाकसायी, लोभकसायी ?

गोयमा ! असीती भंगा। [दारं २१]।

[२६ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव क्रोधकषायी हैं, मानकषायी है, मायाकषायी हैं अथवा लोभकषायी है ?

[२६ उ] गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त ८० भंग कहना चाहिए।

विवेचन—संज्ञाद्वार और कषायद्वार—उत्पलजीवो मे चार संज्ञाओं और चार कषायों के लेश्याद्वार के समान ८० भंग होते है।

२२ से २५ तक—स्त्रीवेदादि-वेदक-बन्धक-संज्ञी-इन्द्रिय-द्वार

२७. ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेदगा, पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा ?

गोयमा ! नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसकवेदए वा नपुंसगवेदगा वा। [दारं २२]।

[२७ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव स्त्रीवेदी हैं, पुरुषवेदी है या नपुंसकवेदी है ?

[२७ उ] गौतम ! वे स्त्रीवेद वाले नही, पुरुषवेद वाले भी नही, परन्तु एक जीव भी नपुंसकवेदी है और अनेक जीव भी नपुंसकवेदी है।

२८. ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेदबंधगा, पुरिसवेदबंधगा, नपुंसगवेदबंधगा ?

गोयमा ! इत्थिवेदबंधए वा पुरिसवेदबंधए वा नपुंसगवेदबंधए वा, छव्वीसं भंगा। [दारं २३]।

[२८ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव स्त्रीवेद के बन्धक हैं, पुरुषवेद के बन्धक है या नपुंसकवेद के बन्धक हैं ?

[२८ उ] गौतम ! वे स्त्रीवेद के बन्धक है, या पुरुषवेद के बन्धक हैं अथवा नपुंसकवेद के बन्धक हैं। यहाँ उच्छ्वासद्वार के समान २६ भंग कहने चाहिए। [—२२ वाँ, २३ वाँ द्वार]

२९. ते णं भंते ! जीवा किं सण्णी, असण्णी ?

गोयमा ! नो सण्णी, असण्णी वा असण्णिणो वा। [दारं २४]।

[२९ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव संज्ञी है या असंज्ञी ?

[२९ उ] गौतम ! वे संज्ञी नही, किन्तु एक जीव भी असंज्ञी है और अनेक जीव भी असंज्ञी हैं।

३०. ते णं भंते ! जीवा किं सइंदिया, अणिंदिया ?

गोयमा ! नो अणिंदिया, सइंदिए वा सइंदिया वा। [दार २५]।

[३० प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव सेन्द्रिय है या अनिन्द्रिय ?

[३० उ] गौतम ! वे अनिन्द्रिय नही, किन्तु एक जीव सेन्द्रिय है और अनेक जीव भी सेन्द्रिय है। [—२४ वाँ, २५ वाँ द्वार]

विवेचन—उत्पल जीवो के वेद, वेदबन्धन, सज्ञी और इन्द्रिय की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (२७ से ३० तक) मे इन चार द्वारो द्वारा उत्पल जीवो के नपु सकवेदक, त्रिवेदबन्धक, असज्ञी एव सेन्द्रिय होने की प्ररूपणा की गई है।

२६-२७—अनुबन्ध-संवेध-द्वार

३१. से णं भते ! 'उप्पलजीवे' त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण असखेज्ज काल। [दारं २६]।

[३१ प्र] भगवन् ! वह उत्पल का जीव उत्पल के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[३१ उ] गौतम ! वह जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्टत असख्यात काल तक रहता है। [—छब्वीसवाँ द्वार]

३२. से ण भते ! उप्पलजीवे 'पुढविजीवे' पुणरवि 'उप्पलजीवे' त्ति केवतिय काल से हवेज्जा ? केवतिय कालं गतिरागतिं करेज्जा ?

गोयमा ! भवादेसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण असखेज्जाइं भवग्गहणाइं। कालादेसेणं जहन्नेणं दो अन्तोमुहुत्ता, उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं। एवतियं कालं से हवेज्जा, एवतिय कालं गतिरागतिं करेज्जा।

[३२ प्र] भगवन् ! वह उत्पल का जीव, पृथ्वीकाय मे जाए और पुन उत्पल का जीव बने, इस प्रकार उसका कितना काल व्यतीत हो जाता है ? कितने काल तक गमनागमन (गति-आगति) करता रहता है ?

[३२ उ] गौतम ! वह उत्पलजीव भवादेश (भव की अपेक्षा) से जघन्य दो भव (ग्रहण) करता है और उत्कृष्ट असख्यात भव (ग्रहण) करता है (अर्थात्—उतने काल तक गमनागमन करता है।) कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट असख्यात काल तक (गमनागमन करता है।) (अर्थात्— इतने काल तक) वह रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है।

३३. से णं भते ! उप्पलजीवे आउजीवे० ?

एवं चेव।

[३३ प्र] भगवन्! वह उत्पल का जीव, अप्काय के रूप मे उत्पन्न होकर पुन उत्पल मे आए तो इसमे कितना काल व्यतीत हो जाता है? कितने काल तक गमनागमन करता है?

[३३ उ] गौतम! जिस प्रकार पृथ्वीकाय के विषय मे कहा, उसी प्रकार भवादेश से और कालादेश से अप्काय के विषय मे कहना चाहिए।

३४. एव जहा पुढविजीवे भणिए तहा जाव वाउजीवे भाणियव्वे।

[३४] इसी प्रकार जैसे—(उत्पलजीव के) पृथ्वीकाय मे गमनागमन के विषय मे कहा, उसी प्रकार यावत् वायुकाय जीव तक के विषय मे कहना चाहिए।

३५. से णं भंते! उप्पलजीवे से वणस्सइजीवे, से वणस्सइजीवे पुणरवि उप्पलजीवे त्ति केवतिय काल से हवेज्जा, केवतिय काल गतिरागतिं करेज्जा?

गोयमा भवाएसेण जहन्नेण दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण अणताइ भवग्गहणाइं। कालाएसेण जहन्नेण दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं अणत काल—तरुकालो, एवतिय काल से हवेज्जा, एवइय कालं गइरागइं करेज्जा।

[३५ प्र] भगवन्! वह उत्पल का जीव, वनस्पति के जीव मे जाए और वह (वनस्पति-जीव) पुन उत्पल के जीव मे आए, इस प्रकार वह कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गमनागमन करता है?

[३५ उ] गौतम! भवादेश से वह (उत्पल का जीव) जघन्य दो भव (ग्रहण) करता है और उत्कृष्ट अनन्त भव (-ग्रहण) करता है। कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त्त तक, उत्कृष्ट अनन्त-काल (तरुकाल) तक रहता है। (अर्थात्—) इतने काल तक वह उसी मे रहता है, इतने काल तक वह गति-आगति करता रहता है।

३६. से ण भते! उप्पलजीवे बेइंदियजीवे, बेइंदियजीवे पुणरवि उप्पलजीवे त्ति केवतिय कालं से हवेज्जा? केवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

गोयमा! भवादेसेण जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेण संखेज्जाइ भवग्गहणाइ। काला-देसेण जहन्नेण दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेण सखेज्ज काल। एवतियं काल से हवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

[३६ प्र] भगवन्! वह उत्पल का जीव, द्वीन्द्रियजीव पर्याय मे जा कर पुन उत्पलजीव मे आए (उत्पन्न हो), तो इसमे उसका कितना काल व्यतीत होता है? कितने काल तक गमनागमन करता है?

[३६ उ] गौतम! वह जीव भवादेश से जघन्य दो भव (-ग्रहण) करता है, उत्कृष्ट सख्यात भव (-ग्रहण) करता है। कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट सख्यात काल व्यतीत हो जाता है। (अर्थात्—) इतने काल तक वह उसमे रहता है। इतने काल तक वह गति-आगति करता है।

३७. एव तेइंदियजीवे, एव चउरिंदियजीवे वि ।

[३७] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव के विषय मे भी जानना :

३८. से णं भंते ! उप्पलजीवे पंचेंदियतिरिक्खजोणियजीवे, पंचिंदियति पुणरवि उप्पलजीवे त्ति० पुच्छा० ।

गोयमा ! भवादेसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहण जहन्नेण दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहत्तं । एवतियं कालं से हवेज्जा, एवति गति करेज्जा ।

[३८ प्र] भगवन् ! उत्पल का वह जीव, पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकजीव उत्पल के जीव मे आए तो इसमे उसका कितना काल व्यतीत होता है ? वह गमनागमन करता रहता है ?

[३८ उ] गौतम ! भवादेश से जघन्य दो भव (-ग्रहण) करता है और (चार तिर्यंचपचेन्द्रिय के और चार भव उत्पल के) (-ग्रहण) करता है । कालावे अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व काल तक रहता है । इतना काल करता है । इतने काल तक गति-आगति करता है ।

३९. एवं मणुस्सेण वि समं जाव एवतियं काल गतिरागति करेज्जा । [दारं

[३९] इसी प्रकार मनुष्ययोनि के विषय मे भी जानना चाहिए । याव उत्पल का वह जीव गमनागमन करता है । [-

विवेचन—उत्पलजीव का अनुबन्ध और कायसवेध—प्रस्तुत ९ सूत्रो (३ उत्पलजीव के अनुवन्ध और सवेध के सम्वन्ध मे प्ररूपणा की गई है ।

अनुबन्ध और कायसंवेध—उत्पल का जीव उत्पल के रूप मे उत्पन्न होता कहते है और उत्पल का जीव पृथ्वीकायादि दूसरे कायो मे उत्पन्न हो कर पुन: उ हो, इसे कायसवेध कहते है । प्रस्तुत ८ सूत्रो (३२ से ३९ तक) मे उत्पलजीव के दो प्रकार से भवादेश और कालादेश की अपेक्षा से किया गया है । अर्थात् उत्पल अपेक्षा से कितने भव ग्रहण करता है और काल की अपेक्षा से कितने काल तक ग है, इसकी प्ररूपणा की गई है ।[1]

२८ से ३१ तक आहार-स्थिति-समुद्घात-उद्वर्तना-द्वार

४०. ते णं भंते ! जीवा किमाहारमाहारेंति ?

गोयमा ! दव्वओ अणंतपदेसियाइं दव्वाइं०, एवं जहा आहारुद्देसए[1] वणस्सतिकाइयाणं आहारो तहेव जाव सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति, नवरं नियमं छद्दिसिं, सेसं तं चेव । [दारं २८] ।

[४० प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव किस पदार्थ का आहार करते है ?

[४० उ] गौतम ! वे जीव द्रव्यत अनन्तप्रदेशी द्रव्यो का आहार करते है इत्यादि, जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के अट्ठाईसवे पद के आहार-उद्देशक मे वनस्पतिकायिक जीवो के आहार के विषय मे कहा है, यावत्-वे सर्वात्मना (सर्वप्रदेशो से) आहार करते है, यहाँ तक—सब कहना चाहिए। विशेष यह है कि वे नियमत छह दिशा से आहार करते हैं। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

[—अट्ठाइसवाँ द्वार]

४१. तेसि णं भंते ! जीवाणं केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं । [दारं २९] ।

[४१ प्र] भगवन् ! उन उत्पल के जीवो की स्थिति कितने काल की है ?

[४१ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[—उनतीसवाँ द्वार]

४२. तेसि णं भंते ! जीवाणं कति समुग्घाता पन्नत्ता ?

गोयमा ! तओ समुग्घाया[2] पन्नत्ता, तं जहा—वेदणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए । [दारं ३०] ।

[४२ प्र] भगवन् ! उन (उत्पल के) जीवो मे कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

[४२ उ] गौतम ! उनमे तीन समुद्घात कहे गए हैं। यथा—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात।

४३. ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमुग्घाएणं किं समोहया मरंति, असमोहया मरंति ?

गोयमा ! समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति ।

[४३ प्र] भगवन् ! वे जीव मारणान्तिकसमुद्घात द्वारा समवहत होकर मरते है या असमवहत होकर ?

[४३ उ] गौतम ! (वे उत्पल के जीव मारणान्तिकसमुद्घात द्वारा) समवहत होकर भी मरते है और असमवहत होकर भी मरते हैं।

---

१ देखिये प्रज्ञापनासूत्र भा १, पद २०, उ १, पृ ३९५, सूत्र १८१३ (महावीर जैन विद्यालय)

२. समुद्घात के लिए देखो—प्रज्ञापना पद ३६, पत्र ५५८

४४. ते ण भते ! जीवा अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति ?, कहिं उववज्जंति ?, किं नेरइएसु उववज्जति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति० ?

एव जहा वक्कतीए[1] उव्वट्टणाए वणस्सइकाइयाणं तहा भाणियव्वं । [दार ३१] ।

[४४ प्र] भगवन् ! वे उत्पल के जीव मर (उद्वर्तित हो) कर तुरन्त कहाँ जाते है ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं ? अथवा तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है ? अथवा मनुष्यो मे या देवो मे उत्पन्न होते है ?

[४४ उ] गौतम ! (उत्पल के जीवो की अनन्तर उत्पत्ति के विषय मे) प्रज्ञापना सूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिक पद के उद्वर्त्तना-प्रकरण मे वनस्पतिकायिको के वर्णन के अनुसार कहना चाहिए ।
[—तीसवाँ इकतीसवाँ द्वार]

विवेचन—उत्पलजीवो के आहार, स्थिति, समुद्घात और उद्वर्त्तन विषयक प्ररूपणा— प्रस्तुत ५ सूत्रो (४० से ४४ तक) मे उत्पलजीवो के आहारादि के विषय मे प्ररूपणा की गई है ।

नियमत. छह दिशा से आहार क्यो ?—पृथ्वीकायिक आदि जीव सूक्ष्म होने से निष्कुटो (लोक के अन्तिम कोणो) मे उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिए वे कदाचित् तीन, चार या पाँच दिशाओ से आहार लेते है तथा निर्व्याघात की अपेक्षा से छहो दिशाओ से आहार लेते है । किन्तु उत्पल के जीव बादर होने से वे निष्कुटो मे उत्पन्न नही होते, इसलिए वे नियमत छहो दिशाओ मे आहार करते है ।[2]

अनन्तर उद्वर्त्तन कहाँ और क्यो ?—उत्पल के जीव वहाँ से मर कर तुरन्त मनुष्यगति या तिर्यञ्चगति मे जन्म लेते है, देवगति या नरकगति मे उत्पन्न नही होते ।[3]

४५. अह भते ! सव्वपाणा सव्वभूया सव्वजीवा सव्वसत्ता उप्पलमूलत्ताए उप्पलकदत्ताए उप्पलनालत्ताए उप्पलपत्तत्ताए उप्पलकेसरत्ताए उप्पलकण्णियत्ताए उप्पलथिभुगत्ताए उववन्नपुव्वा ?

हता, गोयमा ! असति अदुवा अणतखुत्तो । [दार ३२] ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। एक्कारसमे सए पढमो उप्पलुद्देसओ समत्तो ।।११. १।।

[४५ प्र] भगवन् ! अब प्रश्न यह है कि सभी प्राण, सभी भूत, समस्त जीव और समस्त सत्त्व, क्या उत्पल के मूलरूप मे, उत्पल के कन्दरूप मे, उत्पल के नालरूप मे, उत्पल के पत्ररूप मे, उत्पल के केसररूप मे, उत्पल की कर्णिका के रूप मे तथा उत्पल के थिभुग के रूप मे इससे (उत्पलपत्र मे उत्पन्न होने से) पहले उत्पन्न हुए है ?

[४५ उ] हाँ, गौतम ! (सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, इससे पूर्व) अनेक बार अथवा अनन्तवार (पूर्वोक्तरूप से उत्पन्न हुए है ।) [—बत्तीसवाँ द्वार]

---

१ देखिये—प्रज्ञापनासूत्र वृत्ति पद ६, पत्र २०४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५१३

३ वही, पत्र ५१३

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

सालु : शालूक (के जीव-सम्बन्धी)

१. सालुए ण भते ! एगपत्तए किं एगजीवे अणेगजीवे ?

गोयमा ! एगजीवे, एव उप्पलुद्देसगवत्तव्वया अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अणतखुत्तो । नवर सरीरोगाहणा जहन्नेण अगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं । सेस त चेव ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। एक्कारसमे सए बीओ उद्देसो समत्तो ।।११. २।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या एक पत्ते वाला शालूक (उत्पल-कन्द) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

[१ उ] गौतम ! वह (एक पत्र वाला शालूक) एक जीव वाला है, यहाँ से ले कर यावत् अनन्त बार उत्पन्न हुए है, तक उत्पल—उद्देशक की सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष इतना ही है कि शालूक के शरीर की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट धनुप-पृथक्त्व की है । शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए ।

'भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! यह इसी प्रकार है !' यो कह कर गौतमस्वामी, यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—शालूक जीव सम्बन्धी वक्तव्यता—प्रस्तुत सूत्र मे शालूक (उत्पलकन्द) के जीव के सम्बन्ध मे सारी वक्तव्यता पूर्व उद्देशक के ३२ द्वारो का अतिदेश कर के बताई है । केवल अवगाहना की प्ररूपणा मे अन्तर है । शेष सभी—उपपात, परिमाण, अपहार, बध, वेद, उदय, उदीरणा, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग आदि सभी द्वारो की प्ररूपणा समान है । □

।। ग्यारहवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५१३

तइओ उद्देसओ : तृतीय उद्देशक

पलासे : पलाश (के जीवसम्बन्धी)

१. पलासे ण भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

एव उप्पलुद्देसगवत्तव्वया अपरिसेसा भाणितव्वा । नवर सरीरोगाहणा जहन्नेण अगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण गाउयपुहत्तं । देवा एएसु न उववज्जति । लेसासु—ते ण भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा ?

गोयमा ! कण्हलेस्सा वा, नीललेस्सा वा, काउलेस्सा वा, छव्वीसं भंगा । सेस तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। एक्कारसमे सए तइओ उद्देसओ समत्तो ।।११. ३।।

[१ प्र] भगवन् ! पलाशवृक्ष (प्रारम्भ मे) एक पत्ते वाला (होता है, तब वह) एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ?

[१ उ] गौतम ! (इस विषय मे भी) उत्पल-उद्देशक की सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष इतना है कि पलाश के शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग है और उत्कृष्ट गव्यूति-(गाऊ)-पृथक्त्व है । देव च्यव कर पलाशवृक्ष मे उत्पन्न नही होते । लेश्याओ के विषय मे—[प्र] भगवन् ! वे (पलाशवृक्ष के) जीव क्या कृष्णलेश्या वाले होते है, नीललेश्या वाले होते हैं या कापोतलेश्या वाले होते है ? [उ] गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोत-लेश्या वाले होते हैं। इस प्रकार यहाँ उच्छ्वासक द्वार के समान २६ भग होते है । शेष सब पूर्ववत् है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है !, भगवन् ! यह इसी प्रकार है !' ऐसा कह कर गौतम-स्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—उत्पलोद्देशक के समान प्रायः सभी द्वार—पलाशवृक्ष के जीव मे अवगाहना, उत्पत्ति और लेश्या इन तीन द्वारो को छोड कर शेष सभी द्वार उत्पलजीव के समान है, इस प्रकार का अतिदेश प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है ।

अवगाहना—पलाश की उत्कृष्ट अवगाहना गव्यूति-पृथक्त्व है, यानी दो गाऊ (४ कोस) से लेकर नौ गाऊ तक की है । गाऊ या गव्यूति दो कोस[1] को कहते है ।

---

१ गव्यूति. क्रोशयुगम्—अमरकोष

तेजोलेश्या और देवोत्पत्ति नहीं—देव तेजोलेश्यायुक्त होते है, इसलिए प्रशस्त वनस्पति जो तेजोलेश्यायुक्त होती है, उसी मे वे उत्पन्न होते है। पलाश प्रशस्त वनस्पति नही है, इसमे तेजोलेश्या नही होती। तीन अप्रशस्त लेश्याएँ ही पाई जाती है, जिनके २६ अ ग उच्छ्वासक द्वार के समान होते है।[1]

☐

॥ ग्यारहवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५१४,

चउत्थो उद्देसओ : चतुर्थ उद्देशक

कुंभी : कुम्भिक (के जीवसम्बन्धी)

१. कुंभिए णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

एवं जहा पलासुद्देसए तहा भाणियव्वे, नवरं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहत्तं। सेसं तं चेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ एक्कारसमे सए चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥११.४॥

[१ प्र.] भगवन् ! एक पत्ते वाला कुम्भिक (वनस्पतिविशेष) एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ?

[१ उ.] गौतम ! जिस प्रकार पलाश (जीव) के विषय में, तीसरे उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। इतना विशेष है कि कुम्भिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट वर्ष-पृथक्त्व (दो वर्ष से नौ वर्ष तक) की है। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—तृतीय उद्देशक के अतिदेशपूर्वक कुम्भिकवर्णन—प्रस्तुत सूत्र में केवल स्थिति को छोड़ कर शेष कुम्भिक का सभी वर्णन पलाशजीव के समान बताया गया है।

॥ ग्यारहवाँ शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

□□

पंचमो उद्देसओ : पंचम उद्देशक

नालीय : नालिक (नाडीक-जीवसम्बन्धी)

१. नालिए ण भते ! एगपत्तए कि एगजीवे, अणेगजीवे ?

एव कु भिउद्देसगवत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा ।

सेव भते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ एक्कारसमे सए पचमो उद्देसो समत्तो ॥११. ५॥

[१ प्र] भगवन् एक पत्ते वाला नालिक (नाडीक), एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला ?

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार कुम्भिक उद्देशक मे कहा है, वही सारी वक्तव्यता यहाँ कहनी चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरने लगे ।

विवेचन—नालिक : नाडीक वनस्पति का स्वरूप—जिसके फल नाडी या नाली की तरह होते है, ऐसा वनस्पतिविशेष नाडीक या नालिक होता है ।[1]

॥ ग्यारहवाँ शतक : पचम उद्देशक समाप्त ॥

□□

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५११—नाडीवद्यस्य फलानि स नाडीको वनस्पतिविशेष

छट्ठो उद्देसओ : छठा उद्देशक

पउम : पद्म (जीव सम्बन्धी)

१. पउमे ण भते ! एगपत्तए कि एगजीवे, अणेगजीवे ?

एव उप्पलुद्देसगवत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ एक्कारसमे सए छट्ठो उद्देसम्रो समत्तो ॥११. ६॥

[१ प्र.] भगवन् ! एक पत्र वाला पद्म, एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ?

[१ उ] गौतम ! उत्पल-उद्देशक के अनुसार इसकी सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—पद्म के जीव का समग्र वर्णन उत्पलसम्बन्धी द्वारवत्—प्रस्तुत सूत्र मे उत्पलोद्देशक के अतिदेशपूर्वक पद्मजीव सम्बन्धी उल्लेख किया गया है । यद्यपि उत्पल और पद्म कमल के ही पर्यायवाची शब्द है, तथापि यहाँ नीलकमल-विशेष को पद्म कहा गया है ।

॥ ग्यारहवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

□□

सत्तमो उद्देसओ : सप्तम उद्देशक

कण्णीय : कर्णिका (के जीव सम्बन्धी)

१. कण्णिए ण भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

एवं चेव निरवसेसं भाणियव्वं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। एक्कारसमे सए सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।।११. ७।।

[१ प्र] भगवन् ! एक पत्ते वाली कर्णिका (वनस्पति) एक जीव वाली है या अनेक जीव वाली ?

[१ उ] गौतम ! इसका समग्र वर्णन उत्पलउद्देशक के समान करना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—कर्णिका : एक वनस्पतिविशेष—वृत्तिकार के अनुसार **कर्णिका** का एक अर्थ **बीजकोश** है । कनेर का वृक्ष भी सभव है, जिसमे पत्ते और फूल लगते है ।[1]

।। ग्यारहवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

□□

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५१३

अट्ठमो उद्देसओ : अष्टम उद्देशक

नलिण : नलिन (के जीव सम्बन्धी)

१. नलिणे णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

एवं चेव निरवसेसं जाव अणंतखुत्तो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ एक्कारसमे सए अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥११. ८॥

[१ प्र] भगवन् ! एक पत्ते वाला नलिन (कमल-विशेष) एक जीव वाला होता है, या अनेक जीव वाला ?

[१ उ] गौतम ! इसका समग्र वर्णन पूर्ववत् उत्पल उद्देशक के समान करना चाहिए, यावत् सभी जीव अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, यहाँ तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—प्राय. एक समान आठ उद्देशक—प्रथम उद्देशक 'उत्पल' से लेकर आठवें 'नलिन' उद्देशक तक उत्पलादि आठ वनस्पतिकायिक जीवों का ३२ द्वार के माध्यम से वर्णन किया गया है । इनमें पारस्परिक अन्तर बताने वाली तीन गाथाएँ वृत्तिकार ने उद्धृत की हैं । यथा—

सालंमि धणुपुहत्तं होइ पलासे य गाउयपुहत्तं ।
जोयणसहस्समहियं अवसेसाणं तु छण्हं पि ॥ १ ॥
कुम्भीए नालियाए वासपुहत्तं ठिई उ बोद्धव्वा ।
दसवाससहस्साइं अवसेसाणं तु छण्हं पि ॥ २ ॥
कुंभीए नालियाए होंति पलासे य तिण्णि लेसाओ ।
चत्तारि उ लेसाओ, अवसेसाणं तु पंचण्हं ॥ ३ ॥

अर्थ—शालूक की उत्कृष्ट अवगाहना धनुषपृथक्त्व और पलाश की उत्कृष्ट अवगाहना गव्यूतिपृथक्त्व होती है । शेष उत्पल, नलिन, पद्म, कुम्भिक, कर्णिका और नालिक की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से कुछ अधिक होती है ॥ १ ॥

कुम्भिक और नालिक की उत्कृष्ट स्थिति वर्षपृथक्त्व है । शेष ६ की उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष की होती है ॥ २ ॥

कुम्भिक, नालिक और पलाश में पहले की तीन लेश्याएँ और शेष पाँच में चार लेश्याएँ होती हैं ॥ ३ ॥[1] □

॥ ग्यारहवाँ शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती. अ. वृत्ति पत्र ५१८

(ख) भगवती विवेचन, भा. ४, (पं. घेवर) पृ. १८७३

नवमो उद्देसओ : नौवाँ उद्देशक

'सिव' : शिव राजर्षि

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था । वण्णओ ।[1]

[१] उस काल और उस समय मे हस्तिनापुर नाम का नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए।

२. तस्स णं हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ णं सहसंबवणे नामं उज्जाणे होत्था। सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे रम्मे णंदणवणसन्निगासे सुहसीयलच्छाए मणोरमे सादुफले अकटए पासादीए जाव पडिरूवे।

[२] उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तरपूर्वदिशा (ईशानकोण) मे सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। वह सभी ऋतुओ के पुष्पो और फलो से समृद्ध था। रम्य था, नन्दनवन के समान सुशोभित था। उसकी छाया सुखद और शीतल थी। वह मनोरम, स्वादिष्ठ फलयुक्त, कण्टकरहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यावत् प्रतिरूप (सुन्दर) था।

३. तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे सिवे नाम राया होत्था, महताहिमवंत० । वण्णओ ।[2]

[३] उस हस्तिनापुर नगर मे शिव नामक राजा था। वह महाहिमवान् पर्वत के समान श्रेष्ठ था, इत्यादि राजा का समस्त वर्णन कहना चाहिए।

४. तस्स णं सिवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था, सुकुमालपाणिपाया० । वण्णओ ।[3]

[४] शिव राजा की धारिणी नाम की देवी (पटरानी) थी। उसके हाथ-पैर अतिसुकुमाल थे, इत्यादि रानी का वर्णन यहाँ करना चाहिए।

५. तस्स णं सिवस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए अत्तए सिवभद्दए नामं कुमारे होत्था, सुकुमाल० जहा सूरियकंते[4] जाव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरति ।

[५] शिव राजा का पुत्र और धारिणी रानी का अगजात 'शिवभद्र' नामक कुमार था। उसके हाथ-पैर अत्यन्त सुकुमाल थे। कुमार का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र मे कथित सूर्यकान्त राजकुमार

१ हस्तिनापुर नगर के वर्णन के लिए देखिये—औपपातिकसूत्र

२ राजा के वर्णन के लिए देखिये—औपपातिकसूत्र, सू ६, पत्र ११ (आगमोदय०)

३ रानी के वर्णन के लिए देखिये—औपपातिक सूत्र, सू ६, प १२ (आगमोदय०)

४. कुमार के वर्णन के लिए देखिये—राजप्रश्नीयसूत्र कण्डिका १४४, पृ २७६, (गुर्जरग्रन्थ०)

के समान समझना चाहिए, यावत् वह कुमार राज्य, राष्ट्र, बल (सैन्य), वाहन, कोश, कोठार, पुर, अन्तःपुर और जनपद का स्वयमेव निरीक्षण (देखभाल) करता हुआ रहता था।

विवेचन—शिव राजा से सम्बन्धित परिचय—प्रस्तुत ५ सूत्रों (१ से ५ तक) में शिवराजा से सम्बन्धित ५ बातों का अतिदेशपूर्वक परिचय दिया गया है—(१) हस्तिनापुर नगर का वर्णन, (२) सहस्राम्रवन उद्यान का वर्णन, (३) शिव राजा का वर्णन, (४) शिव राजा की पटरानी धारिणी का वर्णन और (५) राजकुमार शिवभद्र-वर्णन।

कठिन शब्दों का अर्थ—सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे—सभी ऋतुओं के पुष्पों एवं फलों से समृद्ध। णंदणवणसन्निगासे—नन्दनवन के समान। सादुफले—स्वादिष्ठ फल वाला। महताहिमवंत—महान् हिमवान् पर्वत के समान। अत्तए—आत्मज—पुत्र। पच्चुवेक्खमणे—देखभाल करता हुआ।[1]

शिवराजा का दिक्प्रोक्षिक-तापस-प्रव्रज्याग्रहण-संकल्प

६. तए णं तस्स सिवस्स रण्णो अन्नया कदायि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि रज्जधुरं चिंतेमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—"अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं जहा तामलिस्स[2] (स. ३ उ. १ सु. ३६) जाव पुत्तेहिं वड्ढामि, पसूहिं वड्ढामि, रज्जेणं वड्ढामि, एवं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण० जाव संतसारसावदेज्जेणं अतीव अतीव अभिवड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं जाव एगंतसोक्खयं उवेहमाणे विहरामि? तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि तं चेव जाव अभिवड्ढामि, जावं च मे सामंतरायाणो वि वसे वट्टंति, ताव ता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते सुबहुं लोहीलोहकडाहकडुच्छुयं तंबियं तावसभंडयं घडावेत्ता, सिवभद्दं कुमारं रज्जे ठावित्ता, तं सुबहुं लोहीलोहकडाहकडुच्छुयं तंबियं तावसभंडयं गहाय जे इमे गंगाकूले वाणपत्था तावसा भवंति, तं जहा—होत्तिया पोत्तिया जहा उववातिए जाव[3] कट्ठसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरंति।[4] तत्थ णं जे ते दिसापोक्खियतावसा तेसिं अंतियं मुंडे भवित्ता दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइत्तए। पव्वइते वि य णं समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पति मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालएणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय जाव विहरित्तए" त्ति कट्टु; एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं जाव जलंते सुबहुं

---

१ भगवती विवेचन, भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी)। पृ. १८७४

२ इसके लिए देखिये भगवतीसूत्र शतक ३, उ. १, सू. ३६

३ देखिये औपपातिकसूत्र सू. ३८ पत्र ९० आगमोदय० में पाठ—'कोत्तिया जन्नई सड्ढई थालई हुंवउट्ठा दंतुक्खलिया उम्मज्जगा सम्मज्जगा निमज्जगा संपक्खाला दक्खिणकूलगा उत्तरकूलगा संखधमगा कूलधमगा मिगलुद्धया हत्थितावसा उद्दंडगा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो चेलवासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया अंबुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकंद-मूल-तय-पत्त-पुप्फ-फलाहारा जलाभिसेयकढिणगाया आयावणाहिं पंचग्गितावेहिं इंगालसोल्लियं कंदुसोल्लियं ति।

४ औपपातिकसूत्र के अतिदेश वाले इस पाठ का अनुवाद [ ] कोष्ठक दे कर दे दिया गया है। —सं.

लोहीलोह जाव घडावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, को० स० २ एव वदासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हत्थिणापुरं नगरं सब्भितरबाहिरिय आसिय जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

[६] तदनन्तर एक दिन राजा शिव को रात्रि के पिछले पहर मे (पूर्वरात्रि के बाद अपर रात्रि काल मे) राज्य की धुरा—कार्यभार का विचार करते हुए ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि यह मेरे पूर्व-पुण्यो का प्रभाव है, इत्यादि तीसरे शतक के प्रथम उद्देशक मे वर्णित तामलि—तापस के वृत्तान्त के अनुसार विचार हुआ—यावत् मैं पुत्र, पशु, राज्य, राष्ट्र, वल (सैन्य), वाहन, कोप, कोष्ठागार, पुर और अन्त पुर इत्यादि से वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूँ। प्रचुर धन, कनक, रत्न यावत् सारभूत द्रव्य द्वारा अतीव अभिवृद्धि पा रहा हूँ। तो क्या मै पूर्वपुण्यो के फलस्वरूप यावत् एकान्त-सुख का उपभोग करता हुआ विचरण करूँ ? अत अब मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि जव तक मैं हिरण्य आदि से वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूँ, यावत् जब तक सामन्त राजा आदि भी मेरे वश मे (अधीन) है तब तक कल प्रभात होते ही जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर मै बहुत-सी लोढी, लोहे की कडाही, कुडछी और ताम्बे के बहुत-से तापसोचित उपकरण (या पात्र) वनवाऊँ और शिवभद्र कुमार को राज्य पर स्थापित (राजगद्दी पर बिठा)करके और पूर्वोक्त बहुत-से लोहे एव ताम्बे के तापसोचित भाड-उपकरण ले कर, उन तापसो के पास जाऊँ जो ये गगातट पर वानप्रस्थ तापस है, जैसे कि—अग्निहोत्री, पोतिक (वस्त्रधारी) कौत्रिक (पृथ्वी पर सोने वाले) याज्ञिक, श्राद्धी (श्राद्ध-कर्म करने वाले), खप्परधारी (स्थालिक), कुण्डिकाधारी श्रमण, दन्त-प्रक्षालक, उन्मज्जक, सम्मज्जक, निमज्जक, सम्प्रक्षालक, ऊर्ध्वकण्डुक, अध कण्डुक, दक्षिणकूलक, उत्तरकूलक, शखधमक (शख फूक कर भोजन करने वाले), कूलधमक (किनारे पर खडे होकर आवाज करके भोजन करने वाले), मृगलुब्धक, हस्तीतापस, जल से स्नान किये बिना भोजन नहीं करने वाले, पानी मे रहने वाले, वायु मे रहने वाले, पट-मण्डप मे रहने वाले, बिलवासी, वृक्षमूलवासी, जलभक्षक, वायुभक्षक, शैवालभक्षक, मूलाहारी, कन्दाहारी, त्वचाहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, फलाहारी, बीजाहारी, सड कर टूटे या गिरे हुए कन्द, मूल, छाल, पत्ते, फूल और फल खाने वाले, दण्ड ऊँचा रख कर चलने वाले, वृक्षमूलनिवासी, माडलिक, वनवासी, दिशाप्रोक्षी, आतापना से पचाग्नि ताप तपने वाले (अपने शरीर को अगारो से तपा कर काष्ठ-सा बना देने वाले) इत्यादि औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार यावत् जो अपने शरीर को काष्ठ-सा बना देते है। उनमे से जो तापस दिशाप्रोक्षक है, उनके पास मुण्डित हो कर मैं दिक्प्रोक्षक-तापस-रूप प्रव्रज्या अगीकार करूँ। प्रव्रजित होने पर इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करूँ कि यावज्जीवन निरन्तर (लगातार) छठ-छठ (बेले-बेले) की तपस्या द्वारा दिक्चक्रवाल तप कर्म करके दोनो भुजाएँ ऊँची रख कर रहना मेरे लिए कल्पनीय है, इस प्रकार का शिव राजा ने विचार किया।

और फिर दूसरे दिन प्रात काल सूर्योदय होने पर अनेक प्रकार की लोढियाँ, लोहे की कडाही आदि तापसोचित भण्डोपकरण तैयार कराके कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही हस्तिनापुर नगर के बाहर और भीतर जल का छिडकाव करके स्वच्छ, (सफाई) कराओ, इत्यादि, यावत् कौटुम्बिक पुरुषो ने राजा की आज्ञानुसार कार्य करवा कर राजा से निवेदन किया।

विवेचन—शिव राजा का तापसप्रव्रज्या लेने का सकल्प और तैयारी—प्रस्तुत छठे सूत्र मे

प्रतिपादित किया गया है कि शिव राजा ने धन-धान्य आदि की वृद्धि एव अपार समृद्धि आदि देख कर अपने पूर्वकृत-पुण्यफल का विचार किया और उसके फलभोग की अपेक्षा नवीन पुण्योपार्जन करने हेतु दिशाप्रोक्षक-तापसदीक्षा लेने और तापसोचित उपकरण जुटाने का सकल्प किया और फिर तदनुसार नगर की सफाई कराने का आदेश दिया।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—**रज्जधुर**-राज्य का भार। **कडुच्छुय**—कुडछी। **कोत्तिया**—कौत्रिक—भूमिशायी। **थालई**—खप्परधारी। **हुबउट्ठा**—कण्डीधारी। **दतुक्खलिया**—फलभोजी। **उम्मज्जगा**—एक वार पानी मे डुवकी लगा कर स्नान करने वाले। **संपक्खाला**—सम्प्रक्षालक—मिट्टी रगड कर नहाने वाले। **दक्खिणकूलगा**—गगा के दक्षिण तट पर रहने वाले। **संखधमगा**—शख फूक कर भोजन करने वाले। **कूलधमगा**—किनारे रह कर शब्द करने वाले। **हत्थितावसा**—हस्तितापस (हाथी को मार वहुत दिनो तक खाने वाले)। **उद्दडगा**—ऊपर दण्ड करके चलने वाले। **जलाभिसेयकढिणगाया**—जल से स्नान करने मे कठोर शरीर वाले। **अबुभक्खिणो**—जल भक्षण करने वाले। **वाउवासिणो**—वायु मे रहने वाले। **वक्कवासिणो**—वल्कलवस्त्रधारी। **परिसडिय**—सडे हुए। **पंचग्गितावेहि**—पचाग्नि—तापो से। **इगालसोल्लिय**—अगारो से अपने शरीर को जलाने वाले। **कदुसोलिय**—भडभूजे के भाड मे पकाए हुए के समान। **कट्ठसोल्लिय पिव**—काष्ठ के समान शरीर को बनाने वाले। **दिसापोक्खिय**—दिशाप्रोक्षक—जल द्वारा दिशाओ का पूजन करने के पश्चात् फल-पुष्पादि ग्रहण करने वाले।[2]

दिक्चक्रवाल तपःकर्म का लक्षण—एक जगह पारणे मे पूर्व दिशा मे जो फल हो, उन्हे ग्रहण करके खाए जाते हैं, फिर दूसरी जगह दक्षिण दिशा मे, इसी तरह क्रमश सभी दिशाओ मे जिस तप कर्म मे पारणा किया जाता है, उसे दिक्चक्रवाल तप कर्म कहते है।[3]

शिवभद्रकुमार का राज्याभिषेक और राज्य-ग्रहण

७. तए ण से सिवे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, स० २ एवं वदासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिवभद्दस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिह विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह।

[७] उसके पश्चात् उस शिव राजा ने दूसरी वार भी कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और फिर उनसे कहा—'हे देवानुप्रियो ! शिवभद्रकुमार के महार्थ, महामूल्यवान् और महोत्सवयोग्य विपुल राज्याभिपेक की शीघ्र तैयारी करो।'

८. तए ण ते कोडुबियपुरिसा तहेव उवट्ठवेंति।

[८] तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषो ने राजा के आदेशानुसार राज्याभिषेक की तैयारी की।

९. तए णं से सिवे राया अणेगगणनायग-दडनायग जाव सधिपाल सद्धि संपरिवुडे सिवभद्द

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भाग २, पृ. ५१७-५१८

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५१९

३. वही, अ वृत्ति, पत्र ५१९-५२०

कुमार सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं निसीयावेति, नि० २ अट्ठसतेणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव[1] अट्ठसतेण भोमेज्जाणं कलसाण सव्विड्ढीए जाव[2] रवेणं महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचति, म० अ० २ पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गाताइं लूहेति, पम्ह० लू० २ सरसेणं गोसीसेणं एव जहेव जमालिस्स अलंकारो (स. ९ उ. ३३ सु. ५७)[3] तहेव जाव कप्परुक्खग पिव अलंकियविभूसियं करेंति, क० २ करयल जाव कट्टु सिवभद्दं कुमार जएणं विजएणं वद्धावेंति, जए० व० २ ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं जहा[4] उववातिए कोणियस्स जाव परमायुं पालयाहि, इट्ठजणसंपरिवुडे हत्थिणापुरस्स नगरस्स अन्नेसिं च बहूणं गामागर-नगर जाव[5] विहराहि, त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजति ।

[९] यह हो जाने पर शिव राजा ने अनेक गणनायक, दण्डनायक यावत् सन्धिपाल आदि राज्यपुरुष-परिवार से युक्त होकर शिवभद्रकुमार को पूर्वदिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन किया। फिर एक सौ आठ सोने के कलशो से, यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशो से, समस्त ऋद्धि (राजचिह्नो) के साथ यावत् वाजो के महानिनाद के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। तदनन्तर अत्यन्त कोमल सुगन्धित गन्धकाषायवस्त्र (तौलिये) से उसके शरीर को पोछा। फिर सरस गोशीर्षचन्दन का लेप किया, इत्यादि, जिस प्रकार (श ९, उ ३३। सू ५७ मे) जमालि को अलकार से विभूषित करने का वर्णन है, उसी प्रकार शिवभद्रकुमार को भी यावत् कल्पवृक्ष के समान अलकृत और विभूषित किया। इसके पश्चात् हाथ जोड कर यावत् शिवभद्रकुमार को जय-विजय शब्दो से वधाया और औपपातिक सूत्र मे वर्णित कोणिक राजा के प्रकरणानुसार—(शिवभद्रकुमार को) इष्ट, कान्त एव प्रिय शब्दो द्वारा आशीर्वाद दिया, यावत् कहा कि तुम परम आयुष्मान् (दीर्घायु) हो और इष्ट जनो से युक्त होकर हस्तिनापुर नगर तथा अन्य बहुत-से ग्राम, आकर, नगर आदि के, यावत् परिवार, राज्य और राष्ट्र आदि के स्वामित्व का उपभोग करते हुए विचरो, इत्यादि (आशीर्वचन) कह कर जय-जय शब्द का प्रयोग किया।

१०. तए ण से सिवभद्दे कुमारे राया जाते महया हिमवंत० वण्णओ जाव विहरति ।

[१०] अब वह शिवभद्रकुमार राजा बन गया। वह महाहिमवान् पर्वत के समान राजाओ मे प्रधान हो कर विचरण करने लगा। यहाँ शिवभद्रराजा का वर्णन करना चाहिए।

विवेचन—शिवभद्रकुमार का राज्याभिषेक और आशीर्वचन—प्रस्तुत ४ सूत्रो (७ से १० तक) मे शिव राजा द्वारा शिवभद्रकुमार के राज्याभिषेक की तैयारी के लिए कौटुम्बिक पुरुषो को आदेश का तथा उनके द्वारा राज्याभिषेक की समस्त तैयारी कर लेने पर शिव राजा द्वारा अपने समस्त

---

१ 'जाव' पद सूचित पाठ के लिए देखें—औपपातिक सूत्र ३१, पत्र ६६, आगमोदय ।

२ 'जाव' पद सूचित पाठ के लिए देखे—भगवती श ९, उ ३३, सू ४९

३ जमाली के एतद्विषयक वर्णन के लिए देखें—श ९, उ ३३, सू ५७

४ इसके शेष वर्णन के लिए देखे—औपपातिक कोणिकप्रकरण

५ इसके लिए देखें—औपपातिक सू ३२, पत्र ७४, आगमोदय

राज्यपुरुष-परिवार के साथ सिहासनासीन करके शिवभद्रकुमार का राज्याभिषेक करने और उसे आशीर्वचन कहने का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—**उवट्ठवेह**—उपस्थित करो। **णिसियावेत्ता**—बिठा कर। **सोवण्णियाणं**-सोने के बने हुए। **भोमेज्जाण**—मिट्टी के बने हुए। **पम्हलसुकुमालाए**—रोयेदार सुकुमाल—मुलायम। **परमायु पालयाहि**—परम आयु का पालन करो—दीर्घायु होओ।[2]

शिव राजर्षि द्वारा दिशाप्रोक्षकतापस-प्रव्रज्याग्रहण

११. तए ण से सिवे राया अन्नया कयाइ सोभणसि तिहि-करण-णक्खत्त-दिवस-मुहुत्तसि विपुल असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेति, वि० उ० २ मित्त-णाति-नियग जाव परिजणं रायाणो य खत्तिया य आमतेति, आ० २ ततो पच्छा ण्हाते जाव सरीरे भोयणवेलाए भोयणमडवसि सुहासण-वरगए तेण मित्त-नाति-नियग-सयण जाव परिजणेण राईहि य खत्तिएहि य सद्धि विपुल असण-पाण-खाइम-साइमं एव जहा तामली (स. ३ उ. १ सु. ३६) जाव सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारे० स० २ तं मित्त-नाति जाव परिजण रायाणो य खत्तिए य सिवभद्द च रायाण आपुच्छति, आपुच्छित्ता सुबहु लोहीलोहकडाहकडुच्छु जाव भंडग गहाय जे इमे गगाकूलगा वाणपत्था तावसा भवति त चेव जाव तेसि अतिय मुंडे भवित्ता दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए। पव्वइए वि य ण समाणे अयमेयारूव अभिग्गह अभिगिण्हति—कप्पति मे जावज्जीवाए छट्ठ० त चेव जाव (सु. ६) अभिग्गह अभिगिण्हइ, अय० अभि० २ पढम छट्ठक्खमण उवसपज्जित्ताण विहरइ।

[११] तदनन्तर किसी समय शिव राजा (भूतपूर्व हस्तिनापुरनृप) ने प्रशस्त तिथि, करण, नक्षत्र और दिवस एव शुभ मुहूर्त मे विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तयार करवाया और मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन, परिजन, राजाओ एव क्षत्रियो आदि को आमन्त्रित किया। तत्पश्चात् स्वय ने स्नानादि किया, यावत् शरीर पर (चदनादि का लेप किया।) (फिर) भोजन के समय भोजनमण्डप मे उत्तम सुखासन पर बैठा और उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, यावत् परिजन, राजाओ और क्षत्रियो के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन किया। फिर तामली तापस (श ३, उ १, सू ३६ मे वर्णित वर्णन) के अनुसार, यावत् उनका सत्कार-सम्मान किया। तत्पश्चात् उन मित्र, ज्ञातिजन आदि सभी की तथा शिवभद्र राजा की अनुमति लेकर लोढी—लोहकटाह, कुडछी आदि बहुत से तापसोचित भण्डोपकरण ग्रहण किये और गगातट निवासी जो वानप्रस्थ तापस थे, वहा जा कर, यावत् दिशाप्रोक्षक तापसो के पास मुण्डित होकर दिशाप्रोक्षक-तापस के रूप मे प्रव्रजित हो गया। प्रव्रज्या ग्रहण करते ही शिवराजर्षि ने इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया—आज से जीवन पर्यन्त मुझे बेले-बेले (छट्ठ-छट्ठ-तप) करते हुए विचरना कल्पनीय है, इत्यादि पूर्ववत् (सू ६ के अनुसार) यावत् अभिग्रह धारण करके प्रथम छट्ठ (बेले का) तप अगीकार करके विचरने लगा।

---

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा. २, पृ ५१८-५१९

२ भगवती विवेचन, भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १८७९

विवेचन—शिवराज द्वारा सर्वानुमतिपूर्वक तापस-प्रव्रज्याग्रहण—प्रस्तुत ११ वे सूत्र मे शिवराजर्षि की तापसदीक्षा के सन्दर्भ मे पहले उसके द्वारा स्वजन-सम्बन्धियो को आमत्रण, भोजन, सत्कार-सम्मान, प्रव्रज्याग्रहण की अनुमति, फिर स्वय तापसोचित उपकरण लेकर गगातटवासी दिशाप्रोक्षक-तापसो से तापस-दीक्षा-ग्रहण एव यावज्जीव छट्ठतप का संकल्प आदि का वर्णन किया गया है।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—सोमणंसि—शुभ या प्रशस्त। उवक्खडावेति—तैयार कराया। वाणपत्था—वानप्रस्थतापस (वानप्रस्थ नामक तृतीय आश्रम को अगीकार किये हुए)। अभिग्गहं—अभिग्रह—एक प्रकार का सकल्प या प्रतिज्ञा।[2]

शिवराजर्षि द्वारा दिशाप्रोक्षणतापसचर्या का वर्णन

१२. तए णं से सिवे रायरिसी पढमछट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहति, आया० प० २ वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ किढिणसंकाइयगं गिण्हइ, कि० गि० २ पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ। 'पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणतु' त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिस पासति, पा० २ जाणि य तत्थ कंदाणि य जाव हरियाणि य ताइं गेण्हति। गे० २ किढिणसंकाइयगं भरेति, किढि० भ० २ दब्भे य कुसे य समिहाओ य पत्तामोडं च गेण्हइ, गे० २ जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, ते उवा० २ किढिणसकाइयगं ठवेइ, किढि० ठवेत्ता वेदिं वड्ढेति, वेदिं व० २ उवलेवणसम्मज्जणं करेति, उ० क० २ दब्भ-कलसाहत्थगए जेणेव गगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ गगामहानदिं ओगाहइ, गंगा० ओ० २ जलमज्जण करेति, जल० क० २ जलकीडं करेति, जल० क० २ जलाभिसेय करेति, ज० क० २ आयते चोक्खे परमसूइभूते देवत-पितिकयकज्जे दब्भसगब्भकलसाहत्थगते गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरति, गगा० प० २ जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए य वेदिं रएति, वेदिं र० २ सरएणं अरणिं महेति, स० म० २ अग्गिं पाडेति, अग्गिं पा० २ अग्गिं सधुक्केति, अ० सं० २ समिहाकट्ठाइ पक्खिवइ, स० प० २ अग्गिं उज्जालेति, अ० उ० २—

अग्गिस्स दाहिणे पासे, सत्तंगाइं समादहे। तं जहा—

सकहं १ वक्कलं २ ठाणं ३ सेज्जाभडं ४ कमंडलं ५।
दंडदारुं ६ तहऽप्पाणं ७ अहेताइं समादहे ॥१॥

महुणा य घएण य तंदुलेहि य अग्गिं हुणइ, अ० हु० २ चरुं साहेइ, चरु सा० २ बलिं वइस्सदेवं करेइ, बलि० क० २ अतिहिपूयं करेति, अ० क० २ ततो पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५१९-५२०

२ भगवती विवेचन, भा ४, पृ १८८१

[१२] तत्पश्चात् वह शिवराजर्षि प्रथम छट्ठ (वेले) के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरे, फिर उन्होने वल्कलवस्त्र पहिने और जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए। वहाँ से किढीण (वास का पात्र—छवडी) और कावड को लेकर पूर्वदिशा का पूजन किया। (इस प्रकार प्रार्थना की—) हे पूर्वदिशा के (लोकपाल) सोम महाराजा! प्रस्थान (परलोक-साधना मार्ग) मे प्रस्थित-(प्रवृत्त) हुए मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करे, और यहाँ (पूर्वदिशा मे) जो भी कन्द, मूल, छाल, पत्ते, पुष्प, फल, वोज और हरी वनस्पति (हरित) है, उन्हे लेने की अनुज्ञा दे, यो कह कर शिवराजर्षि ने पूर्वदिशा का अवलोकन किया और वहाँ जो भी कन्द, मूल, यावत् हरी वनस्पति मिली, उसे ग्रहण की और कावड मे लगी हुई वास की छबडी मे भर ली। फिर दर्भ (डाभ), कुश, समिधा और वृक्ष की शाखा को मोड कर तोडे हुए पत्ते लिए और जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए। कावड सहित छवडी नीचे रखी, फिर वेदिका का प्रमार्जन किया, उसे लीप कर शुद्ध किया। तत्पश्चात् डाभ और कलश हाथ मे ले कर जहाँ गगा महानदी थी, वहाँ आए। गगा महानदी मे अवगाहन किया और उसके जल से देह शुद्ध की। फिर जलक्रीडा की, पानी अपने देह पर सीचा, जल का आचमन आदि करके स्वच्छ और परम पवित्र (शुचिभूत) होकर देव और पितरो का कार्य सम्पन्न करके कलश मे डाभ डालकर उसे हाथ मे लिए हुए गगा महानदी से बाहर निकले और जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए। कुटी मे उन्होने डाभ, कुश और बालू से वेदी बनाई। फिर मथनकाष्ठ से अरणि की लकडी घिसी (मथन किया) और आग सुलगाई। अग्नि जब धधकने लगी तो उसमे समिधा की लकडी डाली और आग अधिक प्रज्वलित की। फिर अग्नि के दाहिनी ओर ये सात वस्तुएँ (अग) रखी, यथा—(१) सकथा (उपकरण—विशेष), (२) वल्कल, (३) स्थान (४) शय्याभाण्ड, (५) कमण्डलु, (६) लकडी का डडा और (७) अपना शरीर। फिर मधु, घी और चावलो का अग्नि मे हवन किया और चरु (वलिपात्र) मे वलिद्रव्य ले कर बलिवैश्वदेव (अग्निदेव) को अर्पण किया और तव अतिथि की पूजा की और उसके बाद शिवराजर्षि ने स्वय आहार किया।

१३. तए ण से सिवे रायरिसी दोच्चं छट्ठक्खमण उवसंपज्जित्ताण विहरइ। तए णं से सिवे रार्यारसी दोच्चे छट्ठक्खमणपारणगसि आयावणभूमीतो पच्चोरुहइ, आ० प० २ वागल० एव जहा—पढमपारणग, नवर दाहिण दिसं पोक्खेति। दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं०, सेसं तं चेव जाव आहारमाहारेइ।

[१३] तत्पश्चात् उन शिवराजर्षि ने दूसरी बेला (छट्ठक्खमण) अगीकार किया और दूसरे वेले के पारणे के दिन शिवराजर्षि आतापनाभूमि से नीचे उतरे, वल्कल के वस्त्र पहने, यावत् प्रथम पारणे की जो विधि की थी, उसी के अनुसार दूसरे पारणे मे भी किया। इतना विशेष है कि दूसरे पारणे के दिन दक्षिण दिशा की पूजा की। हे दक्षिणदिशा के लोकपाल यम महाराजा! परलोक-साधना मे प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करे, इत्यादि शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् अतिथि की पूजा करके फिर उसने स्वय आहार किया।

१४. तए णं से सिवे रायरिसी तच्च छट्ठक्खमणं उवसपज्जित्ताण विहरति। तए ण से सिवे रायरिसी० सेसं त चेव, नवर पच्चत्थिम दिसं पोक्खेति। पच्चत्थिमाए दिसाए वरुणे महाराया पत्थाणे पत्थिय अभिरक्खतु सिवं० सेस तं चेव जाव ततो पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ।

[१४] तदनन्तर उन शिवराजर्षि ने तृतीय बेला (छट्ठक्खमण तप) अगीकार किया। उसके पारणे के दिन शिवराजर्षि ने पूर्वोक्त सारी विधि की। इसमे इतनी विशेषता है कि पश्चिमदिशा की पूजा की और प्रार्थना की—हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज! परलोक-साधना-मार्ग मे प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षि की रक्षा कर, इत्यादि यावत् तब स्वय आहार किया।

१५. तए ण से सिवे रायरिसी चउत्थं छट्ठक्खमण उवसंपज्जित्ताण विहरइ। तए ण से सिवे रायरिसी चउत्थ छट्ठक्खमणं० एव त चेव, नवर उत्तर दिस पोक्खेइ। उत्तराए दिसाए वेसमणे महाराया पत्थाणे पत्थिय अभिरक्खउ सिवं०, सेस त चेव जाव ततो पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति।

[१५] तत्पश्चात् उन शिवराजर्षि ने चतुर्थ वेला (छट्ठक्खमण तप) अगीकार किया। फिर इस चौथे बेले के तप के पारणे के दिन पूर्ववत् सारी विधि की। विशेष यह है कि उन्होंने (इस बार) उत्तरदिशा की पूजा की और इस प्रकार प्रार्थना की—हे उत्तरदिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज! परलोक-साधना-मार्ग मे प्रवृत्त इस शिवराजर्षि की रक्षा करे, इत्यादि अवशिष्ट सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् तत्पश्चात् शिवराजर्षि ने स्वय आहार किया।

विवेचन—शिवराजर्षि द्वारा चार छट्ठक्खमण तप द्वारा दिशाप्रोक्षण—प्रस्तुत चार सूत्रो (१२ से १५ तक) मे शिवराजर्षि द्वारा क्रमश एक-एक वेले के पारणे के दिन एक-एक दिशा के प्रोक्षण की की गई तापसचर्या का वर्णन है।

कठिन शब्दो का भावार्थ—वागलवत्थनियत्थे—वल्कलवस्त्र पहने। **उडए**—उटज—कुटी। **किढिणसकाइयग**—बास का बना हुआ तापसो का पात्र-विशेष, (छबडी) और साकायिक (कावड—भार ढोने का यत्र)। **पोक्खेइ**—प्रोक्षण (पूजन) किया। **पत्थाणे**—परलोक-साधना-मार्ग मे। **पत्थिय**—प्र स्थित-प्रवत्त। **दब्भे**—मूलसहित दर्भ-डाभ को। **समिहाओ**—समिधा की लकडी। **पत्तामोड**—वृक्ष की शाखा से मोडे हुए पत्ते। **वेदिं वड्ढेति**—वेदी (देवार्चनस्थान) को वर्धनी-बुहारी से साफ (प्रमार्जित) किया। **उवलेवण-सम्मज्जण**—गोवर आदि से लेपन तथा जल से सम्मार्जन (शोधन-शुद्धि) किया। **दब्भ-कलसाहत्थगए**— कलश मे दर्भ डाल कर हाथ मे लिये हुए। **ओगाहइ**—अवगाहन (प्रवेश) किया। **आयते**—आचमन किया। **चोक्खे**—अशुचिद्रव्य हटाकर शुद्ध हुए। **परमसुइभूए**—अत्यन्त शुद्ध हुए। **देवत-पिति-कयकज्जे**—देवता और पितरो को जलाजलिदानादि का कार्य किया। **सरएण अरणि महेति**—शरक = मथनकाष्ठ से अरणि की लकडी को मथा—घिसा। **समादहे**—सन्निधापन किये—रखे। **सकहं**—सकथा (उपकरण—विशेष)। **ठाण**—ज्योति-स्थान (या पात्र-स्थान)—दीप। **सेज्जाभंड**—शय्या के उपकरण। **दडदारु**—लकडी का डडा, दण्ड। **चरुं साहेइ**—चरू (बलिद्रव्य के पात्र) मे बलिद्रव्य को सिझाया,। **बलि वइस्सदेवं करेइ**—बलि से अग्निदेव की पूजा की।[1]

विभंगज्ञान प्राप्त होने पर राजर्षि का अतिशय ज्ञान का दावा और जनवितर्क

१६. तए ण तस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठछट्ठेणं अनिक्खित्तेण दिसाचक्कवालेण जाव आयावेमाणस्स पगतिभद्दयाए जाव विणीययाए अन्नया कदायि तयावरणिज्जाण कम्माण खयोवसमेण

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२०

ईहापोहमग्गणगवेसण करेमाणस्स विब्भगे नाम अन्नाणे समुप्पन्ने। से ण तेण विब्भगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासति अस्सि लोए सत्त दीवे सत्त समुद्दे। तेण पर न जाणति न पासति।

[१६] इसके बाद निरन्तर (लगातार) वेले-वेले की तपश्चर्या से दिक्चक्रवाल का प्रोक्षण करने से, यावत् आतापना लेने से तथा प्रकृति की भद्रता यावत् विनीतता से शिव राजर्षि को किसी दिन तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करते हुए विभग ज्ञान (कुअवधिज्ञान) उत्पन्न हुआ। उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से वे इस लोक मे सात द्वीप और सात समुद्र देखने लगे। इससे आगे वे न जानते थे, न देखते थे।

१७ तए ण तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—अत्थि णं मम अतिसेसे नाण-दसणे समुप्पन्ने, एव खलु अस्सि लोए सत्त दीवा, सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। एव संपेहेइ, एवं सं० २ आयावणभूमीओ पच्चोरुभति, आ० प० २ वागलवत्थ-नियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ सुवहुं लोहीलोहकडाहकडुच्छुय जाव भंडग किढिणसंकाइयं च गेण्हति, गे० २ जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ भंडनिक्खेवं करेइ, भंड० क० २ हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग जाव पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खति जाव एवं परूवेइ—अत्थि ण देवाणुप्पिया! मम अतिसेसे नाण-दसणे समुप्पन्ने, एव खलु अस्सि लोए जाव दीवा य समुद्दा य।

[१७] तत्पश्चात् शिवराजर्षि को इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ कि "मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है। इस लोक मे सात द्वीप और सात समुद्र है। उससे आगे द्वीप-समुद्रो का विच्छेद (अभाव) है।" ऐसा विचार कर वे आतापना-भूमि से नीचे उतरे और वल्कल-वस्त्र पहने, फिर जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए। वहाँ से अपने लोढी, लोहे का कडाह, कुडछी आदि बहुत-से भण्डोपकरण तथा छबडी-सहित कावड को लेकर वे हस्तिनापुर नगर मे जहाँ तापसो का आश्रम था, वहाँ आए। वहाँ अपने तापसोचित उपकरण रखे और फिर हस्तिनापुर नगर के शृ गाटक, त्रिक यावत् राजमार्गो मे बहुत-से मनुष्यो को इस प्रकार कहने और यावत् प्ररूपणा करने लगे—'हे देवानुप्रियो! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता और देखता हूँ कि इस लोक मे सात द्वीप और सात समुद्र है।'

१८. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतिय एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग जाव पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव परूवेइ—एव खलु देवाणुप्पिया! सिवे रायरिसी एव आइक्खइ जाव परूवेइ 'अत्थि ण देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाण-दसणे जाव तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य'। से कहमेयं मन्ने एव?

[१८] तदनन्तर शिवराजर्षि से यह (उपर्युक्त) वात सुनकर और विचार कर हस्तिनापुर नगर के शृ गाटक, त्रिक यावत् राजमार्गो पर बहुत-से लोग एक दूसरे से इस प्रकार कहने यावत् वतलाने लगे—हे देवानुप्रियो! शिवराजर्षि जो इस प्रकार की वात कहते यावत् प्ररूपणा करते है कि 'देवानुप्रियो! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, यावत् इस लोक मे सात द्वीप और सात

समुद्र ही है। इससे आगे द्वीप और समुद्रो का अभाव है,' उनकी यह वात इस प्रकार कैसे मानी जाए ?

विवेचन—शिवराजर्षि का अतिशय ज्ञान का दावा और लोकचर्चा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे तीन घटनाओ का उल्लेख है—(१) शिवराजर्षि को विभगज्ञान की उत्पत्ति, (२) उनके द्वारा हस्तिनापुर मे अतिशय ज्ञानप्राप्ति का दावा और (३) जनता मे परस्पर चर्चा।[१]

कठिन शब्दो का अर्थ—अज्झत्थिए—अध्यवसाय, विचार। **अतिसेसे**—अतिशय। **वोच्छिण्णे** विच्छेद है—अभाव है। **तावसावसहे**—तापसो के आवसथ (आश्रम) मे।[२]

भगवान् द्वारा असंख्यात द्वीपसमुद्र-प्ररूपणा—

१९. तेणं कालेणं तेण समएण सामी समोसढे। परिसा जाव पडिगया।

[१९] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीरस्वामी वहाँ पधारे। परिषद् ने धर्मोपदेश सुना, यावत् वापस लौट गई।

२०. तेण कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी जहा वितियसए नियंठुद्देसए (स. २ उ. ५ सु. २१-२४) जाव अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेति—बहुजणो अन्नमन्नस्स एव आइक्खति जाव एवं परूवेइ 'एव खलु देवाणुप्पिया! सिवे रायरिसी एवं आइक्खइ जाव परूवेइ—अत्थि ण देवाणुप्पिया! त चेव जाव वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। से कहमेयं मन्ने एवं?'

[२०] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीरस्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगार ने, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थोद्देशक (श २ उ ५ सू २१-२४) मे वर्णित विधि के अनुसार यावत् भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए, वहुत-से लोगो के शब्द सुने। वे परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, यावत् इस प्रकार बतला रहे थे—हे देवानुप्रियो! शिवराजर्षि यह कहते है, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'हे देवानुप्रियो! इस लोक मे सात द्वीप और सात समुद्र है, इत्यादि, यावत उससे आगे द्वीप-समुद्र नही हैं, तो उनकी यह वात कैसे मानी जाए ?'

२१. तए णं भगवं गोयमे बहुजणस्स अतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे जहा नियंठुद्देसए (स. २ उ. ५. सु. २५ [१]) जाव तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। से कहमेयं भंते! एव?

'गोयमा!' दी समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एव वदासी—जं णं गोयमा! से वहुजणे अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति त चेव सव्वं भाणियव्वं जाव भंडनिक्खेवं करेति, हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग० त चेव जाव वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तं चेव जाव तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। त णं मिच्छा। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु जंबुद्दीवादीया दीवा लवणादीया समुद्दा संठाणओ

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५२२-५२३

२ भगवती, विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १८८७

एगविहिविहाणा, वित्थारओ अणेगविहिविहाणा एवं जहा जीवाभिगमे[1] जाव सयंभुरमणपज्जवसाणा अस्सि तिरियलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता समणाउसो !।

[२१] बहुत-से मनुष्यों से यह बात सुन कर और विचार कर गौतम स्वामी को संदेह, कुतूहल एवं यावत् श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे निर्ग्रन्थोद्देशक (शतक २ उ ५, सू २५-१) में वर्णित वर्णन के अनुसार भगवान् की सेवा में आए और पूर्वोक्त बात के विषय में पूछा—'शिव राजर्षि जो यह कहते हैं, यावत् उससे आगे द्वीपों और समुद्रों का सर्वथा अभाव है, भगवन् ! क्या उनका ऐसा कथन यथार्थ है ?'

[उ] भगवान् महावीर ने गौतम आदि को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—'हे गौतम ! जो ये बहुत-से लोग परस्पर ऐसा कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं (इत्यादि) शिव राजर्षि को विभंगज्ञान उत्पन्न होने से लेकर यावत् उन्होंने तापस-आश्रम में भण्डोपकरण रखे। हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक, त्रिक आदि राजमार्गों पर वे कहने लगे—यावत् सात द्वीप-समुद्रों से आगे द्वीप-समुद्रों का अभाव है, इत्यादि सब पूर्वोक्त कहना चाहिए। तदनन्तर शिव राजर्षि से यह बात सुनकर बहुत से मनुष्य ऐसा कहते हैं यावत् उससे आगे द्वीप-समुद्रों का सर्वथा अभाव है।' (यह जो जनता में चर्चा है) वह कथन मिथ्या है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि वास्तव में जम्बूद्वीपादि द्वीप एवं लवणादि समुद्र एक सरीखे वृत्त (गोल) होने से आकार (संस्थान) में एक समान हैं परन्तु विस्तार में (एक दूसरे से दुगुने-दुगुने होने से) वे अनेक प्रकार के हैं, इत्यादि सभी वर्णन जीवाभिगम में कहे अनुसार जानना चाहिए, यावत् "हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस तिर्यक् लोक में असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं।'

विवेचन—गौतमस्वामी द्वारा शिवराजर्षि को उत्पन्न ज्ञान का भगवान् से निर्णय—प्रस्तुत तीन सूत्रों (१९-२०-२१) में चार तथ्यों का निरूपण किया गया है—(१) भगवान् का हस्तिनापुर में पदार्पण, (२) गौतमस्वामी द्वारा जनता से शिवराजर्षि को उत्पन्न अतिशय ज्ञान की चर्चा का श्रवण, (३) अपनी शंका भगवान् के समक्ष प्रस्तुत करना, (४) भगवान् द्वारा शिवराजर्षि का अतिशय ज्ञान होने का दावा मिथ्या होने का कथन।[2]

कठिन शब्दों का भावार्थ—एकविहिविहाणा—सभी गोल होने से सभी एक ही प्रकार के व्यवहार—आकार वाले। **वित्थारओ**—विस्तार से। **पज्जवसाणा**—पर्यन्त।[3]

द्वीप-समुद्रगत द्रव्यों में वर्णादि की परस्परसम्बद्धता

२२. अत्थि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दव्वाइं सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं

---

१ देखिये जीवाभिगमसूत्र प्रति ३, उ १, सू १२३ में—"दुगुणादुगुण पडुप्पाएमाणा पवित्थरमाणा ओभासमाण-वीइया' ' बहुप्पलकुमुदनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीयमहापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तसयसहस्सपत्तपफुल्लकेसरोववेया ··· पत्तेय पत्तेय पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेय पत्तेय वणसंडपरिक्खित्ता।"

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ५२३

३. भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२०

पि, सरसाइं पि अरसाइ पि, सफासाइं पि अफासाइ पि, अन्नमन्नबद्धाइ अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव घडत्ताए चिट्ठति ?

हता, अत्थि ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे वर्णसहित और वर्णरहित, गन्धसहित और गन्धरहित, सरस और अरस, सस्पर्श और अस्पर्श द्रव्य, अन्योन्यबद्ध तथा अन्योन्यस्पृष्ट यावत् अन्योन्यसम्बद्ध है ?

[२२ उ] हाँ, गौतम ! हैं ।

२३. अत्थि ण भते ! लवणसमुद्दे दव्वाइं सवण्णाइ पि अवण्णाइ पि, सगंधाइं पि अगधाइ पि, सरसाइ पि अरसाइ पि, सफासाइं पि अफासाइ पि, अन्नमन्नबद्धाइ अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव घडत्ताए चिट्ठति ?

हता, अत्थि ।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या लवणसमुद्र मे वर्णसहित और वर्णरहित, गन्धसहित और गन्धरहित, रसयुक्त और रसरहित तथा स्पर्शयुक्त और स्पर्शरहित द्रव्य, अन्योन्यवद्ध तथा अन्योन्यस्पृष्ट यावत् अन्योन्यसम्बद्ध हैं ?

[२३ उ] हाँ, गौतम ! हैं ।

२४. अत्थि ण भते ! धातइसंडे दीवे दव्वाइं सवन्नाइ पि० ।

[२४ प्र] भगवन् ! क्या धातकीखण्डद्वीप मे सवर्ण-अवर्ण आदि द्रव्य यावत् अन्योन्यसम्वद्ध है ?

[२४ उ] हाँ, गौतम ! है ।

२५. एव जाव सयभुरमणसमुद्दे जाव हता, अत्थि ।

[२५ प्र] इसी प्रकार यावत् स्वयम्भूरमणसमुद्र मे भी यावत् द्रव्य, अन्योन्यसम्वद्ध हैं ?

[२५ उ] हाँ, हैं ।

२६. तए ण सा महतिमहालिया महच्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० समण भगव महावीर वदति नमसति वं० २ जामेव दिस पाउब्भूता तामेव दिसं पडिगया ।

[२६] इसके पश्चात् वह अत्यन्त-महती विशाल परिषद् श्रमण भगवान् महावीर से उपर्युक्त अर्थ (वात) सुनकर और हृदय मे धारण कर हर्षित एव सन्तुष्ट हुई और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना व नमस्कार करके जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा मे लौट गई ।

विवेचन—द्वीप-समुद्रगत द्रव्यो मे वर्णादि की परस्परसम्बद्धता—प्रस्तुत पाच सूत्रो (२२ से २६ तक) मे जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र आदि समस्त द्वीप-समुद्रो मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादि से रहित और

सहित द्रव्यों की परस्परबद्धता, गाढ श्लिष्टता, स्पृष्टता एवं अन्योन्यसम्बद्धता का प्रतिपादन किया गया है।[1]

सवर्णादि एवं अवर्णादि का आशय—वर्णादि-सहित का अर्थ है—पुद्गलद्रव्य तथा वर्णादि-रहित का आशय है—धर्मास्तिकाय आदि। **अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति**—परस्पर सम्बद्ध रहते हैं।[2]

भगवान् का निर्णय सुन कर जनता द्वारा सत्यप्रचार

२७. तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—"जं णं देवाणुप्पिया! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणे जाव समुद्दा य, तं नो इणट्ठे समट्ठे। समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ 'एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं तं चेव जाव भंडनिक्खेवं करेति, भंड० क० २ हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग जाव समुद्दा य। तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव समुद्दा य, तं णं मिच्छा'। समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खति—एवं खलु जंबुद्दीवाईया दीवा लवणाईया समुद्दा तं चेव जाव असंखेज्जा दीव-समुद्दा पण्णत्ता समणाउसो!।

[२७] (भगवान् महावीर के मुख से शिवराजर्षि के ज्ञान के विषय में सुनकर) हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक यावत् मार्गों पर बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने यावत् (एक दूसरे को) बतलाने लगे—हे देवानुप्रियो! शिवराजर्षि जो यह कहते है यावत् प्ररूपणा करते है कि मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं जानता-देखता हूँ कि इस लोक मे सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं, उनके आगे द्वीप-समुद्र बिलकुल नही है, उनका यह कथन मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते, यावत् प्ररूपणा करते है कि निरन्तर बेले-बेले का तप करते हुए शिवराजर्षि को विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ है। विभंगज्ञान उत्पन्न होने पर वे अपनी कुटी में आए यावत् वहाँ से तापस आश्रम मे आकर अपने तापसोचित उपकरण रक्खे और हस्तिनापुर के शृंगाटक यावत् राजमार्गों पर स्वयं को अतिशय ज्ञान होने का दावा करने लगे। लोग (उनके मुख से) ऐसी बात सुन परस्पर तर्कवितर्क करते हैं "क्या शिवराजर्षि का यह कथन सत्य है? परन्तु मै कहता हूँ कि उनका यह कथन मिथ्या है।" श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते हैं कि वास्तव मे जम्बूद्वीप आदि तथा लवण समुद्र आदि गोल होने से एक प्रकार के लगते है, किन्तु वे एक दूसरे से उत्तरोत्तर द्विगुण-द्विगुण होने से अनेक प्रकार के है। इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणो! (लोक मे) द्वीप और समुद्र असंख्यात हैं।

विवेचन—जनता द्वारा महावीरप्ररूपित सत्य का प्रचार—प्रस्तुत सूत्र (२७) मे वर्णन है कि हस्तिनापुर की जनता ने भगवान् महावीर से शिवराजर्षि को उत्पन्न हुए विभंगज्ञान के विषय मे सुना तो वह उस सत्य का प्रचार करने लगी।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५२४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२१

२८. तए णं से सिवे रायरिसी बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था।

[२८] तब शिवराजर्षि बहुत-से लोगो से यह बात सुनकर तथा हृदयगम करके शकित, काक्षित, विचिकित्सित (फल के विषय मे सदेहग्रस्त), भेद को प्राप्त, अनिश्चित एव कलुषित भाव को प्राप्त हुए।

२९. तए ण तस्स सिवस्स रायरिसिस्स संकियस्स कंखियस्स जाव कलुससमावन्नस्स से विभगे अन्नाणे खिप्पामेव परिवडिए।

[२९] तब शकित काक्षित यावत् कालुष्ययुक्त बने हुए शिवराजर्षि का वह विभग-अज्ञान भी शीघ्र ही पतित (नष्ट) हो गया।

विवेचन—शिवराजर्षि को प्राप्त विभगज्ञान नष्ट होने का कारण—शिवराजर्षि को विपरीत अवधिज्ञान (विभंगज्ञान) उत्पन्न हुआ था, क्योकि वह उस समय बालतपस्वी था। अज्ञान तप के कारण जब उसे विभगज्ञान प्राप्त हुआ, तब वह अपने को विशिष्ट ज्ञान वाला समझने लगा और सर्वज्ञवचनो मे विश्वास न रखकर मिथ्याप्ररूपणा करने लगा। अर्थात् उस विभग को ही विशिष्ट, पूर्ण ज्ञान समझ कर मिथ्या-प्ररूपणा करने लगा। शिवराजर्षि के प्राप्त ज्ञान की वास्तविकता से लोगो को जब भ महावीर ने परिचित कराया तो राजर्षि को सुनकर शका, काक्षा, विचिकित्सा आदि उत्पन्न हुई। इस कारण उनका विभगज्ञान नष्ट हो गया।[1]

शिवराजर्षि द्वारा निर्ग्रन्थ-प्रव्रज्याग्रहण और सिद्धिप्राप्ति

३०. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु समणे भगवं महावीरे आदिगरे तित्थगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएण चक्केणं जाव सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं जाव विहरति। त महाफलं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम-गोयस्स जहा उववातिए जाव गहणयाए, तं गच्छामि ण समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि। एयं णे इहभवे य परभवे य जाव भविस्सति' त्ति कट्टु एवं संपेहेति, एवं स० २ जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ तावसावसह अणुप्पविसति, ता० अ० २ सुबहुं लोहीलोह-कडाह जाव किढिणसंकातियगं च गेण्हति, गे० २ तावसावसहातो पडिनिक्खमति, ता० प० २ परिवडिय-विब्भगे हत्थिणापुरं मज्झंमज्झेण निग्गच्छति, नि० २ जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेति, क० २ वंदति नमंसति, वं० २ नच्चासन्ने नाइदूरे जाव पंजलिउडे पज्जुवासति।

[३०] तत्पश्चात् शिवराजर्षि को इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान् महावीरस्वामी धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है, जिनके आगे

---

१ भगवती विवेचन, (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १८९२

आकाश मे धर्मचक्र चलता है, यावत् वे यहाँ सहस्राम्रवन उद्यान मे यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचर रहे है। तथारूप अरहन्त भगवन्तो का नाम-गोत्र श्रवण करना भी महाफलदायक है, तो फिर उनके सम्मुख जाना, वन्दन करना, इत्यादि का तो कहना ही क्या ? इत्यादि औपपातिक-सूत्र के उल्लेखानुसार विचार किया, यावत् एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का सुनना भी महाफल-दायक है, तो फिर विपुल अर्थ के ग्रहण करने का तो कहना ही क्या ! अत मै श्रमण भगवान् महावीरस्वामी के पास जाऊँ, वन्दन-नमस्कार करूँ, यावत् पर्युपासना करूँ। यह मेरे लिए इस भव मे और परभव मे, यावत् श्रेयस्कर होगा।"

इस प्रकार का विचार करके वे जहाँ तापसो का मठ था वहाँ आए और उसमे प्रवेश किया। फिर वहाँ से बहुत-से लोढी, लोह-कडाह यावत् छबडी-सहित कावड आदि उपकरण लिए और उस तापसमठ से निकले। वहाँ से विभगज्ञान-रहित वे शिवराजर्षि हस्तिनापुर नगर के मध्य मे से होते हुए, जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आए। श्रमण भगवान् महावीर के निकट आकर उन्होने तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, उन्हे वन्दना-नमस्कार किया और न अतिदूर, न अतिनिकट, यावत् हाथ जोड कर भगवान् की उपासना करने लगे।

३१. तए ण समणे भगव महावीरे सिवस्स रायरिसिस्स तीसे य महतिमहालियाए जाव आणाए आराहए भवति।

[३१] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने शिवराजर्षि को और उस महती परिषद् को धर्मोपदेश दिया कि यावत्—"इस प्रकार पालन करने से जीव आज्ञा के आराधक होते है।"

३२. तए ण से सिवे रायरिसी समणस्स भगवतो महावीरस्स अतिय धम्म सोच्चा निसम्म जहा खंदओ (स. २ उ १ सु. ३४) जाव उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, उ० अ० २ सुबहु लोहीलोहकडाह जाव किढिणसकातियग एगते एडेइ, ए० २ सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेति, स० क० २ समण भगव महावीर एव जहेव उसभदत्ते (स. ९ उ. ३३ सु. १६) तहेव पव्वइओ, तहेव एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ, तहेव सव्व जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

[३२] तदनन्तर वे शिवराजर्षि श्रमण भगवान् महावीरस्वामी से धर्मोपदेश सुनकर और अवधारण कर, (शतक २, उ १, सू ३४ मे उल्लिखित) स्कन्दक की तरह, यावत् उत्तरपूर्वदिशा (ईशानकोण) मे गए और लोढी, लोह-कडाह यावत् छबडी सहित कावड आदि तापसोचित उपकरणो को एकान्त स्थान मे डाल दिया। फिर स्वयमेव पचमुष्टि लोच किया और श्रमण भगवान् महावीर के पास (श ९, उ ३३, सू १६ मे कथित) ऋषभदत्त की तरह प्रव्रज्या अगीकार की, तथैव ग्यारह अगशास्त्रो का अध्ययन किया और उसी प्रकार यावत् वे शिवराजर्षि समस्त दु खो से मुक्त हुए।

विवेचन—शिवराजर्षि द्वारा निर्ग्रन्थदीक्षा और मुक्तिप्राप्ति—प्रस्तुत तीन सूत्रो (३१-३२-३३) मे शिवराजर्षि से सम्बन्धित निम्नोक्त तथ्यो का निरूपण किया है—(१) भगवान् महावीर की महिमा जानकर अपने तापसोचित उपकरणो के साथ भगवान् के निकट गए। दर्शन, वन्दन-नमन और पर्युपासन किया। (२) धर्मोपदेश-श्रवण एव आज्ञाराधक बनने का विचार। (३) तापसोचित

उपकरण एक ओर डालकर पचमुष्टिक लोच करके भगवान् से निर्ग्रन्थप्रव्रज्याग्रहण एव (४) ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव तप की आराधना से मुक्तिप्राप्ति ।[1]

सिद्ध होने वाले जीवों का संहननादिनिरूपण

३३. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगव महावीरं वंदति, नमंसति, व० २ एव वयासी—जीवा णं भते ! सिज्झमाणा कयरम्मि संघयणे सिज्झंति ?

गोयमा ! वइरोसभणारायसघयणे सिज्झति एव जहेव उववातिए तहेव 'संघयणं संठाण उच्चत्तं आउयं च परिवसणा' एव सिद्धिगंडिया निरवसेसा भाणियव्वा जाव 'अव्वावाहं सोक्खं अणुहुती सासयं सिद्धा'।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। एक्कारसमे सए नवमो उद्देसो समत्तो ।। ११. ९ ।।

[३३ प्र] श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके भगवान् गौतम ने इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! सिद्ध होने वाले जीव किस सहनन से सिद्ध होते हैं ?'

[३३ उ] गौतम ! वे वज्रऋपभनाराचसहनन से सिद्ध होते हैं, इत्यादि औपपातिकसूत्र के अनुसार सहनन, सस्थान, उच्चत्व (अवगाहना), आयुष्य, परिवसन (निवास), इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धिगण्डिका तक, यावत् सिद्ध जीव अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं, यहाँ तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—सिद्धों के योग्य सहननादि निरूपण—नौवे उद्देशक के इस अन्तिम सूत्र मे सिद्ध होने वाले जीवो के योग्य सहनन का प्रतिपादन करके सस्थान, अवगाहना, आयुष्य और परिवसन आदि के लिए औपपातिकसूत्र का अतिदेश किया गया है । सिद्धो के सहनन आदि इस प्रकार हैं—

संहनन—वज्रऋषभनाराचसहनन वाले सिद्ध होते हैं ।

सस्थान—छह प्रकार के सस्थानो मे से किसी एक सस्थान से सिद्ध होते है ।

उच्चत्व—सिद्धो की (तीर्थंकरो की अपेक्षा) अवगाहना जघन्य सात रत्नि (मु डहाथ) प्रमाण और उत्कृष्ट ५०० धनुष होती है ।

आयुष्य—सिद्ध होने वाले जीव का आयुष्य जघन्य कुछ अधिक ८ वर्ष का, उत्कृष्ट पूर्वकोटि-प्रमाण होता है ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५२५-५२६

परिवसना (निवास)—सिद्ध होने वाले जीव सर्वार्थसिद्ध महाविमान के ऊपर की स्तूपिका के अग्रभाग मे १२ योजन ऊपर जाने के बाद ईषत्-प्राग्भारा नाम की पृथ्वी है, जो ४५ लाख योजन लम्बी-चौडी है, वर्ण मे अत्यन्त श्वेत है, अतिरम्य है, उसके ऊपर वाले योजन पर लोक का अन्त होता है। उक्त योजन के ऊपर वाले एक गाऊ (गव्यूति) के उपरितन १/६ भाग मे सिद्ध निवास करते है। इसके पश्चात् सारी सिद्धगण्डिका, यावत्—समस्त दु खो का छेदन करके जन्म-जरा-मरण के बन्धनो से विमुक्त, सिद्ध, शाश्वत एव अव्याबाध सुख का अनुभव करते है, यहाँ तक कहना चाहिए।[1]

□□

॥ ग्यारहवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१. (क) भगवती, अ. वृत्ति, पत्र ५२०-५२१।
(ख) औपपातिकसूत्र, सू ४३, पत्र ११२ (आगमोदय)

दसमो उद्देसओ : दसवाँ उद्देशक

लोग : लोक (के भेद-प्रभेद)

१. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से) यावत् इस प्रकार पूछा—

२. कतिविधे णं भते ! लोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, त जहा—दव्वलोए खेत्तलोए काललोए भावलोए ।

[२ प्र] भगवन् ! लोक कितने प्रकार का है ?

[२ उ] गौतम ! लोक चार प्रकार का कहा है। यथा—(१) द्रव्यलोक, (२) क्षेत्रलोक, (३) काललोक और (४) भावलोक ।

विवेचन—लोक और उसके मुख्य प्रकार—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय से व्याप्त सम्पूर्ण द्रव्यो के आधाररूप चौदह रज्जूपरिमित आकाशखण्ड को लोक कहते है। वह लोक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से मुख्यतया ४ प्रकार का है ।

द्रव्यलोक—द्रव्यरूप लोक द्रव्यलोक है। उसके दो भेद—आगमत , नोआगमत । जो लोक शब्द के अर्थ को जानता है, किन्तु उसमे उपयुक्त नही है, उसे आगमत द्रव्यलोक कहते हैं। **नोआगमत द्रव्यलोक** के तीन भेद है—ज्ञशरीर, भव्यशरीर, और तद्व्यतिरिक्त। जिस व्यक्ति ने पहले लोक शब्द का अर्थ जाना था, उसके मृत शरीर को **'ज्ञशरीर द्रव्यलोक'** कहते हैं। जिस प्रकार भविष्य मे, जिस घट मे मधु रखा जाएगा, उस घट को अभी से 'मधुघट' कहा जाता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति भविष्य मे लोक शब्द के अर्थ को जानेगा, उसके सचेतन शरीर को **'भव्यशरीर द्रव्यलोक'** कहते है। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो को **'ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यलोक'** कहते है ।

क्षेत्रलोक—क्षेत्ररूप लोक को क्षेत्रलोक कहते है। ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक्लोक मे जितने आकाशप्रदेश हैं, वे क्षेत्रलोक कहलाते है ।

काललोक—समयादि कालरूप लोक को काललोक कहते हैं। वह समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, सवत्सर, युग, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, परावर्त्त आदि के रूप मे अनेक प्रकार का है ।

भावलोक—भावरूप लोक दो प्रकार का है—आगमत , नोआगमत । **आगमतः भावलोक** वह है, जो लोक शब्द के अर्थ का ज्ञाता और उसमे उपयोग वाला है। **नोआगमतः भावलोक**—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक एव पारिणामिक तथा सान्निपातिक रूप से ६ प्रकार का है।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२३

३. खेत्तलोए णं भंते ! कतिविहे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पन्नत्ते, तं जहा—अहेलोयखेत्तलोए १ तिरियलोयखेत्तलोए २ उड्ढलोय-खेत्तलोए ३ ।

[३ प्र.] भगवन् ! क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ.] गौतम ! (वह) तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—१—अधोलोक-क्षेत्रलोक, २—तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक और ३—ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक ।

४. अहेलोयखेत्तलोए णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—रयणप्पभापुढविअहेलोयखेत्तलोए जाव अहेसत्तमपुढवि-अहेलोयखेत्तलोए ।

[४ प्र.] भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ?

[४ उ.] गौतम ! (वह) सात प्रकार का है यथा—रत्नप्रभापृथ्वी-अधोलोक-क्षेत्रलोक, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी-अधोलोक-क्षेत्रलोक ।

५. तिरियलोयखेत्तलोए णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जतिविधे पन्नत्ते, तं जहा—जंबुद्दीवतिरियलोयखेत्तलोए जाव सयंभुरमण-समुद्दतिरियलोयखेत्तलोए ।

[५ प्र.] भगवन् ! तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ.] गौतम ! (वह) असख्यात प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—जम्बूद्वीप-तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक, यावत् स्वयम्भूरमणसमुद्र-तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक ।

६. उड्ढलोगखेत्तलोए णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पण्णरसविधे पन्नत्ते, तं जहा—सोहम्मकप्पउड्ढलोगखेत्तलोए जाव अच्चुयउड्ढलोग० गेवेज्जविमाणउड्ढलोग० अणुत्तरविमाण० इसिपब्भारपुढविउड्ढलोगखेत्तलोए ।

[६ प्र.] भगवन् ! ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[६ उ.] गौतम ! (वह) पन्द्रह प्रकार का कहा गया है। यथा—(१-१२) सौधर्मकल्प-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक, यावत् अच्युतकल्प-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक, (१३) ग्रैवेयक विमान-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक, (१४) अनुत्तरविमान-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक और (१५) ईषत्प्राग्भारपृथ्वी-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक ।

विवेचन—त्रिविध क्षेत्रलोक-प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू ३ से ६ तक) मे ऊर्ध्वलोक, अधोलोक एव मध्यलोक के रूप मे त्रिविध क्षेत्रलोक के अनेक प्रभेद बतलाए गए है ।

लोक और अलोक के संस्थान की प्ररूपणा

७. अहेलोगखेत्तलोए णं भंते ! किंसंठिते पन्नत्ते ?

गोयमा ! तप्पागारसंठिए पन्नत्ते ।

[७ प्र] भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक का किस प्रकार का सस्थान (आकार) कहा गया है ?

[७ उ] गौतम ! वह त्रपा (तिपाई) के आकार का कहा गया है ।

८. तिरियलोगखेत्तलोए णं भते ! किंसंठिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! झल्लरिसंठिए पन्नत्ते ।

[८ प्र] भगवन् ! तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! वह झालर के आकार का कहा गया है ।

९. उड्ढलोगखेत्तलोगपुच्छा । उड्ढमुतिंगाकारसंठिए पन्नत्ते ।

[९ प्र] भगवन् ! ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक किस प्रकार के सस्थान (आकार) का है ?

[९ उ] गौतम ! (वह) ऊर्ध्वमृदग के आकार (सस्थान) का है ।

१०. लोए णं भंते ! किंसंठिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! सुपइट्ठगसंठिए लोए पन्नत्ते, तं जहा हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते जहा सत्तमसए पढमे उद्देसए (स. ७ उ. १ सु. ५) जाव अंतं करेति ।

[१० प्र] भगवन् ! लोक का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[१० उ] गौतम ! लोक सुप्रतिष्ठक (गराव—सकोरे) के आकार का है । यथा—वह नीचे विस्तीर्ण (चौडा) है, मध्य मे सक्षिप्त (संकीर्ण—सकडा) है, इत्यादि सातवे शतक के प्रथम उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए । यावत्—उस लोक को उत्पन्नज्ञान-दर्शन-धारक केवलज्ञानी जानते हैं इसके पश्चात् वे सिद्ध होते है, यावत् समस्त दु खो का अन्त करते हैं ।

११. अलोए णं भंते ! किंसंठिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! झुसिरगोलसंठिए पन्नत्ते ?

[११ प्र] भगवन् ! अलोक का सस्थान (आकार) कैसा है ?

[११ उ] गौतम ! अलोक का सस्थान पोले गोले के समान है ।

विवेचन—तीनो लोको, लोक एव अलोक का आकार—प्रस्तुत ५ सूत्रो (सू ७ से ११) मे अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक, लोक एव अलोक के आकार का निरूपण किया गया है ।

ऊर्ध्वलोक का आकार—खडी मृदग के समान है ।

लोक का आकार—गराव (सकोरे) जैसा है । अर्थात्—नीचे एक उलटा गराव रखा जाय, उसके ऊपर एक गराव सीधा रखा जाय, फिर उसके ऊपर एक गराव उलटा रखा जाए, इस प्रकार का जो आकार बनता है वह लोक का आकार है ।

लोक का प्रमाण—सुमेरु पर्वत के नीचे अष्टप्रदेशी रुचक है, उसके निचले प्रतर के नीचे नौ सौ योजन तक तिर्यग्लोक है, उसके आगे अध स्थित होने से अधोलोक है, जो सात रज्जू से कुछ अधिक है तथा रुचकापेक्षया नीचे और ऊपर ९००-९०० योजन तिरछा होने से तिर्यग्लोक है। तिर्यग्लोक के ऊपर देशोन सप्तरज्जु प्रमाण ऊर्ध्वभागवर्ती होने से ऊर्ध्वलोक कहलाता है। ऊर्ध्व और अधोदिशा मे कुल ऊँचाई १४ रज्जू है। ऊपर क्रमश घटते हुए ७ रज्जू की ऊँचाई पर विस्तार १ रज्जू है। फिर क्रमश वढकर ९½ से १०½ रज्जू तक की ऊँचाई पर विस्तार ५ रज्जू है। फिर क्रमश घट कर मूल से १४ रज्जू की ऊंचाई पर विस्तार १ रज्जू का है। यो कुल ऊँचाई १४ रज्जू होती है।

तीनो लोकों का नाम, परिणामो की अपेक्षा से—क्षेत्र के प्रभाव से जिस लोक मे द्रव्यो के प्राय अशुभ (अध) परिणाम होते है, इसलिए अधोलोक कहलाता है। मध्यम (न अतिशुभ, न अति-अशुभ) परिणाम होने से मध्य या तिर्यग्लोक कहलाता है तथा द्रव्यो का ऊर्ध्व—ऊँचे—शुभ परिणामो का वाहुल्य होने से ऊर्ध्वलोक कहलाता है।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—**तप्पागारसंठिए**—तिपाई के आकार का। **झल्लरिसंठिए**—झालर के आकार का। **उड्ढमुइग**—ऊर्ध्व मृदग। **सुपइट्ठ**—सुप्रतिष्ठक—शराव (सिकोरा) **विस्थिण्णे**—विस्तीर्ण। **संखित्ते**—सक्षिप्त। **झुसिर**—पोला।

अधोलोकादि में जीव-अजीवादि की प्ररूपणा—

१२. अहेलोगखेत्तलोए ण भते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा० ? एवं जहा इदा दिसा (स. १० उ. १ सु. ८) तहेव निरवसेस भाणियव्व जाव अद्धासमए।

[१२ प्र] भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक मे क्या जीव है, जीव के देश है, जीव के प्रदेश है ? अजीव है, अजीव के प्रदेश है ?

[१२ उ] गौतम ! जिस प्रकार दसवे शतक के प्रथम उद्देशक (सू ८) मे ऐन्द्री दिशा के विषय मे कहा, उसी प्रकार यहाँ भी समग्र वर्णन कहना चाहिए, यावत्—अद्धा-समय (काल) रूप है।

१३. तिरियलोगखेत्तलोए ण भते ! किं जीवा ?

एवं चेव।

[१३ प्र] भगवन् ! क्या तिर्यग्लोक मे जीव है ? इत्यादि प्रश्न।

[१३ उ] गौतम ! (इस विषय मे समस्त वर्णन) पूर्ववत् जानना चाहिए।

१४. एव उड्ढलोगखेत्तलोए वि। नवर अरूवी छव्विहा, अद्धासमओ नत्थि।

[१४] इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक के विषय मे भी जानना चाहिए, परन्तु इतना विशेष है कि ऊर्ध्वलोक मे अरूपी के छह भेद ही है, क्योकि वहाँ अद्धासमय नही है।

१५. लोए ण भते ! किं जीवा० ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२३ (ख) भगवती विवेचन, (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १९०२

जहा बितियसए अत्थिउद्देसए लोयागासे (स. २ उ. १० सु. ११), नवरं अरूवी सत्तविहा जाव अधम्मत्थिकायस्स पदेसा, नो आगासत्थिकाए, आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा, अद्धासमए। सेसं तं चेव।

[१५ प्र] भगवन्! क्या लोक मे जीव है? इत्यादि प्रश्न।

[१५ उ] गौतम! जिस प्रकार दूसरे शतक के दसवे (अस्ति) उद्देशक (सू ११) मे लोकाकाश के विषय मे जीवादि का कथन किया है, (उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।) विशेष इतना ही है कि यहाँ अरूपी के सात भेद कहने चाहिए, यावत् अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धा-समय। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए।

१६. अलोए णं भंते! किं जीवा० ?

एवं जहा अत्थिकायउद्देसए अलोगागासे (स. २ उ. १० सु. १२) तहेव निरवसेसं जाव अणंतभागूणे।

[१६ प्र] भगवन्! क्या अलोक मे जीव है? इत्यादि प्रश्न।

[१६ उ] गौतम! दूसरे शतक के दसवे अस्तिकाय उद्देशक (सू १२) मे जिस प्रकार अलोकाकाश के विषय मे कहा, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए, यावत् वह आकाश के अनन्तवे भाग न्यून है।

विवेचन—अधोलोक आदि मे जीव आदि का निरूपण—प्रस्तुत ५ सूत्रो (१२ से १६ तक) मे अधोलोक, तिर्यग्लोक, ऊर्ध्वलोक, लोक और अलोक मे जीवादि के अस्तित्व-नास्तित्व का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—अधोलोक और तिर्यग्लोक मे जीव, जीव के देश, प्रदेश तथा अजीव, अजीव के देश, प्रदेश और अद्धा-समय, ये ७ है, किन्तु ऊर्ध्वलोक मे सूर्य के प्रकाश से प्रकटित काल न होने से अद्धा-समयको छोड कर शेष ६ बोल है। लोक मे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनो अखण्ड होने से इन दोनो के देश नही है। इसलिए धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। लोक मे आकाशास्तिकाय सम्पूर्ण नही, किन्तु उसका एक भाग है। इसलिए कहा गया—आकाशास्तिकाय का देश तथा उसके प्रदेश है। लोक मे काल भी है।

अलोक मे एकमात्र अजीवद्रव्य का देशरूप अलोकाकाश है, वह भी अगुरुलघु है। वह अनन्त अगुरुलघु गुणो से सयुक्त आकाश के अनन्तवे भाग न्यून है। पूर्वोक्त सातो बोल अलोक मे नही है।[1]

अधोलोकादि के एक प्रदेश में जीवादि की प्ररूपणा—

१७. अहेलोगखेत्तलोगस्स णं भंते! एगम्मि आगासपएसे किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपएसा ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२४

गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि जीवपदेसा वि अजीवा वि अजीवदेसा वि अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा; अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसे, अथवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा; एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव अणिंदिएसु जाव अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियाण देसा। जे जीवपदेसा ते नियमं एगिंदियपएसा, अहवा एगिंदियपएसा य बेइंदियस्स पएसा, अहवा एगिंदियपएसा य बेइंदियाण य पएसा, एवं आदिल्लविरहिओ जाव पंचिंदिएसु, अणिंदिएसु तिय भंगो। जे अजीवा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—रूवी अजीवा य, अरूवी अजीवा य। रूवी तहेव। जे अरूवी अजीवा ते पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा—नो धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे १, धम्मत्थिकायस्स पदेसे २, एवं अधम्मत्थिकायस्स वि ३-४, अद्धासमए ५।

[१७ प्र] भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश मे क्या जीव हैं, जीव के देश है, जीव के प्रदेश हैं, अजीव है, अजीव के देश है या अजीव के प्रदेश है ?

[१७ उ] गौतम ! (वहाँ) जीव नही, किन्तु जीवो के देश हैं, जीवो के प्रदेश भी है, तथा अजीव है, अजीवो के देश है और अजीवो के प्रदेश भी है। इनमे जो जीवो के देश है, वे नियम से (१) एकेन्द्रिय जीवो के देश हैं, (२) अथवा एकेन्द्रियो के देश और द्वीन्द्रिय जीव का एक देश है, (३) अथवा एकेन्द्रिय जीवो के देश और द्वीन्द्रिय जीव के देश है, इसी प्रकार मध्यम भग-रहित (एकेन्द्रिय जीवो के देश और द्वीन्द्रिय जीव के देश—इस मध्यम भग से रहित), शेष भग, यावत् अनिन्द्रिय तक जानना चाहिए, यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवो के देश और अनिन्द्रिय जीवो के देश हैं। इनमे जो जीवो के प्रदेश है, वे नियम से एकेन्द्रिय जीवो के प्रदेश है, अथवा एकेन्द्रिय जीवो के प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय जीव के प्रदेश है, अथवा एकेन्द्रिय जीवो का प्रदेश और द्वीन्द्रिय जीवो के प्रदेश हैं। इसी प्रकार यावत् पचेन्द्रिय तक प्रथम भग को छोड कर दो-दो भग कहने चाहिए; अनिन्द्रिय मे तीनो भग कहने चाहिए।

उनमे जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के है यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीवो का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। अरूपी अजीव पाच प्रकार के कहे गए है—यथा (१) धर्मास्तिकाय का देश, (२) धर्मास्तिकाय का प्रदेश, (३) अधर्मास्तिकाय का देश, (४) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश और (५) अद्धा-समय।

१८. तिरियलोगखेत्तलोगस्स ण भंते ! एगम्मि आगासपदेसे किं जीवा० ?

एवं जहा अहेलोगखेत्तलोगस्स तहेव।

[१८ प्र] भगवन् ! क्या तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश मे जीव हैं, इत्यादि प्रश्न।

[१८ उ.] गौतम ! जिस प्रकार अधोलोक-क्षेत्रलोक के विषय मे कहा है ? उसी प्रकार तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक के विषय मे समझ लेना चाहिए।

१९. एवं उड्ढलोगखेत्तलोगस्स वि, नवरं अद्धासमओ नत्थि, अरूवी चउव्विहा।

[१९] इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश के विषय मे भी जानना चाहिए। विशेष इतना है कि वहाँ अद्धा-समय नही है, (इस कारण) वहाँ चार प्रकार के अरूपी अजीव है।

२०. लोगस्स जहा अहेलोगखेत्तलोगस्स एगम्मि आगासपदेसे।

[२०] लोक के एक आकाशप्रदेश के विषय मे भी अधोलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश के कथन के समान जानना चाहिए।

२१. अलोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे० पुच्छा।

गोयमा ! नो जीवा, नो जीवदेसा, तं चेव जाव अणतेहिं अगरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासस्स अणंतभागूणे।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या अलोक के एक आकाशप्रदेश मे जीव है ? इत्यादि प्रश्न।

[२१ उ] गौतम ! वहाँ जीव नही है, जीवो के देश नही हैं, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् अलोक अनन्त अगुरुलघुगुणो से सयुक्त है और सर्वाकाश के अनन्तवे भाग न्यून है।

विवेचन—अधोलोकादि के एक आकाशप्रदेश में जीवादि की प्ररूपणा—प्रस्तुत ५ सूत्रो (१७ से २१ तक) मे अधोलोक, तिर्यग्लोक, ऊर्ध्वलोक, लोक और अलोक के एक आकाशप्रदेश मे जीव, जीव के देश-प्रदेश, अजीव, अजीव के देश-प्रदेश आदि के विषय मे प्ररूपणा की गई है।[1]

त्रिविध क्षेत्रलोक-अलोक में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से जीवाजीवद्रव्य

२२. [१] दव्वओ णं अहेलोगखेत्तलोए अणंता जीवदव्वा, अणंता अजीवदव्वा, अणता जीवाजीवदव्वा।

[२२-१] द्रव्य से—अधोलोक-क्षेत्रलोक मे अनन्त जीवद्रव्य है, अनन्त अजीवद्रव्य है और अनन्त जीवाजीवद्रव्य हैं।

[२] एवं तिरियलोयखेत्तलोए वि।

[२२-२] इसी प्रकार तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक मे भी जानना चाहिए।

[३] एवं उड्ढलोयखेत्तलोए वि।

[२२-३] इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक मे भी जानना चाहिए।

२३. दव्वओ ण अलोए णेवत्थि जीवदव्वा, नेवत्थि अजीवदव्वा, नेवत्थि जीवाजीवदव्वा, एगे अजीवदव्वस्स देसे जाव सव्वागासअणतभागूणे।

[२३] द्रव्य से अलोक मे जीवद्रव्य नही, अजीवद्रव्य नही और जीवाजीवद्रव्य भी नही, किन्तु अजीवद्रव्य का एक देश है, यावत् सर्वाकाश के अनन्तवे भाग न्यून है।

---

1 वियाहपण्णत्ति (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५२८-५२९

२८. [१] कालओ ण अहेलोयखेत्तलोए न कदायि नासि जाव निच्चे ।

[२४-१] काल से—अधोलोक-क्षेत्रलोक किसी समय नही था—ऐसा नही, यावत् वह नित्य है ।

[२] एव जाव अलोगे ।

[२८-२] इसी प्रकार यावत् अलोक के विषय मे भी कहना चाहिए ।

२५ भावओ ण अहेलोगखेत्तलोए अणता वण्णपज्जवा जहा खदए (स. २ उ. १ सु. २४ [१]) जाव अणता अगरुयलहुयपज्जवा ।

[२५-१] भाव मे—अधोलोक-क्षेत्रलोक मे 'अनन्तवर्णपर्याय' है, इत्यादि, द्वितीय शतक के प्रथम उद्देशक (सू २८-१) मे वर्णित स्कन्दक-प्रकरण के अनुसार जानना चाहिए, यावत् अनन्त अगुरुलघु-पर्याय है ।

[२] एव जाव लोए ।

[२५-२] इसी प्रकार यावत् लोक तक जानना चाहिए ।

[३] भावओ ण अलोए नेवत्थि वण्णपज्जवा जाव नेवत्थि अगरुयलहुयपज्जवा, एगे अजीव-दव्वदेसे जाव अणतभागूणे ।

[२५-३] भाव मे—अलोक मे वर्ण-पर्याय नही, यावत् अगुरुलघु-पर्याय नही है, परन्तु एक अजीवद्रव्य का देश है, यावत् वह सर्वाकाश के अनन्तवे भाग कम है ।

विवेचन—द्रव्य, काल और भाव से लोकालोक-प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२२ से २४ तक) मे द्रव्य, काल और भाव की अपेक्षा से लोक और अलोक की प्ररूपणा की गई है ।

लोक की विशालता की प्ररूपणा

२६. लोए ण भते ! केमहालए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अय णं जवुद्दीवे दीवे सव्वदीव० जाव[1] परिक्खेवेण । तेण कालेण तेण समएण छ देवा महिड्ढीया जाव महेसक्खा जवुद्दीवे दीवे मदरे पव्वए मदरचूलियं सव्वओ समता सपरिक्खित्ताणं चिट्ठेज्जा । अहे णं चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ चत्तारि वलिपिंडे गहाय जवुद्दीवस्स दीवस्स चउसु वि दिसासु वहियाभिमुहीओ ठिच्चा ते चत्तारि वलिपिंडे जमगसमग वहियाभिमुहे पक्खिवेज्जा । पभू ण गोयमा ! तओ एगमेगे देवे ते चत्तारि वलिपिंडे धरणितलमसपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए । ते ण गोयमा ! देवा ताए उक्किट्ठाए जाव[2] देवगतीए एगे देवे पुरत्थाभिमुहे पयाते, एव दाहिणाभिमुहे,

१ 'जाव' पद सूचित पाठ—"सव्वदीवसमुद्दाण अब्भतरए सव्वखुड्डए वट्टे तेल्लापूयसठाणसठिए वट्टे रहचक्क-वालसठाणसठिए वट्टे पुक्खरकण्णियासठाणसठिए वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिए एक्क जोयणसयसहस्स आयाम-विक्खभेण तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस य महस्साइ दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीस च धणुसय तेरस अगुलाइ अद्धगुल च किंचि विसेसाहिय ति" । —भगवती अ वृ, पत्र ५२७

२ 'जाव' पद सूचित पाठ—"तुरियाए चवलाए चडाए सीहाए उद्धुयाए जयणाए छेयाए दिव्वाए" ।
—भग अ वृ, पत्र ५२७

एवं पच्चत्थाभिमुहे, एव उत्तराभिमुहे, एव उड्ढाभिमुहे, एगे देवे अहोभिमुहे पयाते। तेणं कालेणं तेण समएण वाससहस्साउए दारए पयाए। तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति, णो चेव ण ते देवा लोगत सपाउणंति। तए ण तस्स दारगस्स आउए पहीणे भवति, णो चेव ण जाव संपाउणति। तए णं तस्स दारगस्स अट्ठिमिजा पहीणा भवति, णो चेव ण ते देवा लोगतं सपाउणति। तए ण तस्स दारगस्स आसत्तमे वि कुलवसे पहीणे भवति, नो चेव ण ते देवा लोगंत सपाउणति। तए ण तस्स दारगस्स नाम-गोते वि पहीणे भवति, नो चेव ण ते देवा लोगतं संपाउणति।

'तेसि ण भते! देवाण किं गए बहुए, अगए बहुए?'

'गोयमा! गए बहुए, नो अगए बहुए, गयाओ से अगए असंखेज्जइभागे, अगयाओ से गए असखेज्जगुणे। लोए ण गोतमा! एमहालए पन्नत्ते।'

[२६ प्र] भगवन्! लोक कितना बडा (महान्) कहा गया है?

[२६ उ] गौतम! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप, समस्त द्वीप-समुद्रो के मध्य मे है, यावत् इसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है।

(लोक की विशालता के लिए कल्पना करो कि—) किसी काल और किसी समय महर्द्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न छह देव, मन्दर (मेरु) पर्वत पर मन्दर की चूलिका के चारो ओर खडे रहे और नीचे चार दिशाकुमारी देवियाँ (महत्तरिकाएँ) चार बलिपिण्ड लेकर जम्बूद्वीप नामक द्वीप की (जगती पर) चारो दिशाओ मे बाहर की ओर मुख करके खडी रहे। फिर वे चारो देवियाँ एक साथ चारो बलिपिण्डो को बाहर की ओर फेंके। हे गौतम! उसी समय उन देवो मे से एक-एक (प्रत्येक) देव, चारो बलिपिण्डो को पृथ्वीतल पर पहुँचने से पहले ही, शीघ्र ग्रहण करने मे समर्थ हो ऐसे उन देवो मे से एक देव, हे गौतम! उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से पूर्व मे जाए, एक देव दक्षिण-दिशा की ओर जाए, इसी प्रकार एक देव पश्चिम की ओर, एक उत्तर की ओर, एक देव ऊर्ध्वदिशा मे और एक देव अधोदिशा मे जाए। उसी दिन और उसी समय (एक गृहस्थ के) एक हजार वर्ष की आयु वाले एक बालक ने जन्म लिया। तदनन्तर उस बालक के माता-पिता चल बसे। (उतने समय मे भी) वे देव, लोक का अन्त प्राप्त नही कर सकते। उसके बाद वह बालक भी आयुष्य पूर्ण होने पर कालधर्म को प्राप्त हो गया। उतने समय मे भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त न कर सके। उस बालक के हड्डी, मज्जा भी नष्ट हो गई, तब भी वे देव, लोक का अन्त पा नही सके। फिर उस बालक की सात पीढी तक का कुलवश नष्ट हो गया तब भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त न कर सके। तत्पश्चात् उस बालक के नाम-गोत्र भी नष्ट हो गए, उतने समय तक (चलते रहने पर) भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त न कर सके।

[प्र] भगवन्! उन देवो का गत (गया-उल्लघन किया हुआ) क्षेत्र अधिक है या अगत (नही गया—चला हुआ) क्षेत्र अधिक है?

[उ] हे गौतम! (उन देवो का) गतक्षेत्र अधिक है, अगतक्षेत्र गतक्षेत्र के असख्यातवे भाग है। अगतक्षेत्र से गतक्षेत्र असख्यातगुणा है। हे गौतम! लोक इतना बडा (महान्) है।

विवेचन—लोक की विशालता का रूपक द्वारा निरूपण—प्रस्तुत २६ वे सूत्र मे भगवान् ने लोक की विशालता बताने के लिए असत्कल्पना मे रूपक प्रस्तुत किया है।

शका-समाधान—यह शका हो सकती है कि मेरुपर्वत की चूलिका से चारो दिशाओ मे लोक का विस्तार आधा-आधा रज्जुप्रमाण है। ऊर्ध्वलोक मे किंचित् न्यून सात रज्जु और अधोलोक मे सात रज्जु से कुछ अधिक है। ऐसी स्थिति मे वे सभी देव छहो दिशाओ मे एक समान त्वरित गति से जाते है, तब फिर छहो दिशाओ मे गतक्षेत्र से अगतक्षेत्र असख्यातवे भाग तथा अगत से गतक्षेत्र असख्यात गुणा कैसे बतलाया गया है, क्योकि चारो दिशाओ की अपेक्षा ऊर्ध्वदिशा मे क्षेत्रपरिमाण की विषमता है? इस शका का समाधान यह है कि यहाँ घनकृत (वर्गीकृत) लोक की विवक्षा मे यह रूपक कल्पित किया गया है। इसलिए कोई आपत्ति नहीं। मेरुपर्वत को मध्य मे रखने से साढे तीन-साढे तीन रज्जु रह जाता है।

[प्र] पूर्वोक्त तीव्र दिव्य देवगति से गमन करते हुए वे देव जब उतने लम्बे समय तक मे लोक का छोर नही प्राप्त कर सकते, तब तीर्थकर भगवान् के जन्मकल्याणादि मे ठेठ अच्युत देवलोक तक से देव यहाँ शीघ्र कैसे आ सकते है, क्योकि क्षेत्र बहुत लम्बा है और अवतरण-काल बहुत ही अल्प है?

[उ] इसका समाधान यह है कि तीर्थंकर भगवान् के जन्मकल्याणादि मे देवो के आने की गति शीघ्रतम है। इस प्रकरण मे बताई हुई गति मन्दतर है।[1]

अलोक की विशालता का निरूपण

२७. अलोए ण भंते! केमहालय पन्नत्ते?

गोयमा! अय ण समयखेत्ते पणयालीस जोयणसयसहस्साइ आयामविक्खभेणं जहा खदए (स २ उ. १ सु २४ [३]) जाव परिक्खेवेण। तेण कालेण तेण समएण दस देवा महिड्ढीया तहेव जाव सपरिक्खित्ताण चिट्ठेज्जा, अहे ण अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ अट्ठ बलिपिडे गहाय माणुसुत्तर-पव्वयस्स चउसु वि दिसासु चउसु वि विदिसासु बहियाभिमुहीओ ठिच्चा बलिपिडे जमगसमग बहिया-भिमुहीओ पक्खिवेज्जा। पभू ण गोयमा! तओ एगमेगे देवे ते अट्ठ बलिपिडे धरणितलमसपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए। ते ण गोयमा! देवा ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए लोगते ठिच्चा असब्भावपट्ठवणाए एगे देवे पुरत्थाभिमुहे पयाए, एगे देवे दाहिणपुरत्थाभिमुहे पयाते, एव जाव उत्तर-पुरत्थाभिमुहे, एगे देवे उड्ढाभिमुहे, एगे देवे अहोभिमुहे पयाए। तेण कालेण तेण समएण वाससयसह-स्साउए दारए पयाए। तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति, नो चेव ण ते देवा अलोयतं सपाउणति।' तं चेव जाव 'तेसि ण देवाण किं गए बहुए, अगए बहुए?'

'गोयमा! नो गते बहुए, अगते बहुए, गयाओ से अगए अणतगुणे, अगयाओ से गए अणत-भागे। अलोए णं गोयमा! एमहालए पन्नत्ते।'

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२७

[२७ प्र] भगवन् ! अलोक कितना बडा कहा गया है ?

[२७ उ] गौतम ! यह जो समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) है, वह ४५ लाख योजन लम्बा-चौडा है, इत्यादि सब (श २, उ १, सू २४-३ वर्णित) स्कन्दक प्रकरण के अनुसार जानना चाहिए, यावत् वह (पूर्वोक्तवत्) परिधियुक्त है।

(अलोक की विशालता बताने के लिए मान लो—) किसी काल और किसी समय मे, दस महर्द्धिक देव, इस मनुष्यलोक को चारो ओर से घेर कर खड़े हो। उनके नीचे आठ दिशाकुमारियाँ, आठ वलिपिण्ड लेकर मानुषोत्तर पर्वत की चारो दिशाओ और चारो विदिशाओ मे बाह्याभिमुख होकर खडी रहे। तत्पश्चात् वे उन आठो बलिपिण्डो को एक साथ मानुषोत्तर पर्वत के बाहर की ओर फेंके। तब उन खडे हुए देवो मे से प्रत्येक देव उन बलिपिण्डो को धरती पर पहुँचने से पूर्व शीघ्र ही ग्रहण करने मे समर्थ हो, ऐसी शीघ्र, उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति द्वारा वे दसो देव, लोक के अन्त मे खडे रह कर उनमे से एक देव पूर्व दिशा की ओर जाए, एक देव दक्षिणपूर्व की ओर जाए, इसी प्रकार यावत् एक देव उत्तरपूर्व की ओर जाए, एक देव ऊर्ध्वदिशा की ओर जाए और एक देव अधोदिशा मे जाए (यद्यपि यह असद्भूतार्थ कल्पना है, जो सभव नही)। उस काल और उसी समय मे एक गृहपति के घर मे एक बालक का जन्म हुआ हो, जो कि एक लाख वर्ष की आयु वाला हो। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता का देहावसान हुआ, इतने समय मे भी देव अलोक का अन्त नही प्राप्त कर सके। तत्पश्चात् उस बालक का भी देहान्त हो गया। उसकी अस्थि और मज्जा भी विनष्ट हो गई और उसकी सात पीढियो के बाद वह कुल-वश भी नष्ट हो गया तथा उसके नाम-गोत्र भी समाप्त हो गए। इतने लम्बे समय तक चलते रहने पर भी वे देव अलोक के अन्त को प्राप्त नहीं कर सकते।

[प्र.] भगवन् ! उन देवो का गतक्षेत्र अधिक है, या अगतक्षेत्र अधिक है ?

[उ] गौतम ! वहाँ गतक्षेत्र बहुत नही, अगतक्षेत्र ही बहुत है। गतक्षेत्र मे अगतक्षेत्र अनन्त-गुणा है। अगतक्षेत्र से गतक्षेत्र अनन्तवे भाग है। हे गौतम ! अलोक इतना बडा है।

विवेचन—अलोक की विशालता का माप—प्रस्तुत २७ वे सूत्र मे अलोक की विशालता का माप एक रूपक द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

आकाशप्रदेश पर परस्पर-सम्बद्ध जीवों का निराबाध अवस्थान

२८. [१] लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे जे एगिंदियपएसा जाव पंचिंदियपदेसा अणिंदियपएसा अन्नमन्नबद्धा जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति, अत्थि णं भंते ! अन्नमन्नस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएंति, छविच्छेदं वा करेंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[२८-१ प्र] भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश पर एकेन्द्रिय जीवो के जो प्रदेश हैं, यावत् पचेन्द्रिय जीवो के और अनिन्द्रिय जीवो के जो प्रदेश हैं, क्या वे सभी एक दूसरे के साथ बद्ध, हैं, अन्योन्य स्पृष्ट है यावत् परस्पर-सम्बद्ध है ? भगवन् ! क्या वे परस्पर एक दूसरे को आबाधा (पीडा) और व्याबाधा (विशेष पीड़ा) उत्पन्न करते है ? या क्या वे उनके अवयवो का छेदन करते हैं ?

[२८-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ लोगस्स ण एगम्मि आगासपएसे जे एगिंदियपएसा जाव चिट्ठंति नत्थि ण ते अन्नमन्नस्स किंचि आवाह वा जाव करेंति ?

गोयमा ! जहानामए नट्टिया सिया सिंगारागारचारुवेसा जाव[1] कलिया रगट्ठाणसि जणसया-उलंसि जणसयसहस्साउलसि बत्तीसतिविधस्स नट्टस्स अन्नयर नट्टविहिं उवदसेज्जा। ते नूण गोयमा ! ते पेच्छगा त नट्टिय अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समता समभिलोएंति ?

'हंता, समभिलोएंति।'

ताओ णं गोयमा ! दिट्ठीओ तसि नट्टियसि सव्वओ समता सन्निवडियाओ ?

'हंता, सन्निवडियाओ।'

अत्थि ण गोयमा ! ताओ दिट्ठीओ तीसे नट्टियाए किंचि आवाह वा वावाह वा उप्पाएंति, छविच्छेद वा करेंति ?

'णो इणट्ठे समट्ठे।' सा वा नट्टिया तासिं दिट्ठीण किंचि आवाह वा वावाह वा उप्पाएति, छविच्छेद वा करेइ ?

'णो इणट्ठे समट्ठे।'

ताओ वा दिट्ठीओ अन्नमन्नाए दिट्ठीए किंचि आवाह वा वावाह वा उप्पाएंति, छविच्छेद वा करेंति ?

'णो इणट्ठे समट्ठे।'

से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चति त चेव जाव छविच्छेद वा न करेंति।

[२८-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा है कि लोक के एक आकाशप्रदेश मे एकेन्द्रि-यादि जीवप्रदेश परस्पर बद्ध यावत् सम्बद्ध है, फिर भी वे एक दूसरे को बाधा या व्याबाधा नही पहुचाते ? अथवा अवयवो का छेदन नही करते ?

[२८-२ उ] गौतम ! जिस प्रकार कोई शृ गार का घर एव उत्तम वेष वाली यावत् सुन्दर गति, हास, भाषण, चेष्टा, विलास, ललित सलाप निपुण, युक्त उपचार से कलित नर्त्तकी सैकडो और लाखो व्यक्तियो से परिपूर्ण रगस्थली मे बत्तीस प्रकार के नाटचो मे से कोई एक नाटच दिखाती है, तो—

[प्र] हे गौतम ! वे प्रेक्षकगण (दर्शक) उस नर्त्तकी को अनिमेष दृष्टि से चारो ओर से देखते न है ?

---

१ 'जाव' पद सूचित पाठ—"सगयगयहसियभणियचिट्ठियविलाससललियसलावनिउणजुत्तोवयारकलिय त्ति"।
—भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२७

[उ] हाँ, भगवन् ! देखते है ।

[प्र] गौतम ! उन (दर्शको) की दृष्टियाँ चारो ओर से उस नर्तकी पर पडती हैं न ?

[उ] हाँ, भगवन् ! पडती है ।

[प्र] हे गौतम ! क्या उन दर्शको की दृष्टियाँ उस नर्तकी को किसी प्रकार की (किंचित् भी) थोडी या ज्यादा पीडा पहुँचाती है ? या उसके अवयव का छेदन करती है ?

[उ] भगवन् ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही ।

[प्र] गौतम ! क्या वह नर्तकी दर्शको की उन दृष्टियो को कुछ भी बाधा-पीडा पहुँचाती है या उनका अवयव-छेदन करती है ?

[उ] भगवन् ! यह अर्थ भी समर्थ नही है ।

[प्र] गौतम ! क्या (दर्शको की) वे दृष्टियाँ परस्पर एक दूसरे को किंचित् भी बाधा या पीडा उत्पन्न करती है ? या उनके अवयव का छेदन करती है ?

[उ] भगवन् ! यह अर्थ भी समर्थ नही ।

हे गौतम ! इसी कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि जीवो के आत्मप्रदेश परस्पर बद्ध, स्पृष्ट और यावत् सम्बद्ध होने पर भी आबाधा या व्याबाधा उत्पन्न नही करते और न ही अवयवो का छेदन करते है ।

विवेचन—नर्तकी के दृष्टान्त से जीवो के आत्मप्रदेशो की निराबाध सम्बद्धता-प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (२८) मे नर्तकी के दृष्टान्त द्वारा एक आकाशप्रदेश मे एकेन्द्रियादि जीवो के आत्मप्रदेशो की सम्बद्धता या अवयवछेदन के अभाव का निरूपण किया गया है ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—**आबाह**—आबाधा—थोडी पीडा । **वाबाह**—व्याबाधा—विशेष पीडा । **छविच्छेद**—अवयवो का छेदन । **अन्नमन्नबद्धा**—परस्पर बद्ध । **अण्णमण्णपुट्ठा**—परस्पर स्पृष्ट । **अन्नमन्नघडत्ताए**—परस्पर सम्बद्ध । **नट्टिया**—नर्त्तकी । **सिंगारागारचारुवेसा**—शृगार का घर और सुन्दर वेष वाली । **जणसयाउलंसि जणसयसहस्साउलंसि**—सैकडो मनुष्यो से आकुल (व्याप्त) तथा लाखो मनुष्यो से व्याप्त । **सन्निवडियाओ**—पडती हैं । **पेच्छगा**—प्रेक्षक—दर्शक । **उप्पाएंति**—उत्पन्न करती हैं ।[2]

बत्तीसतिविधस्स नट्टस्स : व्याख्या—बत्तीस प्रकार के नाटयो मे से । इन बत्तीस प्रकार के नाटयो मे से ईहामृग, ऋषभ, तुरग, नर, मकर, विहग, व्याल, किन्नर आदि के भक्तिचित्र नाम का एक नाट्य है । इसी प्रकार के अन्य इकतीस प्रकार के नाट्य राजप्रश्नीयसूत्र मे किये हुए वर्णन के अनुसार जान लेने चाहिए ।[3]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५३१-५३२

२ भगवती विवेचन, भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १९१२

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५२७

एक आकाशप्रदेश में जघन्य-उत्कृष्ट जीवप्रदेशो एवं सर्व जीवो का अल्पबहुत्व

२९. लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे जहन्नपदे जीवपदेसाण, उक्कोसपदे जीवपदेसाण सव्वजीवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा लोगस्स एगम्मि आगासपदेसे जहन्नपदे जीवपदेसा, सव्वजीवा असंखेज्जगुणा, उक्कोसपदे जीवपदेसा विसेसाहिया ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ एक्कारसमे सए दसमो उद्देसओ समत्तो ॥ ११ १० ॥

[२९ प्र] भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश पर जघन्यपद मे रहे हुए जीवप्रदेशो, उत्कृष्ट पद मे रहे हुए जीवप्रदेशो और समस्त जीवो मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[२९ उ] गौतम ! लोक के एक आकाशप्रदेश पर जघन्यपद मे रहे हुए जीवप्रदेश सबसे थोडे है, उनमे सर्वजीव असख्यातगुणे है, उनसे (एक आकाशप्रदेश पर) उत्कृष्ट पद मे रहे हुए जीव-प्रदेश विशेषाधिक है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—जीवप्रदेशो और सर्वजीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत २९ वे सूत्र मे भगवान् ने लोक के एक आकाशप्रदेश पर जघन्य एव उत्कृष्ट पद मे रहे हुए जीवप्रदेशो तथा सर्वजीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया है ।

☐

॥ ग्यारहवा शतक दसवा उद्देशक समाप्त ॥

एक्कारसमो उद्देसओ : ग्यारहवाँ उद्देशक

काल : काल (आदि से सम्बन्धित चर्चा)

१. तेण कालेणं तेण समएण वाणियग्गामे नाम नगरे होत्था, वण्णओ। दूतिपलासए चेतिए, वण्णओ जाव पुढविसिलावट्टओ।

[१] उस काल और उस समय मे वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था। उसका वर्णन करना चाहिए यावत् उसमे एक पृथ्वी-शिलापट्ट था।

२. तत्थ णं वाणियग्गामे नगरे सुदसणे नाम सेट्ठी परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूते समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।

[२] उस वाणिज्यग्राम नगर मे सुदर्शन नामक श्रेष्ठी रहता था। वह आढ्य यावत् अपरिभूत था। वह जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता, श्रमणोपासक होकर यावत् विचरण करता था।

३. सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासति।

[३] (एक बार) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

४. तए ण सुदंसणे सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाते कय जाव पायच्छित्ते सव्वालकारविभूसिए सातो गिहाओ पडिनिक्खमति, सातो गिहाओ प० २ सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेण पायविहारचारेण महया पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते वाणियग्गाम नगर मज्झमज्झेणं निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव दूतिपलासए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ समणं भगवं महावीरं पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, तं जहा—सचित्ताण दव्वाण जहा उसभदत्तो (स. ९ उ. ३३ सु. ११) जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति।

[४] तत्पश्चात् वह सुदर्शन श्रेष्ठी इस बात (भगवान् के पदार्पण) को सुन कर अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। उसने स्नानादि किया, यावत् प्रायश्चित्त करके समस्त वस्त्रालकारो से विभूषित हो कर अपने घर से निकला। फिर कोरट-पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण करके अनेक पुरुषवर्ग से परिवृत हो कर, पैदल चल कर वाणिज्यग्राम नगर के बीचोबीच हो कर निकला और जहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया। फिर (श ९ उ ३३ सू ११ मे) ऋषभदत्त-प्रकरण मे जैसा कहा गया है, तदनुसार सचित्त द्रव्यो का त्याग आदि पाच अभिगमपूर्वक वह सुदर्शन श्रेष्ठी भी, श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख गया, यावत् तीन प्रकार से भगवान् की पर्युपासना करने लगा।

५. तए ण समणे भगव महावीरे सुदंसणस्स सेट्ठिस्स तीसे य महतिमहालियाए जाव आराहए भवति।

[५] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने सुदर्शन श्रेष्ठी को और उस विशाल परिषद् को धर्मोपदेश दिया यावत् वह आराधक हुआ।

६. तए ण से सुदसणे सेट्ठी समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियं धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता एव वदासी—

[६] फिर वह सुदर्शन श्रेष्ठी श्रमण भगवान् महावीर से धर्मकथा सुन कर एव हृदय मे अवधारण करके अतीव हृष्ट-तुष्ट हुआ। उसने खडे हो कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार प्रदक्षिणा की और वन्दना-नमस्कार करके पूछा—

विवेचन—सुदर्शन श्रमणोपासक : भगवान् की सेवा मे—प्रस्तुत ६ सूत्रों (१ से ६ तक) मे वाणिज्यग्राम निवासी सुदर्शन श्रेष्ठी का परिचय, भगवान् का वाणिज्यग्राम मे पदार्पण, सुदर्शन श्रेष्ठी का विधिपूर्वक भगवान् की सेवा मे गमन, धर्मश्रवण एव प्रश्न पूछने की उत्सुकता आदि का वर्णन है।[1]

काल और उसके चार प्रकार

७ कतिविधे ण भते ! काले पन्नत्ते ?

सुदसणा ! चउव्विहे काले पन्नत्ते, तं जहा—पमाणकाले १ अहाउनिव्वत्तिकाले २ मरणकाले ३ अद्धाकाले ४।

[७ प्र] भगवन् ! काल कितने प्रकार का कहा गया है ?

[७ उ] हे सुदर्शन ! काल चार प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) प्रमाणकाल, (२) यथायुर्निवृत्ति काल, (३) मरणकाल और (४) अद्धाकाल।

विवेचन—काल के प्रकार—प्रस्तुत सप्तम सूत्र मे काल के मुख्य चार भेदो की प्ररूपणा की गई है। इनके लक्षण आगे बतलाए जाएँगे।

प्रमाणकालप्ररूपणा

८. से किं त पमाणकाले ?

पमाणकाले दुविहे पन्नत्ते, त जहा—दिवसप्पमाणकाले य १ रत्तिप्पमाणकाले य २। चउपोरिसिए दिवसे, चउपोरिसिया राती भवति। उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति। जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५३३

[८ प्र.] भगवन् ! प्रमाणकाल क्या है ?

[८ उ] सुदर्शन ! प्रमाणकाल दो प्रकार का कहा गया है। यथा—दिवसप्रमाणकाल और रात्रि-प्रमाणकाल। चार पौरुषी (प्रहर) का दिवस होता है और चार पौरुषी (प्रहर) की रात्रि होती है। दिवस और रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढे चार मुहूर्त्त की होती है, तथा दिवस और रात्रि की जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है।

९. जदा ण भते ! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेण परिहायमाणी परिहायमाणी जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति ? जदा ण जहन्निया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति तदा ण कतिभागमुहुत्तभागेण परिवड्ढमाणी परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपचममुहुत्ता दिवसस्स वा रातीए वा पोरिसी भवइ ?

सुदंसणा ! जदा णं उक्कोसिया अद्धपचममुहुत्ता दिवसस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति तदा ण बावीससयभागमुहुत्तभागेणं परिहायमाणी परिहायमाणी जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति। जदा वा जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति तदा ण बावीस-सयभागमुहुत्तभागेणं परिवड्ढमाणी परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपचममुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति।

[९ प्र] भगवन् ! जब दिवस की या रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढे चार मुहूर्त्त की होती है, तब उस मुहूर्त्त का कितना भाग घटते-घटते जघन्य तीन मुहूर्त्त की दिवस और रात्रि की पौरुषी होती है ? और जब दिवस और रात्रि की पौरुषी जघन्य तीन मुहूर्त्त की होती है, तब मूहूर्त्त का कितना भाग बढते-बढते उत्कृष्ट साढे चार मुहूर्त्त की पौरुषी होती है ?

[९ उ] हे सुदर्शन ! जब दिवस और रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढे चार मुहूर्त्त की होती है, तब मुहूर्त्त का एक सौ बाईसवाँ भाग घटते-घटते जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है, और जब जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है, तब मुहूर्त्त का एक सौ बाईसवाँ भाग बढते-बढते उत्कृष्ट पौरुषी साढे चार मुहूर्त्त की होती है।

१०. कदा णं भते ! उक्कोसिआ अद्धपचममुहुत्ता दिवसस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति ? कदा वा जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवति ?

सुदसणा ! जदा णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राती भवति तदा ण उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवस्स पोरिसी भवति, जहन्नियातिमुहुत्ता रातीय पोरिसी भवति। जदा वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं मुक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता रातीए पोरिसी भवइ, जहन्निया तिमुहुत्ता दिवस्स पोरिसी भवइ।

[१० प्र,] भगवन् ! दिवस और रात्रि की उत्कृष्ट साढे चार मुहूर्त्त की पौरुषी कब होती है और जघन्य तीन मुहूर्त्त की पौरुषी कब होती है ?

[१० उ] हे सुदर्शन ! जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तथा जघन्य बारह मुहूर्त्त की छोटी रात्रि होती है, तब साढे चार मुहूर्त्त की दिवस की उत्कृष्ट पौरुषी होती है और रात्रि की तीन मुहूर्त्त की सबसे छोटी पौरुषी होती है। जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की बडी रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त्त का छोटा दिन होता है, तब साढे चार मुहूर्त्त की उत्कृष्ट रात्रि-पौरुषी होती है और तीन मुहूर्त्त की जघन्य दिवस-पौरुषी होती है।

११ कदा णं भंते ! उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राती भवति ? कदा वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ?

सुदसणा ! आसाढपुण्णिमाए उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राती भवइ; पोसपुण्णिमाए णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति।

[११ प्र] भगवन् ! अठारह मुहूर्त्त का उत्कृष्ट दिवस और बारह मुहूर्त्त की जघन्य रात्रि कब होती है ? तथा अठारह मुहूर्त्त की उत्कृष्ट रात्रि और बारह मुहूर्त्त का जघन्य दिन कब होता है ?

[११ उ] सुदर्शन ! अठारह मुहूर्त्त का उत्कृष्ट दिवस और बारह मुहूर्त्त की जघन्य रात्रि आषाढी पूर्णिमा को होती है, तथा अठारह मुहूर्त्त की उत्कृष्ट रात्रि और बारह मुहूर्त्त का जघन्य दिवस पौषी पूर्णिमा को होता है।

१२. अत्थि ण भंते ! दिवसा य रातीओ य समा चेव भवति ?

हंता, अत्थि।

[१२ प्र] भगवन् ! कभी दिवस और रात्रि-दोनो समान भी होते है ?

[१२ उ] हाँ, सुदर्शन ! होते हैं।

१३. कदा णं भंते ! दिवसा य रातीओ य समा चेव भवति ?

सुदसणा ! चेत्तासोयपुण्णिमासु णं, एत्थ णं दिवसा य रातीओ य समा चेव भवति; पन्नरस-मुहुत्ते दिवसे, पन्नरसमुहुत्ता राती भवति; चउभागमुहुत्तभागूणा चउमुहुत्ता दिवस्स वा रातीए वा पोरिसी भवइ। से त्तं पमाणकाले।

[१३ प्र] भगवन् ! दिवस और रात्रि, ये दोनो समान कब होते है ?

[१३ उ] सुदर्शन ! चैत्र की और आश्विन की पूर्णिमा को दिवस और रात्रि दोनो समान (बराबर) होते है। उस दिन १५ मुहूर्त्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त्त की रात होती है। तथा दिवस एव रात्रि की पौने चार मुहूर्त्त की पौरुषी होती है।

इस प्रकार प्रमाणकाल कहा गया है।

विवेचन—प्रमाणकालसम्बन्धी प्ररूपणा—जिससे दिवस, रात्रि, वर्ष, शतवर्ष, आदि का प्रमाण जाना जाए, उसे **प्रमाणकाल** कहते है। यह दो प्रकार का माना गया है—दिवसप्रमाणकाल और रात्रि प्रमाणकाल। सामान्यतया दिन या रात्रि का प्रमाण चार-चार प्रहर का माना गया है। प्रहर को पौरुषी कहते हैं। जितने मुहूर्त्त का दिन या रात्रि होती है, उसका चौथा भाग पौरुषी कहलाता है। दिवस और रात्रि की उत्कृष्ट पौरुषी साढे चार मुहूर्त्त की होती है, और जघन्य पौरुपी तीन मुहूर्त्त की होती है।

उत्कृष्ट (बडा) दिन और रात्रि, कब ?—आषाढी पूर्णिमा को १८ मुहूर्त्त का दिन और पौषी पूर्णिमा को १८ मुहूर्त्त की रात्रि होती है, यह कथन पच-सवत्सर-परिमाण-युग के अन्तिम वर्ष की अपेक्षा से समझना चाहिए। दूसरे वर्षो मे तो जव कर्कसक्रान्ति होती है, तव ही १८ मुहूर्त्त का दिन और रात्रि होती है। जब १८ मुहूर्त्त के दिन और रात होते है, तव उनकी पौरुषी ४½ मुहूर्त्त की होती है।

समान दिवस और रात्रि—चैत्री और आश्विनी पूर्णिमा को दिन और रात्रि दोनो वरावर होते है, अर्थात्—इन दोनो मे १५-१५ मुहूर्त का दिन और रात्रि होते है। यह कथन भी व्यवहारनय की अपेक्षा से है। निश्चय मे तो कर्कसक्रान्ति और मकर सक्रान्ति से जो ९२ वाँ दिन होता है, तव रात्रि और दिवस दोनो समान होते है।

जघन्य दिवस और रात्रि—वारह मुहूर्त्त की जघन्य रात्रि आषाढी-पूर्णिमा को और १२ मुहूर्त्त का जघन्य दिन पौषी पूर्णिमा को होता है। जव १२ मुहूर्त्त के दिन और रात होते है, तव दिन एव रात्रि की पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है।[1]

यथायुर्निर्वृत्तिकाल-प्ररूपणा

१४. से किं त अहाउनिव्वत्तिकाले ?

अहाउनिव्वत्तिकाले, ज ण जेण नेरइएण वा तिरिक्खजोणिएण वा मणुस्सेण वा देवेण वा अहाउय निव्वत्तिय से त्त अहाउनिव्वत्तिकाले।

[१४ प्र] भगवन्! वह यथायुर्निर्वृत्तिकाल क्या है ?

[१४ उ] (सुदर्शन!) जिस किसी नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य अथवा देव ने स्वय जो (जिस गति का) और जैसा भी आयुष्य बाधा है, उसी प्रकार उसका पालन करना—भोगना, 'यथायुर्निर्वृत्तिकाल कहलाता है।

यह हुआ यथायुर्निर्वृत्तिकाल का लक्षण।

विवेचन—यथायुर्निर्वृत्तिकाल की परिभाषा—चारो गतियो मे से जिस गति के जीव ने जिस भव की जितनी आयु वाधी है, उतना आयुष्य भोगना यथायुर्निर्वुत्तिकाल कहलाता है।[2]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५३३-५३४

२ यथा—येन प्रकारेणायुषो निर्वृत्ति =वन्धन, तथा य काल-अवस्थितिरसौ यथायुर्निर्वृत्तिकालो नारकाद्यायुष्कलक्षण।'—भगवती अ वृ पत्र ५३३।

मरणकाल-प्ररूपणा

१५. से किं त मरणकाले ?

मरणकाले, जीवो वा सरीराओ, सरीर वा जीवाओ। से त्त मरणकाले।

[१५ प्र] भगवन् मरणकाल क्या है ?

[१५ उ] सुदर्शन ! शरीर से जीव का अथवा जीव से शरीर का (पृथक् होने का काल) मरणकाल है। यह है—मरणकाल का लक्षण।

विवेचन—मरणकाल की परिभाषा—जीवन का अन्तिम समय, जब आत्मा शरीर से पृथक् होता है, अथवा शरीर आत्मा से पृथक् होता है, वह मरणरूप काल मरणकाल कहलाता है। मरण शब्द काल का पर्यायवाची है, अत मरण ही काल है।[1]

अद्धाकाल-प्ररूपणा

१६. [१] से किं त अद्धाकाले ?

अद्धाकाले अणेगविहे पन्नत्ते, से ण समयट्ठयाए आवलियट्ठयाए जाव उस्सप्पिणिअट्ठयाए।

[१६-१ प्र,] भगवन् ! अद्धाकाल क्या है ?

[१६-१ उ] सुदर्शन ! अद्धाकाल अनेक प्रकार का कहा गया है। वह समयरूप प्रयोजन के लिए है, आवलिकारूप प्रयोजन के लिए है, यावत् उत्सर्पिणी-रूप प्रयोजन के लिए है।

[२] एस ण सुदसणा ! अद्धा दोहारच्छेदेण छिज्जमाणी जाहे विभाग नो हव्वमागच्छति से त्त समए समयट्ठताए।

[१६-२] हे सुदर्शन ! दो भागो मे जिसका छेदन-विभाग न हो सके, वह 'समय' है, क्योकि वह समयरूप प्रयोजन के लिए है।

[३] असंखेज्जाण समयाण समुदयसमितिसमागमेण सा एगा 'आवलिय' त्ति पवुच्चइ। सखेज्जाओ आवलियाओ जहा सालिउद्देसए (स. ६ उ. ७ सु. ४-७) जाव त सागरोवमस्स उ एगस्स भवे परीमाण।

[१६-३] असख्य समयो के समुदाय से एक आवलिका कहलाती है। सख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है, इत्यादि छठे शतक के शालि नामक सातवे उद्देशक (सू ४–७) मे कहे अनुसार यावत्—'यह एक सागरोपम का परिमाण होता है', यहाँ तक जान लेना चाहिए।

विवेचन—अद्धाकाल : लक्षण, प्रकार एव प्रयोजन—समय, आवलिका आदि काल, अद्धाकाल कहलाता है। इसके समय, आवलिकादि अनेक भेद है। समय से लेकर उत्सर्पिणी तक जितने भी

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५३४

कालमान है, सव अद्धाकाल के अन्तर्गत आते है ।[1]

'समय' की परिभाषा—काल के सबसे छोटे भाग को 'समय' कहते है, जिसके फिर दो विभाग न हो सके ।[2]

पल्योमम सागरोपम का प्रयोजन

१७. एएहि ण भते ! पलिओवम-सागरोवमेहिं कि पयोयणं ?

सुदंसणा ! एएहि ण पलिओवम-सागरोवमेहि नेरतिय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवाणं आउयाइ मविज्जति ।

[१७ प्र] भगवन ! इन पल्योपम और सागरोपमो से क्या प्रयोजन है ?

[१७ उ] हे सुदर्शन ! इन पल्योपम और सागरोपमो से नैरयिको, तिर्यञ्चयोनिको, मनुष्यो तथा देवो का आयुष्य नापा जाता है ।

विवेचन—उपमाकाल : स्वरूप और प्रयोजन—पल्योपम और सागरोपम उपमाकाल हैं। चारगति के जीवो की जो आयु सख्या द्वारा नही मापी जा सकती, वह इस उपमाकाल द्वारा मापी जाती है ।

नैरयिकादि समस्त संसारी जीवो की स्थिति की प्ररूपणा

१८. नेरइयाणं भते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? एवं ठितिपदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

[१८ प्र] भगवन् ! नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१८ उ] सुदर्शन ! इस विषय मे प्रज्ञापनासूत्र का चौथा स्थितिपद सम्पूर्ण कहना चाहिए; यावत्—सर्वार्थसिद्ध देवो की अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है ।

विवेचन—चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की स्थिति का अतिदेश—प्रस्तुत १८ वे सूत्र मे नैरयिकों से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवो तक के जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश-पूर्वक निरूपण किया गया है ।[3]

पल्योपम-सागरापम क्षयोपचय सिद्धिहेतु दृष्टान्तपूर्वक प्ररूपणा

१९. [१] अत्थि णं भते ! एतेसिं पलिओवम-सागरोवमाणं खए ति वा अवचए ति वा ?

हंता, अत्थि ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्र ५३५ ममयरूपोऽर्थ समयार्थस्तद्भावस्तत्ता तया समयार्थतया—समयभावेनेत्यर्थ ।

२ द्वौ हारौ भागौ यत्र छेदने-द्विधा वा कार करण यत्र तद् द्विहार द्विधाकार वा तेन यदा तदा समय इति शेष ।
—भगवती अ वृत्ति, पृ ५३५

३ (क) पण्णवण्णासुत्त भा १, पद ४ स्थितिपद, सू ३३५-४३७, पृ ११२-१३५
(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा २ (मूलपाठ-टिप्पण)

[१९-१ प्र] भगवन् ! क्या इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय या अपचय होता है ?

[१९-१ उ] हाँ, सुदर्शन होता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'अत्थि ण एएसिं पलिओवम-सागरोवमाण जाव अवचये ति वा ?

[१९-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय या अपचय होता है ?

महाबलवृत्तान्त

२०. एव खलु सुदसणा ! तेण कालेण तेण समएण हत्थिणापुरे नाम नगरे होत्था, वण्णओ। सहसबवणे उज्जाणे, वण्णओ।

[२०] (उदाहरण द्वारा समाधान—) हे सुदर्शन ! उस काल और उस समय मे हस्तिनापुर नामक नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। उसका वर्णन करना चाहिए।

२१. तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे बले नामं राया होत्था, वण्णओ।

[२१] उस हस्तिनापुर मे 'बल' नामक राजा था। उसका वर्णन करना चाहिए।

२२. तस्स ण वलस्स रण्णो पभावती नाम देवी होत्था सुकुमाल० वण्णओ जाव विहरति।

[२२] उस वल राजा की प्रभावती नाम की देवी (पटरानी) थी। उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे, इत्यादि वर्णन जानना चाहिए, यावत् पचेन्द्रिय सवधी सुखानुभव करती हुई जीवनयापन करती थी।

विवेचन—पल्योपम-सागरोपम के क्षय-अपचय की सिद्धि के लिए सुदर्शन श्रेष्ठी की पूर्वभव-कथा-प्रारम्भ—प्रस्तुत ४ सूत्रो (१९ से २२ तक) मे पल्योपम-सागरोपम के क्षय और अपचय को सिद्ध करने हेतु भगवान् ने सुदर्शन श्रेष्ठी के पूर्वभव की कथा प्रारम्भ की है। इसमे हस्तिनापुर नगर, सहस्राम्रवन-उद्यान, वलराजा, प्रभावती रानी, इनका वर्णन औपपातिकसूत्र द्वारा जान लेने का अतिदेश किया गया है।[1]

क्षय और अपचय—क्षय का अर्थ है—सम्पूर्ण विनाश। अपचय का अर्थ है—देशत अपगम—क्षय।[2]

प्रभावती का वासगृहशय्या-सिंहस्वप्न-दर्शन

२३. तए ण सा पभावती देवी अन्नया कयाइ तसि तारिसगसि वासघरसि अंभितरओ सचित्त-कम्मे बाहिरतो दूमियघट्ठमट्ठे विचित्तउल्लोगचिल्लियतले मणिरतणपणासियधकारे बहुसमसुविभत्त-

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५३७

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५३९-५४०

देसभाए पचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघंत-गधुद्धुताभिरामे सुगधवरगधिए गधवट्टिभूते तसि तारिसगसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टीए उभयो बिब्बोयणे दुहओ उन्नए मज्झे णय-गभीरे गंगापुलिणवालुयउद्दालसालिसए ओयवियखोमियदुगुल्लपट्ट-पलिच्छायणे सुविरइयरयत्ताणे रत्तसुयसंवुए सुरम्मे आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे सुगधवरकुसुम-चुण्णसयणोवयारकलिए अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं कल्लाणं सिव धन्न मगल्ल सस्सिरीय महासुविण सुविणे पासित्ताण पडिबुद्धा । हार-रयय-खीर-सागर-ससककिरण-दगरय-रययमहासेलपडुरतरोरुरमणिज्जपेच्छणिज्ज थिरलट्ठपउट्ठवट्टपीवरसु-सिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडबितमुह परिकम्मियजच्चकमलकोमलमाइयसोभंतलट्ठउट्ठ रत्तुप्पलपत्तम-उयसुकुमालतालुजीह मूसागयपवरकणगतावितआवत्तायंतवट्टतडिविमलसरिसनयण विसालपीवरोरुपडि-पुण्णविपुलखध मिउविसदसुहुमलक्खणपसत्थवित्थिण्णकेसरसडोवसोभिय ऊसियसुनिमितसुजातअप्फो-डितणगूल सोम सोमाकार लीलायत जभायत नहयलातो ओवयमाणं निययवदणकमलसरमतिवयत सीहं सुविणे पासित्ताण पडिबुद्धा ।

[२३] किसी दिन वह प्रभावती देवी उस प्रकार के वासगृह के भीतर, उस प्रकार की अनुपम शय्या पर (सोई हुई थी ।) (वह वासगृह) भीतर से चित्रकर्म से युक्त तथा बाहर से सफेदी किया हुआ, एव घिस कर चिकना बनाया हुआ था । जिसका ऊपरी भाग विविध चित्रो से युक्त तथा अधोभाग प्रकाश से देदीप्यमान था । मणियो और रत्नो के कारण उस (वासभवन) का अन्धकार नष्ट हो गया था । उसका भूभाग बहुतसम और सुविभक्त था । (फिर वह) पाच वर्ण के सरस और सुगन्धित पुष्पपुजो के उपचार से युक्त था । उत्तम कालागुरु (काला अगर), कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस) के धूप से वह वासभवन चारो ओर से महक रहा था । उसकी सुगन्ध से वह अभिराम तथा सुगन्धित पदार्थों से सुवासित था । एक तरह से वह सुगन्धित द्रव्य की गुटिका के जैसा हो रहा था । ऐसे आवासभवन मे जो शय्या थी, वह अपने आप मे अद्वितीय थी, तथा शरीर से स्पर्श करते हुए उपधान (पार्श्ववर्ती तकिये) से युक्त थी । फिर उस (शय्या) के दोनो (सिरहाने और पादतल की) ओर तकिये रखे हुए थे । वह (शय्या) दोनो ओर से उन्नत थी, बीच मे कुछ झुकी हुई एव गहरी थी, एव गगानदी की तटवर्ती बालू के अवदाल (पैर रखते ही नीचे धस जाने) के समान (अत्यन्त कोमल) थी । वह परिकर्मित (मुलायम बनाए हुए) क्षौमिक (रेशमी) दुकूलपट (चादर) से आच्छादित तथा सुन्दर सुरचित रजस्त्राण से युक्त थी । रक्ताशुक (लाल रग के सूक्ष्म वस्त्र) की मच्छरदानी उस पर लगी हुई थी । वह सुरम्य आजिनक (एक प्रकार के कोमल चर्मवस्त्र), रूई, बूर, नवनीत (मक्खन) तथा अर्कतूल (आर्क की रूई) के समान कोमल स्पर्श वाली थी, तथा सुगन्धित श्रेष्ठपुष्प, चूर्ण एव शयनोपचार (शयनोपकरण) से युक्त थी ।

ऐसी शय्या पर सोती हुई प्रभावती रानी, जब अर्धरात्रिकाल के समय कुछ सोती-कुछ जागती अर्धनिद्रित अवस्था मे थी, तब स्वप्न क्रिया मे इस प्रकार का उदार, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मगल-कारक एव शोभायुक्त (सश्रीक) महास्वप्न देखा और जागृत हुई ।

प्रभावती रानी ने स्वप्न मे एक सिंह देखा, जो (मोतियो के) हार, रजत (चादी), क्षीर-समुद्र, चन्द्रकिरण, जलकण, रजतमहाशैल के समान श्वेत वर्ण वाला था, (साथ ही,) वह विशाल,

रमणीय और दर्शनीय था। उसके प्रकोष्ठ स्थिर और सुन्दर थे। वह अपने गोल, पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढाओ से युक्त मुह को फाडे हुए था। उसके ओष्ठ सस्कारित जातिमान् कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत एव अत्यन्त सुशोभित थे। उसका तालु और जीभ रक्तकमल के पत्ते के समान अत्यन्त कोमल थी। उसके नेत्र, मूस मे रहे हुए एव अग्नि मे तपाये हुए तथा आवर्त्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्ण वाले, गोल एव विद्युत् के समान विमल (चमकीले) थे। उसकी जघा विशाल एव पुष्ट थी। उसके स्कन्ध (कधे) परिपूर्ण और विपुल थे। वह मृदु (कोमल) विशद, सूक्ष्म एव प्रशस्त लक्षण वाली विस्तीर्ण केसर की जटा से सुशोभित था। वह सिह अपनी सुनिर्मित, सुन्दर एव उन्नत पूछ को (पृथ्वी पर) फटकारता हुआ, सौम्य आकृति वाला, लीला करता हुआ, जभाई लेता हुआ, गगनतल से उतरता हुआ तथा अपने मुख-कमल-सरोवर मे प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। स्वप्न मे ऐसे सिह को देखकर रानी जागृत हुई।

विवेचन—वासगृहस्थित शयनीय वर्णनपूर्वक प्रभावती द्वारा सिह के स्वप्न को देखने का वर्णन—प्रस्तुत २३ वे सूत्र मे तीन तथ्यो का वर्णन किया है—(१) प्रभावती रानी का वासगृह (२) शय्या एव सिहस्वप्न-दर्शन।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—सचित्तकम्मे—चित्रकर्म-युक्त। **दूमियघट्टमट्ठे**—सफेदी किये हुए एव घिस कर चिकने किये हुए। **उल्लोग**—ऊपर का भाग। **चिल्लियतले**—चमकीला नीचे का भाग। **मणिरतण-पणासियधकारे**—मणियो और रत्नो के प्रकाश से अन्धकार नष्ट कर दिया था। **सालिगण-वट्टिए**—शरीर-प्रमाण उपधान से युक्त। **पचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फपु जोवयारकलिए**—पाच वर्ण के सरस सुगन्धित पुष्पपुज के उपचार से युक्त। **कालागुरु-पवरकु दुरुक्क-तुरुक्कधूव-मघ-मघतगधुद्धु ता-भिरामे**—काला अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुक्क (चीडा) एव तुरुष्क (लोभान) के धूप की महकती हुई गन्ध से उडती हुई वायु मे अभिराम। **उभओ विब्बोयणे**—दोनो ओर तकिये रखे हुए थे। **गगापुलिण-वालुय-उद्दाल-सालिसए**—गगा के पुलिन (तट) की वालू के फिसलन (पैर लगते ही नीचे धस जाने) की तरह अत्यन्त कोमल। **ओयविय-खोमिय-दुगुल्ल-पट्ट-पलिच्छायणे**—सुसस्कारित रेशमी दुकूलपट से आच्छादित। **रत्तंसुय-सवुए**—रक्ताशुक की मच्छरदानी से ढकी हुई। **हार-रयय-खीरसागर-ससंककिरण-दगरय-रययमहासेलपडुरतरोरु-रमणिज्जपेच्छणिज्जं**—मुक्ताहार, रजत, क्षीरसागर, चन्द्रकिरण, जलकण एव रजत-महाशैल के समान पाण्डुर (श्वेत वर्ण), अतएव विशाल, रमणीय और दर्शनीय। **थिरलट्ठ-पउट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्ख-दाढा-विडंबितमुहं**—उसका स्थिर एव सुन्दर प्रकोष्ठ था, तथा वह गोल, पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढो से युक्त मुख को फाडे हुए था। **परिकम्मिय-जच्च-कमल-कोमल-माइय-सोभत-लट्ठ-उट्ठं**—उसका होठ सुसस्कारित जातिमान कोमल के कमल समान, प्रमाणोपेत, सुन्दर एव सुशोभित था। **रत्तुप्पल-पत्त-मउय-सुकुमाल-तालु-जीहं**—उसका तालु और जिह्वा रक्तकमल-पत्र के समान कोमल (मृदु) एव सुकुमाल थी। **मूसागय-पवरकणग-तावित-आवत्तायत-वट्ट-तडि-विमल-सरिस-नयण**—उसके नयन मूस मे रहे हुए तथा अग्नि मे तपाए हुए तथा आवर्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्ण वाले, गोल तथा बिजली की चमक के समान थे। **विसाल-पीवरोरु-पडिपुण्ण-विपुलखध**—वह विशाल एव पुष्ट जघाओ

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ-५३७-५३८

वाला तथा परिपूर्ण विपुल स्कन्ध (कधो) वाला था। **मिउ-विसद-सुहुम-लक्खण-पसत्थ-वित्थिण्ण-केसरसडोवसोभियं**—वह कोमल, विशद, सूक्ष्म एवं प्रशस्तलक्षण वाली, विशाल केसर-जटाओ से सुशोभित था। **ऊसिय-सुनिम्मित-सुजात-अप्फोडितणंगूल**—अपनी सुनिर्मित, सुन्दर एव उन्नत पूछ को फटकारता हुआ। **नहयलाओ**—गगनतल से। **ओवयमाणं**—उतरता हुआ। **नियय-वदण-कमल-सरमतिवयते**—अपने मुखकमल—सरोवर मे प्रविष्ट होता हुआ।[1]

रानी द्वारा स्वप्ननिवेदन तथा स्वप्नफलकथनविनति

२४. तए णं सा पभावती देवी अयमेयारूवं ओरालं जाव सस्सिरीयं महासुविणं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हिदया धाराहयकलंवग पिव समूसवियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हति, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेति, अ० २ अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंविताए रायहससरिसीए गतीए जेणेव बलस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ वलं रायं ताहि इट्ठाहि कताहि पियाहि मणुण्णाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मंगल्लाहि सस्सिरीयाहि मियमहुरमंजुलाहि गिराहि संलवमाणी संलवमाणी पडिवोहेति, पडि० २ वलेण रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणि-रयणभत्तिचित्तसि भद्दासणसि णिसीयति, णिसीयित्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया वलं रायं ताहि इट्ठाहि कंताहि जाव सलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिगण० तं चेव जाव नियगवयणमतिवयतं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिवुद्धा। त ण देवाणुप्पिया! एतस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सति?

[२४] तदनन्तर वह प्रभावती रानी इस प्रकार के उस उदार यावत् शोभायुक्त महास्वप्न को देखकर जागृत होते ही अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुई, यावत् मेघ की धारा से विकसित कदम्ब-पुष्प के समान रोमाचित होती हुई उस स्वप्न का स्मरण करने लगी। फिर वह अपनी शय्या से उठी और शीघ्रता से रहित तथा अचपल, असम्भ्रमित (हडवडी से रहित) एव अविलम्बित अतएव राज-हस सरीखी गति से चलकर जहा वल राजा की शय्या थी वहां आई और वल राजा की शय्या के पास आ कर उन्हे उन इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज, मनाम, उदार, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मगलमय तथा शोभायुक्त परिमित, मधुर एव मजुल वचनो से पुकार कर जगाने लगी। राजा जागृत हुआ। राजा की आज्ञा होने पर रानी विचित्र मणि और रत्नो की रचना से चित्रित भद्रासन पर बैठी। और उत्तम सुखासन से बैठ कर आश्वस्त (स्वस्थ) और विश्वस्त (शान्त) हुई रानी प्रभावती, वल राजा से इष्ट, कान्त यावत् मधुर वचनो से इस प्रकार बोली—"हे देवानुप्रिय! आज मैं पूर्वोक्त वर्णन वाली सुख-शय्या पर सो रही थी, तव मैंने यावत् अपने मुख मे प्रविष्ट होते हुए सिंह को स्वप्न मे देखा और मैं जाग्रत हुई हू। तो, हे देवानुप्रिय! मुझे इस उदार यावत् महास्वप्न का क्या कल्याणरूप फल विशेष होगा?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४०-५४१

विवेचन—प्रभावती रानी द्वारा राजा से स्वप्नदर्शन-निवेदन—प्रस्तुत २४ वे सूत्र मे प्रभावती रानी द्वारा राजा के समक्ष अपने स्वप्ननिवेदन का तथा उसका फल जानने की उत्सुकता का वर्णन है ।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—धाराहयकलंवगं पिव समूसवियरोमकूवा—मेघ की धारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान रोमकूप विकसित हो गए । ओगिण्हति—मन मे धारण (ग्रहण) करती है—स्मरण करती है । असंभंताए—विना किसी हड़बड़ी के । सस्सिरीयाहिं—श्री—शोभा से युक्त । मिय-महुर-मजुलाहिं गिराहिं—परिमित, मधुर एव मजुल वाणी से । आसत्था-वीसत्था—चलने मे हुए श्रम के दूर होने से आश्वस्त (शान्त) एव सक्षोभ का अभाव होने से विश्वस्त होकर । फलवित्ति-विसेसे—फल विशेष । कल्लाणाहिं—कल्याणकारक । मगलाहिं—मगल रूप । ओरालस्स—उदार ।[2]

प्रभावती-कथित स्वप्न का राजा द्वारा फलकथन

२५. तए ण से बले राया पभावतीए देवीए अंतिय एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियये धाराहतणीमसुरभिकुसुमं व चंचुमालइयतणू ऊसवियरोमकूवे त सुविणं ओगिण्हइ, ओ० २ ईहं पविसति, ईहं प० २ अप्पणो साभाविएण मतिपुव्वएण बुद्धिविण्णाणेण तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहण करेति, तस्स० क० २ पभावर्ति देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव मगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं सलवमाणे संलवमाणे एव वयासी—"ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे कल्लाणे ण तुमे जाव सस्सिरीए ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मगलकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए !, भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए !, रज्ज-लाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण य राइदियाण वीतिक्कताण अम्ह कुलकेउ कुलदीव कुलपव्वयं कुलवडेंसग कुलतिलग कुलकित्तिकरं कुल-नदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविवड्ढणकरं सुकुमालपाणिपाय अहीणपुण्णपंचिंदियसरीर जाव[3] ससिसोमागार कत पियदंसणं सुरूव देवकुमारसप्पभं दारग पयाहिसि । से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कते विच्छिण्णविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सति । त ओराले ण तुमे देवी ! सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि० जाव मंगल्लकारए ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे" त्ति कट्टु पभावर्ति देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं दोच्च पि तच्चं पि अणुवूहति ।

[२५] तदनन्तर वह वल राजा प्रभावती देवी से इस (पूर्वोक्त स्वप्नदर्शन की) वात को सुनकर और समझकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ यावत् उसका हृदय आकर्षित हुआ । मेघ की धारा से विकसित कदम्ब के सुगन्धित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा, रोमकूप विकसित हो गए । राजा वल उस स्वप्न के विषय मे अवग्रह (सामान्य-विचार) करके ईहा (विशेष विचार) मे

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५३९

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४१, (ख) भगवती विवेचन (प घे) भा ४ , पृ १९२८

३ 'जाव' पद सूचित पाठ—लक्खण-वजण-गुणोववेयमित्यादि । अ वृ पत्र ५४१

प्रविष्ट हुआ, फिर उसने अपने स्वाभाविक बुद्धिविज्ञान से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया। उसके बाद इष्ट, कान्त यावत् मगलमय, परिमित, मधुर एव शोभायुक्त सुन्दर वचन बोलता हुआ राजा रानी प्रभावती से इस प्रकार बोला—"हे देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवी! तुमने कल्याणकारक यावत् शोभायुक्त स्वप्न देखा है। हे देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याणरूप एव मगलकारक स्वप्न देखा है। हे देवानुप्रिये! (तुम्हे इस स्वप्न के फलस्वरूप) अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा। हे देवानुप्रिये? नौ मास और साढे सात दिन (अहोरात्र) व्यतीत होने पर तुम हमारे कुल मे केतु-(ध्वज) समान, कुल के दीपक, कुल मे पर्वततुल्य, कुल का शेखर, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति फैलाने वाले, कुल को आनन्द देने वाले, कुल का यश बढाने वाले, कुल के आधार, कुल मे वृक्ष समान, कुल की वृद्धि करने वाले, सुकुमाल हाथ-पैर वाले, अगहीनतारहित, परिपूर्ण पचेन्द्रिययुक्त शरीर वाले, यावत् चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन, सुरूप एव देवकुमार के समान कान्ति वाले पुत्र को जन्म दोगी।"

वह बालक भी बालभाव से मुक्त होकर विज्ञ और कलादि मे परिपक्व (परिणत) होगा। यौवन प्राप्त होते ही वह शूरवीर, पराक्रमी तथा विस्तीर्ण एव विपुल बल (सैन्य) और वाहन वाला राज्याधिपति राजा होगा। अत हे देवी! तुमने उदार (प्रधान) स्वप्न देखा है, यावत् देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि यावत् मगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार बल राजा ने प्रभावती देवी को इष्ट यावत् मधुर वचनो से वही बात दो बार और तीन बार कही।

विवेचन—प्रभावती को राजा द्वारा स्वप्नफलकथन—प्रस्तुत २५ वे सूत्र मे प्रभावती रानी से स्वप्नवर्णन सुनकर राजा ने उसे विस्तार से स्वप्नफल बताया है, विशेषत तेजस्वी पुत्रलाभ-सूचक फल का प्रतिपादन किया है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—चचुमालइयतणू—उसका शरीर पुलकित हो उठा। **बुद्धिविन्नाणेण**—औत्पत्तिकी आदि बुद्धिरूप विज्ञान से। **साभाविएण**—स्वाभाविक। **अत्थोग्गहण**—अर्थावग्रहण—फलनिश्चय। **कल्लाण**—अर्थ (प्रयोजन) की प्राप्तिरूप, **मगल्ल**—अनर्थप्रतिघात रूप। **कुलकेउ**—कुलध्वजरूप। **कुलदीव**—कुल मे दीपक के समान प्रकाशक। **कुलपव्वय**—कुल मे पर्वत के समान स्थिर आश्रय वाला। **कुलवडेंसय**—कुल का अवतसक—शेखर, कुल के वृक्ष के तुल्य आश्रय-दाता। **विन्नाय-परिणयमित्ते**—विज्ञ और कलादि मे परिणत (परिपक्व) मात्र। **रज्जवई**—राज्यपति अर्थात्—स्वतत्र राजा।[2]

प्रभावती द्वारा स्वप्नफल स्वीकार और जागरिका

२६ तए ण सा पभावती देवी बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल जाव एव वयासी—'एवमेतं देवाणुप्पिया!, तहमेय देवाणुप्पिया!, अवितहमेयं देवाणुप्पिया!, असदिद्धमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियमेय देवाणुप्पिया!, पडिच्छियमेतं देवाणुप्पिया!, इच्छियपडि-

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५३९

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४१।

च्छियमेयं देवाणुप्पिया ! से जहेयं तुब्भे वदह' त्ति कट्टु तं सुविण सम्म पडिच्छइ, तं० पडि० २ बलेण रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि-रयणभत्तिचित्तातो भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अ० २ अतुरियम-चवल जाव गतीए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ सयणिज्जंसि निसीयति, नि० २ एव वदासी—'मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अन्नेहिं पावसुविणेहिं पडिहम्मिस्सइ' त्ति कट्टु देव-गुरुजण-सवद्धाहिं पसत्थाहिं मगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरियं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरति ।

[२६] तदनन्तर वह प्रभावती रानी, बल राजा से इस बात (स्वप्नफल) को सुन कर, हृदय मे धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुई, और हाथ जोड कर यावत् इस प्रकार बोली—"हे देवानु-प्रिय ! आपने जो कहा, वह यथार्थ है, देवानुप्रिय ! वह सत्य है, असदिग्ध है । वह मुझे इच्छित है, स्वीकृत है, पुन पुन इच्छित और स्वीकृत है ।" इस प्रकार स्वप्न के फल को सम्यक् रूप से स्वीकार किया और फिर बल राजा की अनुमति लेकर अनेक मणियो और रत्नो से चित्रित भद्रासन से उठी । फिर शीघ्रता और चपलता से रहित यावत् गति से जहाँ (शयनगृह मे) अपनी शय्या थी, वहाँ आई और शय्या पर बैठ कर (मन ही मन) इस प्रकार कहने लगी—'मेरा यह उत्तम, प्रधान एव मगलमय स्वप्न दूसरे पापस्वप्नो से विनष्ट न हो जाए ।' इस प्रकार विचार करके देवगुरुजन-सम्बन्धी प्रशस्त और मगलरूप धार्मिक कथाओ (विचारणाओ) से स्वप्नजागरिका के रूप मे वह जागरण करती हुई बैठी रही ।

विवेचन—प्रभावती द्वारा स्वप्नफल स्वीकार और स्वप्नजागरिका—प्रस्तुत २६ वें सूत्र मे राजा द्वारा कथित स्वप्नफल को प्रभावती रानी द्वारा स्वीकार करने का और रानी द्वारा स्वप्नजागरिका का वर्णन है ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—तहमेय—यह तथ्य है । **अवितहमेयं**—असत्य नही है । **पडिच्छिय**—स्वीकृत है । **सम्म पडिच्छइ**—भलीभाति स्वीकार करती है । **पावसुमिणेहिं**—अशुभ स्वप्नो से । **पडिहम्मिस्सइ**—प्रतिहत—नष्ट हो जाए । **सुविणजागरिय**—स्वप्न की सुरक्षा के लिए किया जाने वाला जागरण ।[2]

कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा उपस्थानशाला की सफाई और सिंहासन-स्थापन

२७. तए ण से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, को० स० २ एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेस बाहिरियं उवट्ठाणसालं गधोदयसित्तसुइयसम्मज्जियोवलित्तं सुगधवर-पचवण्णपुप्फोवयारकलियं कालागरुपवरकुंदुरुक्क० जाव गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करे० २ सीहासणं रएह, सीहा० र० २ ममेतं जाव पच्चप्पिणह ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५४०

२ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १९३१

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४२

[२७] तदनन्तर वलराजा ने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को वुलाया और उनको इस प्रकार का आदेश दिया—"हे देवानुप्रियो! बाहर की उपस्थानशाला को आज शीघ्र ही विशेपरूप से गन्धोदक छिडक कर शुद्ध करो, स्वच्छ करो, लीप कर सम करो। सुगन्धित और उत्तम पाच वर्ण के फूलो से सुसज्जित करो, उत्तम कालागुरु और कुन्दरुष्क के धूप से यावत् सुगन्धित गुटिका के समान करो-कराओ, फिर वहाँ सिंहासन रखो। ये सब कार्य करके यावत् मुझे वापस निवेदन करो।"

२८. तए णं ते कोडुंबिय० जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसाल जाव पच्चप्पिणंति।

[२८] तब यह सुन कर उन कौटुम्बिक पुरुषो ने वलराजा का आदेश शिरोधार्य किया और यावत् शीघ्र ही विशेपरूप से बाहर की उपस्थानशाला को यावत् स्वच्छ, शुद्ध, सुगन्धित किया यावत् आदेशानुसार सब कार्य करके राजा ने निवेदन किया।

विवेचन—उपस्थानशाला को सुसज्जित करके सिंहासनस्थापन का आदेश—प्रस्तुत २७-२८ सूत्रो मे राजा द्वारा कौटुम्बिक पुरुषो को वुला कर उपस्थानशाला की सफाई तथा सजावट आदि करके सिंहासन रखने को दिये गये आदेश आदि का निरूपण है।[1]

वलराजा द्वारा स्वप्नपाठक आमंत्रित

२९. तए णं से बले राया पच्चूसकालसमयंसि सयणिज्जाओ समुट्ठेति, स० स० २ पायपीढातो पच्चोरुभति, प० २ जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ अट्टणसालं अणुपविसइ जहा उववातिए तहेव अट्टणसाला तहेव मज्जणघरे जाव ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, म० प० २ जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयति, नि० २ अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थगकयमंगलोवयाराइं रयावेइ, रया० २ अप्पणो अदूरसामंते णाणामणिरयणमंडियं अहियपेच्छणिज्जं महग्घवरपट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसयचित्तताणं ईहामियउसभ जाव भत्तिचित्तं अब्भितरियं जवणियं अंछावेति, अ० २ नाणामणि-रयणभत्तिचित्तं अत्थरयमउयमसूरगोत्थगं सेयवत्थपच्चत्थुतं अंगसुहफासयं सुमउयं पभावतीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, र० २ कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, को० स० २ एवं वदासि—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थधारए विविहसत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह।

[२९] इसके पश्चात् वलराजा प्रात काल के समय अपनी शय्या से उठे और पादपीठ से नीचे उतरे। फिर वे जहाँ व्यायामशाला (अट्टन शाला) थी, वहाँ गए। व्यायामशाला में प्रवेश किया। व्यायामशाला तथा स्नानगृह के कार्य का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए, यावत् चन्द्रमा के समान प्रिय-दर्शन बन कर वह नृप, स्नानगृह से निकले और जहाँ वाहर की उपस्थानशाला थी वहाँ आए। (वह रखे हुए) सिंहासन पर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठे। फिर अपने से उत्तरपूर्व दिशा (ईशानकोण) मे (अपनी बायी ओर) श्वेतवस्त्र से आच्छादित तथा सरसो आदि मांगलिक

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५४०-५४१

पदार्थो से उपचरित आठ भद्रासन रखवाए। तत्पश्चात् अपने से न अतिदूर और न अतिनिकट अनेक प्रकार के मणिरत्नो से सुशोभित, अत्यधिक दर्शनीय, वहुमूल्य श्रेष्ठ पट्टन मे निर्मित सूक्ष्म पट पर सैकडो चित्रो की रचना से व्याप्त, ईहामृग, वृषभ आदि के यावत् पद्मलता के चित्र से युक्त, एक आभ्यन्तरिक (अदर की) यवनिका (पर्दा) लगवाई। (उस पर्दे के अन्दर) अनेक प्रकार के मणि-रत्नो से एवं चित्रो से रचित विचित्र खोली (अस्तर) वाले, कोमल वस्त्र (मसूरक) से आच्छादित, तथा श्वेत वस्त्र चढाया हुआ, अगो को मुखद स्पर्श वाला तथा सुकोमल गद्दीयुक्त एक भद्रासन रखवा दिया। फिर वलराजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उन्हे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अष्टाग महानिमित्त के सूत्र और अर्थ के ज्ञाता, विविध शास्त्रो मे कुशल स्वप्न-शास्त्र के पाठको को वुला लाओ।

३०. तए ण ते कोडुंवियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता बलस्स रण्णो अतियाओ पडिनिक्खमंति, पडि० २ सिग्घं तुरियं चवल चंड वेइय हत्थिणापुर नगर मज्झंमज्झेण जेणेव तेसिं सुविणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, ते० उ० २ ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति।

[३०] इस पर उन कौटुम्बिक पुरुषो ने यावत् राजा का आदेश स्वीकार किया और राजा के पास से निकले। फिर वे शीघ्र, चपलता युक्त, त्वरित, उग्र (चण्ड) एव वेग वाली तीव्र गति से हस्तिनापुर नगर के मध्य मे होकर जहाँ उन स्वप्नलक्षण-पाठको के घर थे, वहाँ पहुँचे और उन्हे राजाज्ञा सुनाई। इस प्रकार स्वप्नलक्षणपाठको को उन्होने वुलाया।

३१. तए ण ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रण्णो कोडुंवियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कय० जाव सरीरा सिद्धत्थग-हरियालियकयमगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गिहेहितो निग्गच्छंति, स० नि० २ हत्थिणापुरं नयर मज्झंमज्झेण जेणेव बलस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उ० २ भवणवरवडेंसगपडिदुवारंसि एगतो मिलंति, ए० मि० २ जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छंति, ते० उ० २ करयल० बल राय जएणं विजएणं वद्धावेंति। तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलेण रण्णा वंदियपूइयसक्कारियसम्माणिया समाणा पत्तेय पत्तेय पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति।

[३१] वे स्वप्नलक्षण-पाठक भी वलराजा के कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाए जाने पर अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुए। उन्होने स्तानादि करके यावत् शरीर को अलकृत किया। फिर वे अपने मस्तक पर सरसो और हरी दूव से मगल करके अपने-अपने घर से निकले, और हस्तिनापुर नगर के मध्य मे होकर जहाँ वलराजा का उत्तम शिखररूप राज्य-प्रासाद था, वहाँ आए। उस उत्तम राजभवन के द्वार पर वे स्वप्नपाठक एकत्रित होकर मिले और जहाँ राजा की वाहरी उपस्थानशाला थी, वहाँ सभी मिल कर आए। वलराजा के पास आ कर, उन्होने हाथ जोड कर वलराजा को 'जय हो, विजय हो' आदि शब्दो से वधाया। वलराजा द्वारा वन्दित, पूजित, सत्कारित एव सम्मानित किये गए वे स्वप्नलक्षण-पाठक प्रत्येक के लिए पहले से विछाए किसे हुए उन भद्रासनो पर वैठे।

विवेचन—सिंहासनस्थ वलराजा द्वारा उपस्थानशाला मे भद्रासन स्थापित कराना। एवं स्वप्न-पाठक आमंत्रित करना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२९ से ३१) मे निम्नोक्त वृत्तान्त प्रस्तुत किये गए है—

(१) बलराजा का सुसज्जित होकर उपस्थानशाला मे आगमन, (२) कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा वहाँ यवनिका एव भद्रासन लगवाए गए। (३) स्वप्नलक्षण-पाठको को बुलाने का आदेश, (४) राजा का आमत्रण पा कर स्वप्नलक्षणपाठको का आगमन, आशीर्वचन, राजा द्वारा सत्कारित एव अपने-अपने भद्रासन पर स्वप्नपाठक उपविष्ट।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पच्चूसकालसमयसि—प्रभात काल के समय। **सयणिज्जाओ**—शय्या से। **अट्टणसाला**—व्यायामशाला। **मज्जणघरे**—स्नानगृह। **अहिय-पेच्छणिज्जं**—अधिक दर्शनीय। **महग्घवरपट्टणुगय**—महामूल्यवान् श्रेष्ठ पट्टन मे बना हुआ। **सण्हपट्टभत्तिसयचित्तताण**—जिसके ऊपर का वितान अथवा ताना सूक्ष्म (वारीक) सूत का और सैकडो प्रकार की कलाओ से चित्रित था। **जवणिय**—यवनिका-पर्दा। **अछावेति**—खिचवाता है, लगवाता है। **अत्थरय-मउय-मसूरगोत्थग**—वह अस्तर (अदर के वस्त्र), एव कोमल मसूरक (तकियो) से युक्त था। **सेयवत्थ-पच्चत्थुत**—उस पर गद्दीयुक्त श्वेत वस्त्र ढका हुआ था। **वेइय**—वेग वाली। **सिद्धत्थग**—सिद्धार्थक—सरसो। **हरियालिय**—हरी दूब। **पुव्वन्नत्थेसु**—पहले बिछाए हुए।[2]

स्वप्नपाठकों से स्वप्नफल और उनके द्वारा समाधान

३२. तए ण से बले राया पभावति देविं जवणियतरियं ठावेइ, ठा० २ पुप्फ-फलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएण ते सुविणलक्खणपाढए एव वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! पभावती देवी अज्ज तसि तारिसगसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ताण पडिबुद्धा, त ण देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स जाव के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भवस्सति ?

[३२] तत्पश्चात् बल राजा ने प्रभावती देवी को (बुलाकर) यवनिका की आड मे बिठाया। फिर पुष्प और फल हाथो मे भर कर बलराजा ने अत्यन्त विनयपूर्वक उन स्वप्नलक्षणपाठको से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! आज प्रभावती देवी तथारूप उस वासगृह मे शयन करते हुए यावत् स्वप्न मे सिंह (तथारूप) देखकर जागृत हुई है। तो हे देवानुप्रियो ! इस उदार यावत् कल्याणकारक स्वप्न का क्या फलविशेष होगा ?

३३. [१] तए ण ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० त० सुविण ओगिण्हति, त० ओ० २ ईहं पविसति, ईह पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहण करेंति, त० क० १ अन्नमन्नेण सद्धि संचालेंति अ० स० २ तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा बलस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइ उच्चारेमाणा एवं उच्चारेमाणा वयासी—

[३३-१] इस पर बल राजा से इस (स्वप्नफल सम्बन्धी) प्रश्न को सुनकर एव हृदय मे अवधारण कर वे स्वप्नलक्षणपाठक प्रसन्न एव सन्तुष्ट हुए। उन्होने उस स्वप्न के विषय मे सामान्य विचार (अवग्रह) किया, फिर विशेष विचार (ईहा) मे प्रविष्ट हुए, तत्पश्चात् उस स्वप्न के अर्थ का निश्चय किया। फिर परस्पर-एक दूसरे के साथ विचार-चर्चा की, फिर उस स्वप्न का अर्थ स्वय

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू पा टि), भा २, पृ ५४१-५४२। २ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४२

जाना, दूसरे से ग्रहण किया, एक दूसरे से पूछकर शका-समाधान किया, अर्थ का निश्चय किया और अर्थ पूर्णतया मस्तिष्क मे जमाया। फिर वल राजा के समक्ष स्वप्नशास्त्रो का उच्चारण करते हुए इस प्रकार वोले—

[२] "एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह सुविणसत्थंसि वायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, वावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ णं देवाणुप्पिया ! तित्थयरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थगरंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ताणं पडिवुज्झंति, तं जहा—

गय वसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयरं झयं कुंभं।
पउमसर सागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिहिं च ॥१॥

वासुदेवमायरो णं वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अन्नयरे सत्त महासुविणे पासित्ताणं पडिवुज्झंति। वलदेवमायरो वलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ताणं पडिवुज्झंति। मंडलियमायरो मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एतेसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अन्नयरं एगं महासुविणं पासित्ताणं पडिवुज्झंति।"

[३३-२] "हे देवानुप्रिय ! हमारे स्वप्नशास्त्र मे वयालीस सामान्य स्वप्न और तीस महास्वप्न, इस प्रकार कुल वहत्तर स्वप्न वताए है। तीर्थंकर की माताएँ या चक्रवर्ती की माताएँ, जव तीर्थंकर या चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं, तव इन तीस महास्वप्नो मे से ये १४ महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं। जैसे कि—(१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) अभिषिक्त लक्ष्मी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कुम्भ (कलश), (१०) पद्म-सरोवर, (११) सागर, (१२) विमान या भवन, (१३) रत्नराशि और (१४) निर्धूम अग्नि ॥१॥

जब वासुदेव गर्भ मे आते हैं, तव वासुदेव की माताएँ इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई भी सात महास्वप्न देखकर जागती है। जव वलदेव गर्भ मे आते है, तव वलदेव-माताएँ इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई भी चार महास्वप्न देखकर जागती है। माण्डलिक जव गर्भ मे आते है, तव माण्डलिक की माताएँ, इन मे से कोई एक महास्वप्न देखकर जागती है।"

[३] "इमे य णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, तं ओराले णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-जाव मंगल्लकारए णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे। अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो० पुत्तलाभो० रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! ।"

[३३-३] "हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने इन (चौदह महास्वप्नो) मे से एक महास्वप्न देखा है। अत , हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने उदार स्वप्न देखा है, सचमुच प्रभावती देवी ने यावत् आरोग्य, तुष्टि यावत् मगलकारक स्वप्न देखा है। (यह स्वप्न सुख-समृद्धि का सूचक है।) हे देवानुप्रिय ! इस स्वप्न के फलरूप आपको अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ एव राज्यलाभ होगा।"

[४] "एव खलु देवाणुप्पिया ! पभावती देवी नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण जाव वीतिक्कंताण तुम्हं कुलकेउं जाव पयाहिति । से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे जाव रज्जवती राया भविस्सति, अणगारे वा भावियप्पा । तं ओराले णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण जाव दिट्ठे ।"

[३३-४] अत, हे देवानुप्रिय ! यह निश्चित है कि प्रभावती देवी नौ मास और साढे सात दिन व्यतीत होने पर आपके कुल मे ध्वज (केतु) के समान यावत् पुत्र को जन्म देगी । वह बालक भी बाल्यावस्था पार करने पर यावत् राज्याधिपति राजा होगा अथवा वह भावितात्मा अनगार होगा । इसलिए हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने जो यह स्वप्न देखा है, वह उदार है, यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु एव कल्याणकारक यावत् स्वप्न देखा है ।

विवेचन—राजा की स्वप्नफलजिज्ञासा और स्वप्नपाठको द्वारा समाधान—प्रस्तुत (३२-३३) दो सूत्रो मे निम्नलिखित घटनाओ का प्रतिपादन किया गया है—(१) राजा के द्वारा प्रभावती रानी के देखे हुए स्वप्न के फल की जिज्ञासा, (२) स्वप्नपाठको द्वारा सामान्य-विशेषरूप से स्वप्न के सम्बन्ध मे ऊहापोह एव परस्पर विचार-विनिमय करके फल का निश्चय, (३) स्वप्नपाठको द्वारा स्वप्नशास्त्रानुसार स्वप्नो के प्रकार का एव महास्वप्नो को देखने वाली विभिन्न माताओ का विश्लेषण तथा (४) प्रभावती रानी द्वारा देखे गए एक महास्वप्न के प्रकार का निर्णय, (५) उक्त महास्वप्न के फलस्वरूप प्रभावती देवी के राज्याधिपति या भावितात्मा अनगार के रूप मे पुत्र होने का भविष्य कथन ।[1]

विमान और भवन : दो स्वप्न या एक—तीर्थंकर या चक्रवर्ती जब माता के गर्भ मे आते हैं, तब उनकी माता १४ महास्वप्न देखती हैं । उनमे से १२ वे स्वप्न मे दो शब्द हैं—विमान और भवन । उसका आशय यह है कि जो जीव देवलोक से आकर तीर्थंकर के रूप मे जन्म लेता है, उसकी माता स्वप्न मे 'विमान' देखती है और जो जीव नरक से आकर तीर्थंकर रूप मे जन्म लेता है, उसकी माता स्वप्न मे 'भवन' देखती है ।[2]

राजा द्वारा स्वप्नपाठक सत्कृत एवं रानी को स्वप्नफल सुना कर प्रोत्साहन

३४. तए णं से बले राया सुविणलक्खणपाढगाण अंतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-करयल जाव कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एवं वयासी—'एवमेय देवाणुप्पिया ! जाव से जहेयं तुब्भे वदह', त्ति कट्टु तं सुविणं सम्म पडिच्छति, तं० प० २ सुविणलक्खणपाढए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइम-पुप्फ-वत्थ-गंधमल्लालकारेणं सक्कारेति सम्माणेति, स० २ विउल जीवियारिहं पीतिदाणं दलयति, वि० द० २ पडिविसज्जेति, पडि० २ सीहासणाओ अब्भुट्ठेति, सी० अ० २ जेणेव पभावती देवी तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ पभावतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरिं

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण), भा २, पृ ५४२-५४३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४३

सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ ण देवाणुप्पिए! तित्थगरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा, तं चेव जाव अन्नयरं एग महासुविण पासित्ताणं पडिबुज्झति। इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए! एगे महासुविणे दिट्ठे। तं ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे जाव रज्जवती राया भविस्सति अणगारे वा भावियप्पा, तं ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे" त्ति कट्टु पभावति देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव दोच्चं पि तच्च पि अणुबूहइ।

[३४] तत्पश्चात् स्वप्नलक्षणपाठको से इस (उपर्युक्त) स्वप्नफल को सुन कर एव हृदय मे अवधारण कर वल राजा अत्यन्त प्रसन्न एव सन्तुष्ट हुआ। उसने हाथ जोड कर यावत् उन स्वप्न-लक्षणपाठको से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! आपने जैसा स्वप्नफल बताया, यावत् वह उसी प्रकार हे।" इस प्रकार कह कर स्वप्न का अर्थ सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया। फिर उन स्वप्न-लक्षणपाठको को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलकारो से सत्कारित-सम्मानित किया, जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया एव सबको विदा किया।

तत्पश्चात् वल राजा अपने सिंहासन से उठा और जहाँ प्रभावती देवी बैठी थी, वहाँ आया और प्रभावती देवी को इष्ट, कान्त यावत् मधुर वचनो से वार्तालाप करता हुआ (स्वप्नपाठको से सुने हुए स्वप्न-फल को) इस प्रकार कहने लगा—"देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र मे ४२ सामान्य स्वप्न और ३० महास्वप्न, इस प्रकार ७२ स्वप्न वताए है। देवानुप्रिये! उनमे से तीर्थंकरो की माताएँ या चक्रवर्तियो की माताएँ इनमे से किन्ही १४ महास्वप्नो को देखकर जागती है, इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् माण्डलिको की माताएँ इन मे से किसी एक महास्वप्न को देखकर जागृत होती हे। देवानुप्रिये! तुमने भी इन चौदह महास्वप्नो मे से एक महास्वप्न देखा है। हे देवी! सचमुच तुमने एक उदार स्वप्न देखा है, जिसके फलस्वरूप तुम यावत् एक पुत्र को जन्म दोगी, जो या तो यावत् राज्याधिपति राजा होगा, अथवा भावितात्मा अनगार होगा। इसलिए, देवानुप्रिये! तुमने एक उदार यावत् मगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार इष्ट, कान्त, प्रिय यावत् मधुर वचनो से उसी वात को दो-तीन वार कह कर उसकी प्रसन्नता मे वृद्धि की।

विवेचन—राजा द्वारा स्वप्नपाठक सत्कारित-सम्मानित तथा प्रभावती देवी को स्वप्नफल-सुना कर प्रोत्साहित किया—प्रस्तुत ३४ वे सूत्र मे दो घटनाक्रमो का उल्लेख है—स्वप्नपाठको से स्वप्नफल सुनकर राजा ने उनका सत्कार-सम्मान किया और (२) स्वप्नपाठको से सुना हुआ स्वप्नफल रानी को सुनाया और उसकी प्रसन्नता बढाई।[1]

जीवियारिह पीतिदाणं: —जीवननिर्वाह हो सके, इतने धन का प्रीतिपूर्वक दान। अथवा जीविकोचित प्रीतिदान।[2]

स्वप्नफल श्रवणानन्तर प्रभावती द्वारा यत्नपूर्वक गर्भ-संरक्षण

३५. तए ण सा पभावती देवी बलस्स रण्णो अतिय एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल जाव एव वदासी—एवमेयं देवाणुप्पिया! जाव त सुविणं सम्मं पडिच्छति, त० पडि०

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २, (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ५४४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४३

२ बलेणं रण्णा अब्भणुण्णाता समाणी नाणामणि-रयणभत्ति जाव अब्भुट्ठेति, अ० २ अतुरितमचवल जाव गतीए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ सयं भवणमणुपविट्ठा ।

[३५] तब बल राजा से उपर्युक्त (स्वप्न-फलरूप) अर्थ सुन कर एव उस पर विचार करके प्रभावती देवी हर्षित एव सन्तुष्ट हुई । यावत् हाथ जोड कर इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय ! जैसा आप कहते हैं, वैसा ही यह (स्वप्नफल) है । यावत् इस प्रकार कह कर उसने स्वप्न के अर्थ को भलीभाति स्वीकार किया और बल राजा की अनुमति प्राप्त होने पर वह अनेक प्रकार के मणिरत्नो की कारीगरी से निर्मित उस भद्रासन से यावत् उठी, शीघ्रता तथा चपलता से रहित यावत् हसगति से जहाँ अपना (वास) भवन था, वहाँ आ कर अपने भवन मे प्रविष्ट हुई ।

३६ तए ण सा पभावती देवी ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सव्वालकारविभूसिया त गब्भ णातिसीतेहिं नातिउण्हेहिं नातितित्तेहिं नातिकडुएहिं नातिकसाएहिं नातिअंबिलेहिं नातिमहुरेहिं उउभयमाणसुहेहिं भोयण-ऽच्छायण-गंध-मल्लेहि जं तस्स गब्भस्स हिय मित पत्थं गब्भपोसण त देसे य काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पतिरिक्कसुहाए मणाणुकूलाए विहारभूमीए पसत्थदोहला सपुण्णदोहला सम्माणियदोहला अविमाणियदोहला वोच्छिन्नदोहला विणीयदोहला ववगयरोग-सोग-मोह-भय-परित्तासा तं गब्भं सुहसुहेणं[1] परिवहइ ।

[३६] तदनन्तर प्रभावती देवी ने स्नान किया, शान्तिकर्म किया और फिर समस्त अलकारो से विभूषित हुई । तत्पश्चात् वह अपने गर्भ का पालन करने लगी । अब उस गर्भ का पालन करने के लिए वह न तो अत्यन्त शीतल (ठडे) और न अत्यन्त उष्ण, न अत्यन्त तिक्त (तीखे) और न अत्यन्त कडुए, न अत्यन्त कसैले, न अत्यन्त खट्टे और न अत्यन्त मीठे पदार्थ खाती थी परन्तु ऋतु के योग्य सुखकारक भोजन आच्छादन (आवास या वस्त्र), गन्ध एव माला का सेवन करके गर्भ का पालन करती थी । वह गर्भ के लिए जो भी हित, परिमित, पथ्य तथा गर्भपोषक पदार्थ होता, उसे ग्रहण करती तथा उस देश और काल के अनुसार आहार करती रहती थी तथा जब वह दोषो से रहित (वियुक्त) मृदु शय्या एव आसनो से एकान्त शुभ या सुखद मनोनुकूल विहारभूमि मे थी, तब प्रशस्त दोहद उत्पन्न हुए, वे पूर्ण हुए । उन दोहदो को सम्मानित किया गया ।

किसी ने उन दोहदो की अवमानना नही की । इस कारण वे दोहद समाप्त हुए, सम्पन्न हुए । वह रोग, शोक, मोह, भय, परित्रास आदि से रहित होकर उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी ।

विवेचन—प्रभावती रानी द्वारा गर्भ का परिपालन—प्रस्तुत ३५-३६ सूत्र मे दो तथ्यो का निरूपण किया गया है—(१) प्रभावती रानी द्वारा स्वप्न का शुभ फल जान कर हर्षाभिव्यक्ति एव (२) गर्भ का भलीभाति पालन ।[2]

---

१ पाठान्तर—"सुहसुहेण आसयइ सुयइ चिट्ठइ निसीयइ तुयट्टइ ।" अर्थात्—गर्भवती प्रभावती देवी सुखपूर्वक आश्रय लेती है, सोती है, खडी होती है, बैठती है, करवट बदलती है । —भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४३

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५४४-५४५

'पसत्थदोहला' आदि शब्दो का भावार्थ—पसत्थदोहला—उसके दोहद अनिन्द्य थे। संपुण्णदोहला—दोहद पूर्ण किये गए। सम्माणियदोहला—अभिलाषा के अनुसार उसके दोहद सम्मानित किये गए। अविमाणियदोहला—क्षणभर भी लेशमात्र भी दोहद अपूर्ण न रहे। वोच्छिन्नदोहला—गर्भवती की मनोवांछाएँ समाप्त हो गई। विणीयदोहला—सब दोहले सम्पन्न हो गए। हियं मियं पत्थं गब्भपोसणं—गर्भ के लिए हितकर, परिमित, पथ्यकर एव पोषक। उउभयमाणसुहेहिं—प्रत्येक ऋतु मे उपभोग्य सुखकारक। विवित्तमउएहिं—विविक्त—दोषरहित एव कोमल।[1]

पुत्रजन्म, दासियो द्वारा बधाई और उन्हे राजा द्वारा प्रीतिदान

३७. तए ण सा पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण य राइंदियाण वीतिक्कंताणं सुकुमालपाणि-पायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं जाव ससिसोमागारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाता।

[३७] इसके पश्चात् नौ महीने और साढे सात दिन परिपूर्ण होने पर प्रभावती देवी ने, सुकुमाल हाथ और पैर वाले, हीन अगो से रहित, पाचो इन्द्रियो से परिपूर्ण शरीर वाले तथा लक्षण-व्यञ्जन और गुणो से युक्त यावत् चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन एव सुरूप पुत्र को जन्म दिया।

३८. तए ण तीसे पभावतीए देवीए अगपडियारियाओ पभावतिं देविं पसूयं जाणेत्ता जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छति, उवा० २ करयल जाव बल राय जएण विजएणं वद्धावेंति, ज० व० २ एव वदासि—एवं खलु देवाणुप्पिया! पभावती देवी नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण जाव दारयं पयाता, त एयं णं देवाणुप्पियाण पियट्ठताए पिय निवेदेमो, पिय ते भवउ।

[३८] पुत्र जन्म होने पर प्रभावती देवी की अगपरिचारिकाएँ (सेवा करने वाली दासियाँ) प्रभावती देवी को प्रसूता (पुत्रजन्मवती) जान कर बल राजा के पास आई, और हाथ जोड कर उन्हे जय—विजय शब्दो से बधाया। फिर उन्होने राजा से इस प्रकार निवेदन किया—हे देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने नौ महीने और साढे सात दिन पूर्ण होने पर यावत् सुरूप बालक को जन्म दिया है। अत देवानुप्रिय की प्रीति के लिए हम यह प्रिय समाचार निवेदन करती हैं। यह आपके लिए प्रिय हो।

३९. तए णं से बले राया अगपडियारियाण अतियं एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव धाराहयणीव जाव रोमकूवे तासिं अगपडियारियाणं मउडवज्ज जहामालिय ओमोय दलयति, ओ० द० २ सेतं रययमय विमलसलिलपुण्ण भिंगार पगिण्हति, भिं० प० २ मत्थए धोवति, म० धो० २ विउलं जीवियारिहं पीतिदाणं दलयति, वि० द० २ सक्कारेइ सम्माणेइ, स० २ पडिविसज्जेति।

[३९] अगपरिचारिकाओ (दासियो) से यह (पुत्रजन्मरूप) प्रिय समाचार सुन कर एव हृदय मे धारण कर बल राजा हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ, यावत् मेघ की धारा से सिंचित कदम्बपुष्प

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४३

के समान उसके रोमकूप विकसित हो गए। बल राजा ने अपने मुकुट को छोड कर धारण किये हुए शेष सभी आभरण उन अगपरिचारिकाओ को (पारितोषिकरूप मे) दे दिये। फिर सफेद चादी का निर्मल जल से भरा हुआ कलश ले कर उन दासियो का मस्तक धोया अर्थात् उन्हे दासीपन से मुक्त-स्वतत्र कर दिया। उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हे विदा किया।

विवेचन—पुत्रजन्म, बधाई, राजा द्वारा प्रीतिदान—प्रस्तुत तीन सूत्रो (३७ से ३९ तक) मे तीन घटनाओ का निरूपण किया गया है—(१) प्रभावती रानी के पुत्र का जन्म, (२) अगपरिचारिकाओ द्वारा बल राजा को बधाई और (३) बल राजा द्वारा दासियों का मस्तक-प्रक्षालन अर्थात् पुत्रजन्म के हर्ष मे उन्हे दासत्व से मुक्त करना, जीविकायोग्य प्रीतिदान देना और सत्कार-सम्मानपूर्वक विसर्जन।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अद्धट्ठमाण य राइदियाण—साढे सात रात्रिदिन। **अगपडियारियाओ**—अगपरिचारिकाएँ—दासियाँ, सेविकाएँ। **पियट्ठताए**—प्रीति के लिए। **मउडवज्ज**—मुकुट के सिवाय। **जहामालियं**—जिस प्रकार (जो) धारण किये हुए (पहने हुए) था। **ओमोय**—आभूषण। **दलयति**—दे देता है।[2]

अग-परिचारिकाओ का मस्तक धोने की क्रिया, उनको दासत्व से मुक्त करने की प्रतीक है। जिस दासी का मस्तक धो दिया जाता था, उसे उस युग मे दासत्व से मुक्त समझा जाता था।[3]

पुत्रजन्म-महोत्सव एवं नामकरण का वर्णन

४०. तए णं से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, को० स० एव वदासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हत्थिणापुरे नगरे चारगसोहण करेह, चा० क० २ माणुम्माणवड्ढण करेह, मा० क० २ हत्थिणापुर नगर सब्भितरबाहिरियं आसियसम्मज्जियोवलित्त जाव करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य, जूवसहस्स वा, चक्कसहस्स वा, पूयामहामहिमसक्कार वा ऊसवेह, ऊ० २ ममेतमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

[४०] इसके पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उन्हे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! हस्तिनापुर नगर मे शीघ्र ही चारक-शोधन अर्थात्—बन्दियो का विमोचन करो, और मान (नाप) तथा उन्मान (तौल) मे वृद्धि करो। फिर हस्तिनापुर नगर के बाहर और भीतर छिडकाव करो, सफाई करो और लीप-पोत कर शुद्धि (यावत्) करो—कराओ। तत्पश्चात् यूप (जूवा) सहस्र और चक्रसहस्र की पूजा, महामहिमा और सत्कारपूर्वक उत्सव करो। मेरे इस आदेशानुसार कार्य करके मुझे पुन निवेदन करो।'

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५४५

२ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १९४३
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४३

३ वही, अ वृत्ति, पत्र ५४३

४१. तए ण ते कोडुंवियपुरिसा वलेण रण्णा एवं वुत्ता जाव पच्चपिणंति ।

[४१] तदनन्तर वल राजा के उपर्युक्त आदेशानुसार यावत् कार्य करके उन कौटुम्बिक पुरुषो ने आज्ञानुसार कार्य हो जाने का निवेदन किया ।

४२. तए ण से वले राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ त चेव जाव मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, प० २ उस्सुक उक्कर उक्किट्ठ अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेस अदडको-दंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालाचराणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदाम पमुइयपक्कीलिय सपुरजणजाणवय दसदिवसे ठितिवडियं करेति ।

[४२] तत्पश्चात् वल राजा व्यायामशाला मे गये । वहाँ जाकर व्यायाम किया और स्नानादि किया, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वल राजा स्नानगृह से निकले । (नरेश ने दस दिन के लिए) प्रजा मे शुल्क तथा कर लेना वन्द कर दिया, भूमि के कर्षण—जोतने का निषेध कर दिया, क्रय, विक्रय का निषेध कर देने मे किसी को कुछ मूल्य देना, या नाप-तौल करना न रहा । कुटुम्बियो (प्रजा) के घरो मे सुभटो का प्रवेश वद कर दिया । राजदण्ड से प्राप्य दण्ड द्रव्य तथा अपराधियो को दिये गए कुदण्ड मे प्राप्य द्रव्य लेने का निषेध कर दिया । किसी को ऋणी न रहने दिया जाए। इसके अतिरिक्त (वह उत्सव) प्रधान गणिकाओ तथा नाटकसम्वन्धी पात्रो से युक्त था । अनेक प्रकार के तालानुचरो द्वारा निरन्तर करताल आदि तथा वादको द्वारा मृदग उन्मुक्त रूप मे वजाए जा रहे थे । विना कुम्हलाई हुई पुष्पमालाओ (से यत्रतत्र सजावट की गई थी ।) उसमे आमोद-प्रमोद और खेलकूद करने वाले अनेक लोग भी थे । सारे ही नगरजन एव जनपद के निवासी (इस उत्सव मे सम्मिलित थे ।) इस प्रकार दस दिनो तक राजा द्वारा पुत्रजन्म महोत्सव प्रक्रिया (स्थितिपतिता—कुलमर्यादागत प्रक्रिया) होती रही ।

४३. तए णं से वले राया दसाहियाए ठितिवडियाए वट्टमाणीए सतिए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य सतिए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य लाभे पडिच्छेमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं विहरति ।

[४३] इन दस दिनो की पुत्रजन्म सवधी महोत्सव-प्रक्रिया (स्थितिपतिता) जव प्रवृत्त हो (चल) रही थी, तव वल राजा सैकडो, हजारो और लाखो रुपयो के खर्च वाले याग-कार्य करता रहा तथा दान और भाग देता और दिलवाता हुआ एव सैकडो, हजारो और लाखो रुपयो के लाभ (उपहार) देता और स्वीकारता रहा ।

४४. तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठितिवडिय करेंति, ततिए दिवसे चद-सूरदंसावणिय करेंति, छट्ठे दिवसे जागरिय करेंति । एक्कारसमे दिवसे वीतिक्कंते, निव्वत्ते असुइजाय-कम्मकरणे, संपत्ते वारसाहदिवसे विउलं असण-पाण-खाइम-साइम उवक्खडावेंति, उ० २ जहा सिवो (स. ११ उ. ९ सु. ११) जाव खत्तिए य आमतेंति, आ० २ ततो पच्छा ण्हाता कत० तं चेव जाव सक्कारेंति सम्माणेंति, स० २ तस्सेव मित्त-णाति जाव राईण य खत्तियाण य पुरितो अज्जयपज्जय-पिउपज्जयागयं वहुपुरिसपरंपरप्परूढं कुलाणुरूव कुलसरिसं कुलसंताणतंतुवद्धणकरं अयमेयारूव गोण्णं

गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए बलस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए तं होउ ण अम्हं इमस्स दारयस्स नामधेज्जं महब्बले। तए णं तस्य दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति 'महब्बले' त्ति।

[४४] तदनन्तर उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन कुलमर्यादा के अनुसार प्रक्रिया (स्थितिपतिता) की। तीसरे दिन (बालक को) चन्द्र-सूर्य-दर्शन की क्रिया की। छठे दिन जागरिका (जागरणरूप उत्सव क्रिया) की। ग्यारह दिन व्यतीत होने पर अशुचि जातककर्म मे निवृत्ति की। बारहवाँ दिन आने पर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम (चतुर्विध आहार) तैयार कराया। फिर (श ११, उद्देशक ६, सू ११ मे कथित) शिव राजा के समान यावत् समस्त क्षत्रियो यावत् ज्ञातिजनो को आमन्त्रित किया और भोजन कराया।

इसके पश्चात् स्नान एव बलिकर्म किए हुए राजा ने उन सब मित्र, ज्ञातिजन आदि का सत्कार-सम्मान किया। और फिर उन्ही मित्र, ज्ञातिजन यावत् राजा और क्षत्रियो के समक्ष अपने पितामह, प्रपितामह एव पिता के प्रपितामह आदि से चले आते हुए, अनेक पुरुषों की परम्परा से रूढ, कुल के अनुरूप, कुल के सदृश (योग्य) कुलरूप सन्तान-तन्तु की वृद्धि करने वाला, गुणयुक्त एवं गुणनिष्पन्न ऐसा नामकरण करते हुए कहा—चूंकि हमारा यह बालक बल राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिए (हम चाहते हैं कि) हमारे इस बालक का महाबल' नाम हो। अतएव उस बालक के माता-पिता ने उसका नाम 'महाबल' रखा।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (४० से ४४ तक) मे निम्नोक्त घटनाक्रम का वर्णन किया गया है— (१) बल राजा द्वारा कौटुम्बिक पुरुषो को नगर-स्वच्छता, कैदियो को मुक्ति, नापतौल में वृद्धि, पूजा आदि से पुत्र-जन्ममहोत्सव की तैयारी का आदेश, (२) दस दिनो के पुत्रजन्ममहोत्सव मे अनेक प्रकार के आयोजन राजा द्वारा कराए गए, (३) माता-पिता द्वारा—प्रथम, तृतीय, छठे, ग्यारहवें एव बारहवे दिवस तक के पुत्रजन्म उत्सव से सम्बन्धित विविध कार्यक्रम सम्पन्न कराए, (४) मित्र, ज्ञातिजन आदि सबको आमन्त्रित कराया, भोजन तैयार कराया, भोजन कराया। (५) तदनन्तर कुलपरम्परानुसार बालक का गुणनिष्पन्न नाम महाबल रखा।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—चारगसोहणं—कारागार खाली करना—कैदियो को छोडना। **उस्सुक्क**—शुल्करहित, **उक्करं**—कर रहित। **उक्किट्ठ**—भूमिकर्षण-रहित। **अभडप्पवेसं**—प्रजा के घर मे सुभट-प्रवेश निषिद्ध। **अदिज्जं**—नही देने योग्य—अदेय। **अमिज्जं**—नापने-तौलने योग्य नही। **अदंड-कोदंडिमं**—दण्डयोग्य द्रव्य तथा कुदण्डयोग्य द्रव्य के ग्रहण से रहित। **अधरिमं**—ऋण लेने-देने में होने वाले झगडो को रोकने मे धारणीय द्रव्य से रहित। **गणिया-वर-णाडइज्ज-कलियं**—प्रधानगणिकाओ तथा नाटक करने वालो से युक्त। **अणेयतालाचराणुचरियं**—अनेक तालचरो के द्वारा ताल आदि बजाने की सेवाओ से युक्त। **अणुद्धय-मुइंग**—मृदंगों को निरन्तर उन्मुक्तरूप से बजाने वाले वादकों मे युक्त। **ठितिवडियं**—स्थितिपतित—पुत्रजन्ममहोत्सव। **जाए**—याग-पूजा। **दाए**—दान। **भाए**—भाग। **असुइजायकम्मकरणं**—अशुचिनिवारण रूप जातक करना। **अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागयं**—

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा. २, पृ ५४६-५४७

पितामह, प्रपितामह एव पिता के प्रपितामह द्वारा आया हुआ। **बहुपुरिसपरपरप्परूढं**—अनेक पूर्वपुरुषो की परम्परा—पीढियो से रूढ। **गोण्ण**—गुणानुसार।[1]

महाबल का पंच धात्रियो द्वारा पालन एवं तारुण्यभाव

४५ तए णं से महब्बले दारए पचधातीपरिग्गहिते, त जहा—खीरधातीए एवं जहा दढप्पतिण्णे[2] जाव निवातनिव्वाघातसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

[४५] तदनन्तर उस बालक महाबल कुमार का—१ क्षीरधात्री, २ मज्जनधात्री, ३ मण्डन-धात्री, ४ क्रीडनधात्री और ५ अकधात्री, इन पाच धात्रियो द्वारा राजप्रश्नीयसूत्र मे वर्णित दृढप्रतिज्ञ कुमार के समान लालन-पालन होने लगा यावत् वह महाबल कुमार वायु और व्याघात से रहित स्थान मे रही हुई चम्पकलता के समान अत्यन्त सुखपूर्वक बढने लगा।

४६. तए ण तस्स महब्बलस्स दारगस्स अम्मा-पियरो अणुपुव्वेणं ठितिवडियं वा चंद-सूर-दसावणियं वा जागरिय वा नामकरण वा परंगामण वा पयचंकमावण वा जेमावणं वा पिंडवद्धण वा पजंपामण वा कण्णवेहणं वा संवच्छरपडिलेहणं वा चोलोयणगं वा उवणयण वा अन्नाणि य बहूणि गब्भाधाणजम्मणमादियाइं कोतुयाइं करेंति।

[४६] साथ ही, महाबल कुमार के माता-पिता ने अपनी कुलमर्यादा की परम्परा के अनुसार (जन्मदिन से लेकर) क्रमश चन्द्र-सूर्य-दर्शन, जागरण, नामकरण, घुटनो के बल चलना (परगामन), पैरो से चलना (पाद-चक्रमापन), अन्नप्राशन (अन्न-भोजन का प्रारम्भ करना), ग्रास-वर्द्धन (कौर बढाना), संभाषण (बोलना सिखाना), कर्णवेधन (कान बिंधाना), सवत्सरप्रतिलेखन (वर्षगाठ-मनाना) नवखत्त शिखा (चोटी) रखवाना और उपनयन सस्कार करना, इत्यादि तथा अन्य बहुत-से गर्भाधान, जन्म-महोत्सव आदि कौतुक किये।

४७. तए णं त महब्बलं कुमारं अम्मा-पियरो सातिरेगऽट्ठवासगं जाणित्ता सोभणंसि तिहि-करणनक्खत्तमुहुत्तंसि एव जहा दढप्पतिण्णो जाव[3] अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

[४७] फिर उस महाबल कुमार के माता-पिता ने उसे आठ वर्ष से कुछ अधिक वय का जान कर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त मे कलाचार्य के यहाँ पढने के लिए भेजा, इत्यादि समस्त वर्णन दृढप्रतिज्ञ कुमार के अनुसार कहना चाहिए यावत् महाबल कुमार भोगो का उपभोग करने मे समर्थ (तरुण) हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (४५ से ४७ तक) मे चार तथ्यो का अतिदेशपूर्वक सक्षिप्त वर्णन किया है—(१) पाच धात्रियो द्वारा महाबल का सुखपूर्वक पालन, (२) क्रमश चन्द्र-सूर्यदर्शन

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४४-५४५

२ औपपातिक सूत्र मे सूचित पाठ—'मज्जणधाईए मडणधाईए कीलावणधाईए, अकधाईए इत्यादि।

—औप सू ४०, पत्र ९८

३ 'एव जहा दढप्पतिण्णो' इत्यादि मे सूचित पाठ—"सोहणसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्त सि ण्हाय कयबलिकम्म कयकोउय-मगल-पायच्छित्त सव्वालकारविभूसिय महया इड्ढिसक्कारसमुदएण कलायरियस्स उवणयति इत्यादीति" अ वृ।

आदि सभी सस्कारो (कौतुक) का निरूपण और (३) पढने के लिए कलाचार्य के पास भेजना, (४) महाबल का भोगसमर्थ अर्थात् तरुण हो जाना।[1]

बल राजा द्वारा राजकुमार के लिए प्रासादनिर्माण

४८. तए णं त महब्बल कुमारं उम्मुक्कबालभाव जाव अलभोगसमत्थं विजाणित्ता अम्मा-पियरो अट्ठ पासायवडेंसए कारेंति। अब्भुग्गयमूसिय पहसिते इव वण्णओ जहा रायप्पसेणइज्जे जाव पडिरूवे। तेसि ण पासायवडेंसगाण बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगं भवण कारेंति अणेगखंभसयसन्निविट्ठ, वण्णओ जहा रायप्पसेणइज्जे पेच्छाघरमडवसि जाव पडिरूव।

[४८] महाबल कुमार को बालभाव से उन्मुक्त यावत् पूरी तरह भोग-समर्थ जानकर माता-पिता ने उसके लिए आठ सर्वोत्कृष्ट प्रासाद बनवाए। वे प्रासाद राजप्रश्नीयसूत्र (मे वर्णित प्रासाद-वर्णन) के अनुसार अत्यन्त ऊँचे यावत् सुन्दर (प्रतिरूप) थे। उन आठ श्रेष्ठ प्रासादो के ठीक मध्य मे एक महाभवन तैयार करवाया, जो अनेक सैकडो स्तभो पर टिका हुआ था। उसका वर्णन भी राजप्रश्नीयसूत्र के प्रेक्षागृहमण्डप के वर्णन के अनुसार जान लेना चाहिए यावत् वह अतीव सुन्दर था।

विवेचन—प्रस्तुत ४८ वे सूत्र मे महाबल कुमार के माता-पिता द्वारा उसके लिए आठ श्रेष्ठ प्रासाद और मध्य मे एक महाभवन बनवाने का उल्लेख है।

अब्भुग्गयमूसिय—अत्यन्त उच्चता को प्राप्त।[2]

पहसिते इव—मानो हँस रहा हो, इस प्रकार का प्रबल श्वेतप्रभापटल था।

आठ कन्याओ के साथ विवाह

४९. तए ण तं महब्बलं कुमारं अम्मा-पियरो अन्नया कयाइ सोभणसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तसि ण्हायं कयबलिकम्म कयकोउय-मगल-पायच्छित्त सव्वालकारविभूसिय पमक्खणग-ण्हाण-गीय-वाइय-पसाहणट्ठंगतिलग-कंकणअविहववहुउवणीयं मगल-सुजपितेहि य वरकोउय-मगलोव-यारकयसतिकम्मं सरिसियाणं सरित्तयाण सरिव्वयाण सरिसलायण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाण विणीयाण कयकोउय-मगलोवयारकतसतिकम्माण सरिसएहिं रायकुलेहिंतो आणितेल्लियाणं अट्ठण्ह रायवरकन्नाण एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।

[४९] तत्पश्चात् किसी समय शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त्त मे महाबल कुमार ने स्नान किया, न्योछावर करने की क्रिया (बलिकर्म) की, कौतुक-मगल प्रायश्चित्त किया। उसे समस्त अलकारो से विभूषित किया गया। फिर सौभाग्यवती (सधवा) स्त्रियो के द्वारा अभ्यगन, स्नान, गीत, वादित, मण्डन (प्रसाधन), आठ अगो पर तिलक (करना), लाल डोरे के रूप मे ककण (बाधना) तथा दही, अक्षत आदि मगल अथवा मगलगीत—विशेष-रूप मे आशीर्वचनो से मागलिक कार्य किये गए तथा उत्तम कौतुक एव मगलोपचार के रूप मे शान्तिकर्म किये गए। तत्पश्चात्

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मूलपाठटिप्पण), पृ ५४७

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४५

महाबल कुमार के माता-पिता ने समान जोडी वाली, समान त्वचा वाली, समान उम्र की, समान रूप, लावण्य, यौवन एव गुणो मे युक्त विनीत एव कौतुक तथा मगलोपचार की हुई तथा शान्तिकर्म की हुई और समान राजकुलो मे लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ एक ही दिन मे (महाबल कुमार का) पाणिग्रहण करवाया।

विवेचन—महाबल कुमार का पाणिग्रहण—उस युग के रीति-रिवाज एव मगलकार्य करने की प्रथा के अनुसार शुभ मुहूर्त मे माता-पिता ने समान जोडी की आठ राजकन्याओ के साथ विवाह कराया, जिनका वर्णन ४९ वे सूत्र मे है।[१]

कठिन शब्दो का भावार्थ **पमक्खणग**—प्रमक्षणक-अभ्यगन। **पसाहण**—मडन। **अट्ठ गतिलग**—आठ अगो पर तिलक-छापे। **ककण**—लाल डोरे (मौली) को हाथ मे बाधना। **अविहव-वहु**—सधवा वधुओ द्वारा। **उवणीय**—नेगचार किये गए या रीति-रिवाज पूरे किये गए। **मगल-सुजंपितेहि**—मगल अर्थात्—दही-अक्षत आदि अथवा मगलगीतविशेप से सौभाग्यवती नारियो द्वारा उच्चारण किये गए आशीर्वचन। **वरकोउय-मगलोवयारकयसतिकम्म**—श्रेष्ठ कौतुक एव मगलोपचारो से शान्तिकर्म (पापोपशमनक्रिया) किया।[२]

बल राजा तथा महाबल कुमार की ओर से नववधुओं को प्रीतिदान

५०. तए ण तस्स महब्बलस्स कुमारस्स अम्मा-पियरो अयमेयारूव पीतिदाणं दलयंति, तं जहा—अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, अट्ठ मउडे मउडप्पवरे, अट्ठकुडलजोए कुडल-जोयप्पवरे, अट्ठ हारे हारप्पवरे, अट्ठ अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, अट्ठ एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एव मुत्तावलीओ, एव कणगावलीओ, एव रयणावलीओ, अट्ठ कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एव तुडियजोए, अट्ठ खोमजुयलाइ खोमजुयलप्पवराइ, एवं वडगजुयलाइ, एव पट्टजुयलाइ, एव दुगुल्लजुयलाइं, अट्ठ सिरीओ अट्ठ हिरीओ, एव धितीओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, अट्ठ नदाइ, अट्ठ भद्दाइ, अट्ठ तले तलप्पवरे सव्वरयणामए णियगवरभवणकेऊ, अट्ठ झए झयप्पवरे, अट्ठ वए वयप्पवरे दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अट्ठ नाडगाइ नाडगप्पवराइ बत्तीसइबद्धेण नाडएण, अट्ठ आसे आसप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए, अट्ठ हत्थी हत्थिपवरे, सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए, अट्ठ जाणाइ जाणप्पवराइं, अट्ठ जुगाइ जुगप्पराइ, एव सिवियाओ, एव सदमाणियाओ, एव गिल्लीओ थिल्लीओ, अट्ठ वियडजाणाइं वियडजाणप्पवराइ, अट्ठ रहे पारिजाणिए, अट्ठ रहे सगामिए, अट्ठ आसे आसप्पवरे, अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे, अट्ठ गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएण गामेणं, अट्ठ दासे दासवप्पवरे, एव दासीओ, एव किंकरे, एव कचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एव महत्तरए, अट्ठ सोवण्णिए ओल-वणदीवे, अट्ठ रुप्पामए ओलवणदीवे, अट्ठ सुवण्णरुप्पामए ओलवणदीवे, अट्ठ सोवण्णिए उक्कंपणदीवे, एवं चेव तिण्णि वि; अट्ठ सोवण्णिए पजरदीवे, एव चेव तिण्णि वि; अट्ठ सोवण्णिए थाले, अट्ठ रुप्पामए थाले, अट्ठ सुवण्ण-रुप्पामए थाले, अट्ठ सोवण्णियाओ पत्तीओ, अट्ठ रुप्पामयाओ पत्तीओ, अट्ठ सुवण्ण रुप्पामयाओ पत्तीओ; अट्ठ सोवण्णियाइं थासगाइ ३, अट्ठ सोवण्णियाइ मल्लगाइ ३, अट्ठ

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५४८

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४७

सोवण्णियाओ तलियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ कविचिआओ ३, अट्ठ सोवण्णिए अवएडए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ अवयक्काओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पायपीढए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पल्लंके ३, अट्ठ सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ ३, अट्ठ० हंसासणाइं ३, अट्ठ० कोंचासणाइं ३, एवं गरुलासणाइं उन्नतासणाइं पणतासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं, अट्ठ० पउमासणाइं, अट्ठ० उसभासणाइं, अट्ठ० दिसासोवत्थियासणाइं, अट्ठ०[1] तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे जाव अट्ठ० सरिसवसमुग्गे, अट्ठ खुज्जाओ जहा उववातिए जाव अट्ठ पारसीओ, अट्ठ छत्ते, अट्ठ छत्तधारीओ चेडीओ, अट्ठ चामराओ, अट्ठ चामरधारीओ चेडीओ, अट्ठ तालियंटे, अट्ठ तालियंटधारीओ चेडीओ, अट्ठ करोडियाओ, अट्ठ करोडियाधारीओ चेडीओ, अट्ठ खीरधातीओ, जाव अट्ठ अंकधातीओ, अट्ठ अंगमद्दियाओ, अट्ठ उम्मद्दियाओ, अट्ठ ण्हावियाओ, अट्ठ पसाधियाओ, अट्ठ वण्णगपेसीओ, अट्ठ चुण्णगपेसीओ, अट्ठ कोडा(?ड्डा)कारीओ, अट्ठ दवकारीओ, अट्ठ उवत्थाणियाओ, अट्ठ नाडइज्जाओ, अट्ठ कोडुंबिणीओ, अट्ठ महाणसिणीओ, अट्ठ भंडागारिणीओ, अट्ठ अब्भाधारिणीओ, अट्ठ पुप्फधारिणीओ, अट्ठ पाणिधारिणीओ, अट्ठ बलिकारियाओ, अट्ठ सेज्जाकारीओ, अट्ठ अब्भितरियाओ पडिहारीओ, अट्ठ बाहिरियाओ पडिहारीओ, अट्ठ मालाकारीओ, अट्ठ पेसणकारीओ, अन्नं वा सुबहुं हिरण्णं वा, सुवण्णं वा, कंसं वा दूसं वा, विउलधणकणग जाव संतसारसावदेज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं परिभोत्तुं पकामं परियाभाएउं।

[५०] विवाहोपरान्त महाबल कुमार के माता-पिता ने (अपनी आठों पुत्रवधुओं के लिए) इस प्रकार का प्रीतिदान दिया। यथा—आठ कोटि हिरण्य (चांदी के सिक्के), आठ कोटि स्वर्ण मुद्राएँ (सोनैया), आठ श्रेष्ठ मुकुट, आठ श्रेष्ठ कुण्डलयुगल, आठ उत्तम हार, आठ उत्तम अर्द्धहार, आठ उत्तम एकावली हार, आठ मुक्तावली हार, आठ कनकावली हार, आठ रत्नावली हार, आठ श्रेष्ठ कड़ों की जोड़ी, आठ बाजूबन्दों की जोड़ी, आठ श्रेष्ठ रेशमी वस्त्रयुगल, आठ टसर के वस्त्रयुगल, आठ पट्टयुगल, आठ दुकूलयुगल, आठ श्री, आठ ह्री, आठ धी, आठ कीर्ति, आठ बुद्धि एवं आठ लक्ष्मी देवियाँ, आठ नन्द, आठ भद्र, आठ उत्तम तल (ताड़) वृक्ष, ये सब रत्नमय जानने चाहिए। अपने भवन में केतु (चिह्न) रूप आठ उत्तम ध्वज, दस-दस हजार गायों के प्रत्येक व्रज वाले आठ उत्तम व्रज (गोकुल), बत्तीस मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है, ऐसे आठ उत्तम नाटक, श्रीगृहरूप आठ उत्तम अश्व, ये सब रत्नमय जानने चाहिए। भाण्डागार (श्रीगृह) के समान आठ रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, आठ उत्तम यान, आठ उत्तम युग्य (एक प्रकार का वाहन), आठ शिविकाएँ, आठ स्यन्दमानिका (पुरुषप्रमाण-म्याना, या पालकी) इसी प्रकार आठ गिल्ली (हाथी की अम्बाडी), आठ थिल्ली (घोड़े का पलाण—काठी), आठ श्रेष्ठ विकट (खुले) यान, आठ पारियानिक (क्रीड़ा करने के) रथ, आठ संग्रामिक (युद्ध के समय उपयोगी) रथ, आठ उत्तम अश्व, आठ उत्तम हाथी, दस हजार कुलों-परिवारों का एक ग्राम होता है, ऐसे आठ उत्तम ग्राम, आठ

१ देखिये राजप्रश्नीयसूत्र में—अट्ठ कुट्ठसमुग्गे, एवं पत्त-चोय-तगर-एल-हरियाल-हिंगुलय-मणोसिल-अंजणसमुग्गे।

—राजप्रश्नीय पृ. १८१ कण्डिका १०७ (गुर्जर ग्रन्थ)

उत्तम दास, एव आठ उत्तम दासियाँ, आठ उत्तम किंकर, आठ उत्तम कचुकी (द्वाररक्षक), आठ वर्षधर (अन्त पुर रक्षक, खोजा), आठ महत्तरक (अन्त पुर के कार्य का विचार करने वाले), आठ सोने के, आठ चादी के और आठ सोने-चादी के अवलम्बन दीपक (लटकने वाले दीपक—हडे), आठ सोने के, आठ चादी के और आठ सोने-चादी के उत्कचन दीपक (दण्डयुक्त दीपक-मशाल), इसी प्रकार सोना, चादी और सोना-चादी, इन तीनों प्रकार के आठ पजरदीपक, सोना, चादी और सोने-चादी के आठ थाल, आठ थालियाँ, आठ स्थासक (तश्तरियाँ), आठ मल्लक (कटोरे), आठ तलिका (रकाबियाँ), आठ कलाचिका (चम्मच), आठ तापिकाहस्तक (सडासियाँ), आठ तवे, आठ पादपीठ (बाजोट), आठ भीषिका (आसन-विशेष), आठ करोटिका (लोटा), आठ पलग, आठ प्रतिशय्याएँ (छोटे पलग), आठ हसासन, आठ क्रौंचासन, आठ गरुडासन, आठ उन्नतासन, आठ अवनतासन, आठ दीर्घासन, आठ भद्रासन, आठ पक्षासन, आठ मकरासन, आठ पद्मासन, आठ दिक्स्वस्तिकासन, आठ तेल के डिब्बे, इत्यादि सब राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार जानना चाहिए, यावत् आठ सर्षप के डिब्बे, आठ कुब्जा दासियाँ आदि सभी औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिए, यावत् आठ पारस देश की दासियाँ, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी दासियाँ, आठ चामर, आठ चामरधारिणी दासियाँ, आठ पखे, आठ पखाधारिणी दासियाँ, आठ करोटिका (ताम्बूल के करण्डिए), आठ करोटिकाधारिणी दासियाँ, आठ क्षीरधात्रियाँ, यावत् आठ अकधात्रिया, आठ अगमर्दिका (हलका मालिश करने वाली दासियाँ), आठ उन्मर्दिका (अधिक मर्दन करने वाली दासियाँ), आठ स्नान कराने वाली दासियाँ, आठ अलकार पहनाने वाली दासियाँ, आठ चन्दन घिसने वाली दासियाँ, आठ ताम्बूल चूर्ण पीसने वाली, आठ कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, आठ परिहास करने वाली, आठ सभा मे पास रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक (साथ रहने वाली सेविकाएँ), आठ रसोई बनाने वाली, आठ भण्डार की रक्षा करने वाली, आठ तरुणियाँ, आठ पुष्प धारण करने वाली (मालिन), आठ पानी भरने वाली, आठ बलि करने वाली, आठ शय्या बिछाने वाली, आठ आभ्यन्तर और बाह्य प्रतिहारियाँ, आठ माला बनाने वाली और आठ-आठ आटा आदि पीसने वाली दासियाँ दी। इसके अतिरिक्त बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कास्य, वस्त्र एव विपुल धन, कनक, यावत् सारभूत द्रव्य दिया। जो सात कुल वशो (पीढियो) तक इच्छापूर्वक दान देने, उपभोग करने और बाटने के लिए पर्याप्त था।

५१. तए ण से महब्बले कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयति, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयति, एगमेगं मउडं मउडप्पवर दलयति, एव तं चेव सव्व जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयति, अन्न वा सुबहुं हिरण्णं वा जाव परियाभाएउ।

[५१] इसी प्रकार महाबल कुमार ने भी प्रत्येक भार्या (पत्नी) को एक-एक हिरण्यकोटि, एक-एक स्वर्णकोटि, एक-एक उत्तम मुकुट, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएँ दी यावत् सभी को एक-एक पेषणकारी (पीसने वाली) दासी दी तथा बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण आदि दिया, जो यावत् विभाजन करने के लिए पर्याप्त था।

५२ तए णं से महब्बले कुमारे उप्पिं पासायवरगए जहा जमाली (स० ९ उ० ३३ सु० २२) जाव विहरति।

[५२] तत्पश्चात् वह महाबल कुमार (श, ६, उ ३३, सू २२ मे कथित) जमालि कुमार के वर्णन के अनुसार उन्नत श्रेष्ठ प्रासाद मे अपूर्व (इन्द्रियसुख) भोग भोगता हुआ जीवनयापन करने लगा।

विवेचन—आठ नववधुओ को बल राजा तथा महाबल कुमार की ओर से प्रीतिदान—प्रस्तुत दो सूत्रो—(५१-५२) मे ८ नववधुओ को बल राजा तथा महाबल कुमार की ओर से दिये गये प्रचुर प्रीतिदान का वर्णन है। ५२ व सूत्र मे महाबल कुमार का अपने प्रासाद मे सुखभोगपूर्वक निवास का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—कडगजोए—कडो की जोडी। **किंकरे**—अनुचर। **सिरिघर-पडिरूवए**—श्रीघर—भण्डार के समान। **भीसियाओ**—आसनविशेष। **वण्णगपेसीओ**—सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) बनाने वाली। **पसाहियाओ**—प्रसाधन (शृंगार) करने वाली। **तेल्लसमुग्गे**—तेल के डिब्बे। **दवकारीओ**—परिहास करने वाली।[2]

धर्मघोष अनगार का पदार्पण, परिषद् द्वारा पर्युपासना

५३. तेण कालेण तेण समएण विमलस्स अरहओ पओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे जाति-सपन्ने वण्णओ जहा केसिसामिस्स जाव पर्चाह अणगारसएहि सद्धि संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूतिज्जमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सहसबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ अहापडिरूवं उग्गह ओगिण्हति, ओ० २ सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विरहति।

[५३] उस काल और उस समय मे तेरहवे तीर्थंकर अर्हन्त विमलनाथ के प्रपौत्रक (प्रशिष्य — शिष्यानुशिष्य) धर्मघोष नामक अनगार थे। वे जातिसम्पन्न इत्यादि (राजप्रश्नीयसूत्रोक्त) केशी स्वामी के समान थे, यावत् पाच सौ अनगारो के परिवार के साथ अनुक्रम से एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्रवन उद्यान मे पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

५४. तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिय जाव परिसा पज्जुवासति।

[५४] हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक यावत् राजमार्गो पर बहुत-से लोग मुनि-आगमन की परस्पर चर्चा करने लगे यावत् जनता पर्युपासना करने लगी।

विवेचन—धर्मघोष अनगार का पदार्पण और हस्तिनापुरनिवासियो द्वारा उपासना—प्रस्तुत दो (५३-५४) सूत्रो मे धर्मघोष अनगार का पाच सौ शिष्यो सहित हस्तिनापुर मे पदार्पण का तथा जनता द्वारा दर्शन—वन्दना एव उपासना का वर्णन है।

पओप्पए—प्रपौत्रशिष्य—शिष्यानुशिष्य।[3]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ ५५०-५५१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४७-५४८

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५४८

महाबलकुमार द्वारा प्रव्रज्याग्रहण

५५. तए णं तस्स महब्बलस्स कुमारस्स त महया जणसद्द वा जणवूह वा एव जहा जमाली (स० ९ उ० ३३ सु० २४-२५) तहेव चिंता, तहेव कचुइज्जपुरिस सद्दावेइ, कचुइज्जपुरिसे वि तहेव अक्खाति, नवरं धम्मघोसस्स अणगारस्स आगमणगहियविणिच्छए करयल जाव निग्गच्छति । एव खलु देवाणुप्पिया ! विमलस्स अरहतो पउप्पए धम्मघोसे नाम अणगारे सेस त चेव जाव सो वि तहेव रहवरेण निग्गच्छति । धम्मकहा जहा केसिसामिस्स । सो वि तहेव (स० ९ उ० ३३ सु० ३३) अम्मापियर आपुच्छति, नवर धम्मघोसस्स अणगारस्स अतिय मु डे भवित्ता अगारातो अणगारियं पव्वइत्तए तहेव वुत्तपडिवुत्तिया (स० ९ उ० ३३ सु० ३५-४५) नवर इमाओ य ते जाया ! विउलरायकुलवालियाओ कला० सेस तं चेव जाव ताहे अकामाइ चेव महब्बलकुमार एव वदासी— त इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए ।

[५५] (धर्मघोपमुनि के दर्शनार्थ जाते हुए) बहुत-से मनुष्यो का कोलाहल एव चर्चा सुनकर (श ९ उ ३३ सू २४-२५ मे उल्लिखित) जमालिकुमार के समान महाबल कुमार को भी विचार हुआ । उसने अपने कञ्चुकी पुरुष को बुलाकर (उसी प्रकार इसका) कारण पूछा । कञ्चुकी पुरुष ने भी (पूर्ववत्) हाथ जोड कर महाबल कुमार से निवेदन किया—देवानुप्रिय ! विमलनाथ तीर्थंकर के प्रपौत्र शिष्य श्री धर्मघोप अनगार यहाँ पधारे है । इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् महाबल कुमार भी जमालि कुमार की तरह (पूर्ववत्) उत्तम रथ पर बैठ कर उन्हे वन्दना करने गया । धर्मघोप अनगार ने भी केशीस्वामी के समान धर्मोपदेश (धर्मकथा) दिया । सुनकर महाबल कुमार को भी (श ९, उ ३३, सू ३५-४५ मे कथित वर्णन के अनुसार) जमालि कुमार के समान वैराग्य उत्पन्न हुआ । घर आकर उसी प्रकार (जमालि कुमार की तरह) माता-पिता से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होने की अनुमति मागी । विशेप यह है कि (हे माता-पिता !) धर्मघोष अनगार से मैं मुण्डित होकर आगारवास (गृहवास) से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होना चाहता हूँ । (श ९, उ ३३, सू ३५-४५ मे लिखित) जमालि कुमार के समान महाबल कुमार और उसके माता-पिता मे उत्तर-प्रत्युत्तर हुए । विशेप यह है कि माता-पिता ने महाबल कुमार से कहा—हे पुत्र ! यह विपुल धन और उत्तम राजकुल मे उत्पन्न हुई कलाकुशल आठ कुलवालाएँ छोडकर तुम क्यो दीक्षा ले रहे हो ? इत्यादि शेप वर्णन पूर्ववत् है यावत् माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक महाबल कुमार से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए भी तुम्हारी राज्यश्री (राजा के रूप मे तुम्हे) देखना चाहते हैं ।"

५६ तए ण से महब्बले कुमारे अम्मा-पिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए सचिट्ठइ ।

[५६] माता-पिता की इस बात को सुन कर महाबल कुमार चुप रहे ।

५७. तए ण से बले राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, एव जहा सिवभद्दस्स (स० ११ उ० ९ सु० ७-९) तहेव रायाभिसेओ भाणितव्वो जाव अभिसिचंति, अभिसिचित्ता करतलपरि० महब्बल कुमार जएण विजएण वद्धावेंति, जएण विजएण वद्धावित्ता एव वयासी—भण जाया ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? सेसं जहा जमालिस्स तहेव, जाव (स० ९ उ० ३३ सु० ४९-८२)—

[५७] इसके पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और जिस प्रकार (श ११,

उ ६, सू ७-६ मे) शिवभद्र के राज्याभिषेक का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी महाबल कुमार के राज्याभिषेक का वर्णन समझ लेना चाहिए, यावत् महाबल का राज्याभिषेक किया, फिर हाथ जोड कर महाबल कुमार को जय-विजय शब्दो से वधाया, तथा इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! कहो, हम तुम्हे क्या देवे ? तुम्हारे लिए हम क्या करें ? इत्यादि वर्णन (श ६, उ ३३, सू ४६-८२ मे कथित) जमालि के समान जानना चाहिए, यावत् महाबल कुमार ने धर्मघोष अनगार से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (५५-५७) मे निम्नलिखित तथ्यो का अतिदेशपूर्वक वर्णन किया गया है—(१) धर्मघोष अनगार का हस्तिनापुर मे पदार्पण, (२) महाबल कुमार को धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य होना, (३) माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मागने पर परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर और अन्त मे निरुत्तर-निरुपाय होकर अनिच्छा से अनुमति प्रदान करना, (४) एक दिन के राज्य ग्रहण करने की माता-पिता की इच्छा को स्वीकार करना, (५) दीक्षा महोत्सव एव (६) धर्मघोष अनगार से विधिवत् भागवती दीक्षा ग्रहण करना।

महाबल अनगार का अध्ययन, तपश्चरण, समाधिमरण एवं स्वर्गलोकप्राप्ति

५८. तए ण से महब्बले अणगारे धम्मघोसस्स अणगारस्स अतिय सामाइयमाइयाइ चोद्दस पुव्वाइ अहिज्जति, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइ दुवालस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणति, बहु० पा० २ मासियाए सलेहणाए सट्ठि भत्ताइ अणसणाए० आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढ चदिमसूरिय जहा अम्मडो जाव[1] बम्भलोए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता। तत्थ ण महब्बलस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता।

(५८) दीक्षाग्रहण के पश्चात् महाबल अनगार ने धर्मघोष अनगार के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया तथा उपवास (चतुर्थभक्त), बेला (छट्ठ), तेला (अट्ठम) आदि बहुत-से विचित्र तप कर्मो से आत्मा को भावित करते हुए पूरे बारह वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त मे मासिक सलेखना से साठ भक्त अनशन द्वारा छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक काल के अवसर पर काल करके ऊर्ध्वलोक मे चन्द्र और सूर्य से भी ऊपर बहुत दूर, अम्बड के समान यावत् ब्रह्मलोककल्प मे देवरूप मे उत्पन्न हुए। वहाँ कितने ही देवो की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। तदनुसार महाबलदेव की भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

विवेचन—दीक्षाग्रहण से समाधिमरण एव ब्रह्मलोककल्प मे उत्पत्ति—प्रस्तुत ५८ वे सूत्र मे महाबल अनगार के जीवन का सकेत किया गया है। दीक्षाग्रहण के बाद चौदह पूर्वो का अध्ययन, विविध तपश्चर्या से कर्मक्षय, अन्त मे यहाँ से मासिक सलेखना, तथा अनशन करके समाधिपूर्वक मरण और ब्रह्मदेवलोक की प्राप्ति, यह क्रम अनगार धर्म की आराधना के उज्ज्वल भविष्य को सूचित करता है।[2]

---

१ जाव पद-सूचित पाठ—गहगण-नक्खत्त-तारारूवाण बहूइ जोयणाइ बहूइ जोयणसयाइ बहूइ जोयणसहस्साइ बहूइ जोयणसयसहस्साइ बहुईओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंदे कप्पे वीईवइत्ता त्ति। —औप सू ४०, प ९० (आगमो)

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५५३

पूर्वभव का रहस्य खोलकर पल्योपमादि के क्षय-उपचय की सिद्धि

५९. से ण तुमं सुदसणा ! बम्भलोए कप्पे दस सागरोवमाइं दिव्वाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्ता तओ चेव देवलोगाओ आउक्खएण ठितिक्खएणं भवक्खएण अणतर चय चइत्ता इहेव वाणियग्गामे नगरे सेट्ठिकुलसि पुमत्ताए पच्चायाए। तए णं तुमे सुदंसणा ! उम्मुक्कबालभावेणं विण्णयपरिणयमेत्तेणं जोव्वणगमणुप्पत्तेणं तहारूवाण थेराण अतिय केवलिपण्णत्ते धम्मे निसंते, से वि य धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइते, त सुट्ठु णं तुम सुदंसणा ! इदाणिं पि करेसि। से तेणट्ठेण सुदसणा ! एवं वुच्चति 'अत्थि ण एतेसि पलिओवमसागरोवमाणं खए ति वा, अवचए ति वा'।

[५९] हे सुदर्शन ! वही महावल का जीव तुम (सुदर्शन) हो। तुम वहाँ ब्रह्मलोक कल्प मे दस सागरोपम तक दिव्य भोगो को भोगते हुए रह करके, वहाँ दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके, वहाँ के आयुष्य का, स्थिति का और भव का क्षय होने पर वहाँ से च्यव कर सीधे इस भरतक्षेत्र के वाणिज्यग्राम-नगर मे, श्रेष्ठिकुल मे पुत्ररूप से उत्पन्न हुए हो।

तत्पश्चात् हे सुदर्शन ! वालभाव से मुक्त होकर तुम विज्ञ और परिणतवय वाले हुए, यौवन अवस्था प्राप्त होने पर तुमने तथारूप स्थविरो से केवलि-प्ररूपित धर्म सुना। वह धर्म तुम्हे इच्छित प्रतीच्छित (स्वीकृत) और रुचिकर हुआ। हे सुदर्शन ! इस समय भी तुम जो कर रहे हो, अच्छा कर रहे हो।

इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय और अपचय होता है।

विवेचन—सागरोपम की स्थिति का क्षयापचय और पूर्वभव का रहस्योद्घाटन—प्रस्तुत सूत्र ५९ मे भगवान् महावीर ने सुदर्शन के पूर्वभव की कथा का उपसहार करते हुए बताया है कि महावल का जीव ही तू सुदर्शन है, जो दस सागरोपम की स्थिति का क्षय तथा अपचय होने पर वाणिज्यग्राम मे श्रेष्ठिकुल मे पुत्ररूप मे उत्पन्न हुआ है। अन्त मे, सुदर्शन श्रमणोपासक के वर्तमान धर्ममय जीवन की प्रशसा की है। यह प्रस्तुत उद्देशक के सू० १९-२ का निगमन है।

६०. तए णं तस्स सुदसणस्स सेट्ठिस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेण अज्झवसाणेणं, सोहणेण परिणामेण, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं, तदावरणिज्जाणं कम्माण खओवसमेण ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णीपुव्वजातीसरणे समुप्पन्ने, एतमट्ठ सम्म अभिसमेति।

[६०] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर से यह वात (धर्मफल-सूचक) सुनकर और हृदय मे धारण कर सुदर्शन श्रमणोपासक (श्रेष्ठी) को शुभ अध्यवसाय से, शुभ परिणाम से और विशुद्ध होती हुई लेश्याओ से तदावरणीय कर्मो के क्षयोपशम से और ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए सज्ञीपूर्व जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे (भगवान् द्वारा कहे गए) इस अर्थ (अपने पूर्वभव की वात) को सम्यक् रूप से जानने लगा।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पण) भा २ पृ. ५५२

६१. तए ण से सुदसणे सेट्ठी समणेण भयवया महावीरेण संभारियपुव्वभवे दुगुणाणीयसड्ढसंवेगे आणदंसुपुण्णनयणे समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेति, आ० क० २ वंदति नमसति, वं० २ एव वयासी—एवमेय भते ! जाव से जहेय तुब्भे वदह त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिम दिसीभागं अवक्कमति सेस जहा उसभदत्तस्स (स० ९ उ० ३३ सु० १६) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, नवर चोद्दस पुव्वाइ अहिज्जति, बहुपडिपुण्णाइं दुवालस वासाइ सामण्णपरियागं पाउणति । सेस त चेव ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। एक्कारसमे सए एक्कारसमो उद्देसो समत्तो ।।

[६१] (जातिस्मरणज्ञान होने पर) श्रमण भगवान् महावीर द्वारा पूर्वभव का स्मरण करा देने से सुदर्शन श्रेष्ठी के हृदय मे दुगुनी श्रद्धा और सवेग उत्पन्न हुए । उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गए । तत्पश्चात् वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा एव वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार वोला—भगवन् ! यावत् आप जैसा कहते है, वैसा ही हैं, सत्य है, यथार्थ है । इस प्रकार कह कर सुदर्शन सेठ उत्तरपूर्व दिशा मे गया, इत्यादि अवशिष्ट सारा वर्णन (श ९, उ ३३, सू १६ मे वर्णित) ऋपभदत्त की तरह जानना चाहिए, यावत् सुदर्शन श्रेष्ठी ने प्रव्रज्या अगीकार की । विशेष यह है कि चौदह पूर्वो का अध्ययन किया, पूरे वारह वर्प तक श्रमण-पर्याय का पालन किया, यावत् सर्व दु खो से रहित हुए । शेप सव वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (६०-६१) मे मुख्यतया दो घटनाओ का निरूपण किया गया है—(१) अपने पूर्वभव की कथा सुन कर सुदर्शन श्रेष्ठी को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिसमे भगवान् द्वारा कथित पूर्वजन्म-वृत्तान्त को हूवहू स्पष्ट रूप से जानने लगा और (२) उसकी श्रद्धा और सवेग मे द्विगुणित वृद्धि हुई । भगवान् को वन्दना नमस्कार करके प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की । ऋषभदत्त की तरह भगवान् से प्रव्रज्या ग्रहण की, १४ पूर्वो का अध्ययन किया, तत्पश्चात् तपश्चर्या की, पूरे बारह वर्ष तक श्रमणत्व का पालन किया, अन्तिम समय मे सल्लेखना सथारा किया । सर्वकर्मों से मुक्त-सिद्ध-बुद्ध हुआ ।[1]

सण्णीपुव्वजातीसरणे—ऐसा ज्ञान जिससे सज्ञीरूप से किये हुए अपने निरन्तर सलग्न पूर्वभव जाने-देखे जा सके ।

दुगुणाणीयसड्ढसंवेगे—श्रद्धा और संवेग दुगुने हो गए ।[2]

।। ग्यारहवां शतक: ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ।।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५४

२ (क) सज्ञिरूपा या पूर्वा जातिस्तस्या स्मरण यत्तत्तथा ।

(ख) पूर्वकालापेक्षया द्विगुणावानीतौ श्रद्धासवेगौ यस्य स तथा ।

श्रद्धा—तत्त्वार्थश्रद्धान सदनुष्ठानचिकीर्षा वा

सवेगो-भवभय मोक्षाभिलाषो वा । —भगवती. अ वृत्ति, पत्र ५४९

बारसमो उद्देसओ : बारहवाँ उद्देशक

आलभिया : आलभिका (नगरी मे प्ररूपणा)

आलभिका नगरी के श्रमणोपासकों की देवस्थितिविषयक जिज्ञासा एवं ऋषिभद्र के उत्तर के प्रति अश्रद्धा

१. तेण कालेण तेण समएण आलभिया नाम नगरी होत्था। वण्णओ। सखवणे चेतिए। वण्णओ।

[१] उस काल और उस समय मे आलभिका नाम की नगरी थी। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ शखवन नामक उद्यान था। उसका वर्णन भी करना चाहिए।

२. तत्थ ण आलभियाए नगरीए बहवे इसिभद्दपुत्तपामोक्खा समणोवासया परिवसति अड्ढा जाव अपरिभूता अभिगयजीवाजीवा जाव विहरति।

[२] उस आलभिका नगरी मे ऋषिभद्रपुत्र वगैरह बहुत-से श्रमणोपासक रहते थे। वे आढ्य यावत् अपरिभूत थे, जीव और अजीव (आदि तत्त्वो) के ज्ञाता थे, यावत् विचरण (जीवनयापन) करते थे।

३. तए ण तेसि समणोवासयाण अन्नया कयाइ एगयओ समुवागयाण सहियाण समुपविट्ठाण सन्निसन्नाणं अयमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—देवलोगेसु ण अज्जो! देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता?

[३] उस समय एक दिन एक स्थान पर आकर एक साथ एकत्रित होकर बैठे हुए उन श्रमणोपासको मे परस्पर इस प्रकार का वार्त्तालाप (धर्मचर्चा) हुआ—[प्र] हे आर्यो! देवलोको मे देवो की स्थिति, कितने काल की कही गई है?

४. तए ण से इसिभद्दपुत्ते समणोवासए देवट्ठितिगहियट्ठे ते समणोवासए एव वयासी—देवलोगेसु ण अज्जो! देवाण जहन्नेण दस वाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता, तेण पर समयाहिया दुसमयाहिया तिसमयाहिया जाव दससमयाहिया सखेज्जसमयाहिया असखेज्जसमयाहिया; उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता। तेण पर वोच्छिन्ना देवा य देवलोगा य।

[४] (उ) इस प्रश्न को सुनने के पश्चात् देवो की स्थिति के विषय मे ज्ञाता (गृहीतार्थ) ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक, उन श्रमणोपासको से इस प्रकार बोला—आर्यो! देवलोको मे देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है, उसके उपरान्त एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् दस समय अधिक, सख्यात समय अधिक और असख्यात समय अधिक, (इस प्रकार बढते हुए) उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। इसके उपरान्त अधिक स्थिति वाले देव और देवलोक नही हैं।

५. तए ण ते समणोवासगा इसिभद्दपुत्तस्स समणोवासगस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव एवं परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहति नो पत्तियंति नो रोएति, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोएमाणा जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस पडिगया।

[५] तदनन्तर उन श्रमणोपासको ने ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के द्वारा इस प्रकार कही हुई यावत् प्ररूपित की हुई इस बात पर न श्रद्धा की, न प्रतीति की और न रुचि ही की, उपर्युक्त कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए वे श्रमणोपासक जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे चले गए।

विवेचन—ऋषिभद्रपुत्र द्वारा देवस्थिति सम्बन्धी प्ररूपणा पर अश्रद्धालु श्रमणोपासक—प्रस्तुत ५ सूत्रो मे (१-५) मे वर्णन है कि ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपसक द्वारा प्ररूपित देवस्थिति पर अन्य श्रमणोपासको ने विश्वास नही किया।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—एगयओ समुवागयाण—एकत्र, आए हुए। **सहियाणं समुपविट्ठाण**—एक साथ समुपस्थित या समुपविष्ट = एक जगह आसन जमाए हुए। **सन्निसन्नाणं**—पास-पास बैठे हुए। **मिहो कहासमुल्लावे**—परस्पर वार्त्तालाप। **देवट्ठितिगहियट्ठे**—देवो की स्थिति के विषय मे परमार्थ—रहस्य का ज्ञाता।[2]

भगवान् द्वारा समाधान से सन्तुष्ट श्रमणोपासकों द्वारा ऋषिभद्रपुत्र से क्षमायाचना

६. तेणं कालेणं तेण समएण समणे भगव महावीरे जाव समोसढे जाव परिसा पज्जुवासति।

[६] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यावत् आलभिका नगरी मे पधारे, यावत् परिषद् ने उनकी पर्युपासना की।

७. तए णं ते समणोवासगा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठतुट्ठा एव जहा तुंगिउद्देसए (स० २ उ० ५ सु० १४) जाव पज्जुवासंति।

[७] (श २, उ ५, सू १४ मे वर्णित) तुगिका नगरी के श्रमणोपासको के समान आलभिका नगरी के वे (ऋषिभद्रपुत्र के समाधान के प्रति अश्रद्धालु) श्रमणोपासक इस बात (भगवान् के पदार्पण) को सुन (जान) कर हर्षित एव सन्तुष्ट हुए, यावत् भगवान् की पर्युपासना करने लगे।

८. तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाण तीसे य महति० धम्मकहा जाव आणाए आराहए भवति।

[८] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमण.पासको को तथा उस बडी परिषद् को धर्मकथा कही, यावत् वे आज्ञा के आराधक हुए।

विवेचन—आलभिका में भगवत्पदार्पण एवं असन्तुष्ट श्रमणोपासक सन्तुष्ट—प्रस्तुत तीन सूत्रो (६-७-८) मे तीन घटनाओ का उल्लेख किया गया है—(१) आलभिका नगरी मे भगवान् का

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५५

२. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ५५२

पदार्पण, (२) पदार्पण सुन कर असन्तुष्ट श्रमणोपासको द्वारा भगवदुपासना एव (३) भगवान् द्वारा धर्मोपदेश प्रदान से वे सन्तुष्ट, श्रद्धावान् एव आज्ञाराधक ।[1]

९. तए ण ते समणोवासया समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेंति, उ० २ समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ वदासी—एव खलु भते ! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए अम्ह एवं आइक्खति जाव परूवेति— देवलोएसु ण अज्जो ! देवाण जहन्नेण दसवाससहस्साइ ठिती पन्नत्ता, तेण पर समयाहिया जाव तेण पर वोच्छिन्ना देवा य देवलोगा य । से कहमेतं भते ! एव ?

[९] तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म—(धर्मोपदेश) श्रवण कर एव अवधारण करके हृष्ट-तुष्ट हुए । फिर वे स्वय उठे और खडे होकर उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार पूछा—

[प्र] भगवन् ! ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने हमे इस प्रकार कहा, यावत् प्ररूपणा की—हे आर्यो ! देवलोको मे देवो की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष कही गई है । उसके आगे एक-एक समय अधिक यावत् (पूर्ववत्) उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है, यावत् इसके बाद देव और देवलोक विच्छिन्न है, नही है । तो क्या भगवन् ! यह बात ऐसी ही है ?

१०. 'अज्जो !' त्ति समणे भगव महावीरे ते समणोवासए एव वयासी—ज ण अज्जो ! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए तुब्भ एव आइक्खइ जाव परूवेइ—देवलोगेसु ण अज्जो ! देवाण जहन्नेण दस वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता तेण पर समयाहिया जाव तेण पर वोच्छिन्ना देवा य देवलोगा य । सच्चे ण एसमट्ठे । अहं पि णं अज्जो ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—देवलोगेसु ण अज्जो ! देवाण जहन्नेण दस वाससहस्साइ० त चेव जाव वोच्छिन्ना देवा य देवलोगा य । सच्चे ण एसमट्ठे ।

[१० उ] आर्यो ! इस प्रकार का सम्बोधन करते हुए श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासको को तथा उस बडी (विशाल) परिपद् को इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने जो तुमसे इस प्रकार (पूर्वोक्त) कहा था, यावत् प्ररूपणा की थी कि देवलोको मे देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, उसके आगे एक समय अधिक, यावत् उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है, यावत् इसके आगे देव और देवलोक विच्छिन्न है—यह अर्थ (बात) सत्य है । हे आर्यो ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि देवलोको मे देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, यावत् उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागारोपम की है, यावत् इससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हो जाते है । आर्यो ! यह बात सर्वथा सत्य है ।

११. तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठ सोच्चा निसम्म समणं भगव महावीरं वदति नमसति, व० २ जेणेव इसिभद्दपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ इसिभद्दपुत्त समणोवासग वदति नमसति, व० २ एयमट्ठ सम्म विणएण भुज्जो भुज्जो खामेंति ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५५

[११] तदनन्तर उन श्रमणोपासको ने श्रमण भगवान् महावीर से यह समाधान सुनकर और हृदय मे अवधारण कर उन्हे वन्दन-नमस्कार किया, फिर जहाँ ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक था, वे वहाँ आए। ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के पास आकर उन्होने उसे वन्दन-नमस्कार किया और उसकी (पूर्वोक्त) बात को सत्य न मानने के लिए विनयपूर्वक वार-वार क्षमायाचना की।

१२. तए ण ते समणोवासया पसिणाइं पुच्छति, प० पु० २ अट्ठाइ परियादियंति, अ० प० २ समण भगव महावीर वदति नमंसति, व० २ जामेव दिस पाउब्भूता तामेव दिस पडिगया।

[१२] फिर उन श्रमणोपासको ने भगवान् से कई प्रश्न पूछे तथा उनके अर्थ ग्रहण किए और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे (अपने-अपने स्थान पर) चले गए।

विवेचन—असन्तुष्ट श्रमणोपासको का समाधान और ऋषिभद्रपुत्र से क्षमायाचना—प्रस्तुत चार सूत्रो मे चार तथ्यो का उल्लेख किया गया है—(१) भ महावीर का धर्मोपदेश सुनकर उनके सामने ऋषिभद्रपुत्र के द्वारा प्राप्त समाधान की सत्यता की जिज्ञासा (२) भगवान् द्वारा ऋषिभद्रपुत्र के कथन की सत्यता का कथन, (३) श्रमणोपासको द्वारा ऋषिभद्रपुत्र से वन्दन-नमन-विनयपूवक क्षमायाचना और (४) अन्य प्रश्नो का प्रस्तुतीकरण एव अर्थग्रहण।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—समयाहिया—एक समय अधिक। **भुज्जो भुज्जो**—वार-वार। **खामेति**—क्षमायाचना करते है। **सम्मं**—सम्यक् प्रकार से। **अट्ठाइं परियादियति**—अर्थो का ग्रहण करते है। **पसिणाइं**—प्रश्न।[2]

प्रस्तुत प्रकरण मे असन्तुष्ट श्रमणोपासको द्वारा ऋषिभद्रपुत्र जैसे वरावरी के श्रमणोपासक से वन्दन-नमन करके क्षमायाचना करने मे, उनकी सरलता, सत्यग्राहिता, एव विनम्रता परिलक्षित होती है।

ऋषिभद्रपुत्र के भविष्य के सम्बन्ध में कथन

१३. 'भते!' त्ति भगव गोयमे समणं भगवं महावीर वदति णमंसति, वं० २ एवं वयासी—पभू ण भते! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतियं मुडे भवित्ता अगारातो अणगारियं पव्वइत्तए?

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इसिभद्दपुत्ते णं समणोवासए बहूहिं सीलव्वत-गुणव्वत-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहितेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणे बहूइ वासाइ समणोवासगपरियाग पाउणिहिति, ब० पा० २ मासियाए संलेहणाए अत्ताण झूसेहिति, मा० झू० २ सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेहिति स० छे० २ आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे काल किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ णं अत्थेगतियाण देवाण चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता। तत्थ ण इसिभद्दपुत्तस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती भविस्सति।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५६

२ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १९६३-६४

[१३ प्र] तदनन्तर भगवन् ! इस प्रकार सम्बोधित करते हुए भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—भगवन् ! क्या ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के समीप मुण्डित होकर आगारवास से अनगारधर्म मे प्रव्रजित होने मे समर्थ है ?

[१३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही किन्तु यह ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक बहुत-से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासो से तथा यथोचित गृहीत तप कर्मो द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ, वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन करेगा । फिर मासिक सलेखना द्वारा साठ भक्त का अनशन द्वारा छेदन कर, (आहार छोडकर), आलोचना और प्रतिक्रमण कर तथा समाधि प्राप्त कर, काल के अवसर पर काल करके सौधर्मकल्प के अरुणाभ नामक विमान मे देवरूप से उत्पन्न होगा । वहाँ कितने ही देवो की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है । ऋषिभद्रपुत्र-देव की भी चार पल्योपम की स्थिति होगी ।

१४. से णं भंते ! इसिभद्दपुत्ते देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएण ठिइक्खएण जाव कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव अप्पाण भावेमाणे विहरति ।

[१४ प्र] भगवन् ! वह ऋषिभद्रपुत्र-देव उन देवलोक से आयुक्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय करके यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ?

[१४ उ] गौतम ! वह महाविदेहक्षेत्र मे सिद्ध होगा, यावत् सभी दु खो का अन्त करेगा ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है !, यो कह कर भगवान् गौतम, यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

१५. तए ण समणे भगव महावीरे अन्नया कयाइ आलभियाओ नगरीओ सखवणाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, प० २ बहिया जणवयविहार विहरति ।[1]

[१५] पश्चात् किसी समय श्रमण भगवान् महावीर भी आलभिका नगरी के शखवन उद्यान से निकल कर बाहर जनपदो मे विहार करने लगे ।

विवेचन—ऋषिभद्रपुत्र के विषय मे भविष्यकथन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (१३ से १५ तक) मे भगवान् महावीर द्वारा ऋषिभद्रपुत्र के भविष्य के सम्बन्ध मे प्रतिपादित तथ्य का निरूपण किया है । भगवान् ने दो तथ्यो की ओर इगित किया है—(१) ऋषिभद्रपुत्र महाव्रती श्रमण न बन कर श्रमणोपासकव्रतो का पालन करेगा और अन्त मे सलेखना-अनशन पूर्वक समाधिमरण प्राप्त करके प्रथम देवलोक मे देव बनेगा, (२) फिर वह महाविदेहक्षेत्र मे सिद्ध होगा ।[1]

□□

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५७

मुद्गल परिव्राजक

मुद्गल परिव्राजक : परिचय और समुत्पन्नविभंगज्ञान

१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था । वण्णओ । तत्थ णं संखवणे णामं चेइए होत्था । वण्णओ । तस्स णं संखवणस्स चेतियस्स अदूरसामंते मोग्गले[1] नामं परिव्वायए परिवसति रिउव्वेद-यजुव्वेद जाव नयेसु सुपरिनिट्ठिए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ जाव आयावेमाणे विहरति ।

[१६] उस काल और उस समय मे आलभिका नाम की नगरी थी। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ शखवन नामक उद्यान था। उसका भी वर्णन करना चाहिए। उस शंखवन उद्यान के न अतिदूर और न अतिनिकट (कुछ दूर) मुद्गल (पुद्गल) नामक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि शास्त्रो यावत् वहुत-से ब्राह्मण-विषयक नयों में सम्यक् निष्णात था। वह लगातार वेले-वेले (छट्ठ-छट्ठ) का तप:कर्म करता हुआ तथा आतापनाभूमि में दोनो भुजाएँ ऊँची करके यावत् आतापना लेता हुआ विचरण करता था।

१७. तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वायगस्स छट्ठंछट्ठेणं जाव आयावेमाणस्स पगतिभद्दयाए जहा सिवस्स (स० ११ उ० ९ सु० १६) जाव विब्भंगे नामं णाणे समुप्पन्ने । से णं तेणं विब्भंगेणं नाणेणं समुप्पन्नेणं बंभलोए कप्पे देवाणं ठिति जाणति पासति ।

[१७] तत्पश्चात् इस प्रकार से वेले-वेले का तपश्चरण करते हुए मुद्गल परिव्राजक को प्रकृति की भद्रता आदि के कारण (श. ११, उ. ९, सू. १६ में वर्णित) शिवराजर्षि के समान विभगज्ञान (कु-अवधिज्ञान) उत्पन्न हुआ। वह उस समुत्पन्न विभंगज्ञान के कारण पंचम ब्रह्मलोक कल्प मे रहे हुए देवो की स्थिति तक जानने-देखने लगा।

विवेचन—मुद्गल परिव्राजक और उसे उत्पन्न विभंगज्ञान—प्रस्तुत दो सूत्रों (१६-१७) में मुद्गल परिव्राजक का परिचय और उसे उक्त तपश्चर्या, आतापना तथा प्रकृतिभद्रता आदि के कारण विभगज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे वह पचम देवलोक के देवों की स्थिति जान-देख सकता था।[2]

विभंगज्ञानी मुद्गल द्वारा अतिशय ज्ञान की घोषणा और जनप्रतिक्रिया

१८. तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वायगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'अत्थि णं ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, देवलोएसु णं देवाणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं ठिती पन्नत्ता, तेण परं समयाहिया दुसमयाहिया जाव असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता, तेण परं वोच्छिन्ना देवा य देवलोगा य'। एवं संपेहेति, एवं सं० २ आयावणभूमीओ पच्चोरुभति, आ० प० २ तिदंड-कुंडिय जाव धाउरत्ताओ य गेण्हति, गे० २ जेणेव आलभिया णगरी

---

१. किसी-किसी प्रति में 'मोग्गले' (मुद्गल) के वदले पोग्गले (पुद्गल) पाठ है। वैदिकसंस्कृति की दृष्टि से 'मुद्गल' शब्द उचित प्रतीत होता है। —स

२ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण), भा. २, पृ. ५५७

जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ भंडनिक्खेवं करेति, भं० क० २ आलभियाए नगरीए सिंघाडग जाव पहेसु अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव परूवेति— अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, देवलोएसु णं देवाणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं० तं चेव जाव वोच्छिन्ना देवा य देवलोगा य।

[१८] तत्पश्चात् उस मुद्गल परिव्राजक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि—"मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं जानता हूँ कि देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, उसके उपरान्त एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् असंख्यात समय अधिक, इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। उससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हैं (नहीं हैं)।" इस प्रकार उसने ऐसा निश्चय कर लिया। फिर वह आतापनाभूमि से नीचे उतरा और त्रिदण्ड, कुण्डिका, यावत् गैरिक (धातुरक्त) वस्त्रों को ले कर आलभिका नगरी में जहाँ तापसों का मठ (आवसथ) था, वहाँ आया। वहाँ उसने अपने भण्डोपकरण रखे और आलभिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्ग पर एक-दूसरे से इस प्रकार कहने और प्ररूपणा करने लगा—"हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता-देखता हूँ कि देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति यावत् दस सागरोपम की है। इससे आगे देवों और देवलोकों का अभाव है।"

१९. तए णं आलभियाए नगरीए एवं एएणं अभिलावेणं जहा सिवस्स (स० ११ उ० ९ सु० १८) जाव से कहमेयं मन्ने एवं ?

[१९] इस बात को सुन कर आलभिका नगरी के लोग परस्पर (श ११, उ ९, सू १८ के अनुसार) शिव राजर्षि के अभिलाप के समान कहने लगे यावत्—"हे देवानुप्रियो ! उनकी यह बात कैसे मानी जाए ?"

विवेचन—मुद्गल का अतिशय ज्ञानोत्पत्ति का मिथ्या दावा और घोषणा प्रस्तुत दो सूत्रों (१८-१९) में से प्रथम में मुद्गल परिव्राजक द्वारा स्वयं को अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होने की मिथ्या धारणा तथा घोषणा का और द्वितीय सूत्र में आलभिका नगरी के लोगों की प्रतिक्रिया का वर्णन है।[1]

भगवान् द्वारा सत्यासत्य का निर्णय

२०. सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया भगवं गोयमे तहेव भिक्खायरियाए तहेव बहुजणसद्दं निसामेति (स० ११ उ० ९ सु० २०), तहेव सव्वं भाणियव्वं जाव (स० ११ उ० ९ सु० २१) अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि एवं भासामि जाव परूवेमि—देवलोएसु णं देवाणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं ठिती पन्नत्ता, तेण परं समयाहिया दुसमयाहिया जाव उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता; तेण परं वुच्छिन्ना देवा य देवलोगा य।

[२०] (उन्हीं दिनों में आलभिका नगरी में) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुन कर) वापस लौटी। भगवान् गौतमस्वामी उसी प्रकार (पूर्ववत्)

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ५५८

नगरी मे भिक्षाचर्या के लिए पधारे तथा वहुत-से लोगो मे परस्पर (मुद्गल परिव्राजक को अतिशय ज्ञान-दर्शनोत्पत्ति की उपर्युक्त) चर्चा होती हुई सुनी। शेष सव वर्णन पूर्ववत् (श ११, उ ९, सू २१ के अनुसार) कहना चाहिए, यावत् (भगवान् से गौतमस्वामी द्वारा पूछने पर उन्होने इस प्रकार कहा—) गौतम! मुद्गल परिव्राजक का कथन असत्य है। मै इस प्रकार प्ररूपणा करता हूँ, इस प्रकार प्रतिपादन करता हूँ यावत् इस प्रकार कथन करता हूँ—"देवलोको मे देवो की जघन्य स्थिति तो दस हजार वर्ष की है, किन्तु इसके उपरान्त एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। इससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हो गए है।"

विवेचन—मुद्गल परिव्राजक के कथन की सत्यासत्यता का निर्णय—प्रस्तुत २० वे सूत्र मे गौतमस्वामी द्वारा मुद्गल परिव्राजक के कथन की सत्यता-असत्यता के विषय मे पूछे जाने पर भगवान् द्वारा दिये निर्णय का निरूपण है।[1]

२१. अत्थि णं भंते! सोहम्मे कप्पे दव्वाइ सवण्णाइ पि अवण्णाइं पि तहेव (स० ११ उ० ९ सु० २२) जाव हंता, अत्थि।

[२१ प्र] भगवन्! क्या सौधर्म-देवलोक मे वर्णसहित और वर्णरहित द्रव्य अन्योऽन्यवद्ध यावत् सम्बद्ध है? इत्यादि पूर्ववत् (श ११, उ० ९, सू० २२ के अनुसार) प्रश्न।

[२१ उ] हाँ, गौतम! है।

२२. एवं ईसाणे वि। एवं जाव अच्चुए एव गेविज्जविमाणेसु, अणुत्तरविमाणेसु वि, ईसिपब्भाराए वि जाव हंता, अत्थि।

[२२ प्र] इसी प्रकार क्या ईशान देवलोक मे यावत् अच्युत देवलोक मे तथा ग्रैवेयक-विमानो मे और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे भी वर्णादिसहित और वर्णादिरहित द्रव्य है?

[२२ उ] हाँ, गौतम! है।

२३. तए णं सा महतिमहालिया जाव पडिगया।

[२३] तदनन्तर वह महती परिषद् (धर्मोपदेश सुन कर) यावत् वापस लौट गई।

विवेचन—समस्त वैमानिक देवलोको मे वर्णादि से सहित एवं रहित द्रव्यसंबंधी प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रो (२१-२२) मे सौधर्म देवलोक से लेकर अनुत्तरविमानो तक तथा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे वर्णादिसहित एव वर्णादिरहित द्रव्यो की सम्बद्धता की प्ररूपणा की गई है तथा २३ वे सूत्र मे महती परिषद् के लौटने का वर्णन है।

मुद्गल परिव्राजक द्वारा निर्ग्रन्थप्रव्रज्याग्रहण एवं सिद्धिप्राप्ति

२४. तए णं आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिय० अवसेसं जहा सिवस्स (स० ११ उ० ९ सु० २७-३२) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, णवर तिदंड-कुंडियं जाव धाउरत्तवत्थपरिहिए परिवडिय-

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५८

विब्भंगे आलभिय नगरिं मज्झमज्झेण निग्गच्छति जाव उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमति, उत्तर० अ० २ तिदड-कुडिय च जहा खदओ (स० २ ० १ सु० ३४) जाव पव्वइओ। सेस जहा सिवस्स जाव अव्वावाह सोक्खं अणुहुति सासतं सिद्धा।

सेव भंते ! सेव भते ! त्ति०

॥ एक्कारसमे सए बारसमो उद्देसो समत्तो ॥ ११-१२ ॥

॥ एक्कारसम सय समत्त ॥ ११ ॥

[२४] तत्पश्चात् आलभिका नगरी मे शृ गाटक, त्रिक यावत् राजमार्गो पर बहुत-से लोगो मे यावत् मुद्गल परिव्राजक ने भगवान् द्वारा दिया अपनी मान्यता के मिथ्या होने का निणय सुन कर इत्यादि सब वर्णन (श ११, उ ९, सू २७-३२ के अनुसार) शिवराजर्षि के समान कहना चाहिए।

[मुद्गल परिव्राजक भी शिवराजर्षि के समान शकित, काक्षित यावत् कालुष्ययुक्त हुए, जिससे उनका विभगज्ञान नष्ट हो गया।]

[भगवान् आदिकर, तीर्थंकर, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी] यावत् सर्वदु खो से रहित [होकर विचरते] है, [उनके पास जाऊँ और यावत् पर्यु पासना करू। इस प्रकार विचार कर] विभगज्ञानरहित मुद्गल परिव्राजक ने भी अपने त्रिदण्ड, कुण्डिका आदि उपकरण लिये, भगवॉ वस्त्र पहने और वे आलभिका नगरी के मध्य मे हो कर निकले, [जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहॉ आए,] यावत् उनकी पर्यु पासना की। [भगवान् ने मुद्गल परिव्राजक तथा उस महापरिषद् को धर्मोपदेश दिया, यावत् इसका पालन करने से जीव आज्ञा के आराधक होते है।]

भगवान् द्वारा अपनी शका का समाधान हो जाने पर मुद्गल परिव्राजक भी यावत् उत्तर-पूर्वदिशा मे गए और स्कन्दक की तरह (श २, उ १, सू ३४ के अनुसार) त्रिदण्ड, कुण्डिका एव भगवॉ वस्त्र एकान्त मे छोड कर यावत् प्रव्रजित हो गए। इसके बाद का वर्णन शिवराजर्षि की तरह जानना चाहिए, [यावत् मुद्गलमुनि भी आराधक हो कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।] यावत् वे सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं यहाँ तक कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे।

विवेचन—मुद्गल परिव्राजक : विभगज्ञानरहित, शकारहित, प्रव्रजित और सिद्धिप्राप्त— प्रस्तुत २४ वे सूत्र मे मुद्गल परिव्राजक का अपनी मान्यता भ्रान्त ज्ञात होने पर उनके शकित आदि होने, उनका विभगज्ञान नष्ट होने, भगवान् की सेवा मे पहुँचने और शकानिवारण होने पर प्रव्रजित होने तथा रत्नत्रयाराधना करने तथा अन्तिम सलेखना-सथारा करके सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने तक का वणन है।[1]

॥ ग्यारहवाँ शतक : बारहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ ग्यारहवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५५९

बारसमं सयं : बारहवाँ शतक

प्राथमिक

※ भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र के इस बारहवे शतक मे दस उद्देशक हैं, जिनके नाम क्रमश इस प्रकार है—(१) शख, (२) जयन्ती, (३) पृथ्वी, (४) पुद्गल, (५) अतिपात, (६) राहु, (७) लोक, (८) नाग, (९) देव और (१०) आत्मा।

※ **प्रथम उद्देशक** मे वर्णन है कि—श्रावस्ती निवासी शख और पुष्कली आदि श्रमणोपासको ने भगवान् महावीर का प्रवचन सुन कर आहारसहित पौषध करने का विचार किया, और शख ने अन्य सब साथी श्रमणोपासको को आहार तैयार कराने का निर्देश दिया। परन्तु शख श्रमणोपासक ने बाद मे निराहार पौषध का पालन किया। जब प्रतीक्षा करने के बाद भी शख न आया तो अन्य श्रमणोपासको ने आहार किया। दूसरे दिन जब शख मिला तो अन्य श्रमणोपासको ने उसे उपालम्भ दिया, किन्तु भगवान् ने उन्हे ऐसा करते हुए रोका। उन्होने शख की प्रशसा की। इससे श्रमणोपासको ने शख से अविनय के लिए क्षमा मागी। अन्त मे तीन प्रकार की जागरिका का वर्णन किया गया है।

※ **द्वितीय उद्देशक** मे भगवान् महावीर की प्रथम शय्यातरा जयन्ती श्रमणोपासिका का वर्णन है, जिसने भगवान् से क्रमशः जीव को गुरुत्व-लघुत्व-प्राप्ति, भव्य-अभव्य, सुप्त-जाग्रत, दुर्बलता-सबलता, दक्षत्व-अनुद्यमित्व आदि के विषय मे प्रश्न पूछ कर समाधान प्राप्त किया। अन्त मे पचेन्द्रिय विषयवशार्त के परिणाम के विषय मे समाधान पूछकर वह ससारविरक्त होकर प्रव्रजित हुई।

※ **तृतीय उद्देशक** मे सात नरकपृथ्वियो के नाम-गोत्र आदि का वर्णन है।

※ **चतुर्थ उद्देशक** मे दो परमाणुओ से लेकर दस परमाणुओ, यावत् संख्यात, असख्यात और अनन्त-परमाणुपुद्गलो के एकत्वरूप एकत्र होने पर बनने वाले स्कन्ध के पृथक्-पृथक् विकल्पो का प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् इन परमाणुपुद्गलो के सघात और भेद से विभिन्न पुद्गल परिवर्तो का निरूपण किया गया है।

※ **पंचम उद्देशक** मे प्राणातिपात आदि अठारह पाप स्थानो के पर्यायवाची पदो के उल्लेखपूर्वक उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का निरूपण है। तत्पश्चात् औत्पत्तिकी आदि चार बुद्धियो, अवग्रहादि चार, उत्थानादि पाच तथा सप्तम अवकाशान्तर से वैमानिकावास तक, एव पचास्तिकाय, अष्ट कर्म, षट् लेश्या, पच शरीर, त्रियोग, अतीतादिकाल एव गर्भगत जीवन मे वर्णादि की प्ररूपणा की गई है। अन्त मे बताया गया है कि कर्मों से ही जीव मनुष्यतिर्यञ्चादि नाना रूपो को प्राप्त होता है।

* **छठे उद्देशक** मे 'राहु चन्द्रमा को ग्रस लेता है', इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण करते हुए भगवान् ने राहु की विभूतिमत्ता, शक्तिमत्ता, उसके नाम, एव वर्ण का प्रतिपादन किया है, तथा इस तथ्य को उजागर किया है कि राहु आता-जाता, विक्रिया करता या कामक्रीडा करता हुआ जव पूर्वादि दिशाओ मे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को आच्छादित कर देता है तव इसी को लोग राहु द्वारा चन्द्र का ग्रसन, ग्रहण, भेदन, वमन या भक्षण करना कह देते हैं । तत्पश्चात् ध्रुवराहु और पर्वराहु के स्वरूप और कार्य का, चन्द्र को शशी और सूर्य को आदित्य कहने के कारण का तथा चन्द्र और सूर्य के कामभोगजनित सुखो का प्रतिपादन किया गया है ।

* **सप्तम उद्देशक** मे समस्त दिशाओ से असख्येय कोटा-कोटि योजनप्रमाण लोक मे परमाणु पुद्गल जितने आकाशप्रदेश के भी जन्म-मरण से अस्पृष्ट न रहने का तथ्य अजा-व्रज के दृष्टान्तपूर्वक सिद्ध किया गया है । तत्पश्चात् रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर अनुत्तर विमान के आवासो मे अनेक या अनन्त वार उत्पत्ति की तथा एक जीव और सर्व जीवो की अपेक्षा से माता आदि के रूप मे, शत्रु आदि के रूप मे, राजादि के रूप मे एव दासादि के रूप मे अनेक या अनन्त वार उत्पन्न होने की प्ररूपणा की गई है ।

* **अष्टम उद्देशक** मे महर्द्धिक देव की नाग, मणि एव वृक्षादि मे उत्पत्ति एव प्रभाव की चर्चा की गई है । तत्पश्चात् नि शील, व्रतादिरहित महान् वानर, कुक्कुट एव मण्डूक, सिह, व्याघ्रादि, तथा ढक ककादि पक्षी आदि के प्रथम नरक के नैरयिक रूप मे उत्पत्ति की प्ररूपणा की गई है ।

* **नौवें उद्देशक** मे भव्यद्रव्यदेव आदि पचविध देव, उनके स्वरूप तथा उनकी आगति, जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति, विक्रियाशक्ति, मरणानन्तरगति-उत्पत्ति, उद्वर्तना, सस्थितिकाल, अन्तर, पचविध देवो के अल्पवहुत्व एव भाव देवो के अल्पवहुत्व का प्रतिपादन किया गया है ।

* **दसवें उद्देशक** मे आठ प्रकार की आत्मा तथा उनमे परस्पर सम्वन्धो का निरूपण किया गया है । तत्पश्चात् आत्मा की ज्ञानदर्शन से भिन्नता-अभिन्नता, तथा रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर अच्युतकल्प तक के आत्मा, नो-आत्मा के रूप मे कथन किया गया है । तदनन्तर परमाणुपुद्गल से लेकर द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, चतुष्प्रदेशिक यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के सकलादेश-विकलादेश की अपेक्षा से विविध भगो का प्रतिपादन किया गया है ।

* कुल मिला कर आत्मा का विविध पहलुओ से, विविध रूप मे कथन, साधना द्वारा जीव और कर्म का पृथक्करण, परमाणुपुद्गलो से सम्वन्ध आदि का रोचक वर्णन प्रस्तुत शतक मे किया गया है ।[1] □□

---

१ 'वियाहपण्णत्ति सुत्त' (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ५६० से ६१४ तक

बारसमं सयं : बारहवाँ शतक

बारहवें शतक के दश उद्देशकों के नाम

बारहवें शतक के दस उद्देशक—

१. संखे १ जयंति २ पुढवी ३ पोग्गल ४ अइवायं ५ राहु ६ लोगे य ७ ।
नागे य ८ देव ९ आया १० बारसमसए दसुद्देसा ॥१॥

[सू. १ गाथार्थ] बारहवे शतक मे दस उद्देशक है। (उनके नाम इस प्रकार है)—(१) शख, (२) जयन्ती, (३) पृथ्वी, (४) पुद्गल, (५) अतिपात, (६) राहु, (७) लोक, (८) नाग, (९) देव और (१०) आत्मा ॥१॥

विवेचन—दश उद्देशक—(१) **शंख**—श्रमणोपासक शख और पुष्कली के साहार पौपधोपवास का वर्णन, (२) **जयन्ती**—जयन्ती श्रमणोपासिका के भगवान् से प्रश्नोत्तर, (३) **पृथ्वी**—सात नरक-भूमियो का वर्णन, (४) **पुद्गल**-परमाणु और स्कन्ध के विभागो का वर्णन, (५) **अतिपात**—प्राणातिपात आदि पापो के वर्ण ग्रन्धादि का निरूपण, (६) **राहु**—राहु द्वारा चन्द्रमा के ग्रसन आदि की भ्रान्त मान्यता का निराकरण, (७) **लोक**—लोक के परिमाण आदि का वर्णन, (८) **नाग**—नाग (सर्प या गज) की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध मे प्रश्न, (९) **देव**—देवो के प्रकार तथा उत्पत्ति के कारण आदि का वर्णन, (१०) **आत्मा**—आत्मा के आठ प्रकार और उनके परस्पर सम्बन्ध, अल्पवहुत्व आदि का वर्णन।[1]

पढमो उद्देसओ : 'संखे'

प्रथम उद्देशक : शंख (और पुष्कली श्रमणोपासक)

शंख और पुष्कली का संक्षिप्त परिचय—

२. तेण कालेणं तेणं समएण सावत्थी नामं नयरी होत्था। वण्णओ। कोट्ठए चेतिए। वण्णओ।

[२] उस काल और उस समय मे श्रावस्ती नामक नगरी थी। उसका वर्णन (औपपातिक आदि सूत्रो से समझ लेना)। (वहाँ) कोष्ठक नामक उद्यान था, उसका वर्णन भी (औपपातिक सूत्र के उद्यान-वर्णन के अनुसार समझ ले)।

---

१ भगवतीसूत्र, वृत्ति, पत्र ५५५

३ तत्थ णं सावत्थीए नयरीए बहवे सखपामोक्खा समणोवासगा परिवसति अड्ढा जाव अपरिभूया अभिगयजीवाजीवा जाव विहरंति ।

[३] उस श्रावस्ती नगरी मे शख आदि बहुत-से श्रमणोपासक रहते थे । (वे) आढ्य यावत् अपरिभूत थे, तथा जीव, अजीव आदि तत्त्वो के ज्ञाता थे, यावत् विचरते थे ।

४. तस्स णं सखस्स समणोवासगस्स उप्पला नाम भारिया होत्था, सुकुमाल जाव सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा जाव विरहति ।

[४] उस 'शख' श्रमणोपासक की भार्या (पत्नी) का नाम 'उत्पला' था । उसके हाथ-पैर अत्यन्त कोमल थे, यावत् वह रूपवती एव श्रमणोपासिका थी, तथा जीव-अजीव आदि तत्त्वो की जानने वाली यावत् विचरती थी ।

५ तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पोक्खली नामं समणोवासए परिवसति अड्ढे अभिगय जाव विहरति ।

[५] उसी श्रावस्ती नगरी मे पुष्कली नाम का (एक अन्य) श्रमणोपासक रहता था । वह भी आढ्य यावत् जीव-अजीवादि तत्त्वो का ज्ञाता था यावत् विचरता था ।

विवेचन—श्रावस्ती नगरी के दो प्रमुख श्रमणोपासक- प्रस्तुत ४ सूत्रो (२ से ५ तक) मे श्रावस्ती नगरी मे बसे हुए अनेक श्रमणोपासको मे से दो विशिष्ट श्रमणोपासको का सक्षिप्त परिचय इसलिए दिया गया है कि इन्ही दोनो से सम्बन्धित वर्णन इस उद्देशक में किया जाने वाला है ।

श्रावस्ती नगरी—प्राचीन काल मे भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध के युग मे बहुत ही समृद्ध नगरी थी । उसका कोष्ठक उद्यान प्रसिद्ध था, जहाँ केशी-गौतम-सवाद हुआ था । वर्तमान मे श्रावस्ती का नाम 'सेहट-मेहट' है । अब यह वैसी समृद्ध नगरी नही रही ।

भगवान् का श्रावस्ती में पदार्पण, श्रमणोपासको द्वारा धर्मकथा-श्रवण—

६. तेणं कालेणं तेण समएणं सामी समोसढे । परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ ।

[६] उस काल और उस समय मे (श्रमण भगवान् महावीर) स्वामी श्रावस्ती पधारे । उनका समवसरण (धर्मसभा) लगा । परिषद् वन्दन के लिये गई, यावत् पर्युपासना करने लगी ।

७. तए णं ते समणोवासगा इमीसे जहा आलभियाए (स० ११ उ० १२ सु० ७) जाव पज्जुवासंति ।

[७] तत्पश्चात् (श्रमण भगवान् महावीर के आगमन को जान कर) वे (श्रावस्ती के) श्रमणोपासक भी, आलभिका नगरी के (श ११, उ १२, सू ७ मे उक्त श्रमणोपासक के समान) उनके वन्दन एव धर्मकथाश्रवण आदि के लिए गए) यावत् पर्युपासना करने लगे ।

८. तए ण समणे भगव महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महतिमहालियाए० धम्मकहा जाव परिसा पडिगया ।

[८] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासको को और उस महती महा-

परिषद को धर्मकथा कही (धर्मोपदेश दिया)। यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुन कर अत्यन्त हर्षित हो कर) वापिस चली गई।

९. तए ण ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ पसिणाइ पुच्छति, प० पु० अट्ठाइं परियादियति, अ० प० २ उट्ठाए उट्ठेंति, उ० २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ कोट्ठगाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, प० २ जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

[९] तत्पश्चात् वे (श्रावस्ती के) श्रमणोपासक भगवान् महावीर के पास धर्मोपदेश सुन कर और अवधारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुए। उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, (और उनसे कतिपय) प्रश्न पूछे, तथा उनका अर्थ (उत्तर) ग्रहण किया। फिर उन्होने खडे हो कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और कोष्ठक उद्यान से निकल कर श्रावस्ती नगरी की ओर जाने का विचार किया।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (६ से ९ तक) मे निम्नोक्त बातो का प्रतिपादन किया गया है—

१ भगवान् महावीर का श्रावस्ती मे पदार्पण और परिषद् का वदनादि के लिए निर्गमन।

२ श्रावस्ती के उन विशिष्ट श्रमणोपासको द्वारा भी भगवान् के वन्दन-प्रवचनश्रवणादि के लिए पहुँचना।

३ भगवान् द्वारा सबको धर्मोपदेश करना।

४ धर्मोपदेश सुन उक्त श्रमणोपासको द्वारा भगवान् से अपने प्रश्नो का उत्तर पा कर श्रावस्ती की ओर प्रत्यागमन।

कठिनशब्दार्थ—पहारेत्थ गमणाए—गमन के लिए निर्धारण किया।

शंख श्रमणोपासक द्वारा पाक्षिक पौषधार्थ श्रमणोपासकों को भोजन तैयार कराने का निर्देश—

१०. तए ण से संखे समणोवासए ते समणोवासए एव वदासी–तुब्भे ण देवाणुप्पिया! विपुल असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेह। तए ण अम्हे त विपुल असण पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणा विस्साएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसह पडिजागरमाणा विहरिस्सामो।

[१०] तदनन्तर उस शख श्रमणोपासक ने दूसरे (उन साथी) श्रमणोपासको से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम (भोजन) तैयार कराओ। फिर (भोजन तैयार हो जाने पर) हम उस प्रचुर अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य (भोजन) का आस्वादन करते हुए, विशेष प्रकार से आस्वादन करते हुए, एक-दूसरे को देते हुए और भोजन करते हुए पाक्षिक पौषध (पक्खी के पोसह) का अनुपालन करते हुए अहोरात्र-यापन करेगे।

११. तए ण ते समणोवासगा सखस्स समणोवासगस्स एयमट्ठ विणएणं पडिसुणति।

[११] इस पर उन (अन्य सभी) श्रमणोपासको ने शख श्रमणोपासक की इस बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (१०-११) मे तीन बातो का विशेषरूप से निरूपण किया गया है—(१) शख श्रमणोपासक द्वारा साथी श्रमणोपासको को विपुल भोजन तैयार कराने का निर्देश, (२) सभी परस्पर भोजन देते और करते हुए पाक्षिक पौषध करने का प्रस्ताव, तथा (३) साथी श्रमणोपासको द्वारा उक्त प्रस्ताव का स्वीकार।

कठिनशब्दार्थ—**उवक्खडावेह**—तैयार कराओ। **आसाएमाणा**—आस्वादन करते हुए, भावार्थ है—गन्ने के टुकडो की तरह थोडा खाते हुए और छिलके आदि बहुत-सा भाग फेंकते हुए। **विस्साएमाणा**—विशेष प्रकार से आस्वादन करते हुए, भावार्थ है—खजूर आदि की तरह बहुत कम छोडते हुए। **परिभाएमाणा**—परस्पर एक दूसरे को परोसते—देते हुए। **परिभुजेमाणा**—सारा (थाली मे लिया हुआ) ही खाते हुए, जरा भी भूठा न छोडते हुए। इन चारो मे वर्तमान मे चालू क्रिया का निर्देशक 'शानच्' प्रत्यय है, परन्तु ये वार्तमानिक प्रत्ययान्त शब्द भूतकालिक प्रत्ययान्तद्योतक समझना चाहिए। **पक्खियं**—पाक्षिक, पन्द्रह दिनो मे होने वाला। **पोसहं**—अव्यापाररूप पौषध, आहार-प्रत्याख्यान के अतिरिक्त अब्रह्मचर्य सेवन, रत्नादि आभूषण, माला-विलेपनादि शस्त्रमूसलादिक सावद्य व्यापार तथा स्नान शृंगार एव व्यवसाय के त्याग को ही यहाँ अव्यापारपौषध समझना चाहिए। **पडिजागरमाणा**—अनुपालन करते हुए, अर्थात्—पौषध करके धर्मजागरणा करते हुए। **विहरिस्सामो**-एक अहोरात्र यापन करेंगे। पडिसुणति—सुन कर स्वीकृति रूप मे प्रत्युत्तर देते हैं, स्वीकार करते हैं।[1]

पौषध के मुख्य दो प्रकार—प्रस्तुत पाठ से यह फलितार्थ निकलता है कि पौषध दो प्रकार का है—(१) चतुर्विध आहारत्याग-पौषध और (२) आहार-सेवनयुक्त पौषध। प्रस्तुत मे शख श्रमणोपासक ने आहार-सेवनपूर्वक पौषध करने का विचार प्रस्तुत किया है, जिसे वर्तमान मे देश पौषध, देशावकाशिकव्रत-रूप पौषध, अथवा दयाव्रत, या छकाया (षट्कायारम्भ-त्याग) कहते है।[2]

शंख श्रमणोपासक द्वारा आहारत्यागपूर्वक पौषध का अनुपालन—

१२. तए णं तस्स सखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'नो खलु मे सेय तं विउल असण जाव साइमं आसाएमाणस्स विस्साएमाणस्स परिभाएमाणस्स परिभुजेमाणस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए। सेय खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बमयारिस्स उम्मुक्कमणि-सुवण्णस्स ववगयमाला-वण्णग-विलेवणस्स निक्खित्तसत्थ-मुसलस्स एगस्स अविइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खिय पोसह पडिजागरमाणस्स विहरित्तए'त्ति कट्टु एव सपेहेति, ए० स० २ जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव सए गिहे जेणेव उप्पला समणोवासिया तेणेव उवागच्छति, उवा० २ उप्पलं समणोवासिय आपुच्छति, उ० आ० २ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छति, उवा० २ पोसहसालं अणुपविसति, पो० अ० २ पोसहसाल पमज्जति, पो० प० २ उच्चार-पासवणभूमि पडिलेहेति, उ० प० २ दब्भसथारगं सथरति, द० स० २ दब्भसथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बमचारी जाव पक्खियं पोसह पडिजागरमाणे विहरति।

---

१ भगवतीसूत्र, अभय वृत्ति, पत्र ५५५

२ (क) भगवतीसूत्र, विवेचन, (प घेवरचन्दजी) भा-४, पृ १९७५

(ख) अभिधानराजेन्द्र कोष, 'पोसह' शब्द

[१२] तदनन्तर उस शख श्रमणोपासक को एक ऐसा अध्यवसाय (विचार एव अभीष्ट मनोगत सकल्प) यावत् उत्पन्न हुआ—"उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन, विस्वादन, परिभाग और परिभोग करते हुए पाक्षिक पौषध (करके) धर्मजागरणा करना मेरे लिए श्रेयस्कर नही प्रत्युत अपनी पौषध-शाला मे, ब्रह्मचर्यपूर्वक, मणि, सुवर्ण आदि के त्यागरूप तथा माला, वर्णक एव विलेपन से रहित, और शस्त्र-मूसल आदि के त्यागरूप पौषध का ग्रहण करके दर्भ (डाभ) के सस्तारक (बिछौने) पर बैठ कर दूसरे किसी को साथ लिये विना अकेले को ही पाक्षिक पौषध के रूप मे (अहोरात्र) धर्मजागरणा करते हुए विचरण करना श्रेयस्कर है।" इस प्रकार विचार करके वह श्रावस्ती नगरी मे जहाँ अपना घर था, वहाँ आया, (और अपनी धर्मपत्नी) उत्पला श्रमणोपासिका से (इस विषय मे) पूछा (परामर्श किया)। फिर जहाँ अपनी पौषधशाला थी, वहाँ आया, पौषधशाला मे प्रवेश किया। फिर उसने पौषधशाला का प्रमार्जन किया (सफाई की), उच्चार-प्रस्रवण (मलमूत्रविसर्जन) की भूमि का प्रतिलेखन (भलीभाति निरीक्षण) किया। तब उसमे डाभ का सस्तारक (बिछौना) बिछाया और उस पर बैठा। फिर (उसी) पौषधशाला मे उसने ब्रह्मचर्य पूर्वक यावत् (पूर्वोक्तवत्) पाक्षिक पौषध (रूप धर्मजागरणा) पालन करते हुए, (अहोरात्र) यापन किया।

विवेचन—शंख श्रावक द्वारा निराहार पौषध का संकल्प और अनुपालन—प्रस्तुत सूत्र मे शख श्रमणोपासक द्वारा किये गए सवेगयुक्त एक नये अध्यवसाय और तदनुसार पौषधशाला मे निराहार पौषध के अनुपालन का वर्णन है।

आहारत्यागपौषध : एकाकी या सामूहिक भी ?—भगवान् के दर्शन करके वापिस लौटते समय शख श्रावक को साहारपौषध सामूहिक रूप से करने का विचार सूझा और तदनुसार उसने अपने साथी श्रमणोपासको को चतुर्विध आहार तैयार कराने का निर्देश दिया था, किन्तु बाद मे शख के मन मे अतिशयसवेगभाव एव उत्कृष्ट त्यागभाव के कारण निराहार रह कर एकाकी ही अपनी पौषधशाला मे पाक्षिक पौषध के अनुपालन करने का विचार स्फुरित हुआ और तदनुसार उसने पत्नी से परामर्श करके पौषधशाला मे जा कर अकेले ही निराहार पौषध अगीकार करके धर्मजागरणा की। यहाँ प्रश्न होता है कि आहारसहित पौषध जैसे सामूहिकरूप से किया जाता है, वैसे क्या निराहारपौषध सामूहिक रूप से नही हो सकता ? वृत्तिकार इसका समाधान करते हुए कहते हैं—'एगस्स अबिइयस्स' इस मूलपाठ पर से यह नही समझ लेना चाहिए कि निराहार पौषध पौषधशाला मे अकेले ही करना कल्पनीय है। यह तो चरितानुवादरूप है, दूसरे शास्त्रो एव ग्रन्थो मे, पौषधशाला मे बहुत-से श्रावको द्वारा मिल कर सामूहिकरूप से पौषध करने का वर्णन है। ऐसा करने मे कोई दोष भी नही है, बल्कि सामूहिकरूप से पौषध करने से सामूहिकरूप से स्वाध्याय करने बोल—थोकडे आदि का स्मरण करने मे सुविधा होती है, इससे विशेष लाभ ही है। इसलिए सामूहिक पौषध मे विशिष्ट गुणो की सम्भावना है।[1]

दूसरी बात—'एगस्स अबिइयस्स' का स्पष्ट आशय यह है कि बाह्य सहायता की अपेक्षा के बिना केवल एकाकी ही, अथवा दूसरे किसी तथाविध क्रोधादि की सहायता की अपेक्षा के बिना केवल आत्मनिर्भर हो कर।[2]

---

१ भगवतीसूत्र, अभय वृत्ति, पत्र ५५५

२ वही, पत्र ५५५,

कठिनशब्दार्थ—अज्झत्थिए—अध्यवसाय। उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स—मणि, सुवर्ण आदि बहुमूल्य वस्तुओं को छोड़ कर। ववगयमाला-वण्णग-विलेवणस्स—माला, वर्णक (सुगन्धितचूर्ण-पाउडर) एव विलेपन से रहित हो कर।[1]

आहार तैयार करने के बाद शंख को बुलाने के लिए पुष्कली का गमन

१३. तए णं ते समणोवासगा जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, ते० उ० २ विपुल असण-पाण-खाइम-साइम उवक्खडावेंति, उ० २ अन्नमन्ने सद्दावेंति, अन्न० स० २ एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण-पाण-खाइम-साइमे उवक्खडाविते, सखे य णं समणोवासए नो हव्वमागच्छइ। त सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सख समणोवासग सद्दावेत्तए।'

[१३] तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक श्रावस्ती नगरी मे अपने-अपने घर पहुँचे। और उन्होंने पुष्कल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य (चतुर्विध आहार) तैयार करवाया। फिर उन्होने एक दूसरे को बुलाया और परस्पर इस प्रकार कहने लगे—देवानुप्रियो ! हमने तो (शख श्रमणोपासक के कहे अनुसार) पुष्कल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य (आहार) तैयार करवा लिया, परन्तु शख श्रमणोपासक जल्दी (अभी तक) नही आए इसलिए देवानुप्रियो ! हमे शंख श्रमणोपासक को बुला लाना श्रेयस्कर (अच्छा) है।

१४. तए णं से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी—'अच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सुनिव्वुया वीसत्था, अहं ण सखं समणोवासगं सद्दावेमि'त्ति कट्टु तेसिं समणोवासगाण अंतियाओ पडिनिक्खमति, प० २ सावत्थीनगरीमज्झमज्झेणं जेणेव संखस्स समणोवासयस्स गिहे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ सखस्स समणोवासगस्स गिहं अणुपविट्ठे।

[१४] इसके बाद उस पुष्कली नामक श्रमणोपासक ने उन श्रमणोपासको से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! तुम सब अच्छी तरह स्वस्थ (निश्चित) और विश्वस्त होकर, बैठो, (विश्राम लो), मैं शख श्रमणोपासक को बुलाकर लाता हूँ।" यो कह कर वह उन श्रमणोपासको के पास से निकल कर श्रावस्ती नगरी के मध्य मे होकर जहाँ शख श्रमणोपासक का घर था, वहाँ आकर उसने शख श्रमणोपासक के घर मे प्रवेश किया।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (१३-१४) मे, उक्त श्रमणोपासको द्वारा भोजन तैयार कराने के बाद जब शख श्रमणोपासक नही आया तो उसे बुलाने के लिए पुष्कली श्रमणोपासक का उसके घर पहुचने का वर्णन है।

कठिनशब्दार्थ—नो हव्व-मागच्छइ—जल्दी नही आया अथवा अभी तक नही आया। अच्छह—बैठो। सुनिव्वुया—अच्छी तरह शान्त, या स्वस्थ अथवा निश्चित। वीसत्था—विश्वस्त होकर।[2]

---

१ भगवतीसूत्र (विवेचन, प घेवरचदजी) भा-४ पृ. १९७४

२ पाइयसद्दमहण्णवो, पृ ९४३, २०, ४१२, ८१४

गृहागत पुष्कली के प्रति शंखपत्नी द्वारा स्वागत-शिष्टाचार और प्रश्नोत्तर—

१५. तए ण सा उप्पला समणोवासिया पोक्खलिं समणोवासग एज्जमाणं पासति, पा० २ हट्ठतुट्ठ० आसणातो अब्भुट्ठेति, आ० अ० २ सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छति, स० अ० २ पोक्खलिं समणोवासग वदति नमसति, व० २ आसणेण उवनिमंतेति, आ० उ० २ एवं वयासी—सदिसंतु ण देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पयोयण ? तए ण से पोक्खली समणोवासए उप्पलं समणोवासियं एवं वयासी—'कहिं णं देवाणुप्पिए ! सखे समणोवासए ?' तए ण सा उप्पला समणोवासिया पोक्खलिं समणोवासगं एवं वयासी–एव खलु देवाणुप्पिया ! संखे समाणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव विहरति ।

[१५] तत्पश्चात् पुष्कली श्रमणोपासक को (अपने घर की ओर) आते देख कर, वह उत्पला श्रमणोपासिका (शख श्रमणोपासक की धर्मपत्नी) हर्षित और सन्तुष्ट हुई । वह (तुरन्त) अपने आसन से उठी और सात-आठ कदम (चरण) सामने गई । फिर उसने पुष्कली श्रमणोपासक को वन्दन-नमस्कार किया, और आसन पर बैठने को कहा । फिर इस प्रकार पूछा—'कहिये, देवानुप्रिय ! आपके (यहाँ) आने का क्या प्रयोजन है ?' इस पर उस पुष्कली श्रमणोपासक ने, उत्पला श्रमणोपासिका से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये ! शख श्रमणोपासक कहाँ है ?' (यह सुन कर) उस उत्पला श्रमणोपासिका ने पुष्कली श्रमणोपासक को इस प्रकार उत्तर दिया—'देवानुप्रिय ! बात ऐसी है कि वह (शख श्रमणोपासक तो आज) पौषधशाला मे पौषध ग्रहण करके ब्रह्मचर्ययुक्त होकर यावत् (धर्मजागरणा कर) रहे है ।

विवेचन—प्रस्तुतसूत्र (१५) मे पुष्कली द्वारा शख की पत्नी से पूछने पर उसके द्वारा शख के पौषधग्रहण करके धर्मजागरिका करने का वृत्तान्त प्रतिपादित है ।

उत्पला द्वारा पुष्कली श्रमणोपासक का स्वागत और शिष्टाचार—प्रस्तुत मूल पाठ मे अपने घर पर आए हुए शिष्ट जन के स्वागत-सत्कार की उस युग की परम्परा का वर्णन है । इसमे शिष्टाचार सम्बन्धी पाच बाते गर्भित है—(१) घर की ओर आते देख हर्षित और सन्तुष्ट होना, (२) आसन से उठ कर स्वागत के लिए सात-आठ कदम सामने जाना, (३) वन्दन-नमस्कार करना, (४) बैठने के लिए आसन देना, और (५) आदरपूर्वक आगमन का प्रयोजन पूछना ।[1]

सदिसतु दो अर्थ—(१) आज्ञा दीजिए, (२) बताइए या कहिए ।[2]

पौषधशाला में स्थित शंख को पुष्कली द्वारा आहारादि करते हुए पौषध का आमंत्रण और उसके द्वारा अस्वीकार—

१६. तए ण से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला जेणेव संखे समणोवासए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ गमणागमणाए पडिक्कमति, ग० प० २ सख समणोवासग वदति नमसति, व० २ एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण जाव साइमे उवक्खडाविते,

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणसहित) पृ ५६३

२ पाइयसद्दमहण्णवो, पृ ८४२

त गच्छामो ण देवाणुप्पिया ! त विउलं असणं जाव साइमं आसाएमाणा जाव पडिजागरमाणा विहरामो ।

[१६] तब वह पुष्कली श्रमणोपासक, जिस पौषधशाला मे शख श्रमणोपासक था, वहाँ उसके पास आया और उसने गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। फिर शख श्रमणोपासक को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—'देवानुप्रिय ! हमने वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार करा लिया है। अत देवानुप्रिय ! अपन चले और वह विपुल अशनादि आहार एक दूसरे को देते और उपभोगादि करते हुए पौषध करके रहे।

१७. तए ण से सखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासगं एव वयासी—'णो खलु कप्पति देवाणुप्पिया ! त विउलं असणं पाण खाइम साइम आसाएमाणस्स जाव पडिजागरमाणस्स विहरित्तए। कप्पति मे पोसहसालाए पोसहियस्स जाव विहरित्तए। तं छदेण देवाणुप्पिया ! तुब्भे तं विउलं असणं पाण खाइम साइमं आसाएमाणा जाव विहरह' ।

[१७] यह सुन कर शख श्रमणोपासक ने पुष्कली श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! मेरे लिये (अब) उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का उपभोग आदि करते हुए पौषध करना कल्पनीय (योग्य) नही है। मेरे लिए पौषधशाला मे पौषध (निराहार पौषध) अगीकार करके यावत् धर्मजागरणा करते हुए रहना कल्पनीय (उचित) है। अत हे देवानुप्रिय ! तुम सब अपनी इच्छानुसार उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार का उपभोग आदि करते हुए यावत् पौषध का अनुपालन करो।'

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (१६-१७) मे निरूपण है कि पुष्कली श्रमणोपासक द्वारा शख-श्रावक को आहार करके पौषध करने हेतु चलने का आमन्त्रण देने पर शख ने अपने लिए निराहार पौषधपूर्वक धर्मजागरणा करने के औचित्य का प्रतिपादन करके पुष्कली आदि को स्वेच्छानुसार आहार करके पौषध करने की सम्मति दी।

छंदेणं—स्वेच्छानुसार। **गमणागमणाए पडिक्कमति**—ईर्यापथिकी क्रिया (मार्ग मे चलने से कदाचित् होने वाली जीवविराधना) का प्रतिक्रमण करता है।[1]

पुष्कलीकथित वृत्तान्त सुनकर श्रावकों द्वारा खाते-पीते पौषधानुपालन

१८. तए णं से पोक्खली समणोवासगे संखस्स समणोवासगस्स अतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ सावत्थि नगरिं मज्झंमज्झेण जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ ते समणोवासए एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए जाव विहरति। त छदेण देवाणुप्पिया ! तुब्भे विउल असण-पाण-खाइम-साइम जाव विहरह। संखे णं समणोवासए नो हव्वमागच्छति।

---

१. (क) भगवतीसूत्र भा. ४ (हिन्दी विवेचन) पृ

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५५

[१८] तदनन्तर वह पुष्कली श्रमणोपासक, शंखश्रमणोपासक की पौपधशाला से लौटा और श्रावस्ती नगरी के मध्य मे से होकर, जहाँ वे (साथी) श्रमणोपासक थे, वहाँ आया। फिर उन श्रमणोपासको से इस प्रकार बोला—"देवानुप्रियो! शख श्रमणोपासक निराहार-पौपधव्रत अगीकार करके पौषधशाला मे स्थित है। (उसने कह दिया कि "देवानुप्रियो! तुम सब स्वेच्छानुसार उस विपुल अशनादि आहार को परस्पर देते हुए यावत् उपभोग करते हुए पौषध का अनुपालन कर लो। शख श्रमणोपासक अब नही आएगा।"

१९. तए ण ते समणोवासगा त विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणा जाव विहरति।

[१९] यह सुन कर उन श्रमणोपासको ने उस विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यरूप आहार को खाते-पीते हुए यावत् पौषध करके धर्मजागरणा की।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (१८-१९) मे वर्णन है कि पुष्कली द्वारा शख श्रमणोपासक के निराहार पौषध करने और हमे स्वेच्छा से आहार करते हुए पौषध करने की सम्मति देने का वृत्तान्त सुनाने पर सबने मिलकर आहारपूर्वक पौषध का अनुपालन किया।

शंख एवं अन्य श्रमणोपासक भगवान् की सेवा में—

२०. तए ण तस्स संखस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'सेयं खलु मे कल्लं पादु० जाव जलते समणं भगवं महावीर वदित्ता नमसित्ता जाव पज्जुवासित्ता तओ पडिनियत्तस्स पक्खियं पोसहं पारित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेति, एव स० २ कल्लं जाव जलते पोसहसालाओ पडिनिक्खमति, पो० प० २ सुद्धप्पावेसाइ मगल्लाइ वत्थाइ पवर परिहिते सयातो गिहातो पडिनिक्खमति, स० प० २ पायविहारचारेणं सावत्थि णगरिं मज्झंमज्झेणं जाव पज्जुवासति। अभिगमो नत्थि।

[२०] इधर उस शख श्रमणोपासक को पूर्वरात्रि व्यतीत होने पर, पिछली रात्रि के समय मे धर्म-जागरिकापूर्वक जागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् (सकल्प) उत्पन्न हुआ—'कल प्रात काल यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके यावत् उनकी पर्युपासना करके वहाँ से लौट कर पाक्षिक पौषध पारित करू। उसने इस प्रकार का पर्यालोचन किया और फिर (तदनुसार) प्रात काल सूर्योदय होने पर अपनी पौषधशाला से बाहर निकला। शुद्ध (स्वच्छ) एव सभा मे प्रवेश करने योग्य मगल (मागलिक) वस्त्र ठीक तरह से पहने, और अपने घर से चला। वह पैदल (पादविहारपूर्वक) चलता हुआ श्रावस्ती नगरी के मध्य मे होकर भगवान् की सेवा मे पहुँचा, यावत् उनकी पर्युपासना करने लगा। वहाँ अभिगम नही (कहना चाहिए।)

२१. तए णं ते समणोवासगा कल्लं पादु० जाव जलंते ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, स० प० २ एगयओ मिलायति, एगयओ मिलाइत्ता सेसं जहा पढमं जाव पज्जुवासंति।

[२१] तदनन्तर (आहारसहित पौषध पारित करने के बाद) वे सब श्रमणोपासक, (दूसरे दिन) प्रात काल यावत् सूर्योदय होने पर स्नानादि (नित्यकृत्य) करके यावत् शरीर को अलकृत करके अपने-अपने घरो से निकले और एक स्थान पर मिले । फिर सब मिल कर पूर्ववत् भगवान् की सेवा मे पहुँचे, यावत् पर्युपासना करने लगे ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (२०-२१) मे शख का और श्रमणोपासको का भगवान् की सेवा मे पहुँचने का वर्णन है ।

अभिगमो नत्थि : आशय—मूलपाठ मे अकित 'अभिगम कथन नही' का तात्पर्य यह है, कि शख श्रमणोपासक अपने शुभ सकल्पानुसार पौषधव्रत मे ही भगवान् की सेवा मे पहुँचा था, इसलिए उसके पास सचित्त द्रव्य, छत्रादि राजसी ठाठबाट, उपानह, शस्त्र आदि अभिगम करने योग्य कोई पदार्थ नही थे, और शेष दो अभिगम (देखते ही प्रणाम करना, और मन को एकाग्र करना) तो उसके सकल्प के अन्तर्गत थे ही, इसलिए शख के लिए अभिगम करने का प्रश्न ही नही था ।[1]

'एगयओ मिलाइत्ता' : तात्पर्य—एक स्थान पर सभी श्रमणोपासको के मिलने के पीछे ५ मुख्य रहस्य निहित हैं—(१) सबमे एकरूपता रहे, (२) सबमे एकवाक्यता रहे, (३) सहभोजन की तरह सहधर्मिता रहे, (४) परस्पर सहधर्मी-वात्सल्य बढे और (५) धर्माचरण मे एक दूसरे का स्नेह-सहयोग होने से आत्मशक्ति बढे । उपनिषद् मे भी इस प्रकार का एक श्लोक मिलता है ।[2]

'जहा पढम'—इस वाक्य का भावार्थ यह है कि जैसे उन श्रमणोपासको का भगवान् की सेवा मे पहुँचने का सू ७ मे प्रथम निर्गम कहा था, वैसे ही यहाँ (द्वितीय निर्गम) भी कहना चाहिए ।[3]

कठिनशब्दार्थ—पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि—रात्रि का पूर्व भाग व्यतीत होने पर पिछली रात्रि का काल प्रारम्भ होने के समय मे । **धम्मजागरिय**—धर्म के लिए अथवा धर्मचिन्तन की दृष्टि से जागरणा । **सपेहेइ**—पर्यालोचन करता है, विचार करता है ।[4]

भगवान् का उपदेश और शंख श्रमणोपासक की निन्दादि न करने की प्रेरणा—

२२. तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाण तीसे य० धम्मकहा जाव आणाए आराहए भवति ।

[२२] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासको और उस महती महापरिषद् को धर्मकथा कही । यावत्—धर्मदेशना दी । वे आज्ञा के आराधक हुए (यहाँ तक कथन करना ।)

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५५
(ख) भगवती भा ४ (हिन्दीविवेचन) पृ १९७८
(ग) पाच अभिगमो के सम्बन्ध मे देखो—भगवती श २, उ. ५, खण्ड १, पृ २१६

२ 'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥' —उपनिषद्

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५५

४ वही, पत्र ५५५

२३. तए ण ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेंति, उ० २ समण भगव महावीर वदति नमसति, वं० २ जेणेव सखे समणोवासए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ सख समणोवासय एव वयासी—"तुम ण देवाणुप्पिया ! हिज्जो अम्हे अप्पणा चेव एव वदासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! विउल असण जाव विहरिस्सामो'। तए ण तुमं पोसहसालाए जाव विहरिए त सुट्ठ० ण तुम देवाणुप्पिया ! अम्हं हीलसि।"

[२३] इसके बाद वे सभी श्रमणोपासक श्रमण भगवान् महावीर से धर्म (धर्मोपदेश) श्रवण कर और हृदय मे अवधारणा करके हर्षित एव सन्तुष्ट हुए। फिर उन्होने खडे होकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार किया।

तदनन्तर वे शख श्रमणोपासक के पास आए और शख श्रमणोपासक से इस प्रकार कहने लगे—देवानुप्रिय ! कल आपने ही हमे इस प्रकार कहा था कि "देवानुप्रियो ! तुम प्रचुर अशनादि आहार तैयार करवाओ, हम आहार देते हुए यावत् उपभोग करते हुए पौषध का अनुपालन करेगे। किन्तु फिर आप आए नही और आपने अकेले ही पौषधशाला मे यावत् निराहार पौषध कर लिया। अत देवानुप्रिय ! आपने हमारी अच्छी अवहेलना (तौहीन) की !"

२४. 'अज्जो !' त्ति समणे भगव महावीरे ते समणोवासए एव वयासी—मा णं अज्जो ! तुब्भे संख समणोवासगं हीलह, निंदह, खिसह, गरहह, अवमन्नह। सखे ण समणोवासए पियधम्मे चेव, दढधम्मे चेव, सुदक्खुजागरिय जागरिते।

[२४] (उन श्रमणोपासको की इस बात को सुन कर) आर्यो ! इस प्रकार (सम्बोधित करते हुए) श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासको से इस प्रकार कहा—"आर्यो ! तुम श्रमणोपासक शख की हीलना (अवज्ञा), निन्दा, कोसना, (खिसना), गर्हा और अवमानना (अपमान) मत करो। क्योकि शख श्रमणोपासक (स्वय) प्रियधर्मा और दृढधर्मा है। इसने (प्रमाद और निद्रा का त्याग करके) सुदर्शन (सुरक्षा या सुदृश्या) नामक जागरिका जागृत की है।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२२-२३-२४) मे चार बाते शास्त्रकार ने प्रस्तुत की है—(१) भगवान् द्वारा उन श्रावको और परिषद् को धर्मोपदेश, (२) धर्म श्रवण-मनन कर हृष्टतुष्ट श्रमणोपासको द्वारा भगवान् को वन्दन-नमन करके प्रस्थान, (३) श्रमणोपासको द्वारा शख श्रावक को उपालम्भ, (४) भगवान् द्वारा शख श्रावक की निन्दादि न करने का श्रावको को निर्देश।

श्रावको के मन मे शख श्रमणोपासक के प्रति आक्रोश और भगवान् द्वारा समाधान—शख श्रावक ने कहा या खा-पी कर सामूहिक रूप से पौषध करने का और वे बिना खाये-पीये ही निराहार पौषध मे अकेले पौषधशाला मे बैठ गए, यह बात श्रावको को बडी अटपटी लगी है। उन्होने अपना अपमान समझा, परन्तु भगवान् महावीर ने उन्हे शख की अवज्ञा या निन्दादि करने से रोका। भगवान् के इस प्रकार कहने का आशय यह था कि कोई व्यक्ति पहले अल्पत्याग करने की सोचता है, किन्तु बाद मे उसके परिणाम उससे अधिक और उच्च त्याग के हो जाते है, तो वह व्यक्ति निन्दनीय, गर्हणीय एव तिरस्करणीय तथा अवमान्य नही होता, बल्कि वह प्रशसनीय है।[1]

---

१ भगवती (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ५६५

पौषध के चार प्रकार—(१) आहारत्याग पौषध, (२) शरीरसत्कारत्याग पौषध, (३) ब्रह्मचर्य-पौषध और (४) अव्यापार पौषध।

आहारत्याग पौषध—वह है जिसमे श्रावक ८ प्रहर के लिए चतुर्विध आहार का त्याग करके धर्म का पोषण (धर्मध्यानादि से) करता है। **शरीरसत्कारत्याग पौषध**—वह है, जिसमे शरीर के विविध प्रकार से (स्नान, उबटन, गन्ध, विलेपन, तेल, इत्र, पुष्प, वस्त्र, आभरण आदि के द्वारा) सत्कारित, सत्कारित करने का त्याग किया जाता है। **ब्रह्मचर्य-पौषध**—अब्रह्मचर्य (मैथुन) का सर्वथा त्याग करके कुशल अनुष्ठानो द्वारा धर्मवृद्धि करना। और **अव्यापार-पौषध**—वह है, जिसमे कृषि-वाणिज्यादि सावद्य व्यापारो का तथा शस्त्र-अस्त्र आदि का एव सर्व सावद्य व्यापारो का त्याग किया जाता है और शुद्ध धर्मध्यान एव आत्मनिरीक्षण, आत्मचिन्तन मे काल व्यतीत किया जाता है।[1] शख श्रमणोपासक ने इन चारो का त्याग करके पौषध किया था।

कठिन शब्दार्थ—**हिज्जो**—कल, गत दिवस। **हीलसि**—निन्दा, अवज्ञा, अवहेलना। **खिसह**—तुच्छकारना, निन्दा करना। **'सुदक्खु जागरिय जागरिए'**—जिसका दर्शन (दृष्टि) शुभ या सुष्ठु है, वह सुदक्खु कहलाता है, उसकी जागरिका अर्थात् प्रमाद और निद्रा के त्यागपूर्वक जो जागरणा है, वह सुदक्खुजागरिका है। ऐसी जागरिका उसने जागृत की।[2]

भगवान् द्वारा त्रिविध जागरिका-प्ररूपणा

२५. [१] 'भते !' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदति नमंसति, व० २ एव वयासी—कइविधा ण भते ! जागरिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जागरिया पन्नत्ता, त जहा—बुद्धजागरिया १ अबुद्धजागरिया २ सुदक्खुजागरिया ३।

[२५-१ प्र] 'हे भगवन्' ! इस प्रकार सम्बोधित करते हुए भगवान् गौतम स्वामी ने, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार किया और इस प्रकार पूछा—भगवन् ! जागरिका कितने प्रकार की कही गई है।

[२५-१ उ] गौतम ! जागरिका तीन प्रकार की कही गई है। यथा—(१) बुद्धजागरिका, (२) अबुद्धजागरिका और (३) सुदर्शनजागरिका।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति 'तिविहा जागरिया पन्नत्ता, तं जहा—बुद्धजागरिया १ अबुद्धजागरिया २ सुदक्खुजागरिया ३' ?

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ १९८१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५५

"सुट्ठु दरिसण जस्स सो सुदक्खू तस्स जागरिया—प्रमादनिद्राव्यपोहेन जागरण सुदक्खुजागरिया, ता जागरित कृतवान्।" —भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५५

गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो उप्पन्ननाण-दंसणधरा जहा खंदए (स० २ उ० १ सु० ११) जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी,[1] एए णं बुद्धा बुद्धजागरियं जागरंति । जे इमे अणगारा भगवंतो इरियासमिता भासासमिता जाव गुत्तबंभचारी, एए णं अबुद्धा अबुद्धजागरियं जागरंति । जे इमे समणोवासगा अभिगयजीवाजीवा जाव विहरंति एते णं सुदक्खुजागरियं जागरंति । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति 'तिविहा जागरिया जाव सुदक्खुजागरिया' ।

[२५-२ प्र.] भगवन् ! किस हेतु से कहा जाता है कि जागरिका तीन प्रकार की है, जैसे कि—बुद्ध-जागरिका, अबुद्ध-जागरिका और सुदर्शन-जागरिका ?

[२५-२ उ.] हे गौतम ! जो उत्पन्न हुए केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक अरिहन्त भगवान् हैं, इत्यादि (शतक २ उ. १ सू. ११ मे उक्त) स्कन्दक-प्रकरण के अनुसार जो यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, वे बुद्ध हैं, वे बुद्धजागरिका (जागृत) करते हैं, जो ये अनगार भगवन्त ईर्यासमिति, भाषासमिति आदि पाच समितियो और तीन गुप्तियो से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारी है, वे अबुद्ध (अल्पज्ञ-छद्मस्थ) हैं । वे अबुद्धजागरिका (जागृत) करते हैं । जो ये श्रमणोपासक, जीव-अजीव आदि तत्त्वो के ज्ञाता यावत् पौषधादि करते है, वे सुदर्शनाजागरिका (जागृत) करते है । इसी कारण से, हे गौतम ! तीन प्रकार की जागरिका यावत् सुदर्शनाजागरिका कही गई है ।

विवेचन—त्रिविध जागरिका—प्रस्तुत सूत्र (२५) मे गौतम स्वामी और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर के रूप मे त्रिविध जागरिका का स्वरूप बताया गया है ।

बुद्धजागरिका—केवलज्ञान-केवलदर्शन रूप अवबोध के कारण जो बुद्ध है, उन अज्ञान-निद्रा आदि प्रमाद से रहित बुद्धो की जागरिका अर्थात्—प्रबोध, बुद्धजागरिका कहलाती है ।

अबुद्धजागरिका—जो केवलज्ञान के अभाव मे बुद्ध तो नही हैं किन्तु यथासम्भव शेष ज्ञानो के सद्भाव के कारण बुद्ध सदृश-अबुद्ध है, उन छद्मस्थ ज्ञानवान् अबुद्धो की जागरणा अबुद्धजागरिका कहलाती है ।

सुदर्शनाजागरिका—जीवाजीवादितत्त्वज्ञ जो सम्यग्दृष्टि श्रमणोपासक पौषध आदि मे प्रमाद निद्रा आदि से रहित होकर धर्मजागरणा करते हैं, उनकी वह जागरणा सुदर्शना जागरिका कहलाती है ।[2]

शंख द्वारा क्रोधादि-परिणामविषयक प्रश्न और भगवान् द्वारा उत्तर

२६. तए णं से संखे समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता २ एवं वयासी—कोहवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधति ? किं पकरेति ? किं चिणाति ? किं उवचिणाति ?

---

१ जाव शब्द यहा ' अरहा जिणे केवली' आदि पाठ का सूचक है ।

भगवती (जि प्र स ब्यावर) खण्ड १

२ भगवती अभय वृत्ति, पत्र ५५५-५५६

सखा ! कोहवसट्टे ण जीवे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबधणबद्धाओ एव जहा पढमसते असंवुडस्स अणगारस्स[1] (स० १ उ० १ सु० १९) जाव अणुपरियट्टइ ।

[२६ प्र] इसके बाद उस शख श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और फिर इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! क्रोध के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या (कौनसे कर्म) बाँधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ?

[२६ उ.] शख ! क्रोधवश आर्त्त बना हुआ जीव आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सात कर्मों की शिथिल बन्धन से बधी हुई (कर्म-) प्रकृतियो को गाढ (दृढ) बन्धन वाली करता है, इत्यादि, प्रथम शतक (प्रथम उद्देशक सू ११) मे (उक्त) असवृत अनगार के वर्णन के समान यावत् वह ससार मे परिभ्रमण करता है, यहाँ तक जान लेना चाहिए ।

२७. माणवसट्टे णं भते ! जीवे० ?

एवं चेव ।

[२७ प्र] भगवन् ! मान-वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बाँधता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२७ उ] इसी प्रकार (क्रोधवशार्त्त जीवविषयक कथन के अनुसार) जान लेना चाहिए ।

२८. एव मायावसट्टे वि । एव लोभवसट्टे वि जाव अणुपरियट्टइ ।

[२८] इसी प्रकार माया-वशार्त्त जीव के विषय मे भी, तथा लोभवशार्त्त जीव के विषय में भी, यावत्—ससार मे परिभ्रमण करता है, यहाँ तक जानना चाहिए ।

विवेचन—क्रोधादि कषाय : परिणाम-पृच्छा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे क्रोधादि कषाय का फल शख श्रावक ने भगवान् से पूछा । उसका रहस्य यह है कि पुष्कली आदि श्रावको को शख के प्रति थोडा-सा क्रोध उत्पन्न हो गया था, उसे उपशान्त करना था । भगवान् ने क्रोधादि चारो कषायो का कटु फल इस प्रकार बताया—क्रोधादिवशार्त जीव शिथिल बन्धन से बद्ध ७ कर्मप्रकृतियो को गाढ-बन्धनबद्ध करता है, अल्पकालीन स्थिति वाली कर्मप्रकृतियो को दीर्घकालीन स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियो को तीव्र अनुभाग वाली करता है, अल्पप्रदेश वाली प्रकृतियो को बहुत प्रदेश वाली करता है और आयुष्यकर्म को कदाचित् बाँधता है, कदाचित् नही बाँधता, असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपार्जन करता है । अनादि-अनवदग्र-अनन्त दीर्घमार्ग वाले चातुर्गतिक ससाररूपी अरण्य मे बार-बार पर्यटन-परिभ्रमण करता है ।[2]

---

१. देखिये वह पाठ—" घणियबधणबद्धाओ पकरेति, हस्सकालट्ठितीयाओ दीहकालट्ठितीयाओ पकरेति, मदाणुभागाओ तिव्वाणुभागाओ पकरेति, अप्पपदेसग्गाओ बहुप्पदेसग्गाओ पकरेति, आउग च ण कम्म सिय बधति, सिय नो बधति, असातावेदणिज्ज च ण कम्म भुज्जो भुज्जो उवचिणाति, अणादीय च ण अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरंत ससारकतार अणुपरियट्टइ ।" —भग, श १ उ १ सू ११, खण्ड-१, पृ-३७

२ (क) भगवती अभय वृत्ति, पत्र ५५६

(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर) खण्ड १, पृ ३७

श्रमणोपासकों द्वारा शख श्रावक से क्षमायाचना, स्वगृहगमन

२९. तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीता तत्था तसिया संसारभउव्विग्गा समण भगवं महावीरं वंदति, नमंसंति, वं० २ जेणेव संखे समणोवासए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ सख समणोवासग वंदति नमसति, व० २ एयमट्ठं सम्म विणएण भुज्जो भुज्जो खामेति।

[२९] श्रमण भगवान् महावीर से यह (क्रोधादि कषाय का तीव्र और कटु) फल सुन कर और अवधारण करके वे श्रमणोपासक उसी समय (कर्मबन्ध से) भयभीत, त्रस्त, दु खित एव ससारभय से उद्विग्न हुए। उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और जहाँ शख श्रमणोपासक था, वहाँ उसके पास आए। शख श्रमणोपासक को उन्होने वन्दन-नमस्कार किया और फिर अपने उस अविनयरूप अपराध के लिए विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना करने लगे।

३०. तए ण ते समणोवासगा सेसं जहा आलभियाए (स० ११ उ० १२ सु० १२) जाव[1] पडिगता।

[३०] इसके पश्चात् उन सभी श्रमणोपासको ने भगवान् से कई प्रश्न पूछे, इत्यादि सव वर्णन (श ११ उ १२ सू १२ मे उक्त) आलभिका (नगरी) के (श्रमणोपासको के) समान जानना चाहिए, यावत् वे अपने-अपने स्थान पर लौट गये, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

विवेचन— श्रवण का फल : सविनय क्षमापना—भगवान् के मुख से सुन कर जब उन श्रावको ने क्रोधादि कषायो का कटुफल जाना तो वे कर्मवन्ध से भयभीत हो गए और ससारभय से उद्विग्न होकर पश्चात्तापपूर्वक शखश्रावक के पास गए। उससे सविनय क्षमायाचना की। शख भी सवसे सौहार्दपूर्वक मिले और सबको आश्वस्त किया।

शंख की मुक्ति के विषय मे गौतम स्वामी का प्रश्न, भगवान् का उत्तर

३१. 'भते!' त्ति भगवं गोयमे समण भगवं महावीरं वदति नमसति, वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—पभू णं भंते! संखे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतियं सेसं जहा इसिभद्दपुत्तस्स (स० ११ उ० १२ सु० १३-१४) जाव[2] अतं काहिति।

सेव भते! सेवं भते! त्ति जाव विहरति।

॥ बारसमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ १२-१ ॥

---

१ 'जाव' शब्द सूचक पाठ—' · पसिणाइ पुच्छति, प अट्ठाइ परियाडयति अ समण भगव महावीर वदति णमसति, व न जामेव दिस पाउब्भूया, तामेव दिस ।'' —भग श ११, उ १२

२ 'जाव' शब्द सूचक पाठ— ' मु डे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। इसिभद्दपुत्ते समणोवासए वहूहि सीलव्वय अप्पाण भावेमाणे वहूइ वासाइ समणोव सग-परियाग पाउणिहिइ सोहम्मे कप्पे उववज्जिहिइ। चत्तारि पलिओवमाइ ठिई भविस्सइ महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव । —भगवती. श ११ उ १२ सू १३-१४

[३१ प्र.] 'हे भगवन् !,' यो कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! क्या शख श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास प्रव्रजित होने मे समर्थ है ?

[३१ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, इत्यादि समस्त वर्णन (श. ११ उ १२ सू १३-१४ मे उक्त) ऋपिभद्रपुत्र श्रमणोपासकविपयक कथन के समान, यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर श्री गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—शंख श्रावक का उज्ज्वल भविष्य—भ महावीर ने वताया कि शख मेरे पास प्रव्रजित तो नही हो सकेगा, किन्तु वह वहुत वर्पो तक श्रमणोपासकपर्याय का पालन कर सौधर्म-कल्प देवलोक मे चार पल्योपम की स्थिति का देव होगा। वहाँ से च्यव कर महाविदेह मे जन्म लेकर सिद्ध, वुद्ध मुक्त होगा, यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा।

।। वारहवाँ शतक : प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण ।।

बीओ उद्देसओ : 'जयंती'

द्वितीय उद्देशक : जयंती (श्रमणोपासिका)

जयन्ती श्रमणोपासिका और तत्सम्बन्धित व्यक्तियो का परिचय

१. तेण कालेण तेणं समएण कोसबी नामं नयरी होत्था। वण्णओ। चंदोवतरणे चेतिए। वण्णओ।[1]

[१] उस काल और उस समय मे कौशाम्बी नाम की नगरी थी। (उसका वर्णन जान लेना चाहिए।) (वहाँ) चन्द्रोपतरण (चन्द्रावतरण) नामक उद्यान था। (उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिए।)

२. तत्थ ण कोसबीए नयरीए सहस्साणीयस्स रण्णो पोत्ते, सयाणीयस्स रण्णो पुत्ते, चेडगस्स रण्णो नत्तुए, मिगावतीए देवीए अत्तए, जयंतीए समणोवासियाए भत्तिज्जए उदयणे नामं राया होत्था। वण्णओ।

[२] उस कौशाम्बी नगरी मे सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, चेटक राजा का दौहित्र, मृगावती देवी (रानी) का आत्मज और जयन्ती श्रमणोपासिका का भतीजा 'उदयन' नामक राजा था। (उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के राजवर्णन के अनुसार जान लेना चाहिए।)

३. तत्थ ण कोसबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो सुण्हा, सयाणीयस्स रण्णो भज्जा, चेडगस्स रण्णो धूया, उदयणस्स रण्णो माया, जयतीए समणोवासियाए भाउज्जा मिगावती नामं देवी होत्था। सुकुमाल० जाव सुरूवा समणोवासिया जाव विहरइ।

[३] उसी कौशाम्बी नगरी मे सहस्रानीक राजा की पुत्रवधू, शतानीक राजा की पत्नी, चेटक राजा की पुत्री, उदयन राजा की माता, जयन्ती श्रमणोपासिका की भौजाई, मृगावती नामक देवी (रानी) थी। वह सुकुमाल हाथ-पैर वाली, यावत् सुरूपा श्रमणोपासिका (जीवाजीवतत्त्वज्ञा) यावत् विचरण करती थी।

४. तत्थ ण कोसंबीए नयरीए सहस्साणीयस्स रण्णो धूता, सताणीयस्स रण्णो भगिणी, उदयणस्स रण्णो पितुच्छा, मिगावतीए देवीए नणंदा, वेसालीसावगाणं अरहताणं पुव्वसेज्जायरी जयंती नामं समणोवासिया होत्था। सुकुमाल० जाव सुरूवा अभिगत जाव विहरइ।

[४] उसी कौशाम्बी नगरी मे सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानीक राजा की भगिनी, उदयन राजा की बूआ मृगावती देवी की ननन्द और वैशालिक (भगवान् महावीर) के श्रावक

---

१ 'वण्णओ' शब्द से सूचित पाठ सर्वत्र औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।

(वचन श्रवणरसिक) आर्हतो (अर्हन्त-तीर्थंकर के साधुओ) की पूर्व (प्रथम) शय्यातरा (स्थानदात्री) 'जयन्ती' नाम की श्रमणोपासिका थी। वह सुकुमाल यावत् सुरूपा और जीवाजीवादि तत्त्वो की ज्ञाता यावत् विचरती थी।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (१ से ४ तक) मे जयन्ती श्रमणोपासिका से सम्बन्धित क्षेत्र एव व्यक्तियो का परिचय दिया गया है।

जैन ऐतिहासिक तथ्य—इस मूलपाठ से भगवान् महावीर के युग की नगरी एव उस नगरी के तत्कालीन, सहस्रानीक राजा के पौत्र तथा शतानीक राजा एव मृगावती रानी के पुत्र उदयन नृप की बूआ एव मृगावती रानी की ननन्द जयती श्रमणोपासिका का परिचय ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश डालता है।

'जयन्ती' की प्रसिद्धि—जयन्ती श्रमणोपासिका भगवान् महावीर के साधुओ को स्थान (मकान) देने मे प्रसिद्ध थी। इसलिए जो साधु पहली वार कौशाम्बी मे आते थे, वे उसी से वसति (ठहरने के लिए स्थान) की याचना करते थे और वह अत्यन्त भक्तिभाव से उन्हे ठहरने के लिए स्थान देती थी। इस कारण वह 'पूर्वशय्यातरा' (पुव्वसेज्जायरी) के नाम से प्रसद्धि थी।[1]

कौशाम्बी—यह उस युग मे वत्सदेश की राजधानी एव मुख्य नगरी थी। इसकी आधुनिक पहचान इलाहाबाद मे दक्षिण-पश्चिम मे स्थित 'कोसम' गाँव से की है।[2]

कठिनशब्दार्थ—**चेडगस्स**—वैशालीराज चेटक का। **नत्तुए**—नप्ता—नाती, दौहित्र। भ्रातृजाया—भौजाई, भाभी। **अत्तए**—आत्मज, पुत्र। **भत्तिज्जए**—भतीजा, भाई का पुत्र। **धूया**—पुत्री। **पिउच्छा**—पिता की बहन—बूआ, फूफी। सुण्हा-पुत्रवधू। **णणंदा**—ननद।[3]

वेसालीसावगाण अरहताण—**भावार्थ**—वैशालिक—विशाला (त्रिशला) का अपत्य-पुत्र, अर्थात्-भगवान् महावीर। उनके श्रावक अर्थात् भगवद्वचन को जो सुनते और सुनाते है,—श्रवण रसिक है, उन आर्हत—अर्थात् अर्हद्देवो—साधुओ की।[4]

जयन्ती श्रमणोपासिका : उदयननृप-मृगावतीदेवी सहित सपरिवार भगवान् की सेवा में

५ तेण कालेण तेणं समएण सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासति।

[५] उस काल (और) उस समय मे (भगवान् महावीर) स्वामी (कौशाम्बी) पधारे, (उनका समवसरण लगा) यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

६. तए णं से उदयणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे कोडु बियपुरिसे सद्दावेति, को० स० २ एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कोसंबि नगरिं सब्भितरबाहिरियं एवं जहा कूणिओ[5] तहेव सव्व जाव पज्जुवासइ।

---

१ भगवतीसूत्र, अभय वृत्ति पत्र ५५८। २ उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ ३७९-३८०

३ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ५५८

४ वही, पत्र ५५८

५ देखिये कूणिकनृप का भगवान् की सेवा मे पहुचने का वर्णन—औपपातिक सूत्र २९-३२, पत्र ६१-७५ (आगमोदय समिति) मे

[६] उस समय उदयन राजा को जब यह (भगवान् के कौशाम्बी मे पदार्पण का) पता लगा तो वह हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! कौशाम्बी नगरी को भीतर और बाहर से शीघ्र ही साफ करवाओ, इत्यादि सब वर्णन (औपपातिक सूत्र सू २९-३२, पत्र ६१-७५ मे वर्णित) कोणिक राजा के समान, यावत् पर्युपासना करने लगा, (यहाँ तक जानना चाहिए।)

७ तए ण सा जयती समणोवासिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव मियावती देवी तेणेव उवागच्छति, उवा० २ मियावति देविं एव वयासी—एव जहा नवमसए उसभदत्तो (स० ९ उ० ३३ सु० ५) जाव[1] भविस्सति।

[७] तदनन्तर वह जयन्ती श्रमणोपासिका भी इस (भगवान् के आगमन के) समाचार को सुन कर हर्षित एव सन्तुष्ट हुई और मृगावती के पास आ कर इस प्रकार बोली—(इत्यादि आगे का सब कथन,) नौवे शतक (उ ३३ सू ५) मे (उक्त) ऋषभदत्त ब्राह्मण के प्रकरण के समान, यावत्—(हमारे लिए इस भव, परभव और दोनो भवो के लिए कल्याणप्रद और श्रेयस्कर) होगा, यहाँ तक जानना चाहिए।

८. तए ण सा मियावती देवी जयंतीए समणोवासियाए जहा देवाणंदा (स० ९ उ० ३३ सु० ६)[2] जाव पडिसुणेति।

[८] तत्पश्चात् उस मृगावती देवी ने भी जयन्ती श्रमणोपासिका के वचन उसी प्रकार स्वीकार किये, जिस प्रकार (शतक ९, उ ३३, सू ६ मे उक्त वृत्तान्त के अनुसार) देवानन्दा (ब्राह्मणी) ने (ऋषभदत्त के वचन,) यावत् स्वीकार किये थे।

९. तए णं सा मियावती देवी कोडबियपुरिसे सद्दावेति, को० स० २ एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्तजोइय०[3] जाव (स० ९ उ० ३३ सु० ७) धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह जाव उवट्ठवेंति जाव पच्चप्पिणति।

[९] तत्पश्चात् उस मृगावती देवी ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! जिसमे वेगवान् घोडे जुते हो, ऐसा यावत् श्रेष्ठ धार्मिक रथ जोत कर शीघ्र ही

---

१ जाव शब्द से यहाँ - (एव) खलु देवाणुप्पिए! समणे भगव महावीरे अहापडिरूव जाव विहरइ। त महाफल खलु देवाणुप्पिए! तहारूवाण अरहताण भगवताण णामगोयस्स वि सवणयाए, किमग पुण अभिगमण-वदण-णमसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए, एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए। त गच्छामो ण देवाणुप्पिए! समण भगव महावीर वदामो णमसामो जाव पज्जुवासामो, एव ण इहभवे य, परभवे य हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए (भविस्सइ)—तक का पाठ समझना। —श ९ उ ३३ सू ५

२ 'जाव' शब्द से यहा—'हट्ठ जाव हियया करयल जाव कट्टु एयमट्ठ'' पाठ सूचित है। —श ९ उ ३३ सू ७

३ 'जाव' शब्द से यहाँ—' समखुरवालिहाण-समलिहियसिंगेहिं पवरलक्खणोववेय' इत्यादि पाठ सूचित हैं। —श ९ उ ३३ सू ७

उपस्थित करो। कौटुम्बिक पुरुषो ने यावत् रथ लाकर उपस्थित किया और यावत् उनकी आज्ञा वापिस सौंपी।

१०. तए णं सा मियावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा बहूहिं खुज्जाहिं[1] जाव (स० ९ उ० ३३ सु० १०) अंतेउराओ निग्गच्छति, अ० नि० २ जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ जाव[2] (स० ९ उ० ३३ सु० १०) रूढा।

[१०] इसके बाद उस मृगावती देवी और जयन्ती श्रमणोपासिका ने स्नानादि किया यावत् शरीर को अलंकृत किया। फिर कुब्जा (आदि) दासियो के साथ वे दोनो अन्त पुर से निकली। (यह वर्णन भी यावत् अन्त पुर से निकली, यहाँ तक श ९ उ ३३ सू १० के अनुसार जानना।) फिर वे दोनों बाहरी उपस्थानशाला मे आई और जहाँ धार्मिक श्रेष्ठ यान था, उसके पास आ कर (श ९ उ ३३ सू १० के अनुसार) यावत् रथारूढ हुई। यहाँ तक कहना।)

११. तए णं सा मियावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवर रूढा समाणी णियगपरियाल० जहा उसभदत्तो (स० ९ उ० ३३ सु० ११) जाव[3] धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहति।

[११] तब जयन्ती श्रमणोपासिका के साथ श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ मृगावती देवी अपने परिवारसहित, (इत्यादि सब वर्णन श ९ उ ३३ सू ११ मे उक्त ऋषभदत्त के समान) यावत् धार्मिक श्रेष्ठ यान से नीचे उतरी, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

१२. तए ण सा मियावती देवी जयतीए समणोवासियाए सद्धिं बहूहिं खुज्जाहिं जहा देवाणंदा (स० ९ उ० ३३ सु० १२)[4] जाव वंदति नमंसति, वं० २ उदयणं रायं पुरओ कट्टु ठिया चेव जाव (स० ९ उ० ३३ सु० १२) पज्जुवासइ।

[१२] तत्पश्चात् जयन्ती श्रमणोपासिका एव बहुत-सी कुब्जा (आदि) दासियो सहित मृगावती देवी श्रमण भगवान् महावीर की सेवा मे (श ९, उ ३३ सू १२ मे उक्त) देवानन्दा के समान पहुँची, यावत् भगवान् को वन्दना-नमस्कार किया और उदयन राजा को आगे करके

---

१ यहाँ 'जाव' शब्द—'चिलाइयाहिं णाणादेस-विदेसपरिपिंडियाहिं सदेस-णेवत्थ-गहियवेसाहिं इंगिय-चिंतिय-पत्थियवियाणियाहिं कुसलाहिं विणीयाहिं, चेडिया-चक्कवाल-वरिसधर-थेर-कंचुइज्ज-महत्तरगवद-परिक्खित्ता ', इत्यादि पाठ का सूचक है। —श ९, उ ३३ सू १०

२ यहाँ 'जाव' शब्द—"उवागच्छित्ता धम्मिय जाणपवर पाठ का सूचक है। —श ९ उ ३३ सू १०

३ यहाँ 'जाव' शब्द—"सपरिवुडे मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ, णि जेणेव चेइए तें उवा २, छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ पा" इत्यादि पाठ का सूचक है।

४ यहाँ 'जाव' शब्द—"जाव महत्तरगवदपरिक्खित्ता स भ महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, तजहा— जेणेव समणे भ महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उ, समण भ महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ करित्ता इत्यादि पाठ का सूचक है। —श ९ उ ३३ सू १२

समवसरण मे बैठी और उसके पीछे स्थित होकर पर्युपासना करने लगी (इत्यादि सब वर्णन श ९ उ ३३ सू १२ के समान) कहना।

१३. तए ण समणे भगव महावीरे उदयणस्स रण्णो मियावतीए देवीए जयतीए समणोवासियाए तीसे य महतिमहा० जाव धम्म परिकहेति जाव परिसा पडिगता, उदयणे पडिगए, मियावती वि पडिगया।

[१३] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने, उदयन राजा, मृगावती देवी, जयन्ती श्रमणोपासिका और उस महती महापरिषद् को यावत् धर्मोपदेश दिया, (धर्मोपदेश सुन कर) यावत् परिषद लौट गई; उदयन राजा और मृगावती रानी भी चले गए।

विवेचन—जयन्ती श्रमणोपासिका · भगवान् महावीर की सेवा में—प्रस्तुत नौ सूत्रो मे (सू ५ से १३ तक) भगवान् महावीर के कौशाम्बी मे पदार्पण से लेकर जयन्ती श्रमणोपासिका आदि के द्वारा उनकी पर्युपासना करने तथा भगवान् के धर्मोपदेश को सुन कर जयन्ती श्रमणोपासिका के सिवाय सबके वापिस लौट जाने तक का वर्णन है।

सात तथ्यो का उद्घाटन—इस समग्र वर्णन पर से सात तथ्यो का उद्घाटन होता है—(१) कौशाम्बी को श्रमणोपासक-श्रमणोपासिकाओ की धर्मनगरी जान कर भगवान् का विशेषरूप से पदार्पण, (२) भगवान् का आगमन सुन कर परिषद् का उमडना (३) तत्कालीन धर्मप्रिय कौशाम्बी-नरेश उदयन द्वारा स्वकर्त्तव्यपालन—नगर की सफाई एव सजावट का आदेश, भगवान् के पदार्पण की घोषणा और कोणिक नृप के समान ठाठबाट से स्वय भगवान् की सेवा मे पहुँच कर पर्युपासना मे लीन हो जाना आदि। (४) जयन्ती श्रमणोपासिका द्वारा भगवान् के दर्शन, वदन, प्रवचन-श्रवण और पर्युपासना के लिए रानी मृगावती को तैयार करना, (५) मृगावती देवी द्वारा भी जयन्ती श्रमणोपासिका को साथ लेकर धार्मिक रथ पर चढकर देवानन्दा के समान भगवान् की सेवा मे पहुँचना। (६) समवसरण मे उदयन नृप को आगे करके बैठना और पर्युपासना करना, (७) भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर जयन्ती श्रमणोपासिका के अतिरिक्त सबका वापिस लौट जाना।[1]

'कौटुम्बिक' शब्द का रहस्यार्थ—देशीशब्दसग्रह के द्वितीय वर्ग की द्वितीय गाथा मे कोडुंब (कौटुम्ब) शब्द को कार्यवाचक बताया है, इस दृष्टि से 'कोडुंबिया' का अर्थ इस प्रकार होता है—जो कोडुंब अर्थात् कार्य को करते है, वे कोडुंबिय (कौटुम्बिक-कार्यकर) पुरुष कहलाते हैं। आगमो मे यत्र-तत्र प्रयुक्त 'कोडुंबियपुरिस' का यही अर्थ समझना चाहिए।[2]

कठिन शब्दार्थ—**उवट्ठाणसाला**—आस्थानमण्डप, सभास्थान। **पडिसुणेति**—स्वीकार किया। **णियग-परियाल**—अपने सगे सम्बन्धी तथा राजपरिवार (की महिलाएँ)। 'लहुकरण-जुत्त-जोइय०[3]—फुर्तीले वेगवान् घोडो से जुता हुआ।

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ५६७-५६८

२ 'कोडुंब-कार्यं कुर्वन्तीति कोडुंबिया, कोडुंबियपुरिसे-कार्यकरपुरुषान्।' —वियाह (मू पा टि) पृ ५६८

३ (क) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ४ पृ १९८८-१९८९

(ख) पाइअसद्दमहण्णवो पृ १७५, ५६२

(ग) भगवती तृतीय खण्ड (गुजरात विद्यापीठ) पृ २५८

कर्मगुरुत्व-लघुत्व सम्बन्धी जयन्ती-प्रश्न और भगवत्समाधान—

१४ तए णं सा जयती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समण भगवं महावीरं वदइ नमसइ, व० २ एव वयासी—कह ण भते ! जीवा गरुयत्त हव्वमागच्छंति ?

जयंती ! पाणातिवातेणं जाव मिच्छादसणसल्लेणं, एवं खलु जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति । एवं जहा पढमसते (स० १ उ० ९ सु० १-३)[1] जाव वीतीवयंति ।

[१४ प्र] तदनन्तर वह जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमण भगवान् महावीर से धर्मोपदेश श्रवण कर एव अवधारण करके हर्षित एव सन्तुष्ट हुई। फिर भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—भगवन् ! जीव किस कारण से शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते है ?

[१४ १] जयन्ती ! जीव प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पापस्थानो के सेवन से शीघ्रगुरुत्व को प्राप्त होते हैं, (और इनसे निवृत्त होकर जीव हलके होते हैं, इत्यादि सव) प्रथमशतक (उ ९, सू १-३ मे कहे) अनुसार, यावत् ससारसमुद्र से पार हो जाते हैं, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

विवेचन—जीव को गुरुत्व और लघुत्व प्राप्त होने के कारण—जयन्ती श्रमणोपासिका ने साक्षात् भगवान् से यह प्रश्न किया कि जीव किस कारण से गुरुत्व या लघुत्व को प्राप्त होते हैं ? भगवान् ने अर्थगम्भीरसीमित शब्दो मे उत्तर दिया—अठारह पापस्थानो के सेवन और उनसे निवृत्त होने से जीव क्रमश गुरुत्व और लघुत्व को प्राप्त होते है। गुरुत्व और लघुत्व यहाँ कर्म की अपेक्षा से समझना चाहिए।

भवसिद्धिक जीवों के विषय में परिचर्चा—

१५. भवसिद्धियत्तणं भते ! जीवाणं किं सभावओ, परिणामओ ?

जयंती ! सभावओ, नो परिणामओ ।

[१५ प्र] भगवन् ! जीवो का भवसिद्धिकत्व स्वाभाविक है या पारिणामिक ?

[१५ उ] जयन्ती ! वह स्वाभाविक है, पारिणामिक नही।

१६. सव्वे वि णं भते ! भवसिद्धीया जीवा सिज्झिस्सति ?

हंता, जयंती ! सव्वे वि णं भवसिद्धीया जीवा सिज्झिस्संति ।

[१६ प्र] भगवन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएँगे ?

[१६ उ,] हाँ, जयन्ती ! सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएँगे।

---

१ जहा 'जाव' शब्द—'(एव) आकुलीकरेंति, एव परित्तीकरेंति, एव दीहीकरेति, एव हस्सीकरेंति एव अणुपरियट्टति ॥' इत्यादि पाठ का सूचक है।—भग श १, उ ९, सू १, ३

१७. [१] जइ णं भंते ! सव्वे भवसिद्धीया जीवा सिज्झिस्सति तम्हा ण भवसिद्धीयविरहिए लोए भविस्सइ ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१७-१ प्र] भगवन् ! यदि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएँगे, तो क्या लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित हो जाएगा ?

[१७-१ उ] जयन्ती ! यह अर्थ शक्य नही है ।

[२] से केण खाइएण अट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—सव्वे वि णं भवसिद्धीया जीवा सिज्झिस्सति, नो चेव ण भवसिद्धीयविरहिते लोए भविस्सति ?

जयती ! से जहानामए सव्वागाससेढी सिया अणादीया अणवदग्गा परित्ता परिवुडा, सा ण परमाणुपोग्गलमेत्तेहि खडेहि समए समए अवहीरमाणी अवहीरमाणी अणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहीरति नो चेव ण अवहिया सिया, से तेणट्ठेण जयंती ! एवं वुच्चइ सव्वे वि णं[1] जाव भविस्सति ।

[१७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएँगे, फिर भी लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित नही होगा ?

[१७-२ उ] जयन्ती ! जिस प्रकार कोई सर्वाकाश की श्रेणी हो, जो अनादि, अनन्त हो, (एकप्रदेशी होने से) परित्त (परिमित) और (अन्य श्रेणियो द्वारा) परिवृत हो, उसमे से प्रतिसमय एक-एक परमाणु-पुद्गल जितना खण्ड निकालते-निकालते अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तक निकाला जाए तो भी वह श्रेणी खाली नही होती । इसी प्रकार, हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध होगे, किन्तु लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित नही होगा ।

विवेचन—भवसिद्धिक जीव-विषयक तीन प्रश्न—प्रस्तुत तीन सूत्रो (१५ से १७ तक) मे जयन्ती श्रमणोपासिका द्वारा पूछे गए तीन प्रश्न और भगवान् द्वारा प्रदत्त उनका उत्तर प्रतिपादित है ।

भवसिद्धिक-स्वरूप—जिनकी सिद्धि भावी (भविष्य) मे होने वाली है, वे भवसिद्धिक है । अथवा जो भव्य हैं, मुक्ति के योग्य है, अर्थात्—जिनमे मुक्ति जाने की योग्यता है, वे भवसिद्धिक कहलाते है । समस्त भवसिद्धिक जीव एक न एक दिन अवश्य सिद्धि प्राप्त करेंगे, अन्यथा उनमे भवसिद्धिकता ही घटित नही हो सकती ।

इसीलिए यहाँ भगवान् ने बताया है कि भवसिद्धिक जीवो की भवसिद्धिकता स्वाभाविक है, पारिणामिक नही । ऐसा नही होता कि वे पहले अभवसिद्धिक थे किन्तु बाद मे पर्याय-परिवर्तन होने के

---

१. अधिक पाठ—'ण भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्सति, नो चेव ण भवसिद्धिअविरहिए लोए भविस्सइ ।" यह पक्ति यहा 'जाव' शब्द से सूचित है ।

कारण भवसिद्धिक हो गए। जैसे पुद्गल मे मूर्तत्व धर्म स्वाभाविक है, वैसे ही भवसिद्धिक जीवो मे भवसिद्धिकता स्वाभाविक है।[1]

लोक भवसिद्धिक जीवो से शून्य नहीं होगा—जयन्ती श्रमणोपासिका का प्रश्न है—'यदि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएँगे तो ससार भवसिद्धिक जीवो से शून्य नही हो जाएगा ? इसका **एक समाधान** यह है कि जितना भी भविष्यत्काल है, वह सब कभी न कभी वर्तमान हो जाएगा, तो क्या कभी ऐसा समय आ सकता है जब ससार भविष्यत्काल से शून्य हो जाएगा ? ऐसा होना जैसे असम्भव है, वैसे ही समझना चाहिए कि लोक का भवसिद्धिक जीवो से शून्य होना असम्भव है।

इसी प्रश्न का एक पहलू यह भी है—जितने भी जीव सिद्ध होगे, वे सभी भवसिद्धिक होगे, अभवसिद्धिक एक भी सिद्ध नही होगा, ऐसा मानने पर भी वही प्रश्न उपस्थित रहता है कि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएँगे, तो क्या लोक भवसिद्धिकजीव-शून्य नही हो जाएगा ? भगवान् ने आकाशश्रेणी का दृष्टान्त देकर समाधान किया है—जैसे समग्र आकाश की श्रेणी अनादि-अनन्त है, उसमे से एक-एक परमाणु जितना खण्ड प्रतिसमय निकाला जाए तो अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल व्यतीत हो जाने पर भी आकाशश्रेणी खाली नही होगी, इसी प्रकार भवसिद्धिक जीवो के मोक्ष चले जाते रहने पर भी यह लोक भवसिद्धिक जीवो से खाली नही होगा।

एक अन्य समाधान—दो प्रकार के पाषाण है, एक मे मूर्ति बनने की योग्यता है, दूसरे ऐसे पाषाण है, जिनमे मूर्ति बनने की योग्यता नही है। किन्तु जिन पाषाणो मे मूर्ति बनने की योग्यता है, वे सभी पाषाण मूर्ति नही बन जाते। जिन पाषाणो को मूर्तिकार आदि का सयोग मिल जाता है, वे मूर्तिपन की सम्प्राप्ति कर लेते है, किन्तु जिन पाषाणो को मूर्तिपन की सम्प्राप्ति नही होती, उनमे मूर्तिपन की अयोग्यता नही होती, किन्तु तथाविध सयोग न मिलने से वे मूर्तिपन की सम्प्राप्ति नही कर पाते। यही बात भवसिद्धिक जीवो के विषय मे भी समझनी चाहिए।[2]

सुप्तत्व-जागृतत्व, सबलत्व-दुर्बलत्व एवं दक्षत्व-आलसित्व के साधुता विषयक प्रश्नोत्तर—

१८. [१] सुत्तत्त भंते ! साहू, जागरियत्त साहू ?

जयंती ! अत्थेगतियाण जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्त साहू।

[१८-१ प्र] भगवन् ! जीवो का सुप्त रहना अच्छा है या जागृत रहना अच्छा ?

[१८-१ उ] जयन्ती ! कुछ जीवो का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवो का जागृत रहना अच्छा है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ 'अत्थेगतियाण जाव साहू' ?

जयती ! जे इमे जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिट्ठा अहम्मक्खाई अहम्मपलोई

---

१ (क) 'भवा-भाविनी सिद्धिर्येषा ते भवसिद्धिका।'—भगवती अ वृ पत्र ५५८

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४ पृ १९९४

२ (क) "सर्व एवानागतकालसमया वर्तमानता लप्स्यन्ते, इत्यभ्युपगमात्, न चानागतकालसमयविरहितो लोको भविष्यति, इत्येव न भवसिद्धिकशून्यता लोकस्य स्यात्।" —भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५९

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५५९-५६०

अहम्मपलज्जणा अहम्मसमुदायारा अहम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरंति, एएसि ण जीवाण सुत्तत्त साहू। एए ण जीवा सुत्ता समाणा नो बहूण पाणाण भूयाण जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति। एए ण जीवा सुत्ता समाणा अप्पाण वा पर वा तदुभय वा नो बहूहि अहम्मियाहि सजोयणाहि सजोएत्तारो भवति। एएसि ण जीवाणं सुत्तत्तं साहू। जयती! जे इमे जीवा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरंति, एएसि ण जीवाण जागरियत्त साहू। एए ण जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टंति। एते ण जीवा जागरमाणा अप्पाण वा पर वा तदुभयं वा बहूहि धम्मियाहि संजोयणाहि संजोएत्तारो भवंति। एए ण जीवा जागरमाणा धम्मजागरियाए अप्पाण जागरइत्तारो भवंति। एएसि ण जीवाण जागरियत्त साहू। से तेणट्ठेणं जयती! एव वुच्चइ—'अत्थेगतियाण जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगतियाण जीवाण जागरियत्त साहू।

[१८-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण कहते हैं कि कुछ जीवो का सुप्त रहना और कुछ जीवो का जागृत रहना अच्छा है?

[१८-२ उ] जयन्ती! जो ये अधार्मिक, अधर्मानुसरणकर्ता, अधर्मिष्ठ, अधर्म का कथन करने वाले, अधर्मावलोकनकर्ता, अधर्म मे आसक्त, अधर्माचरणकर्ता और अधर्म से ही आजीविका करने वाले जीव हैं, उन जीवो का सुप्त रहना अच्छा है, क्योकि ये जीव सुप्त रहते हैं, तो अनेक प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को दु ख शोक और परिताप देने मे प्रवृत्त नही होते। ये जीव सोये रहते है तो अपने को, दूसरे को और स्व-पर को अनेक अधार्मिक सयोजनाओ (प्रपचो) मे नही फसाते। इसलिए इन जीवो का सुप्त रहना अच्छा है।

'जयन्ती! जो ये धार्मिक है, धर्मानुसारी, धर्मप्रिय, धर्म का कथन करने वाले, धर्म के अवलोकनकर्त्ता, धर्मासक्त, धर्माचरणी, और धर्म से ही अपनी आजीविका करने वाले जीव हैं, उन जीवो का जाग्रत रहना अच्छा है, क्योकि ये जीव जाग्रत हो तो बहुत से प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को दु ख, शोक और परिताप देने मे प्रवृत्त नही होते (अर्थात् ये अनेक जीवो के दु ख, शोक और परिताप को दूर करने मे प्रवृत्त होते हैं)। ऐसे (धर्मिष्ठ) जीव जागृत रहते हुए स्वयं को, दूसरे को और स्व-पर को अनेक धार्मिक सयोजनाओ मे सयोजित करते रहते है। इसलिए इन जीवो का जाग्रत रहना अच्छा है।

इसी कारण से, हे जयन्ती!, ऐसा कहा जाता है कि कई जीवो का सुप्त रहना अच्छा है और कई जीवो का जागृत रहना अच्छा है।

१९. [१] बलियत्तं भंते! साहू, दुब्बलियत्तं साहू?

जयती! अत्थेगतियाणं जीवाण बलियत्त साहू, अत्थेगतियाणं जीवाण दुब्बलियत्त साहू।

[१९-१ प्र] भगवन्! जीवो की सबलता अच्छी है या दुर्बलता?

[१९-१ उ] जयन्ती! कई जीवो की सबलता अच्छी है और कई जीवो की दुर्बलता अच्छी है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ 'जाव साहू' ?

जयती ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव विहरति एएसि णं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू । एए ण जीवा० एवं जहा सुत्तस्स (सु. १८ [२]) तहा दुब्बलियस्स वत्तव्वया भाणियव्वा । बलियस्स जहा जागरस्स (सु० १८ [२]) तहा भाणियव्व जाव सजोएत्तारो भवंति, एएसि ण जीवाणं बलियत्तं साहू । से तेणट्ठेण जयती ! एवं वुच्चइ तं चेव जाव साहू ।

[१९-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि कई जीवो की सबलता अच्छी है और कई जीवो की दुर्बलता अच्छी है ?

[१९-२ उ] जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म से ही आजीविका करते है, उन जीवो की दुर्बलता अच्छी है। क्योकि ये जीव दुर्बल होने से किसी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दु ख आदि नही पहुँचा सकते, इत्यादि (१८-२ सू मे उक्त) सुप्त के समान दुर्बलता का भी कथन करना चाहिए। और 'जाग्रत' के समान सबलता का कथन करना चाहिए। यावत् धार्मिक सयोजनाओ मे सयोजित करते है, इसलिए इन (धार्मिक) जीवो की सबलता अच्छी है ।

हे जयन्ती ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि कई जीवो की सबलता अच्छी है और कई जीवो की निर्बलता ।

२०. [१] दक्खत्तं भते ! साहू, आलसियत्त साहू ?

जयती ! अत्थेगतियाण जीवाण दक्खत्त साहू, अत्थेगतियाण जीवाण आलसियत्त साहू ।

[२०-१ प्र] भगवन् ! जीवो का दक्षत्व (उद्यमीपन) अच्छा है, या आलसीपन ?

[२०-१ उ] जयन्ती ! कुछ जीवो का दक्षत्व अच्छा है, और कुछ जीवो का आलसीपन अच्छा है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चति त चेव जाव साहू ?

जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव विहरति, एएसि ण जीवाण आलसियत्त साहू । एए णं जीवा अलसा समाणा नो बहूणं जहा सुत्ता (सु० १८ [२]) तहा अलसा भाणियव्वा । जहा जागरा (सु० १८ [२]) तहा दक्खा भाणियव्वा जाव संजोएत्तारो भवति । एए णं जीवा दक्खा समाणा बहूहिं आयरियवेयावच्चेहिं, उवज्झायवेयावच्चेहिं, थेरवेयावच्चेहिं, तवस्सिवेयावच्चेहिं, गिलाणवेयावच्चेहिं, सेहवेयावच्चेहिं, कुलवेयावच्चेहिं, गणवेयावच्चेहिं, संघवेयावच्चेहिं, साहम्मियवेयावच्चेहिं अत्ताणं सजोएत्तारो भवति । एतेसि ण जीवाण दक्खत्त साहू । से तेणट्ठेण त चेव जाव साहू ।

[२०-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि यावत् कुछ जीवो का आलसीपन अच्छा है ?

[२०-२ उ] जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म द्वारा आजीविका करते है, उन जीवो का आलसीपन अच्छा है । यदि वे आलसी होगे तो प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को दु.ख, शोक

और परिताप उत्पन्न करने मे प्रवृत्त नही होगे, इत्यादि सब सुप्त के समान कहना चाहिए, तथा दक्षता (उद्यमीपन) का कथन जाग्रत के समान कहना चाहिएं, यावत् वे (दक्ष जीव) स्व, पर और उभय को धर्म के साथ सयोजित करने वाले होते है। ये जीव दक्ष हो तो आचार्य की वैयावृत्य, उपाध्याय की वैयावृत्य, स्थविरो की वैयावृत्य, तपस्वियो की वैयावृत्य, ग्लान (रुग्ण) की वैयावृत्य, शैक्ष (नवदीक्षित) की वैयावृत्य, कुलवैयावृत्य, गणवैयावृत्य, सघवैयावृत्य और साधर्मिकवैयावृत्य (सेवा) से अपने आपको सयोजित (सलग्न) करने वाले होते है। इसलिए इन जीवो की दक्षता अच्छी है।

हे जयन्ती! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है, कि कुछ जीवो का दक्षत्व (उद्यमीपन) अच्छा है और कुछ जीवो का आलसीपन अच्छा है।

विवेचन—कौन श्रेष्ठ—सुप्त या जागृत, सबल या दुर्बल ? दक्ष या आलसी ? प्रस्तुत सूत्रत्रय (१८-१९-२०) मे अपेक्षा-भेद से सुप्त आदि के अच्छे होने न होने का सकारण प्रतिपादन किया गया है।

कुछ शब्दो के निर्वचनपूर्वक अर्थ—अहम्मिया—अधार्मिक-श्रुत-चारित्र-रूप धर्म का जो आचरण करते है, वे धार्मिक हैं, जो धार्मिक नही हैं, वे अधार्मिक है। अहम्माणुया-अधर्मानुग—श्रुतरूप धर्म का जो अनुसरण करते हैं—धर्मानुसार चलते है, वे धर्मानुग और जो धर्मानुग नही हैं, वे अधर्मानुग है। अहम्मिट्ठा-अधर्मिष्ठ-श्रुतरूप धर्म ही जिन्हे इष्ट, वल्लभ (प्रिय) या जिनके द्वारा पूजित (आदृत) है, वे धर्मिष्ठ हैं अथवा धर्मीजनो को जो इष्ट (प्रिय) है वे धर्मिष्ठ हैं, या अतिशय धर्मी-धर्मिष्ठ है, जो धर्मेष्ट, धर्मीष्ठ या धर्मिष्ठ नही हैं, वे अधर्मेष्ट, अधर्मीष्ट या अधर्मिष्ठ हैं। **अहम्मक्खाई**—जो धर्म का आख्यान-कथन (बात) नही करते वे अधर्माख्यायी हैं, अथवा अधर्मरूप मे जिनकी ख्याति-प्रसिद्धि है, वे अधर्मख्याति। **अहम्मपलोई**—जो धर्म को उपादेयरूप से नही देखते अथवा जो अधर्म का ही अहर्निश चिन्तन-निरीक्षण करते है, वे अधर्मप्रलोकी है। **अहम्मपलज्जणा-अधर्मप्ररजना,**—अधर्म मे जो रगे हुए हैं अधर्म मे आरक्त-आसक्त हैं, वे। **अहम्मसमुदाचारा-अधर्म-समुदाचार**—जिनमे चारित्रात्मक धर्माचार नही है, अथवा जिनका धर्माचार सप्रमोद (प्रसन्नता युक्त) नही है, **अहम्मेण**—श्रुत-चारित्ररूप धर्म से विरुद्ध। **वित्ति कप्पेमाणा**—वृत्ति-जीविका करने वाले।[1]

कठिन शब्दार्थ—बलियत्त—बलवत्ता, बलवान् होना या रहना। **दुब्बलियत्तं**—दुर्बलवत्ता, दुर्बल होना या रहना। **दक्खत्त**—दक्षत्व-उद्यमीपन। **आलसियत्तं**—आलसीपन।[2]

दक्ष व्यक्तियो को विशेष धर्मलाभ—जो धार्मिक व्यक्ति दक्ष होते हैं, वे आचार्य से लेकर साधर्मिक व्यक्तियो की वैयावृत्य-सेवा मे अपने आपको जुटा देते है और निर्जरारूप परम धर्मलाभ प्राप्त करते है।[3]

---

१ भगवती अभय वृत्ति, पत्र ५६०

२ (क) वही, पत्र ५६०
(ख) भगवती सूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ १९९७

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ५७१

इन्द्रियवशार्त्त जीवो का बन्धादिदुष्परिणाम—

२१. [१] सोइंदियवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधति ?

एव जहा कोहवसट्टे (स० १२ उ० १ सु० २६) तहेव जाव अणुपरियट्टइ ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के वश आर्त्त (पीडित) बना हुआ जीव क्या बांधता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२१-१ उ] जयन्ती ! जिस प्रकार क्रोध के वश आर्त्त बने हुए जीव के विषय मे (श १२, उ १, सू २६ मे कहा गया) है, उसी प्रकार (यहाँ भी.) यावत् वह ससार मे बार-बार पर्यटन करता है, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

[२] एवं चक्खिदियवसट्टे वि । एव जाव फासिंदियवसट्टे जाव अणुपरियट्टइ ।

[२१-२ उ] इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय-वशार्त्त बने हुए जीव के विषय मे भी कहना चाहिए । इसी प्रकार यावत् स्पर्शेन्द्रियवशार्त्त बने हुए जीव के विषय मे यावत् वह बार-बार ससार मे पर्यटन करता है, (यहाँ तक कहना चाहिए) ।

विवेचन—पचेन्द्रियवशार्त्त जीवो के दुष्कर्मबन्धादि परिणाम—प्रस्तुत सूत्र मे क्रोधादिवशार्त्त के बन्धादि परिणाम के अतिदेशपूर्वक श्रोत्रादिइन्द्रियवशार्त्त के परिणाम का प्रतिपादन किया गया है ।

जयन्ती द्वारा प्रव्रज्याग्रहण और सिद्धिगमन—

२२. तए णं सा जयंती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा सेस जहा देवाणंदाए (स० ९ उ० ३३ सु० १७–२०) तहेव पव्वइया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा

सेव भंते ! सेवं भते ! त्ति० ।

बारसमे सए : बीओ उद्देसओ समत्तो ।। १२-२ ।।

[२२] तदनन्तर वह जयन्ती श्रमणोपासिका, श्रमण भगवान् महावीर से यह (पूर्वोक्त) अर्थ (समाधान) सुन कर एव हृदय मे अवधारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुई, इत्यादि शेष समस्त वर्णन (श ९, उ ३३, सू १७-२० मे कथित) देवानन्दा के समान है यावत् जयन्ती श्रमणोपासिका प्रव्रजित हुई यावत् सर्व दु खो से रहित हुई, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,—यो कह कर श्री गौतम स्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—जयन्ती श्रमणोपासिका पर समाधान की प्रतिक्रिया—प्रस्तुत सूत्र मे इस उद्देशक का उपसहार करते हुए शास्त्रकार जयन्ती श्रमणोपासिका के मन पर अपनी शकाओ के समीचीन समाधान की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है । तीन मुख्य प्रतिक्रियाएँ प्रतिफलित होती हैं—

(१) जयन्ती हर्षित, सन्तुष्ट होकर देवानन्दा के समान भगवान् को वन्दन-नमस्कारानन्तर श्रद्धापूर्वक प्रव्रज्या ग्रहण करती है।) (२) भगवान् द्वारा प्रव्रजित साध्वी जयन्ती ने आर्या चन्दनबाला की शिष्या बन कर अग शास्त्रो का अध्ययन किया, गुरुणी की आज्ञानुसार सयमपालन किया। (३) तपश्चरण द्वारा सिद्ध-बुद्ध मुक्त एव सर्व दु खरहित हुईं।[1]

॥ बारहवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती शतक ९, उ ३३, सू १७-२० तक का देवानन्दावर्णन।
(ख) भगवती (वियाहपण्णत्ति) (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ, ५७२

ततिओ उद्देसओ : 'पुढवी'

तृतीय उद्देशक : पृथ्वियाँ

सात नरक पृथ्वियाँ-नाम-गोत्रादि वर्णन—

१. रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर पधारे,) यावत् (गौतम स्वामी ने वन्दना-नमस्कार करके) इस प्रकार पूछा—

२. कति ण भंते पुढवीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–पढमा दोच्चा जाव सत्तमा ।

[२ प्र] भगवन् ! पृथ्वियाँ (नरक-भूमियाँ) कितनी कही गई हैं ?

[२ उ] गौतम ! पृथ्वियाँ सात कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमा, द्वितीया यावत् सप्तमी ।

३. पढमा ण भते ! पुढवी किनामा ? किगोत्ता पन्नत्ता ?

गोयमा ! घम्मा नामेण, रयणप्पभा गोत्तेणं, एवं जहा जीवाभिगमे पढमो नेरइयउद्देसओ सो निरवसेसो भाणियव्वो जाव अप्पाबहुगं ति ।

सेवं भंते ! सेव भते त्ति० ।

[३ प्र] भगवन् ! प्रथमा पृथ्वी किस नाम और किस गोत्र वाली है ?

[३ उ] गौतम ! प्रथमा पृथ्वी का नाम 'घम्मा' है, और गोत्र 'रत्नप्रभा' है। शेष (छह पृथ्वियो का) सब वर्णन जीवाभिगम सूत्र (की तृतीय प्रतिपत्ति) के प्रथम नैरयिक उद्देशक (मे प्रतिपादित वर्णन) के समान यावत् अल्पबहुत्व तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन--सात नरक भूमियाँ नाम और गोत्र आदि—प्रस्तुत त्रिसूत्री मे जीवाभिगम सूत्र के अतिदेश-पूर्वक सात नरक पृथ्वियो के नाम, गोत्र आदि का वर्णन किया गया है ।[1]

नाम और गोत्र—अपनी इच्छानुसार किसी पदार्थ को सार्थक या निरर्थक जो भी सज्ञा प्रदान की जाती है, उसे 'नाम' कहते है। तथा सार्थक एव तदनुकूल गुणो के अनुसार जो नाम रखा जाता है उसे 'गोत्र' कहते हैं ।

सात नरको के नाम—घम्मा, वमा, शीला, अजना, रिट्ठा, मघा और माघवई । **सात नरको के गोत्र**—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और तमस्तम प्रभा (महातम प्रभा) । इसका विस्तृत वर्णन जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति मे है ।

।। बारसमे सए : ततिओ उद्देसओ समत्तो ।।

।। बारहवाँ शतक तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती सूत्र, अ वृत्ति, पत्र ५६१

(ख) जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, उद्देशक १ नैरयिक वर्णन । सू ६७-८४, पृ ८८-१०८

चउत्थो उद्देसओ : पोग्गले

चतुर्थ उद्देशक : पुद्गल

दो परमाणु पुद्गलों का संयोग-विभाग निरूपण—

१. रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।), यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२. दो भते! परमाणुपोग्गला एगयश्रो साहण्णति, एगयओ साहण्णिता किं भवति? गोयमा! दुपदेसिए खधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा कज्जति। एगयश्रो परमाणुपोग्गले, एगयओ परमाणुपोग्गले भवति।

[२ प्र] भगवन्! दो परमाणु जब सयुक्त होकर एकत्र होते है, तब उन का क्या होता है?

[२ उ] गौतम! (एकत्र सहत उन दो परमाणु-पुद्गलो का) द्विप्रदेशिक स्कन्ध वन जाता है। यदि उसका भेदन हो तो दो विभाग होने पर एक ओर एक परमाणुपुद्गल और दूसरी ओर भी एक परमाणु-पुद्गल हो जाता है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे दो परमाणु एकत्रित होने पर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध वनने तथा विभाजित होने पर दो परमाणु अलग-अलग (एक विकल्प—१-१) होने का निरूपण किया गया है। इसका सिर्फ एक ही विकल्प है (१-१)

कठिनशब्दार्थ-साहण्णति—एक (सयुक्त) रूप से इकट्ठे होते है।[1]

तीन परमाणुपुद्गलों का संयोग-विभाग-निरूपण—

३. तिन्नि भंते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, एगयश्रो साहण्णिता किं भवति? गोयमा! तिपदेसिए खधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि कज्जति। दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयश्रो दुपदेसिए खंधे भवति। तिहा कज्जमाणे तिन्नि परमाणुपोग्गला भवति।

[३ प्र] भगवन्! जब तीन परमाणु एकरूप मे इकट्ठे होते है, तब उन (एकत्र सहत तीन परमाणुओ) का क्या होता है?

[३ प्र] गौतम! उनका त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है। उसका भेदन होने पर दो या तीन विभाग होते है। दो विभाग हो तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और दूसरी ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध हो जाता है। उसके तीन विभाग हो तो तीन परमाणु-पुद्गल पृथक्-पृथक् हो जाते है।

१, भगवती. अ वृत्ति, पत्र ५६६

विवेचन—तीन परमाणुपुद्गलो का सयोग और विभाग—प्रस्तुत सूत्र मे तीन परमाणुओ के सयुक्त होने पर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध हो जाने तथा विभक्त होने पर यदि दो हिस्सो मे विभक्त हो तो एक ओर एक परमाणु और दूसरी ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होने तथा तीन हिस्सो मे विभक्त हो तो पृथक्-पृथक् तीन परमाणु होने का निरूपण है। त्रिप्रदेशीस्कन्ध के दो विकल्प, यथा, १-२। १-१-१।

चार परमाणु-पुद्गलो का संयोग-विभाग-निरूपण—

४. चत्तारि भते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णति पुच्छा। गोयमा! चउप्पएसिए खधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि, चउहा वि कज्जइ। दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ तिपदेसिए खधे भवति; अहवा दो दुपदेसिया खधा भवति। तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपदेसिए खधे भवति। चउहा कज्जमाणे चत्तारि परमाणुपोग्गला भवति।

[४ प्र] भगवन्! चार परमाणुपुद्गल इकट्ठे होते है, तब उनका क्या होता है?

[४ उ] गौतम! उन (एकत्र सहत चार परमाणुओ) का (एक) चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध बन जाता है। उनका भेदन होने पर दो तीन अथवा चार विभाग होते है। दो विभाग होने पर एक ओर (एक) परमाणुपुद्गल और दूसरी ओर त्रिप्रदेशिकस्कन्ध होता है, अथवा पृथक्-पृथक् दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध हो जाते है। तीन विभाग होने पर एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणुपुद्गल और एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध रहता है। चार विभाग होने पर चार परमाणुपुद्गल पृथक्-पृथक् होते है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे चार परमाणुओ के सयुक्त होने पर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होने तथा उन्हे २-३-४ भागो मे विभक्त किये जाने पर क्रमश १ परमाणुपुद्गल १ त्रिप्रदेशिकस्कन्ध, अथवा पृथक्-पृथक् दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध, पृथक्-पृथक् दो परमाणु और १ द्विप्रदेशिक स्कन्ध तथा पृथक्-पृथक् ४ परमाणुपुद्गल हो जाने का निरूपण किया गया है। चतुष्प्रदेशीस्कन्ध के चार विकल्प -१-३।२-२।१-१-२।१-१-१-१।

परमाणुपुद्गल परस्पर स्वाभाविक रूप से ही मिलते और अलग होते है, किसी के प्रयत्न से नही, तथापि यहाँ और आगे सर्वत्र 'किए जाएँ' शब्दो का जो प्रयोग हुआ है वह केवल बुद्धि द्वारा ही समझना चाहिए।

पाच परमाणु-पुद्गलों का संयोग-विभाग-निरूपण—

५. पच भते! परमाणुपोग्गला० पुच्छा। गोयमा! पचपदेसिए खंधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि, चउहा वि, पंचहा वि कज्जइ। दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ चउपदेसिए खधे भवति, अहवा एगयओ दुपदेसिए खधे, एगयओ तिपदेसिए खधे भवति। तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपदेसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ दो दुपएसिया खधा भवति। चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खधे भवति। पंचहा कज्जमाणे पंच परमाणुपोग्गला भवति।

[५ प्र] भगवन् ! पाच परमाणुपुद्गल एकत्र सहत होने पर क्या स्थिति होती है ?

[५ उ.] गौतम ! उनका पचप्रदेशिक स्कन्ध बन जाता है । उसका भेदन होने पर दो, तीन, चार अथवा पाच विभाग हो जाते है । यदि दो विभाग किये जाएँ तो एक ओर एक परमाणुपुद्गल और दूसरी ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध हो जाता है । अथवा एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध हो जाता है । तीन विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणुपुद्गल और एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध रहता है; अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और दूसरी ओर पृथक्-पृथक् दो द्विप्रदेशिकस्कन्ध रहते है । चार विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक-पृथक् तीन परमाणुपुद्गल और दूसरी ओर एक द्विप्रदेशीस्कन्ध रहता है । पाच विभाग किये जाने पर पृथक्-पृथक् पाच परमाणु होते है ।

विवेचन—पचप्रदेशीस्कन्ध के ६ विकल्प—यथा—१-४। २-३। १-१-३।१-२-२। १-१-१-२। १-१-१-१-१।

छह परमाणु-पुद्गलों का संयोग-विभाग निरूपण —

६. छब्भते ! परमाणुपोग्गला० पुच्छा । गोयमा ! छप्पदेसिए खंधे भवइ । से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि, जाव छहा वि कज्जइ । दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ पच पएसिए खंधे भवति, अहवा एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ चउपदेसिए खंधे भवति; अहवा दो तिपदेसिया खधा भवति । तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ चउपएसिए खंधे भवति, अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपदेसिए खंधे भवति; अहवा तिण्णि दुपदेसिया खधा भवति । चउहा कज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपदेसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपदेसिया खंधा भवंति। पचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवति । छहा कज्जमाणे छ परमाणुपोग्गला भवति ।

[६ प्र] भगवन् ! छह परमाणु-पुद्गल जब सयुक्त होकर इकट्ठे होते हैं, तब क्या बनता है ?

[६ उ] गौतम ! उनका षट्प्रदेशिक स्कन्ध बनता है । उसका भेदन होने पर दो, तीन, चार, पाच अथवा छह विभाग हो जाते हैं । दो विभाग किये जाने पर एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर पचप्रदेशिक स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध रहता है । अथवा दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते है । तीन विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध रहता है । अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है, अथवा तीन पृथक्-पृथक् द्विप्रदेशिक होते है । चार विभाग किये जाने पर एक ओर तीन पृथक् परमाणुपुद्-, गल एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर पृथक्-पृथक दो परमाणु पुद्गल, एक ओर पृथक्-पृथक् दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते है, पाच विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु पुद्गल और एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है, और छह विभाग किये जाने पर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल होते है ।

विवेचन—षट्प्रदेशिक स्कन्ध के दस विकल्प—यथा—१-५। २-४। ३-३। १-१-४। १-२-३। २-२-२। १-१-१-३। १-१-२-२। १-१-१-१-२। और १-१-१-१-१-१।

सात परमाणु-पुद्गलों का संयोग-विभाग-निरूपण—

७. सत्त भंते ! परमाणुपोग्गला० पुच्छा। गोयमा ! सत्तपदेसिए खंधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव सत्तहा वि कज्जइ। दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दुप्पएसिए खंधे, एगयओ पंचपदेसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ तिप्पएसिए, एगयओ चउपएसिए खंधे भवति। तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ चउपएसिए खंधे भवति, अहवा एगयओ परमाणु०, एगयओ दो तिपएसिया खंधे भवति; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खंधे भवति। चउहा कज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुओ०, एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा भवंति। पंचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवति। छहा कज्जमाणे एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपदेसिए खंधे भवति। सत्तहा कज्जमाणे सत्त परमाणुपोग्गला भवति।

[७ प्र.] भगवन् ! जब सात परमाणु पुद्गल संयुक्त रूप से इकट्ठे होते हैं, तब उनका क्या होता है ?

[७ उ.] गौतम ! उनका सप्त-प्रदेशिक स्कन्ध होता है। उसका भेदन किये जाने पर दो, तीन यावत् सात विभाग भी हो जाते हैं। यदि दो विभाग किये जाएँ तो—एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और दूसरी ओर षट्-प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है, एक ओर पंच प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है और दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। तीन विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और दूसरी ओर पंचप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणुपुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध, और एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर पृथक् पृथक् दो त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं और दूसरी ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है। चार विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल, एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता। अथवा एक ओर दो परमाणु-पुद्गल पृथक्-पृथक्, एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध तथा एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं। पांच विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु पुद्गल और एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध रहता है। अथवा एक ओर तीन पृथक् पृथक् परमाणु-पुद्गल और एक ओर पृथक्-पृथक् दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं। छह विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु-पुद्गल और दूसरी ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है। सात विभाग किये जाने पर पृथक्-पृथक् सात परमाणु-पुद्गल होते हैं।

विवेचन—सप्तप्रदेशिक स्कन्ध के चौदह विकल्प—यथा—

दो विभाग—१-६। २-५। ३-४।

तीन विभाग—१-१-५। १-२-४। १-३-३। २-२-३।

चार विभाग—१-१-१-४। १-१-२-३। १-२-२-२।

पाच विभाग—१-१-१-१-३। १-१-१-२-२।

छह विभाग—१-१-१-१-१-२।

सात विभाग—१-१-१-१-१-१-१। इस प्रकार कुल ३+४+३+२+१+१=१४ विकल्प हुए।

आठ परमाणु-पुद्गलों का संयोग-विभाग-निरूपण—

८. अट्ठ भंते! परमाणुपोग्गला० पुच्छा। गोयमा! अट्ठपएसिए खंधे भवइ, जाव दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु०, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपदेसिए खंधे, एगयओ छप्पदेसिए खधे भवइ; अहवा एगयओ तिपएसिए०, एगयओ पचपदेसिए खधे भवइ; अहवा दो चउप्पदेसिया खधा भवंति। तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणु०, एगयओ छप्पएसिए खधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणु०, एगओ दुपएसिए खधे, एगयओ पचप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणु० तिपएसिए खधे, एगयओ चउपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खधा, एगयओ चउप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ दो तिपएसिया खधा भवंति। चउहा कज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला, एगयओ पचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दोण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ दो तिपएसिया खधा भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दो दुपएसिया खधा, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा चत्तारि दुपएसिया खधा भवति। पचहा कज्जमाणे एगयओ चतारि परमाणुपोग्गला, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो० एगयओ तिन्न दुपएसिया खधा भवंति। छहा कज्जमाणे एगयओ पच परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपो०, एगयओ दो दुपएसिया खधा भवंति। सत्तहा कज्जमाणे एगयओ छ परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवति। अट्ठहा कज्जमाणे अट्ठ परमाणुपोग्गला भवति।

[८ प्र] भगवन्! आठ परमाणु-पुद्गल सयुक्तरूप से इकट्ठे होने पर क्या बनता है?

[८ उ] गौतम! उनका अष्टप्रदेशिक स्कन्ध बन जाता है। यदि उसके विभाग किये जाएँ तो दो, तीन, चार यावत् आठ विभाग होते हैं। दो विभाग किये जाने पर एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर सप्तप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर एक

पचप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा पृथक्-पृथक् दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते है। उसके तीन विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणुपुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पचप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है, और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध पृथक्-पृथक् होते हैं। जब उसके चार विभाग किये जाएँ तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणुपुद्गल और एक ओर एक पंचप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर पृथक्-पृथक् दो त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होते है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं। अथवा पृथक्-पृथक् चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। पांच विभाग किये जाने पर एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विपदेशी स्कन्ध तथा एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते है। यदि उसके छह विभाग किये जाएँ तो एक ओर पृथक्-पृथक् पाच परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं। यदि उसके सात विभाग किये जाएँ तो एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उससे आठ विभाग किये जाएँ तो पृथक्-पृथक् आठ परमाणु-पुद्गल होते है।

विवेचन—अष्टप्रदेशी स्कन्ध के विभागीय इक्कीस विकल्प—

दो विभाग—१-७। २-६। ३-५। ४-४।

तीन विभाग—१-१-६। १-२-५। १-३-४। २-२-४। २-३-३।

चार विभाग—१-१-१-५। १-१-२-४। १-१-३-३। १-२-२-३। २-२-२-२।

पांच विभाग—१-१-१-१-४। १-१-१-२-३। १-१-२-२-२।

छह विभाग— १-१-१-१-१-३। १-१-१-१-२-२।

सात विभाग—१-१-१-१-१-१-२।

आठ विभाग—१-१-१-१-१-१-१-१।

इस प्रकार कुल ४+५+५+३+२+१+१=२१ विकल्प होते है।

नौ परमाणु-पुद्गलों का संयोग-विभाग-निरूपण—

९. नव भंते! परमाणुपोग्गला० पुच्छा। गोयमा! जाव नवविहा कज्जति। दुहा कज्ज माणे एगयओ परमाणुपो०, एगयओ अट्ठपएसिए खधे भवति; एव एक्केक्क सचारेतेहिं जाव अहवा एगयओ चउप्पएसिए खधे, एगयओ पंचपएसिए खधे भवति। तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणु-पोग्गला, एगयओ सत्तपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०,

एगयओ छप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दो चउप्पएसिया खधा भवति, अहवा एगयओ दुपदेसिए खधे, एगयओ तिपएसिए खधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवति; अहवा तिण्णि तिपएसिया खधा भवंति। चउहा भिज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो० एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ पंचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो० एगयओ तिपएसिए खधे, एगयओ चउप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दुपदेसिए खधे, एगयओ दो तिपएसिया खधा भवंति; अहवा एगयओ तिन्नि दुप्पएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खधे भवति। पंचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपो०, एगयओ पंचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणु०, एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ चउपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणुपो०, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवति; अहवा एगयओ दो परमाणपोग्गला, एगयओ दो दुपएसिया खधा, एगयओ तिपएसिए खधे भवइ; अहवा एगयओ पमाणुपो०, एगयओ चत्तारि दुपएसिया खंधा भवति। छहा कज्जमाणे एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपो०, एगयओ दुप्पएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ तिन्नि दुप्पएसिया खधा भवंति। सत्तहा कज्जमाणे एगयओ छ परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ पंच परमाणुपो० एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवति। अट्ठहा कज्जमाणे एगयओ सत्त परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए खंधे भवति। नवहा कज्जमाणे नव परमाणुपोग्गला भवति।

[९ प्र] भगवन्! नौ परमाणु-पुद्गलो के संयुक्तरूप से इकट्ठे होने पर क्या वनता है?

[९ उ] गौतम! उनका नवप्रदेशी स्कन्ध वनता है। उसके विभाग हो तो दो, तीन यावत् नौ विभाग होते है। यदि उसके दो विभाग किये जाएँ तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार क्रमश एक-एक का सचार (वृद्धि) करना चाहिए, यावत् अथवा एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पचप्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उसके तीन विभाग किये जाएँ तो एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक पचप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा तीन त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते है।

चार भाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पचप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-

पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।

पाच भाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक पंचप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

छह भाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् पाच परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर चार परमाणु-पुद्गल पृथक्-पृथक्, एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

सात विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् पाच परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते है।

आठ विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् सात परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

नव विभाग किये जाने पर—पृथक्-पृथक् नौ परमाणु-पुद्गल होते है।

विवेचन—नवप्रदेशी स्कन्ध के विभक्त होने पर २८ विकल्प—

दो विभाग—१-८। २-७। ३-६।४-५।

तीन विभाग—१-१-७। १-२-६। १-३-५। १-४-४। [२-२-५] २-३-४। ३-३-३।

चार विभाग—१-१-१-६। १-१-२-५। १-१-३-४। १-२-२-४। १-२-३-३। २-२-२-३।

पाच विभाग—१-१-१-१-५। १-१-१-२-४। १-१-१-३-३ ।१-१-२-२-३। १-२-२-२-२।

छह विभाग—१-१-१-१-१-४। १-१-१-१-२-३। १-१-१-२-२-२।

सात विभाग—१-१-१-१-१-१-३। १-१-१-१-१-२-२।

आठ विभाग—१-१-१-१-१-१-१-२।

नौ विभाग—१-१-१-१-१-१-१-१-१।

इस प्रकार नौ प्रदेशी स्कन्ध के कुल ४+६+६+५+३+२+१+१=२८ विकल्प हुए। ब्रैकेट वाला विकल्प [२-२-५] शून्य है।

दस परमाणु पुद्गलों का संयोग-विभाग-निरूपण—

१०. दस भते ! परमाणुपोग्गला जाव दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ नवपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ अट्ठ पएसिए खंधे भवति; एव एक्केक्क सचारेयव्वति जाव अहवा दो पचपएसिया खधा भवंति। तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ अट्ठपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ सत्तपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खधे, एगयओ छप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ चउप्पएसिए०, एगयओ पचपएसिए खधे भवति*। अहवा एगयओ दो दुपएसिया खधा, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दुपएसिए०, एगयओ तिपएसिए०, एगयओ पचपएसिए खंधे भवति;* अहवा एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ दो चउप्पएसिया खंधा भवति; अहवा एगयओ दो तिपएसिया खधा, एगयओ चउप्पएसिए खधे भवइ। चउहा कज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ दो चउप्पएसिया खधा भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दुपदेसिए० एगयओ तिपएसिए०, एगयओ चउप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ तिन्नि तिपएसिया खधा भवति; अहवा एगयओ तिन्नि दुपएसिया खधा, एगयओ चउपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति। पचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ छप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणुपो० एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ पचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खधे भवति, एगयओ चउपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ दो दुपएसिया खधा, एगयओ चउप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ दो तिपएसिया खधा भवति अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ तिन्नि दुपएसिया०, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा पचदुपएसिया खधा भवति। छहा कज्जमाणे एगयओ पच परमाणुपो०, एगयओ पचपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ चउप्पएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपो०, एगयओ दो तिपएसिया खधा भवंति; अहवा एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ दो दुपदेसिया खधा, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयओ चत्तारि दुपएसिया खधा भवंति। सत्तहा कज्जमाणे एगयओ छ परमाणुपो०, एगयओ चउप्पदेसिए खधे भवति; अहवा एगयओ पच परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ तिपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपो०, एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा भवंति। अट्ठहा कज्जमाणे

अधिकपाठ— * इन दोनो चिह्नो के अन्तर्गत मुद्रित पाठ अन्य प्रतियो मे नहीं है।

एगयओ सत्त परमाणुपो०, एगयओ तिपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ छप्परमाणुपो०, एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति। नवहा कज्जमाणे एगयओ अट्ठ परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए खंधे भवति। दसहा कज्जमाणे दस परमाणुपोग्गला भवंति।

[१० प्र.] भगवन्! दस परमाणु-पुद्गल संयुक्त होकर इकट्ठे हों तो क्या बनता है?

[१० उ.] गौतम! उनका एक प्रदेशी स्कन्ध बनता है। उसके विभाग किये जाने पर दो, तीन यावत् दश विभाग होते हैं।

दो विभाग होने पर—एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, और एक ओर एक नवप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार एक-एक का संचार (वृद्धि) करना चाहिए, यावत् दो पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

तीन विभाग होने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है। [अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।] अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।

चार विभाग होने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, और एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक ओर एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन त्रिप्रदेशीस्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

पांच विभाग हों तो—एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर तीन परमाणु-पुद्गल (पृथक्-पृथक्) तथा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक् पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर दो पृथक् पृथक् परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर दो परमाणु-पुद्गल (पृथक्-पृथक्) एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर

तीन द्विदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा पाच द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते है।

छह विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् पाच परमाणु-पुद्गल, एक ओर पच-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन पुद्गल-परमाणु, एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल तथा एक ओर चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते है।

सात विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् पाच परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते है।

आठ विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् सात परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणुपुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

नौ विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् आठ परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।

दस विभाग किये जाने पर—पृथक्-पृथक् दस परमाणु पुद्गल होते है।

विवेचन—दशप्रदेशीस्कन्ध के विभागीय ३९ विकल्प—

दो विभाग—१-९। २-८। ३-७। ४-६। ५-५।

तीन विभाग—१-१-८। १-२-७। १-३-६। १-४-५। २-३-५। २-४-४। ३-३-४। [कोष्ठक मे एक विकल्प—२-२-६।]

चार विभाग—१-१-१-७। १-१-२-६। १-१-३-५। १-१-४-४। १-२-३-४। १-३-३-३। २-२-२-४। २-२-३-३। [१-२-२-५ मे शून्य विकल्प]

पांच विभाग—१-१-१-१-६। १-१-१-२-५। १-१-१-३-४। १-१-२-२-४। १-१-२-३-३। १-२-२-२-३। २-२-२-२-२।

छह विभाग—१-१-१-१-१-५। १-१-१-१-२-४। १-१-१-१-३-३। १-१-१-२-२-३। १-१-२-२-२-२।

सात विभाग—१-१-१-१-१-१-४। १-१-१-१-१-२-३। १-१-१-१-२-२-२।

आठ विभाग—१-१-१-१-१-१-१-३। १-१-१-१-१-१-२-२।

नौ विभाग—१-१-१-१-१-१-१-१-२।

दस विभाग—१-१-१-१-१-१-१-१-१-१।

इस प्रकार दशप्रदेशी स्कन्ध के विभाग किये जाने पर कुल ५+७+८+७+५+३+२+१+१=३९ विकल्प हुए।

द्विप्रदेशीस्कन्ध से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक के विभागीय विकल्प कुल १२५ इस प्रकार होते हैं—१+२+४+६+१०+१४+२१+२८+३९=१२५। इसमे जो दो जगह कोष्ठक के अन्तर्गत तीन विकल्प—२-३-५। २-२-६ एव १-२-२-५ है, वे शून्यभग हैं, उन्हे यहाँ नही गिना गया है।[1]

संख्यात परमाणु पुद्गलो के संयोग-विभाग से निष्पन्न भंग निरूपण—

११. सखेज्जा भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवति ? गोयमा ! सखेज्जपएसिए सखे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव दसहा वि सखेज्जहा वि कज्जति। दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ सखेज्जपएसिए खंधे भवति, एव अहवा एगयओ तिपएसिए०, एगयओ सखेज्जपएसिए खधे भवति, जाव अहवा एगयतो दसपएसिए खधे, एगयओ सखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा दो सखेज्जपएसिया खधा भवति। तिहा कज्जमाणे एगयतो दो परमाणुपो० एगयतो सखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा एगयतो परमाणुपो०, एगयतो दुपएसिए खंधे, एगयओ सखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा एगयतो परमाणुपो०, एगयतो तिपएसिए खधे० एगयतो संखेज्जपएसिए खंधे भवति; एव जाव अहवा एगयतो परमाणुपो०, एगयतो दसपएसिए खधे, एगयतो सखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा एगयतो परमाणुपो०, एगयतो दो सखेज्जपएसिया खंधा भवति; अहवा एगयतो दुपएसिए खंधे, एगयतो दो सखेज्जपदेसिया खधा भवति; एवं जाव अहवा एगयओ दसपएसिए खधे, एगयतो दो सखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा तिण्णि सखेज्जपएसिया खधा भवति। चउहा कज्जमाणे एगयतो तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ सखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा एगयतो दो परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयतो सखेज्जपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयतो दो परमाणुपो०, एगयतो तिपएसिए०, एगयतो सखेज्जपएसिए खधे भवति; एव जाव अहवा एगयओ दो परमाणुपो०, एगयतो दसपएसिए०, एगयतो सखेज्जपएसिए० भवति; अहवा एगयतो दो परमाणुपो०, एगयओ दो सखेज्जपएसिया खधा भवति; अहवा एगयतो परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए खधे, एगयओ दो सखेज्जपदेसिया खधा भवति; जाव अहवा एगयतो परमाणुपो०; एगयतो दसपएसिए०, एगयतो दो संखेज्जपएसिया खधा भवंति; अहवा एगयतो परमाणुपो०, एगयतो तिन्नि संखेज्जपएसिया खधा भवति; जाव अहवा एगयओ दुपएसिए०, एगयतो तिन्नि संखेज्जपएसिया० भवति; जाव अहवा एगयओ दसपएसिए०, एगयओ तिन्नि संखेज्जपदेसिया० भवंति; अहवा चत्तारि सखेज्जपएसिया० भवति।

एवं एएणं कमेणं पचगसजोगो वि भाणियव्वो जाव नवसजोगो।

दसहा कज्जमाणे एगयतो नव परमाणुपोग्गला, एगयतो सखेज्जपएसिए० भवति; अहवा एगयओ अट्ठ परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ सखेज्जपएसिए खधे भवति; एवं एएण

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६६ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०१९

कमेणं एक्केक्को पूरेयव्वो जाव अहवा एगयओ दसपएसिए०, एगयओ नव संखेज्जपएसिया० भवंति; अहवा दस संखेज्जपएसिया खंधा भवति । सखेज्जहा कज्जमाणे सखेज्जा परमाणुपोग्गला भवति ।

[११] भगवन् ! सख्यात परमाणु-पुद्गलो के सयुक्त होने पर क्या बनता है ।

[११ उ] गौतम ! वह सख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है । यदि उसके विभाग किये जाएँ तो दो तीन यावत् दस और सख्यात विभाग होते हैं ।

दो विभाग किये जाने पर—एक ओर एक परमाणुपुद्गल और एक ओर एक सख्येय-प्रदेशिक स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है । इसी प्रकार यावत् एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है । अथवा दो सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते है ।

तीन विभाग किये जाने पर—एक ओर दो पृथक्-पृथक् परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशीस्कन्ध और एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है । इस प्रकार यावत्—अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल. एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी-स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते है । अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते है । इस प्रकार यावत्—अथवा एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते है । अथवा तीन सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते है ।

जब उसके चार विभाग किये जाते है तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है । इस प्रकार यावत्—अथवा एक ओर दो पृथक्-पृथक् परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक दश-प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है । अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो सख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं । अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्वि-प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो सख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं । यावत्—अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं । अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते है । इस प्रकार यावत्—एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध होता है और एक ओर तीन सख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं । अथवा चारो सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं ।

इसी प्रकार इस क्रम से पचसयोगी विकल्प भी कहने चाहिए, यावत् नव-सयोगी विकल्प तक कहना चाहिए ।

उसके दस विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् नौ परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् आठ परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। इसी क्रम से एक-एक की सख्या उत्तरोत्तर बढाते जाना चाहिए, यावत् एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर नौ सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते है, अथवा दस सख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते है।

यदि उसके सख्यात विभाग किये जाएँ तो पृथक्-पृथक् सख्यात परमाणु-पुद्गल होते हैं।

विवेचन—सख्यातप्रदेशी स्कन्ध के विभागीय विकल्प—सख्यात प्रदेश के विभाग किये जाने पर कुल ४६० भग होते है। यथा—दो विभाग के द्विक सयोगी ११ भग, तीन विभाग के त्रिकसयोगी २१ भग, चार विभाग के चतुष्कसयोगी ३१ भग, पाच विभाग के पचसयोगी ४१ भग, छह विभाग के षट्-सयोगी ५१ भग, सात विभाग के सप्तसयोगी ६१ भग, आठ विभाग के अष्टसयोगी ७१ भग, नौ विभाग के नव-सयोगी ८१ भग, दस विभाग के दशसयोगी ९१ भग और सख्यात परमाणु-विभाग के सख्यात सयोगी एक भग, इस प्रकार कुल ४६० भग हुए।[1]

असंख्यात परमाणु पुद्गलो के संयोग-विभाग से निष्पन्न भंग

१२. असंखेज्जा भते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति एगयओ साहण्णित्ता किं भवति ?
गोयमा ! असंखेज्जपएसिए खधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि, जाव दसहा वि, सखेज्जहा वि, असखेज्जहा वि कज्जति।

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपो०, एगयओ असखेज्जपएसिए खधे भवति; जाव अहवा एगयओ दसपदेसिए०, एगयओ असखिज्जपएसिए० भवति; अहवा एगयओ संखेज्जपएसिए खधे, एगयओ असखेज्जपएसिए खंधे भवति; अहवा दो असखेज्जपएसिया खधा भवति।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणु पो०, एगयओ असखेज्जपएसिए० भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ असखिज्जपएसिए० भवति; जाव अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दसपदेसिए०, एगयओ असखेज्जपएसिए० भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ सखेज्जपएसिए०, एगयओ असखेज्जपएसिए० भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दो असखेज्जपएसिया खधा भवति; अहवा एगयओ दुपएसिए०, एगयओ दो असखेज्जपएसिया खंधा भवति; एव जाव अहवा एगयओ सखेज्जपएसिए०, एगयओ दो असखेज्जपएसिया खधा भवति; अहवा तिन्नि असखेज्जपएसिया० भवति।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयओ असखेज्जपएसिए० भवति। एवं चउक्कगसजोगो जाव दसगसजोगो। एए जहेव सखेज्जपएसियस्स, नवरं असखेज्जग एग अहिग भाणियव्व जाव अहवा दस असखेज्जपदेसिया खंधा भवति।

सखेज्जहा कज्जमाणे एगयओ संखेज्जा परमाणुपोग्गला, एगयओ असखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा एगयओ सखेज्जा दुपएसिया खधा, एगयओ असखेज्जपएसिए खंधे भवति एव जाव

---
१ भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५६६

अहवा एगयओ सखेज्जा दसपएसिया खंधा, एगयओ असखेज्जपएसिए खंधे भवति; अहवा एगयओ सखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा, एगयओ असंखेज्जपएसिए खधे भवति; अहवा सखेज्जा असखेज्ज-पएसिया खधा भवति।

असंखेज्जहा कज्जमाणे असंखेज्जा परमाणुपोग्गला भवति।

[१२ प्र०] भगवन्! असख्यात परमाणु-पुद्गल सयुक्तरूप से इकट्ठे होने पर (उनका) क्या होता है?

[१२ उ०] गौतम! उनका एक असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध होता है। उसके विभाग किये जाने पर दो, तीन यावत् दस विभाग भी होते हैं, सख्यात विभाग भी होते हैं, असख्यात विभाग भी।

दो विभाग किये जाने पर—एक ओर एक परमाणु पुद्गल और एक ओर एक असख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है। यावत् (पूर्ववत्)—अथवा एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा दो असख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते है।

तीन विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। यावत्—अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर दश-प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, और एक ओर दो असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते है। इस प्रकार यावत्—अथवा एक ओर एक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा तीन असख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

चार विभाग किये जाने पर—एक ओर तीन पृथक्-पृथक् परमाणु-पुद्गल और एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार चतु सयोगी से यावत् दश सयोगी तक जानना चाहिए। इन सबका कथन सख्यात-प्रदेशी के (विकल्पो के) समान करना चाहिए। विशेष (अन्तर) इतना है कि एक असख्यातशब्द अधिक कहना चाहिए, यावत्—अहवा दश असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

सख्यात विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् सख्यात परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक असख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर सख्यात द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक ओर असख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार यावत्—एक ओर सख्यात दश-प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर सख्यात-प्रदेगी स्कन्ध और एक ओर एक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा सख्यात असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते है।

उसके असख्यात विभाग किये जाने पर पृथक्-पृथक् असख्यात परमाणु-पुद्गल होते है।

विवेचन—असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध के विभागीय विकल्प—असख्यात प्रदेशी स्कन्ध मे पहले

बारह कह कर फिर ग्यारह-ग्यारह बढाने से कुल ५१७ भग होते हैं। वे इस प्रकार है—द्विकसयोगी १२, त्रिकसयोगी २३, चतुष्कसंयोगी ३४, पचसंयोगी ४५, षट्-सयोगी ५६, सप्तसयोगी ६७, अष्ट-सयोगी ७८, नवसयोगी ८९, दशसयोगी १००, सख्यात-सयोगी १२ और असख्यात-सयोगी एक। ये सब मिला कर ५१७ भग हुए।[1]

अनन्त परमाणु-पुद्गलो के संयोग-विभागनिष्पन्न भंग प्ररूपणा

१३. अणंता ण भते ! परमाणुपोग्गला जाव किं भवति ?

गोयमा ! अणतपएसिए खधे भवति। से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि जाव दसहा वि, सखिज्ज-असंखिज्ज-अणंतहा वि कज्जइ।

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ अणंतपएसिए खधे, जाव अहवा दो अणत-पएसिया खंधा भवति।

तिहा कज्जमाणे एगयतो दो परमाणुपो०, एगयतो अणंतपएसिए० भवति, अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दुपएसिए०, एगयओ अणतपएसिए० भवति; जाव अहवा एगयओ परमाणुपो० एगयओ असखेज्जपएसिए०, एगयओ अणतपदेसिए खधे भवति; अहवा एगयओ परमाणुपो०, एगयओ दो अणतपएसिया० भवंति; अहवा एगयओ दुपएसिए०, एगयओ दो अणंतपएसिया० भवति; एवं जाव अहवा एगयतो दसपएसिए एगयतो दो अणतपएसिया खधा भवति; अहवा एगयओ सखेज्ज-पएसिए खधे, एगयओ दो अणतपदेसिया खधा भवंति; अहवा एगयओ असंखेज्जपएसिए खधे, एगयओ दो अणतपएसिया खधा भवति; अहवा, तिन्नि अणतपएसिया खंधा भवंति। चउहा कज्जमाणे एगयओ तिन्नि परमाणुपो०, एगयतो अणंतपएसिए० भवति; एव चउक्कसजोगो जाव असखेज्जगसजोगो। एए सव्वे जहेव असखेज्जाणं भणिया तहेव अणताण वि भाणियव्वा, नवर एक्क अणतग अब्भहियं भाणियव्व जाव अहवा एगयतो सखेज्जा सखिज्जपएसिया खधा, एगयओ अणतपएसिए० भवति; अहवा एगयओ सखेज्जा असखेज्जपदेसिया खधा, एगयओ अणतपएसिए खधे भवति; अहवा सखिज्जा अणतपएसिया खधा भवति। असखेज्जहा कज्जमाणे एगयतो असखेज्जा परमाणुपोग्गला, एगयओ अणतपएसिए खधे भवति; अहवा एगयतो असखिज्जा दुपएसिया खधा, एगयओ अणतपएसिए० भवति; जाव अहवा एगयओ असखेज्जा सखिज्जपएसिया०, एगयओ अणतपएसिए० भवति; अहवा एगयओ असखेज्जा असखेज्जपएसिया खधा, एगयओ खधा, एगयओ अणतपएसिए० भवति; अहवा असखेज्जा अणंतपएसिया खधा भवति।

अणतहा कज्जमाणे अणता परमाणुपोग्गला भवति।

[१३ प्र] भगवन् ! अनन्त परमाणु-पुद्गल सयुक्त होकर एकत्रित हो तो (उनका) क्या होता है ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६६

[१३ उ] गौतम ! उनका एक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध वन जाता है। यदि उसके विभाग किये जाएँ तो दो तीन यावत् दस, सख्यात, असख्यात और अनन्त विभाग होते है।

दो विभाग किये जाने पर—एक ओर एक परमाणुपुद्गल और दूसरी ओर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है। यावत् दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

तीन विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। यावत् अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक असख्यातप्रदेशी और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते है। इस प्रकार यावत्—अथवा एक ओर एक दशप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा एक ओर एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा एक ओर एक असख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते है। अथवा तीन अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

चार विभाग किये जाने पर—एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार चतुष्कसयोगी (से लेकर) यावत् असख्यात-सयोगी तक कहना चाहिए। जिस प्रकार असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध के भग कहे गए है, उसी प्रकार यहाँ ये सब अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के भग कहने चाहिए। विशेष यह है कि एक 'अनन्त' शब्द अधिक कहना चाहिए। यावत्—अथवा एक ओर सख्यात सख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर सख्यात असख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा सख्यात अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते है।

जब उसके असख्यात भाग किये जाते है तो एक ओर पृथक्-पृथक् असख्यात परमाणु पुद्गल और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर असख्यात द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है, यावत्—एक ओर असख्यात सख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा एक ओर असख्यात असख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है। अथवा असख्यात अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते है।

अनन्त विभाग किये जाने पर पृथक्-पृथक् अनन्त-परमाणु पुद्गल होते है।

विवेचन—अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विभागीय विकल्प—अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विभाग के पहले तेरह विकल्प (भग) कह कर फिर उत्तरोत्तर १२-१२ विकल्प बढाते जाना चाहिए। यथा—द्विसयोगी १३, त्रिकसयोगी २५, चतुष्कसयोगी ३७, पचसयोगी ४९, षट्सयोगी ६१, सप्तसयोगी ७३, अष्टसयोगी ८५, नवसयोगी ९७, दशसयोगी १०९ सख्यात-सयोगी १३, असख्यात-सयोगी १३ और अनन्त-सयोगी १, यो कुल मिला कर ५७६ भग हुए।[1]

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्र ५६६-६६७

परमाणुपुद्गलो का पुद्गलपरिवर्त्त और उसके प्रकार

१४. एएसि ण भते ! परमाणुपोग्गलाण साहणणाभेदाणुवाएण अणंताणता पोग्गलपरियट्टा समणुगंतव्वा भवतीति मक्खाया ?

हंता, गोयमा ! एतेसि ण परमाणुपोग्गलाण साहणणा जाव मक्खाया ।

[१४ प्र] भगवन् ! इन परमाणु-पुद्गलो के सघात (सयोग) और भेद (वियोग) के सम्बन्ध से होने वाले अनन्तानन्त पुद्गलपरिवर्त्त जानने योग्य है, (क्या) इसीलिए (आपने) इनका कथन किया है ?

[१४ उ] हाँ, गौतम ! सघात और भेद के सम्बन्ध से होने वाले अनन्तानन्त पुद्गल-परिवर्त्त जानने योग्य है, इसीलिए ये कहे गये है ।

१५ कतिविधे णं भते ! पोग्गलपरियट्टे पन्नत्ते ?

गोयमा ! सत्तविहे पोग्गलपरियट्टे पन्नत्ते, त जहा—ओरालियपोग्गलपरियट्टे वेउव्वियपोग्गल-परियट्टे तेयापोग्गलपरियट्टे कम्मापोग्गलपरियट्टे मणपोग्गलपरियट्टे वइपोग्गलपरियट्टे आणपाणु-पोग्गलपरियट्टे ।

[१५ प्र.] भगवन् ! पुद्गलपरिवर्त्त कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१५ उ.] गौतम ! वह सात प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त, (२) वैक्रिय-पुद्गल परिवर्त्त, (३) तैजस-पुद्गल परिवर्त्त, (४) कार्मण-पुद्गल परिवर्त्त, (५) मन -पुद्गल परिवर्त्त, (६) वचन-पुद्गल-परिवर्त्त और (७) आनप्राण-पुद्गल परिवर्त्त ।

१६ नेरइयाण भते ! कतिविधे पोग्गलपरियट्टे पन्नत्ते ?

गोयमा ! सत्तविधे पोग्गलपरियट्टे पन्नत्ते, त जहा— ओरालियपोग्गलपरियट्टे वेउव्वियपोग्गल-परियट्टे जाव आणपाणुपोग्गलपरियट्टे ।

[१६ प्र.] भगवन् ! नैरयिको के पुद्गल-परिवर्त्त कितने प्रकार के कहे गये है ?

[१६ उ] गौतम ! (नैरयिक जीवो के भी) सात प्रकार के पुद्गल-परिवर्त्त कहे गए है। यथा— औदारिकपुद्गल-परिवर्त्त, वैक्रियपुद्गल-परिवर्त्त यावत् आन-प्राणपुद्गल-परिवर्त्त ।

१७. एव जाव वेमाणियाण ।

[१७] इसी प्रकार (असुरकुमार से लेकर) यावत् वैमानिक (दण्डक) तक कहना चाहिए ।

विवेचन—पुद्गलपरिवर्त्त : क्या, कैसे और कितने प्रकार के ?—पुद्गल द्रव्यो के साथ परमाणुओ का मिलन पुद्गल-परिवर्त्त है। ये पुद्गल-परिवर्त्त सघात (सयोग) और भेद (विभाग) के योग से अनन्तानन्त होते है। अनन्त को अनन्त से गुणा करने पर जितने होते है, वे अनन्तानन्त कहलाते है। एक ही परमाणु अनन्ताणुकान्त द्व्यणुकादि द्रव्यो के साथ सयुक्त होने पर अनन्त-परिवर्त्तो को प्राप्त करता है। प्रत्येक परमाणु रूप द्रव्य मे परिवर्त्त होता है और परमाणु अनन्त है। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु मे अनन्त परिवर्त्त होते है। इसलिए परमाणु-पुद्गल-परिवर्त्त अनन्तानन्त

हो जाते है। साथ ही, ये पुद्गल-परिवर्त्त कैमे होते है? यह भी भलीभाँति जानना चाहिए। यहाँ मूलपाठ मे बताया गया है कि पुद्गल द्रव्यो के साथ परमाणुओ के संघात (सहनन-सयोग) और भेद (वियोग-विभाग) के अनुपात—योग से पुद्गल-परिवर्त्त होते हैं।

सामान्यतया पुद्गलपरिवर्त्तो के ७ प्रकार हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण, मन, वचन और आन-प्राण पुद्गल परावर्त्त। **औदारिक पुद्गल परिवर्त्त**—औदारिक शरीर मे विद्यमान जीव के द्वारा जब लोकवर्ती औदारिकशरीरयोग्य द्रव्यो का औदारिक शरीर के रूप मे समग्रतया ग्रहण किया जाता है, तब उसे औदारिकपुद्गलपरिवर्त कहते है। इसी प्रकार वैक्रियपुद्गलपरिवर्त्त आदि का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। आशय यह है कि पूर्वोक्त पुद्गलपरिवर्त्त औदारिक आदि सात माध्यमो से होता है।[1]

नैरयिक पुद्गलपरिवर्त्त—अनादिकाल से ससार मे परिभ्रमण करते हुए नैरयिक जीवो के सात प्रकार के पुद्गलपरिवर्त्त कहे गए हैं।[2]

कठिनशब्दार्थ—साहणणा—सहनन अर्थात्-सघात, सयोग। **भेद**—वियोग या विभाग। **समणुगतव्वा भवतीतिमक्खाया**—सम्यक् प्रकार से जानने योग्य है, या जानने चाहिए, इस हेतु से भगवान् द्वारा कहे गये है। **आण-पाणु**—आन-प्राण-श्वासोच्छवास।[3]

एकत्व-बहुत्व दृष्टि से चौवीस दण्डको मे औदारिकादि सप्तपुद्गल-परिवर्त्त-प्ररूपणा

१८. [१] एगमेगस्स णं भंते! जीवस्स केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता?

अणता।

[१८-१ प्र] भगवन्! एक-एक (प्रत्येक) जीव के अतीत औदारिक पुद्गलपरिवर्त्त कितने हुए है?

[१८-१ उ] गौतम! वे अनन्त हुए हैं।

[२] केवइया पुरेक्खडा?

कस्सति अत्थि, कस्सति णत्थि। जस्सऽत्थि जहण्णेण एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा।

[१८-२ प्र] (भगवन्! प्रत्येक जीव के) भविष्यत्कालीन पुद्गलपरिवर्त्त कितने होगे?

[१८-२ उ] गौतम! (भविष्यत्काल मे) किसी के (पुद्गलपरिवर्त्त) होगे और किसी के नही होगे। जिसके होगे, उसके जघन्य एक, दो, तीन होगे तथा उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात या अनन्त होगे।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६८
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०३६

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६८

३ (क) वही, अ वृत्ति, पत्र ५६८
(ख) 'आणपाणु' शब्द के लिए 'पाइयसद्दमहण्णवो' पृ ११०

१९. एव सत्त दंडगा जाव आणपाणु त्ति ।

[१९] इसी प्रकार (वैक्रिय-पुद्गल-परिवर्त्त से लेकर) यावत्—आन-प्राण, (श्वासोच्छ्वास पुद्गल-परिवर्त्त तक) सात आलापक (दण्डक) कहने चाहिए ।

२०. [१] एगमेगस्स ण भते ! नेरइयस्स केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीया ?
अणंता ।

[२०-१ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक के अतीत औदारिक पुद्गलपरिवर्त्त कितने है ?

[२०-१ उ] गौतम ! (वे) अनन्त है ।

[२] केवतिया पुरेक्खडा ?

कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि । जस्सऽत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा ।

[१९-२ प्र] भगवन् (प्रत्येक नैरयिक के) भविष्यत्कालीन (पुद्गलपरिवर्त्त) कितने होगे ?

[२०-१ उ] गौतम ! (भविष्यत्कालिक पुद्गल-परिवर्त्तन) किसी (नैरयिक) के होगे, किसी के नही होगे । जिस (नैरयिक) के होगे, उसके जघन्य एक, दो (या) तीन होगे और उत्कृष्ट सख्यात, असंख्यात या अनन्त होगे ।

२१. एगमेगस्स ण भते ! असुरकुमारस्स केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा० ?
एव चेव ।

[२१ प्र] भगवन् ! प्रत्येक असुरकुमार के अतीतकालिक कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए है ?

[२१ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्वोक्तवत्) जानना चाहिए ।

२२. एव जाव वेमाणियस्स ।

[२२] इसी प्रकार (नागकुमार से लेकर) यावत् वैमानिक (के अतीत पुद्गलपरिवर्त्त) तक (पूर्ववत् कथन करना चाहिए ।)

२३. [१] एगमेगस्स ण भते ! नेरइयस्स केवतिया वेउव्वियपुग्गलपरियट्टा अतीया ?
अणता ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नारक के भूतकालीन वैक्रिय-पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए है ?

[२३-२ उ] गौतम ! (वे भी) अनन्त हुए हैं ।

[२] एव जहेव ओरालियपोग्गलपरियट्टा तहेव वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा वि भाणियव्वा ।

[२३-२] जिस प्रकार औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त के विषय मे कहा, उसी प्रकार वैक्रिय-पुद्गल-परिवर्त्त के विषय मे कहना चाहिए ।

२४. एवं जाव वेमाणियस्स आणापाणुपोग्गपरियट्टा । एए एगत्तिया सत्त दंडगा भवंति ।

[२४] इसी प्रकार (प्रत्येक नैरयिक से लकर) यावत् प्रत्येक वैमानिक (तक) के (अतीत-कालिक तैजसपुद्गलपरिवर्त्त से लेकर) आनाप्राण—श्वासोच्छ्वास पुद्गलपरिवर्त्त तक (की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।) इस प्रकार प्रत्येक नैरयिक से वैमानिक तक प्रत्येक जीव की अपेक्षा से ये सात दण्डक होते है ।

२५. [१] नेरइयाणं भंते ! केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता ?

अणंता ।

[२५-१ प्र] भगवन् ! (समुच्चय) नैरयिको के अतीतकालीन औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए हैं ?

[२५-१ उ] गौतम ! (वे) अनन्त हुए हैं ।

[२] केवतिया पुरेक्खडा ?

अणता ।

[२५-२ प्र] भगवन् ! (समुच्चय) नैरयिक जीवो के भविष्यत्कालीन पुद्गलपरिवर्त्त कितने होगे ?

[२५-२ उ] गौतम ! (वे भी) अनन्त होगे ।

२६. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[२६] इसी प्रकार (समुच्चय असुरकुमारो से लेकर) यावत् (समुच्चय) वैमानिको तक (के अतीतकालीन एव भविष्यत्कालीन पुद्गलपरिवर्त्त) के विषय मे (कथन करना चाहिए ।)

२७. एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा वि । एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टा वेमाणियाणं । एव एए पोहत्तिया सत्त चउवीसतिदंडगा ।

[२७] इसी प्रकार (समुच्चय नैरयिको से ले कर समुच्चय वैमानिको तक के) वैक्रियपुद्गल-परिवर्त्त के विषय मे कहना चाहिए । इसी प्रकार (तैजसपुद्गल-परिवर्त्त से लेकर) यावत् आन-प्राणपुद्गलपरिवर्त्त तक की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

इस प्रकार पृथक्-पृथक् सातो पुद्गलपरिवर्त्तों के विषय मे सात आलापक तथा समुच्चय रूप से चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के विषय मे चौवीस आलापक कहने चाहिए ।

विवेचन—औदारिक पुद्गलपरिवर्त्त के सम्बन्ध मे प्ररूपणा—प्रस्तुत १० सूत्रो (सू १८ से २७ तक) मे जीवो के सप्तविधपुद्गल परिवर्त्त के सम्बन्ध मे चर्चा की गई है ।

तीन पहलुओ से पुद्गलपरिवर्त्त की चर्चा—प्रस्तुत मे तीन पहलुओ से पुद्गलपरिवर्त्तसम्बन्धी प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत की गई है—(१) प्रत्येक जीव की दृष्टि से, प्रत्येक नैरयिक आदि से वैमानिक जीव तक की दृष्टि से और समुच्चय नैरयिको से वैमानिको तक की दृष्टि से, (२) अतीतकालीन एव अनागतकालीन, (३) औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त से लेकर आनप्राण-पुद्गलपरिवर्त्त तक ।[1]

१ विपाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ५८२, ५८३

अतीत पुद्गलपरिवर्त्त अनन्त कैसे ?—प्रत्येक जीव या प्रत्येक नैरयिकादि जीव के अतीत-कालसम्बन्धी औदारिक आदि पुद्गलपरिवर्त्त अनन्त हैं, क्योकि अतीतकाल अनादि है और जीव भी अनादि हैं तथा भिन्न-भिन्न पुद्गलो का ग्रहण करने का उनका स्वभाव भी अनादि है।[1]

अनागतपुद्गलपरिवर्त्त—भविष्यत्कालिक पुद्गलपरिवर्त्त दूरभव्य या अभव्य जीव के तो होते ही रहेंगे, किन्तु जो जीव नरकादिगति से निकल कर मनुष्य भव पा कर सिद्धि प्राप्त कर लेगा, अथवा जो संख्यात या असख्यात भवो मे सिद्धि को प्राप्त करेगा, उसके पुद्गलपरिवर्त्त नही होगा। जिसका ससारपरिभ्रमण अधिक होगा, वह एक या अनेक पुद्गलपरिवर्त्त करेगा, परन्तु वह एक पुद्गलपरिवर्त्त भी अनेक काल मे पूरा होगा।[2]

कठिनशब्दार्थ—**एगमेगस्स जीवस्स**—प्रत्येक जीव के। **पुरेक्खडा**—पुरस्कृत-अनागत-भविष्य-त्कालीन। **एकत्तिया**—एक जीवसम्बन्धी या एक वचन सम्बन्धी। **पुहुत्तिया**—बहुवचनसम्बन्धी।[3]

एकत्व और बहुत्वसम्बन्धी दण्डक—एकवचन-सम्बन्धी औदारिकादि सात प्रकार के पुद्गल-परिवर्त्त होने मे, सात दण्डक (विकल्प) होते है। इन सात दण्डको को नैरयिकादि चौवीस दण्डको मे कहना चाहिए और इसी प्रकार बहुवचन से भी कहना चाहिए। एकवचन और बहुवचन सम्बन्धी दण्डको मे अन्तर यह है कि एकवचनसम्बन्धी दण्डको मे भविष्यत्कालीन पुद्गलपरिवर्त्त किसी जीव के होते हैं और किसी जीव के नही होते। बहुवचनसम्बन्धी दण्डको मे तो होते ही हैं, क्योकि उनमे जीवसामान्य का ग्रहण है।[4]

एकत्व दृष्टि से चौवीस दण्डको मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवत्व के रूप में अतीतादि सप्तविध पुद्गलपरिवर्त्त-प्ररूपणा—

२८. [१] एगमेगस्स ण भते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीया ?

नत्थि एक्को वि।

[२८-१ प्र.] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के, नैरयिक अवस्था मे अतीत (भूतकालीन) औदारिक पुद्गल परिवर्त्त कितने हुए है ?

[२८-१ उ] गौतम ! एक भी नही हुआ।

[२] केवतिया पुरेक्खडा ?

नत्थि एक्को वि।

[२८-२ प्र] भगवन् ! भविष्यत्कालीन (औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त) कितने होगे ?

[२८-२ उ] गौतम ! एक भी नही होगा।

---

१ भगवती, अ वृत्ति, पत्राक ५६८

२ वही, पत्र ५६८

३ वही, पत्र ५६८

४ वही, पत्र ५६८

२९. [१] एगमेगस्स ण भते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवतिया ओरालियपोग्गल-परियट्टा० ?

एवं चेव ।

[२९-१ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के, असुरकुमाररूप मे अतीत औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए हैं ?

[२९-१ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववक्तव्यतानुसार) जानना चाहिए ।

[१] एवं जाव थणियकुमारत्ते ।

[२९-२] इसी प्रकार (नागकुमार से लेकर) यावत्—स्तनितकुमार (तक कहना चाहिए ।)

३०. [१] एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स पुढविकाइयत्ते केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीया ?

अणता ।

[३०-१ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के, पृथ्वीकाय के रूप मे अतीत मे औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए ?

[३०-१ उ] गौतम वे अनन्त हुए है ।

[२] केवतिया पुरेक्खडा ?

कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि । जस्सऽत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ।

[३०-२ प्र] भगवन् ! भविष्य मे कितने होगे ?

[३०-२ उ] किसी के होगे, और किसी के नही होगे । जिसके होगे, उसके जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होगे ।

३१. एवं जाव मणुस्सत्ते ।

[३१] इसी प्रकार (अप्कायत्व से लेकर) यावत् मनुष्य भव तक कहना चाहिए ।

३२. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणियत्ते जहा असुरकुमारत्ते ।

[३२] जिस प्रकार असुरकुमारपन के विषय मे कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तरपन, ज्योतिष्कपन तथा वैमानिकपन के विषय मे कहना चाहिए ।

३३. एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स नेरइयत्ते केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीया ?

एवं जहा नेरइयस्स वत्तव्वया भणिया तहा असुरकुमारस्स वि भाणितव्वा जाव वेमाणियत्ते ।

[३३ प्र] भगवन् ! प्रत्येक असुरकुमार के नैरयिक भव मे अतीत औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए है ?

[३३ उ] गौतम ! जिस प्रकार (प्रत्येक) नैरयिक जीव की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार (प्रत्येक) असुरकुमार के विषय मे यावत् वैमानिक भव-पर्यन्त कहना चाहिए।

३४ एव जाव थणियकुमारस्स। एव पुढविकाइयस्स वि। एव जाव वेमाणियस्स। सव्वेसि एक्को गमो।

[३४] इसी प्रकार (प्रत्येक असुरकुमार के समान) यावत्—(नागकुमार से लेकर प्रत्येक) स्तनितकुमार तक कहना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक पृथ्वीकाय के विषय मे भी (पृथ्वीकाय से लेकर) यावत्—(प्रत्येक) वैमानिक पर्यन्त सबका एक (समान) आलापक (गम) कहना चाहिए।

३५ [१] एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवतिया वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा अतीया?

अणता।

[३५-१ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के नैरयिक भव मे अतीतकालीन वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए हैं ?

[३५-१ उ] गौतम ! (ऐसे वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त) अनन्त हुए है।

[२] केवतिया पुरेक्खडा?

एक्कुत्तरिया जाव अणता वा।

[३५-२ प्र] भगवन् ! भविष्यकालीन (वैक्रिय-पुद्गल-परिवर्त्त) कितने होगे ?

[३५-२ उ] गौतम ! (किसी के होगे और किसी के नही होगे। जिनके होगे) (उनके) एक से लेकर (१, २, ३) उत्तरोत्तर उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात अथवा यावत् अनन्त होगे।

३६. एव जाव थणियकुमारत्ते।

[३६] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार भव तक कहना चाहिए।

३७. [१] पुढविकाइयत्ते पुच्छा। नत्थि एक्को वि।

[३७-१ प्र] (भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के) पृथ्वीकायिक भव मे (अतीत मे वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त) कितने हुए ?

[३७-१ उ] (गौतम !) एक भी नही हुआ।

[१] केवतिया पुरेक्खडा? नत्थि एक्को वि।

[३७-२ प्र] (भगवन् !) भविष्यत्काल मे (ये) कितने होगे ?

[३७-२ उ] गौतम ! एक भी नही होगा।

३८. एवं जत्थ वेउव्वियसरीर तत्थ एगुत्तरिओ, जत्थ नत्थि तत्थ जहा पुढविकाइयत्ते तहा भाणियव्वं जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

[३८] इस प्रकार जहाँ वैक्रियशरीर है, वहाँ एक से लेकर उत्तरोत्तर (अनन्त तक), (वैक्रिय-पुद्गलपरिवर्त्त जानना चाहिए।) जहाँ वैक्रियशरीर नही है, वहाँ (प्रत्येक नैरयिक के) पृथ्वीकायभव मे (वैक्रियपुद्गल परिवर्त्त के विषय मे) कहा, उसी प्रकार, यावत् (प्रत्येक) वैमानिक जीव के वैमानिक भव पर्यन्त कहना चाहिए।

३९. तेयापोग्गलपरियट्टा कम्मापोग्गलपरियट्टा य सव्वत्थ एक्कुत्तरिया भाणितव्वा। मणपोग्गलपरियट्टा सव्वेसु पंचेंदिएसु एगुत्तरिया। विगलिंदिएसु नत्थि। वइपोग्गलपरियट्टा एव चेव, नवरं एगिंदिएसु 'नत्थि' भाणियव्वा। आणापाणुपोग्गलपरियट्टा सव्वत्थ एकुत्तरिया जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

[३९] तैजस पुद्गल-परिवर्त्त और कार्मण-पुद्गल-परिवर्त्त सर्वत्र (चौवीस ही दण्डकवर्ती जीवो मे) एक से लेकर उत्तरोत्तर अनन्त तक कहने चाहिए। मन पुद्गल-परिवर्त्त समस्त पचेन्द्रिय जीवो मे एक से लेकर उत्तरोत्तर यावत् अनन्त तक कहने चाहिए। किन्तु विकलेन्द्रियो (द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय वाले जीवो) मे मनःपुद्गलपरिवर्त्त नही होता। इसी प्रकार (मन पुद्गलपरिवर्त्त के समान) वचन-पुद्गल-परिवर्त्त के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए। विशेष (अन्तर) इतना ही है कि वह (वचन-पुद्गल -परिवर्त्त) एकेन्द्रिय जीवो मे नही होता। आन-प्राण (श्वासोच्छवास) पुद्गल-परिवर्त्त भी सर्वत्र (सभी जीवो मे) एक से लेकर अनन्त तक जानना चाहिए। (ऐसा ही कथन) यावत् वैमानिक के वैमानिक भव तक कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत बारह सूत्रो (सू २८ से ३९ तक) मे प्रत्येक वर्त्तमानकालिक नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के अतीत-अनागत नैरयिकत्वादि रूप के सप्तविध पुद्गल-परिवर्त्तो की सख्या का निरूपण किया गया है।

वैक्रियपुद्गलपरिवर्त्त—एक-एक नैरयिक जीव के नैरयिक भव मे रहते हुए अनन्त वैक्रिय पुद्गलपरिवर्त्त अतीत मे हुए हैं, तथा भविष्यत्काल मे किसी के होगे, किसी के नही। जिसके होगे, उसके जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होगे।

इसके अतिरिक्त वायुकाय, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और व्यन्तरादि मे से जिन-जिन मे वैक्रिय शरोर है उन-उनके वैक्रिय पुद्गलपरिवर्त्त एकोत्तरिक (अर्थात् एक, दो, तीन सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त तक) कहना चाहिए। जहाँ अप्कायिक आदि प्रत्येक जीवो मे वैक्रियशरीर नही है, वहाँ वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त भी नही होता।[1]

तैजस-कार्मण-परिवर्त्त—तैजस और कार्मण ये दोनो शरीर समस्त ससारी जीवो के होते है। इसलिए नारकादि चौबीस दण्डकवर्ती सभी जीवो मे तैजस-कार्मण पुद्गलपरिवर्त्त अतीत और भविष्य-काल मे एक से लेकर उत्तरोत्तर अनन्त तक कहने चाहिए।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६९
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०४१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६९

मनःपुद्गलपरिवर्त्त कहाँ और कहाँ नहीं ?—मन सञ्ज्ञी पचेन्द्रियो के होता है, इसलिए पचेन्द्रिय जीवो मे एक से लेकर अनन्त तक मन पुद्गल परिवर्त्त होते है, हुए हैं, होगे। किन्तु जिनमे इन्द्रियो की परिपूर्णता नही है, उन विकलेन्द्रिय (एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के) जीवो मे मन का अभाव है, इसलिए उनमे मन पुद्गल-परिवर्तन नही होता। विकलेन्द्रिय शब्द से यहाँ एकेन्द्रिय का भी ग्रहण होता है।

वचनपुद्गलपरिवर्त्त—एकेन्द्रिय जीवो के वचन नही होता, इसलिए उन्हे छोड कर शेष समस्त ससारी जीवो के (द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, और देव) के वचनपुद्गलपरिवर्त पूर्ववत् होते हैं।[1]

आन-प्राण-पुद्गल परिवर्त—श्वासोच्छ्वास एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक सभी ससारी जीवो के होता है, इसलिए आनप्राणपुद्गलपरिवर्त्त सभी जीवो मे एक से लेकर अनन्त तक होता है।[2]

बहुत्व की अपेक्षा से नैरयिकादि जीवो के नैरयिकत्वादिरूप मे अतीत-अनागत सप्तविध पुद्गल-परिवर्त्त-निरूपण—

४०. [१] नेरइयाणं भते ! नेरइयत्ते केवतिया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीया ?

नत्थेक्को वि।

[४०-१ प्र] भगवन् ! अनेक नैरयिक जीवो के नैरयिक भव मे अतीतकालिक औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कितने हुए हैं ?

[४०-१ उ] गौतम ! एक भी नही हुआ।

[२] केवइया पुरेक्खडा ?

नत्थेक्को वि।

[४०-२ प्र] भगवन् ! (अनेक नैरयिक जीवो के नैरयिक भव मे) भविष्य मे कितने (औदारिकपुद्गलपरिवर्त्त) होगे ?

[४०-१ उ] गौतम ! भविष्य मे एक भी नही होगा।

४१. एवं जाव थणियकुमारत्ते।

[४१] इसी प्रकार (अनेक नैरयिक जीवो के असुरकुमार भव से लेकर) यावत् स्तनितकुमार भव तक (कहना चाहिए।)

४२. [१] पुढविकाइयत्ते पुच्छा ?

अणता।

[४२-१ प्र] भगवन् ! अनेक नैरयिक जीवो के पृथ्वीकायिकपन मे (अतीतकालिक औदारिक-पुद्गलपरिवर्त्त) कितने हुए है।

[४२-१ उ] गौतम ! अनन्त हुए है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६९

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ५८५

[२] केवतिया पुरेक्खडा ?

अणता ।

[४२-२ प्र.] भगवन् ! (अनेक नैरयिको के पृथ्वीकायिकपन मे) भविष्य मे (औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त) कितने होगे ?

[४२-२ उ] गौतम ! अनन्त होगे ।

४३. एवं जाव मणुस्सत्ते ।

[४३] जिस प्रकार अनेक नैरयिको के पृथ्वीकायिकपन मे अतीत-अनागत औदारिकपुद्गल-परिवर्त्त के विषय मे कहा है, उसी प्रकार यावत् मनुष्य भव तक कहना चाहिए ।

४४. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियत्ते जहा नेरइयत्ते ।

[४४] जिस प्रकार अनेक नैरयिको के नैरयिकभव मे अतीत-अनागत औदारिकपुद्गलपरिवर्त्त के विषय मे कहा है, उसी प्रकार उनके वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देव के भव मे भी कहना चाहिए ।

४५. एवं जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते ।

[४५] (अनेक नैरयिको के वैमानिक भव तक का औदारिकपुद्गलपरिवर्त्तविषयक कथन किया) उसी प्रकार यावत् अनेक वैमानिको के वैमानिक भव तक (कथन करना चाहिए) ।

४६. एवं सत्त वि पोग्गलपरियट्टा भाणियव्वा । जत्थ अत्थि तत्थ अतीता वि, पुरेक्खडा वि अणंता भाणियव्वा । जत्थ नत्थि तत्थ दो वि 'नत्थि' भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते केवतिया आणापाणुपोग्गलपरियट्टा अतीया ? अणंता । केवतिया पुरेक्खडा ? अणंता ।

[४६] जिस प्रकार औदारिकपुद्गलपरिवर्त्त के विषय मे कहा, उसी प्रकार शेष सातो पुद्गलपरिवर्त्तो का कथन कहना चाहिए । जहाँ जो पुद्गलपरिवर्त्त हो, वहाँ उसके अतीत (भूत-कालिक) और पुरस्कृत (भविष्यत्कालीन) पुद्गलपरिवर्त्त अनन्त-अनन्त कहने चाहिए । जहाँ नही' हो, वहाँ अतीत और पुरस्कृत (अनागत) दोनो नही कहने चाहिए । यावत्—(प्रश्न) 'भगवन् ! अनेक वैमानिको के वैमानिक भव मे कितने आन-प्राण-पुद्गलपरिवर्त्त (अतीत मे) हुए ? (उत्तर—) गौतम ! अनन्त हुए हैं । (प्रश्न-) 'भगवन् ! आगे (भविष्य मे) कितने होगे ? (उत्तर-) 'गौतम ! अनन्त होगे ।'—यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सात सूत्रो मे (सू ४० से ४६ तक) अनेक नैरयिको से लेकर अनेक वैमानिको (चौवीस दण्डको) तक के नैरयिकभव से लेकर वैमानिकभव तक मे अतीत-अनागत सप्त-विधपुद्गल-परिवर्त्तो की सख्या का निरूपण किया गया । पूर्वसूत्रो मे एकत्व की अपेक्षा से प्रतिपादन था, इन सूत्रो मे बहुत्व की अपेक्षा से कथन है । शेष सब का अतिदेशपूर्वक कथन किया गया है ।

कठिन शब्दार्थ—**एगुत्तरिया**—एक से लेकर उत्तरोत्तर सख्यात, असख्यात या अनन्त तक । **नेरइयत्ते**—नैरयिक के रूप मे अर्थात्-नारक के भव मे—नैरयिक पर्याय मे ।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६९, (ख) भगवती. (हिन्दी विवेचन) भा ४, पृ २०३८

४७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'ओरालियपोग्गलपरियट्टे, ओरालियपोग्गलपरियट्टे' ?
गोयमा ! ज णं जीवेण ओरालियसरीरे वट्टमाणेणं ओरालियसरीरपायोग्गाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए गहियाइं बद्धाइं पुट्ठाइं कडाइं पट्ठवियाइं निविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइ अभिसमन्नागयाइं परियाइयाइं परिणामियाइं निज्जिण्णाइं निसिरियाइं निसिट्ठाइं भवति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ 'ओरालियपोग्गलपरियट्टे, ओरालियपोग्गलपरियट्टे'।

[४७ प्र] भगवन् ! यह औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त, औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त किसलिए कहा जाता है ?

[४७ उ] गौतम ! औदारिक शरीर मे रहते हुए जीव ने औदारिक शरीर योग्य द्रव्यो को औदारिक शरीर के रूपमे ग्रहण किये है, वद्ध किये हैं (अर्थात्—जीव प्रदेशो के साथ एकमेक किये है,) (शरीर पर रेणु के समान) स्पृष्ट किये है, (अथवा अपर-अपर ग्रहण करके उन्हे) पोषित किये हैं, उन्हे (पूर्वपरिणामापेक्षया परिणामान्तर) किया है, उन्हे प्रस्थापित (स्थिर) किया है, (स्वय जीव ने) निविष्ट (स्थापित) किये हैं, अभिनिविष्ट (जीव के साथ सर्वथा सलग्न) किये है, अभिसमन्वागत (जीव ने रसानुभूति का आश्रय लेकर सबको समाप्त) किया है। (जीव ने रसग्रहण द्वारा सभी अवयवो से उन्हे) पर्याप्त कर लिये है। परिणामित (रसानुभूति से ही परिणामान्तर प्राप्त) कराये है, निर्जीर्ण (क्षीण रस वाले) किये हैं (जीव प्रदेशो से उन्हे) नि सृत (पृथक्) किये हैं, (जीव के द्वारा) नि सृष्ट (अपने प्रदेशो से परित्यक्त) किये है।

हे गौतम ! इसी कारण से औदारिकपुद्गलपरिवर्त्त औदारिकपुद्गलपरिवर्त्त कहलाता है।

४८. एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे वि, नवर वेउव्वियसरीरे वट्टमाणेणं वेउव्वियसरीर-पायोग्गाइं दव्वाइं वेउव्वियसरीरत्ताए०। सेस त चेव सव्व।

[४८] इसी प्रकार (पूर्वोक्तवत्) वैक्रियपुद्गल-परिवत्त के विषय मे भी कहना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि जीव ने वैक्रिय शरीर मे रहते हुए वैक्रिय शरीर योग्य द्रव्यो को वैक्रिय शरीर के रूप मे ग्रहण किये है, इत्यादि शेष सव कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

४९. एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टे, नवर आणापाणुपायोग्गाइ सव्वदव्वाइ आणा-पाणुत्ताए०। सेसं तं चेव।

[४९] इसी प्रकार (तैजस, कार्मण से लेकर) यावत् आन-प्राण, दुगल-परिवर्त्त तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि आन-प्राण-योग्य समस्त द्रव्यो का आन-प्राण रूप से जीव ने ग्रहण किये हैं, इत्यादि (सव कथन करना चाहिए। शेष सव कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (४७) मे औदारिक पुद्गल परिवर्त्त कहलाने के १३ कारणो पर प्रकाश डालते हुए १३ प्रक्रियाएँ वताई गई है—(१) गृहीत, (२) वद्ध, (३) स्पृष्ट या पुष्ट, (४) कृत, (५) प्रस्थापित, (६) निविष्ट, (७)अभिनिविष्ट, (८) अभिसमन्वागत, (९) पर्याप्त, (१०) परिणामित, (११) निर्जीर्ण (१२) निःसृत और (१३) नि सृष्ट। इन तेरह प्रक्रियाओ मे से औदारिक शरीर योग्य द्रव्यो के गुजरने के कारण ही वह औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कहलाता है।

इन सब का भावार्थ कोष्ठक मे दे दिया है। इनमे से प्रथम (गहियाइ बद्धाइ आदि) चार क्रियापद औदारिक पुद्गलो के ग्रहणविषयक हैं, तदनन्तर पांच क्रियापद (पट्ठवियाइ आदि) स्थितिविषयक हैं। इनसे आगे के 'परिणामियाइ' आदि चार पद औदारिक पुद्गलो को आत्मप्रदेशो से पृथक् करने के विषय मे हैं।

औदारिकपुद्गल परिवर्त्त के समान ही अन्य सभी पुद्गलपरिवर्त्तो की प्रक्रियाएँ हैं, वहाँ केवल 'नाम' बदल जाता है, शेष सब कथन समान है।[1]

सप्तविध पुद्गलपरिवर्तों का निर्वर्त्तनाकालनिरूपण

५०. ओरालियपोग्गलपरियट्टे णं भंते! केवतिकालस्स निव्वत्तिज्जति?

गोयमा! अणंताहिं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं, एवतिकालस्स निव्वत्तिज्जइ।

[५० प्र] भगवन्! औदारिक-पुद्गल-परिवर्त्त कितने काल मे निर्वर्त्तित-निष्पन्न होता है?

[५० उ] गौतम! (औदारिक-पुद्गल-परिवर्त्त) अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकाल मे निष्पन्न होता है।

५१. एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे वि।

[५१] इसी प्रकार (पूर्ववत्) वैक्रिय-पुद्गल-परिवर्त्त का निष्पत्तिकाल जानना चाहिए।

५२. एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टे।

[५२] इसी प्रकार (औदारिकपुद्गलपरिवर्त्त-निष्पत्तिकाल के समान ही शेष पाँच पुद्गल-परिवर्त्त) यावत् आन-प्राण-पुद्गल परिवर्त्त (का निष्पत्तिकाल जानना जाहिए।)

विवेचन—सप्तविध पुद्गल-परिवर्त्त निष्पत्तिकाल इतना क्यो? औदारिक आदि सातों ही पुद्गलपरिवर्त्तो मे से प्रत्येक पुद्गलपरिवर्त्त अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल मे निष्पन्न होता है, उसका कारण यह है कि पुद्गल अनन्त हैं और उनका ग्राहक एक ही जीव होता है। तथा किसी भी पुद्गलपरिवर्त्त मे पूर्वगृहीत पुद्गलो की गणना नही की जाती।[2]

निव्वत्तिज्जइ : अर्थ—निर्वर्तित-निष्पन्न-परिपूर्ण होता है।[3]

सप्तविध पुद्गल-परिवर्तों के निष्पत्तिकाल का अल्प-बहुत्व

५३. एतस्स णं भंते! ओरालियपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकालस्स, वेउव्वियपोग्गलपरियट्ट-निव्वत्तणाकालस्स, जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकालस्स य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५६९-५७०

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा-४, पृ २०४२

(ग) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ५८६

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७०

३. भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ४, पृ २०४३

गोयमा ! सव्वत्थोवे कम्मगपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले, तेयापोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, ओरालियपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, आणापाणुपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणतगुणे, मणपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, वइपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, वेउव्वियपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणतगुणे ।

[५३ प्र] भगवन् ! औदारिकपुद्गल-परिवर्त्त-निर्वर्त्तना (निष्पत्ति) काल, वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त-निर्वर्त्तनाकाल यावत् आन-प्राण-पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्त्तनाकाल, इन (सातो) मे से कौन सा (निष्पत्ति-) काल, किस काल से अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[५३ उ] गौतम ! सबसे थोडा कार्मण-पुद्गल-परिवर्त्त का निर्वर्त्तना (-निष्पत्ति) काल है । उसमे तैजसपुद्गल-परिवर्त्त-निर्वर्त्तनाकाल अनन्तगुणा (अधिक) है । उससे औदारिक-पुद्गलपरिवर्त्त-निर्वर्त्तना-काल अनन्तगुणा है, और उससे आन-प्राण-पुद्गलपरिवर्त्त-निर्वर्त्तनाकाल अनन्तगुणा है । उससे मन पुद्गल-परिवर्त्त-निर्वर्त्तनाकाल अनन्तगुणा है तथा उससे मन पुद्गलपरिवर्त्त-निर्वर्त्तना काल अनन्तगुणा है, उससे वचन-पुद्गल-परिवर्त्त-निर्वर्त्तना-काल अनन्तगुणा है और (इन सबसे) वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त का निर्वर्त्तनाकाल अनन्तगुणा है ।

विवेचन—सप्तविध पुद्गलपरिवर्त्त-निष्पत्तिकाल मे अन्तर का कारण—कार्मणपुद्गल परिवर्त्त-निष्पत्तिकाल सबसे थोडा इसलिए है कि कार्मण पुद्गल सूक्ष्म होते है और बहुत-से परमाणुओ से निष्पन्न होते है । इसलिए वे एक ही बार मे बहुत-से ग्रहण किये जाते है । तथा नारक आदि सभी गतियो मे वर्त्तमान जीव प्रतिसमय उन्हे ग्रहण करता रहता है । इसलिए स्वल्प-काल मे ही उन सभी पुद्गलो का ग्रहण हो जाता है । उससे तैजसपुद्गल परिवर्त्त-निष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है, क्योकि तैजस पुद्गल स्थूल होने के कारण एक बार मे अल्प पुद्गलो का ग्रहण होता है । अल्पप्रदेशो से निष्पन्न होने के कारण उनके अल्प अणुओ का ग्रहण होता है । इसलिए कार्मण से तैजस पुद्गल-परिवर्त्त-निष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है । उससे औदारिक पुद्गलपरिवर्त्तनिष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है, क्योकि औदारिकपुद्गल अत्यन्त स्थूल होते हैं । इसलिए उनमे से एक बार मे अल्प का ही ग्रहण होता है । और फिर उनके प्रदेश भी अल्पतर है । अत उनके ग्रहण करने मे, एक समय मे अल्प अणु ही गृहीत होते है । तथा वे कार्मण और तैजस पुद्गलो की तरह सर्व-ससारी जीवो द्वारा निरन्तर गृहीत नही होते, किन्तु केवल औदारिक शरीरधारियो द्वारा ही उनका ग्रहण होता है । इसलिए बहुत लम्बे काल मे उनका ग्रहण होता है । उससे आन-प्राण-पुद्गल परिवर्त्त-निष्पतिकाल अनन्तगुणा है । यद्यपि औदारिक पुद्गलो से आन-प्राणपुद्गल सूक्ष्म और बहु-प्रदेशी होते है, इसलिए उनका ग्रहण अल्पकाल मे हो सकता है, तथापि अपर्याप्त-अवस्था मे उनका ग्रहण न होने से तथा पर्याप्त-अवस्था मे भी औदारिकशरीर-पुद्गलो की अपेक्षा अल्प-परिमाण मे उनका ग्रहण होने से, उनका शीघ्र ग्रहण नही होता । इसलिए औदारिकपुद्गल-परिवर्त्त-निष्पत्तिकाल से आन-प्राण-पुद्गल-परिवर्त्त -निष्पत्ति-काल अनन्तगुणा है । उससे मन पुद्गलपरिवर्त्त-निष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है । यद्यपि आनप्राणपुद्गलो की अपेक्षा मन पुद्गल सूक्ष्म और बहुप्रदेशी होते है, इस कारण अल्पकाल मे ही उनका ग्रहण सम्भव है, तथापि एकेन्द्रियादि की कायस्थिति बहुत दीर्घ-कालीन है । उनमे चले जाने पर मन की प्राप्ति चिरकाल के बाद होती है, इसलिए मन पुद्गल-

परिवर्त्त दीर्घकाल-साध्य होने से मन पुद्गलपरिवर्त्त-निष्पत्तिकाल उससे अनन्तगुणा कहा गया है। उससे वचनपुद्गलपरिवर्त्त निष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है। यद्यपि मन की अपेक्षा वचन शीघ्र प्राप्त होता है। तथा द्वीन्द्रियादि-अवस्था मे भी वचन होता है। तथापि मनोद्रव्यो की अपेक्षा भाषाद्रव्य अत्यन्त-स्थल होते है, इसलिए एक बार मे उनका अल्पपरिमाण मे ही ग्रहण होता है। अत मन पुद्गल-परिवर्त्त-निष्पत्तिकाल से वाक्-पुद्गल-परिवर्त्त-निष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है। इससे वैक्रियपुद्गल-परिवर्त्तनिष्पत्तिकाल अनन्तगुणा है, क्योकि वैक्रिय शरीर वहुत दीर्घकाल मे प्राप्त होता है।[1]

सप्तविध पुद्गलपरिवर्तो का अल्पबहुत्व

५४. एएसि ण भते ! ओरालियपोग्गलपरियट्टाणं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा, वइपोग्गलपरियट्टा अणतगुणा, मणपोग्गल-परियट्टा अणंतगुणा, आणापाणुपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा, ओरालियपोग्गलपरियट्टा अणतगुणा, तेयापोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा, कम्मगपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा।

सेवं भते ! सेव भंते ! त्ति भगव जाव विहरइ।

॥ बारसमे सए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥ १२-४ ॥

[५४ प्र] भगवन् ! औदारिक पुद्गलपरिवर्त्त (से लेकर), यावत् आन-प्राणपुद्गल-परिवर्त्त मे कौन पुद्गलपरिवर्त्त किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[५४ उ] गौतम ! सबसे थोडे वैक्रिय-पुद्गलपरिवर्त्त है। उनसे वचन-पुद्गल-परिवर्त्त अनन्त-गुणे होते है, उनसे मन पुद्गल-परिवर्त्त अनन्तगुणे है, उनसे आनप्राण-पुद्गलपरिवर्त्त अनन्तगुणे है। उनसे औदारिकपुद्गल-परिवर्त्त अनन्तगुणे है, उनसे तैजस पुद्गलपरिवर्त्त अनन्तगुणे है और उनसे भी कार्मणपुद्गल परिवर्त्त अनन्तगुणे है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर भगवान् गौतम-स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—पुद्गल-परिवर्त्तो के अल्पबहुत्व का कारण—इन सप्तविध पुद्गल-परिवर्त्तो मे सबसे थोडे वैक्रियपुद्गल परिवर्त्त हैं, क्योकि वे बहुत दीर्घकाल मे निष्पन्न होते है। उनसे वचन-पुद्गल-परिवर्त्त अनन्तगुणे है, क्योकि वे अल्पतर काल मे ही निष्पन्न होते है।

इसी प्रकार पूर्वोक्त युक्ति से बहुत, बहुतर आदि क्रम से आगे-आगे के पुद्गलपरिवर्त्तो का अल्पबहुत्व कह देना चाहिये।[2]

॥ बारहवाँ शतक चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७०

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७०

पंचमो उद्देसओ : अतिवात

पंचम उद्देशक : अतिपात

प्राणातिपात आदि अठारह पापस्थानों में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-प्ररूपणा

१. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२. अह भंते ! पाणातिवाए मुसावाए अदिन्नादाणे मेहुणे परिग्गहे, एस णं कतिवण्णे कतिगंधे कतिरसे कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचवण्णे दुगंधे पंचरसे चउफासे पन्नत्ते ।

[२ प्र] भगवन् ! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह, ये (सव) कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले कहे हैं ?

[२ उ] गौतम ! (ये) पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और चार स्पर्श वाले कहे है ।

३. अह भंते ! कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भडणे विवादे, एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचवण्णे पचरसे दुगंधे चउफासे पन्नत्ते ।

[३ प्र] भगवन् ! क्रोध, कोप, रोष, दोष (द्वेष), अक्षमा सज्वलन, कलह, चाण्डिक्य, भण्डन और विवाद—ये (सभी) कितने वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श वाले कहे है ?

[३ उ] गौतम ! ये (सव) पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श वाले कहे हैं ।

४. अह भंते ! माणे मदे दप्पे थंभे गव्वे अत्तुक्कोसे परपरिवाए उक्कासे अवक्कासे उन्नए उन्नामे दुन्नामे, एस णं कतिवण्णे कतिगंधे कतिरसे कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचवण्णे जहा कोहे तहेव ।

[४ प्र] भगवन् ! मान, मद, दर्प, स्तम्भ, गर्व, अत्युत्क्रोश, परपरिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत, उन्नाम और दुर्नाम—ये (सव) कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले कहे हैं ?

[४ उ] गौतम ! ये (सव) पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस एव चार स्पर्श वाले (पूर्ववत्) कहे हैं ।

५. अह भंते ! माया उवही नियडी वलये गहणे णूमे कक्के कुरूए जिम्हे किब्बिसे आयरणता गूहणया वंचणया पलिउचणया सातिजोगे, एस णं कतिवण्णे कतिगंधे कतिरसे कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचवण्णे जहेव कोहे ।

[५ प्र.] भगवन् ! माया, उपधि, निकृति, वलय, गहन, नूम, कल्क, कुरूपा, जिह्मता, किल्विष, आदरण (आचरणता), गूहनता, वञ्चनता, प्रतिकुञ्चनता, और सातियोग—इन (सब) मे कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ?

[५ उ] गौतम ! ये सब क्रोध के समान पाच वर्ण आदि वाले हैं ।

६. अह भंते ! लोभे इच्छा मुच्छा कखा गेही तण्हा भिज्झा अभिज्झा आसासणता पत्थणता लालप्पणता कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा नदिरागे, एस णं कतिवण्णे ?

जहेव कोहे ।

[६ प्र] भगवन् ! लोभ, इच्छा, मूर्च्छा, काँक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, आशंसनता, प्रार्थनता, लालपनता, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा और नन्दिराग,—ये (सब) कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले कहे हैं ?

[६ उ] गौतम ! (इन सभी का कथन) क्रोध के समान (जानना चाहिए ।)

७. अह भंते ! पेज्जे दोसे कलहे जाव[1] मिच्छादंसणसल्ले, एस ण कतिवण्णे० ?

जहेव कोहे तहेव जाव चउफासे ।

[७ प्र] भगवन् ! प्रेम-राग, द्वेष, कलह, (से लेकर) यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य, इन (सब पापस्थानो) मे कितने वर्ण आदि है ?

[७ उ] (गौतम !) जिस प्रकार क्रोध के लिए कथन किया था उसी प्रकार इनमे भी, यावत् चार स्पर्श है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—अठारह पापस्थानो में वर्णादि—प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (१ से ७ तक) मे प्राणातिपात से ले कर मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पापस्थानो मे वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श की प्ररूपणा की गई है ।

प्राणातिपात आदि की व्याख्या—प्राणातिपात—जीव हिंसा से जनित कर्म अथवा जीवहिंसा का जनक चारित्रमोहनीय कर्म भी उपचार से प्राणातिपात कहलाता है । **मृषावाद**—क्रोध, लोभ भय और हास्य के वश असत्य, अप्रिय, अहितकर विघातक वचन कहना । **अदत्तादान**—स्वामी की अनुमति, इच्छा या सम्मति के बिना कुछ भी लेना अदत्तादान (चौर्य) है । विषयवासना से प्रेरित स्त्री-पुरुष के सयोग को **मैथुन** कहते है । धन, काचन, मकान आदि बाह्य परिग्रह है और ममता-मूर्च्छा आदि आभ्यन्तर परिग्रह । ये पाचो पाप पुद्गल रूप है, इसलिए इनमे पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस, और चार स्पर्श, (स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण) होते है ।

क्रोध और उसके पर्यायवाची शब्दों के विशेषार्थ—क्रोध रूप परिणाम को उत्पन्न करने वाले कर्म को **क्रोध** कहते है । यहाँ क्रोध एक सामान्य नाम है, उसके दस पर्यायवाची शब्द हैं । उनके विशेषार्थ इस प्रकार हैं—(२) **कोप**—क्रोध के उदय से अपने स्वभाव से चलित होना । (३) **रोष**—क्रोध की परम्परा । (४) **दोष**—अपने आपको और दूसरो को दोष देना, अथवा द्वेष—अप्रीति

---

१ 'जाव पद' यहाँ 'अब्भक्खाणे पेसुन्ने अरइरई परपरिवाए मायामोसे' आदि पदो का सूचक है ।

करना (५) अक्षमा—दूसरे के द्वारा किए हुए अपराध को सहन नही करना। (६) सज्वलन—वार वार क्रोध से प्रज्वलित होना। (७) कलह—वाक्-युद्ध करना, परस्पर अनुचित शब्द बोलना। (८) चाण्डिक्य—रौद्ररूपधारण करना। (९) भण्डन—दण्ड आदि से परस्पर लडाई करना। (१०) विवाद—परस्पर विरोधी वात कहकर झगडा या विवाद करना। क्रोधादि मे पूर्ववत् वर्णादि पाए जाते है।

मान और उसके समानार्थक वारह नामो के विशेषार्थ—(१) **मान**—अपने आपको दूसरो से उत्कृष्ट समझना अथवा अभिमान के परिणाम का जनक कषाय मान कहलाता है। (२) **मद**—जाति आदि का दर्प या अहकार करना, हर्षावेश मे उन्मत्त होना। (३) **दर्प**—(दृप्तता) घमण्ड मे चूर होना। (४) **स्तम्भ**—नम्र न होना—स्तम्भवत् कठोर वने रहना। (५) **गर्व**—अहकार (६) **अत्युत्क्रोश**—स्वय को दूसरो मे उत्कृष्ट मानना या वताना (७) **परपरिवाद**—परनिन्दा करके अपनी ऊँचाई की डींगे हाँकना, अथवा **परपरिपात**—दूसरो को लोगो की दृष्टि मे गिराना या उच्चगुणो से पतित करना। (८) **उत्कर्ष**—क्रिया से अपने आपको उत्कृष्ट मानना, अथवा अभिमानपूर्वक अपनी समृद्धि, शक्ति, क्षमता, विभूति आदि प्रकट करना (९) **अपकर्ष**—अपने से दूसरे को तुच्छ वताना, अभिमान मे अपना या दूसरो का अपकर्ष करना, (१०) **उन्नत**—नमन से दूर रहना, अभिमानपूर्वक तने रहना—अक्खड रहना। अथवा **उन्नय**—अभिमान से नीति-न्याय का त्याग करना। (११) **उन्नाम**—वन्दनयोग्य पुरुष को भी वन्दन न करना, अथवा अपने को नमन करने वाले पुरुष के प्रति मदवश उपेक्षा करना—सद्भाव न रखना। और (१२) **दुर्नाम**—वन्द्य पुरुष को अभिमानवश बुरे ढग से वन्दन-नमन करना। स्तम्भादि सभी मान के कार्य है अथवा मानवाचक शब्द हैं।

माया और उसके एकार्थक शब्दो का विशेषार्थ—(१) **माया**—छल-कपट करना, (२) **उपधि**—किसी को ठगने के लिए उसके समीप जाने का दुर्भाव करना, (३) **निकृति**—किसी के प्रति आदर-सम्मान वताकर फिर उसे ठगना, अथवा पूर्वकृत मायाचार को छिपाने के लिए दूसरी माया करना। (४) **वलय**—वलय की तरह गोल-गोल (वक्र) वचन कहना या अपने चक्कर मे फँसाना, वाग्जाल मे फँसाना। (५) **गहन**—दूसरे को मूढ वनाने के लिए गूढ (गहन) वचन का जाल रचना। अथवा दूसरे की समझ मे न आए, ऐसे गहन (गूढ) अर्थ वाले शब्द-प्रयोग करना। (६) **नूम**—दूसरो को ठगने के लिए नीचता का या निम्नस्थान का आश्रय लेना। (७) **कल्क**—कल्क अर्थात् हिंसारूप पाप उस पाप के निमित्त से वचना करने का अभिप्राय भी कल्क है। (८) **कुरूपा**—कुत्सित रूप से मोह उत्पन्न करके ठगने की प्रवृत्ति। (९) **जिह्मता**—कुटिलता दूसरे को ठगने की नीयत से क्रियामन्दता या वक्रता अपनाना। (१०) **किल्विष**—मायाविशेषपूर्वक किल्विषिता अपनाना, किल्विषी जैसी प्रवृत्ति करना। (११) **आदरणता**—(आचरणता)—मायाचार से किसी का आदर करना, अथवा किसी वस्तु या वेष को अपनाना, अथवा दूसरो को ठगने के लिए विविध क्रियाओ का आचरण करना। (१२) **गूहनता**—अपने स्वरूप को गूहन करना—छिपाना। (१३) **वचनता**—दूसरो को ठगना। (१४) **प्रतिकुञ्चनता**—सरलभाव से कहे हुए वाक्य का खण्डन करना या विपरीत अर्थ लगाना और। (१५) **सातियोग**—अविश्वासपूर्ण सम्वन्ध, अथवा उत्कृष्ट द्रव्य के साथ निकृष्ट द्रव्य का सयोग कर देना। ये सभी माया के पर्यायवाचक शब्द है।

लोभ और उसके समानार्थक शब्दो का विशेषार्थ—(१) **लोभ**—यह लोभ कषाय का वाचक

सामान्य नाम है, ममत्व को लोभ कहते हैं। इच्छा आदि उसके विशेष प्रकार है। (२) **इच्छा**—वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा। (३) **मूर्च्छा**—प्राप्त वस्तु की रक्षा की निरन्तर चिन्ता करना। (४) **कांक्षा**—अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की लालसा। (५) **गृद्धि**—प्राप्त वस्तु के प्रति आसक्ति। (६) **तृष्णा**—प्राप्त पदार्थ का व्यय या वियोग न हो, ऐसी इच्छा। (७) **भिध्या**—विषयो का ध्यान (चित्त को एकाग्र) करना। (८) **अभिध्या**—चित्त की व्यग्रता-चचलता। (९) **आशंसना**—अपने पुत्र या शिष्य को यह ऐसा हो जाए, इत्यादि प्रकार का आशीर्वाद या अभीष्ट पदार्थ की अभिलाषा (१०) **प्रार्थना**—दूसरो से इष्ट पदार्थ की याचना करना, (११) **लालपनता**—विशेष रूप से बोल-बोल कर प्रार्थना करना, (१२) **कामाशा**—इष्ट शब्द और इष्ट रूप को पाने की आशा। १६) **भोगाशा**—इष्ट गन्ध आदि को पाने की वाञ्छा। (१४) **जीविताशा**—जीने की लालसा। (१५) **मरणाशा**—विपत्ति या अत्यन्त दु ख आ पडने पर मरने की इच्छा करना और (१६) **नन्दिराग**—विद्यमान अभीष्ट वस्तु या समृद्धि होने पर रागभाव यानी हर्ष या ममत्व भाव करना। अथवा—नन्दी अर्थात्—वाछित अर्थ की प्राप्ति के प्रति राग अर्थात्—ममत्व होना।

प्रेय आदि शेष पापस्थानो के विशेषार्थ—प्रेय—पुत्रादिविषयक स्नेह—राग। **द्वेष**—अप्रीति। कलह—राग या हास्यादिवश उत्पन्न हुआ क्लेश या वाग्युद्ध। **अभ्याख्यान**—मिथ्या दोषारोपण करना, झूठा कलक लगाना, अविद्यमान दोषो का प्रकटरूप से आरोपण करना। **पैशुन्य**—पीठ पीछे किसी की निन्दा-चुगली करना। **परपरिवाद**—दूसरे को बदनाम करना या दूसरे की बुराई करना। **अरति-रति**—मोहनीयकर्मोदयवश प्रतिकूल विषयो की प्राप्ति होने पर चित्त मे अरुचि, घृणा या उद्वेग होना अरति है और अनुकूल विषयो के प्राप्त होने पर चित्त मे हर्ष रूप परिणाम उत्पन्न होना रति है। **मायामृषा**—कपटसहित झूठ बोलना, दम्भ करना। **मिथ्यादर्शनशल्य**—शल्य—तीखे काटे की तरह सदा चुभने—कष्ट देने वाला मिथ्यादर्शन-शल्य अर्थात्—श्रद्धा की विपरीतता। शरीर मे चुभे हुए शल्य की तरह, आत्मा मे चुभा हुआ मिथ्यादर्शन शल्य भी कष्ट देता है।

प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक ये अठारह पाप-स्थान पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और चार स्पर्श वाले हैं।[१]

अठारहपापस्थान-विरमण में वर्णादि का अभाव—

८. अह भंते ! पाणातिवायवेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे, कोहविवेगे जाव मिच्छादंसण-सल्लविवेगे, एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! अवण्णे अगंधे अरसे अफासे पन्नत्ते।

[८ प्र] भगवन् ! प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण तथा क्रोधविवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, इन सबमे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श कहे है ?

[८ उ] गौतम ! (ये सभी) वर्णरहित, गन्धरहित, रसरहित और स्पर्शरहित कहे है।

विवेचन—प्राणातिपातादि-विरमण और क्रोधादिविवेक वर्णादिरहित क्यो—प्राणातिपातादि-विरमण और क्रोधादि-विवेक, ये सभी जीव के उपयोग-स्वरूप हैं; और जीवोपयोग अमूर्त्त है। जीव

१ (क) भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५७२, ५७३

(ख) भगवती० (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०४९-२०५०

और जीवोपयोग के अमूर्त्त होने से अठारह पापस्थानो से विरमण भी अमूर्त्त है। इसलिए वह वर्णादि-रहित है।[1]

चार बुद्धि, अवग्रहादि चार, उत्थानादि पांच के विषय में वर्णादि-प्ररूपणा

९. अह भंते ! उप्पत्तिया वेणइया कम्मया पारिणामिया, एस ण कतिवण्णा० ?

तं चेव जाव अफासा पन्नत्ता।

[९ प्र] भगवन् ! औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धि, कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली हैं ?

[९ उ] गौतम ! (ये चारों) वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित हैं।

१०. अह भंते ! उग्गहे ईहा अवाये धारणा, एस णं कतिवण्णा० ?

एवं चेव जाव अफासा पन्नत्ता।

[१० प्र.] भगवन् ! अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा मे कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श कहे हैं ?

[१० उ] गौतम ! (ये चारो) वर्ण यावत् स्पर्श से रहित कहे हैं।

११. अह भंते ! उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे, एस णं कतिवण्णे० ?

तं चेव जाव अफासे पन्नत्ते।

[११ प्र] भगवन् ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, और पुरुषकार-पराक्रम, इन सबमे कितने वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श है ?

[११ उ] गौतम ! ये सभी पूर्ववत् वर्णादि यावत् स्पर्श से रहित कहे है।

विवेचन—औत्पत्तिकी बुद्धि आदि वर्णादिरहित क्यो—औत्पत्तिकी आदि चार बुद्धियाँ, अवग्रहादि चार (मतिज्ञान के प्रकार) एव उत्थानादि पाच, ये सभी जीव के उपयोगविशेष हैं, इस कारण अमूर्त्त होने से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित हैं।[2]

औत्पत्तिकी आदि बुद्धियो का स्वरूप—औत्पत्तिकी—शास्त्र, सत्कर्म एवं अभ्यास के विना, अथवा पदार्थों को पहले देखे, सुने और सोचे विना ही उन्हे ग्रहण करके जो स्वत सहसा उत्पन्न होती है, वह औत्पत्तिकी बुद्धि है। यद्यपि औत्पत्तिकी बुद्धि मे क्षयोपशम कारण है, किन्तु वह अन्तरंग होने से सभी बुद्धियो मे सामान्यरूप से कारण है, इसलिए इनमे उसकी विवक्षा नही की गई है। **वैनयिकी**—विनय-(गुरुभक्ति-शुश्रूषा आदि) से प्राप्त होने वाली बुद्धि। **कार्मिकी**—कर्म अर्थात्—सतत अभ्यास और विवेक से विस्तृत होने वाली बुद्धि। **पारिणामिकी**—अतिदीर्घकाल तक पदार्थो को देखने आदि से, दीर्घकालिक अनुभव से, परिपक्व वय होने से उत्पन्न होने वाला आत्मा का धर्म परिणाम कहलाता है। उस परिणाम के निमित्त से होने वाली बुद्धि पारिणामिकी है। अर्थात्—वयोवृद्ध व्यक्ति

---

१ भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५७३

२ भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५७३।

को अतिदीर्घकाल तक ससार के अनुभव से प्राप्त होने वाली बुद्धिविशेष पारिणामिकी है।[1]

अवग्रहादि चारो का स्वरूप—**अवग्रह**—इन्द्रिय और पदार्थ के योग्यस्थान मे रहने पर सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन (निराकार ज्ञान) के पश्चात् होने वाले तथा अवान्तर सत्ता सहित वस्तु के सर्वप्रथम ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। **ईहा**—अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय मे उत्पन्न हुए सशय को दूर करते हुए विशेष की जिज्ञासा को ईहा कहते हैं। **अवाय**—ईहा से जाने हुए पदार्थों मे निश्चयात्मक ज्ञान होना अवाय है। **धारणा**—अवाय से जाने हुए पदार्थों का ज्ञान इतना सुदृढ हो जाए कि कालान्तर मे भी उसकी विस्मृति न हो तो उसे धारणा कहते हैं।[2]

उत्थानादि पांच का विशेषार्थ—**उत्थानादि**—पाँच वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम मे उत्पन्न होने वाले जीव के परिणामविशेषो को उत्थानादि कहते हैं। ये सभी जीव के पराक्रमविशेष हैं। **उत्थान**—प्रारम्भिक पराक्रम विशेष। **कर्म**—भ्रमणादि क्रिया, जीव का पराक्रमविशेष। **बल**—शारीरिक पराक्रम या सामर्थ्य। **वीर्य**—शक्ति, जीवप्रभाव अर्थात्—आत्मिक शक्ति। **पुरुषकार पराक्रम**—प्रबल पुरुषार्थ, स्वाभिमानपूर्वक किया हुआ पराक्रम।[3]

अवकाशान्तर, तनुवात-घनवात-घनोदधि, पृथ्वी आदि के विषय में वर्णादिप्ररूपणा

१२. सत्तमे णं भंते ! ओवासतरे कतिवण्णे० ?

एवं चेव जाव अफासे पन्नत्ते।

[१२ प्र] भगवन् ! सप्तम अवकाशान्तर कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला है ?

[१२ उ] गौतम ! वह वर्ण यावत् स्पर्श से रहित है।

१३. सत्तमे णं भंते ! तणुवाए कतिवण्णे० ?

जहा पाणातिवाए (सु. २) नवरं अट्ठफासे पन्नत्ते।

[१३ प्र.] भगवन् ! सप्तम तनुवात कितने वर्णादि वाला है ?

[१३ उ] गौतम ! इसका कथन (सू. २ मे उक्त) प्राणातिपात के समान करना चाहिए। विशेष यह है कि यह आठ स्पर्श वाला है।

१४. एवं जहा सत्तमे तणुवाए तहा सत्तमे घणवाए घणोदधी, पुढवी।

[१४] जिस प्रकार सप्तम तनुवात के विषय में कहा है, उसी प्रकार सप्तम घनवात, घनोदधि एवं सप्तम पृथ्वी के विषय मे कहना चाहिए।

१५. छट्ठे ओवासंतरे अवण्णे।

[१५] छठा अवकाशान्तर वर्णादि रहित है।

---

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५७४

२ प्रमाणनयतत्त्वालोक।

३ (क) पाइअसद्दमहण्णवो (ख) भगवती० प्रमेयचन्द्रिका टीका भा-१० पृ. १७९

१६. तणुवाए जाव छट्ठा पुढवी, एयाइं अट्ठ फासाइ।

[१६] छठा तनुवात, घनवात, घनोदधि और छठी पृथ्वी, ये सब आठ स्पर्श वाले है।

१७. एव जहा सत्तमाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया तहा जाव पढमाए पुढवीए भाणियव्व।

[१७] जिस प्रकार सातवी पृथ्वी की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यावत् प्रथम पृथ्वी तक जानना चाहिए।

१८. जबुद्दीवे जाव[1] सयंभुरमणे समुद्दे, सोहम्मे कप्पे जाव[2] ईसिपब्भारा पुढवी, नेरइयावासा जाव[3] वेमाणियावासा, एयाणि सव्वाणि अट्ठफासाणि।

[१८] जम्बूद्वीप से लेकर यावत् स्वयम्भूरमण समुद्र तक, सौधर्मकल्प से यावत् ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी तक नैरयिकावास से लेकर यावत् वैमानिकवास तक सब आठ स्पर्श वाले हैं।

विवेचन—सप्तम अवकाशान्तर से वैमानिकवास तक मे वर्णादिप्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू १२ से १८ तक) मे सप्तम अवकाशान्तर, सप्तम तनुवात, सप्तम घनवात, सप्तम घनोदधि, सप्तम पृथ्वी, छठा अवकाशान्तर, छठा तनुवात-घनवात-घनोदधि, छठी पृथ्वी, तथा पचम-चतुर्थ-तृतीय-द्वितीय-प्रथम नरकपृथ्वी एव जम्बूद्वीप से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र तक, सौधर्म देवलोक से लेकर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक, और नैरयिकावास से लेकर वैमानिकवास तक मे वर्णादि की प्ररूपणा की गई है।[4]

'अवकाशान्तर' आदि पारिभाषिक शब्दो का स्वरूप—प्रथम और द्वितीय नरकपृथ्वी के अन्तराल (बीच) मे जो आकाशखण्ड है, वह 'प्रथम अवकाशान्तर' कहलाता है। इस अपेक्षा से सप्तम नरक-पृथ्वी से नीचे का 'आकाशखण्ड' सप्तम अवकाशान्तर है। उसके ऊपर सप्तम तनुवात है, उसके ऊपर सातवाँ घनवात है और उसके ऊपर सातवाँ घनोदधि है और सातवे घनोदधि से ऊपर सप्तम नरकपृथ्वी है। इसी क्रम से प्रथम नरकपृथ्वी तक जानना चाहिए।[5]

अवकाशान्तर जितने भी है, वे आकाश रूप है, और आकाश अमूर्त्त होने से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से सर्वथा रहित है। तनुवात, घनवात, घनोदधि एव नरकपृथ्वी आदि पौद्गलिक होने से मूर्त्त है। अतएव वे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले है और बादरपरिणाम वाले होने से इनमे शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, मृदु-कठिन, हल्का-भारी, ये आठो ही स्पर्श पाए जाते है।[6]

---

१ 'जाव' पद लवणसमुद्र आदि पदो का सूचक है।

२ यहाँ 'जाव' पद असुरकुमारवास आदि तथा भवन, नगर, विमान तथा तिर्यग्लोक मे स्थित नगरियो का सूचक है।

३ जाव पद से ईशान सनत्कुमार, ब्रह्मलोक माहेन्द्र लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्रानत, आरण और अच्युत, नवग्रैवेयक, पाच अनुत्तर विमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी समझना चाहिए।

४ वियाहपण्णत्तिसुत (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ. ५८९

५ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७४

६ भगवती अ वृत्ति पत्र ५७४

'उवासतरे' : अर्थ—अवकाशान्तर ।[1]

चौवीस दण्डकों में वर्णादि प्ररूपणा

१९. नेरइया ण भंते ! कतिवण्णा जाव कतिफासा पन्नत्ता ?

गोयमा ! वेउव्विय-तेयाइं पडुच्च पचवण्णा पचरसा दुगंधा अट्ठफासा पन्नत्ता । कम्मगं पडुच्च पंचवण्णा पंचरसा दुगंधा चउफासा पन्नत्ता । जीवं पडुच्च अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता ।

[१९ प्र] भगवन् ! नैरयिको मे कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श कहे है ?

[१९ उ] गौतम ! वैक्रिय और तैजस पुद्गलो की अपेक्षा से उनमे पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श कहे है। कार्मण पुद्गलो की अपेक्षा से पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श कहे है । जीव की अपेक्षा से वे वर्णरहित यावत् स्पर्शरहित कहे है ।

२०. एवं जाव थणियकुमारा ।

[२०] इसी प्रकार (असुरकुमारो से ले कर) यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

२१ पुढविकाइया ण० पुच्छा ।

गोयमा ! ओरालिय-तेयगाइं पडुच्च पचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता, कम्मग पडुच्च जहा नेरइयाणं, जीवं पडुच्च तहेव ।

[२१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले है ?

[२१ उ] गौतम ! औदारिक और तैजस पुद्गलो की अपेक्षा पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाले कहे हैं । कार्मण की अपेक्षा और जीव की अपेक्षा, पूर्ववत् (नैरयिको के कथन के समान) जानना चाहिए ।

२२. एव जाव चउरिंदिया, नवरं वाउकाइया ओरालिय-वेउव्वियतेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता । सेसं जहा नेरइयाण ।

[२२] इसी प्रकार (अप्काय, से लेकर) यावत् चतुरिन्द्रिय तक जानना चाहिए । परन्तु इतनी विशेषता है कि वायुकायिक, औदारिक, वैक्रिय और तैजस, पुद्गलो की अपेक्षा पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले कहे हैं । शेष (के विषय मे) नैरयिको के समान जानना चाहिए ।

२३. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा वाउकाइया ।

[२३] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो का कथन भी वायुकायिको के समान जानना चाहिए ।

२४. मणुस्सा णं० पुच्छा ।

ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता । कम्मगं जीव च पडुच्च जहा नेरइयाणं ।

[२४ प्र] भगवन् ! मनुष्य कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले है ?

---

१. भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०५४

[२४ उ] गौतम ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस पुद्गलो की अपेक्षा (मनुष्य) पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले कहे है । कार्मण पुद्गल और जीव की अपेक्षा से नैरयिको के समान (कथन करना चाहिए ।)

२५. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।

[२५] वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिको के विषय मे भी नैरयिको के समान कथन करना चाहिए ।

विवेचन—नारक आदि अष्टस्पर्श, चतु.स्पर्श और वर्णादि से रहित क्यो ? नारक आदि तथा मनुष्य, पचेन्द्रियतिर्यच, जो भी औदारिक, वैक्रिय, तैजस या आहारकशरीर वाले है, वे पाच वर्ण, दो गन्ध तथा पाच रस वाले हैं, तथा अष्टस्पर्शी हैं, क्योकि ये चारो शरीर बादर-परिणाम वाले पुद्गल हैं, अत बादर होने से ये अष्टस्पर्शी होते हैं । तथा कार्मण सूक्ष्म परिणाम-पुद्गल रूप होने से चतु स्पर्शी है । जीव (आत्मा) मे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नही है ।[1] अतएव वह वर्णादिशून्य है ।

धर्मास्तिकाय से लेकर अद्धाकाल तक मे वर्णादिप्ररूपणा

२६. धम्मत्थिकाए जाव[2] पोग्गलत्थिकाए, एए सव्वे अवण्णा, नवरं पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे पन्नत्ते ।

[२६] धर्मास्तिकाय आदि सब (अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय और काल)वर्णादि से रहित हैं । विशेष यह है कि पुद्गलास्तिकाय मे पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श कहे है ।

२७. नाणावरणिज्जे जाव अतराइए, एयाणि चउफासाणि ।

[२७] ज्ञानावरणीय (से लेकर) यावत् अन्तराय कर्म तक आठो कर्म, पाच वर्ण, दो गन्ध पाच रस और) चार स्पर्श वाले कहे हैं ।

२८. कण्हलेसा णं भते ! कइवण्णा० पुच्छा ?

दव्वलेसं पडुच्च पचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता । भावलेस पडुच्च अवण्णा अरसा अगधा अफासा ।

[२८ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या मे कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श कहे है ?

[१९ उ.] गौतम ! द्रव्यलेश्या की अपेक्षा से उसमे पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श कहे हैं और भावलेश्या की अपेक्षा से वह वर्णादि रहित है ।

२९. एवं जाव सुक्कलेस्सा ।

[२९] इसी प्रकार (नील, कापोत, पीत और पद्मलेश्या) यावत् शुक्ललेश्या तक जानना चाहिए ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७४

२ जाव पद से अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए, इत्यादि पाठ समझना चाहिए ।

३०. सम्मद्दिट्ठि-मिच्छादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठी, चक्खुदंसणे अचक्खुदंसणे ओहिदसणे केवल-दसणे, आभिनिबोहियनाणे जाव विभगनाणे, आहारसन्ना जाव परिग्गहसण्णा, एयाणि अवण्णाणि अरसाणि अगधाणि अफासाणि ।

[३०] सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, तथा चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, आभिनिबोधिक ज्ञान (से लेकर श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और) विभगज्ञान (तक एव) आहारसज्ञा (भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा) यावत् परिग्रहसज्ञा, ये सब वर्णरहित गन्धरहित, रसरहित, और स्पर्शरहित है ।

३१. ओरालियसरीरे जाव तेयगसरीरे, एयाणि अट्ठफासाणि । कम्मगसरीरे चउफासे । मणजोगे वइजोगे य चउफासे । कायजोगे अट्ठफासे ।

[३१] औदारिक शरीर (वैक्रिय शरीर, आहारकशरीर) यावत् तैजसशरीर ये अष्टस्पर्श वाले है । कार्मण शारीर, मनोयोग और वचनयोग, ये चार स्पर्श वाले है । काययोग अष्टस्पर्श वाला है ।

३२. सागारोवयोगे य अणागारोवयोगे य अवण्णा० ।

[३२] साकार-उपयोग और अनाकारोपयोग, ये दोनो वर्णादि से रहित हैं ।

३३ सव्वदव्वा णं भते ! कतिवण्णा० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता । अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव चउफासा पन्नत्ता । अत्थेगतिया सव्वदव्वा एगवण्णा एगगधा एगरसा दुफासा पन्नत्ता । अत्थेगतिया सव्वदव्वा अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता ।

[३३ प्र] भगवन् ! सभी द्रव्य कितने वर्णादि वाले हैं ?

[३३ उ] गौतम ! सर्वद्रव्यो मे से कितने ही पाँच वर्ण यावत् (पाच रस, दो गन्ध और) आठ स्पर्श वाले है । सर्वद्रव्यो मे से कितने ही पाच वर्ण यावत् (पाँच रस, दो गन्ध और) चार स्पर्श वाले है । सर्वद्रव्यो मे से कुछ (द्रव्य) एक वर्ण, एक गन्ध एक रस और दो स्पर्श वाले हैं । सर्वद्रव्यो मे से कई वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित है ।

३४. एव सव्वपएसा वि, सव्वपज्जवा वि ।

[३४] इसी प्रकार (सर्वद्रव्य के समान) सभी प्रदेश और समस्त पर्यायो के विषय मे भी उपर्युक्त विकल्पो का कथन करना चाहिए ।

३५. तीयद्धा अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता । एवं अणागयद्धा वि । एव सव्वद्धा वि ।

[३५] अतीत काल (अद्धा) वर्ण रहित यावत् स्पर्शरहित कहा गया है । इसी प्रकार अनागत-काल भी और समस्त काल (अद्धा) भी वर्णादि-रहित है ।

विवेचन—निष्कर्ष—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, भावलेश्याएँ, तथा सम्यग्दृष्टि से लेकर परिग्रहसज्ञा तक, साकार-निराकार उपयोग एव अतीत-अनागत आदि सब काल,

सर्वद्रव्यो मे कितने ही (धर्मास्तिकायादि) द्रव्य, उनके (अमूर्त्तद्रव्य के) प्रदेश तथा पर्याय वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शरहित समझना चाहिए, क्योकि ये सब अमूर्त्त तथा जीवपरिणाम है ।[1]

पुद्गलास्तिकाय में वर्णादिप्ररूपणा—पुद्गल दो प्रकार के होते है—बादर और सूक्ष्म । पुद्गल मूर्त हैं । बादर पुद्गल पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाले होते हैं । सूक्ष्म पुद्गल द्रव्य पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और चार स्पर्श वाले होते है । परमाणु-पुद्गल एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और दो स्पर्शवाला होता है । दो स्पर्श इस प्रकार है—स्निग्ध और उष्ण, या स्निग्ध और शीत अथवा रूक्ष और उष्ण, या रूक्ष और शीत ।[2]

लेश्या मे वर्णादि की प्ररूपणा—लेश्या दो प्रकार की है—द्रव्यलेश्या और भावलेश्या । द्रव्यलेश्या बादरपुद्गल-परिणाम रूप होने से पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाली होती है । भावलेश्या जीव के आन्तरिक परिणाम रूप होती है । जीव के परिणाम अमूर्त्त होते है । इसलिए वह वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित होती है ।[3]

प्रदेश और पर्याय : परिभाषा—द्रव्य के निर्विभाग अश को 'प्रदेश' कहते हैं, और द्रव्य के धर्म को 'पर्याय' कहते है । मूर्त्त द्रव्यो के प्रदेश और परमाणु उन्ही के समान वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शयुक्त होते हैं, जबकि अमूर्त्त द्रव्यो के प्रदेश और परमाणु उन्ही द्रव्यो के समान वर्णादि-रहित होते हैं ।[4]

काल : वर्णादिरहित—अतीत और अनागत तथा सर्वकाल ये अमूर्त्त होने से वर्णादिरहित होते हैं ।

चतु स्पर्शी, अष्टस्पर्शी और अरूपी—सर्वत्र चतु स्पर्शी होने मे सूक्ष्म परिणाम पुद्गलद्रव्य कारण है, और अष्टस्पर्शी होने मे बादर-परिणाम पुद्गल द्रव्य कारण है तथा अमूर्त्त (अरूपी) वस्तु वर्णादि से रहित होती है । यथा—**चतु.स्पर्शी**—१८ पापस्थानक, ८ कर्म, कार्मणशरीर, मनोयोग, वचन योग और सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय का स्कन्ध, ये ३० प्रकार के स्कन्ध वर्णादि से यावत् शीत उष्ण स्निग्ध और रूक्ष इन चार स्पर्शो से युक्त होते है । **अष्टस्पर्शी**—षट्द्रव्यलेश्या, ४ शरीर, घनोदधि घनवात, तनुवात, काययोग और बादर पुद्गलास्तिकाय का स्कन्ध इन १५ प्रकार के स्कन्धो मे वर्णादि यावत् आठो ही स्पर्श होते है । **वर्णादिरहित**—अठारह पापो से विरति, १२ उपयोग, षट् भावलेश्या, धर्मास्तिकायादि ५ द्रव्य, ४ बुद्धि, ४ अवग्रहादि, तीन दृष्टि, उत्थानादि ५ शक्ति और चार सज्ञा, इन ६१ मे वर्णादि नही पाये जाते, क्योकि ये सभी अमूर्त्त एव अरूपी होते हैं ।[5]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) पृ ५८९-५९०

२ (अ) कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणु ।
एकरस-वर्ण-गन्धो द्विस्पर्श कार्यलिगश्च ।

(क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७४
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०५८

३ (क) भगवती वृत्ति, पत्र ५७४
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ४, पृ २०५८

४, 'द्रव्यस्य निर्विभागा अशा प्रदेशा , पर्यवास्तु धर्मा ।'
—भगवती अ वृत्ति पत्र ५७४

५ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४ पृ २०५९

गर्भ मे आगमन के समय जीव मे वर्णादिप्ररूपणा

३६. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे कतिवण्णं कतिगंध कतिरस कतिफास परिणाम परिणमति ?

गोयमा ! पंचवण्ण दुगंध पंचरस अट्ठफास परिणाम परिणमति ।

[३६ प्र] भगवन् ! गर्भ मे उत्पन्न होता हुआ जीव, कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला होता है ?

[३६ उ] गौतम ! (गर्भ मे उत्पन्न होता हुआ जीव) पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाले परिणाम से परिणत होता है ।

विवेचन—गर्भ मे प्रवेश करता हुआ जीव—शरीरयुक्त होता है । इसलिए वह अन्य शरीरवत् पचवर्णादि वाला होता है ।

कर्मो से जीव का विविध रूपों मे परिणमन

३७. कम्मतो ण भंते ! जीवे, नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ, कम्मतो णं जए, नो अकम्मतो विभत्तिभाव परिणमइ ?

हंता, गोयमा ! कम्मतो ण० त चेव जाव परिणमइ, नो अकम्मतो विभत्तिभावं परिणमइ ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ बारसमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥ १२-५ ॥

[३७ प्र] भगवन् ! क्या जीव कर्मों से ही मनुष्य-तिर्यञ्च आदि विविध रूपो को प्राप्त होता है, कर्मों के विना नही ? तथा क्या जगत् कर्मों से विविध रूपो को प्राप्त होता हे, विना कर्मों के प्राप्त नही होता ?

[३७ उ] हाँ, गौतम ! कर्म से जीव और जगत् (जीवो का समूह) विविध रूपो को प्राप्त होता है, किन्तु कर्म के विना ये विविध रूपो को प्राप्त नही होते ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यो कहकर गौतम स्वामी, यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—कर्म के विना जीव नाना परिणाम वाला नहीं—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव भवो मे जीव जो विभक्तिभाव (विभाग रूप नानारूप) भाव (परिणाम) को प्राप्त होता है, वह कर्म के विना नही हो सकता । कर्मों के उदय से ही जीव विविध रूपो को प्राप्त होता है । सुख-दुःख, सम्पन्नता-विपन्नता, जन्म-मरण, रोग-शोक, सयोग-वियोग आदि परिणामो को जीव स्वकृत कर्मों के उदय से ही भोगता है ।[1]

जगत् का अर्थ है जीवसमूह या जगम ।[2]

॥ बारहवाँ शतक पंचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७५

२ "जगत्—जीवसमूहो, जीवद्रव्यस्यैव वा विशेषो जगमाभिधानो, जगन्ति जगमान्याहुरिति वचनात् ।" —वही, पत्र ५७५

छट्ठो उद्देसओ : राहू

छठा उद्देशक : राहु द्वारा चन्द्र का ग्रहण (ग्रसन)

राहु : स्वरूप, नाम और विमानो के वर्ण तथा उनके द्वारा चन्द्रग्रसन के भ्रम का निराकरण

१. रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतम स्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर से) इस प्रकार प्रश्न किया—

२. वहुजणे णं भंते ! अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव एवं परूवेइ 'एवं खलु राहू चद गेण्हइ, एवं खलु राहू चंद गेण्हइ' से कहमेय भते ! एव ?

गोयमा ! जं ण से वहुजणे अन्नमन्नस्स जाव मिच्छं ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि—

"एव खलु राहू देवे महिड्ढीए जाव महेसक्खे वरवत्थधरे वरमल्लधरे वरगंधधरे वराभरणधारी ।

"राहुस्स णं देवस्स नव नामधेज्जा पन्नत्ता, तं तहा—सिंघाडए १ जडिलए २ खतए ३ खरए ४ दद्दुरे ५ मगरे ६ मच्छे ७ कच्छभे ८ कण्हसप्पे ९ ।

"राहुस्स ण देवस्स विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, त जहा—किण्हा नीला लोहिया हालिद्दा सुक्किला । अत्थि कालए राहुविमाणे खजणवण्णाभे, अत्थि नीलए राहुविमाणे लाउयवण्णाभे, अत्थि लोहिए राहुविमाणे मजिट्ठवण्णाभे, अत्थि पीतए राहुविमाणे हालिद्दवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि सुक्किलए राहुविमाणे भासरासिवण्णाभे पण्णत्ते ।

जदा ण राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेसं पुरत्थिमेण आवरेत्ताणं पच्चत्थिमेण वीतीवयति तदा णं पुरत्थिमेण चदे उवदंसेति, पच्चत्थिमेण राहू । जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चदस्स लेस पच्चत्थिमेणं आवरेत्ताण पुरत्थिमेण वीतीवयति तदा ण पच्चत्थिमेण चदे उवदसेति, पुरत्थिमेण राहू । एव जहा पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेण य दो आलावगा भणिया एवं दाहिणेण उत्तरेण य दो आलावगा भाणियव्वा । एवं उत्तरपुत्थिमेण दाहिणपच्चत्थिमेण य दो आलावगा भाणियव्वा, दाहिणपुरत्थिमेण उत्तरपच्चत्थिमेण य दो आलावगा भाणियव्वा । एव चेव जाव तदा ण उत्तरपच्चत्थिमेण चदे उवदसेति, दाहिणपुरत्थिमेण राहू ।

जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्स आवरेमाणे आवरेमाणे चिट्ठति तदा ण मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति—एवं खलु राहू चदं गेण्हइ, एव खलु राहू-चंदं गेण्हइ।

जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चदस्स लेस्सं आवरेत्ताणं पासेणं वीईवयइ तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदति—एवं खलु चदेणं राहुस्स कुच्छी भिन्ना, एवं खलु चदेणं राहुस्स कुच्छी भिन्ना।

जदा ण राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स लेस्सं आवरेत्ताण पच्चोसक्कइ तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति—एवं खलु राहुणा चंदे वते, एव खलु राहुणा चंदे वते।

जया ण राहू आगच्छमाणे वा ४ चंदलेस्सं आवरेत्ताणं मज्झंमज्झेणं वीतीवयति तदा णं मणुस्सा वदंति—राहुणा चदे वतिचरिए, राहुणा चंदे वतिचरिए।

जदा ण राहू आगच्छमाणे वा जाव परियारेमाणे वा चंदलेस्सं अहे सपक्खि सपडिदिसि आवरेत्ताण चिट्ठति तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदति—एवं खलु राहुणा चदे घत्थे, एव खलु राहुणा चदे घत्थे।

[२ प्र] भगवन्! बहुत से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते है, यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि निश्चित ही राहु चन्द्रमा को ग्रस लेता है, तो हे भगवन्! क्या यह ऐसा ही है?

[२ उ] गौतम! यह जो बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहते है, यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं, कि राहु चन्द्रमा को ग्रसता है, वे मिथ्या कहते है। मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ—

"यह निश्चय है कि राहु महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न उत्तम वस्त्रधारी, श्रेष्ठ माला का धारक, उत्कृष्ट सुगन्ध-धर और उत्तम आभूषणधारी देव है।"

राहु देव के नौ नाम कहे हैं—(१) शृ गाटक, (२) जटिलक, (३) क्षत्रक, (४) खर, (५) दर्दुर, (६) मकर, (७) मत्स्य, (८) कच्छप और (९) कृष्णसर्प।

राहुदेव के विमान पाच वर्ण (रग) के कहे है—(१) काला, (२) नीला, (३) लाल, (४) पीला और (५) श्वेत। इनमे से राहु का जो काला विमान है, वह खजन (काजल) के समान कान्ति (आभा) वाला है। राहुदेव का जो नीला (हरा) विमान है, वह हरी तुम्बी के समान कान्ति वाला है। राहु का जो लोहित (लाल) विमान है, वह मजीठ के समान प्रभा वाला है। राहु का जो पीला विमान है, वह हल्दी के समान वर्ण वाला है और राहु का जो शुक्ल (श्वेत) विमान है, वह भस्म-राशि (राख के ढेर) के समान कान्ति वाला है।

जब गमन-आगमन करता हुआ, विकुर्वणा (विक्रिया) करता हुआ तथा कामक्रीडा करता हुआ राहुदेव, पूर्व मे स्थित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना (लेश्या) को ढँक (आवृत) कर पश्चिम की ओर चला जाता है, तब चन्द्रमा पूर्व मे दिखाई देता है और पश्चिम मे राहु दिखाई देता है। जब आता

हुआ या जाता हुआ, अथवा विक्रिया करता हुआ, या कामक्रीडा करता हुआ राहु, चन्द्रमा की दीप्ति को पश्चिमदिशा मे आच्छादित करके पूर्वदिशा की ओर चला जाता है; तब चन्द्रमा पश्चिम मे दिखाई देता है और राहु पूर्व मे दिखाई देता है ।

जिस प्रकार पूर्व और पश्चिम के दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार दक्षिण और उत्तर के दो आलापक कहने चाहिए ।

इसी प्रकार उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) और दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) के दो आलापक कहने चाहिए, और इसी प्रकार दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) एव उत्तर-पश्चिम (वायव्य कोण) के दो आलापक कहने चाहिए ।

इसी प्रकार जब आता हुआ या जाता हुआ, अथवा विक्रिया करता हुआ या कामक्रीडा (परिचारणा) करता हुआ राहु, बार-बार चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को आवृत करता रहता है, तब मनुष्य लोक मे मनुष्य कहते हैं—'राहु ने चन्द्रमा को ऐसे ग्रस लिया, राहु इस प्रकार चन्द्रमा को ग्रस रहा है ।'

जब आता हुआ या जाता हुआ, अथवा विक्रिया करता हुआ या कामक्रीडा करता हुआ राहु चन्द्रद्युति को आच्छादित करके पास मे होकर निकलता है, तब मनुष्यलोक मे मनुष्य कहते हैं—'चन्द्रमा ने राहु की कुक्षि का भेदन कर डाला, इस प्रकार चन्द्रमा ने राहु की कुक्षि का भेदन कर डाला ।'

जब आता हुआ या जाता हुआ, अथवा विक्रिया करता हुआ या कामक्रीडा करता हुआ राहु, चन्द्रमा की प्रभा (लेश्या) को आवृत करके वापस लौटता है, तब मनुष्यलोक मे मनुष्य कहते है—'राहु ने चन्द्रमा का वमन कर दिया, राहु ने चन्द्रमा का वमन कर दिया ।'

[जब आता हुआ या जाता हुआ, अथवा विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ राहु, चन्द्रमा के प्रकाश को ढँक कर मध्य-मध्य मे से होकर निकलता है, तब मनुष्य कहने लगते हैं—राहु ने चन्द्रमा का अतिभक्षण (या अतिक्रमण) कर लिया, राहु ने चन्द्रमा का अतिभक्षण (अतिक्रमण) कर लिया ।]

जब आता हुआ या जाता हुआ, अथवा विकुर्वणा करता हुआ या कामक्रीडा करता हुआ राहु, चन्द्रमा की दीप्ति (लेश्या) को नीचे से, (चारो) दिशाओ एव (चारो) विदिशाओ से ढँक कर रहता है, तब मनुष्यलोक मे मनुष्य कहते है—'राहु ने इस प्रकार चन्द्रमा को ग्रसित कर लिया है, राहु ने यो चन्द्रमा को ग्रसित कर लिया है ।'

विवेचन—राहु : स्वरूप, नाम और वर्ण—प्रस्तुत दो सूत्रो मे राहु के स्वरूप का, उसके नौ नामो और उसके विमान के पाच वर्णों का प्रतिपादन किया गया है ।

राहु द्वारा चन्द्रग्रसन की लोकभ्रान्तियो का निराकरण—(१) जब राहु पूर्वादि दिशाओ अथवा उत्तर-पूर्वादि विदिशाओ मे से किसी एक दिशा अथवा विदिशा से होकर आता-जाता है, या विक्रिया अथवा परिचारणा करता है, तब राहु पूर्वादि मे या ईशानादि दिग्विदिग् विभाग मे चन्द्र के प्रकाश को आच्छादित कर देता है, उसी को लोग चन्द्रग्रहण (राहु द्वारा चन्द्र का ग्रसन) कहते हैं ।

(२) जब राहु चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के पास से होकर निकलता है तो लोग कहने लगते है—'चन्द्रमा ने राहु की कुक्षि का भेदन कर दिया है, अर्थात्—चन्द्रमा राहु की कुक्षि मे प्रविष्ट हो गया है। (३) जब राहु चन्द्रमा की ज्योति को आवृत करके लौटता है या दूर हो जाता है, तब मनुष्य कहते हैं—'राहु ने चन्द्रमा को उगल दिया।' (४) जब राहु चन्द्रमा को आच्छादित करके बीच-बीच मे से होकर निकलता है, तब लोग कहने लगते हैं—'राहु ने चन्द्रमा को डस लिया।' (५) इसी प्रकार जब राहु चन्द्रमा की कान्ति के नीचे से या दिशा-विदिशाओ को आवृत करके रहता है, तब लोग कहते है—'राहु ने चन्द्रमा को ग्रसित कर लिया है।' भगवान् महावीर का कथन यह है कि राहु ने चन्द्रमा को ग्रस लिया है, ऐसा उनका कथन केवल औपचारिक है, वास्तविक नही। राहु की छाया चन्द्र पर पडती है। अत राहु के द्वारा चन्द्र का यह ग्रसन कार्य एक तरह से आवरण (आच्छादन) मात्र है, जो कि वैस्रसिक—स्वाभाविक है, कर्मकृत नही।

'वास्तव मे ग्रहण राहु और चन्द्रमा के विमान की अपेक्षा से है, किन्तु दोनो विमानो मे ग्रासक और ग्रसनीय भाव कथमपि सम्भव नही है, क्योकि दोनो परस्पर आश्रयमात्र हैं। अत यहाँ आच्छाद्य-आच्छादक भाव है और इसी को विवक्षावश ग्रास कहा जाता है। यहाँ राहु और चन्द्रमा के विमान की अपेक्षा से 'ग्रहण' कहलाता है।[1]

'जया ण राहू वीईवयइ' : भावार्थ, आशय—जब राहु अपनी स्वाभाविक, अत्यन्त तीव्र गति से कृष्णादि-विमान द्वारा चल कर बाद मे जब उसी विमान से वापिस लौटता है। आना-जाना, ये दोनो क्रियाएँ स्वाभाविक गति है। तथा विक्रिया या परिचारणा, ये दोनो क्रियाएँ अस्वाभाविक विमानगति है। अत इन दोनो अवस्थाओ मे अति त्वरा से प्रवृत्ति करता है, इसलिए विसस्थुल चेष्टा वाला होने के कारण वह अपने विमान को ठीक तरह से नही चलाता। राहु चन्द्र की दीप्ति को पूर्व दिशा मे आच्छादित करके पश्चिम मे चला जाता है। इस प्रकार राहु अपने विमान द्वारा चन्द्र के विमान को आवृत करता है तो चन्द्र की द्युति भी आवृत हो जाती है। इसी को आम लोग चन्द्रग्रसन या ग्रहण कहते है।[2]

खंजन आदि पदो के अर्थ—खजनं—दीपक का कज्जल। **लाउअं**—अलख अथवा तुम्बिका (अपक्व)। **भासरासि**—भस्मराशि, राख का पुज। **परियारेमाणे**—कामक्रीडा करता हुआ।[3]

ध्रुवराहु और पर्वराहु का स्वरूप एवं दोनों द्वारा चन्द्र को आवृत-अनावृत करने का कार्यकलाप

३. कतिविधे णं भंते ! राहू पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे राहू पन्नत्ते, त जहा—धुवराहू य पव्वराहू य। तत्थ णं जे से धुवराहू से ण

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूल पाठ-टिप्पण युक्त) पृ ५९२ से ५९४ तक
 (ख) भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका व्याख्या) भा १० पृ २११ से २१८ तक
 (ग) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७६

२ (क) भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका व्याख्या) भा १०, पृ २१०

३ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ५७६

बहुलपक्खस्स पाडिवए पन्नरसतिभागेण पन्नरसतिभाग, चदस्स लेस्स आवरेमाणे आवरेमाणे चिट्ठति, तं जहा—पढमाए पढम भाग, वितियाए वितिय भाग जाव पन्नरसेसु पन्नरसमं भाग। चरिमसमये चदे रत्ते भवति, अवसेसे समये चंदे रत्ते वा विरत्ते वा भवति। तमेव सुक्कपक्खस्स उवदसेमाणे २ चिट्ठइ—पढमाए पढमं भागं जाव पन्नरसेसु पन्नरसमं भाग चरिमसमये चदे विरत्ते भवइ, अवसेसे समये चदे रत्ते य विरत्ते य भवइ। तत्थ णं जे से पव्वराहू से जहन्नेण छण्ह मासाण; उक्कोसेण बायालीसाए मासाण चंदस्स, अडयालीसाए संवच्छराणं सूरस्स।

[३ प्र] भगवन्! राहु कितने प्रकार का कहा गया है?

[३ उ] गौतम! राहु दो प्रकार का कहा गया है, यथा—ध्रुवराहु और पर्वराहु। उनमे से जो ध्रुवराहु है, वह कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से लेकर प्रतिदिन अपने पन्द्रहवे भाग से, चन्द्रबिम्ब के पन्द्रहवें भाग को बार-बार ढँकता रहता है, यथा—प्रथमा (प्रतिपदा की रात्रि) को (चन्द्रमा) के प्रथम भाग को ढँकता है, द्वितीया को (चन्द्र के) दूसरे भाग को ढँकता है, इसी प्रकार यावत् अमावस्या को (चन्द्रमा के) पन्द्रहवे भाग को ढँकता है। कृष्णपक्ष के अन्तिम समय मे चन्द्रमा रक्त (सर्वथा आवृत) हो जाता है, और शेष (अन्य) समय मे चन्द्रमा रक्त (अशत आच्छादित) और विरक्त (अशत अनाच्छादित) रहता है। इसी कारण शुक्लपक्ष का (प्रथम दिन) प्रतिपदा से लेकर यावत् पूर्णिमा (पन्द्रहवे दिन) तक प्रतिदिन पन्द्रहवाँ भाग दिखाई देता रहता है, (अर्थात्—प्रतिपदा से प्रतिदिन पन्द्रहवाँ भाग खुला होता जाता है, यावत् पूर्णिमा तक पन्द्रहवाँ भाग खुला हो जाता है।) शुक्लपक्ष के अन्तिम समय मे चन्द्रमा पूर्णत अनाच्छादित हो जाता है, और शेष समय मे वह (चन्द्रमा) रक्त (अशत अनाच्छादित) और विरक्त (अशत अनाच्छादित) रहता है।

इनमे से जो पर्वराहु है, वह जघन्यत छह मास मे चन्द्र और सूर्य को आवृत करता है और उत्कृष्ट बयालीस मास मे चन्द्र को और अडतालीस वर्ष मे सूर्य को ढँकता है।

विवेचन—नित्यराहु और पर्वराहु : स्वरूप और कार्यकलाप—राहु दो प्रकार का है—ध्रुवराहु और पर्वराहु। काला राहु-विमान जो चन्द्रमा से चार अगुल ठीक नीचे सन्निहित होकर नित्य सचरण करता है, वह ध्रुवराहु है। चन्द्रमा की १६ कलाएँ (अश) है, जिन्हे १६ भाग कहते है। कृष्णपक्ष मे राहु प्रतिपदा (पहली तिथि) से लेकर पन्द्रह भागो मे से चन्द्रबिम्ब के एक-एक भाग को प्रतिदिन आच्छादित करता जाता है। पन्द्रहवे अर्थात् अमावस्या के दिन वह चन्द्रमा के पन्द्रह भागो को आवृत कर देता है। पन्द्रह भाग से युक्त कृष्णपक्ष के अन्तिम समय मे चन्द्रमा राहु से सर्वथा अनाच्छादित (उपरक्त) हो जाता है और शुक्लपक्ष मे प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक एक-एक भाग को अनाच्छादित (खुला) करता जाता है। अर्थात्—शुक्लपक्ष मे प्रतिपदा से पूर्णिमा तक एक भाग आच्छादित और एक भाग अनाच्छादित रहता है। अन्तिम (पूर्णिमा के) दिन चन्द्रमा सर्वथा अनाच्छादित होने से शुक्ल हो जाता है। पूर्णमासी या अमावस्या के (पर्व)मे सूर्य या चन्द्रमा को जब राहु आवृत करता है, उसे पर्वराहु कहते है। पर्वराहु जघन्य ६ मास मे चन्द्रमा और सूर्य को आवृत करता है, और उत्कृष्ट ४२ मास मे चन्द्रमा को और ४८ वर्ष मे सूर्य को आवृत करता है। यही चन्द्रग्रहण

और सूर्यग्रहण कहलाता है ।[1]

चन्द्र को शशी-सश्री और सूर्य को आदित्य कहने का कारण

४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'चंदे ससी, चंदे ससी' ?

गोयमा ! चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो मियंके विमाणे, कंता देवा, कंताओ देवीओ, कंताइं आसण-सयण-खंभ-भंडमत्तोवगरणाइं, अप्पणा वि य णं चंदे जोतिसिंदे जोतिसराया सोमे कंते सुभए पियदंसणे सुरूवे, सेतेणट्ठेणं जाव ससी ।

[४ प्र.] भगवन् ! चन्द्रमा को-'चन्द्र शशी (सश्री) है', ऐसा क्यों कहा जाता है ?

[४ उ.] गौतम ! ज्योतिषियों के इन्द्र, ज्योतिषियों के राजा चन्द्र का विमान मृगांक (मृग चिह्न वाला) है, उसमें कान्त देव तथा कान्ता देवियाँ हैं, और आसन, शयन, स्तम्भ, भाण्ड, पात्र आदि उपकरण (भी) कान्त हैं। स्वयं ज्योतिष्कों का इन्द्र, ज्योतिष्कों का राजा चन्द्र भी सौम्य, कान्त, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप है, इसलिए ही, हे गौतम ! चन्द्रमा को शशी (सश्री-शोभायुक्त) कहा जाता है ।

५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'सूरे आदिच्चे, सूरे आदिच्चे' ?

गोयमा ! सूरादीया णं समया इ वा आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा । सेतेणट्ठेणं जाव आदिच्चे ।

[५ प्र.] भगवन् ! सूर्य को—'सूर्य आदित्य है', ऐसा क्यों कहा जाता है ?

[५ उ.] गौतम ! समय अथवा आवलिका यावत् अथवा अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी (इत्यादि काल) की आदि सूर्य से होती है, इसलिए इसे आदित्य कहते हैं ।

विवेचन—शशी और सश्री : अभिधान का कारण—शश का अर्थ है मृग । शश (मृग) का चिह्न होने से इसे शशी, शशांक—मृगांक कहते हैं । शशी का रूपान्तर 'सश्री' भी होता है । सश्री का अर्थ है—शोभासहित । चन्द्र-विमान के देव, देवी, तथा समस्त उपकरण कान्त-कमनीय अर्थात्—शोभनीय होते हैं, इस कारण इसे सश्री भी कहते हैं ।[2]

सूर्य को 'आदित्य' कहने का कारण—चूंकि समय, आवलिका, दिन, रात, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष यावत् उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी आदि समस्त कालों का आदिभूत (प्रथम कारण) सूर्य है । सूर्य को लेकर ही सर्वप्रथम यह सब काल विभाग होता है । इसलिए इसे आदित्य कहा गया है ।[3]

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५७७

(I) किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं ।
चउरंगुलमप्पत्तं हेट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥

(II) यस्तु पर्वणि-पौर्णमास्याममावस्ययोश्चन्द्रादित्ययोरुपरागं करोति स पर्वराहुरिति ।

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ४, पृ. २०६६

२ (क) भगवती अ. वृत्ति पत्र ५७८ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ४, पृ. २०६६

३ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५७८ (ख) सूर्यप्रज्ञप्ति प्राभृत २०, पत्र २९२, आगमोदय ।

चन्द्रमा और सूर्य की अग्रमहिषियों का वर्णन

६. चंदस्स णं भंते ! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ?

जहा दसमसए (स० १० उ० ५ सु० २७) जाव णो चेव ण मेहुणवत्तियं ।

[६ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्को के इन्द्र, ज्योतिष्को के राजा चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[६ उ] गौतम ! जिस प्रकार दशवे शतक (के उद्देशक ५ सू २७) मे कहा है, तदनुसार यावत् अपनी राजधानी मे सिंहासन पर मैथुन-निमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

७. सूरस्स वि तहेव (स० १० उ० ५ सु० २८) ।

[७] सूर्य के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार (शतक १०, उ ५, सूत्र २८ के अनुसार) कहना चाहिए ।

विवेचन—ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र एवं सूर्य की पट्टरानियाँ—चन्द्र की पट्टरानियाँ चार है—(१) चन्द्रप्रभा, (२) ज्योत्स्नाभा, (३) अर्चिमाली और (४) प्रभकरा । इसी प्रकार ज्योतिष्केन्द्र सूर्य की भी चार पट्टरानियाँ है—(१) सूर्यप्रभा, (२) आतपाभा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभकरा । जीवाभिगमसूत्र प्र ३ ज्योतिष्क उद्देशक के अनुसार सारा वर्णन जानना चाहिए ।[1]

चन्द्र-सूर्य के कामभोग सुखानुभव का निरूपण—

८. चदिम-सूरिया ण भते ! जोतिसिंदा जोतिसरायाणो केरिसए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति ?

गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे पढमजोव्वणुट्ठाण-बलत्थे पढमजोव्वणुट्ठाणबलत्थाए भारियाए सद्धि अचिरवत्तविवाहकज्जे अत्थगवेसणाए सोलसवासविप्पवासिए, से ण तओ लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे पुणरवि नियग गिहं हव्वमागते ण्हाते कयबलिकम्मे कयकोउयमगलपायच्छित्ते सव्वालकारविभूसिए मणुण्णं थालिपागसुद्धं अट्ठारसवजणाकुल भोयण भुत्ते समाणे तसि तारिसगसि वासघरसि; वण्णओ० महब्बले (स० ११ उ० ११ सु० २३) जाव सयणोवयारकलिए ताए तारिसियाए भारियाए सिंगारागारचारुवेसाए जाव कलियाए अणुरत्ताए अविरत्ताए मणाणुकूलाए सद्धि इट्ठे सद्दे फरिसे जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरेज्जा ।

से णं गोयमा ! पुरिसे विओसमणकालसमयंसि केरिसय सातासोक्ख पच्चणुभवमाणे विहरति ?

ओराल समणाउसो !

तस्स णं गोयमा ! पुरिसस्स कामभोएहिंतो वाणमतराणं देवाण एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतरा

---

१ (क) भगवती शतक १० । उ ५ । सू २७-२८

(ख) जीवाभिगम-प्रतिपत्ति ३, उ २ पत्र ३८३

चेव कामभोगा। वाणमंतराण देवाण कामभोगेहिंतो असुरिंदवज्जियाण भवणवासीण देवाण एत्तो अणतगुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा। असुरिंदवज्जियाण भवणवासियाण देवाण कामभोगेहिंतो असुर-कुमाराण [इदभूयाण] देवाण एत्तो अणतगुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा। असुरकुमाराण० देवाणं कामभोगेहिंतो गहगणनक्खत्त-तारारूवाणं जोतिसियाणं देवाणं एत्तो अणतगुणविसिट्ठतरा चेव काम-भोगा। गहगण-नक्खत्त जाव कामभोगेहिंतो चदिम-सूरियाण जोतिसिंदाणं जोतिसराईणं एत्तो अणंत-गुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा। चदिम-सूरिया णं गोतमा! जोतिसिंदा जोतिसरायाणो एरिसे कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति।

सेव भते! सेव भते! त्ति भगव गोयमे समणं भगव महावीरं जाव विहरति।

॥ बारसमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥१२-६॥

[८ प्र] भगवन्! ज्योतिष्को के इन्द्र, ज्योतिष्को के राजा चन्द्र और सूर्य किस प्रकार के कामभोगो का उपभोग करते हुए विचरते है?

[८ उ] गौतम! जिस प्रकार प्रथम यौवन वय मे किसी वलिष्ठ पुरुप ने, किसी यौवन-अवस्था मे प्रविष्ट होती हुई किसी वलिष्ठ भार्या (कन्या) के साथ नया (थोड़े दिन पहले) ही विवाह किया, और (इसके पश्चात् ही वह पुरुष) अर्थोपार्जन करने की खोज मे सोलह वर्ष तक विदेश मे रहा। वहाँ से धन प्राप्त करके अपना कार्य सम्पन्न कर वह निर्विघ्नरूप से पुन: लौट कर शीघ्र अपने घर आया। वहाँ उसने स्नान किया, बलिकर्म (भेंट-न्योछावर) किया, (विघ्ननिवारणार्थ) कौतुक और मगलरूप प्रायश्चित्त किया। तत्पश्चात् सभी आभूषणो से विभूषित होकर मनोज्ञ स्थालीपाक-विशुद्ध अठारह प्रकार के व्यजनो से युक्त भोजन करे। फिर महावल के प्रकरण मे (श ११, उ. ११, सू २३ मे) वर्णित वासगृह के समान शयनगृह मे शृ गारगृहरूप सुन्दर वेषवाली, यावत् ललितकलायुक्त, अनुरक्त, अत्यन्त रागयुक्त और मनोऽनुकूल पत्नी (देवागना) के साथ वह इष्ट शब्द रूप, यावत् स्पर्श (आदि), पाच प्रकार के मनुष्य-सम्बन्धी कामभोग का उपभोग करता हुआ विचरता है।

[प्र] हे गौतम! वह पुरुष वेदोपशमन (कामविकार-शान्ति) के समय किस प्रकार के साता-सौख्य का अनुभव करता है?

[उ] (गौतम स्वामी द्वारा) आयुष्मन् श्रमण भगवन्! वह पुरुष उदार (सुख का अनुभव करता है।)

[भगवान् ने कहा—] हे गौतम! उस पुरुप के इन कामभोगो से वाणव्यन्तरदेवो के कामभोग अनन्त-गुण विशिष्टतर होते हैं। वाणव्यन्तरदेवो के कामभोगो से असुरेन्द्र के सिवाय शेष भवनवासी देवो के कामभोग अनन्तगुणविशिष्टतर होते है। असुरेन्द्र को छोडकर (शेष) भवनवासी देवो के काम-भोगो से (इन्द्रभूत) असुरकुमारदेवो के कामभोग अनन्तगुण-विशिष्टतर होते है। असुरकुमार देवो के कामभोगो से ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्कदेवो के कामभोग अनन्तगुणविशिष्टतर होते हैं। ग्रहगण-नक्षत्र-तारा-रूप ज्योतिष्कदेवो के कामभोगो से, ज्योतिष्को के इन्द्र, ज्योतिष्को के राजा चन्द्रमा और सूर्य के कामभोग अनन्तगुण विशिष्टतर होते है।

हे गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्रमा और सूर्य इस प्रकार के कामभोगो का अनुभव करते हुए विचरते है।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है—यो कह कर भगवान् गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर को (वन्दना-नमस्कार करके) यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—देवो के कामभोगो का सुख—यहाँ चन्द्रमा और सूर्य के कामभोगो को दूसरे देवो से अनन्तगुण-विशिष्टतर वताने के लिए तारतम्य वताया गया है।

उपमा और कामसुखो का तारतम्य—ज्योतिष्केन्द्र चन्द्रमा और सूर्य के कामभोगो को उस नवविवाहित से उपमित किया गया है, जो सोलह वर्ष तक प्रवासी रह कर धनसम्पन्न होकर घर लौट आया हो, सर्वथा वस्त्राभूपणो से सुसज्जित हो षड्रस-व्यजन युक्त भोजन करके शयनगृह मे मनोज्ञ कान्त कामिनी के साथ मानवीय शव्दादि कामभोगो का सेवन करता हो।

देवो के कामभोग-सुखो का तारतम्य वताते हुए कहा गया है—(१) पूर्वोक्त नवविवाहित के काममुखो मे वाणव्यन्तर देवो के कामसुख अनन्तगुणविशिष्ट है। (२) उनसे असुरेन्द्र को छोड कर भवनपतिदेवो के काममुख अनन्तगुणविशिष्टतर है, (३) असुरेन्द्र के सिवाय शेष भवनपतिदेवो के काम-सुखो से असुरकुमार देवो के कामसुख अनन्तगुणविशिष्टतर है, (४) उनके कामसुखो से ग्रह-नक्षत्र तारारूप ज्योतिष्कदेवो के कामसुख अनन्तगुणविशिष्टतर है और (५) उन सवसे ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र सूर्य के कामभोग अनन्तगुणविशिष्टतम होते है।[1]

कामसुख उदारसुख क्यो?—यहाँ कामभोगो के सुख को उदारसुख कहा गया है, वह मोक्ष सुख या आत्मिकसुख की अपेक्षा से नही, किन्तु सामान्य सासारिक जनो के वैपयिक सुखो की अपेक्षा से कहा गया है। वास्तव मे कामभोग सम्वन्धी सुख, सुख नही, सुखाभास है, क्षणिक है, तुच्छ है, एक तरह से दु.ख का कारण है।[2]

कठिन शव्दो के अर्थ—**पढमजोव्वणुट्ठाणवलत्थाए**—प्रथम यौवन के उत्थान—उद्गम मे जो वलिष्ठ (प्राणवान्) है। **अणुरत्ताए**-अनुरागवती, **अविरत्ताए**—अप्रिय करने पर भी जो पति से विरक्त न हो। **विउसमण-कालसमयंसि**—पुरुपवेद (काम) विकार के उपशमन के समय मे अर्थात्—रतावसान मे। **पच्चणुब्भवमाणा**—अनुभव करते हुए। **ओराल**—उदार, विशाल।[3]

॥ वारहवाँ शतक छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ५९५-५९६

२ भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०७०

३. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५७९

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ४, पृ २०६८

सत्तमो उद्देसओ : लोगे

सप्तम उद्देशक : लोक का परिमाण

लोक का परिमाण

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी—

[१] उस काल और उस समय मे यावत् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार प्रश्न किया—

२. केमहालए णं भंते ! लोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! महतिमहालए लोए पन्नत्ते; पुरत्थिमेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ, दाहिणेण असंखिज्जाओ एव चेव, एवं पच्चत्थिमेण वि, एवं उत्तरेण वि, एवं उड्ढं पि, अहे असखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं ।

[२ प्र] भगवन् ! लोक कितना बडा है ?

[२ उ] गौतम ! लोक महातिमहान् है। वह पूर्वदिशा मे असख्येय कोटा-कोटि योजन है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा मे भी असख्येय कोटा-कोटि योजन है। पश्चिम, उत्तर, एव ऊर्ध्व तथा अधोदिशा मे भी असख्येय कोटा-कोटि योजन-आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौडाई) वाला है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे लोक की लम्बाई-चौडाई पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधोदिशा मे असख्येय-असख्येय कोटा-कोटि योजन-प्रमाण बता कर महातिमहानता सिद्ध की गई है।

लोक मे परमाणुमात्र प्रदेश में भी जीव के जन्ममरण से अरिक्तता की दृष्टान्तपूर्वक प्ररूपणा—

३ [१] एयंसि णं भंते ! एमहालयंसि लोगंसि अत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

[३-१ प्र] भगवन् ! इतने बडे लोक मे क्या कोई परमाणु-पुद्गल जितना भी आकाश-प्रदेश ऐसा है, जहाँ पर इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो ?

[३-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ 'एयंसि णं एमहालयंसि लोगंसि नत्थि केई परमाणु-पोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे ण जाए वा न मए वावि' ?

गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे अयासयस्स एगं महं अयावयं करेज्जा; से णं तत्थ

जहन्नेण एक्क वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण अयासहस्स पक्खिवेज्जा; ताओ ण तत्थ पउरगोयराओ पउरपाणियाओ जहन्नेण एगाह वा दुयाह वा तियाहं वा, उक्कोसेण छम्मासे परिवसेज्जा, अत्थि णं गोयमा ! तस्स अयावयस्स केयि परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जे ण तासिं अयाण उच्चारेण वा पासवणेण वा खेलेण वा सिंघाणएण वा वतेण वा पित्तेण वा पूएण वा सुक्केण वा सोणिएण वा चम्मेहि वा रोमेहि वा सिंगेहि वा खुरेहि वा नहेहि वा अणोक्कतपुव्वे भवति ? 'णो इणट्ठे समट्ठे'। होज्जा वि ण गोयमा ! तस्स अयावयस्स केयि परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जे ण तासिं अयाण उच्चारेण वा जाव नहेहि वा अणोक्कतपुव्वे नो चेव ण एयसि एमहालयसि लोगसि लोगस्स य सासयभाव, ससारस्स य अणादिभाव, जीवस्स य निच्चभाव कम्मबहुत्त जम्मण-मरणाबाहुल्ल च पडुच्च नत्थि केयि परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ ण अय जीवे न जाए वा, न मए वा वि। सेतेणट्ठेण त चेव जाव न मए वा वि।

[३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि इतने बडे लोक मे परमाणुपुद्गल जितना कोई भी आकाशप्रदेश ऐसा नही है, जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो ?

[३-२ उ] गौतम ! जैसे कोई पुरुष सौ बकरियो के लिए एक बडा अजाव्रज (बकरियो का बाड़ा) बनाए। उसमे वह एक, दो या तीन और अधिक से अधिक एक हजार बकरियो को रखे। वहाँ उनके लिए घास-चारा चरने की प्रचुर भूमि और प्रचुर पानी हो। यदि वे बकरियाँ वहाँ कम से कम एक, दो या तीन दिन और अधिक स अधिक छह महीने तक रहे, तो हे गौतम ! क्या उस अजाव्रज (बाडे) का कोई भी परमाणु-पुद्गलमात्र प्रदेश ऐसा रह सकता है, जो उन बकरियो के मल, मूत्र, श्लेष्म (कफ), नाक के मैल (लीट), वमन, पित्त, शुक्र, रुधिर, चर्म, रोम, सीग, खुर और नखो से (पूर्व मे अनाक्रान्त) अस्पृष्ट न रहा हो ? (गौतम—) (भगवन् !) यह अर्थ समर्थ नही है। (भगवान् ने कहा—) हे गौतम ! कदाचित् उस बाडे मे कोई एक परमाणु-पुद्गलमात्र प्रदेश ऐसा भी रह सकता है, जो उन बकरियो के मल-मूल यावत् नखो से स्पृष्ट न हुआ हो, किन्तु इतने बडे इस लोक मे, लोक के शाश्वतभाव की दृष्टि से, ससार के अनादि होने के कारण, जीव की नित्यता, कर्म-बहुलता तथा जन्म-मरण की बहुलता की अपेक्षा से कोई परमाणु-पुद्गल-मात्र प्रदेश भी ऐसा नही है जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण नही किया हो। हे गौतम ! इसी कारण उपर्युक्त कथन किया गया है कि यावत् जन्म-मरण न किया हो।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (स ३) मे बकरियो के बाडे मे उनके मलमूत्रादि से एक परमाणु-पुद्गलमात्र प्रदेश भी अछूता न रहने का दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि लोक मे ऐसा कोई परमाणुपुद्गलमात्र प्रदेश अछूता नही है जहाँ जीव ने जन्ममरण न किया हो।

परमाणुपुद्गलमात्र प्रदेश अस्पृष्ट न रहने के कारण (१) लोक शाश्वत है,—यदि लोक विनाशी होता तो यह बातघटित नही हो सकती थी। लोक के शाश्वत होने पर भी यदि वह सादि (आदिसहित) हो तो भी उपर्युक्त बात घटित नही हो सकती, इसलिए कहा गया—**(२) लोक अनादि है।** अनन्त जीवो की अपेक्षा से प्रवाहरूप से ससार अनादि हो, किन्तु विवक्षित जीव अनित्य हो तो भी उपर्युक्त अर्थ घटित नही हो सकता, इसलिए कहा गया—**(३) जीव (आत्मा)**

नित्य है। जीव नित्य होने पर भी यदि कर्म अल्प हो तो भी तथाविध ससारपरिभ्रमण नही हो सकता, और वैसी स्थिति मे उपर्युक्त कथन घटित नही हो सकता, इसलिए कहा गया—(४) **कर्मो की बहुलता है।** कर्मो की बहुलता होने पर भी यदि जन्म-मरण की अल्पता हो तो पूर्वोक्त अर्थ घटित नही हो सकता, इसलिए बतलाया गया—(५) **जन्म-मरण की बहुलता है।** इन पाच कारणो से लोक मे एक परमाणुमात्र भी आकाश-प्रदेश ऐसा नही है, जहाँ जीव न जन्मा हो, और न मरा हो।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अयावय—अजाव्रज—बकरियो का बाडा। यहाँ सौ बकरियो के रहने योग्य बाडे मे हजार बकरियो को रखने का कथन किया है, वह उनके अत्यन्त सट कर ठसाठस भर कर रखने की दृष्टि से है। **पउरगोयराओ**—जहाँ घासचारा चरने की प्रचुर भूमि हो। **पउरपाणीयाओ**—जहाँ प्रचुर पानी हो। इन दोनो पदो से उन बकरियो के प्रचुर मलमूत्र की सभावना, एव क्षुधा-पिपासानिकारण के कारण चिरजीविता सूचित की गई है।[2]

चौवीसदण्डकों की आवास संख्या का अतिदेशपूर्वक निरूपण

४. कति णं भंते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ, जहा पढमसए पचमउद्देसए (स० १ उ० ५ सु० १-५) तहेव आवासा ठावेयव्वा जाव अणुत्तरविमाणे त्ति जाव अपराजिए सव्वट्ठसिद्धे।

[४ प्र] भगवन् ! पृथ्वियाँ (नरक-भूमियाँ) कितनी कही गई है ?

[४ उ] गौतम ! पृथ्वियाँ सात कही गई हैं। जिस प्रकार प्रथम शतक के पञ्चम उद्देशक (सूत्र १-५) मे कहा गया है, उसी प्रकार (यहाँ भी) नरकादि के आवासो का कथन करना चाहिए। यावत् अनुत्तर-विमान तक, (अर्थात्—) यावत् अपराजित और सर्वार्थसिद्ध तक इसी प्रकार कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (स. ४) मे सात नरको के आवासो से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के विमानावासो तक का प्रथमशतक के पचमउद्देशक के वर्णन के अनुसार अतिदेशपूर्वक निरूपण है।[3]

एकजीव या सर्वजीवों के चौवीस दण्डकवर्ती आवासों में विविधरूपों में अनन्तशः उत्पन्न होने की प्ररूपणा

५. [१] अयं ण भंते ! जीवे इमोसे रतणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावाससि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नरगत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोतमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो।

[५-१ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से

१ (क) भगवती० अ वृत्ति, पत्र ५८०
(ख) भगवती० (हिन्दीविवेचन) भा. ४, पृ २०७३

२ भगवती० अ वृत्ति, पत्र ५८०

३ देखिये, व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र (आगमप्रकाशनसमिति) प्रथमखण्ड, पृ ९०-९१

प्रत्येक नरकावास मे पृथ्वीकायिकरूप मे यावत् वनस्पतिकायिक रूप से, नरक रूप मे (नरकावासरूप पृथ्वीकायिकतया), पहले उत्पन्न हुआ है ?

[५-१ उ] हाँ, गौतम ! (यह जीव पहले पूर्वोक्तरूप मे) अनेक वार अथवा अनन्त वार (उत्पन्न हो चुका है ।)

[२] सव्वजीवा वि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरया० तं चेव जाव अणतखुत्तो ।

[५-२ प्र] भगवन् ! क्या सभी जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से प्रत्येक नरकावास मे पृथ्वीकायिकरूप मे यावत् वनस्पतिकायिकरूप मे, नरकपने और नैरयिकपने, पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

[५-२ उ] (हाँ, गौतम !) उसी प्रकार (पूर्ववत्) अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हुए हैं ।

६. अय ण भंते ! जीवे सक्करप्पभाए पुढवीए पणवीसाए० एवं जहा रयणप्पभाए तहेव दो आलावगा भाणियव्वा । एव धूमप्पभाए ।

[६ प्र.] भगवन् ! यह जीव शर्कराप्रभापृथ्वी के पच्चीस लाख (नरकावासो मे से प्रत्येक नरकावास मे, पृथ्वीकायिक रूप मे यावत् वनस्पतिकायिक रूप मे, यावत् पहले उत्पन्न हो चुका है ?)

[६ उ] गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी—(विषयक) दो आलापक कहे है, उसी प्रकार (शर्कराप्रभापृथ्वी के विषय मे) दो आलापक कहने चाहिए । इसी प्रकार यावत् धूमप्रभापृथ्वी तक (के आलापक कहने चाहिए ।)

७. अयं ण भंते ! जीवे तमाए पुढवीए पचूणे निरयावाससयसहस्से एगमेगसि० सेसं तं चेव ।

[७ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव तम.प्रभापृथ्वी के पाच कम एक लाख नरकावासो मे से प्रत्येक नरकावास मे पूर्ववत् उत्पन्न हो चुका है ?

[७ उ] (हाँ, गौतम !) पूर्ववत् ही शेष सर्व कथन करना चाहिए ।

८. अय ण भंते ! जीवे अहेसत्तमाए पुढवीए पचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महानिरएसु एगमेगसि निरयावाससि० सेसं जहा रयणप्पभाए ।

[८ प्र] भगवन् ! यह जीव अध सप्तमपृथ्वी के पाच अनुत्तर और महातिमहान् महानरकावासो मे क्या पूर्ववत् उत्पन्न हो चुके है ?

[८ उ] (हाँ, गौतम !) शेष सर्वकथन रत्नप्रभापृथ्वी के समान समझना चाहिए ।

९. [१] अयं णं भंते ! जीवे चोयट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुर-

कुमारावाससि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सतिकाइयत्ताए देवत्ताए देवित्ताए आसण-सयण-भंडमत्तोवगरणत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! जाव अणतखुत्तो ।

[६-१ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव, असुरकुमारो के चौसठ लाख असुरकुमारावासो मे से प्रत्येक असुरकुमारावास मे पृथ्वीकायिकरूप मे यावत् वनस्पतिकायिकरूप मे, देवरूप मे या देवीरूप मे अथवा आसन, शयन, भाड, पात्र आदि उपकरणरूप मे पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[६-१ उ] हाँ, गौतम ! (वह पूर्वोक्तरूप मे) अनेक वार या अनन्त वार (उत्पन्न हो चुका है ।)

[२] सव्वजीवा वि ण भते ! ०

एवं चेव ।

[६-२ प्र] भगवन् ! क्या सभी जीव (पूर्वोक्तरूप मे उत्पन्न हो चुके है ?)

[६-२ उ] हाँ, गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत् कहना चाहिए ।)

१०. एव जाव थणियकुमारेसु नाणत्तं आवासेसु आवासा पुव्वभणिया ।

[१०] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए । किन्तु उनके आवासो की सख्या मे अन्तर है । आवाससख्या (भगवती श १ उ ५, सू १-५ मे) पहले वताई जा चुकी है ।

११. [१] अयं णं भते ! जीवे असखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावाससि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सतिकाइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! जाव अणंतखुत्तो ।

[११-१ प्र] भते ! क्या यह जीव असख्यात लाख पृथ्वीकायिक-आवासो मे से प्रत्येक पृथ्वीकायिक-आवास मे पृथ्वीकायिकरूप मे यावत् वनस्पतिकायिकरूप मे पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[११-१ उ] हाँ, गौतम ! (वह उक्तरूप मे) अनेक वार अथवा अनन्त वार उत्पन्न हो चुका है ।

[२] एवं सव्वजीवा वि ।

[११-२] इसी प्रकार (का आलापक) सर्वजीवो के (विषय मे कहना चाहिए ।)

१२. एव जाव वणस्सतिकाइएसु ।

[१२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिको के आवासो के (विषय में भी पूर्वोक्त कथन करना चाहिए ।)

१३. [१] अयं ण भते ! जीवे असंखेज्जेसु बेंदियावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि बेंदियावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सतिकाइयत्ताए बेंदियत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! जाव खुत्तो ।

[१३-१ प्र.] भगवन् ! क्या यह जीव असख्यात लाख द्वीन्द्रिय-आवासो मे से प्रत्येक द्वीन्द्रियावास मे पृथ्वीकायिकरूप मे यावत् वनस्पतिकायिकरूप मे और द्वीन्द्रियरूप मे पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[१३-१ उ] हाँ, गौतम ! (वह पूर्वोक्तरूप मे) यावत् अनेक वार अथवा अनन्त वार (उत्पन्न हो चुका है ।)

[२] सव्वजीवा वि ण० एव चेव ।

[१३-२] इसी प्रकार सभी जीवो के विषय मे (कहना चाहिए ।)

१४. एव जाव मणुस्सेसु । नवर तेंदिएसु जाव वणस्सतिकाइयत्ताए तेंदियत्ताए, चउरिंदिएसु चउरिंदियत्ताए, पंचिदियतिरिक्खजोणिएसु पंचिदियतिरिक्खजोणियत्ताए, मणुस्सेसु मणुस्सत्ताए० सेसं जहा बेंदियाणं ।

[१४] इसी प्रकार (त्रीन्द्रिय से लेकर) यावत् मनुष्यो तक (अपने-अपने आवासो मे उत्पन्न होने के विषय मे कहना चाहिए ।) विशेषता यह है कि त्रीन्द्रियो मे यावत् वनस्पतिकायिकरूप मे, यावत् त्रीन्द्रियरूप मे, चतुरिन्द्रियो मे यावत् चतुरिन्द्रियरूप मे, पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चरूप मे तथा मनुष्यो मे यावत् मनुष्यरूप मे उत्पत्ति जाननी चाहिए । शेष समस्त कथन द्वीन्द्रियो के समान जानना चाहिए ।

१५. वाणमतर-जोतिसिय-सोहम्मीसाणेसु य जहा असुरकुमाराण ।

[१५] जिस प्रकार असुरकुमारो (की उत्पत्ति) के विषय मे कहा है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म एव ईशान देवलोक तक कहना चाहिए ।

१६. [१] अय णं भते ! जीवे सणंकुमारे कप्पे बारससु विमाणावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि वेमाणियावाससि पुढविकाइयत्ताए०

सेस जहा असुरकुमाराणं जाव अणंतखुत्तो । नो चेव ण देवित्ताए ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव सनत्कुमार देवलोक के बारह लाख विमानावासो मे से प्रत्येक विमानावास मे पृथ्वीकायिकरूप मे यावत् पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[१६-१ उ] (हाँ, गौतम ! इस सम्बन्ध मे) सब कथन असुरकुमारो के समान, यावत् अनेक वार अथवा अनन्त वार उत्पन्न हो चुके है, यहाँ तक कहना चाहिए । किन्तु वहाँ वे देवीरूप मे उत्पन्न नही हुए ।

[२] एवं सव्वजीवा वि ।

[१६-२] (जैसे एक जीव के विषय मे कहा,) इसी प्रकार सर्व जीवो के विषय मे कहना चाहिए ।

१७. एव जाव आणय-पाणएसु । एव आरणच्चुएसु वि ।

[१७] इसी प्रकार यावत् आनत और प्राणत तक जानना चाहिए । आरण और अच्युत तक भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१८. अय ण भते ! जीवे तिसु वि अट्ठारसुत्तरेसु गेवेज्जविमाणावाससएसु०

एवं चेव ।

[१८ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानावासो मे से प्रत्येक विमानावास मे पृथ्वीकायिक के रूप मे यावत् उत्पन्न हो चुका है ?

[१८ उ] हाँ गौतम ! (वह अनेक बार या अनन्तवार) पूर्ववत् उत्पन्न हो चुका है ।

१९. [१] अय णं भते ! जीवे पचसु अणुत्तरविमाणेसु एगमेगसि अणुत्तरविमाणंसि पुढवि० तहेव जाव अणतखुत्तो, नो चेव णं देवत्ताए वा, देवित्ताए वा ।

[१९-१ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव पाच अनुत्तरविमानो मे से प्रत्येक अनुत्तर विमान मे, पृथ्वीकायिक रूप मे, यावत् उत्पन्न हो चुका है ? हाँ, किन्तु वहाँ (अनन्त बार) देवरूप मे, वा देवीरूप मे उत्पन्न नही हुआ ।

[२] एव सव्वजीवा वि ।

[१९-२] इसी प्रकार सभी जीवो के (पूर्वोक्त रूप मे उत्पत्ति के) विषय मे जानना चाहिए ।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी से लेकर अनुत्तर विमान के आवासो मे जीव की उत्पत्ति की प्ररूपणा—प्रस्तुत १५ सूत्रो (सू ५ से १९ तक) मे एक जीव एव सर्वजीवो की अपेक्षा से रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासो से लेकर अनुत्तरविमान के विमानावासो तक मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के समग्र रूपो मे उत्पत्ति की प्ररूपणा की गई है ।

'नरगत्ताए' आदि शब्दो का भावार्थ—नरगत्ताए—नरकावास मे पृथ्वीकायिक रूप मे । **असइं**—अनेक वार । **अणतखुत्तो**—अनन्तवार । **असखेज्जेसु पुढविकाइयावास-सयसहस्सेसु**—असख्यात लाख पृथ्वीकायिकावासो मे । पृथ्वीकायिकावास असख्यात है, किन्तु उनकी वहुलता बतलाने के लिए शतसहस्र (लाख) शब्द प्रयुक्त किया गया है । **'नो चेव ण देवित्ताए'**—ईशान देवलोक तक ही देवियाँ उत्पन्न होती है, सनत्कुमार आदि देवलोको मे नही, इस दृष्टि से कहा गया है कि सनत्कुमार आदि देवलोको मे, देवीरूप मे उत्पन्न नही होता ।

'नो चेव ण देवत्ताए देवित्ताए वा'—अनुत्तरविमानो मे कोई भी जीव देवरूप से अनन्त वार उत्पन्न नही होता, और देवियो की उत्पत्ति तो वहाँ सर्वथा है ही नही, इसलिए कहा गया है कि अनुत्तर विमानो मे न तो अनन्त बार देवरूप मे कोई जीव उत्पन्न होता है और न देवीरूप मे ।[1]

एक जीव या सर्वजीवो के, माता आदि के शत्रु आदि के, राजादि के तथा दासादि के रूप मे अनन्तशः उत्पन्न होने की प्ररूपणा—

२० [१] अय ण भते ! जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए पितित्ताए भाइत्ताए भगिणित्ताए भज्जत्ताए पुत्तत्ताए धूयत्ताए सुण्हत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८१ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पत्र २०७९

[२०-१ प्र.] भगवन् ! यह जीव, क्या सभी जीवो के माता-रूप मे, पिता-रूप मे, भाई के रूप मे, भगिनी के रूप मे, पत्नी के रूप मे, पुत्र के रूप मे, पुत्री के रूप मे, तथा पुत्रवधू के रूप मे पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[२०-१ उ.] हाँ गौतम ! (यह जीव पूर्वोक्त रूपो मे) अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुका है ।

[२] सव्वजीवा णं भंते ! इमस्स जीवस्स माइत्ताए जाव उववन्नपुव्वा ?

हंता, गोयमा ! जाव अणंतखुत्तो ।

[२०-२ प्र.] भगवन् ! सभी जीव क्या इस जीव के माता के रूप मे यावत् पुत्रवधू के रूप मे पहले उत्पन्न हुए है ?

[२०-२ उ.] हाँ गौतम ! सब जीव, इस जीव के माता आदि के रूप मे यावत् अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हुए हैं ।

२१. [१] अयं णं भंते ! जीवे सव्वजीवाणं अरित्ताए वेरियत्ताए घायगत्ताए वहगत्ताए पडिणीयत्ताए पच्चामित्तत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! जाव अणंतखुत्तो ।

[२१-१ प्र.] भगवन् ! यह जीव क्या सब जीवो के शत्रु रूप मे, वैरी-रूप मे, घातक रूप मे, वधक रूप मे, प्रत्यनीक रूप मे, तथा प्रत्यामित्र (शत्रु-सहायक) के रूप मे पहले उत्पन्न हुआ है ?

[२१-१ उ.] हाँ गौतम ! (यह जीव, सब जीवो के पूर्वोक्त शत्रु आदि रूपो मे) अनेक बार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुका है ।

[२] सव्वजीवा वि णं भंते ! ०

एवं चेव ।

[२१-२ प्र.] भगवन् ! क्या सभी जीव (इस जीव के पूर्वोक्त शत्रु आदि रूपो मे) पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

[२१-२ उ.] हाँ गौतम ! (सभी कथन) पूर्ववत् (समझना चाहिए ।)

२२. [१] अयं णं भंते ! जीवे सव्वजीवाणं रायत्ताए जुवरायत्ताए जाव सत्थवाहत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! असइं जाव अणंतखुत्तो ।

[२२-१ प्र.] भगवन् ! यह जीव, क्या सब जीवो के राजा के रूप मे, युवराज के रूप मे, यावत् सार्थवाह के रूप मे पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[२२-१ उ.] गौतम ! (यह जीव, सब जीवो के राजा आदि के रूप मे) अनेक वार या अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुका है ।

[२] सव्वजीवा णं० एवं चेव ।

[२२-२] इस जीव के राजा आदि के रूप मे सभी जीवो की उत्पत्ति का कथन भी पूर्ववत् कहना चाहिए ।

२३. [१] अयं णं भंते ! जीवे सव्वजीवाणं दासत्ताए पेसत्ताए भयगत्ताए भाइल्लत्ताए भोगपुरिसत्ताए सीसत्ताए वेसत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता, गोयमा ! जाव अणंतखुत्तो ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव, सभी जीवो के दास रूप मे, प्रेष्य (नौकर) के रूप मे, भृतक रूप मे, भागीदार के रूप मे, भोगपुरुष के रूप मे,शिष्य के रूप मे और द्वेष्य (द्वेषी—ईर्ष्यालु) के रूप मे पहले उत्पन्न हो चुका है ?

[२३-१ उ] हाँ गौतम ! (यह जीव, सब जीवो के दास आदि के रूप मे) यावत् अनेक बार या अनन्त बार (पहले उत्पन्न हो चुका है ।)

[२] एव सव्वजीवा वि अणंतखुत्तो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

।। बारसमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।। १२-७ ।।

[२३-२] इसी प्रकार सभी जीव भी, (इस जीव के दास आदि के रूप मे) यावत् अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू २० से २३ तक) मे एक जीव एव सर्वजीवो की अपेक्षा से माता आदि के रूप मे, शत्रु आदि के रूप मे, राजा आदि के रूप मे और दासादि के रूप मे अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न होने की प्ररूपणा की गई है ।

कठिन शब्दो के अर्थ—**अरित्ताए**—सामान्यत शत्रु के रूप मे, **वेरियत्ताए**—जिसके साथ परम्परा से शत्रुभाव हो, उस वैरी के रूप मे, **घायगत्ताए**—जान से मार डालने वाले हत्यारे के रूप मे, **वहगत्ताए**—मारपीट (वध)करने वाले के रूप मे । **पडिणीयत्ताए**—प्रत्यनीक अर्थात्—प्रत्येक कार्य मे विघ्न डालने वाले, कार्यविघातक के रूप मे । **पच्चामित्ताए**—अमित्र—शत्रु के सहायक के रूप मे । **दासत्ताए**—घर की दासी के पुत्र के रूप मे । **पेसत्ताए**—प्रेष्य—आज्ञापालक नौकर के रूप मे । **भयगत्ताए**—भृतक—दुष्काल आदि मे पोषित के रूप मे । **भाइल्लगत्ताए**—भागीदार-हिस्सेदार के रूप मे । **भोगपुरिसत्ताए**—दूसरो के द्वारा उपार्जित अर्थ का उपभोग करने वाले के रूप मे । **भज्जत्ताए**—भार्या—पत्नी के रूप मे । **धूयत्ताए**—दुहिता—पुत्री के रूप मे । **सुण्हत्ताए**—स्नुपा—पुत्रवधू के रूप मे ।[1]

।। बारहवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८१

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०८१

अट्ठमो उद्देसओ : 'नागे'

अष्टम उद्देशक : 'नाग'

महर्द्धिक देव की नाग, मणि, वृक्ष में उत्पत्ति, महिमा और सिद्धि

१. तेण कालेण तेण समएण जाव एवं वयासी—

[१] उस काल और उस समय मे गौतम स्वामी ने यावत् (श्रमण भगवान् महावीर से) इस प्रकार प्रश्न किया—

२ [१] देवे ण भते ! महड्ढीए जाव महेसक्खे अणतर चय चइत्ता बिसरीरेसु नागेसु उववज्जेज्जा ?

हंता, उववज्जेज्जा ।

[२-१ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव च्यव (मर) कर क्या द्विशरीरी (दो जन्म धारण करके सिद्ध होने वाले) नागो (सर्पो अथवा हाथियो) मे उत्पन्न होता है ?

[२-१ उ] हाँ गौतम ! (वह) उत्पन्न होता है ।

[२] से णं तत्थ अच्चियवंदियपूइयसक्कारियसम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहिय-पाडिहेरे यावि भवेज्जा ?

हता, भवेज्जा ।

[२-२ प्र] भगवन् ! वह वहाँ नाग के भव मे अर्चित, वन्दित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य, प्रधान, सत्य सत्यावपातरूप अथवा सन्निहित प्रातिहारिक भी होता है ?

[२-२ उ] हाँ गौतम ! (वह ऐसा) होता है ।

[३] से ण भते ! तओहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता सिज्झेज्जा बुज्झेज्जा जाव अत करेज्जा ?

हंता, सिज्झेज्जा जाव अतं करेज्जा ।

[२-३ प्र] भगवन् ! क्या वह वहाँ से अन्तररहित च्यव कर (मनुष्य भव मे उत्पन्न होकर) सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, यावत् ससार का अन्त करता है ?

[२-३ उ] हाँ, (गौतम ! वह वहाँ से सीधा मनुष्य होकर) सिद्ध होता है, यावत् ससार का अन्त करता है ।

३. देवे णं भंते ! महड्ढीए एव जाव बिसरीरेसु मणीसु उववज्जेज्जा ?

एवं चेव जहा नागाणं ।

[३ प्र.] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुखवाला देव च्यव कर क्या द्विशरीरी मणियो मे उत्पन्न होता है ?

[३ उ] (हाँ, गौतम !) जैसे नागो के विषय मे (कहा, उसी प्रकार इनके विषय मे भी कहना चाहिए)।

४. देवे ण भते ! महड्ढीए जाव बिसरीरेसु रुक्खेसु उववज्जेज्जा ? हता, उववज्जेज्जा। एव चेव। नवरं इम नाणत्त—जाव सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइयमहिते यावि भवेज्जा ? हंता, भवेज्जा। सेसं तं चेव जाव अत करेज्जा।

[४ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुखवाला देव (च्यव कर क्या) द्विशरीरी वृक्षो मे उत्पन्न होता है ?

[४ उ] हाँ, गौतम ! उत्पन्न होता है। उसी प्रकार (पूर्ववत् सारा कथन करना), विशेषता इतनी ही है कि (जिस वृक्ष मे वह उत्पन्न होता है, वह अर्चित आदि के अतिरिक्त) यावत् सन्निहित प्रातिहारिक होता है, तथा उस वृक्ष की पीठिका (चबूतरा आदि) गोबर आदि से लीपी हुई और खडिया मिट्टी आदि द्वारा उसकी दीवार आदि पोती (सफेदी की) हुई होने से वह पूजित (महित) होता है। शेष समस्त कथन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत् वह (मनुष्य-भव धारण करके) ससार का अन्त करता है।

विवेचन—महर्द्धिक देव की नाग-मणि-वृक्षादि मे उत्पत्ति एवं प्रभाव-सम्बन्धी चर्चा—प्रस्तुत चार सूत्रो मे महर्द्धिक देवो की नाग आदि भव मे उत्पत्ति, महिमा एव सिद्धि आदि के विषय मे चर्चा की गई है।

बिसरीरेसु उववज्जेज्जा आशय—जो दो शरीरो मे, अर्थात्—एक शरीर (नाग आदि का भव) छोड कर तदनन्तर दूसरे शरीर अर्थात्—मनुष्य शरीर को पाकर सिद्ध हो, ऐसे दो शरीरो मे उत्पन्न होते है। निष्कर्ष यह है कि ऐसे द्विशरीरी नाग, मणि या वृक्ष अपना एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर मनुष्य का ही पाते है, जिससे वे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाते हैं।[1]

महिमा—नाग, मणि या वृक्ष के भव मे भी वे देवाधिष्ठित होते हैं। इस कारण नागादि के भव मे जिस क्षेत्र मे वे उत्पन्न होते हैं, वहाँ उनकी अर्चा, वन्दना, पूजा, सत्कार और सम्मान होता है। वे दिव्य (देवाधिष्ठित), प्रधान (अपनी जाति मे प्रधानता पाने वाले), सत्य स्वप्नादि द्वारा सच्चा भविष्यकथन करने वाले होते हैं उनकी सेवा सत्य-सफल होती है, क्योकि वे पूर्वसगतिक प्रातिहारिक (प्रतिक्षण पहरेदार की तरह रक्षक) होकर उनके सन्निहित-अत्यन्त निकट रहते हैं। जो वृक्ष होता है, वह भी देवाधिष्ठित, विशिष्ट और बद्धपीठ होता है, जनता उसको महिमा, पूजा आदि करती है और वह उसकी पीठिका (चबूतरे) को लीप-पोत कर स्वच्छ रखती है।[2]

सन्निहियपाडिहेरे—जिसके निकटवर्ती प्रातिहार्य-पूर्व सगतिक आदि देवो द्वारा कृत प्रतिहारकर्म-रक्षणादि कर्म होता है।[3]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८२

२. वही, पत्र ५८२

३. वही, पत्र ५८२

लाउल्लोइयमहिए—लाइय अर्थात्—गोबर आदि से पीठिका की भूमि लीपने, तथा उल्लोइय-खड़िया मिट्टी आदि से दीवारों को पोतकर सफेदी करने से जो महित—पूजित होता है।[1] नाग—सर्प या हाथी, मणि—पृथ्वीकायिक जीव विशेष।

शीलादि-रहित वानरादि का नरकगामित्वनिरूपण

५. अह भंते ! गोलंगूलवसभे कुक्कुडवसभे मंडुक्कवसभे, एए णं निस्सीला निव्वया निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं सागरोवमट्ठितीयंसि नरगंसि नेरतियत्ताए उववज्जेज्जा ?

समणे भगवं महावीरे वागरेति—'उववज्जमाणे उववन्ने' त्ति वत्तव्वं सिया।

[५ प्र.] भगवन् ! यदि वानरवृषभ, (वानरों में महान् और चतुर), कुर्कुटवृषभ (बड़ा मुर्गा) एवं मण्डूकवृषभ (बड़ा मेढक) ये सभी निःशील व्रतरहित, गुणरहित, मर्यादा-रहित तथा प्रत्याख्यान-पौषधोपवासरहित हों, तो मरण के समय मृत्यु को प्राप्त हो (क्या) इस रत्नप्रभापृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न होते हैं ?

[५ उ.] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं—(हाँ, गौतम ! ये नैरयिकरूप से उत्पन्न होते हैं,) क्योंकि उत्पन्न होता हुआ उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा जा सकता है।

६. अह भंते ! सीहे वग्घे जहा ओसप्पिणिउद्देसए (स० ७ उ० ६ सु० ३६) जाव परस्सरे एए णं निस्सीला०

एवं चेव जाव वत्तव्वं सिया।

[६ प्र.] भगवन् ! यदि सिंह, व्याघ्र, यावत् पाराशर (जो कि) सातवें शतक के अवसर्पिणी उद्देशक में (उ. ६ सू. ३६ में) कथित हैं—ये सभी शीलरहित इत्यादि पूर्वोक्तवत् क्या (नैरयिकरूप में) उत्पन्न होते हैं ?

[६ उ.] हाँ गौतम ! उत्पन्न होते हैं, यावत् उत्पन्न होता हुआ 'उत्पन्न हुआ' ऐसा कहा जा सकता है।

७. अह भंते ! ढंके कंके विलए मद्दुए सिखी, एते णं निस्सीला०

सेसं तं चेव जाव वत्तव्वं सिया।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।

॥ बारसमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥ १२-८ ॥

[७ प्र.] भगवन् ! (जो) ढंक (कौआ) कंक (गिद्ध) विलक, मेढक और मोर—ये सभी शीलरहित इत्यादि हों तो पूर्वोक्तवत् (नैरयिकरूप से) उत्पन्न होते हैं ?

[७ उ.] हाँ, गौतम ! उत्पन्न होते हैं। शेष सब कथन यावत् कहा जा सकता है, (यहाँ तक) पूर्ववत् समझना चाहिए।

---

१ वही, पत्र ५८२

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—वानरादि-अवस्था मे नारक कैसे ?—प्रश्न होता है, मूलपाठ मे बताया गया है कि वानर आदि जिस समय वानरादि हैं, उस समय वे नारकरूप नही है, फिर नारकरूप से कैसे उत्पन्न हुए ? इसका समाधान मूल पाठ मे ही किया गया है कि ऐसा भगवान् महावीर कहते हैं, भ महावीर के सिद्धान्तानुसार जो उत्पन्न हो रहा है, वह उत्पन्न हुआ कहलाता है। क्रियाकाल और निष्ठाकाल मे अभेद दृष्टि से यह कथन है । अत यह ठीक ही कहा है कि जो वानरादि नारकरूप से उत्पन्न होने वाले हैं, वे उत्पन्न हुए हैं।[1]

कठिन शब्दार्थ—गोलांगूलवसभे—गोलागूलवृषभे—महान् या श्रेष्ठ अथवा विदग्ध (चतुर बुद्धिमान्) वानर। वृषभ शब्द यहाँ विदग्ध या महान् अर्थ मे है। **ढंके**—कौआ। **कंके**—गिद्ध। **सिखी**=मोर। **मग्गुए**—मेढक। **णिस्सीला**—शील—शिक्षाव्रतरहित। **णिव्वया**—व्रतरहित। **णिग्गुणा**—गुणव्रतरहित । **णिम्मेरा**—मर्यादारहित। **णिपच्चक्खाणपोसहोववासा**—प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित।[2]

॥ बारहवाँ शतक : अष्टम उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८२

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८२

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २०८३

नवमो उद्देसओ : 'देव'

नौवाँ-उद्देशक : 'देव'

देवो के पांच प्रकार और स्वरूपनिरूपण

१. कतिविहा ण भते ! देवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा देवा पन्नत्ता, त जहा—भवियदव्वदेवा १ नरदेवा २ धम्मदेवा ३ देवाहिदेवा ४. भावदेवा ५ ।

[१ प्र] भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१ उ] गौतम ! देव पाच प्रकार के कहे गए हैं । यथा— (१) भव्यद्रव्यदेव, (२) नरदेव, (३) धर्मदेव, (४) देवाधिदेव, (५) भावदेव ।

२. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति 'भवियदव्वदेवा, भवियदव्वदेवा' ?

गोयमा ! जे भविए पचेंदियतिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवेसु उववज्जित्तए, से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ 'भवियदव्वदेवा, भवियदव्वदेवा' ।

[२ प्र] भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव, 'भव्यद्रव्यदेव' किस कारण से कहलाते है ?

[२ उ.] गौतम ! जो पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक अथवा मनुष्य, देवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वे भविष्य मे भावीदेव होने के कारण भव्यद्रव्यदेव कहलाते हैं ।

३ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'नरदेवा, नरदेवा' ?

गोयमा ! जे इमे रायाणो चाउरतचक्कवट्टी उप्पन्नसमत्तचक्करयणप्पहाणा नवनिहिपतिणो समिद्धकोसा बत्तीस रायवरसहस्साणुयातमग्गा सागरवरमेहलाहिपतिणो मणुस्सिदा, से तेणट्ठेणं जाव 'नरदेवा, नरदेवा' ।

[३ प्र] भगवन् ! नरदेव 'नरदेव' क्यो कहलाते है ?

[३ उ] गौतम ! जो ये राजा, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण मे समुद्र तथा उत्तर मे हिमवान् पर्वत पर्यन्त षट्खण्डपृथ्वी के स्वामी चक्रवर्ती है, जिनके यहाँ समस्त रत्नो मे प्रधान चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, जो नौ निधियो के अधिपति हैं, जिनके कोष समृद्ध हैं, बत्तीस हजार राजा जिनके मार्गानुसारी है, ऐसे महासागररूप श्रेष्ठ मेखला पर्यन्त-पृथ्वी के अधिपति और मनुष्यो मे इन्द्र सम है इस कारण नरदेव 'नरदेव' कहलाते है ।

४. से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ 'धम्मदेवा, धम्मदेवा' ?

गोयमा ! जे इमे अणगारा भगवंतो ईरियासमिया जाव गुत्तबंभचारी, से तेणट्ठेणं जाव 'धम्मदेवा, धम्मदेवा' ।

[४ प्र] भगवन् ! धर्मदेव 'धर्मदेव' किस कारण से कहे जाते हैं ?

[४ उ] गौतम ! जो ये अनगार भगवान् ईर्यासमिति आदि समितियो से युक्त, यावत् गुप्त-ब्रह्मचारी होते हैं, इस कारण से ये धर्म के देव 'धर्मदेव' कहलाते है ।

५. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'देवाहिदेवा,'[1] देवाहिदेवा' ?

गोयमा ! जे इमे अरहता भगवंता उप्पन्ननाण-दसणधरा जाव सव्वदरिसी, से तेणट्ठेण जाव 'देवाहिदेवा, देवाहिदेवा' ।

[५ प्र.] भगवन् ! देवाधिदेव 'देवाधिदेव' क्यो कहलाते हैं ?

[५ उ] गौतम ! जो ये अरिहन्त भगवान् हैं, वे उत्पन्न हुए केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक हैं यावत् सर्वदर्शी है, इस कारण वे यावत् धर्मदेव कहे जाते हैं ।

६ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'भावदेवा, भावदेवा' ?

गोयमा ! जे इमे भवणवति-वाणमतर-जोतिस-वेमाणिया देवा देवगतिनाम-गोयाइं कम्माइं वेदेंति, से तेणट्ठेणं जाव 'भावदेवा, भावदेवा' ।

[६ प्र] भगवन् ! किस कारण से भावदेव को भावदेव कहा जाना है ?

[६ उ] गौतम ! जो ये भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव हैं, जो देव-गति (सम्बन्धी) नामकर्म एव गोत्रकर्म का वेदन कर रहे हैं, इस कारण मे, देवभव का वेदन करने वाले, वे 'भावदेव' कहलाते है ।

विवेचन—भव्यद्रव्यदेव आदि पचविध देव : अर्थ और स्वरूप—जो क्रीडा स्वभाव वाले हैं। अथवा जिनकी आराध्यरूप से स्तुति की जाती है, वे देव हैं ।

(१) **भव्य-द्रव्य-देव**—भव्यद्रव्यदेव मे द्रव्यशब्द अप्राधान्यवाचक है । भूतकाल मे देव पर्याय को प्राप्त हुए अथवा भविष्यत्काल मे देवत्व को प्राप्त करने वाले, किन्तु वर्तमान मे देव के गुणो से शून्य होने के कारण वे अप्रधान हैं । भूतभाव पक्ष मे—भूतकाल मे देवत्वपर्याय को प्राप्त (प्रतिपन्न), भावदेवत्व से च्युत द्रव्यदेव है, तथा भाविभाव पक्ष मे—भविष्य मे देवत्व पर्याय के योग्य—जो देवरूप से उत्पन्न होने वाले है, वे भी द्रव्यदेव हैं । प्रस्तुत मे भाविभाव पक्ष को दृष्टि से यहाँ 'भव्य एव द्रव्य देव' का कथन किया गया है ।

(२) **नरदेव**—मनुष्यो मे जो देवतुल्य—आराध्य हैं, अथवा क्रीडा-कान्ति आदि विशेषताओ से युक्त मनुष्येन्द्र—चक्रवर्ती हैं, वे नरदेव कहलाते हैं ।

(३) **धर्मदेव**—श्रुत चारित्रादि धर्म से जो देवतुल्य हैं, अथवा जो धर्मप्रधान देव हैं, वे धर्म-देव हैं ।

(४) **देवातिदेव—देवाधिदेव**—पारमार्थिक देवत्व के कारण जो शेष (पूर्वोक्त सभी) देवो को

---

१. देवातिदेवा, देवाधिदेवा ।

अतिक्रान्त (मात) कर गए है, वे देवातिदेव हैं, अथवा पारमार्थिक देवत्व होने से जो देवो से अधिक श्रेष्ठ हैं, वे देवाधिदेव कहलाते हैं।

(५) भावदेव—देवगति आदि कर्मों के उदय से जो देवो मे उत्पन्न हैं, देवपर्याय से देव है, और देवत्व का वेदन करते है, वे भावदेव है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**भविए**—भव्य—योग्य। **चाउरतचक्कवट्टी**—चतुरन्त के स्वामी, चक्र से वर्तनशील। चतुरन्त शब्द के ग्रहण करने मे वासुदेव आदि सामान्य नरपतियो का निराकरण हो गया। **सागरवरमेखलाहिवइणो**—सागर ही जिसकी श्रेष्ठ मेखला (करधनी) है, ऐसी षट्खण्डात्मक पृथ्वी के अधिपति।[2] **णवनिहिपतिणो**—नौ निधियो के स्वामी।

पंचविध देवों की उत्पत्ति का सकारण निरूपण

७ भवियदव्वदेवा ण भते ! कओहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरि-मणु-देवेहिंतो वि उववज्जति। भेदो जहा[1] वक्कतीए। सव्वेसु उववातेयव्वा जाव अणुत्तरोववातिय त्ति। नवर असखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अंतरदीवग-सव्वट्ठसिद्धवज्ज जाव अपराजियदेवेहिंतो वि उववज्जति, णो सव्वट्ठसिद्धदेवेहिंतो उववज्जति।

[७ प्र] भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव किन मे (किन जीवो या किन गतियो मे) से (आकर) उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको मे से (आकर) उत्पन्न होते हैं, या तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देवो मे से (आकर) उत्पन्न होते है।

[७ उ] गौतम ! वे नैरयिको मे से (आकर) उत्पन्न होते है, तथा तिर्यञ्च मनुष्य या देवो मे से भी उत्पन्न होते है। (यहाँ प्रज्ञापना सूत्र के छठे) व्युत्क्रान्ति पद (मे कहे) अनुसार भेद (विशेषता) कहना चाहिए। इन सभी की उत्पत्ति के विषय मे यावत् अनुत्तरोपपातिक तक कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि असख्यातवर्ष की आयु वाले अकर्मभूमिक तथा अन्तरद्वीपक एव सर्वार्थसिद्ध के जीवो को छोडकर यावत् अपराजित देवो (भवनपति से लेकर अपराजित नामक चतुर्थ अनुत्तरविमानवासी देवो) तक मे आकर उत्पन्न होते है, किन्तु सर्वार्थसिद्ध के देवो से आकर उत्पन्न नही होते।

८. [१] नरदेवा ण भते ! कओहिंतो उववज्जति ? किं नेरतिय० पुच्छा।

गोयमा ! नेरतिएहिंतो उववज्जति, नो तिरि०, नो मणु०, देवेहिंतो वि उववज्जति।

[८-१ प्र] भगवन् ! नरदेव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य या देवो मे से आकर उत्पन्न होते है ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८५

२ (क) वही, पत्र ५८५, (ख) भगवती (हिंदीविवेचन) भा. ४ पृ २०८७

१ देखिये—पण्णवणासुत्त भा १ छठा व्युत्क्रान्तिपद, सू ६३९-६५, (मूलपाठटिप्पणयुक्त) पृ. १६९-७५ मे

[८-१ उ] गौतम ! वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, किन्तु न तो मनुष्यो मे आ कर उत्पन्न होते है और न तिर्यञ्चो से, देवो से भी उत्पन्न होते है ।

[२] जदि नेरतिएहिंतो उववज्जति किं रयणप्पभापुढविनेरतिएहितो उववज्जति जाव अहेसत्तमापुढविनेरतिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरतिएहिंतो उववज्जति, नो सक्कर० जाव नो अहेसत्तमपुढविनेरतिएहितो उववज्जंति ।

[८-२ प्र] भगवन् ! यदि वे (नरदेव) नैरयिको से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) यावत् अध —सप्तमपृथ्वी के नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ?

[८-२ उ] गौतम ! वे रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिको मे से (आकर) उत्पन्न होते है, किन्तु शर्कराप्रभा-पृथ्वी के नैरयिको से यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको से (आकर) उत्पन्न नही होते ।

[३] जइ देवेहिंतो उववज्जति किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति, वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति, वाणमतर०, एव सव्वदेवेसु उववाएयव्वा वक्कतीभेदेण जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति ।

[८-३ प्र] भगवन् ! यदि वे देवो से (आकर) उत्पन्न होते है, तो क्या भवनवासी देवो से उत्पन्न होते हैं ? अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवो से (आकर) उत्पन्न होते है ? इस प्रकार सभी देवो से उत्पत्ति (उपपात) के विषय मे यावत् सर्वार्थसिद्ध तक, (प्रज्ञापनासूत्र के छठे) व्युत्क्रान्ति-पद मे कथित भेद (विशेषता) के अनुसार कहना चाहिए ।

९. धम्मदेवा ण भते ! कओहिंतो उववज्जंति किं नेरतिएहिंतो ?०

एव वक्कतीभेदेण सव्वेसु उववाएयव्वा जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति । नवर तमा-अहेसत्तमातेउ-वाउ-असखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अतरदीवगवज्जेसु ।

[९ प्र] भगवन् ! धर्मदेव कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[९ उ] गौतम ! यह सभी उपपात व्युत्क्रान्ति-पद मे उक्त भेद सहित यावत्-सर्वार्थसिद्ध तक कहना चाहिए । परन्तु इतना विशेष है कि तम प्रभा, अध सप्तम पृथ्वी तथा तेजस्काय, वायुकाय, असख्यात वर्ष की आयुवाले अकर्मभूमिक तथा अन्तरद्वीपक जीवो को छोडकर उत्पन्न होते हैं ।

१०. [१] देवाहिदेवा ण भते ! कतोहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ?० पुच्छा ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जति, नो तिरि०, नो मणु०, देवेहिंतो वि उववज्जंति ।

---

१ देखें—पण्णवणासुत्त भा. १ छठा व्युत्क्रान्तिपद (महावीर जैन विद्यालय से प्रकाशित)

[१०-१ प्र] भगवन् ! देवाधिदेव कहाँ से (आ कर) उत्पन्न होते है ?

[१०-१ उ] गौतम ! वे नैरयिको से (आ कर) उत्पन्न होते हैं, किन्तु तिर्यञ्चो से या मनुष्यो से उत्पन्न नही होते । देवो से भी (आ कर) उत्पन्न होते हैं ।

[२] जति नेरतिएहिंतो०

एवं तिसु पुढवीसु उववज्जंति, सेसाओ खोडेयव्वाओ ।

[१०-२ प्र] (भगवन् !) यदि नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, तो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको मे से आकर उत्पन्न होते है ?

[१०-२ उ] गौतम ! (वे आदि की) तीन नरकपृथ्वियो मे से आ कर उत्पन्न होते है । शेष चार (नरकपृथ्वियो) मे (उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

[३] जदि देवेहिंतो०,

वेमाणिएसु सव्वेसु उववज्जति जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति । सेसा खोडेयव्वा ।

[१०-३ प्र] भगवन् ! यदि वे देवो से (आ कर) उत्पन्न होते है, तो क्या भवनपति आदि से (आ कर) उत्पन्न होते हैं ?

[१०-३ उ] गौतम ! वे, समस्त वैमानिक देवो से यावत् सर्वार्थसिद्ध (के देवो) से (आकर) उत्पन्न होते हैं । शेष (देवो से उत्पत्ति) का निषेध (करना चाहिए ।)

११. भावदेवा ण भते ! कओहिंतो उववज्जंति ?०

एव जहा वक्कतीए[1] भवणवासीण उववातो तहा भाणियव्व ।

[११ प्र] भगवन् ! भावदेव किस गति से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[११ उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्ति पद मे जिस प्रकार भवनवासियो के उपपात का कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (७ से ११ तक) मे पूर्वोक्त पचविध देवो की उत्पत्ति के स्थानो का वर्णन किया गया है ।

भव्य द्रव्यदेवों की उत्पत्ति—असख्यातवर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज जीवो एव सर्वार्थसिद्ध के देवो से आकर भव्य द्रव्यदेवो की उत्पत्ति के निषेध का कारण यह है कि असख्यात वर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिज एव अन्तरद्वीपज तो सीधे भावदेवो मे उत्पन्न होते है किन्तु भव्य द्रव्यदेवो (मनुष्य, तिर्यञ्चो) मे उत्पन्न नही होते है और सर्वार्थसिद्ध के देव तो भव्यद्रव्यसिद्ध होते है, अर्थात्—वे तो मनुष्यभव प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हे, इसलिए वे सर्वार्थसिद्ध देवलोक से न तो किसी भी देवलोक मे उत्पन्न होते हैं और न ही मनुष्य भव मे उत्पन्न होकर पुनः भव्य द्रव्यदेवो मे उत्पन्न होते है ।[2]

---

१. देखिये—पण्णवणासुत्त भा-१ (महावीर जै वि), सू ६४८-४९, पृ १७४ मे

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८५-५८६

धर्मदेवो की उत्पत्ति—कोई धर्मदेव तभी बन सकते है, जब वे चारित्र (सर्वविरति) ग्रहण करे। छठी नरक पृथ्वी से निकले हुए जीव मनुष्यभव प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु चारित्र ग्रहण नही कर सकते, तथा सप्तम नरकपृथ्वी, तेजस्काय, वायुकाय, असख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तरद्वीपज मनुष्य, तिर्यञ्चो से निकले हुए जीव तो मनुष्यभव भी प्राप्त नही कर सकते, तब धर्मदेव (चारित्रयुक्त साधक) कैसे हो सकते है ?[1] इसलिए इनसे धर्मदेवो की उत्पत्ति का निषेध किया गया है। **देवाधिदेव की उत्पत्ति**—प्रथम तीन-पृथ्वियो से निकले हुए जीव ही देवाधि-देव (तीर्थंकर) पद प्राप्त कर सकते है, आगे की चार पृथ्वियो से नही।[2]

भवनपति-सम्बन्धी उपपात का अतिदेश क्यों ?—बहुत-से स्थानो से आ कर जीव भवनवासी देव के रूप मे उत्पन्न होते है क्योकि उसमे असज्ञी जीव भी आकर उत्पन्न होते है। इसलिए यहाँ भवनपति-सम्बन्धी उपपात का अतिदेश किया है।[3]

कठिन शब्दार्थ—**वक्कतीए**—व्युत्क्रान्तिपद मे। **खोडेयव्वा**—निषेध करना चाहिए।[4]

पंचविधदेवों की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण

१२. भवियदव्वदेवाण भंते ! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ।

[१२ प्र] भगवन् ! भव्यद्रव्यदेवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्टत तीन पल्योपम की है।

१३ नरदेवाण० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं सत्त वाससयाइ, उक्कोसेणं चउरासीतिं पुव्वसयसहस्साइं।

[१३ प्र] भगवन् ! नरदेवो की स्थिति कितने काल की है ?

[१३ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य सात सौ वर्ष की और उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व की है।

१४. धम्मदेवाण भते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण अन्तोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

[१४ प्र] भगवन् ! धर्मदेवो की स्थिति कितने काल की है ?

[१४ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट देशोनपूर्व कोटि की है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८६

२ वही, पत्र ५८६

३ वही, पत्र ५८६,

४ भगवती (हिंदी विवेचन) भा ४, पृ २०९०

१५ देवाहिदेवाणं० पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेणं बावत्तरिं वासाइं, उक्कोसेणं चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइं ।

[१५ प्र] भगवन् ! देवाधिदेवो की स्थिति सम्वन्धी पृच्छा ?

[१५ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य बहत्तर वर्ष को, और उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व की है ।

१६. भावदेवाणं० पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[१६ प्र] भगवन् ! भावदेवो की स्थिति कितने काल की है ?

[१६ उ] गौतम ! (भावदेवो की) जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है ।

विवेचन—प्रस्तुत पंचसूत्री (१२ से १६ तक) मे पूर्वोक्त पाच प्रकार के देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है ।

भव्यद्रव्यदेवो की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त क्यो ?—अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य वाले पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च, देवरूप मे उत्पन्न होते है, इसलिए भव्यद्रव्य देव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की बताई गई है । तीन पल्योपम की स्थितिवाले देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्य और तिर्यञ्च भी देवो मे उत्पन्न होते है, और वे भव्य-द्रव्यदेव होते है, उनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है ।[1]

नरदेव (चक्रवर्ती) की स्थिति—नरदेव (चक्रवर्ती) की जघन्य स्थिति ७०० वर्ष की होती है, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की आयु इतनी ही थी । उत्कृष्ट स्थिति ८४ लाख पूर्व को होती है, जैसे—भरत-चक्रवर्ती की उत्कृष्ट आयु ८४ लाख वर्ष की थी ।[2]

धर्मदेव की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति—जो मनुष्य अन्तर्मुहूर्त्त आयु शेष रहते चारित्र (महाव्रत) स्वीकार करता है, उसकी अपेक्षा से धर्मदेव (चारित्री साधुसाध्वी) की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है । कोई पूर्व कोटि वर्ष की आयुवाला मानव अष्ट वर्ष को आयु मे प्रव्रज्या योग्य होने से पूर्व कोटि मे आठ वर्ष कम की आयु मे चारित्र ग्रहण करे तो उसकी अपेक्षा से धर्मदेव की उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्व कोटि वर्ष की कही गई है । अतिमुक्तक मुनि या वज्र स्वामी, जो क्रमश ६ वर्ष की एव ३ वर्ष को आयु मे प्रव्रजित हो गए थे, वह कादाचित्क है, अत उनकी यहाँ विवक्षा नही है ।[3]

देवाधिदेवो की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति—चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की जघन्य आयु ७२ वर्ष की थी, इस अपेक्षा से देवाधिदेव की जघन्य स्थिति ७२ वर्ष की कही है, तथा भगवान् ऋषभदेव की उत्कृष्ट आयु ८४ लाख पूर्व की थी, इस अपेक्षा से देवाधिदेव की उत्कृष्ट स्थिति ८४ लाख पूर्व की कही है ।[4]

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८६

२ वही, पत्र ५८६

३ वही, पत्र ५८६

४ वही, पत्र ५८६

भावदेवो की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति—व्यन्तरदेवो की आयु १० हजार वर्ष की है, इसलिए देवो की जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की ही है। देवो की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की है, यथा—सर्वार्थसिद्ध देवो की स्थिति ३३ सागरोपम की है।[1]

पञ्चविध देवो की वैक्रियशक्ति का निरूपण

१७. भवियदव्वदेवा णं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए ?

गोयमा ! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए। एगत्तं विउव्वमाणे एगिंदिय-रूवं वा जाव पंचिंदियरूवं वा, पुहत्तं विउव्वमाणे एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचिंदियरूवाणि वा। ताइं संखेज्जाणि वा असखेज्जाणि वा, संबद्धाणि वा असबद्धाणि वा, सरिसाणि वा असरिसाणि वा विउव्वंति, विउव्वित्ता तओ पच्छा जहिच्छियाइं करेंति।

[१७ प्र] भगवन् ! क्या भव्यदेव एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है अथवा अनेक रूपो की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[१७ उ] गौतम ! वह एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है और अनेक रूपो की विकुर्वणा करने मे भी। एक रूप की विकुर्वणा करता हुआ वह एक एकेन्द्रिय रूप यावत् अथवा एक पचेन्द्रिय रूप की विकुर्वणा करता है। अनेक रूपो की विकुर्वणा करता हुआ अनेक एकेन्द्रिय रूपो यावत् अथवा अनेक पचेन्द्रिय रूपो की विकुर्वणा करता है। वे रूप सख्येय या असख्येय, सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध अथवा सदृश या असदृश विकुर्वित किये जाते है। विकुर्वणा करने के बाद वे अपना यथेष्ट कार्य करते है।

१८. एवं नरदेवा वि, धम्मदेवा वि।

[१८] इसी प्रकार नरदेव और धर्मदेव के द्वारा विकुर्वणा के विषय मे भी (समझना चाहिए।)

१९. देवाहिदेवा ण० पुच्छा।

गोयमा ! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्सति वा।

[१९ प्र] देवाधिदेव (के विकुर्वणा-सामर्थ्य) के विषय मे प्रश्न—(क्या वे एक रूप या अनेक रूपो की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?)

[१९ उ] गौतम ! (वे) एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है और अनेक रूपो की विकुर्वणा करने मे भी समर्थ है। किन्तु शक्ति होते हुए भी उत्सुकता के अभाव मे उन्होने क्रियान्विति रूप मे कभी विकुर्वणा नही की, नही करते है और न करेंगे।

२०. भावदेवा जहा भवियदव्वदेवा।

[२०] जिस प्रकार भव्य-द्रव्यदेव (के विकुर्वणा-सामर्थ्य) का (कथन किया) है, उसी प्रकार भावदेव (के विकुर्वणा-सामर्थ्य) का (कथन करना चाहिए।)

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८६

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (१७ मे २० तक) मे पूर्वोक्त पचविध देवो की विक्रियासामर्थ्य का प्रतिपादन किया गया है।

विकुर्वणा-समर्थ भव्यद्रव्यदेव—वे ही भव्यद्रव्यदेव मनुष्य और तिर्यंच एक या अनेक रूपो की विकुर्वणा कर सकते है, जो वैक्रियलब्धिसम्पन्न हो।[1]

देवाधिदेव की वैक्रिय शक्ति—देवाधिदेव एक रूप या अनेक रूपो की विकुर्वणा कर सकते है, वैक्रिय शक्ति होते हुए भी वे सर्वथा उत्सुकतारहित होने से विकुर्वणा नही करते। निष्कर्ष यह है कि वैक्रिय सम्प्राप्ति होते हुए भी उनके द्वारा शक्ति-स्फोट, कदापि (तीन काल मे भी) नही किया जाता। विक्रिया उनमे लब्धिमात्र रहती है।[2]

कठिनशब्दार्थ—एगत्त—एकत्व-एकरूप, पहुत्त—पृथक्त्व अथवा नानारूप।[3]

पंचविधदेवों की उद्वर्त्तना-प्ररूपणा

२१. [१] भवियदव्वदेवा ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति ? कहिं उववज्जति ? कि नेरइएसु उववज्जंति, जाव देवेसु उववज्जति ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जति, नो तिरि०, नो मणु०, देवेसु उववज्जति।

[२१-१ प्र] भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव मर कर तुरन्त (विना अन्तर के) कहाँ (किस गति मे) जाते है, कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या वे (मर कर तुरन्त) नैरयिको मे उत्पन्न होते है, यावत् अथवा देवो मे उत्पन्न होते है ?

[२१-१ उ] गौतम ! (वे मर कर तुरन्त) न तो नैरयिको मे उत्पन्न होते है, न तिर्यञ्चो मे और न मनुष्यो मे उत्पन्न होते है, किन्तु (एकमात्र) देवो मे उत्पन्न होते है।

[२] जइ देवेसु उववज्जति० ?

सव्वदेवेसु उववज्जति जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति।

[२१-२ प्र] यदि (वे) देवो मे उत्पन्न होते है (तो भवनपति आदि किन देवो मे उत्पन्न होते है ?)

[२१-२ उ] (गौतम !) वे सर्वदेवो मे उत्पन्न होते है, (अर्थात्—असुरकुमार आदि से लेकर) यावत्—सर्वार्थसिद्ध तक (उत्पन्न होते है।)

२२ [१] नरदेवा ण भते ! अणतरं उव्वट्टित्ता० पुच्छा।

गोयमा ! नेरइएसु उववज्जति, नो तिरि०, नो मणु०, नो देवेसु उववज्जति।

[२२-१ प्र] भगवन् ! नरदेव मर कर तुरन्त (बिना अन्तर के) कहाँ (किस गति मे) (जाते है, कहाँ) उत्पन्न होते है ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८६

२ वही, पत्र ५८६

३ वही पत्र ५८६

[२२-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) न तो तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होते है, न मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं और न ही देवो मे उत्पन्न होते हैं।

[२] जइ नेरइएसु उववज्जंति, सत्तसु वि पुढवीसु उववज्जंति।

[२२-२ प्र] भगवन् ! यदि नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं (तो वे पहलो से सातवी नरकपृथ्वी मे से किसमे उत्पन्न होते हैं ?)

[२२-२ उ] गौतम ! (नैरयिको मे भी) वे सातो (नरक-) पृथ्वियो मे उत्पन्न होते है।

२३. [१] धम्मदेवा णं भंते ! अणंतरं० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति, नो तिरि०, नो मणु०, देवेसु उववज्जंति।

[२३-१ प्र] भगवन् ! धर्मदेव आयुष्य पूर्ण कर तत्काल (विना अन्तर के) कहाँ उत्पन्न होते है ?

[२३-१ उ] गौतम ! (धर्मदेव मर कर तत्काल) न तो नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, न तिर्यञ्चो मे और न मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं, किन्तु देवो मे उत्पन्न होते हैं।

[२] जइ देवेसु उववज्जंति किं भवणवासि० पुच्छा।

गोयमा ! नो भवणवासिदेवेसु उववज्जंति, नो वाणमंतर०, नो जोतिसिय०, वेमाणियदेवेसु उववज्जंति-सव्वेसु वेमाणिएसु उववज्जति जाव सव्वट्ठसिद्धअणु० जाव उववज्जंति। अत्थेगइया सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

[२३-२ प्र] (भगवन् !) यदि वे देवो मे उत्पन्न होते हैं तो क्या भवनवासिदेवो मे उत्पन्न होते हैं, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते हैं ?

[२३-२ उ] गौतम ! वे न तो भवनवासियो मे उत्पन्न होते हैं, न वाणव्यन्तर देवो मे और न ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होते हैं, किन्तु वैमानिक देवो मे—(यहाँ तक कि) सभी वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते हैं। (अर्थात्—प्रथम सौधर्मदेव से लेकर) यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक देवो मे उत्पन्न होते है। उनमे से कोई-कोई धर्मदेव सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होते हैं यावत् सर्व दु खो का अन्त कर देते हैं।

२४. देवाहिदेवा अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?

गोयमा ! सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

[२४ प्र] भगवन् ! देवाधिदेव आयुष्यपूर्ण कर दूसरे ही क्षण कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[२४ उ] गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् सर्व दु खो का अन्त करते हैं।

२५. भावदेवा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता० पुच्छा।

जहा वक्कंतीए असुरकुमाराणं उव्वट्टणा तहा भाणियव्वा।

[२५ प्र] भगवन् ! भावदेव, आयु पूर्ण कर तत्काल कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[२५ उ] गौतम ! (प्रज्ञापना सूत्र के छठे) व्युत्क्रान्तिपद मे जिस प्रकार असुरकुमारो की उद्वर्त्तना (कही गई) है, उसी प्रकार यहाँ भावदेवो की भी उद्वर्त्तना कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू २१ से २५ तक) मे पूर्वोक्त पचविध देवो की उद्वर्त्तना (आयुष्य पूर्ण होने) के तत्काल बाद उनकी गति-उत्पत्ति का निरूपण किया गया है।

भव्यद्रव्यदेवो के लिए नरकादिगतित्रयनिषेध—भव्यद्रव्यदेव भाविदेवभव का स्वभाव होने से नारक आदि तीन भवो मे जाने और उत्पन्न होने का निषेध किया गया है।[1]

नरदेवो की उद्वर्त्तनानन्तर उत्पत्ति—कामभोगो मे आसक्त नरदेव (चक्रवर्ती) उनका त्याग न कर सकने के कारण नैरयिको मे उत्पन्न होते है, इसलिए शेष तीन भवो मे उनकी उत्पत्ति का निषेध किया गया है। यद्यपि कई चक्रवर्ती देवो मे उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे देवो मे या सिद्धो मे तभी उत्पन्न होते हैं, जब नरदेवरूप को त्याग कर धर्मदेवत्व प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात्—जब चक्रवर्ती चक्रवर्तित्व छोडकर चारित्र अगीकार करके धर्मदेव (साधु) बन जाते है।[2]

कठिन शब्दार्थ—**उव्वट्टित्ता**—उद्वर्त्तना करके—मरकर, शरीर से जीव निकल कर। **अणतरं**=बिना किसी अन्तर (व्यवधान) के, तत्काल, तुरन्त।[3]

स्व-स्वरूप में पंचविध देवो की सस्थितिप्ररूपणा

२६. भवियदव्वदेवे ण भंते ! 'भवियदव्वदेवे' त्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ। एव जच्चेव ठिई सच्चेव सचिट्ठणा वि जाव भावदेवस्स। नवर धम्मदेवस्स जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

[२६ प्र] भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव, भव्यद्रव्यदेवरूप से कितने काल तक रहता है ?

[२६ उ] गौतम ! (भव्यद्रव्यदेव) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम तक (भव्यद्रव्यदेवरूप से) रहता है। इसी प्रकार जिसकी जो (भव-) स्थिति कही है, उसी प्रकार उसकी सस्थिति भी यावत् भावदेव तक कहनी चाहिए। विशेष यह है कि धर्मदेव की (सस्थिति) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि वर्ष तक है।

विवेचन—प्रश्न का आशय—भव्यद्रव्यदेव, भव्यद्रव्यदेव-पर्याय को नही छोडता हुआ, कितने काल तक रहता है ? यानी उसका सस्थिति (सचिट्ठणा) काल कितना है ?[4]

जिसकी जो भवस्थिति पहले कही गई है, वही उनकी सस्थिति (सचिट्ठणा) अर्थात्—उस पर्याय का अनुबन्ध है।[5]

---

१ भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५८६

२ भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५८६

३ पाइअसद्दमहण्णवो, पृ १८४, २९

४ भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५८६

५ वही, पत्र ५८६

धर्मदेव का जघन्य सचिट्ठणाकाल—कोई धर्मदेव, अशुभभाव को प्राप्त करके, उससे निवृत्त होकर शुभभाव को प्राप्त होने के एक समय बाद मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए धर्मदेव का जघन्य सचिट्ठणा (सस्थिति) काल परिणामो की अपेक्षा से एक समय का कहा गया है।[1]

पचविध देवों के अन्तरकाल की प्ररूपणा

२७. भवियदव्वदेवस्स ण भते ! केवतियं काल अतर होति ?

गोयमा ! जहन्नेण दस वाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण अणंत काल-वणस्सतिकालो।

[२७ प्र] भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२७ प्र] गौतम ! (भव्यद्रव्यदेव का अन्तर) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल-वनस्पतिकाल पर्यन्त होता है।

२८. नरदेवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं सातिरेग सागरोवमं, उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूण।

[२८ प्र] भगवन् ! नरदेवो का कितने काल का अन्तर होता है ?

[२८ उ] गौतम ! (नरदेव का अन्तर) जघन्य सागरोपम से कुछ अधिक और उत्कृष्ट अनन्तकाल, देशोन अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त्त-काल पर्यन्त होता है।

२९. धम्मदेवस्स ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमपुहत्तं, उक्कोसेण अणतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

[२९ प्र] भगवन् ! धर्मदेव का अन्तर कितने काल तक का होता है ?

[२९ उ] गौतम ! (धर्मदेव का अन्तर) जघन्यपल्योपम-पृथक्त्व (दो से नौ पल्योपम) तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त्त तक होता है।

३०. देवाहिदेवाणं पुच्छा ?

गोयमा ! नत्थि अंतरं।

[३० प्र] भगवन् ! देवाधिदेवो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[३० उ] गौतम ! देवाधिदेवो का अन्तर नही होता।

३१ भावदेवस्स णं० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणतं काल-वणस्सतिकालो।

[३१ प्र.] भगवन् ! भावदेव का अन्तर कितने काल का होता है ?

[३१ उ] गौतम ! (भावदेव का अन्तर) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल पर्यन्त अन्तर होता है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८६ (ख) भगवती० (हिन्दी विवेचन) भा ४ पृ २१०१

विवेचन—अन्तर : आशय—यहाँ पचविध देवो के अन्तर से शास्त्रकार का यह आशय है कि एक देव को अपना एक भव पूर्ण करके पुन उसी भव मे उत्पन्न होने मे जितने काल का जघन्य या उत्कृष्ट अन्तर (व्यवधान) होता है वह अन्तर है।

भव्यद्रव्यदेव के जघन्य एव उत्कृष्ट अन्तर का कारण—कोई भव्यद्रव्यदेव दस हजार वर्ष की स्थिति वाले, व्यन्तरादि देवो मे उत्पन्न हुआ, और वहाँ से च्यव कर शुभ पृथ्वीकायादि मे चला गया। वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त तक रहा, फिर तुरत भव्यद्रव्यदेव मे उत्पन्न हो गया। इस दृष्टि से भव्यद्रव्यदेव का अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष होता है। कई लोग यह शका प्रस्तुत करते है कि दस हजार वर्ष का आयुष्य तो समझ मे आता है, किन्तु वह जब आयुष्य पूर्ण होने के तुरत बाद ही उत्पन्न हो जाता है, शुभ पृथ्वी आदि मे फिर अन्तर्मुहूर्त्त अधिक कैसे लग जाता है, यह समझ मे नही आता! इसका समाधान करते हुए कोई आचार्य कहते हैं—जिसने देव का आयुष्य बाध लिया है, उसको यहाँ 'भव्यद्रव्यदेव' रूप से समझना चाहिए। इससे दस हजार वर्ष की स्थिति वाला देव, देवलोक से च्यव कर भव्यद्रव्यदेव रूप से उत्पन्न होता है, और अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् आयुष्य का वन्ध करता है। इसलिए अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का अन्तर होता है। तथा अपर्याप्त जीव देवगति मे उत्पन्न नही हो सकता अत पर्याप्त होने के बाद ही उसे भव्यद्रव्यदेव मानना चाहिए। ऐसा मानने से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का होता है।

भव्यद्रव्यदेव मर कर देव होता है और वहाँ से च्यव कर वनस्पति आदि मे अनन्तकाल तक रह सकता है, फिर भव्यद्रव्यदेव होता है। इस दृष्टि से उसका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल का होता है।[1]

नरदेव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर—जिन नरदेवो (चक्रवर्त्तियो) ने कामभोगो की आसक्ति को नही छोडा, वे यहाँ से मर कर पहले नरक मे उत्पन्न होते है। वहाँ एक सागरोपम की उत्कृष्ट आयु भोग कर पुन नरदेव हो और जब तक चक्ररत्न उत्पन्न न हो, तब तक उनका जघन्य अन्तर एक सागरोपम से कुछ अधिक होता है। कोई सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती पद प्राप्त करे, फिर वह देशोन अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त्त काल तक ससार मे परिभ्रमण करे, इसके बाद सम्यक्त्व प्राप्त कर चक्रवर्तीपद प्राप्त करे और सयम पालन कर मोक्ष जाए, इस अपेक्षा से नरदेव का उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्त्त कहा गया है।[2]

धर्मदेव का जघन्य अन्तर—कोई धर्मदेव (चारित्रवान् साधु) सौधर्म देवलोक मे पल्योपम-पृथक्त्व आयुष्य वाला देव हो और वह वहाँ से च्यव कर पुन मनुष्य भव प्राप्त करे। वहाँ वह साधिक आठ वर्ष की आयु मे चारित्र ग्रहण करे, इस अपेक्षा से धर्मदेव का जघन्य अन्तर पल्योपम पृथक्त्व कहा गया है।[3]

देवाधिदेव का अन्तर नहीं—होता, क्योकि वे (तीर्थंकर भगवान्) आयुष्यकर्म पूर्ण होने पर सीधे मोक्ष मे जाते है।[4]

---

१ (क) भगवती० अ० वृत्ति, पत्र ५८७ (ख) भगवती० (हिन्दी विवेचन) भा ४, पृ २१०२

२ वही, अ० वृत्ति, पत्र ५८७

३ वही, पत्र ५८७

४ भगवती० (हिन्दी विवेचन) भा ४, पृ २१०२

पंचविध देवो का अल्पबहुत्व

३२. एएसि णं भंते ! भवियदव्वदेवाण नरदेवाणं जाव भावदेवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा नरदेवा, देवाहिदेवा सखेज्जगुणा, धम्मदेवा संखेज्जगुणा, भवियदव्वदेवा असंखेज्जगुणा भावदेवा असखेज्जगुणा ।

[३२ प्र] भगवन् ! इन भव्यद्रव्यदेव नरदेव यावत् भावदेव में से कौन (देव) किन (देवो) से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[३२ उ] गौतम ! सबसे थोडे नरदेव होते हैं, उनसे देवाधिदेव सख्यात-गुणा (अधिक) होते है, उनसे धर्मदेव सख्यातगुण (अधिक) होते है, उनसे भव्यद्रव्यदेव असख्यातगुणे होते हैं, और उनसे भी भावदेव असख्यात गुणे होते हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे पचविधदेवो के अल्प-बहुत्व का निरूपण किया गया है ।

नरदेव सबसे थोड़े क्यो हैं ?—इसका कारण यह कि प्रत्येक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल मे भरत और ऐरवत क्षेत्र मे, प्रत्येक मे बारह-बारह चक्रवर्ती उत्पन्न होते है । तथा महाविदेहक्षेत्रीय विजयो मे वासुदेवो के होने से, सभी विजयो मे वे एक साथ उत्पन्न नही होते ।[1]

नरदेवो से देवाधिदेव सख्यातगुणे है—इसका कारण यह है कि भरतादि क्षेत्रो मे वे चक्रवर्त्तियो से दुगुने-दुगुने होते है और महाविदेहक्षेत्र मे भी वे वासुदेवो के विद्यमान रहते भी उत्पन्न होते हैं ।[2]

देवाधिदेवो से धर्मदेव सख्यातगुणे क्यो ?—इसका कारण यह है कि साधु एक समय मे कोटीसहस्र पृथक्त्व (दो हजार करोड से नौ हजार करोड तक) हो सकते है ।[3]

धर्मदेवो से भव्यद्रव्यदेव असख्यातगुणे क्यो ?—देवगतिगामी देशविरत अविरत सम्यग्दृष्टि आदि (मनुष्य तथा तियञ्चपचेन्द्रिय) धर्मदेवो से असख्यातगुणे अधिक होते है, इस कारण धर्मदेवो से भव्यद्रव्यदेव असख्यातगुणे कहे गए है ।[4]

भावदेव उनसे भी असख्यातगुणे—इसलिए बताए गए है कि स्वरूप से ही वे भव्यद्रव्यदेवो से बहुत अधिक हैं ।[5]

भवनवासी आदि भावदेवों का अल्पबहुत्व

३३. एएसि ण भते ! भावदेवाण-भवणवासीण वाणमतराण जोतिसियाणं, वेमाणियाण सोहम्मगाण जाव अच्चुतगाणं, गेवेज्जगाण अणुत्तरोववाइयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

---

१ भगवती. अ, वृत्ति पत्र ५८७

२ वही, पत्र ५८७

३ वही, पत्र ५८७

४ वही, पत्र ५८७

५ वही, पत्र ५८७

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववातिया भावदेवा, उवरिमगेवेज्जा भावदेवा संखेज्जगुणा, मज्झिमगेवेज्जा संखेज्जगुणा, हेट्ठिमगेवेज्जा संखेज्जगुणा, अच्चुए कप्पे देवा संखेज्जगुणा, जाव आणते कप्पे देवा संखेज्जगुणा एवं जहा जीवाभिगमे तिविहे देवपुरिसे अप्पाबहुयं जाव जोतिसिया भावदेवा असंखेज्जगुणा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ बारसमे सए : नवमो उद्देसओ समत्तो ॥ १२-९॥

[३३ प्र.] भगवन् ! भवनवासी, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक, तथा वैमानिकों में भी सौधर्म, ईशान, यावत् अच्युत, ग्रैवेयक एवं अनुत्तरोपपातिक विमानों तक के भावदेवों में कौन (देव) किस (देव) से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े अनुत्तरोपपातिक भावदेव हैं, उनसे उपरिम ग्रैवेयक के भावदेव संख्यातगुणे अधिक हैं, उनसे मध्यम ग्रैवेयक के भावदेव संख्यातगुणे हैं, उनसे नीचे के ग्रैवेयक के भावदेव संख्यात गुणे हैं। उनसे अच्युतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं, यावत् आनतकल्प के देव संख्यात गुणे हैं। इससे आगे जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति के त्रिविध (जीवाधिकार) में देवपुरुषों का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी यावत् ज्योतिषी भावदेव असंख्यात गुणे (अधिक) हैं—तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह उसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर श्री गौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में विविध भावदेवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

भावदेवों के अल्पबहुत्व में त्रिविधजीवाधिकार का अतिदेश—प्रस्तुत अल्पबहुत्व जीवाभिगमसूत्रोक्त त्रिविध जीवाधिकार का जो अतिदेश किया गया है। वहाँ अल्पबहुत्व इस प्रकार वर्णित है—आरणकल्प में सहस्रारकल्प में भावदेव असंख्यातगुणे हैं, उनसे महाशुक्र में असंख्यातगुणे, उनसे लान्तक में असंख्यातगुणे, उनसे ब्रह्मलोक के देव असंख्यातगुणे हैं। उनसे माहेन्द्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं। उनसे सनत्कुमार कल्प के देव असंख्यात गुणे, उनसे ईशान के देव असंख्यात गुणे हैं, और ईशान देवों से सौधर्म कल्प के देव संख्यात गुणा हैं। उनसे भवनवासी देव असंख्यात गुणे हैं। उनसे वाणव्यन्तर देव असंख्यात गुणा है और वाणव्यन्तर से ज्योतिष्क भावदेव असंख्यातगुणा हैं।[1]

॥ बारहवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५८७

(ख) जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति २, त्रिविध जीवाधिकार, (आगमोदयसमिति) वृत्ति, पत्र ७१

दसमो उद्देसओ : आता

दशम उद्देशक : आत्मा

आत्मा के आठ प्रकार

१. कतिविधा णं भंते ! आता पन्नत्ता ?

गोयमा ! अट्ठविहा आता पन्नत्ता, तं जहा—दवियाया कसायाया जोगाया उवयोगाया णाणाया दंसणाया चरित्ताया वीरियाया।

[१ प्र] भगवन् ! आत्मा कितने प्रकार की कही गई है ?

[१ उ] गौतम ! आत्मा आठ प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) द्रव्यात्मा, (२) कषायात्मा, (३) योग-आत्मा, (४) उपयोग-आत्मा, (५) ज्ञान-आत्मा, (६) दर्शन-आत्मा, (७) चारित्र-आत्मा और (८) वीर्यात्मा।

विवेचन—आत्मा का स्वरूप—जिसमे सदा उपयोग, अर्थात्—बोध रूप व्यापार पाया जाए, वह आत्मा है।[1] उपयोग रूप लक्षण सामान्यतया सभी आत्माओ मे पाया जाता है, किन्तु विशिष्ट गुण अथवा उपाधि को प्रधान मान कर आत्मा के आठ प्रकार बताए है।[2]

(१) **द्रव्यात्मा**—त्रिकालानुगामी देव, मनुष्य आदि विविध पर्यायो से युक्त द्रव्य रूप आत्मा द्रव्यात्मा है। यह सभी जीवो के होती है।

(२) **कषायात्मा**—क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय और हास्यादि रूप छह नोकषाय से युक्त आत्मा कषायात्मा कहलाती है। यह आत्मा उपशान्तकषाय एव क्षीणकषाय आत्माओ के सिवाय सभी ससारी जीवो के होती है।

(३) **योग-आत्मा**—मन, वचन और काया के व्यापार को योग कहते है, तीनो योगो से युक्त आत्मा योग-आत्मा कहलाती है। अयोगी केवली और सिद्धो के अतिरिक्त सभी सयोगी जीवो के यह आत्मा होती है।

(४) **उपयोग-आत्मा**—ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग-प्रधान आत्मा उपयोग-आत्मा है। अथवा विवक्षित वस्तु के प्रति उपयोग की अपेक्षा से जिसमे वैसा उपयोग हो, वह भी उपयोगात्मा है। यह सिद्ध और ससारी सभी जीवो के होती है।

(५) **ज्ञान-आत्मा**—विशेष अवबोध रूप सम्यग्ज्ञान से विशिष्ट आत्मा को ज्ञानात्मा कहते है। ज्ञानात्मा सम्यग्दृष्टि जीवो के होती है।

---

१ 'अतधातोर्गमनार्थत्वेन ज्ञानार्थत्वाद् अतति-सन्ततमवगच्छति उपयोगलक्षणत्वादित्यात्मा।'—भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८९

२ वही, पत्र ५८९

(६) दर्शन-आत्मा—सामान्य-अवबोध रूप दर्शन से विशिष्ट आत्मा दर्शनात्मा है। दर्शनात्मा सभी जीवों के होती है।

(७) चारित्रात्मा—चारित्रविशिष्ट गुण से युक्त आत्मा को चारित्रात्मा कहते है, जो विरति वाले साधु-श्रावकों के होती है।

(८) वीर्यात्मा—उत्थानादिरूप कारणों से युक्त सकरण वीर्य विशिष्ट आत्मा को वीर्यात्मा कहते हैं। जो सभी ससारी जीवों के होती हैं। सिद्धों में सकरण वीर्य न होने से उनमे वीर्यात्मा नही मानी जाती।

द्रव्यात्मा आदि आठों का परस्पर सहभाव-असहभाव-निरूपण

२. [१] जस्स ण भंते ! दवियाया तस्स कसायाया, जस्स कसायाया तस्स दवियाया ?

गोयमा ! जस्स दवियाया तस्स कसायाता सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण कसायाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

[२-१ प्र] भगवन् ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, क्या उसके कषायात्मा होती है और जिसके कषायात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा होती है ?

[२-१ उ] गौतम ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके कषायात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं भी होती। किन्तु जिसके कषायात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है।

[२] जस्स णं भंते ! दवियाता तस्स जोगाया० ?

एवं जहा दवियाया य कसायाता य भणिया तहा दवियाया य जोगाया य भाणियव्वा।

[२-२ प्र] भगवन् ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, क्या उसके योग-आत्मा होती है और जिसके योग-आत्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा होती है ?

[२-२ उ] गौतम ! जिस प्रकार द्रव्यात्मा और कषायात्मा का सम्बन्ध कहा है, उसी प्रकार द्रव्यात्मा और योग-आत्मा का सम्बन्ध कहना चाहिए।

[३] जस्स णं भंते ! दवियाया तस्स उवयोगाया० ?

एव सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा। जस्स दवियाया तस्स उवयोगाया नियमं अत्थि, जस्स वि उवयोगाया तस्स वि दवियाया नियमं अत्थि। जस्स दवियाया तस्स नाणाया भयणाए, जस्स पुण नाणाया तस्स दवियाता नियम अत्थि। जस्स दवियाया तस्स दसणाया नियमं अत्थि, जस्स वि दसणाया तस्स दवियाया नियम अत्थि। जस्स दवियाया तस्स चरित्ताया भयणाए, जस्स पुण चरित्ताया तस्स दवियाया नियम अत्थि। एवं वीरियायाए वि समं।

[२-३ प्र.] भगवन् ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, क्या उसके उपयोगात्मा होती है और जिसके उपयोगात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा होती है ? इसी प्रकार शेष सभी आत्माओं के द्रव्यात्मा से सम्बन्ध के विषय मे पृच्छा करनी चाहिए।

[२-३ उ] गौतम ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके उपयोगात्मा अवश्य होती है और जिसके उपयोगात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा अवश्यमेव होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके ज्ञानात्मा भजना (वैकल्पिक रूप) से होती है (अर्थात्—कदाचित् होती है, कदाचित् नही भी होती।) और जिसके ज्ञानात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्यमेव होती है तथा जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा भी अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा भजना से होती है, किन्तु जिसके चारित्रात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके वीर्य-आत्मा भजना से होती है, किन्तु जिसके वीर्य-आत्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्यमेव होती है।

३. [१] जस्स ण भते ! कसायाया तस्स जोगाया० पुच्छा।

गोयमा ! जस्स कसायाता तस्स जोगाया नियमं अत्थि, जस्स पुण जोगाया तस्स कसायाया सिय अत्थि सिय नत्थि।

[३-१ प्र] भगवन् ! जिसके कषायात्मा होती है, क्या उसके योगात्मा होती हैं ? (इत्यादि) प्रश्न है।

[३-१ उ] गौतम ! जिसके कषायात्मा होती है, उसके योग-आत्मा अवश्य होती है, किन्तु जिसके योग-आत्मा होती है, उसके कषायात्मा कदाचित् होती है, कदाचित् नही होती।

[२] एव उवयोगायाए वि समं कसायाता नेयव्वा।

[३-२] इसी प्रकार उपयोगात्मा के साथ भी कषायात्मा का परस्पर सम्बन्ध समझ लेना चाहिए।

[३] कसायाया य नाणाया य परोप्पर दो वि भइयव्वाओ।

[३-३] कषायात्मा और ज्ञानात्मा इन दोनो का परस्पर सम्बन्ध भजना से (कादाचित्क) कहना चाहिए।

[४] जहा कसायाया य उवयोगाया य तहा कसायाया य दसणाया य।

[३-४] कषायात्मा और उपयोगात्मा (के परस्पर सम्बन्ध) के समान ही कषायात्मा और दर्शनात्मा (के पारस्परिक सम्बन्ध) का कथन करना चाहिए।

[५] कसायाया य चरित्ताया य दो वि परोप्परं भइयव्वाओ।

[३-५] कषायात्मा और चारित्रात्मा का (परस्पर सम्बन्ध) भजना से कहना चाहिए।

[६] जहा कसायाया य जोगाया य तहा कसायाया य वीरियाया य भाणियव्वाओ।

[३-६] कषायात्मा और योगात्मा के परस्पर सम्बन्ध के समान ही कषायात्मा और वीर्यात्मा के सम्बन्ध का कथन करना चाहिए।

४. एवं जहा कसायाताए वत्तव्वया भणिया तहा जोगायाए वि उवरिमाहिं समं भाणियव्वा ।[1]

[४] जिस प्रकार कषायात्मा के साथ अन्य छह आत्माओं के पारस्परिक सम्बन्ध की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार योगात्मा के साथ भी आगे की पाँच आत्माओं के परस्पर सम्बन्ध की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

५. जहा दवियायाए वत्तव्वया भणिया तहा उवयोगायाए वि उवरिल्लाहिं समं भाणियव्वा ।

[५] जिस प्रकार द्रव्यात्मा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार उपयोगात्मा की वक्तव्यता भी आगे की चार आत्माओं के साथ कहनी चाहिए।

६. [१] जस्स नाणाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि, जस्स पुण दंसणाया तस्स णाणाया भयणाए।

[६-१] जिसके ज्ञानात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है और जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा भजना से होती है।

[२] जस्स नाणाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण चरित्ताया तस्स नाणाया नियमं अत्थि ।

[६-२] जिसके ज्ञानात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा भजना से होती है और जिसके चारित्रात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा अवश्य होती है।

[३] णाणाया य वीरियाया य दो वि परोप्परं भयणाए ।

[६-३] ज्ञानात्मा और वीर्यात्मा इन दोनों का परस्पर-सम्बन्ध भजना से कहना चाहिए।

७. जस्स दंसणाया तस्स उवरिमाओ दो वि भयणाए, जस्स पुण ताओ तस्स दंसणाया नियमं अत्थि ।

[७] जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा, ये दोनों भजना से होती हैं, किन्तु जिसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है।

८. जस्स चरित्ताया तस्स वीरियाया नियमं अत्थि, जस्स पुण वीरियाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि सिय नत्थि ।

[८] जिसके चारित्रात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा अवश्य होती है, किन्तु जिसके वीर्यात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं भी होती।

विवेचन—प्रस्तुत सात सूत्रों में अष्टविध आत्माओं के परस्पर सम्बन्ध की अर्थात् एक प्रकार में दूसरा प्रकार रहता है या नहीं? इसकी प्ररूपणा की गई है।

---

१ वाचनान्तर—मूल पाठ इस प्रकार है—जोगाया य चरित्ताया य दोवि परोप्पर भइयव्वाओ। किन्तु वाचनान्तर इस प्रकार है—जस्स चरित्ताया तस्स जोगाया नियम ति। तत्र च चारित्रस्य प्रत्युपेक्षणादिव्यापाररूपस्य विवक्षितत्वात्, तस्य च योगाविनाभावित्वात्, यस्य चारित्रात्मा तस्य योगात्मा नियमात् इत्युच्यते।'

—भगवती अ. वृ. पत्र ५९१

द्रव्यात्मा के साथ शेष आत्माओ का सम्बन्ध—जिस जीव के द्रव्यात्मा होती है, उसके कषायात्मा, सकषाय अवस्था मे होती है, किन्तु उपशान्तकषाय या क्षीणकषाय अवस्था मे नही होती। किन्तु जिस जीव के कषायात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा नियम से होती है, क्योकि द्रव्यात्मत्व—जीवत्व के विना कषायो का होना सम्भव नही है।

जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके योगात्मा सयोगी अवस्था मे होती है, किन्तु अयोगी अवस्था मे द्रव्यात्मा के साथ योगात्मा नही होती। इसके विपरीत जिस जीव के योगात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा नियम से होती है, क्योकि द्रव्यात्मा जीवरूप है, विना जीव के योगो का होना सम्भव नही है।

द्रव्यात्मा और उपयोगात्मा का परस्पर नित्य अविनाभावी सम्बन्ध होने के कारण द्रव्यात्मा के साथ उपयोगात्मा एव उपयोगात्मा के साथ द्रव्यात्मा अवश्य होती है, क्योकि द्रव्यात्मा जीव रूप है और उपयोग उसका लक्षण है, इसलिए दोनो एक दूसरे के साथ नियम से पाई जाती हैं।

जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा की भजना है, क्योकि सम्यग्दृष्टि द्रव्यात्मा के ज्ञानात्मा होती है, मिथ्यादृष्टि के सम्यग्ज्ञान-रूप ज्ञानात्मा नही होती, किन्तु ज्ञानात्मा के साथ द्रव्यात्मा अवश्य होती है, क्योकि द्रव्यात्मा के बिना ज्ञानात्मा सभव नही है।

द्रव्यात्मा और उपयोगात्मा के समान द्रव्यात्मा और दर्शनात्मा मे भी नित्य सम्बन्ध है; क्योकि सामान्य अवबोधरूप दर्शन तो प्रत्येक जीव के होता है, सिद्ध भगवान् के भी केवलदर्शन होता है। जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा नियम से होती है, जैसे—चक्षुदर्शनादिवाले के द्रव्यात्मा होती है। विरतिवाले द्रव्यात्मा के साथ ही चारित्रात्मा पाई जाती है, विरतिरहित ससारी और सिद्ध जीवो मे द्रव्यात्मा होने पर भी चारित्रात्मा नही पाई जाती। किन्तु चारित्रात्मा होती है, वहाँ द्रव्यात्मा अवश्य होती है, क्योकि द्रव्यात्मा के विना चारित्र सम्भव नही है।

द्रव्यात्मा के साथ वीर्यात्मा के सम्बन्ध की भजना है, क्योकि सकरण वीर्ययुक्त प्रत्येक ससारी जीव (द्रव्यात्मा) के वीर्यात्मा रहती है, किन्तु सिद्धो मे सकरण वीर्य न होने से उनकी द्रव्यात्मा के साथ वीर्यात्मा नही होती। जहाँ वीर्यात्मा है, वहाँ द्रव्यात्मा अवश्य होती है, क्योकि वीर्यात्मा वाले समस्त ससारी जीवो मे द्रव्यात्मा होती है।

कषायात्मा के साथ आगे की छह आत्माओ का सम्बन्ध : क्यो है, क्यो नही ?—जिसके कषायात्मा होती है, उसके योगात्मा अवश्य होती है, क्योकि सकषायी आत्मा अयोगी नही होती। जिसके योगात्मा होती है, उसके कषायात्मा की भजना है, क्योकि सयोगी आत्मा सकषायी और अकषायी दोनो प्रकार की होती है।

जिस जीव के कषायात्मा होती है, उसके उपयोगात्मा अवश्य होती है, क्योकि कोई भी जीव उपयोग से रहित है ही नही। उपयोगात्मा मे कषायात्मा की भजना है, क्योकि ग्यारहवे से लेकर चौदहवे गुणस्थानवर्ती जीवो मे तथा सिद्ध जीवो मे उपयोगात्मा तो है, किन्तु कषाय का अभाव है।

जिस जीव के कषायात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा की भजना है। मिथ्यादृष्टि के कषायात्मा तो होती है, किन्तु ज्ञानात्मा (सम्यग्ज्ञानरूपा) नही। सकषायी सम्यग्दृष्टि के ज्ञानात्मा

होती है। जिस जीव के ज्ञानात्मा होती है, उसके कषायात्मा की भी भजना है, क्योंकि सम्यग्ज्ञानी कषायसहित भी होते है और कषायरहित भी।

जिस जीव के कषायात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है, दर्शनरहित घटादि जड पदार्थों मे कषायो का सर्वथा अभाव है। जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके कषायात्मा की भजना है, क्योंकि दर्शनात्मा वाले सकषायी और अकषायी दोनो होते हैं।

जिसके कषायात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा की भजना है और चारित्रात्मा वालो के भी कषायात्मा की भजना है, क्योंकि कषायवाले जीव विरत और अविरत दोनो प्रकार के होते है। अथवा सामायिकादि चारित्र वाले साधको के कषाय रहती है, जबकि यथाख्यात चारित्र वाले कषायरहित होते है।

जिस जीव के कषायात्मा है, उसके वीर्यात्मा अवश्य होती है, जो सकरण वीर्य रहित सिद्ध जीव है, उनमे कषायों का अभाव पाया जाता है। वीर्यात्मा वाले जीवो के कषायात्मा की भजना है, क्यों कि वीर्यात्मा वाले जीव सकषायी और अकषायी दोनो प्रकार के होते हैं।

योगात्मा के साथ आगे की पांच आत्माओ का सम्बन्ध : क्यो है, क्यो नही ?—जिस जीव के योगात्मा होती है, उसके उपयोगात्मा अवश्य होती है, क्योंकि सभी सयोगी जीवो मे उपयोग होता ही है, किन्तु जिसके उपयोगात्मा होती है, उसके योगात्मा होती भी है और नही भी होती। चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगीकेवली और सिद्ध भगवान् मे उपयोगात्मा होते हुए भी योगात्मा नहीं है।

जिस जीव के योगात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा की भजना है। मिथ्यादृष्टि जीवो मे योगात्मा होते हुए भी ज्ञानात्मा नही होती। इसी प्रकार ज्ञानात्मा वाले जीव के भी योगात्मा की भजना है, चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगीकेवली और सिद्ध जीवो मे ज्ञानात्मा होते हुए भी योगात्मा नही होती।

जिस जीव के योगात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है, क्योंकि समस्त जीवो मे सामान्य अवबोधरूप दर्शन रहता ही है। किन्तु जिस जीव के दर्शनात्मा होती है, उसके योगात्मा की भजना है। दर्शन वाले जीव योगसहित भी होते है, योगरहित भी।

जिस जीव के योगात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा की भजना है, योगात्मा होते हुए भी अविरत जीवो मे चारित्रात्मा नही होती। इसी तरह चारित्रात्मा वाले जीवो के भी योगात्मा की भजना है, क्योंकि चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी जीवो के चारित्रात्मा तो है, परन्तु योगात्मा नही है। दूसरी वाचना के अनुसार जिसके चारित्रात्मा होती है, उसके योगात्मा अवश्य होती है, क्योंकि प्रत्युपेक्षणादि व्यापाररूप चारित्र योगपूर्वक ही होता है।

जिसके योगात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा अवश्य होती है, क्योंकि योग होने पर वीर्य अवश्य होता ही है। किन्तु जिसके वीर्यात्मा होती है, उसके योगात्मा की भजना है, क्योंकि अयोगीकेवली मे वीर्यात्मा तो है, किन्तु योगात्मा नही है। यह बात करण और लब्धि दोनो वीर्यात्माओ को लेकर कही गई है। जहाँ करणवीर्यात्मा है, वहाँ योगात्मा अवश्यम्भावी है, किन्तु जहाँ लब्धिवीर्यात्मा है, वहाँ योगात्मा की भजना है।

उपयोगात्मा के साथ ऊपर की चार आत्माओं का सम्बन्ध : क्यो है, क्यो नहीं ? जिस जीव के उपयोगात्मा है, उसमे ज्ञानात्मा की भजना है, क्योकि मिथ्यादृष्टि जीवो मे उपयोगात्मा होते हुए भी ज्ञानात्मा नही होती। जिस जीव के ज्ञानात्मा है, उसके उपयोगात्मा तो अवश्य ही होती है। इसी तरह जिस जीव के उपयोगात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा और जिसके दर्शनात्मा है, उसके उपयोगात्मा अवश्य ही होती है। जिस जीव के उपयोगात्मा है, उसमे चारित्रात्मा की भजना है, क्योकि असयती जीवो के उपयोगात्मा तो होती है, परन्तु चारित्रात्मा नही होती। जिस जीव के चारित्रात्मा है, उसके उपयोगात्मा अवश्य ही होती है। जिस जीव मे उपयोगात्मा होती है, उसमे वीर्यात्मा की भजना है, क्योकि सिद्धो मे उपयोगात्मा होते हुए भी वीर्यात्मा नही पाई जाती।

ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, चारित्रात्मा और वीर्यात्मा मे उपयोगात्मा अवश्य ही रहती है, क्योकि जीव का लक्षण ही उपयोग है। उपयोग लक्षण वाला जीव ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य का कारण होता है। उपयोगशून्य घटादि जड पदार्थ होते है, जिनमे ज्ञानादि नही पाये जाते।

ज्ञानात्मा के ऊपर की तीन आत्माओ का सम्बन्ध . क्यो है और क्यो नहीं ? जिस जीव मे ज्ञानात्मा है, उसके दर्शनात्मा अवश्य ही होती है, क्योकि ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) सम्यग्दृष्टि जीवो के ही होता है और वह दर्शनपूर्वक ही होता है। जिस जीव के दर्शनात्मा है, उसके ज्ञानात्मा की भजना है, क्योकि मिथ्यादृष्टि जीवो के दर्शनात्मा होते हुए भी ज्ञानात्मा नही होती। जिस जीव के ज्ञानात्मा है, उसके चारित्रात्मा की भजना होती है, अविरति सम्यग्दृष्टि जीव के ज्ञानात्मा होते हुए भी चारित्रात्मा नही होती। जिस जीव के चारित्रात्मा है, उसके ज्ञानात्मा अवश्य ही होती है। ज्ञान के बिना चारित्र का अभाव है। जिस जीव मे ज्ञानात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा की भजना है, क्योकि सिद्धजीवो मे ज्ञानात्मा के होते हुए भी वीर्यात्मा नही होती। जिस जीव के वीर्यात्मा है, उसके ज्ञानात्मा की भजना है, क्योकि मिथ्यादृष्टि जीवो के वीर्यात्मा होते हुए भी ज्ञानात्मा नही होती।

दर्शनात्मा के साथ चारित्रात्मा और वीर्यात्मा का सम्बन्ध : क्यों और क्यो नही ? जिस जीव के दर्शनात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा की भजना है। क्योकि दर्शनात्मा के होते हुए भी असयती जीवो के चारित्रात्मा नही होती और सिद्धो के वीर्यात्मा नही होती, जबकि उनमे दर्शनात्मा अवश्य होती है। सामान्यावबोधरूप दर्शन तो सभी जीवो मे होता है।

चारित्रात्मा और वीर्यात्मा का सम्बन्ध—जिस जीव के चारित्रात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा अवश्य होती है, क्योकि वीर्य के बिना चारित्र का अभाव है, किन्तु जिस जीव मे वीर्यात्मा होती है, उसमे चारित्रात्मा की भजना है, क्योकि असयत जीवो मे वीर्यात्मा होते हुए भी चारित्रात्मा नही होती।[1]

९. एयासि णं भंते ! दवियायाणं कसायायाणं जाव वीरियायाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ चरित्तायाओ, नाणायाओ अणंतगुणाओ, कसायायाओ अणतगुणाओ, जोगायाओ विसेसाहियाओ, वीरियायाओ विसेसाहियाओ, उवयोग-दविय-दंसणायाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५८९-५९०-५९१
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २११० से २११५ तक

[९ प्र] भगवन् ! द्रव्यात्मा, कषायात्मा यावत् वीर्यात्मा—इनमे से कौन-सी आत्मा, किससे अल्प, बहुत, यावत् विशेषाधिक है ?

[९ उ] गौतम ! सबसे थोडी चारित्रात्माएँ है, उनसे ज्ञानात्माएँ अनन्तगुणी है, उनसे कषायात्माएँ अनन्तगुणी है, उनसे योगात्माएँ विशेषाधिक हैं, उनसे वीर्यात्माएँ विशेषाधिक है, उनसे उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा और दर्शनात्मा, ये तीनो विशेषाधिक है और तीनो तुल्य है।

विवेचन—अल्पबहुत्व क्यो और कैसे ?—अष्टविध आत्माओ का अल्पबहुत्व मूलपाठ मे बताया है। उसका कारण यह है—सबसे कम चारित्रात्माएँ है, क्योकि चारित्रवान् जीव सख्यात ही होते हैं। चारित्रात्मा से ज्ञानात्मा अनन्तगुणी है, क्योकि सिद्ध और सम्यग्दृष्टि जीव चारित्री जीवो से अनन्तगुणे है। ज्ञानात्मा से कषायात्मा अनन्तगुणी हैं, क्योकि सिद्ध जीवो की अपेक्षा सकषायी जीव अनन्तगुणे हैं। कषायात्मा से योगात्मा विशेषाधिक है, क्योकि योगात्मा मे कषायात्मा जीव तो सम्मिलित हैं ही और कषायरहित योग वाले जीवो का भी इसमे समावेश हो जाता है। योगात्मा से वीर्यात्मा विशेषाधिक हैं, क्योकि वीर्यात्मा मे अयोगी आत्माओ का भी समावेश हो जाता है। उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा और दर्शनात्मा, ये तीनो परस्पर तुल्य हैं, क्योकि तीनो विशिष्ट आत्माएँ सभी जीवो मे सामान्यरूप से पाई जाती हैं, किन्तु वीर्यात्मा से ये तीनो विशेषाधिक है, क्योकि इन तीनो आत्माओ मे वीर्यात्मा वाले ससारी जीवो के अतिरिक्त सिद्ध जीवो का भी समावेश होता है।[1]

१०. आया भंते ! नाणे,[2] अन्नाणे ?

गोयमा ! आया सिय नाणे, सिय अन्नाणे, णाणे पुण नियमं आया।

[१० प्र] भगवन् ! आत्मा ज्ञानस्वरूप है या अज्ञानस्वरूप है ?

[१० उ] गौतम ! आत्मा कदाचित् ज्ञानरूप है, कदाचित् अज्ञानरूप है। (किन्तु) ज्ञान तो नियम से (अवश्य ही) आत्मस्वरूप है।

विवेचन—प्रश्न का आशय—आचाराग सूत्र मे बताया गया है, **'जे आया से विन्नाणे जे विन्नाणे से आया'** (जो आत्मा है, वह विज्ञान रूप है, जो विज्ञान है, वह आत्मरूप है), किन्तु यहाँ पूछा गया है कि 'आत्मा ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप ?' और उसके उत्तर मे भगवान् ने आत्मा को कदाचित् ज्ञानरूप कहने के साथ-साथ कदाचित् अज्ञानरूप भी बता दिया है, इसका क्या रहस्य है ? क्या ज्ञान आत्मा से भिन्न है ? इसका उत्तर यह है कि वैसे तो आत्मा ज्ञान से अभिन्न है, वह त्रिकाल मे भी ज्ञानरहित नही हो सकता, परन्तु यहाँ ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान है और अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नही, अपितु मिथ्याज्ञान है। सम्यक्त्व होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान और मति-श्रुतादिरूप हो जाता है और मिथ्यात्व होने पर ज्ञान, अज्ञान यानी मति—अज्ञानादि रूप हो जाता है। वैसे सामान्यतया ज्ञान आत्मा से भिन्न नही है, क्योकि वह आत्मा का धर्म है। धर्म धर्मी से कदापि भिन्न नही हो सकता। इस अभेददृष्टि से 'ज्ञान को नियम से आत्मा' (आत्मस्वरूप) कहा गया है। अज्ञान भी है तो ज्ञान का ही विकृत रूप, किन्तु वह मिथ्यात्व के कारण विपरीत (मिथ्या ज्ञान) हो जाता है। इसलिए यहाँ आत्मा को कथञ्चित् अज्ञान रूप कहा गया है।[3]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९१ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २११५

२ पाठान्तर—'.....नाणे ? अन्ने नाणे ? (अर्थात्—आत्मा ज्ञानरूप है या अन्य ज्ञानरूप है ?)

३. भगवती. अभय वृत्ति, पत्र ५९२

११. आया भंते ! नेरइयाणं नाणे, अन्ने नेरइयाणं नाणे ?

गोयमा ! आया नेरइयाणं सिय नाणे सिय अन्नाणे, नाणे पुण से नियम आया ।

[११ प्र] भगवन् ! नैरयिको की आत्मा ज्ञानरूप है अथवा अज्ञानरूप है ?

[११ उ] गौतम ! नैरयिको की आत्मा कथञ्चित् ज्ञानरूप है और कथञ्चित् अज्ञानरूप है। किन्तु उनका ज्ञान नियमतः (अवश्य ही) आत्मरूप है।

१२. एव जाव थणियकुमाराणं ।

[१२] इसी प्रकार (का प्रश्नोत्तर) यावत् 'स्तनितकुमार' (भवनपति देव के अन्तिम प्रकार) तक कहना चाहिए।

१३. आया भंते ! पुढविकाइयाणं अन्नाणे, अन्ने पुढविकाइयाणं अन्नाणे ?

गोयमा ! आया पुढविकाइयाणं नियमं अन्नाणे, अण्णाणे वि नियमं आया ।

[१३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की आत्मा क्या अज्ञानरूप (मिथ्याज्ञानरूप ही) है ? क्या पृथ्वीकायिको का अज्ञान अन्य (आत्मरूप नही) है ?

[१३ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिको की आत्मा नियम से अज्ञान रूप है, परन्तु उनका अज्ञान अवश्य ही आत्मरूप है।

१४. एव जाव वणस्सतिकाइयाणं ।

[१४] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए।

१५. बेइंदिय-तेइंदिय० जाव वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं ।

[१५] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि से लेकर यावत् वैमानिक तक के जीवो तक का कथन नैरयिको के समान (सू ११ मे उक्त के अनुसार) जानना चाहिए।

विवेचन—प्रश्न और उनके आशय—प्रस्तुत ५ सूत्रो (११ से १५ तक) मे नैरयिक से लेकर वैमानिक तक २४ दण्डको मे ज्ञान को लेकर प्रश्न किया गया है। प्रश्न का आशय यह है कि नारको की आत्मा सम्यग्दर्शन होने से ज्ञानरूप (सम्यग्ज्ञान रूप) है अथवा मिथ्यादर्शन होने से अज्ञानरूप है ? भगवान् ने उत्तर मे नैरयिको की आत्मा को कथचित् ज्ञानरूप और कथचित् अज्ञानरूप बताया है, उसका आशय भी वही है। किन्तु उनका ज्ञान (सम्यग्ज्ञान हो या मिथ्याज्ञान) अवश्य ही आत्मरूप है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक जीवो के विषय मे [उनमे नियमत. अज्ञान (मिथ्याज्ञान) होने से] सोधा ही पूछा गया है कि पृथ्वीकायिक आदि (पाच स्थावरो) की आत्मा अज्ञान रूप है, अथवा अज्ञान, पृथ्वीकायिकादि से भिन्न है ? उत्तर मे भी यही कहा गया है कि उनकी आत्मा अज्ञानरूप है और अज्ञान उनकी आत्मा से भिन्न (अन्य) नही है।[1]

द्वीन्द्रिय से लेकर आगे वैमानिक देवो तक ज्ञान के विषय मे प्रश्नोत्तर नैरयिको के समान समझना चाहिए।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९२

१६. आया भंते ! दसणे, अन्ने दंसणे ?

गोयमा ! आया नियमं दंसणे, दसणे वि नियमं आया ।

[१६ प्र] भगवन् ! आत्मा दर्शनरूप है, या दर्शन उससे भिन्न है ?

[१६ उ] गौतम ! आत्मा अवश्य (नियमत) दर्शनरूप है और दर्शन भी नियमत आत्मरूप है ।

१७. आया भंते ! नेरइयाण दसणे, अन्ने नेरइयाण दसणे ?

गोयमा ! आया नेरइयाण नियमं दसणे, दसणे वि से नियम आया ।

[१७ प्र] भगवन् ! नैरयिको की आत्मा दर्शनरूप है, अथवा नैरयिक जीवो का दर्शन उनसे भिन्न है ?

[१७ उ] गौतम ! नैरयिक जीवो की आत्मा नियमत दर्शनरूप है, उनका दर्शन भी नियमत आत्मरूप है ।

१८. एव जाव वेमाणियाण निरतर दडओ ।

[१८] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक चौवीस ही दण्डको (के दर्शन) के विषय मे (कहना चाहिए ।)

विवेचन—'आत्मा दर्शन है, दर्शन आत्मा है'—इसी नियम के अनुसार यहाँ दर्शन के विषय मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के लिए कथन किया गया है । क्योकि सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनो मे दर्शन सामान्यरूप मे अवश्य रहता है ।[1]

१९. [१] आया भंते ! रयणप्पभा पुढवी, अन्ना रयणप्पभा पुढवी ?

गोयमा ! रयणप्पमा पुढवी सिय आया, सिए नो आया, सिय अवत्तव्व—आया ति य, नो आता ति य ।

[१९-१ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी आत्मरूप है या वह (रत्नप्रभापृथ्वी) अन्यरूप है ?

[१९-१ उ] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी कथचित् आत्मरूप (सद्रूप) है और कथञ्चित् नो-आत्मरूप (असद्रूप) है तथा (आत्मरूप भी है एव नो-आत्मरूप भी है, इसलिए) कथञ्चित् अवक्तव्य है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति 'रयणप्पभा पुढवी सिय आता, सिय नो आया, सिय अवत्तव्व—आता ति य, नो आया ति य' ?

गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नो आता, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्व-रयणप्पभा पुढवी आया ति य, नो आया ति य । से तेणट्ठेणं त चेव जाव नो आया ति य ।

[१९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि रत्नप्रभापृथ्वी कथचित्

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९२

आत्मरूप, कथचित् नो-आत्मरूप और कथचित् आत्मरूप एव नो-आत्मरूप (उभयरूप) होने से अवक्तव्य है ?

[१९-२ उ] गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी अपने स्वरूप से व्यपदिष्ट होने पर आत्मरूप (सद्रूप) है, पररूप से आदिष्ट (कथित) होने पर नो-आत्मरूप (असद्रूप) है और उभयरूप की विवक्षा से कथन करने पर सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है। इसी कारण से हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप मे यावत् उसे अवक्तव्य कहा गया है।

२०. आया भंते ! सक्करप्पभा पुढवी ?०

जहा रयणप्पभा पुढवी तहा सक्करप्पभा वि।

[२० प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी आत्म (सद्) रूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[२० उ] जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के विषय मे कथन किया गया है, वैसे ही शर्कराप्रभा के विषय मे भी कहना चाहिए।

२१ एव जाव अहेसत्तमा।

[२१] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी (सप्तम नरक) तक कहना चाहिए।

२२. [१] आया भंते ! सोहम्मे कप्पे ?० पुच्छा।

गोयमा ! सोहम्मे कप्पे सिय आया, सिय नो आया, जाव नो आया ति य।

[२२-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प (प्रथम देवलोक) आत्मरूप (सद्रूप) है ? इत्यादि प्रश्न है।

[२२-१ उ] गौतम ! सौधर्मकल्प कथचित् आत्मरूप है, कथञ्चित् नो-आत्मरूप है तथा कथञ्चित् आत्मरूप-नो-आत्मरूप (सद्-असद्रूप) होने से अवक्तव्य है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! जाव नो आया ति य ?

गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नो आया, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्व आता ति य, नो आया ति य। से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आया ति य।

[२२-२ प्र] भगवन् ! इस कथन का क्या कारण है ?

[२२-२ उ] गौतम ! स्व-स्वरूप की दृष्टि से कथन किये जाने पर आत्मरूप है, पर-रूप की दृष्टि से कहे जाने पर नो-आत्मरूप है और उभयरूप की अपेक्षा से अवक्तव्य है। इसी कारण उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

२३. एवं जाव अच्चुए कप्पे।

[२३] इसी प्रकार यावत् अच्युतकल्प (बारहवे देवलोक) तक (के पूर्वोक्त स्वरूप के विषय मे) जानना चाहिए।

२४. आया भंते ! गेवेज्जविमाणे, अन्ने गेविज्जविमाणे ?

एव जहा रयणप्पभा तहेव।

[२४ प्र] भगवन् ! ग्रैवेयकविमान आत्म(सद्)रूप है ? अथवा वह उससे भिन्न (नो-आत्मरूप) है ?

[२४ उ] गौतम ! इसका कथन रत्नप्रभापृथ्वी के समान करना चाहिए।

२५. एवं अणुत्तरविमाणा वि।

[२५] इसी प्रकार अनुत्तरविमान तक कहना चाहिए।

२६. एवं ईसिपब्भारा वि।

[२६] इसी प्रकार ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक कहना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारा तक के आत्म-अनात्म विषयक प्रश्नोत्तर— प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. १९ से २६) में रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक के आत्मरूप और अनात्मरूप के सम्बन्ध में चर्चा की गई है।

आत्मा-अनात्मा : भावार्थ—प्रस्तुत प्रश्नोत्तरों में आत्मा का अर्थ है—सद्रूप और अनात्मा (अन्य) का अर्थ है—असद्रूप। किसी भी वस्तु को एक साथ सद्रूप और असद्रूप नहीं कहा जा सकता, वैसी स्थिति में वस्तु 'अवक्तव्य' कहलाती है।[1]

रत्नप्रभा आदि पृथ्वी : तीन रूपों में—रत्नप्रभापृथ्वी से ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक स्व-स्वरूप की अपेक्षा से अर्थात्—अपने वर्णादि पर्यायों से—सद् (आत्म) रूप है। पररूप की अर्थात्—परवस्तु की पर्यायों की अपेक्षा से—असद् (अनात्म) रूप है और उभयरूप—स्व-पर-पर्यायों की अपेक्षा से, आत्म (सद्) रूप और अनात्म (असद्) रूप, इन दोनों द्वारा एक साथ कहना अशक्य होने से अवक्तव्य है। इस दृष्टि से यहाँ प्रत्येक पृथ्वी के सद्रूप, असद्रूप और अवक्तव्य, ये तीन भंग होते हैं।[2]

आदिट्ठे-आदिष्ट : भावार्थ—(उसकी अपेक्षा से) कथन किये जाने पर।[3]

२७. आया भंते ! परमाणुपोग्गले, अन्ने परमाणुपोग्गले ?

एवं जहा सोहम्मे तहा परमाणुपोग्गले वि भाणियव्वे।

[२७ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल आत्मरूप (सद्रूप) अथवा वह (परमाणु पुद्गल) अन्य (अनात्म—असद्रूप) है ?

[२७ उ] (गौतम !) जिस प्रकार सौधर्मकल्प (देवलोक) के विषय में कहा है, उसी प्रकार परमाणु-पुद्गल के विषय में कहना चाहिए।

२८. [१] आया भंते ! दुपदेसिए खंधे, अन्ने दुपएसिए खंधे ?

गोयमा ! दुपएसिए खंधे सिय आया १, सिय नो आया २, सिय अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य ३, सिय आया य नो आया य ४, सिय आया य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य ५. सिय नो आया य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य ६।

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५९४

२ वही, पत्र ५९४

३ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५९४ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ८, पृ. २११८

[२८-१ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध आत्मरूप (सद्रूप) है, (अथवा) वह अन्य (असद्रूप) है ?

[२८-१ उ] गौतम ! १—द्विप्रदेशी स्कन्ध कथञ्चित् सद्रूप है, २—कथञ्चित् असद्रूप है, और ३—सद्-असद्रूप होने से कथञ्चित् अवक्तव्य है। ४—कथञ्चित् सद्रूप है और कथञ्चित् असद्रूप है, ५—कथञ्चित् स्वरूप है और सद्-असद्-उभयरूप होने से अवक्तव्य है और ६- कथञ्चित असद्रूप है और सद्-असद्-उभयरूप होने से अवक्तव्य है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं० त चेव जाव नो आया य, अवत्तव्व—आया ति य नो आया ति य?

गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया१; परस्स आदिट्ठे नो आया २; तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं—दुपएसिए खंधे आया ति य, नो आया ति य ३; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे दुपदेसिए खधे आया य नो आया य ४; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए खंधे आया य, अवत्तव्व—आया ति य नो आया ति य ५; देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए खंधे नो आया य, अवत्तव्वं—आता ति य नो आया ति य ६। से तेणट्ठेणं त चेव जाव नो आया ति य।

[२८-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा (कहा जाता है कि द्विप्रदेशी स्कन्ध कथञ्चित् सद्रूप है, इत्यादि।) यावत् कथञ्चित् असद्रूप है और सद्-असद्-उभयरूप होने से अवक्तव्य है ?

[२८-२ उ] गौतम ! (द्विप्रदेशी स्कन्ध) १—अपने स्वरूप की अपेक्षा से कथन किये जाने पर सद्रूप है, २—पररूप की अपेक्षा से कहे जाने पर असद्रूप है और ३—उभयरूप की अपेक्षा से अवक्तव्य है तथा ४—सद्भावपर्याय वाले अपने एक देश की अपेक्षा से व्यपदिष्ट होने पर (उस देश की वर्णादि रूप पर्यायो से युक्त होने के कारण) सद्रूप है तथा असद्भाव पर्याय वाले द्वितीय देश से आदिष्ट होने पर, (उसकी वर्णादि पर्यायो से युक्त न होने के कारण) असद्रूप है। (इस दृष्टि से) कथञ्चित् सद्रूप और कथञ्चित् असद्रूप है। ५—सद्भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा से आदिष्ट होने पर (सद्भाव पर्याय वाले अपने देश की सद्भाव पर्यायो से) सद्रूप और सद्भाव-असद्भाव वाले दूसरे देश की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध सद्रूप-असद्रूप-उभयरूप होने से अवक्तव्य है। ६—एक देश की अपेक्षा से असद्भाव पर्याय की विवक्षा से तथा द्वितीय देश के सद्भाव-असद्भावरूप उभय-पर्याय की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध असद्रूप और अवक्तव्यरूप है। इसी कारण (हे गौतम !) द्विप्रदेशी स्कन्ध को ऐसा (पूर्वोक्त प्रकार से) यावत् कथञ्चित् असद्रूप और सद्-असद्-उभयरूप होने से अवक्तव्य कहा गया है।

विवेचन—परमाणु पुद्गल और द्विप्रदेशी स्कन्ध के सद्-असद्रूप भंग—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. २७-२८) मे परमाणु-पुद्गल एव द्विप्रदेशी स्कन्ध के सद्-असद्रूप सम्बन्धी भगो का निरूपण किया गया है।

परमाणु पुद्गल सम्बन्धी तीन भंग—इसके असयोगी तीन भग होते है—(१) सद्रूप, (२) असद्रूप एव (३) अवक्तव्य ।[1]

द्विप्रदेशी स्कन्ध सम्बन्धी छह भग—तीन असयोगी भग पूर्ववत् सकल स्कन्ध की अपेक्षा से (१) सद्रूप, (२) असद्रूप और (३) अवक्तव्य । तीन **द्विकसयोगी** भग देश की अपेक्षा से—(४) द्विप्रदेशी स्कन्ध होने से उसके एक देश की स्वपर्यायो द्वारा सद्रूप की विवक्षा की जाए और दूसरे देश की पर-पर्यायो द्वारा असद्रूप से विवक्षा की जाय तो द्विप्रदेशी स्कन्ध अनुक्रम से कथचित् सद्रूप और कथञ्चित् असद्रूप होता है । (५) उसके एक देश की स्वपर्यायो द्वारा सद्रूप से विवक्षा की जाए और दूसरे देश से सद्-असद्-उभयरूप से विवक्षा की जाए तो कथचित् सद्रूप और कथचित् अवक्तव्य कहलाता है । (६) जव द्विप्रदेशी स्कन्ध के एक देश की पर्यायो द्वारा असद्रूप से विवक्षा की जाए और दूसरे देश की उभयरूप से विवक्षा की जाए तो असद्रूप और अवक्तव्य कहलाता है ।

कथचित् सद्रूप, कथचित् असद्रूप और कथचित् अवक्तव्यरूप, इस प्रकार सातवाँ भग द्विप्रदेशी स्कन्ध मे नही वनता है । क्योकि उसके केवल दो ही अश है ।[2]

२९. [१] आया भते ! तिपएसिए खंधे, अन्ने तिपएसिए खधे ?

गोयमा ! तिपएसिए खधे सिए आया १, सिय नो आया २, सिय अवत्तव्व-आता ति य नो आता ति य ३, सिय आया य नो आया य ४, सिय आया य नो आयाओ य ५, सिय आयाओ य नो आया य ६, सिय आया य अवत्तव्व—आया ति य नो आया ति य ७, सिय आया य अवत्तव्वाइं—आयाओ य नो आयाओ य ८, सिय आयाओ य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य ९, सिय नो आया य अवत्तव्वं-आया ति य नो आया ति य १०, सिय नो आया य अवत्तव्वाइं-आयाओ य नो आयाओ य ११, सिय नो आयाओ य अवत्तव्वं-आयं ति य नो आया ति य १२, सिय आया य नो आया य अवत्तव्व—आया ति य नो आता ति य १३ ।

[२९ १ प्र] भगवन् ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा (सद्रूप) है अथवा उससे अन्य (असद्-रूप) है ?

[२९-१ उ] गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध १—कथचित् सद्रूप (आत्मा) है । २—कथचित् असद्रूप (नो आत्मा) है । ३—सद्-असद्-उभयरूप होने से कथंचित् अवक्तव्य है । ४— कथचित् आत्मा (सद्रूप) और कथचित् नो आत्मा (असद्रूप) है । ५— कथचित् सद्रूप (आत्मा) और अनेक असद्रूप (नो आत्माएँ) हैं । ६—कथचित् अनेक असद्रूप (आत्माएँ) तथा असद्रूप (नो आत्मा) है । ७—कथचित् सद्रूप (आत्मा) और सद्-असद्-उभयरूप होने से अवक्तव्य है । ८—कथचित् आत्मा (सद्रूप) तथा अनेक सद्-असद्रूप (आत्माएँ तथा नो आत्माएँ) होने से अवक्तव्य है । ९—कथचित् आत्माएँ (अनेक असद्रूप) तथा आत्मा-नो आत्मा (सद्-असद्) उभयरूप से—अवक्तव्य है । १०—कथचित् नो आत्मा (असद्रूप) तथा आत्मा नो आत्मा (सद्-असद्) उभयरूप होने से—अवक्तव्य है । ११—कथचित् नो आत्मा (असद्रूप), तथा आत्माएँ-नो आत्माएँ (अनेक सद्-असद्रूप)-उभयरूप होने से—अवक्तव्य

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९५

२ वही, पत्र ५९५

है। १२—कथंचित् नो आत्माएँ (अनेक असद्रूप) तथा आत्माएँ-नो आत्माएँ (अनेक सद्-असद्रूप) उभयरूप होने से—अवक्तव्य है और १३—कथंचित् आत्मा (सद्रूप), नो-आत्मा (असद्रूप) और आत्मा-नो आत्मा (सद्-असद्) उभयरूप होने से—अवक्तव्य है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'तिपएसिए खधे सिय आया य० एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं—आया-ति य नो आया ति य ?

गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया १; परस्स आइट्ठे नो आया २; तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आया ति य नो आया ति य ३; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे तिपदेसिए खंधे आया य नो आया य ४; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसा आइट्ठा असब्भावपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य नो आयाओ य ५; देसा आदिट्ठा सब्भावपज्जवा, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आयाओ य नो आया य ६, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खधे आया य अवत्तव्वं—आया इ य नो आया ति य ७; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठा तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वाइं—आयाओ य नो आयाओ य ८; देसा आदिट्ठे सब्भावपज्जवा, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आयाओ य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य ९; एए तिण्णि भंगा। देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे नो आया य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १०; देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे नो आया य अवत्तव्वाइं—आयाओ य नो आयाओ य ११; देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे नो आयओ य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १२; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य नो आया य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १३; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ तिपएसिए खंधे सिय आया० तं चेव जाव नो आया ति य।

[२९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि त्रिप्रदेशी स्कन्ध कथंचित् आत्मा है, इत्यादि सब पूर्ववत्, यावत्—कथंचित् आत्मा है, नो आत्मा है और आत्मा-नो आत्म-उभय रूप होने से अवक्तव्य है ? (तक) उच्चारण करना चाहिए।

[२९-२ उ.] गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध १ अपने आदेश (अपेक्षा) से आत्मा (सद्रूप) है, २ पर के आदेश से नो आत्मा (असद्रूप) है, ३ उभय के आदेश से आत्मा और नो आत्मा इस प्रकार उभयरूप होने से अवक्तव्य है। ४. एक देश के आदेश से सद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से असद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से वह त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा और नो-आत्मारूप है। ५. एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और बहुत देशों के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से, वह त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा और नो आत्माएँ हैं। ६ बहुत देशों के आदेश से सद्भाव पर्याय को अपेक्षा से और एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्माएँ और नो आत्मा है। ७ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से उभय-(सद्भाव और असद्भाव) पर्याय की अपेक्षा से

त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा और आत्मा तथा नो आत्मा—उभयरूप से अवक्तव्य है। ८ एक देश के आदेश से, सद्भावपर्याय की अपेक्षा से और वहुत देशो के आदेश से, उभयपर्याय की विवक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध, आत्मा और आत्माएँ तथा नो आत्माएँ, इस प्रकार उभयरूप से अवक्तव्य है। ९ वहुत देशो के आदेश से सद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से उभयपर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्माएँ और आत्मा-नो आत्मा-उभयरूप से अवक्तव्य है। ये तीन भग जानने चाहिए। १०—एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से उभयपर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध नो आत्मा और आत्मा-नो आत्मा-उभयरूप से अवक्तव्य है। ११—एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और वहुत देशो के आदेश से और तदुभय-पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध नोआत्मा और आत्माएँ तथा नो आत्मा इस उभयरूप से अवक्तव्य है। १२—वहुत देशों के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से, त्रिप्रदेशी स्कन्ध नो-आत्माएँ और आत्मा तथा नो-आत्मा इस उभयरूप से अवक्तव्य है। १३—एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से, त्रिप्रदेशी स्कन्ध कथञ्चित् आत्मा, नो आत्मा और आत्मा-नो आत्मा-उभयरूप से अवक्तव्य है। इसलिए हे गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध को कथंचित् आत्मा, यावत्-आत्मा-नो आत्मा उभयरूप से अवक्तव्य कहा गया है।

विवेचन—त्रिप्रदेशी स्कन्ध के आत्मा-नो आत्मा-सम्बन्धी तेरह भंग—प्रस्तुत विषय मे त्रिप्रदेशी स्कन्ध के तेरह भंग होते हैं—उनमे से पूर्वोक्त सप्त भंगो मे से सकलादेश से सम्पूर्ण स्कन्ध की अपेक्षा से तीन भग असंयोगी हैं, तत्पश्चात् नौ भग द्विकसंयोगी हैं तथा एक भग (तेरहवाँ) त्रिकसंयोगी है।[1]

३०. [१] आया भंते ! चउप्पएसिए खंधे, अन्ने० पुच्छा।

गोयमा ! चउप्पएसिए खंधे सिय आया १, सिय नो आया २, सिय अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य ३, सिय आया य नो आया य ४-७, सिय आया य अवत्तव्वं ८-११, सिय नो आया य अवत्तव्वं १२-१५, सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १६, सिय आया य नो आया य अवत्तव्वाइं—आयाओ य नो आयाओ य १७, सिय आया य नो आयाओ य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १८, सिय आयाओ य नो आया य अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १९।

[३०-१ प्र] भगवन् ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्मा (सद्रूप) है, अथवा उससे अन्य (असद्रूप) है ?

[३०-१ उ] गौतम ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध—(१) कथंचित् आत्मा है, (२) कथंचित् नो आत्मा है (३) आत्मा-नो-आत्मा उभयरूप होने से—अवक्तव्य है। (४-७) कथंचित् आत्मा और नो आत्मा है (एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा से चार भग), (८-११)-कथञ्चित् आत्मा और

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९७ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ. २१२९

अवक्तव्य है (एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा से चार भंग), (१२-१५) कथञ्चित् नो आत्मा और अवक्तव्य, (एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा से चार भग), (१६) कथचित् आत्मा और नो आत्मा तथा आत्मा-नो आत्मा उभयरूप से अवक्तव्य है। (१७) कथचित् आत्मा और नो आत्मा तथा आत्माएँ और नो-आत्माएँ उभय होने मे अवक्तव्य है। (१८) कथचित् आत्मा और नो आत्माएँ तथा आत्मा-नो आत्मा उभयरूप होने से—(कथचित्) अवक्तव्य हैं और (१९) कथचित् आत्माएँ, नो-आत्मा, तथा आत्मा-नो आत्मा उभयरूप होने से (कथचित्) अवक्तव्य है।

[२] से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—चउप्पएसिए खधे सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्व० त चेव अट्ठे पडिउच्चारेयव्वं।

गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया १, परस्स आदिट्ठे नो आया २, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्व० ३, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे चउभगो, सब्भावपज्जवेणं तदुभयेण य चउभगो, असब्भावेण तदुभयेण य चउभंगो; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खधे आया य, नो आया य, अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य; देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा चउप्पएसिए खंधे आया य, नो आया य, अवत्तव्वाइं—आयाओ य नो आयाओ य १७, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य, नो आयाओ य, अवत्तव्व—आया ति य नो आया ति य १८, देसा आदिट्ठा सब्भावपज्जवा, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आताओ य, नो आया य, अवत्तव्वं—आया ति य नो आया ति य १९। से तेणट्ठेण गोयमा! एवं वुच्चइ चउप्पएसिए खंधे सिय आया, सिय नो आया, सिय अवत्तव्वं। निक्खेवे ते चेव भंगा उच्चारेयव्वा जाव नो आया ति य।

[३०-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कथचित् आत्मा (सद्रूप) आदि होता है?

[३०-२ उ] गौतम! (१) अपने आदेश (अपेक्षा) से (चतुष्प्रदेशी स्कन्ध) आत्मा (सद्रूप) है, (२) पर के आदेश से (वह) नो आत्मा है, (३) तदुभय (आत्मा और नो-आत्मा, इस उभयरूप) के आदेश से अवक्तव्य है। (४-७) एक देश के आदेश से सद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से असद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से (एकवचन और वहुवचन के आश्रयी) चार भग होते हैं। (८-११) सद्भावपर्याय और तदुभयपर्याय की अपेक्षा से (एकवचन-वहुवचन-आश्रयी) चार भग होते है। (१२-१५) असद्भावपर्याय और तदुभयपर्याय की अपेक्षा से (एकवचन-वहुवचन-आश्रयी) चार भग होते है। (१६)एक देश के आदेश से सद्भावपर्याय की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से और वहुत देशो के आदेश से तदुभय-पर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध, आत्मा, नो-आत्मा और आत्मा-नो-आत्मा-उभयरूप होने से अवक्तव्य है। (१७) एक देश के आदेश से सद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भावपर्याय की अपेक्षा से और वहुत देशो

के आदेश से तदुभय-पर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्मा नो आत्मा और आत्माएँ-नो-आत्माएँ इस उभयरूप से अवक्तव्य है। (१८) एक देश के आदेश से सद्भावपर्याय की अपेक्षा से बहुत देशो के आदेश से असद्भावपर्यायो की अपेक्षा से और एकदेश के आदेश से तदुभयपर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्मा, नो-आत्माएँ और आत्मा-नो-आत्मा उभयरूप से अवक्तव्य है। (१९) बहुत देशो के आदेश से सद्भाव-पर्यायो की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भावपर्याय की अपेक्षा से तथा एक देश के आदेश से तदुभयपर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्माएँ, नो-आत्मा और आत्मा-नो आत्मा उभयरूप से अवक्तव्य है। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कथचिन् आत्मा है, कथचित् नो-आत्मा है और कथचित् अवक्तव्य है। इस निक्षेप मे पूर्वोक्त सभी भग यावत् 'नो-आत्मा है' तक कहना चाहिए। •

विवेचन—चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के उन्नीस भंग—चतुष्प्रदेशी स्कन्ध मे भी त्रिप्रदेशी स्कन्ध के समान जानना चाहिए। अन्तर यही है कि चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के १९ भग बनते है। सप्तभगी मे से तीन भग तो सकलादेश की विवक्षा एव सम्पूर्ण स्कन्ध की अपेक्षा से असयोगी होते है। शेष सप्तभगी के चार भगो मे प्रत्येक के चार-चार विकल्प होते हैं। उनमे बारह भग तो द्विसयोगी होते है शेष चार भग त्रिसंयोगी होते है।[1]

	३	१२	४	—
रेखाचित्र इस प्रकार है—	आ नो अवक्तव्य १ १ १	[illegible]	[illegible]	=१९ भग

३१. [१] आया भते! पंचपएसिए खंधे, अन्ने पंचपएसिए खधे?

गोयमा! पचपएसिए खंधे सिय आया १, सिय नो आया २, सिय अवत्तव्व—आया ति य नो आया ति य ३, सिय आया य नो आया य ४-७, सिय आया य अवत्तव्वं ८-११, नो आया य आया-अवत्तव्वेण य १२-१५, तियगसंजोगे एक्को ण पडइ १६-२२।

[३१-१ प्र] भगवन्! पचप्रदेशी स्कन्ध आत्मा है, अथवा अन्य (नो आत्मा) है?

[३१-१ उ] गौतम! पचप्रदेशी स्कन्ध (१) कथचित् आत्मा है, (२) कथचित् नो आत्मा है, (३) आत्मा-नो-आत्मा-उभयरूप होने से कथचित् अवक्तव्य है। (४-७) कथचित् आत्मा और नो आत्मा (के चार भग) (८-११) कथचित् आत्मा और अवक्तव्य (के चार भंग), (१२-१५) (कथचित्) नो आत्मा और अवक्तव्य (के चार भग) (१६-२२) तथा त्रिकसयोगी आठ भगो मे एक (आठवाँ) भग घटित नही होता, अर्थात् सात भग होते है। कुल मिला कर बावीस भग होते है।

[२] से केणट्ठेणं भते!० तं चेव पडिउच्चारेयव्वं।

गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया १, परस्स आदिट्ठे नो आया २, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं० ३, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे, एवं दुयगसंजोगे सव्वे पडति। तियगसजोगे एक्को ण पडइ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९५
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २१२९

[३१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा गया है कि पचप्रदेशी स्कन्ध आत्मा है, इत्यादि प्रश्न, यहाँ सब पूर्ववत् उच्चारण करना चाहिए ।

[३१-२ उ] गौतम ! पचप्रदेशी स्कन्ध, (१) अपने आदेश से आत्मा है, (२) पर के आदेश से नो-आत्मा है, (३) तदुभय के आदेश से अवक्तव्य है । (४-१५) एक देश के आदेश से, सद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से तथा एक देश के आदेश से असद्भाव-पर्याय की अपेक्षा से कथचित् आत्मा है, कथचित् नो-आत्मा है । इसी प्रकार द्विकसयोगी सभी (बारह) भग बनते है । (१६-२२) त्रिकसयोगी (आठ भग होते है, उनमे से एक आठवाँ भग नही बनता ।

३२. छप्पएसियस्स सव्वे पडंति ।

[३२] पट्प्रदेशी स्कन्ध के विषय मे ये सभी भग बनते हैं ।

३३. जहा छप्पएसिए एवं जाव अणंतपएसिए ।
सेव भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरति ।

।। बारसमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ।। १२-१० ।।

।। बारसमं सयं समत्तं ।। १२ ।

[३३] जैसे पट्प्रदेशी स्कन्ध के विपय मे भग कहे है, उसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—पचप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के भंग—पचप्रदेशी स्कन्ध के २२ भग बनते है । इनमे से पहले के तीन भग पूर्ववत् सकलादेश रूप है । इसके पश्चात् द्विसयोगी बारह भग होते है तथा त्रिकसयोगी आठ भग होते है । आठवाँ भग यहाँ असम्भव होने से घटित नही होता । पट्-प्रदेशी स्कन्ध मे और इससे आगे यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक २३-२३ भग होते है । उनका विवरण पूर्ववत् समझना चाहिए ।[1]

।। बारहवाँ शतक : दशवाँ उद्देशक समाप्त ।।

।। बारहवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ५९५-५९६
(ख) भवगतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ४, पृ २१३१

तेरसमं सयं : तेरहवाँ शतक

प्राथमिक

※ व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के इस तेरहवें शतक मे नरकभूमियो, चतुर्विध देवो, नारको के अनन्तराहारादि, पृथ्वी, नारकादि के आहार, उपपात, भाषा, कर्मप्रकृति, भावितात्मा अनगार के लब्धिसामर्थ्य एव समुद्घात आदि महत्त्वपूर्ण विषयो पर प्रकाश डाला गया है ।

※ इस शतक मे दश उद्देशक है, जिनके नामो का उल्लेख शास्त्रकार ने प्रारम्भ मे किया है ।

※ प्रथम उद्देशक मे सात नरकपृथ्वियो, रत्नप्रभादि के नरकावासो की सख्या, उनके विस्तार, उनकी लेश्या, सज्ञा, भव्याभव्यता, ज्ञान, दर्शन, वेद, कषाय, इन्द्रिय, मन, योग, उपयोग आदि के सम्बन्ध मे ३९ प्रश्नोत्तर, उत्पत्ति, उद्वर्तना, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, विरहित-अविरहित, लेश्या-परिवर्तन आदि का विशद निरूपण किया गया है ।

※ द्वितीय उद्देशक मे चतुर्विध देवो के नाम, उनके आवासो की सख्या, उनके विस्तार, लेश्या, दर्शन, ज्ञान, उत्पत्ति, सज्ञा, कषाय, उद्वर्तना, वेद, उपपन्नता, आहार, लेश्याओ तथा आवासो की सख्या मे परस्पर अन्तर चरम-अचरम, दृष्टि, विविध लेश्या वालो मे उत्पत्ति तथा परिवर्तन आदि का सरस वर्णन किया गया है ।

※ तृतीय उद्देशक मे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक नैरयिको के उत्पाद-समय मे आहार, शरीरोत्पत्ति, लोमाहारादि द्वारा पुद्गलग्रहण, इन्द्रिय आदि के रूप मे परिणमन, शब्दादि विषयो के उपयोग द्वारा परिचारणा एव नाना रूपो की विकुर्वणा आदि का निरूपण है ।

※ चतुर्थ उद्देशक मे पुन· सात नरकपृथ्वियो का उल्लेख करके उनके नारकावासो की सख्या, विशालता, विस्तार, अवकाश, स्थानरिक्तता, प्रवेश, सकीर्णता-व्यापकता, अल्पकर्मता-महाकर्मता, अल्पक्रिया-महाक्रिया, अल्पाश्रव-महाश्रव, अल्पवेदना-महावेदना, अल्पऋद्धि-महाऋद्धि, अल्पद्युति-महाद्युति इत्यादि विषयों के तारतम्य का प्रतिपादन किया गया है । इसी सन्दर्भ मे तेरह द्वारो की अपेक्षा से वर्णन किया है । अन्त मे तीनो लोको के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है ।

※ पंचम उद्देशक मे नैरयिको के सचित्त-अचित्त-मिश्राहार-सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है ।

※ छठे उद्देशक मे चौवीस दण्डकों की सान्तर-निरन्तर उत्पत्ति-उद्वर्तना सम्बन्धी निरूपण, चमरचच आवास का स्वरूप, स्थानदूरी निर्देश एव चमरेन्द्र के आवास का निर्णय एव तदनन्तर उदायन नरेश, राजपरिवार, वीतिभयनगर आदि का परिचय, भगवान् का पदार्पण, उदयन नृप द्वारा प्रव्रज्याग्रहण विचार, स्वपुत्र अभीचिकुमार के वदले भानजे केशीकुमार के राज्याभिषेक, प्रव्रज्याग्रहण, रत्नत्रयाराधना, मोक्षप्राप्ति आदि का वर्णन है । अभीचिकुमार का उदयन राजर्षि

के प्रति वैरानुबन्ध, चम्पानिवास, अनाराधक होने से असुरकुमार देव के रूप मे उपपात, तदनन्तर महाविदेहक्षेत्र मे जन्म एव मोक्षप्राप्ति तक का वर्णन है।

※ **सातवें उद्देशक** मे भाषा, मन, काय आदि के प्रकार, स्वरूप तथा इनके अधिकारी तथा आत्मा से भिन्नता-अभिन्नता आदि का वर्णन है। अन्त मे, मरण के भेद-प्रभेद, स्वरूप आदि की प्ररूपणा है।

※ **आठवें उद्देशक** मे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक आठ मूल कर्मप्रकृतियो, उनके स्वरूप, बन्ध, स्थिति आदि का वर्णन है।

※ **नौवें उद्देशक** मे विविध दृष्टान्तो द्वारा भावितात्मा अनगार की लब्धिसामर्थ्य एव वैक्रियशक्ति का प्रतिपादन किया गया है। उपसहार मे, इस प्रकार वैक्रियलब्धि का प्रयोग करने वाले अनगार को मायी (प्रमादी) कह कर आलोचना किये बिना कालधर्म पाने पर अनाराधक बताया गया है।

※ **दशवें उद्देशक** मे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक छद्मस्थो के छह समुद्घातो का स्वरूप तथा प्रयोजन बताया गया है।

※ कुल मिलाकर विविध रूपो को प्राप्त आत्माओ के सम्बन्ध मे विविध पहलुओ से चर्चा विचारणा की गई है।

□□

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ६१५ से ६५८

तेरसमं सयं : तेरहवाँ शतक

तेरहवें शतक के दस उद्देशकों के नाम

१. पुढवी १ देव २ मणतर ३ पुढवी ४ आहारमेव ५ उववाए ६ ।
भासा ७ कम्म ८ ऽणगारे केयाघडिया ९ समुग्घाए १० ॥

[१] [गाथार्थ—] तेरहवे शतक के दस उद्देशक इस प्रकार हैं—(१) पृथ्वी, (२) देव, (३) अनन्तर, (४) पृथ्वी, (५) आहार, (६) उपपात, (७) भाषा, (८) कर्म, (९) अनगार में केयाघटिका और (१०) समुद्घात ।

विवेचन—दश उद्देशको के अर्थाधिकार—(१) प्रथम उद्देशक मे नरक-पृथ्वियो का वर्णन है । (२) द्वितीय उद्देशक मे देवो सम्बन्धी प्ररूपणा है । (३) तृतीय उद्देशक मे नारक जीव सम्बन्धी अनन्तराहार आदि की प्ररूपणा है । (४) चतुर्थ उद्देशक मे पृथ्वीगत वक्तव्यता है । (५) पचम उद्देशक मे नैरयिक आदि के आहार की प्ररूपणा की गई है । (६) छठे उद्देशक मे नारक आदि के उपपात का वर्णन है । (७) सप्तम उद्देशक मे भाषा आदि का कथन किया गया है । (८) अष्टम उद्देशक मे कर्मप्रकृतियो की प्ररूपणा की गई है । (९) नौवे उद्देशक मे भावितात्मा अनगार द्वारा लब्धि-सामर्थ्य से रस्सी से बधी घडिया को हाथ मे लेकर आकाशगमन का वर्णन है और (१०) दसवे उद्देशक मे समुद्घात का प्रतिपादन किया गया है ।[1]

केयाघडिया : अर्थ—केया अर्थात् रस्सी से बधी हुई घटिका—छोटी घडिया ।[2]

पढमो उद्देसओ : पुढवी

प्रथम उद्देशक : नरकपृथ्वियों सम्बन्धी वर्णन

नरक पृथ्वियाँ, रत्नप्रभा के नरकावासो की संख्या और उनका विस्तार

२. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[२] राजगृह नगर मे (श्री गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) वन्दना करके यावत् इस प्रकार पूछा—

३. कति ण भंते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा ।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९९

(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१३५

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५९९

[३ प्र] भगवन्! (नरक-) पृथ्वियाँ कितनी कही गई है?

[३ उ] गौतम! (नरक-) पृथ्वियाँ सात कही गई है। यथा—रत्नप्रभा यावत् अध सप्तम पृथ्वी।

४. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता?

गोयमा! तीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

[४ प्र] भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे कितने लाख नरकावास कहे गए है?

[४ उ] गौतम! (रत्नप्रभापृथ्वी मे) तीस लाख नारकावास कहे है।

५. ते ण भंते! किं संखेज्जवित्थडा, असखेज्जवित्थडा?

गोयमा! संखेज्जवित्थडा वि, असखेज्जवित्थडा वि।

[५ प्र] भगवन्! वे नरकावास सख्येय (योजन) विस्तृत है या असख्येय (योजन) विस्तृत हैं?

[५ उ] गौतम! वे सख्येय (योजन) विस्तृत भी है और असख्येय (योजन) विस्तृत भी है।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू २ से ५ तक) मे नरकपृथ्वियो की सख्या, रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो की सख्या एव उनके विस्तार का प्रतिपादन किया गया है।

कठिन शब्दो के अर्थ—संखेज्जवित्थडा—सख्यात योजन विस्तार वाले। **असखेज्ज-वित्थडा**—असख्यात योजन विस्तार वाले।[1]

रत्नप्रभा के संख्यात विस्तृत नरकावासों में विविध विशेषण-विशिष्ट नारकों की उत्पत्ति-सम्बन्धी उनचालीस प्रश्नोत्तर

६. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएण केवतिया नेरइया उववज्जति? १, केवतिया काउलेस्सा उववज्जति? २, केवतिया कण्हपक्खिया उववज्जंति? ३, केवतिया सुक्कपक्खिया उववज्जति? ४, केवतिया सन्नी उववज्जति? ५, केवतिया असन्नी उववज्जति? ६, केवतिया भवसिद्धिया उववज्जति? ७, केवतिया अभवसिद्धिया उववज्जति? ८, केवतिया आभिणिबोहियनाणी उववज्जति? ९, केवतिया सुयनाणी उववज्जति? १०, केवतिया ओहिनाणी उववज्जति? ११, केवतिया मतिअन्नाणी उववज्जति? १२, केवतिया सुयअन्नाणी उववज्जति? १३, केवतिया विभगनाणी उववज्जति? १४, केवतिया चक्खुदंसणी उववज्जति? १५, केवतिया अचक्खुदंसणी उववज्जंति? १६, केवतिया ओहिदसणी उववज्जति? १७, केवतिया आहारसण्णोवउत्ता उववज्जति? १८, केवइया भयसण्णोवउत्ता उववज्जति? १९, केवतिया मेहुणसण्णोवउत्ता उववज्जति? २०, केवतिया परिग्गहसण्णोवउत्ता उववज्जति? २१, केवतिया इत्थिवेदगा उववज्जति? २२, केवतिया पुरिसवेदगा उववज्जति?

१. भगवतीसूत्र, (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १०, पृ ४५९

२३, केवतिया नपुसगवेदगा उववज्जंति ? २४, केवतिया कोहकसाई उववज्जति ? २५, जाव केवतिया लोभकसायी उववज्जति ? २६-२८, केवतिया सोतिंदियोवउत्ता उववज्जंति ? २९, जाव केवतिया फासिंदियोवउत्ता उववज्जति ? ३०-३३, केवतिया नोइंदियोवउत्ता उववज्जति ? ३४, केवतिया मणजोगी उववज्जंति ? ३५, केवतिया वइजोगी उववज्जति ? ३६, केवतिया कायजोगी उववज्जति ? ३७, केवतिया सागारोवउत्ता उववज्जति ? ३८, केवतिया अणागारोवउत्ता उववज्जंति ? ३९ ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु नरएसु जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा नेरइया उववज्जति १ । जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा काउलेस्सा उववज्जति २ । जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा कण्हपक्खिया उववज्जति ३ । एव सुक्कपक्खिया वि ४ । एव सन्नी ५ । एवं असण्णी ६ । एव भवसिद्धिया ७ । एव अभवसिद्धिया ८, आभिणिबोहियनाणी ९, सुयनाणी १०, ओहिनाणी ११, मतिअन्नाणी १२, सुयअन्नाणी १३, विभगनाणी १४ । चक्खुदंसणी न उववज्जति १५ । जहन्नेण इक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा अचक्खुदसणी उववज्जति १६ । एवं ओहिदसणी वि १७, आहारसण्णोवउत्ता वि १८, जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि १९-२०-२१ । इत्थिवेदगा न उववज्जति २२ । पुरिसवेदगा वि न उववज्जति २३ । जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा नपुंसगवेदगा उववज्जति २४ । एवं कोहकसायी जाव लोभकसायी २५-२८ । सोतिंदियोवउत्ता न उववज्जति २९ । एव जाव फासिंदियोवउत्ता न उववज्जति ३०-३३ । जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा नोइंदियोवउत्ता उववज्जति ३४ । मणजोगी ण उववज्जंति ३५ । एव वइजोगी वि ३६ । जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा कायजोगी उववज्जति ३७ । एव सागारोवउत्ता वि ३८ । अणागारोवउत्ता वि ३९ ।

[६ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासो मे से सख्येयविस्तृत नरकों में एक समय मे (१) कितने नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं ? (२) कितने कापोतलेश्या वाले नैरयिक जीव उत्पन्न होते है ? (३) कितने कृष्णपाक्षिक जीव उत्पन्न होते है ? (४) कितने शुक्ल-पाक्षिक जीव उत्पन्न होते हैं ? (५) कितने सज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं ? (६) कितने असज्ञी जीव उत्पन्न होते है ? (७) कितने भवसिद्धिक जीव उत्पन्न होते है ? (८) कितने अभवसिद्धिक जीव उत्पन्न होते है ? (९) कितने आभिनिबोधिकज्ञानी उत्पन्न होते है ? (१०) कितने श्रुतज्ञानी उत्पन्न होते है ? (११) कितने अवधिज्ञानी उत्पन्न होते हैं ? (१२) कितने मति-अज्ञानी उत्पन्न होते है ? (१३) कितने श्रुत-अज्ञानी उत्पन्न होते है ? (१४) कितने विभगज्ञानी उत्पन्न होते है ? (१५) कितने चक्षुदर्शनी उत्पन्न होते है ? (१६) कितने अचक्षुदर्शनी उत्पन्न होते है ? (१७) कितने अवधिदर्शनी उत्पन्न होते हैं ? (१८) कितने आहार-सज्ञा के उपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? (१९) कितने भय-सज्ञा के उपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? (२०) कितने मैथुन-सज्ञा के उपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? (२१) कितने परिग्रह-सज्ञा के उपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? (२२) कितने स्त्रीवेदक जीव उत्पन्न होते हैं ? (२३) कितने पुरुषवेदक जीव उत्पन्न होते हैं ? (२४) कितने

नपुसकवेदक जीव उत्पन्न होते है ? (२५) कितने क्रोधकषायी जीव उत्पन्न होते हैं ? (२६-२८) यावत् कितने लोभकषायी उत्पन्न होते हैं ? (२९) कितने श्रोत्रेन्द्रिय के उपयोग वाले उत्पन्न होते है ? (३०-३३) यावत् कितने स्पर्शेन्द्रिय के उपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? (३४) कितने नो-इन्द्रिय (मन) के उपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? (३५) कितने मनोयोगी जीव उत्पन्न होते है ? (३६) कितने वचनयोगी जीव उत्पन्न होते है ? (३७) कितने काययोगी उत्पन्न होते हैं ? (३८) कितने साकारोपयोग वाले जीव उत्पन्न होते है ? और (३९) कितने अनाकारोपयोग वाले जीव उत्पन्न होते हैं ?

[६ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासो मे से सख्येयविस्तृत नरको मे एक समय मे (१) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात नैरयिक उत्पन्न होते है। (२) जघन्य एक, दो या तीन, और उत्कृष्ट सख्यात कापोतलेश्यी जीव उत्पन्न होते है। (३) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं। (४) इसी प्रकार शुक्लपाक्षिक (५) सज्ञी (५) असज्ञी (६) भवसिद्धिक (७) अभवसिद्धिक (८) आभिनिवोधिक ज्ञानी (९) श्रुतज्ञानी (१०) अवधिज्ञानी (११) मति-अज्ञानी (१२) श्रुत-अज्ञानी (१३) विभगज्ञानी जीवो के विषय मे भी जानना चाहिए। (१५) चक्षुदर्शनी जीव उत्पन्न नही होते। (१६) अचक्षुदर्शनी जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते हैं। (१७-२१) इसी प्रकार अवधिदर्शनी, आहारसज्ञोपयुक्त, यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त के विषय मे भी (जानना चाहिए।) (२२-२३) स्त्रीवेदी जीव उत्पन्न नही होते, न पुरुषवेदी जीव उत्पन्न होते है। (२४) नपुसकवेदी जीव जघन्य एक, दो या तीन, और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है। इसी प्रकार (२५-२८) क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी जीवो (की उत्पत्ति) के विषय मे जानना चाहिए। (२९-३३) श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्त (से लेकर) यावत् स्पर्शेन्द्रियोपयुक्त जीव वहाँ उत्पन्न नही होते। (३४) नो-इन्द्रियोपयुक्त जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते है। (३५-३६) मनोयोगी जीव वहाँ उत्पन्न नही होते, इसी प्रकार वचनयोगी भी (समझना चाहिए।) (३७) काययोगी जीव जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है। (३८-३९) इसी प्रकार साकारोपयोग वाले एव अनाकारोपयोग वाले जीवो के विपय मे भी (कहना चाहिए।)

विवेचन—रत्नप्रभा नरकावासो मे—विविध जीवो के उत्पत्ति सम्बन्धी **३९ प्रश्नोत्तर**—प्रस्तुत छठे सूत्र मे रत्नप्रभा नरकभूमि के नरकावासो मे विविध विशेषण-विशिष्ट जीवो की उत्पत्ति के विपय मे प्रतिपादन किया गया है।

कापोतलेश्या-सम्बन्धी प्रश्न ही क्यो ?—रत्नप्रभा पृथ्वी मे केवल कापोतलेश्या वाले जीव ही उत्पन्न होते है, शेष कृष्णादि लेश्या वाले नही। इसलिए यहाँ कापोतलेश्या के विषय मे ही प्रश्न किया गया है।

कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक : परिभाषा—जिन जीवो का ससार-परिभ्रमणकाल अर्द्ध पुद्गल परावर्तन से कुछ कम शेष रह गया है, वे **शुक्लपाक्षिक** कहलाते है। इससे अधिक काल तक जिन जीवो का ससार-परिभ्रमण करना शेष रहता है, वे **कृष्णपाक्षिक** कहलाते है।

चक्षुदर्शनी की उत्पत्ति का निषेध क्यों ?—इन्द्रिय और मन के सिवाय सामान्य उपयोग मात्र

को अचक्षुदर्शन कहते है। ऐसा अचक्षुदर्शन उत्पत्ति के समय भी होता है, किन्तु चक्षुदर्शनी की उत्पत्ति के निषेध का कारण यह है कि इन्द्रियो का त्याग होने पर ही वहाँ उत्पत्ति होती है।

स्त्रीवेदी आदि जीवो की उत्पत्तिनिषेध का कारण—नरक मे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी उत्पन्न नही होते, क्योकि उनके भवप्रत्यय नपुसकवेद होता है। उत्पत्ति के समय नारक श्रोत्रादि इन्द्रियो के उपयोग वाले नही होते, क्योकि उस समय इन्द्रियाँ होती ही नही। सामान्य (चेतनारूप) उपयोग इन्द्रियो के अभाव मे भी रह सकता है। इसलिए कहा गया है—'नो-इन्द्रियोपयुक्त, उत्पन्न होते है। उत्पत्ति-समय मे अपर्याप्त होने से मन और वचन दोनो का अभाव होता है। इसलिए कहा गया है—रत्नप्रभानरकावास मे मनोयोगी और वचनयोगी जीव उत्पन्न नही होते। जीवो के काययोग तो सदैव रहता है।[1]

रत्नप्रभा के संख्यातविस्तृत नरकावासो से उद्वर्त्तना सम्बन्धी उनचालीस प्रश्नोत्तर

७. इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएण केवतिया नेरइया उव्वट्टंति ? १, केवतिया काउलेस्सा उव्वट्टंति ? २, जाव केवतिया अणागारोवउत्ता उव्वट्टंति ? ३९।

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमयेण जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा नेरइया उव्वट्टंति १। जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा काउलेस्सा उव्वट्टंति २। एव जाव सण्णी ३-४-५। असण्णी ण उव्वट्टंति ६। जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा भवसिद्धीया उव्वट्टंति ७। एव जाव सुयअन्नाणी ८-१३। विभगनाणी न उव्वट्टंति १४। चक्खुदसणी ण उव्वट्टंति १५। जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा अचक्खुदसणी उव्वट्टंति १६। एव जाव लोभकसायी १७-२८। सोतिंदियोवउत्ता ण उव्वट्टंति २९। एव जाव फासिंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति ३०-३३। जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा नोइंदियोवउत्ता उव्वट्टंति ३४। मणजोगी न उव्वट्टंति ३५। एव वइजोगी वि ३६। जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण संखेज्जा कायजोगी उव्वट्टंति ३७। एव सागारोवउत्ता ३८, अणागारोवउत्ता ३९।

[७ प्र.] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे से एक समय मे (१) कितने नैरयिक उद्वर्त्तते (मरते-निकलते) है ? (२) कितने कापोतलेश्यी नैरयिक उद्वर्त्तते है ? यावत् (३९) कितने अनाकारोपयुक्त (दर्शनोपयोग वाले) नैरयिक उद्वर्त्तते है ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ५९९
 (ख) जेसिमवड्ढो पोग्गलपरियट्टो सेसओ उ ससारो।
 ते सुक्कपक्खिया खलु अहिगे पुण कण्हपक्खीया॥
 (ग) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१४१

[७ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे से (१) एक समय मे जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट सख्यात नैरयिक उद्वर्त्तते हैं। (२) कापोतलेश्यी नैरयिक जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उद्वर्त्तते हैं। (३-४-५) इसी प्रकार यावत् सज्ञी जीव तक नैरयिक-उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। (६) असज्ञी जीव नही उद्वर्त्तते। (७) भवसिद्धिक नैरयिक जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उद्वर्त्तते है। इसी प्रकार (८-१३) यावत् श्रुत-अज्ञानी तक उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। (१४) विभगज्ञानी नही उद्वर्त्तते। (१५) चक्षुदर्शनी भी नही उद्वर्त्तते। (१६) अचक्षुदर्शनी जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उद्वर्त्तते हैं। (१७-२८) इसी प्रकार यावत् लोभकषायी नैरयिक जीवो तक की उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। (२९) श्रोत्रेन्द्रिय उपयोग वाले जीव नही उद्वर्त्तते। (३०-३३) इसी प्रकार यावत् स्पर्शेन्द्रिय के उपयोग वाले भी नही उद्वर्त्तते। (३४) नोइन्द्रियोपयोगयुक्त नैरयिक जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उद्वर्त्तते हैं। (३५-३६) मनोयोगी और वचनयोगी भी नही उद्वर्त्तते। (३७) काययोगी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उद्वर्त्तते है। इसी प्रकार (३८-३९) साकारोपयोग वाले और अनाकारोपयोग वाले नैरयिक जीवो की उद्वर्त्तना कहनी चाहिए।

विवेचन—उद्वर्त्तना सम्बन्धी ३९ प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत सूत्र मे रत्नप्रभानरकावासो के सख्यात योजन वाले नरको से विविध विशेषण विशिष्ट ३९ प्रकार के नैरयिको की उद्वर्त्तना की प्ररूपणा की गई है

उद्वर्त्तना : परिभाषा—शरीर से जीव का निकलना—मरना उद्वर्त्तना कहलाती है।

सख्यात नारको की ही उद्वर्त्तना क्यो ?—सख्यात योजन विस्तृत नरकावासो मे संख्यात नैरयिक ही समा सकते हैं, इसलिए तथाकथित नैरयिक उत्कृष्टत: सख्यात ही उद्वर्त्तते हैं।

असंज्ञी की उद्वर्त्तना क्यो नहीं ?—उद्वर्त्तना परभव के प्रथम समय मे ही होती है। नैरयिक जीव असज्ञी जीवो मे उत्पन्न नही होते, इस कारण वे असज्ञी नही उद्वर्त्तते।

नरक से इनकी उद्वर्त्तना नहीं होती—चूर्णिकार ने एक गाथा द्वारा नरक से जिनकी उद्वर्त्तना नही होती, उन जीवो का उल्लेख किया है—

असण्णिणो य विब्भंगिणो य, उव्वट्टणाइ वज्जेज्जा।
दोसु वि य चक्खुदंसणी, मण-वइ तह इंदियाइं वा ॥१॥

अर्थात्—असज्ञी, विभगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, मनोयोगी, वचनयोगी तथा श्रोत्रेन्द्रियादि पाच इन्द्रियो के उपयोग वाले जीव उद्वर्त्तन नही करते। अत. नरक से इनकी उद्वर्त्तना का निषेध किया गया है।[1]

---

१. (क) भगवती अ. वृत्ति, ५९९, (ख) भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१४४

रत्नप्रभापृथ्वी के संख्यातविस्तृत नरकावासो मे नैरयिको की संख्या से लेकर चरम-अचरमो की संख्या से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

८. इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु केवतिया नेरइया पण्णत्ता ? १, केवइया काउलेस्सा जाव केवतिया अणागारोवउत्ता पण्णत्ता ? २-३९, केवतिया अणंतरोववन्नगा पन्नत्ता ? ४०, केवतिया परपरोववन्नगा पन्नत्ता ? ४१, केवतिया अणतरोगाढा पन्नत्ता ? ४२, केवतिया परंपरोगाढा पन्नत्ता ? ४३, केवतिया अणंतराहारा पन्नत्ता ? ४४, केवतिया परपराहारा पन्नत्ता ! ४५, केवतिया अणतरपज्जत्ता पन्नत्ता ? ४६, केवतिया परपरपज्जत्ता पन्नत्ता ? ४७, केवतिया चरिमा पन्नत्ता ? ४८, केवतिया अचरिमा पन्नत्ता ? ४९ ।

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु नरएसु सखेज्जा नेरइया पन्नत्ता १ । सखेज्जा काउलेस्सा पन्नत्ता २ । एव जाव सखेज्जा सन्नी पन्नत्ता ३-५ । असण्णी सिय अत्थि सिय नत्थि; जदि अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा पन्नत्ता ६ । सखेज्जा भवसिद्धीया पन्नत्ता ७ । एव जाव सखेज्जा परिग्गहसन्नोवउत्ता पन्नत्ता ८-२१ । इत्थिवेदगा नत्थि २२ । पुरिसवेदगा नत्थि २३ । सखेज्जा नपु सगवेदगा पण्णत्ता २४ । एव कोहकसायी वि २५ । माणकसाई जहा असण्णी २६ । एव जाव लोभकसायी २७-२८ । सखेज्जा सोतिंदियोवउत्ता पन्नत्ता २९ । एव जाव फासिंदियोवउत्ता ३०-३३ । नोइदियोवउत्ता जहा असण्णी ३४ । सखेज्जा मणजोगी पन्नत्ता ३५ । एव जाव अणागारोवउत्ता ३६-३९ । अणतरोववन्नगा सिय अत्थि सिय नत्थि; जदि अत्थि जहा असण्णी ४० । सखेज्जा परपरोववन्नगा ४१ । एव जहा अणतरोववन्नगा तहा अणतरोगाढगा ४२, अणतराहारगा ४४, अणतरपज्जत्तगा ४६ । परपरोगाढगा जाव अचरिमा जहा परपरोववन्नगा ४३, ४५, ४७, ४८, ४९ ।

[८ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे (१) कितने नारक कहे गए हैं ? (२-३९) कितने कापोतलेश्यी नारक कहे गए है ? यावत् कितने अनाकारोपयोग वाले नैरयिक कहे गए हैं ? (४०) कितने अनन्तरोपपन्नक कहे गए हैं ? (४१) कितने परम्परोपपन्नक कहे गए है ? (४२) कितने अनन्तरावगाढ कहे गए है ?, (४३) कितने परम्परावगाढ कहे गए है ?, (४४) कितने अनन्तराहारक कहे गए हैं ?, (४५) कितने परम्पराहारक कहे गए है ? (४६) कितने अनन्तरपर्याप्तक कहे गए हैं ? (४७) कितने परम्पर-पर्याप्तक कहे गए है ? (४८) कितने चरम कहे गए है ? और (४९) कितने अचरम कहे गए है ?

[८ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से (१) सख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे सख्यात नैरयिक कहे गए हैं । (२) सख्यात कापोतलेश्यी जीव कहे गए हैं । (३-५) इसी प्रकार यावत् सख्यात सज्ञी जीव कहे गए है । (६) असज्ञी जीव कदाचित् होते है और कदाचित् नही होते । यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात होते हैं । (७) भवसिद्धिक जीव सख्यात कहे गए है । (८-२१) इसी प्रकार यावत् परिग्रहसज्ञा के उपयोग वाले नैरयिक सख्यात कहे गए है । (२२) (वहाँ) स्त्रीवेदक नही होते, (२३) पुरुषवेदक भी नही होते ।

(२४) (वहाँ) नपुसकवेदी सख्यात कहे गए हैं। (२५) इसी प्रकार क्रोधकषायी भी सख्यात होते है। (२६) मानकषायी नैरयिक असज्ञी नैरयिको के समान (कदाचित् होते हैं, कदाचित् नही होते। होते हैं तो उत्कृष्ट सख्यात होते हैं)। (२७-२८) इसी प्रकार यावत् (मायाकषायी और) लोभकषायी नैरयिको के विषय मे भी कहना चाहिए। (२९-३३) श्रोत्रेन्द्रिय उपयोग वाले नैरयिको से लेकर यावत् स्पर्शेन्द्रियोपयोगयुक्त नैरयिक सख्यात कहे गए है। (३४) नो-इन्द्रियोपयोगयुक्त नारक, असज्ञी नारक जीवो के समान (कदाचित् होते है और कदाचित् नही होते)। (३५-३९) मनोयोगी यावत् अनाकारोपयोग वाले नैरयिक सख्यात कहे गए हैं। (४०) अनन्तरोपपन्नक नैरयिक कदाचित् होते हैं, कदाचित् नही होते; यदि होते है तो असज्ञी जीवो के समान (जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात होते है।) (४१) परम्परोपपन्नक नैरयिक सख्यात होते है। जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नक के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार (४२) अनन्तरावगाढ, (४४) अनन्तराहारक और (४६) अनन्तरपर्याप्तक के विषय मे कहना चाहिए। (४३, ४५, ४७, ४८, ४९) जिस प्रकार परम्परोपपन्नक का कथन किया गया है, उसी प्रकार परम्परावगाढ, परम्पराहारक, परम्परपर्याप्तक, चरम और अचरम (का कथन करना चाहिए)।

विवेचन—पूर्वोक्त दो सूत्रो मे बताया गया था कि रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे विविध विशेषणविशिष्ट नैरयिक एक समय मे कितने उत्पन्न होते है और कितने उद्वर्त्तते हैं?, इस सूत्र मे बताया गया है कि वहाँ सत्ता मे कितने नैरयिक विद्यमान रहते है?

अनन्तरोपपन्नक—परम्परोपपन्नक आदि शब्दो के अर्थ—जिन नारको को उत्पन्न हुए अभी एक समय ही हुआ है, उन्हे '**अनन्तरोपपन्नक**' और जिन्हे उत्पन्न हुए दो, तीन आदि 'समय' हो चुके हैं, उन्हे **परम्परोपपन्नक** कहते है। किसी एक विवक्षित क्षेत्र मे प्रथम समय मे रहे हुए (अवगाहन करके स्थित) जीवो को **अनन्तरावगाढ** और विवक्षित क्षेत्र मे द्वितीय आदि समय मे रहे हुए जीवो को **परम्परावगाढ** कहते हैं। आहार ग्रहण किये हुए जिन्हे प्रथम समय हुआ है, वे **अनन्तराहारक** और जिन्हे द्वितीय आदि समय हो गये हैं, उन्हे **परम्पराहारक** कहते है। जिन जीवो को पर्याप्त हुए प्रथम समय ही है, वे **अनन्तरपर्याप्तक** और जिन्हे पर्याप्त हुए द्वितीयादि समय हो चुके है, वे **परम्परपर्याप्तक** कहलाते हैं। जिन जीवो का नारकभव अन्तिम है, अथवा जो नारकभव के अन्तिम समय मे वर्त्तमान हैं, वे **चरम नैरयिक** और इनसे विपरीत को **अचरम नैरयिक** कहते है।[1]

असज्ञी आदि नैरयिक कदाचित् क्यो?—जो असज्ञी तिर्यञ्च या मनुष्य मर कर नरक मे नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं, वे अपर्याप्त-अवस्था मे कुछ काल तक असज्ञी होते हैं, (फिर सज्ञी हो जाते है) ऐसे नैरयिक अल्प होते हैं। इसलिए कहा गया है कि—रत्नप्रभापृथ्वी मे असज्ञी कदाचित् होते है, कदाचित् नही होते। इसी प्रकार मानकषायोपयुक्त, मायाकषायोपयुक्त, लोभकषायोपयुक्त और नो-इन्द्रियोपयुक्त तथा अनन्तरोपपन्नक अनन्तरावगाढ, अनन्तराहारक और अनन्तरपर्याप्तक नैरयिक कदाचित् होते हैं, इसलिए कहा गया है कि ये नैरयिक कदाचित् होते हैं और कदाचित् नही होते।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१४७

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

'शेष' जीव बहुत होते हैं—उपर्युक्त नैरयिको के अतिरिक्त शेष नैरयिक जीव सदा प्रभूत सख्या मे रहते है, इसलिए उन्हे 'सख्यात' कहना चाहिए।[1]

रत्नप्रभा के असंख्यातविस्तृत नरकावासों मे नारको की उत्पत्ति, उद्वर्त्तना और सत्ता की संख्या से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

९. इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएण केवतिया नेरतिया उववज्जति ? १, जाव केवतिया अणागारोवउत्ता उववज्जंति ? २-३९।

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएण जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण असखेज्जा नेरइया उववज्जंति १। एव जहेव सखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा [सु० ६-७-८] तहा असखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा। नवरं असंखेज्जा भाणियव्वा, सेस त चेव जाव असखेज्जा अचरिमा पन्नत्ता ४९। "नाणत्त लेस्सासु", लेस्साओ जहा पढमसए (स० १ उ० ५ सु० २८)। नवर सखेज्जवित्थडेसु वि असखेज्जवित्थडेसु वि ओहिनाणी ओहिदसणी य सखेज्जा उव्वट्टावेयव्वा, सेस त चेव।

[९ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से असख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे (१) एक समय मे कितने नैरयिक उत्पन्न होते है, (२-३९) यावत् कितने अनाकारोपयोग वाले नैरयिक उत्पन्न होते है ?

[९ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से असख्यात योजन विस्तार वाले नरको मे एक समय मे, जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट असख्यात नैरयिक उत्पन्न होते है। जिस प्रकार सख्यात योजन विस्तार वाले नरको के विषय मे (सू ६-७-८ मे उत्पाद, उद्वर्त्तना और सत्ता) ये तीन आलापक (गमक) कहे गए है, उसी प्रकार असख्यात योजन वाले नरको के विषय मे भी तीन आलापक कहने चाहिए। इनमे विशेषता यह है कि 'सख्यात' के बदले 'असख्यात' कहना चाहिए। शेष सब यावत् 'असख्यात अचरम कहे गए है',[1] यहाँ तक पूर्ववत् कहना चाहिए। इनमे लेश्याओ मे नानात्व (विभिन्नता) है। लेश्यासम्बन्धी कथन प्रथम शतक (उ. ५ सू २८) के अनुसार कहना चाहिए तथा विशेष इतना ही है कि सख्यात योजन और असख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासो मे से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी सख्यात ही उद्वर्त्तन करते हैं, ऐसा कहना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

विवेचन—असख्यातयोजन विस्तृत नरकावासो मे उत्पादन, उद्वर्त्तन और सत्ता की प्ररूपणा— सख्यात योजन विस्तारवाले नरकावासो मे नारको की उत्पत्ति, उद्वर्त्तना और सत्ता (विद्यमानता), इन तीनो आलापको की वक्तव्यता कही गई है, उसी प्रकार असख्यात योजन विस्तृत नरको के नारको की उत्पत्ति आदि तीनो का कथन करना चाहिए। सख्यात के बदले यहाँ 'असख्यात' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।[2]

१, भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

२ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१४९ (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी की संख्यात उद्वर्त्तना—क्योकि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी तीर्थंकर आदि ही उद्वर्त्तन करते है और वे स्वल्प होते है, इसलिए इन दोनो के उद्वर्त्तन के विषय मे 'सख्यात' ही कहना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए, जो सुगम है।[1]

लेश्यासम्बन्धी कथन—इस विषय मे प्रारम्भ की दो नरकपृथ्वियो की अपेक्षा से, तृतीय आदि नरकपृथ्वियो की लेश्याओ मे नानात्व होता है, अत. यहाँ कहा गया है कि लेश्याओ का कथन जिस प्रकार प्रथम शतक के पचम उद्देशक, सू २८ मे है, उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए।[2]

शर्कराप्रभादि छह नरकपृथ्वियों के नरकावासों की संख्या तथा संख्यात-असंख्यातविस्तृत नरकों में उत्पत्ति, उद्वर्त्तना तथा सत्ता की संख्या का निरूपण

१०. सक्करप्पभाए ण भंते ! पुढवीए केवतिया निरयावास० पुच्छा।

गोयमा ! पणुवीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

[१० प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी मे कितने नरकावास कहे है ? इत्यादि प्रश्न।

[१० उ] गौतम ! (उसमे) पच्चीस लाख नरकवास कहे गए हैं।

११. ते ण भते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

एवं जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाए वि। नवरं असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णति, सेसं तं चेव।

[११ प्र] भगवन् ! वे नरकावास क्या संख्यात योजन विस्तार वाले है, अथवा असख्यात योजन विस्तार वाले ?

[११ उ] गौतम जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार शर्करा-प्रभा के विषय मे कहना चाहिए। विशेष यह है कि उत्पाद, उद्वर्त्तना और सत्ता, इन तीनो ही आलापको मे 'असज्ञी' नही कहना चाहिए। शेष सभी (वक्तव्यता) पूर्ववत् (कहनी चाहिए)।

१२. वालुयप्पभाए णं० पुच्छा।

गोयमा ! पन्नरस निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता। सेसं जहा सक्करप्पभाए। "णाणत्त लेसासु", लेसाओ जहा पढमसए (स० १ उ० ५ सु० २८)।

[१२ प्र] भगवन् ! बालुकाप्रभापृथ्वी मे कितने नरकावास कहे गए है ?

[१२ उ] गौतम ! बालुकाप्रभा मे पन्द्रह लाख नरकावास कहे गए है। शेष सब कथन शर्कराप्रभा के समान करना चाहिए। यहाँ लेश्याओ के विषय मे विशेषता है। लेश्या का कथन प्रथम शतक के पचम उद्देशक के समान कहना चाहिए।

१३. पंकप्पभाए० पुच्छा।

गोयमा ! दस निरयावाससतसहस्सा०। एवं जहा सक्करप्पभाए। नवरं ओहिनाणी ओहिदंसणी य न उव्वट्ट ति, सेसं तं चेव।

---

१ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ६००

२ वही, पत्र ६००

[१३ प्र] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी मे कितने नरकावास कहे गए है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१३ उ] गौतम ! (पकप्रभापृथ्वी मे) दस लाख नरकावास कहे गए है। जिस प्रकार शर्कराप्रभा के विपय मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (इस पृथ्वी से) अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्‌वर्त्तन नही करते। शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१४. धूमप्पभाए ण० पुच्छा ।

गोयमा ! तिण्णि निरयावाससयसहस्सा० एव जहा पंकप्पभाए ।

[१४ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी मे कितने नरकावास कहे गए है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१४ उ] गौतम ! (इसमे) तीन लाख नरकावास कहे गए है। जिस प्रकार पकप्रभापृथ्वी के विपय मे कहा, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

१५. तमाए ण भते ! पुढवीए केवतिया निरयावास० पुच्छा ।

गोयमा ! एगे पचूणे निरयावाससयसहस्से पन्नत्ते । सेस जहा पकप्पभाए ।

[१५ प्र] भगवन् ! तम प्रभापृथ्वी मे कितने नरकावास कहे गए है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१५ उ] गौतम ! (उसमे) पाच कम एक लाख नरकावास कहे गये है। शेष (सभी कथन) पकप्रभा के समान जानना चाहिए।

१६. अहेसत्तमाए ण भते ! पुढवीए कति अणुत्तरा महतिमहालया निरया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पच अणुत्तरा जाव अप्पतिट्ठाणे ।

[१६ प्र] भगवन् ! अध सप्तमपृथ्वी मे अनुत्तर और वहुत वडे कितने महानरकावास कहे गए है, इत्यादि पृच्छा ।

[१६ उ] गौतम ! (उसमे) पाच अनुत्तर और वहुत वडे नरकावास कहे गए है, यथा—यावत् (काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और) अप्रतिष्ठान ।

१७. ते ण भते ! किं संखेज्जवित्थडा असंखेज्जवित्थडा ?

गोयमा ! सखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य ।

[१७ प्र] भगवन् ! वे नरकावास क्या सख्यात योजन विस्तार वाले है, या असंख्यात योजन विस्तार वाले ?

[१७ उ] गौतम ! एक (मध्य का अप्रतिष्ठान) नरकावास सख्यात योजन विस्तार वाला है, और शेप (चार नरकावास) असंख्यातयोजन विस्तार वाले है।

१८. अहेसत्तमाए ण भते ! पुढवीए पचसु अणुत्तरेसु महतिमहा० जाव महानिरएसु सखेज्जवित्थडे नरए एगसमएण केवति० ।

एवं जहा पंकप्पभाए। नवरं तिसु नाणेसु न उववज्जंति न उव्वट्टंति। पन्नत्तएसु तहेव अत्थि। एवं असखेज्जवित्थडेसु वि। नवरं असंखेज्जा भाणियव्वा।

[१८ प्र] भगवन्! अध सप्तमपृथ्वी के पाच अनुत्तर और वहुत वडे यावत् महानरको मे से सख्यात योजन विस्तार वाले अप्रतिष्ठान नरकावास मे एक समय मे कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्न।

[१८ उ] गौतम! जिस प्रकार पकप्रभा के विषय मे कहा, (उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।) विशेष यह है कि यहाँ तीन ज्ञान वाले न तो उत्पन्न होते है, न ही उद्वर्त्तन करते है। परन्तु इन पाचो नरकावासो मे रत्नप्रभापृथ्वी आदि के समान तीनो ज्ञान वाले पाये जाते हैं। जिस प्रकार सख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासो के विषय मे कहा उसी प्रकार असख्यात योजन विस्तार वाले नरकवासो के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ 'सख्यात' के स्थान पर 'असख्यात' पाठ कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत नौ सूत्रो (१० से १८ तक) मे रत्नप्रभापृथ्वी के सिवाय शेप छह नरक-पृथ्वियो के नरकावास तथा उनके विस्तार तथा उनमे उत्पत्ति, उद्वर्त्तना और सत्ता (विद्यमानता), इन आलापकत्रय के विषय मे विविध अवान्तर प्रश्न और इनके समाधानो का सकेत किया गया है।[1]

असंज्ञी जीवो के उत्पादादि प्रथम नरक में ही क्यो?—चूकि असज्ञी जीव प्रथम नरक पृथ्वी मे ही उत्पन्न होते है, उससे आगे की पृथ्वियो मे नही। इसलिए द्वितीय नरकपृथ्वी से लेकर सप्तम नरक, पृथ्वी तक मे उनकी उत्पत्ति, उद्वर्त्तना और सत्ता, ये तीनो बाते नही कहनी चाहिए।[2]

लेश्याओ के विषय मे सातो नरक मे विभिन्नता—लेश्याओ के विषय मे जो विशेषता (नानात्व) कही गई है, वह प्रथम शतक पचम उद्देशक के २८ वे सूत्र के अनुसार जाननी चाहिए। वहाँ की संग्रहगाथा इस प्रकार है—

काऊ दोसु तइयाइ मीसिया नीलिया चउत्थीए।
पंचमियाए मीसा कण्हा, तत्तो परमकण्हा॥

अर्थात्—पहली और दूसरी नरक मे कापोतलेश्या, तीसरी नरक मे कापोत और नील दोनो (मिश्र) लेश्याएँ, चौथी नरक मे नील लेश्या, पचम नरक मे नील और कृष्ण मिश्र तथा छठी नरक मे कृष्णलेश्या और मातवी नरक मे परम कृष्णलेश्या होती है।[3]

पकप्रभापृथ्वी मे अवधिज्ञानी-अवधिदर्शनी क्यो नहीं?—चौथी पकप्रभा नरकपृथ्वी मे से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्वर्त्तन नही करते, क्योकि नरक मे अवधिज्ञानी और अवधि-दर्शनी प्राय तीर्थंकर ही होते है, जो कि तृतीय नरकभूमि तक ही होते है। चौथी नरक से सातवी

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ६१९-६२०

२ 'असन्नी खलु पढम' इति वचनात्। —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

३ (क) भगवती श १, उ. ५, सू. २८, पृ १०२ (श्री आगमप्रकाशन समिति, व्यावर) खण्ड १
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

नरक तक से निकलते हुए जीव तीर्थंकर नही हो सकते और वहाँ से निकलने वाले (उद्वर्त्तन करने वाले) जीव भी अवधिज्ञान-अवधिदर्शन लेकर नही निकलते ।[1]

सप्तम नरकपृथ्वी में सब मिथ्यात्वी ही क्यो ?—सातवी नरक मे मिथ्यात्वी या सम्यक्त्व-भ्रष्ट जीव ही उत्पन्न होते हैं, इस कारण इस नरक मे मति-श्रुत-अवधिज्ञानी उत्पन्न नही होते तथा इनकी उद्वर्त्तना भी नही होती, क्योकि वहाँ से निकले हुए जीव इन तीनो ज्ञानो मे उत्पन्न नही होते । यद्यपि सातवी नरक मे प्राय मिथ्यात्वी जीव ही उत्पन्न होते है, तथापि वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है । सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने पर वहाँ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी पाये जा सकते हैं । इसीलिए यहाँ कहा गया है कि सातवी नरक मे तीन ज्ञान वाले जीवो का उत्पाद और उद्वर्त्तना तो नही है, किन्तु सत्ता है ।[2]

संख्यात-असंख्यात-विस्तृत नरको में सम्यग्-मिथ्या-मिश्रदृष्टि नैरयिको के उत्पाद-उद्वर्त्तना एवं अविरहित-विरहित की प्ररूपणा

१९. इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससतसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु किं सम्मद्दिट्ठी नेरतिया उववज्जति, मिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जति, सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरतिया उववज्जति ?

गोयमा ! सम्मदिट्ठी वि नेरतिया उववज्जति, मिच्छद्दिट्ठी वि नेरतिया उववज्जंति, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरतिया उववज्जति ।

[१९ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासो मे क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते है, मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं, अथवा सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?

[१९ उ] गौतम ! (पूर्वोक्त नरकावासो मे) सम्यग्दृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न होते है, मिथ्या-दृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नही होते ।

२०. इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु नरएसु किं सम्मदिट्ठी नेरतिया उव्वट्टंति ?०,

एव चेव ।

[२० प्र] इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन-विस्तृत नरकावासो से क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उद्वर्त्तन करते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२० उ] हे गौतम ! उसी तरह (पूर्ववत्) समझना चाहिए । (अर्थात्—पूर्वोक्त नरकावासो से सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नैरयिक उद्वर्त्तन करते है, परन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उद्वर्त्तन नही करते ।)

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

२१ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडा नरगा किं सम्मद्दिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया, मिच्छादिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया, सम्मामिच्छादिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठीहि वि नेरइएहिं अविरहिया, मिच्छादिट्ठीहि वि नेरइएहिं अविरहिता, सम्मामिच्छादिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया विरहिया वा ।

[२१ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से सख्यात योजन-विस्तृत नरकावास क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिको से अविरहित (सहित) हैं, मिथ्यादृष्टि नैरयिको से अविरहित हैं अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिको से अविरहित है ?

[२१ उ.] गौतम ! (पूर्वोक्त नरकावास) सम्यग्दृष्टि नैरयिको से भी अविरहित होते है तथा मिथ्यादृष्टि नैरयिको से भी अविरहित होते है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिको से (कदाचित्) अविरहित होते है और (कदाचित्) विरहित होते है ।

२२. एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा ।

[२२] इसी प्रकार असख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासो के विषय मे भी तीनो आलापक कहने चाहिए ।

२३. एव सक्करप्पभाए वि । एवं जाव तमाए ।

[२३] इसी प्रकार शर्कराप्रभा से लेकर यावत् तमःप्रभापृथ्वी तक के (सख्यात, असख्यात योजन-विस्तृत नरकावासो के सम्यग्दृष्टि आदि नैरयिको के) विषय मे (तीनो आलापक कहने चाहिए ।)

२४ अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु जाव संखेज्जवित्थडे नरए किं सम्मदिट्ठी नेरइया० पुच्छा ।

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी नेरइया न उववज्जति, मिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जति, सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया न उववज्जति ।

[२४ प्र] भगवन् ! अध.सप्तमपृथ्वी के पाच अनुत्तर यावत् सख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासो मे क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२४ उ] गौतम ! (वहाँ) सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न नही होते, मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते है और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नही होते ।

२५. एवं उव्वट्ट ति वि ।

[२५] इसी प्रकार (उत्पाद के समान) उद्वर्त्तना के विषय मे भी कहना चाहिए ।

२६. अविरहिए जहेव रयणप्पभाए ।

[२६] रत्नप्रभा मे सत्ता के समान यहाँ भी मिथ्यादृष्टि द्वारा अविरहित आदि के विषय मे कहना चाहिए ।

२७. एवं असखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा ।

[२७] इसी प्रकार असख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासो के विषय मे (पूर्वोक्त) तीनो आलापक कहने चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू १९ से २७ तक) मे रत्नप्रभा से लेकर अध सप्तमपृथ्वी के संख्यात योजन एव असख्यात योजन विस्तृत नरकावासो मे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि इन तीनो प्रकार के नैरयिको की उत्पत्ति, उद्वर्तना एव अविरहितता-विरहितता के विषय मे प्रश्नो का समाधान किया गया है ।[1]

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिको का कदाचित् विरह क्यो ?—सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारक कदाचित् होते है, कदाचित् नही भी होते, इसलिए उनका विरह हो सकता है ।

मिश्रदृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते—क्योकि 'न सम्मामिच्छो कुणइ काल । अर्थात्—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि अवस्था मे काल नही करता, ऐसा सिद्धान्तवचन है । अत न तो मिश्रदृष्टि उक्त अवस्था मे मरता है और न तद्भवप्रत्यय अवधिज्ञान उसे होता है, जिससे कि मिश्रदृष्टि अवस्था मे वह उत्पन्न हो ।[2]

लेश्याओं का परस्पर परिणमन एवं तदनुसार नरक में उत्पत्ति का निरूपण

२८. [१] से नूणं भंते ! कण्हलेस्से नीललेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से जाव उववज्जति ।

[२८-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी, यावत् शुक्ललेश्यी (कृष्णलेश्यायोग्य) बन कर (जीव पुन) कृष्णलेश्यी नैरयिको मे उत्पन्न हो जाता है ?

[२८-१ उ] हाँ, गौतम ! (वह) कृष्णलेश्यी यावत् (बनकर) (पुन) कृष्णलेश्यी नैरयिको मे उत्पन्न हो जाता है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'कण्हलेस्से जाव उववज्जति' ?

गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु सकिलिस्समाणेसु सकिलिस्समाणेसु कण्हलेस परिणमइ, कण्हलेस परिणमित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति, से तेणट्ठेणं जाव उववज्जति ।

[२८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि (वह कृष्णलेश्यी आदि हो कर (पुन) कृष्णलेश्यी नारको मे उत्पन्न हो जाता है ?

[२८-२ उ] गौतम ! उसके लेश्यास्थान सक्लेश को प्राप्त होते-होते (क्रमश) कृष्णलेश्या के रूप मे परिणत हो जाते है और कृष्णलेश्या के रूप मे परिणत हो जाने पर वह जीव कृष्णलेश्या

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ६२०-६२१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००

वाले नारको मे उत्पन्न हो जाता है। इसलिए, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्यी आदि होकर जीव कृष्णलेश्या वाले नारको मे उत्पन्न हो जाता है।

२९. [१] से नूण भते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जति ?

हंता, गोयमा ! जाव उववज्जति।

[२९-१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होकर जीव (पुनः) नीललेश्या वाले नारको मे उत्पन्न हो जाते है ?

[२९-१ उ] हाँ, गौतम ! यावत् उत्पन्न हो जाते है।

[२] से केणट्ठेणं जाव उववज्जति ?

गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा नीललेस्सं परिणमति, नीललेस परिणमित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव उववज्जंति।

[२९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि यावत् वह नीललेश्या वाले नारको मे उत्पन्न हो जाते है ?

[२९-२ उ] गौतम ! लेश्या के स्थान उत्तरोत्तर सक्लेश को प्राप्त होते-होते तथा विशुद्ध होते-होते (अन्त मे) नीललेश्या के रूप मे परिणत हो जाते है। नीललेश्या के रूप मे परिणत होने पर वह नीललेश्या वाले नैरयिको मे उत्पन्न हो जाते है। इसलिए हे गौतम ! (पूर्वोक्त रूप से) यावत् उत्पन्न हो जाते है, ऐसा कहा गया है।

३०. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से नील० जाव भवित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

एव जहा नीललेस्साए तहा काउलेस्सा वि भाणियव्वा जाव से तेणट्ठेणं जाव उववज्जति।

सेव भंते ! सेवं भते ! त्ति०।

तेरसमे सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ १३-१ ॥

[३० प्र] भगवन् ! क्या वस्तुत कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होकर (जीव पुन) कापोतलेश्या वाले नैरयिको मे उत्पन्न हो जाते है ?

[३० उ] जिस प्रकार नीललेश्या के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार कापोतलेश्या के विषय मे भी, यावत्—इस कारण से हे गौतम ! यावत् उत्पन्न हो जाते है, यहाँ तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन—प्रस्तुत तीनो सूत्रो (२८ से ३० तक) मे एक लेश्या वाले जीव का प्रशस्त या

अप्रशस्त दूसरी लेश्या के रूप मे परिणत होकर उस लेश्या वाले नारको मे उत्पत्ति का सकारण प्रतिपादन किया गया है ।

अप्रशस्त-प्रशस्त लेश्या-परिवर्तना मे कारण : संक्लिश्यमानता-विशुद्धयमानता—ही है । जब प्रशस्त लेश्यास्थान अविशुद्धि को प्राप्त होते है, तब वे संक्लिश्यमान तथा अप्रशस्त लेश्यास्थान जब विशुद्धि को प्राप्त होते हैं, तब वे विशुद्धयमान कहलाते है । इसलिए प्रशस्त-अप्रशस्त लेश्याओ की प्राप्ति मे संक्लिश्यमानता-विशुद्धयमानता कारण समझनी चाहिए ।[1]

।। तेरहवां शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६००-६०१, (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पत्र २१५८

बीओ उद्देसओ : देव

द्वितीय उद्देशक : देव (भेद-प्रभेद, आवाससंख्या, विस्तार आदि)

चतुर्विधदेव प्ररूपणा

१. कतिविधा ण भंते ! देवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा देवा पन्नत्ता, तं जहा—भवणवासी वाणमतरा जोतिसिया वेमाणिया ।

[१ प्र] भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१ उ] गौतम ! देव चार प्रकार के कहे गए है । यथा—(२) भवनवासी, (२) वाण-व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

विवेचन—देवो के चार निकाय (समूह या वर्ग) है । चार जाति के देवो के ये नाम अन्वर्थक है । भवनो मे (अधोलोकवर्त्ती भवनो मे) निवास करने के कारण ये **भवनवासी** कहलाते है । वनो मे तथा वृक्ष, गुफा आदि विभिन्न अन्तरालो आदि मे रहने के कारण **वाणव्यन्तर** कहलाते है । ज्योतिर्मान तथा ज्योति (प्रकाश) फैलाने वाले होने के कारण **ज्योतिष्क** कहलाते है तथा विमानो मे निवास करने के कारण **वैमानिक** या **विमानवासी** कहलाते है ।[1]

भवनपति देवों के प्रकार, असुरकुमारावास एवं उनके विस्तार की प्ररूपणा

२. भवणवासी ण भते ! देवा कतिविधा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दसविधा पण्णत्ता, त जहा—असुरकुमारा० एव भेदो जहा बितियसए देवुद्देसए (स० २ उ० ७) जाव अपराजिया सव्वट्ठसिद्धगा ।

[२ प्र] भगवन् ! भवनवासी देव कितने प्रकार के कहे है ?

[२ उ] गौतम ! (भवनवासी देव) दस प्रकार के कहे गये है । यथा—असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार । इस प्रकार भवनवासी आदि देवो के भेदो का वर्णन द्वितीय शतक के सप्तम देवोद्देशक के अनुसार यावत् अपराजित एव सर्वार्थसिद्ध तक जानना चाहिए ।

३. केवतिया णं भते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चोसट्ठि असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता ।

[३ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवो के कितने लाख आवास कहे गए है ?

[३ उ] गौतम ! असुरकुमार देवो के चौसठ लाख आवास कहे गए है ।

---

१ तत्त्वार्थभाष्य, अ ४, सू १ 'देवाश्चतुर्निकाया ।'

४. ते ण भंते ! किं संखेज्जवित्थडा असखेज्जवित्थडा ?

गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि असंखेज्जवित्थडा वि ।

[४ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवों के वे आवास सख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असख्यात योजन विस्तार वाले हैं ?

[४ उ] गौतम ! (वे) सख्यात योजन विस्तार वाले भी है और असख्यात योजन विस्तार वाले भी ह ।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रों (२ से ४ तक) मे भवनपति देवो के भेद, आवास एव उनके विस्तार का प्रतिपादन किया गया है ।

संख्यात-असंख्यात-विस्तृत भवनपति-आवासो मे विविध-विशेषण-विशिष्ट असुरकुमारादि से सम्बन्धित उनपचास प्रश्नोत्तर

५. [१] चोयट्ठीए ण भते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु एगसमयेण केवतिया असुरकुमारा उववज्जति ? जाव केवतिया तेउलेस्सा उववज्जति ? केवतिया कण्हपक्खिया उववज्जंति ?

एव जहा रयणप्पभाए तहेव पुच्छा, तहेव वागरण, नवरं दोहिं वि वेदेहिं उववज्जंति, नपुंसगवेयगा न उववज्जंति । सेस त चेव ।

[५-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के चौसठ लाख आवासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासो मे एक समय मे कितने असुरकुमार उत्पन्न होते है, यावत् कितने तेजोलेश्यी उत्पन्न होते हैं ?

[५-१ उ] (गौतम !) रत्नप्रभापृथ्वी के विषय मे किये गए प्रश्नो के समान (यहाँ भी) प्रश्न करना चाहिए और उसका उत्तर भी उसी प्रकार समझ लेना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ दो वेदों (स्त्रीवेद और पुरुषवेद) सहित उत्पन्न होते हैं, नपुसकवेदी उत्पन्न नही होते । शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए ।

[२] उव्वट्टंतगा वि तहेव, नवरं असण्णी उव्वट्टंति, ओहिनाणी ओहिदंसणी य ण उव्वट्टंति, सेस तं चेव । पन्नत्तएसु तहेव, नवर सखेज्जगा इत्थिवेदगा पन्नत्ता । एवं पुरिसवेदगा वि । नपुंसगवेदगा नत्थि । कोहकसायी सिय अत्थि, सिय नत्थि; जइ अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा पन्नत्ता । एवं माण० माय० । संखेज्जा लोभकसायी पन्नत्ता । सेस तं चेव तिसु वि गमएसु चत्तारि लेस्साओ भाणियव्वाओ ।

[५-२] उद्वर्त्तना के विषय मे भी उसी प्रकार जानना चाहिए । विशेषता यह है कि (यहाँ से) असज्ञी भी उद्वर्त्तना करते हैं । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी (यहाँ से) उद्वर्त्तना नही करते । शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए । सत्ता के विषय मे जिस प्रकार पहले (प्रथमोद्देशक में) बताया गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए । किन्तु विशेष यह है कि वहाँ सख्यात स्त्रीवेदक हैं और सख्यात

पुरुषवेदक है, नपुसकवेदक (बिल्कुल) नही है। क्रोधकषायी कदाचित् होते है, कदाचित् नही होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात होते है। इसी प्रकार मानकषायी और मायाकषायी के विषय मे कहना चाहिए। लोभकषायी सख्यात कहे गए है। शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए। (सख्यात विस्तृत आवासो मे) उत्पाद, उद्वर्त्तना और सत्ता, इन तीनो के आलापको मे चार लेश्याएँ कहनी चाहिए।

[३] एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि, नवर तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा जाव असंखेज्जा अचरिमा पन्नत्ता।

[५-३] असख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता इतनी ही है कि पूर्वोक्त तीनो आलापको मे (सख्यात के बदले) 'असख्यात' कहना चाहिए। तथा यावत्—'असख्यात अचरम कहे गए हैं', यहाँ तक कहना चाहिए।

६. केवतिया ण भते ! नागकुमारावास० ?

एवं जाव थणियकुमारा, नवरं जत्थ जत्तिया भवणा।

[६ प्र] नागकुमार (इत्यादि भवनवासी) देवो के कितने लाख आवास कहे गए है ?

[६ उ] (गौतम !) पूर्वोक्त रूप से (नागकुमार से लेकर) यावत् स्तनितकुमार तक (उसी प्रकार) कहना चाहिए। विशेष इतना हो है कि जहाँ जितने लाख भवन हो, वहाँ उतने लाख भवन कहने चाहिए।

विवेचन—भवनवासी देवों के आवास, विस्तार आदि की प्ररूपणा—भवनवासी देवों के भवनो की संख्या—असुरकुमारो के ६४ लाख, नागकुमारो के ८४ लाख, सुपर्णकुमारो के ७२ लाख, वायुकुमारो के ९६ लाख तथा द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और स्तनितकुमार, इन प्रत्येक युगल के ७६-७६ लाख भवन होते हैं।[1]

भवनवासी देवो के आवास (भवन) भी सख्येयविस्तृत और असख्येयविस्तृत होते है। उनके तीन प्रकार के आवासो का परिमाण इस प्रकार कहा गया है—

जबूदीवसमा खलु भवणा, जे हुति सव्वखुड्डागा।
सखेज्जवित्थडा मज्झिमा उ सेसा असंखेज्जा ॥

अर्थात्—भवनपति देवो के जो सबसे छोटे आवास (भवन) होते हैं, वे जम्बूद्वीप के बराबर होते है। मध्यम आवास सख्यात योजन-विस्तृत होते हैं और शेष अर्थात्—बडे आवास असख्यात योजन-विस्तृत होते है।[2]

---

१ चउसट्ठी असुराण नागकुमाराण होइ चुलसीई।
वावत्तरि कणगाण, वाउकुमाराण छण्णउई ॥
दीवदिसाउदहीण विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीण।
जुयलाण पत्तेय छावत्तरिमो सयसहस्सा ॥ —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३

२ वही, पत्र ६०३

वेद आदि की विशेषता—दो ही वेद—देवो मे स्त्रीवेद और पुरुषवेद ये दो ही वेद होते हैं, नपुसकवेद नही होता । इसलिए कहा गया है—'दो वेद वाले उत्पन्न होते हैं ।' **असज्ञी भी उद्वर्त्तते हैं**—ऐसा कथन इसलिए किया गया है कि असुरकुमार से लेकर ईशान देवलोक तक के देव पृथ्वीकायादि असज्ञी जीवो मे भी उत्पन्न होते हैं ।

अवधिज्ञानी-दर्शनी नहीं उद्वर्त्तते—असुरकुमार आदि देवो से च्यवकर निकले (उद्वृत्त) हुए जीव तीर्थंकर आदि पद को प्राप्त नही करते और न तीर्थंकरादि की तरह अवधिज्ञान, अवधिदर्शन लेकर उद्वृत्त होते (निकलते) है । **क्रोधादि कषाय**—असुरकुमार आदि देवो मे क्रोध, मान और माया कषाय के उदय वाले जीव तो कदाचित् होते है, कदाचित् नही होते, किन्तु लोभकषाय के उदय वाले जीव तो सदैव होते है । इसलिए कहा गया है कि लोभकषायी सख्यात कहे गये हैं । **चार लेश्याएँ**—असुरकुमारादि भवनवासी देवो मे चार लेश्याएँ (कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या) होती हैं, इसलिए इनके तीनो (उत्पाद, उद्वर्त्तन और सत्ता) आलापको मे प्रत्येक मे चार-चार लेश्याएँ कहनी चाहिए ।[1]

वाणव्यन्तर देवों की आवाससंख्या, विस्तार, उत्पाद, उद्वर्त्तना और सत्ता की प्ररूपणा

७. केवतिया ण भते ! वाणमंतरावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा वाणमतरावाससयसहस्सा पन्नत्ता ।

[७ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवो के कितने लाख आवास कहे गये हैं ?

[७ उ.] गौतम ! वाणव्यन्तर देवो के आवास असख्यात लाख कहे गए है ।

८. ते णं भते ! किं सखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

गोयमा ! सखेज्जवित्थडा, नो असखेज्जवित्थडा ।

[८ प्र] भगवन् ! वे (वाणव्यन्तरावास) सख्येयविस्तृत हैं अथवा असख्येयविस्तृत ?

[८ उ] गौतम ! वे सख्येयविस्तृत हैं, असख्येयविस्तृत नही ।

९. सखेज्जेसु णं भंते ! वाणमंतरावाससयसहस्सेसु एगसमएणं केवतिया वाणमतरा उववज्जंति ?

एव जहा असुरकुमाराणं सखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमा तहेव भाणियव्वा वाणमंतराण वि तिण्णि गमा ।

[९ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तरदेवो के सख्येय-विस्तृत (असख्यात लाख) आवासो मे एक समय मे कितने वाणव्यन्तर देव उत्पन्न होते है ।

[९ उ] (गौतम !) जिस प्रकार असुरकुमार देवो के सख्येयविस्तृत आवासो के विषय मे तीन आलापक (उत्पाद, उद्वर्त्तन और सत्ता) कहे, उसी प्रकार वाणव्यन्तर देवो के विषय मे भी तीनो आलापक कहने चाहिए ।

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ६०३

विवेचन—व्यन्तरो के आवास संख्येयविस्तृत ही—वाणव्यन्तर देवो के आवास असख्यात योजन विस्तार वाले नही होते, वे सख्यात योजन विस्तार वाले ही होते है। उनका परिमाण इस प्रकार बताया गया है—

वाणव्यन्तर देवो के सबसे छोटे नगर (आवास) भरतक्षेत्र के बराबर होते हैं, मध्यम आवास महाविदेह के समान होते है और सबसे बडे (उत्कृष्ट) आवास जम्बूद्वीप के समान होते है।[1]

ज्योतिष्कदेवों की विमानावास-संख्या, विस्तार एवं विविधविशेषणविशिष्ट की उत्पत्ति आदि की प्ररूपणा

१०. केवतिया ण भते ! जोतिसियविमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा जोतिसिया विमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ।

[१० प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देवो के कितने लाख विमानावास कहे गए हैं ?

[१० उ] गौतम ! ज्योतिष्कदेवो के विमानावास असंख्यात लाख कहे गये है।

११. ते णं भते ! किं सखेज्जवित्थडा० ?

एवं जहा वाणमतराण तहा जोतिसियाण वि तिन्नि गमा भाणियव्वा, नवरं एगा तेउलेस्सा। उववज्जतेसु पन्नत्तेसु य असन्नी नत्थि । सेसं तं चेव ।

[११ प्र] भगवन् ! वे (ज्योतिष्कविमानावास) सख्येयविस्तृत हैं या असख्येयविस्तृत ?

[११ उ.] गौतम ! (वाणव्यन्तरदेवो के समान वे भी सख्येयविस्तृत होते है।) तथा वाणव्यन्तरदेवो के विषय मे जिस प्रकार कहा, उसी प्रकार ज्योतिष्क देवो के विषय मे तीन आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि इनमे केवल एक तेजोलेश्या ही होती है। व्यन्तरदेवो मे असज्ञी उत्पन्न होते है, ऐसा कहा गया था, किन्तु इनमे असज्ञी उत्पन्न नही होते (न ही उद्वर्त्तते हैं और न च्यवते है)। शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

विवेचन—ज्योतिष्कदेवो मे वाणव्यन्तरदेवो से विशेषता—वाणव्यन्तरदेवो से ज्योतिष्कदेवो मे अन्तर इतना ही है कि इनमे केवल एक तेजोलेश्या होती है। इनके विमान सख्यात योजन विस्तार वाले तो होते है, किन्तु वे होते हैं—एक योजन से भी कम विस्तृत, यानी योजन का $\frac{६१}{६१}$ भाग होता है। तथा इनमे असज्ञी जीवो का उत्पाद, उद्वर्त्तन नही होता, न वे सत्ता मे होते है।[2]

अन्य सब बाते वाणव्यन्तरदेवो के समान होती है।

कल्पवासी, ग्रैवेयक एवं अनुत्तर देवों की विमानवास-संख्या, विस्तार एवं उत्पत्ति आदि की प्ररूपणा

१२. सोहम्मे ण भते ! कप्पे केवतिया विमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! बत्तीस विमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ।

---

१ जबूद्दीवसमा खलु उक्कोसेण हवति ते नगरा।
खुड्डा खेत्तसमा खलु, विदेहसमगा उ मज्झिमगा ॥ —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३

२ (क) 'एगसट्ठिभागं काऊण जोयण'—भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३ (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३

[१२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प (प्रथम देवलोक) मे कितने लाख विमानावास कहे गए हैं ?
[१२ उ] गौतम ! (इसमे) वत्तीस लाख विमानावास कहे हैं।

१३. ते ण भंते ! किं सखेज्जवित्थडा, असखेज्जवित्थडा ?
गोयमा ! सखेज्जवित्थडा वि, असखेज्जवित्थडा वि।

[१३ प्र.] भगवन् ! वे विमानावास सख्येयविस्तृत है या असख्येयविस्तृत ?
[१३ उ] गौतम ! वे संख्येयविस्तृत भी हैं और असख्येयविस्तृत भी है।

१४. सोहम्मे ण भते ! कप्पे वत्तीसाए विमाणावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु विमाणेसु एगसमएण केवतिया सोहम्मा देवा उववज्जति ? केवतिया तेउलेस्सा उववज्जति ?

एवं जहा जोतिसियाण तिन्नि गमा तहेव भाणियव्वा, नवर तिसु वि संखेज्जा भाणियव्वा। ओहिनाणी ओहिदसणी य चयावेयव्वा। सेस तं चेव। असखेज्जवित्थडेसु एव चेव तिन्नि गमा, नवर तिसु वि गमएसु असखेज्जा भाणियव्वा। ओहिनाणी ओहिदसणी य सखेज्जा चयति। सेस त चेव।

[१४ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प के वत्तीस लाख विमानावासो मे से सख्यात योजन विस्तार वाले विमानों मे एक समय मे कितने सौधर्मदेव उत्पन्न होते है ? और तेजोलेश्या वाले सौधर्मदेव कितने उत्पन्न होते हैं ?

[१४ उ] जिस प्रकार ज्योतिष्कदेवो के विषय मे तीन (उत्पाद, उद्वर्त्तन और सत्ता) आलापक कहे, उसी प्रकार यहाँ भी तीन आलापक कहने चाहिए। विशेष इतना है कि तीनो आलापको मे 'सख्यात' पाठ कहना चाहिए तथा अवधिज्ञानी-अवधिदर्शनी का च्यवन भी कहना चाहिए। इसके अतिरिक्त शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

असख्यातयोजन विस्तृत सौधर्म-विमानावासो के विषय मे भी इसी प्रकार तीनो आलापक कहने चाहिए। विशेष इतना है कि इसमे ('सख्यात' के वदले) 'असख्यात' कहना चाहिए। किन्तु असंख्येय-योजन-विस्तृत विमानावासो मे से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी तो 'संख्यात' ही च्यवते है। शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१५. एव जहा सोहम्मे वत्तव्वया भणिया तहा ईसाणे वि छ गमगा भाणियव्वा।

[१५] जिस प्रकार सौधर्म देवलोक के विषय मे छह आलापक कहे, उसी प्रकार ईशान देवलोक के विषय मे भी छह (तीन सख्येय-विस्तृत विमान-सम्वन्धी और तीन असख्येय-विस्तृत विमान-सम्वन्धी) आलापक कहने चाहिए।

१६. सणकुमारे एवं चेव, नवरं इत्थिवेदगा उववज्जतेसु पन्नत्तेसु य न भण्णति, असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णति। सेस त चेव।

[१६] सनत्कुमार देवलोक के विषय मे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि सनत्कुमार देवो मे स्त्रीवेदक उत्पन्न नही होते, सत्ताविषयक गमको मे भी स्त्रीवेदी नही कहे जाते। यहाँ तीनो आलापको मे असज्ञी पाठ नही कहना चाहिए। शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१७. एवं जाव सहस्सारे, नाणत्तं विमाणेसु, लेस्सासु य । सेसं तं चेव ।

[१७] इसी प्रकार (माहेन्द्र देवलोक से लेकर) यावत् सहस्रार देवलोक तक कहना चाहिए। यहाँ अन्तर विमानो की संख्या और लेश्या के विषय मे है। शेष सब कथन पूर्वोक्तवत् है।

१८. आणय-पाणएसु णं भंते ! कप्पेसु केवतिया विमाणावाससया पन्नत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि विमाणावाससया पन्नत्ता ।

[१८ प्र] भगवन् ! आनत और प्राणत देवलोको मे कितने सौ विमानावास कहे गए है ?

[१८ उ] गौतम ! (आनत-प्राणतकल्पो मे) चार सौ विमानावास कहे गए है।

१९. ते ण भंते ! किं संखेज्ज० पुच्छा ।

गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि । एवं संखेज्जवित्थडेसु तिन्नि गमगा जहा सहस्सारे । असंखेज्जवित्थडेसु उववज्जंतेसु य चयंतेसु य एवं चेव संखेज्जा भाणियव्वा । पन्नत्तेसु असंखेज्जा, नवरं नोइंदियोवउत्ता, अणंतरोववन्नगा, अणंतरोगाढगा, अणंतराहारगा, अणंतरपज्जत्तगा य, एएसिं जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा पन्नत्ता । सेसा असंखेज्जा भाणियव्वा ।

[१९ प्र.] भगवन् ! वे (विमानावास) संख्यात-योजन विस्तृत है या असंख्यात-योजन विस्तृत ?

[१९ उ] गौतम ! वे संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं। संख्यात योजन विस्तार वाले विमानावासो के विषय मे सहस्रार देवलोक के समान तीन आलापक कहने चाहिए। असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानो मे उत्पाद और च्यवन के विषय मे 'संख्यात' कहना चाहिए एवं 'सत्ता' मे असंख्यात कहना चाहिए। इतना विशेष है कि नोइन्द्रियोपयुक्त (मन के उपयोग वाले) अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ, अनन्तराहारक और अनन्तर-पर्याप्तक, ये पाच जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात कहे गए है। शेष (इनके अतिरिक्त अन्य सब) असंख्यात कहने चाहिए।

२०. आरणऽच्चुएसु एवं चेव जहा आणय-पाणतेसु नाणत्तं विमाणेसु ।

[२०] जिस प्रकार आनत और प्राणत के विषय मे कहा, उसी प्रकार आरण और अच्युत कल्प के विषय मे भी कहना चाहिए। विमानो की संख्या मे विभिन्नता है।

२१. एवं गेवेज्जगा वि ।

[२१] इसी प्रकार नौ ग्रैवेयक देवलोको के विषय मे भी कहना चाहिए।

२२ कति णं भंते ! अणुत्तरविमाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंच अणुत्तरविमाणा पन्नत्ता ।

[२२ प्र] भगवन् ! अनुत्तर विमान कितने कहे गए है ?

[२२ उ] गौतम ! अनुत्तर विमान पाच कहे गए है।

२३. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

गोयमा ! संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य ।

[२३ प्र] भगवन् ! वे (अनुत्तरविमान) संख्यात योजन विस्तृत हैं या असंख्यात योजन विस्तृत हैं ?

[२३ उ] गौतम ! (उनमें से एक) संख्यातयोजन विस्तृत है और (चार) असंख्यातयोजन विस्तृत हैं ।

२४. पंचसु णं भंते ! अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे विमाणे एगसमएण केवतिया अणुत्तरोववातिया देवा उववज्जति ? केवतिया सुक्कलेस्सा उववज्जति ?० पुच्छा तहेव ।

गोयमा ! पंचसु णं अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे अणुत्तरविमाणे एगसमएणं जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा अणुत्तरोववातिया देवा उववज्जति । एवं जहा गेवेज्जविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु, नवरं कण्हपक्खिया, अभवसिद्धिया तिसु अन्नाणेसु एए न उववज्जंति, न चयंति, न वि पन्नत्तएसु भाणियव्वा, अचरिमा वि खोडिज्जति जाव संखेज्जा चरिमा पन्नत्ता । सेसं तं चेव । असंखेज्जवित्थडेसु वि एते न भण्णंति, नवरं अचरिमा अत्थि । सेसं जहा गेवेज्जएसु असंखेज्जवित्थडेसु जाव असंखेज्जा अचरिमा पन्नत्ता ।

[२४ प्र] भगवन् ! पांच अनुत्तर विमानों में से संख्यात योजन विस्तार वाले विमान में एक समय में कितने अनुत्तरौपपातिक देव उत्पन्न होते हैं, (उनमें से) कितने शुक्ललेश्यी उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न ।

[२४ उ] गौतम पांच अनुत्तरविमानों में से संख्यातयोजन विस्तृत ('सर्वार्थसिद्ध' नामक) अनुत्तर-विमान में एक समय में, जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अनुत्तरौपपातिक देव उत्पन्न होते हैं । जिस प्रकार संख्यातयोजन विस्तृत ग्रैवेयक विमानों के विषय में कहा, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए । विशेषता यह है कि कृष्णपाक्षिक अभव्यसिद्धिक तथा तीन अज्ञान वाले जीव, यहाँ उत्पन्न नहीं होते, न ही च्यवते हैं और सत्ता में भी इनका कथन नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार (तीनों आलापकों में) 'अचरम' का निषेध करना चाहिए, यावत् संख्यात चरम कहे गए हैं । शेष समस्त वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए । असंख्यात योजन विस्तार वाले चार अनुत्तरविमानों में ये (पूर्वोक्त कृष्णपाक्षिक आदि जीव पूर्वोक्त तीनों आलापकों में) नहीं कहे गए हैं । विशेषता इतनी ही है कि (इन असंख्यात योजन वाले अनुत्तर विमानों में) अचरम जीव भी होते हैं । जिस प्रकार असंख्यात योजन विस्तृत ग्रैवेयक विमानों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी अवशिष्ट सब कथन यावत् असंख्यात अचरम जीव कहे गये हैं, यहाँ तक करना चाहिए ।

विवेचन—वैमानिक देवलोकों में विमानावास-संख्या, विस्तार तथा उत्पाद आदि—प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. १२ से २४ तक) में सौधर्मादि कल्प, ग्रैवेयक एवं अनुत्तर देवों के विमानावासों की संख्या, उनका विस्तार, उनमें उत्पादादि विषयक प्रश्नोत्तर अंकित हैं ।

सौधर्म और ईशानकल्प में विशेषता—इन दोनों देवलोकों से तीर्थंकर तथा कई अन्य भी

च्यवते हैं, वे अवधिज्ञान-अवधिदर्शन-युक्त होते है, इसलिए उद्वर्त्तन (च्यवन) मे अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी भी कहने चाहिए।

भवनपति, वाणव्यन्तर एवं ज्योतिष्क देवो से वैमानिक देवो मे यह विशेषता है कि असख्यात योजन विस्तार वाले विमानो से भी अवधिज्ञानी-अवधिदर्शनी तो सख्यात ही च्यवते है, क्योकि अवधिज्ञान-दर्शन युक्त च्यवने वाली वैसी आत्माएँ (तीर्थंकर एव कुछ अन्य के सिवाय) सदैव नही होती।[1]

सनत्कुमारादि देवलोको में स्त्रीवेदी नहीं—सौधर्म और ईशान देवलोक तक ही स्त्रीवेदी देवियाँ उत्पन्न होती है। इनके आगे सनत्कुमारादि देवलोको मे स्त्रीवेदी उत्पन्न नही होते। जब इनका उत्पाद ही वहाँ नही होता, तब सत्ता मे भी उनका अभाव ही कहना चाहिए। सनत्-कुमारादि मे जो देविया आती है, वे नीचे के देवलोक से आती है।[2]

सनत्कुमारादि कल्पो मे सज्ञी की ही उत्पत्ति आदि—इनमे सज्ञी जीव ही उत्पन्न होते हैं, असज्ञी नही। असज्ञी मे उत्पत्ति दूसरे देवलोक तक के देवो की होती है। जब ये यहा से च्यवते है, तब भी सज्ञी जीवो मे ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन देवलोको मे उत्पाद, च्यवन और सत्ता, इन तीनो आलापको मे असज्ञी का कथन नही करना चाहिए।

सहस्रारपर्यन्त असंख्यात पद की घटना—माहेन्द्र कल्प से लेकर सहस्रार तक के कल्पो मे असख्यात तिर्यञ्चयोनिक जीवो का उत्पाद होने से असख्यात योजन विस्तृत इन विमानावासो के तीनो आलापको (उत्पाद, उद्वर्त्तन और सत्ता) मे 'असख्यात' पद घटित हो जाता है।[3]

इनके विमानावासों तथा लेश्याओ मे अन्तर—सौधर्म से लेकर सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान तक के विमानावासो की सख्या इस प्रकार है—सौधर्मकल्प मे ३२ लाख, ईशानकल्प मे २८ लाख, सनत्कुमारकल्प मे १२ लाख, माहेन्द्रकल्प मे ८ लाख, ब्रह्मलोक मे ४ लाख, लान्तककल्प मे ५० हजार, महाशुक्र मे ४० हजार, सहस्रार मे ६ हजार विमानावास है। आनत और प्राणत कल्प मे ४०० विमान हैं तथा आरण और अच्युत कल्प मे ३०० विमानावास है। नौ ग्रैवेयक के प्रथम त्रिक मे १११, द्वितीय त्रिक मे १०७ और तृतीय त्रिक मे १०० विमान है एव पाच अनुत्तर विमानो मे ५ विमान है। इस प्रकार सौधर्म से अनुत्तर विमानो तक कुल विमानो की सख्या ८४,९७,०२३ होती है।

लेश्या मे विभिन्नता इस प्रकार है—प्रथम और द्वितीय कल्प मे तेजोलेश्या है, तृतीय, चतुर्थ और पचम कल्प मे पद्मलेश्या अर्थात्—तीसरे मे तेजो-पद्म, चौथे मे पद्म और पाचवें मे पद्म-शुक्ल

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ. २१६७

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३
(ख) भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १०, पृ ५४२-५४३

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३
(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १०, पृ ५४४

लेश्या) होती है तथा इनसे आगे के समस्त कल्पो, नौ ग्रैवेयको एव पाच अनुत्तर विमानो मे केवल एक शुक्ललेश्या है। सातवें महाशुक्र से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक परमशुक्ल लेश्या मानी जाती है।[1]

आनतादि देवलोको मे उत्पादादि का अन्तर—आनत आदि देवलोको मे से सख्यात योजन विस्तृत विमानावासो मे उत्पाद, च्यवन और सत्ता मे सख्यात देव होते हैं। असख्यात योजन विस्तृत आनतादि विमानो मे उत्पाद और च्यवन मे सख्यात तथा सत्ता मे असख्यात देव होते है, क्योकि गर्भज मनुष्य ही मरकर आनतादि देवो मे उत्पन्न होते हैं और वे देव भी, वहाँ से च्यव कर गर्भज मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते हैं तथा गर्भज मनुष्य सख्यात ही होते हैं। इसलिए एक समय मे उत्पाद भी सख्यात का और च्यवन भी सख्यात का हो सकता है। उन देवो का आयुष्य असख्यात वर्ष का होता है, इसलिए उनके जीवनकाल मे असख्यात देव उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनकी अवस्थिति (सत्ता) मे असख्यात की प्ररूपणा की गई है। किन्तु नो-इन्द्रियोपयुक्त आदि पाच पदो मे उत्कृष्ट सख्यात की प्ररूपणा की गई है, क्योकि इनका सद्भाव उत्पत्ति के समय ही रहता है और उत्पत्ति सख्यात की ही होती है, यह पहले कहा जा चुका है।[2]

पाच अनुत्तर विमानो मे उत्पादादि—अनुत्तर विमान पाँच हैं—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध। सर्वार्थसिद्ध विमान इन चारो विमानो के मध्य मे है। वह एक लाख योजन विस्तृत है, इसलिए सख्यात-योजन विस्तृत कहा गया है। शेष विजयादि चार अनुत्तर विमान असख्यात योजन विस्तृत हैं। इनमे केवल सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनके तीनो आलापको मे कृष्णपाक्षिक, अभव्य एव तीन अज्ञान वाले जीवो का निषेध किया गया है।[3]

चरम-अचरम—जिस जीव का अनुत्तरविमान सम्बन्धी अन्तिम भव है, उसे 'चरम' कहा जाता है और जिस जीव का अनुत्तरविमान-सम्बन्धी भव अन्तिम नही है, उसे 'अचरम' कहा जाता है। सर्वार्थसिद्ध विमान मे केवल चरम ही उत्पन्न होते है, इसलिए इसमे अचरम का निषेध किया गया है। किन्तु शेष विजयादि चार अनुत्तरविमानो मे तो 'अचरम' भी उत्पन्न होते है।[4]

कठिन शब्दो का अर्थ—**चयावेयव्वा**—च्यवन सम्बन्धी पाठ कहना चाहिए। **णाणत्तं**—नानात्व, विभिन्नता। **पण्णत्तेसु**—सत्ता विषयक आलापक मे। **गेवेज्जगा**—ग्रैवेयक। **अभवसिद्धिया**—अभव्य-सिद्धिक, अभव्य। **खोडिज्जति**—निषेध किये जाते है।[5]

---

१ (क) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १०, पृ ५४५
  (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०४

३ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१७२

४ भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १०, पृ ५५३

५ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१६६, २१७१

चतुर्विध देवों के संख्यात-असंख्यातविस्तृत आवासों में सम्यग्दृष्टि आदि के उत्पाद, उद्वर्त्तन एवं सत्ता की प्ररूपणा

२५. चोयट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु सखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु किं सम्मद्दिट्ठी असुरकुमारा उववज्जति, मिच्छद्दिट्ठी ?० एव जहा रयणप्पभाए तिन्नि आलावगा भणिया तहा भाणियव्वा । एव असखेज्जवित्थडेसु वि तिन्नि गमा ।

[२५ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमार देवो के चौसठ लाख असुरकुमारावासो मे मे सख्यात-योजन-विस्तृत असुरकुमारावासो मे सम्यग्दृष्टि असुरकुमार उत्पन्न होते हैं अथवा मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होते हैं, मिश्र (सम्यग्मिथ्या) दृष्टि उत्पन्न होते है ?

[२५ उ] (गौतम !) जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के सम्बन्ध मे तीन आलापक कहे, उसी प्रकार यहाँ भी कहने चाहिए और असख्यात योजन विस्तृत असुरकुमारावासो के विषय मे भी इसी प्रकार तीन आलापक कहने चाहिए ।

२६. एवं जाव गेवेज्जविमाणेसु ।

[२६] इसी प्रकार (नागकुमारावासो से लेकर) यावत् ग्रैवेयकविमानो (तक) के विषय मे कहना चाहिए ।

२७. अणुत्तरविमाणेसु एवं चेव, नवर तिसु वि आलावएसु मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छद्दिट्ठी य न भण्णति । सेसं तं चेव ।

[२७] अनुत्तरविमानो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि अनुत्तरविमानो के तीनो आलापको मे मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि का कथन नही करना चाहिए । शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

विवेचन—देवो के दृष्टिविषयक आलापक—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२५ से २७) मे चारो प्रकार के देवो मे दृष्टिविषयक आलापकत्रय का निरूपण किया गया है ।

पाच अनुत्तरविमानो मे एकान्त सम्यग्दृष्टि ही—उत्पन्न होते हैं, च्यवते है और सत्ता मे रहते है । इसलिए शेष दोनो दृष्टियो का निषेध किया गया है ।[1]

एक लेश्या वाले का दूसरी लेश्यावाले देवो मे उत्पाद-प्ररूपणा

२८. से नूण भंते ! कण्हलेस्से नील० जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु देवेसु उववज्जति ?

हंता, गोयमा ! ० एव जहेव नेरइएसु पढमे उद्देसए तहेव भाणियव्व ।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्यी नीललेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी (से परिवर्तित) होकर जीव कृष्णलेश्यी देवो मे उत्पन्न हो जाता है ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०४
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१७४

[२८ उ] हाँ, गौतम ! जिस प्रकार (तेरहवें शतक के) प्रथम उद्देशक मे नैरयिकों के विषय मे कहा, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

२९ नीललेसाए वि जहेव नेरइयाणं जहा नीललेस्साए।

[२९] नीललेश्यी के विषय मे भी उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार नीललेश्यी नैरयिकों के विषय मे कहा है।

३०. एवं जाव पम्हलेस्सेसु।

[३०] (जिस प्रकार नीललेश्यी देवो के विषय मे कहा है), उसी प्रकार यावत् (कापोत, तेजस्, एव) पद्मलेश्यी देवो के विषय मे कहना चाहिए।

३१. सुक्कलेस्सेसु एवं चेव, नवरं लेसाठाणेसु विसुज्झमाणेसु विसुज्झमाणेसु सुक्कलेस्सं परिणमति सुक्कलेस परिणमित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जति, से तेणट्ठेणं जाव उववज्जति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ तेरसमे सए . बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

[३१] शुक्ललेश्यी देवो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि लेश्यास्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्या मे परिणत हो जाते है। शुक्ललेश्या मे परिणत होने के पश्चात् ही (वे जीव) शुक्ललेश्यी देवो मे उत्पन्न होते हैं। इस कारण से हे गौतम ! यावत् 'उत्पन्न होते हैं' ऐसा कहा गया है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—देवो मे लेश्या-परिवर्तन—नैरयिको की तरह देवो मे भी अप्रशस्त से प्रशस्त-प्रशस्ततर और प्रशस्त-प्रशस्ततर से अप्रशस्त-अप्रशस्ततर लेश्या के रूप मे परिवर्तन होता है। यह कथन भावलेश्या के विषय मे समझना चाहिए, जो मूल मे स्पष्ट किया गया है।

॥ तेरहवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

ततिओ उद्देसओ : अणंतर

तृतीय उद्देशक : नैरयिकों के अनन्तराहारादि

चौवीस दण्डकों में अनन्तराहारादि यावत् परिचारणा की प्ररूपणा

१. नेरतिया ण भंते ! अणंतराहारा ततो निव्वत्तणया । एवं परियारणापद निरवसेसं भाणियव्व ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ तेरसमे सए : ततिओ उद्देसओ समत्तो ॥

[१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव (उपपात-उत्पत्ति) क्षेत्र को प्राप्त करते ही अनन्तराहारी होते है (अर्थात्—प्रथम समय मे ही आहारक हो जाते है) ? इसके वाद निर्वर्त्तना (शरीर की उत्पत्ति) करते है ? (क्या इसके पश्चात् वे लोमाहारादि द्वारा पुद्गलो को ग्रहण करते हैं ? फिर उन पुद्गलो को इन्द्रियादिरूप मे परिणत करते है ? क्या इसके पश्चात् वे परिचारणा-शब्दादि विषयो का उपभोग करते है ? फिर अनेक प्रकार के रूपो की विकुर्वणा करते है ?) इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] (हाँ गौतम !) वे इसी (पूर्वोक्त) प्रकार से करते है । (इसके उत्तर मे) प्रज्ञापना सूत्र का चौतीसवाँ परिचारणापद समग्र कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नारको के द्वारा उत्पत्तिक्षेत्र प्राप्त करते ही आहार के होने, फिर शरीरोत्पत्ति करने, लोमाहारादि द्वारा पुद्गलो को ग्रहण करने, फिर उन पुद्गलो को इन्द्रियादि रूप मे परिणत करने एव शब्दादि विषयभोग द्वारा परिचारणा करने और फिर नाना रूपो की विकुर्वणा करने आदि के विषय मे प्रश्न उठाकर प्रज्ञापनासूत्र के ३४ वे समग्र परिचारणापद का अतिदेश करके समाधान किया गया है ।[1]

॥ तेरहवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ देखिये प्रज्ञापना सूत्र का ३४ वाँ परिचारणापद

चउत्थो उद्देसओ : पुढवी

चतुर्थ उद्देशक : (नरक) पृथ्वियाँ

द्वारगाथाएँ तथा सात पृथ्वियाँ

१. कति[1] णं भते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा ।

[१ प्र] भगवन् ! नरक-पृथ्वियाँ कितनी कही गई है ?

[१ उ] गौतम ! नरक-पृथ्वियाँ सात कही गई हैं । यथा—रत्नप्रभा यावत् अध सप्तमा पृथ्वी ।

प्रथम नैरयिकद्वार—नरकावासों की संख्यादि अनेक पदों से परस्पर तुलना

२. अहेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महतिमहालया जाव अपतिट्ठाणे । ते ण णरगा छट्ठाए तमाए पुढवीए नरएहिंतो महत्तरा चेव १, महाविच्छिण्णतरा चेव २, महोवासतरा चेव ३, महापतिरिक्कतरा चेव ४, नो तहा—महापवेसणतरा चेव १, आइण्णतरा चेव २, आउलतरा चेव ३, अणोमाणतरा चेव ४, तेसु ण नरएसु नेरतिया छट्ठाए तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो महाकम्मतरा चेव १, महाकिरियतरा चेव २, महासवतरा चेव ३, महावेयणतरा चेव ४, नो तहा—अप्पकम्मतरा चेव १, अप्पकिरियतरा चेव २ अप्पासवतरा चेव ३, अप्पवेयणतरा चेव ४ । अप्पिड्ढियतरा चेव १, अप्पजुतियतरा चेव २; नो तहा—महिड्ढियतरा चेव १, नो महज्जुतियतरा चेव २ ।

[२] अध सप्तमपृथ्वी मे पाच अनुत्तर और महातिमहान् नरकावास यावत् अप्रतिष्ठान तक कहे गए हैं । वे नरकावास छठी तम प्रभापृथ्वी के नरकावासो से महत्तर (बडे) हैं, महाविस्तीर्णतर है, महान् अवकाश वाले है, बहुत रिक्त स्थान वाले हैं, किन्तु वे महाप्रवेश वाले नही है, वे अत्यन्त आकीर्णतर (सकीर्ण) और व्याकुलतायुक्त (व्याप्त) नही है, अर्थात्—वे अत्यन्त विशाल हैं । उन नरकावासो मे रहे हुए नैरयिक, छठी तम प्रभापृथ्वी के नैरयिको की अपेक्षा महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले महाश्रव वाले एव महावेदना वाले हैं । वे (तम प्रभास्थित नैरयिको की तरह) न तो अल्पकर्म वाले है और न अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्पवेदना वाले हैं । वे नैरयिक अल्प ऋद्धि वाले और अल्पद्युति वाले हैं । वैसे वे महान् ऋद्धि वाले और महाद्युति वाले नही हैं ।

---

१ अधिक पाठ—किसी किसी प्रति मे ये दो द्वार-गाथाएँ मिलती हैं—नेरइय १ फास २ पणिही ३ निरयते चेव ४ लोयमज्झे य ५ । दिसि-विदिसाण य पवहा ६, पवत्तण अत्थिकाएहिं ७ ॥१॥ अत्थीपएसफुसणा ८ ओगाहणया य ९ जीवमोगाढा १० अत्थिपएसनिसीयण ११ बहुस्समे १२ लोगसठाणे १३ ॥

३. छट्ठाए ण तमाए पुढवीए एगे पंचूणे निरयावाससयसहस्से पन्नत्ते। ते ण नरगा अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो नो तहा—महत्तरा चेव, महाविरिथण्ण० ४; महप्पवेसणतरा चेव, आइण्ण० ४। तेसु णं नरएसु नेरइया अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरिय० ४; नो तहा—महाकम्मतरा चेव, महाकिरिय० ४; महिड्डियतरा चेव, महज्जुतियतरा चेव; नो तहा—अप्पिड्डियतरा चेव, अप्पज्जुतियतरा चेव।

छट्ठाए णं तमाए पुढवीए नरगा पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नरएहिंतो महत्तरा चेव० ४; नो तहा महप्पवेसणतरा चेव० ४। तेसु ण नरएसु नेरइया पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइएहिंतो महाकम्मतरा चेव० ४; नो तहा अप्पकम्मतरा चेव० ४; अप्पिड्डियतरा चेव अप्पजुइयतरा चेव; नो तहा महिड्डियतरा चेव० २।

[३] छठी तम प्रभापृथ्वी मे पाच कम एक लाख नरकावास कहे गए है। वे नरकावास अध -सप्तमपृथ्वी के नरकावासो के जैसे न तो महत्तर हैं और न ही महाविस्तीर्ण हैं; न ही महान् अवकाश वाले है और न शून्य स्थान वाले हैं। वे (सप्तम नरकपृथ्वी के नरकावासो की अपेक्षा) महाप्रवेश वाले है, सकीर्ण है, व्याप्त हैं, विशाल है। उन नरकावासो मे रहे हुए नैरयिक अध सप्तम-पृथ्वी के नैरयिको की अपेक्षा अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्प-आश्रव और अल्पवेदना वाले है। वे अध -सप्तमपृथ्वी के नारको के समान महाकर्म, महाक्रिया, महाश्रव और महावेदना वाले नही हैं। वे उनकी अपेक्षा महान् ऋद्धि और महाद्युति वाले है, किन्तु वे उनकी तरह अल्पऋद्धि वाले और अल्पद्युति वाले नही हैं।

छठी तम प्रभा नरक पृथ्वी के नरकावास पाचवी धूमप्रभा नरकपृथ्वी के नरकावासो से महत्तर, महाविस्तीर्ण, महान् अवकाश वाले, महान् रिक्त स्थान वाले हैं। वे पचम नरकपृथ्वी के नरकावासो की तरह महाप्रवेश वाले, आकीर्ण (व्याप्त), व्याकुलतायुक्त एव विशाल नही है। छठी पृथ्वी के नरकावासो के नैरयिक पाचवी धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको की अपेक्षा महाकर्म, महाक्रिया, महाश्रव तथा महावेदना वाले है। उनकी (पाचवी धूमप्रभा के नारको की) तरह वे अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पाश्रव एव अल्पवेदना वाले नही हैं तथा वे उनसे अल्पऋद्धि वाले और अल्पद्युति वाले है, किन्तु महान्ऋद्धि वाले और महाद्युति वाले नही है।

४. पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए तिन्नि निरयावाससतसहस्सा पन्नत्ता।

[४] पाचवी धूमप्रभापृथ्वी मे तीन लाख नरकावास कहे गए है।

५. एवं जहा छट्ठाए भणिया एवं सत्त वि पुढवीओ परोप्परं भण्णंति जाव रयणप्पभ त्ति। जाव नो तहा महिड्डियतरा चेव अप्पज्जुतियतरा चेव।

[५] इसी प्रकार जैसे छठी तम प्रभापृथ्वी के विषय मे परस्पर तारतम्य बताया, वैसे सातो नरकपृथ्वियो के विषय मे परस्पर तारतम्य, यावत् रत्नप्रभा तक कहना चाहिए, वह पाठ यावत् शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक, रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको की अपेक्षा महाऋद्धि और महाद्युति वाले नही हैं। वे उनकी अपेक्षा अल्पऋद्धि और अल्पद्युति वाले है, (यहाँ तक) कहना चाहिए।

विवेचन—नरकावासो की परस्पर तरतमता—प्रस्तुत ५ सूत्रो (सू १ से ५ तक) मे सातो नरकपृथ्वियो के नरकावासो की सख्या, विशालता, विस्तार, अवकाश, स्थानरिक्तता, प्रवेश, सकीर्णता, व्यापकता, कर्म, क्रिया, आश्रव, वेदना, ऋद्धि और द्युति आदि विषयो मे एक दूसरे से तरतमता का निरूपण किया गया है।[1]

कठिन शब्दार्थ—अणुत्तरा—प्रधान। **महतिमहालया**—महातिमहान्-बहुत बडे। **पच णरगा**—पाच नरकावास है—काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान। **महत्तरा (महंततरा)**—दीर्घता (लम्बाई) की अपेक्षा (शेष ६ नरको से) बडे। **महाविच्छिण्णतरा (महाविच्छिण्णतरा)**—चौडाई (विष्कम्भ) की अपेक्षा अत्यन्त विस्तृत। **महोवासतरा**—(स्थान की दृष्टि से) महान् अवकाश वाले। **महापतिरिक्कतरा**—(जीवो के अवस्थान की दृष्टि से) अत्यन्त रिक्त है। **महापवेसणतरा**—महाप्रवेश वाले अर्थात्—दूसरी गति मे आकर जिनमे बहुत-से जीव प्रवेश करते हो, ऐसे। **आइण्णतरा**—अत्यन्त आकीर्ण। **आउलतरा**—व्याकुलता (व्यापकता) से युक्त। **अणोमाणतरा**—अल्पपरिमाण वाले नही है—विशाल परिमाण वाले है, अथवा पाठान्तर **अणोयणतरा**—अनोदनतर है, अर्थात् नारको की बहुसख्यकता न होने से जहाँ एक दूसरे से नोदन—ठेलमठेल या धक्कामुक्की—नही होती। **महाकम्मतरा**—महाकर्म वाले, अर्थात्—आयुष्य, वेदनीय आदि कर्मों की प्रचुरता वाले। **महाकिरियतरा**—कायिकी आदि महाक्रिया वाले। **महासवतरा**—महान् अशुभ आश्रव वाले। **महावेयणतरा**—महावेदना वाले। **अल्पकम्मतरा**—अल्पकर्म वाले। **अप्पिड्ढियतरा**—अल्पऋद्धि वाले। **अप्पज्जुइयतरा**—अल्पद्युति वाले। **नेरइएहिंतो**—नारको से। **महड्ढियतरा**—महान् ऋद्धि वाले। **महज्जुइयतरा**—महाद्युति वाले।[2]

सात पृथ्वी के नैरयिको की एकेन्द्रिय जीव स्पर्शानुभवप्ररूपणा—द्वितीय स्पर्शद्वार

६. रयणप्पभपुढविनेरइया ण भते ! केरिसयं पुढविफासं पच्चणुभवमाणा विहरति ?

गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणाण ।

[६ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभा के नैरयिक (वहाँ की) पृथ्वी के स्पर्श का कैसा अनुभव करते रहते है ?

[६ उ] गौतम ! (वे वहाँ की पृथ्वी के) अनिष्ट यावत् मन के प्रतिकूल स्पर्श का अनुभव करते रहते हैं।

७. एव जाव अहेसत्तमपुढविनेरतिया ।

[७] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको द्वारा पृथ्वीकाय के (उत्तरोत्तर अनिष्टतर, अनिष्टतम यावत् मन प्रतिकूलतर-प्रतिकूलतम) स्पर्शानुभव के विषय मे कहना चाहिए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण-युक्त), पृ. ६२६-६२७

२ (क) भगवती अ वृत्ति

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २१७७-७८

८. एव आउफास ।

[८] इसी प्रकार (रत्नप्रभा से लेकर अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक) (अनिष्ट यावत् मन प्रतिकूल) अप्कायिक स्पर्श का (अनुभव करते हुए रहते है ।)

९ एव जाव वणस्सइफासं ।

[९] इसी प्रकार (तेजस्काय से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक स्पर्श (के विषय मे भी कहना चाहिए ।)

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो मे रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर अध सप्तमपृथ्वी तक के नैरयिको के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के अनिष्ट, अनिष्टतर, अनिष्टतम यावत् मन प्रतिकूल, प्रतिकूलतर, प्रतिकूलतम स्पर्श के अनुभव का निरूपण किया गया है । इस प्रकार द्वितीय स्पर्शद्वार पूर्ण हुआ ।

सात पृथ्वियों की परस्पर मोटाई-छोटाई आदि की प्ररूपणा—तृतीय प्रणिधिद्वार

१०. इमा ण भते ! रयणप्पभा पुढवी दोच्चं सक्करप्पभं पुढविं पणिहाए सव्वमहंतिया बाहल्लेणं, सव्वखुड्डिया सव्वतेसु ?

एवं जहा जीवाभिगमे[1] बितिए नेरइयउद्देसए ।

[१० प्र] भगवन् ! क्या यह (प्रथम) रत्नप्रभापृथ्वी, द्वितीय शर्कराप्रभापृथ्वी की अपेक्षा मोटाई मे सबसे मोटी और चारो ओर (चारो दिशाओ मे) (लम्बाई-चौडाई मे) सबसे छोटी है ?

[१० उ] (हाँ गौतम !) इसी प्रकार है । (शेष सब वर्णन) जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति के दूसरे नैरयिक उद्देशक मे (कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए ।)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तीसरे 'प्रणिधि (अपेक्षा) द्वार' के सन्दर्भ मे सातो नरकपृथ्वियो की मोटाई, लम्बाई-चौडाई का एक दूसरे से तारतम्य जीवाभिगमसूत्र के अतिदेश-पूर्वक बताया गया है ।

सात पृथ्वियो के निकटवर्ती एकेन्द्रियों की महाकर्म-अल्पकर्मतादिनिरूपणा—चतुर्थ निरयान्तद्वार

११. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णिरयपरिसामतेसु जे पुढविकाइया० ?

एव जहा नेरइयउद्देसए जाव अहेसत्तमाए ।

[११ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो के परिपार्श्व मे जो पृथ्वीकायिक

---

१ जीवाभिगम मे सूचित पाठ इस प्रकार है—"हता, गोयमा ! इमा ण रयणप्पभा पुढवी दोच्च पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वतेसु । दोच्चा ण भते ! पुढवी तच्च पुढविं पणिहाय सव्वमहतिया बाहल्लेण० पुच्छा ? हता, गोयमा ! दोच्चा ण जाव सव्वखुड्डिया सव्वतेसु । एव एएण अभिलावेण जाव छट्ठिया पुढवी अहेसत्तम पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वतेसु त्ति ।" अवृ० ॥
—जीवाजीवाभिगमसूत्रम्, प १२७, आगमोदय ॥

(से लेकर यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं, क्या वे महाकर्म, महाक्रिया, महा-आश्रव और महावेदना वाले हैं ?) इत्यादि प्रश्न ।

[११ उ] (हाँ, गौतम !) है, (इत्यादि सब वर्णन जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति के दूसरे) नैरयिक उद्देशक के अनुसार (रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर) यावत् अध सप्तमपृथ्वी (तक कहना चाहिए ।)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे चौथे निरयान्तद्वार के सन्दर्भ मे सातो नरको के निकटवर्ती पृथ्वीकायादि जीवो के महाकर्मी आदि होने का अतिदेशपूर्वक कथन किया गया है ।

लोक-त्रिलोक का आयाम-मध्यस्थान निरूपण : पचम लोकमध्यद्वार

१२. कहि ण भते ! लोगस्स आयाममज्झे पन्नत्ते ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए ओवासतरस्स असखेज्जतिभाग ओगाहित्ता, एत्थ ण लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ।

[१२ प्र] भगवन् ! लोक के आयाम (लम्बाई) का मध्य (मध्यभाग) कहाँ कहा गया है ?

[१२ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के आकाशखण्ड (अवकाशान्तर) के असख्यातवे भाग का अवगाहन (उल्लघन) करने पर लोक की लम्बाई का मध्यभाग कहा गया है ।

१३. कहि ण भते ! अहेलोगस्स आयाममज्झे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउत्थीए पकप्पभाए पुढवीए ओवासतरस्स सातिरेग अद्ध ओगाहित्ता, एत्थ ण अहेलोगस्स आयाममज्झे पन्नत्ते ।

[१३ प्र] भगवन् ! अधोलोक की लम्बाई का मध्यभाग कहाँ कहा गया है ?

[१३ उ] गौतम ! चौथी पकप्रभापृथ्वी के आकाशखण्ड (अवकाशान्तर) के कुछ अधिक अर्द्ध भाग का उल्लघन करने के बाद, अधोलोक की लम्बाई का मध्यभाग कहा गया है ।

१४ कहि ण भते ! उड्ढलोगस्स आयाममज्झे पन्नत्ते ?

गोयमा ! उप्पि सणकुमार-माहिंदाण कप्पाण हेट्ठि बभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे, एत्थ णं उड्ढलोगस्स आयाममज्झे पन्नत्ते ।

[१४ प्र] भगवन् ! ऊर्ध्वलोक की लम्बाई का मध्यभाग कहाँ वताया गया है ?

[१४ उ] गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोको के ऊपर और ब्रह्मलोक कल्प के नीचे एव रिष्ट नामक विमानप्रस्तट (पाथडे) मे ऊर्ध्वलोक की लम्बाई का मध्यभाग वताया गया है ।

१५. कहि ण भते ! तिरियलोगस्स आयाममज्झे पन्नत्ते ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डगपयरेसु, एत्थ ण तिरियलोगमज्झे अट्ठपएसिए रुयए पन्नत्ते, जओ ण इमाओ दस दिसाओ पवहति, त जहा—पुरत्थिमा पुरत्थिमदाहिणा एव जहा दसमसते [स० १० उ० १ सु० ६-७] जाव नामधेज्ज त्ति ।

[१५ प्र] भगवन् ! तिर्यक्‌लोक की लम्बाई का मध्यभाग कहाँ बताया गया है ?

[१५ उ] गौतम ! इस जम्बूद्वीप के मन्दराचल (मेरुपर्वत) के बहुसम मध्यभाग (ठीक बीचोबीच) मे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर वाले और नीचले दोनो क्षुद्रप्रस्तटो (छोटे पाथडो) मे, तिर्यग्लोक के मध्य भाग रूप आठ रुचक-प्रदेश कहे गए है, (वही तिर्यग्लोक की लम्बाई का मध्यभाग है) । उन (रुचक प्रदेशो) मे से ये दश दिशाएँ निकली है । यथा—पूर्वदिशा, पूर्व-दक्षिण दिशा इत्यादि, (शेष समग्र वर्णन) दशवे शतक (के प्रथम उद्देशक के सूत्र ६-७) के अनुसार, यावत् दिशाओ के दश नाम ये है, (यहाँ तक) कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १२ से १५ तक) मे लोक, ऊर्ध्व, अधो एव तिर्यक् लोक की लम्बाई के मध्यभाग का निरूपण लोक-मध्यद्वार के सन्दर्भ मे किया गया है ।

लोक एव ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्‌लोक के मध्यभाग का निरूपण—लोक की कुल लम्बाई १४ रज्जू परिमित है । उसकी कुल लम्बाई का मध्यभाग रत्नप्रभा पृथ्वी के आकाशखण्ड के असख्यातवे भाग का उल्लघन करने के बाद है । तिर्यक्‌लोक की लम्बाई १८०० योजन है । तिर्यक्‌लोक के मध्य मे जम्बूद्वीप है । उस जम्बूद्वीप मे मेरुपर्वत के बहुमध्य देशभाग (बिलकुल मध्य) मे, रत्नप्रभापृथ्वी के समतल भूमिभाग पर आठ रुचक प्रदेश है, जो गोस्तन के आकार के है और चार ऊपर की ओर उठे हुए है तथा चार नीचे की ओर है । इन्ही रुचक प्रदेशो की अपेक्षा से सभी दिशाओ और विदिशाओ का ज्ञान होता है । इन रुचक प्रदेशो के ९०० योजन ऊपर और ९०० योजन नीचे तक तिर्यक्‌लोक (मध्यलोक) है । तिर्यक्‌लोक के नीचे अधोलोक है और ऊपर ऊर्ध्वलोक है । ऊर्ध्वलोक की लम्बाई कुछ कम ७ रज्जू परिमाण है, जबकि अधोलोक की लम्बाई कुछ अधिक सात रज्जू परिमाण है । रुचक प्रदेशो के नीचे असख्यात करोड योजन जाने पर रत्नप्रभापृथ्वी मे चौदह रज्जू रूप लोक का मध्यभाग आता है । यहाँ से ऊपर और नीचे लोक का परिमाण ठीक सात-सात रज्जू रह जाता है । चौथी और पाचवी नरकपृथ्वी के मध्य के जो अवकाशान्तर (आकाशखण्ड) है, उनके सातिरेक (कुछ अधिक) आधे भाग का उल्लघन करने पर अधोलोक का मध्यभाग है । सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक से ऊपर और पाँचवे ब्रह्मलोककल्प के नीचे रिष्ट नामक तृतीय प्रतर मे ऊर्ध्व-लोक का मध्य भाग है ।[1]

दश दिशाओ का उद्‌गम, गुणनिष्पन्न नाम—लोक का आकार वज्रमय है । इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकाण्ड मे सबसे छोटे दो प्रतर हैं । उन दोनो लघुतम प्रतरो मे से ऊपर के प्रतर से लोक की ऊर्ध्वमुखी वृद्धि होती है और नीचे के प्रतर से लोक की अधोमुखी वृद्धि होती है । यही तिर्यक्-लोक का मध्यभाग है, जहाँ ८ रुचक प्रदेश बताए है । इन्ही से १० दिशाएँ निकली हैं—(१) पूर्व, (२) दक्षिण, (३) पश्चिम, (४) उत्तर, ये चार दिशाएँ मुख्य है तथा (५) अग्निकोण, (६) नैऋत्य-कोण, (७) वायव्यकोण और (८) ईशानकोण, (९) ऊर्ध्वदिशा और (१०) अधोदिशा ।

पूर्व महाविदेह की ओर पूर्वदिशा है, पश्चिम महाविदेह की ओर पश्चिम दिशा है, भरतक्षेत्र की ओर दक्षिणदिशा है, और ऐरवतक्षेत्र की ओर उत्तरदिशा है । पूर्व और दक्षिण के मध्य की 'अग्निकोण', दक्षिण और पश्चिम के मध्य की 'नैऋत्यकोण', पश्चिम और उत्तर के मध्य की 'वायव्य-

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०७

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१८३-२१८४

कोण और उत्तर एव पूर्व के बीच की 'ईशानकोण' विदिशा कहलाती है। रुचकप्रदेशो की सीध मे ऊपर की ओर ऊर्ध्वदिशा और नीचे की ओर अधोदिशा है।

इन दसो दिशाओ के गुणनिष्पन्न नाम ये है—(१) ऐन्द्री, (२) आग्नेयी, (३) याम्या, (४) नैऋती, (५) वारुणी, (६) वायव्या (६) सौम्या, (८) ऐशानी, (९) विमला और (१०) तमा।[1]

कठिन शब्दार्थ—आयाममज्झे—लम्बाई का मध्यभाग। उवासतरस्स—अवकाशान्तर, आकाशखण्ड का, साइरेगं—सातिरेक, कुछ अधिक। ओगाहित्ता—उल्लघन—अवगाहन करके। हेट्ठि—नीचे। पत्थडे—प्रस्तट—पाथडा। उवरिम-हेट्ठिलेसु—ऊपर और नीचे के। खुड्डयपयरेसु—क्षुद्र (छोटे लघुतम) प्रतरो मे। प्रवहति—प्रवहित—प्रवर्त्तित होती हैं।[2]

ऐन्द्री आदि दस दिशा-विदिशा का स्वरूपनिरूपण : छठा—दिशा-विदिशा प्रवहादिद्वार

१६. इदा ण भंते ! दिसा किमादीया किंपवहा कतिपदेसादीया कतिपदेसुत्तरा कतिपदेसिया किंपज्जवसिया किंसठिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! इदा णं दिसा रुयगादीया रुयगप्पवहा दुपदेसादीया दुपदेसुत्तरा, लोग पडुच्च असखेज्जपएसिया, अलोग पडुच्च अणतपदेसिया, लोग पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोग पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, लोग पडुच्च मुरजसठिया, अलोगं पडुच्च सगडुद्धिसठिता पन्नत्ता।

[१६ प्र] भगवन् ! इन्द्रा (ऐन्द्री-पूर्व) दिशा के आदि (प्रारम्भ) मे क्या है ?, वह कहाँ से निकली है ? उसके आदि (प्रारम्भ) मे कितने प्रदेश है ? उत्तरोत्तर कितने प्रदेशो की वृद्धि होती है ? वह कितने प्रदेश वाली है ? उसका पर्यवसान (अन्त) कहाँ होता है ! और उसका सस्थान कैसा है ?

[१६ उ] गौतम ! ऐन्द्री दिशा के प्रारम्भ मे रुचक प्रदेश[3] है। वह रुचक प्रदेशो से निकली है। उसके प्रारम्भ मे दो प्रदेश होते हैं। आगे दो-दो प्रदेशो की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। वह लोक की अपेक्षा मे असख्यातप्रदेश वाली है और अलोक की अपेक्षा से अनन्तप्रदेश वाली है। लोक-आश्रयी वह सादि-सान्त (आदि और अन्त सहित) है और अलोक-आश्रयी वह सादि अनन्त है। लोक-आश्रयी वह मुरज (मृदग) के आकार की है, और अलोक-आश्रयी वह ऊर्ध्वशकटाकार (शकटोर्द्धि) की है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०७ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ २१८४

२ वही, भा ५, पृ २१८४

३
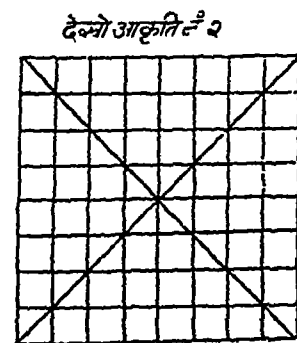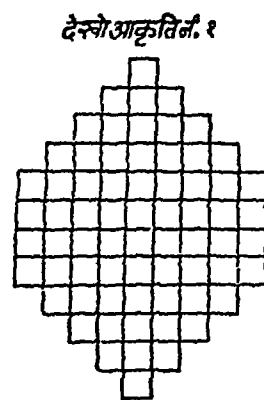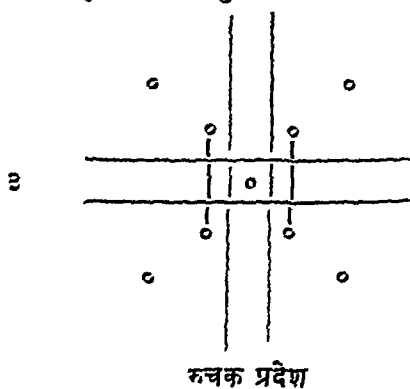
१७. अग्गेयी णं भंते ! दिसा किमादीया किंपवहा कतिपएसादीया कतिपएसवित्थिण्णा कतिपदेसिया किंपज्जवसिया किंसठिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! अग्गेयी णं दिसा रुयगादीया रुयगप्पवहा एगपएसादीया एगपएसवित्थिण्णा अणुत्तरा, लोगं पडुच्च असंखेज्जपएसिया, अलोगं पडुच्च अणतपएसिया लोगं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोगं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, छिन्नमुत्तावलिसठिया पन्नत्ता ।

[१७ प्र] भगवन् ! आग्नेयी दिशा के आदि मे क्या है ? उसका उद्‌गम (प्रवह) कहाँ से है ? उसके आदि मे कितने प्रदेश हैं ? वह कितने प्रदेशों के विस्तार वाली है ? वह कितने प्रदेशों वाली है ? उसका अन्त कहाँ होता है ? और उसका संस्थान (आकार) कैसा है ?

[१७ उ] गौतम ! आग्नेयी दिशा के आदि मे रुचकप्रदेश है । उसका उद्‌गम (प्रवह) भी रुचकप्रदेश से है । उसके आदि मे एक प्रदेश है । वह अन्त तक एक-एक प्रदेश के विस्तार वाली है । वह अनुत्तर (उत्तरोत्तरवृद्धि से रहित) है । वह लोक की अपेक्षा असख्यातप्रदेश वाली है और अलोक की अपेक्षा अनन्तप्रदेश वाली है । वह लोक-आश्रयी सादि-सान्त है और अलोक-आश्रयी सादि-अनन्त है । उसका आकार (सस्थान) टूटी हुई मुक्तावली (मोतियो की माला) के समान है ।

१८. जमा जहा इंदा ।

[१८] याम्या का स्वरूप ऐन्द्री के सामान समझना चाहिए ।

१९. नेरती जहा अग्गेयी ।

[१९] नैऋती का स्वरूप आग्नेयी के समान मानना चाहिए ।

२०. एवं जहा इंदा तहा दिसाओ चत्तारि वि । जहा अग्गेयी तहा चत्तारि वि विदिसाओ ।

[२०] (सक्षेप मे) ऐन्द्री दिशा के समान चारो दिशाओ का तथा आग्नेयी दिशा के समान चारो विदिशाओ का स्वरूप जानना चाहिए ।

२१. विमला णं भंते ! दिसा किमादीया०, पुच्छा ।

गोयमा ! विमला णं दिसा रुयगादीया रुयगप्पवहा चउप्पएसादीया, दुपदेसवित्थिण्णा अणुत्तरा, लोगं पडुच्च० सेसं जहा अग्गेयीए, नवरं रुयगसंठिया पन्नत्ता ।

[२१ प्र] भगवन् ! विमला (ऊर्ध्व) दिशा के आदि मे क्या है ? इत्यादि आग्नेयी के समान प्रश्न ।

[२१ उ] गौतम ! विमल दिशा के आदि मे रुचक प्रदेश हैं । वह रुचकप्रदेशों से निकली है । उसके आदि मे चार प्रदेश हैं । वह अन्त तक दो प्रदेशो के विस्तार वाली है । वह अनुत्तर (उत्तरोत्तर वृद्धिरहित) है । लोक-आश्रयी वह असंख्यात प्रदेश वाली है जबकि अलोक आश्रयी अनन्त प्रदेश वाली है, इत्यादि शेष सब वर्णन आग्नेयी के समान कहना चाहिए । विशेषता यह है कि वह (विमला दिशा) रुचकाकार है ।

२२. एव तमा वि ।

[२२] तमा (अधो) दिशा के विषय मे भी (समग्र वर्णन इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

विवेचन—दिशाओ के गुणनिष्पन्न नाम उनकी आदि, उद्गम, आदि-प्रदेश प्रदेशविस्तार, उत्तरोत्तर वृद्धि, विस्तार) प्रदेशसख्या, उसका अन्त, आकार आदि के विषय मे शका-समाधान प्रस्तुत ७ सूत्रो (१६ से २२ सू तक) मे प्रतिपादित किया गया है ।

दसो दिशाओ के गुणनिष्पन्न नाम क्यो ? (१) **ऐन्द्री**—पूर्वदिशा का अधिष्ठाता देव इन्द्र होने से, (२) **आग्नेयी**—अग्निकोण का स्वामी 'अग्नि' देवता होने से । (३) **नैऋती**—नैऋत्यकोण का स्वामी नैऋति होने से । (४) **याम्या**—दक्षिणदिशा का अधिष्ठाता यम होने से । (५) **वारुणी**—पश्चिम दिशा का अधिष्ठाता वरुण होने से । (६) **वायव्य**—वायुकोण का अधिष्ठाता वायुदेव होने से । (७) **सौम्या**—उत्तर दिशा का स्वामी सोम (चन्द्रमा) होने से । (८) **ऐशानी**—ईशानकोण का अधिष्ठाता ईशान देव होने से । इस प्रकार अपने-अपने अधिष्ठाता देवो के नाम पर से ही इन दिशाओं और विदिशाओ के ये गुणनिष्पन्न नाम प्रचलित है । ऊर्ध्वदिशा को **विमला** इसलिए कहते हैं कि ऊपर अन्धकार नही है, इस कारण वह निर्मल है । अधोदिशा गाढ अन्धकारयुक्त होने से **'तमा'** कहलाती है, तमा रात्रि को कहते हैं, यह दिशा भी रात्रितुल्य होने से तमा है ।[1]

उत्पत्तिस्थान आदि—इन दसो दिशाओ के उत्पत्तिस्थान आठ रुचकप्रदेश हैं । चारो दिशाएँ मूल मे द्विप्रदेशी हैं और आगे-आगे दो-दो प्रदेशों की वृद्धि होती जाती है । विदिशाएँ मूल मे एक प्रदेश वाली निकली है और अन्त तक एक प्रदेशी ही रहती हैं । इन के प्रदेशो मे वृद्धि नही होती । ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा मूल मे चतुष्प्रदेशी निकली है और अन्त तक चतुष्प्रदेशी ही रहती है । इनमे भी वृद्धि नही होती ।[2]

लोक-पंचास्तिकाय-स्वरूपनिरूपण : सप्तम प्रवर्त्तनद्वार

२३. किमिय भते ! लोए त्ति पवुच्चइ ?

गोयमा ! पचत्थिकाया, एस ण एवतिए लोए त्ति पवुच्चइ, तं जहा—धम्मऽत्थिकाए, अधम्मऽत्थिकाए, जाव पोग्गलऽत्थिकाए ।

[२३ प्र] भगवन् ! यह लोक क्या कहलाता है—लोक का स्वरूप क्या है ?

[२३ उ] गौतम ! पचास्तिकायो का समूहरूप ही यह लोक कहलाता है । वे पचास्तिकाय इस प्रकार हैं—(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, यावत् (आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय) पुद्गलास्तिकाय ।

२४. धम्मऽत्थिकाए ण भते ! जीवाण किं पवत्तति ?

गोयमा ! धम्मऽत्थिकाए ण जीवाण आगमण-गमण-भासुम्मेस-मणजोग-वइजोग-कायजोगा, जे यावन्ने तहप्पगारा चला भावा सव्वे ते धम्मऽत्थिकाए पवत्तति । गतिलक्खणे ण धम्मत्थिकाए ।

---

१ (क) भगवती श १० उ १, सू ६-७ मे देखिये । (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१८७

२ वही, (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१८८

[२४ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ?

[२४ उ] गौतम ! धर्मास्तिकाय से जीवों के आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष (नेत्र खोलना), मनोयोग, वचनयोग, और काययोग प्रवृत्त होते हैं। ये और इस प्रकार के जितने भी चल भाव (गमनशील भाव) हैं वे सब धर्मास्तिकाय द्वारा प्रवृत्त होते हैं। धर्मास्तिकाय का लक्षण गतिरूप है।

२५. अहम्मऽत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं किं पवत्तति ?

गोयमा ! अहम्मऽत्थिकाए णं जीवाण ठाण-निसीयण-तुयट्टण-मणस्स य एगत्तीभावकरणता, जे यावन्ने तहप्पगारा थिरा भावा सव्वे ते अहम्मऽत्थिकाये पवत्तंति। ठाणलक्खणे णं अहम्मत्थिकाए।

[२५ प्र] भगवन् ! अधर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ?

[२५ उ] गौतम ! अधर्मास्तिकाय से जीवों के स्थान (स्थित रहना), निषीदन (बैठना), त्वग्वर्त्तन (करवट लेना, लेटना या सोना) और मन को एकाग्र करना (आदि की प्रवृत्ति होती है।) ये तथा इस प्रकार के जितने भी स्थिर भाव हैं, वे सब अधर्मास्तिकाय से प्रवृत्त होते हैं। अधर्मास्तिकाय का लक्षण स्थितिरूप है।

२६. आगासऽत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं अजीवाण य किं पवत्तति ?

गोयमा ! आगासऽत्थिकाए णं जीवदव्वाण य अजीवदव्वाण य भायणभूए।

एगेण वि से पुण्णे, दोहि वि पुण्णे, सयं पि माएज्जा।

कोडिसएण वि पुण्णे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा ॥१॥

अवगाहणालक्खणे ण आगासत्थिकाए।

[२६ प्र] भगवन् ! आकाशास्तिकाय से जीवों और अजीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ?

[२६ उ] गौतम ! आकाशास्तिकाय, जीवद्रव्यों और अजीवद्रव्यों का भाजनभूत (आश्रयरूप) होता है। (अर्थात्—आकाशास्तिकाय जीव और अजीवद्रव्यों को अवगाह देता है।)

(एक गाथा के द्वारा आकाश का गुण बताया गया है—) अर्थात्—एक परमाणु से पूर्ण या दो परमाणुओं से पूर्ण (एक आकाशप्रदेश में) सौ परमाणु भी समा सकते हैं। सौ करोड़ परमाणुओं से पूर्ण एक आकाशप्रदेश में एक हजार करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं।

आकाशास्तिकाय का लक्षण 'अवगाहना' रूप है।

२७ जीवऽत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं किं पवत्तति ?

गोयमा ! जीवऽत्थिकाए णं जीवे अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं अणंताणं सुयनाणपज्जवाणं एवं जहा बितियसए अत्थिकायुद्देसए (स० २ उ० १० सु० ९ [२]) जाव उवयोग गच्छति। उवयोगलक्खणे णं जीवे।

[२७ प्र] भगवन् ! जीवास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ?

[२७ उ] गौतम ! जीवास्तिकाय के द्वारा जीव अनन्त आभिनिबोधिक ज्ञान की पर्यायों

को, अनन्त श्रुतज्ञान की पर्यायो को प्राप्त करता है, (इत्यादि सब कथन) द्वितीय शतक के दसवे अस्तिकाय उद्देशक के (सूत्र ६-२ के) अनुसार, यावत् वह (ज्ञान-दर्शनरूप) उपयोग को प्राप्त होता है, (यहाँ तक कहना चाहिए।) जीव का लक्षण उपयोग-रूप है।

२८. पोग्गलऽत्थिकाए पुच्छा।

गोयमा! पोग्गलऽत्थिकाए ण जीवाण ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मा-सोतिदिय-चक्खिदिय-घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिदिय-मणजोग-वइजोग-कायजोग-आणापाणूण च गहण पवत्तति। गहणलक्खणे ण पोग्गलऽत्थिकाए।

[२८ प्र] भगवन्! पुद्गलास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है?

[२८ उ] गौतम! पुद्गलास्तिकाय मे जीवा के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वास-उच्छ्वास का ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है। पुद्गलास्तिकाय का लक्षण 'ग्रहण' रूप है।

विवेचन—प्रस्तुत छह सूत्रो मे लोक के स्वरूप तथा धर्मास्तिकाय आदि पञ्चास्तिकाय की प्रवृत्ति एव लक्षण, सप्तम प्रवर्त्तनद्वार के द्वारा प्ररूपित किये गये है।

लोक, अस्तिकाय और प्रकार—प्रस्तुत सूत्र मे लोक को पचास्तिकाय रूप बताया है। अस्ति का अर्थ है प्रदेश और काय का अर्थ है समूह, अर्थात्—प्रदेशो के समूह वाले द्रव्यो को 'अस्तिकाय' कहते है। वे पाच है—धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल। कई दार्शनिक ब्रह्ममय लोक कहते है, उनका निराकरण इस सूत्र मे हो जाता है। इनमे से सिवाय आकाशतत्त्व के अलोक मे और कुछ नही है।[1]

धर्मास्तिकाय आदि का स्वरूप—धर्मास्तिकाय—गति-परिणाम वाले जीव और पुद्गलो की गमनादि चलक्रिया मे सहायक। यथा—मछली के गमन मे जल सहायक होता है।

अधर्मास्तिकाय—स्थिति-परिणाम वाले जीव और पुद्गलो की स्थिति आदि अवस्थानक्रिया मे सहायक। यथा—विश्रामार्थ ठहरने वाले पथिको के लिए छायादार वृक्ष।

आकाशास्तिकाय—जीवादि द्रव्यो को अवकाश देने वाला। यथा—एक दीपक के प्रकाश मे परिपूर्ण स्थान मे अनेक दीपको का प्रकाश समा जाता है।

जीवास्तिकाय—जिसमे उपयोगरूप गुण हो।

पुद्गलास्तिकाय—जिसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो तथा जो मिलने-बिछुडने के स्वभाव वाला हो।[2]

प्रत्येक अस्तिकाय के पांच-पांच भेद—धर्मास्तिकाय के पाच भेद—द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य, क्षेत्र की अपेक्षा लोकपरिमाण (समग्र लोकव्याप्त), लोकाकाश के बराबर असख्यात प्रदेशी है। काल

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०८

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१९१

२ तत्त्वार्थसूत्र, (प सुखलालजी) अ ५, सू, १ से ६

की अपेक्षा त्रिकालस्थायी है तथा ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय और अवस्थित है। भाव की अपेक्षा वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित अरूपी है। गुण की अपेक्षा गति गुण वाला।

अधर्मास्तिकाय के पांच भेद—धर्मास्तिकाय के समान है। केवल गुण की अपेक्षा यह स्थिति-गुण वाला है। **आकाशास्तिकाय के पांच भेद**—इसके तीन भेद तो धर्मास्तिकाय के समान है। किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा लोकालोक व्यापी है। अनन्तप्रदेशी है। लोकाकाश असख्यातप्रदेशी है। गुण की अपेक्षा अवगाहनागुण वाला है। जीवो और पुद्गलो को अवकाश देना ही इसका गुण है। उदाहरणार्थ—एक दीपक के प्रकाश से भरे हुए मकान मे यदि सौ यावत् हजार दीपक भी रखे जाएं तो उनका प्रकाश भी उसी मकान मे समा जाता है, बाहर नही निकलता। इसी प्रकार पुद्गलो के परिणाम की विचित्रता होने से एक, दो, सख्यात, असख्यात, यावत् अनन्त परमाणुओ से पूर्ण एक आकाशप्रदेश मे एक से लेकर अनन्त परमाणु तक समा सकते है।

पुद्गल-परिणामो की विचित्रता को स्पष्ट करने हेतु वृत्तिकार ने एक और दृष्टान्त प्रस्तुत किया है—औषधि-विशेष से परिणमित एक तोले भर पारद की गोली, सौ तोले सोने की गोलियो को अपने मे समा लेती है। पारदरूप मे परिणत उस गोली पर औषधि विशेष का प्रयोग करने पर वह तोले भर की पारे की गोली तथा सौ तोले भर सोना दोनो पृथक्-पृथक् हो जाते है। यह सब पुद्गल-परिणामो की विचित्रता है। इसी प्रकार एक परमाणु से पूर्ण एक आकाशप्रदेश मे अनन्त परमाणु भी समा सकते है। **जीवास्तिकाय के पांच भेद**—द्रव्य की अपेक्षा से अनन्त-द्रव्यरूप है, क्योकि जीव पृथक्-पृथक् द्रव्यरूप अनन्त है। क्षेत्र की अपेक्षा लोकपरिमाण है। एक जीव की अपेक्षा जीव असख्यातप्रदेशी है और सभी जीवो के प्रदेश अनन्त है। काल की अपेक्षा जीव आदि-अन्त रहित है (ध्रुव, नित्य एव शाश्वत है)। भाव की अपेक्षा वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित है, अरूपी है तथा चेतना गुण वाला है। गुण की अपेक्षा उपयोग गुण रूप है। **पुद्गलास्तिकाय के पांच भेद**—द्रव्य की अपेक्षा पुद्गल अनन्त द्रव्यरूप है। क्षेत्र की अपेक्षा लोक मे ही है और परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी तक है। काल की अपेक्षा पुद्गल भी आदि-अन्तरहित है (निश्चयदृष्टि से वह भी ध्रुव, शाश्वत और नित्य है)। भाव की अपेक्षा वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श सहित है, यह रूपी और जड है। गुण की अपेक्षा 'ग्रहण' गुण वाला है। अर्थात्—औदारिक शरीर आदि रूप से ग्रहण किया जाना अथवा इन्द्रियो से ग्रहण होना (इन्द्रियों का विषय होना), परस्पर मिलना बिछुडना पुद्गलास्तिकाय का गुण है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**भासुम्मेस**—भाषण तथा उन्मेष-नेत्रव्यापारविशेष। **ठाण-निसीयण-तुयट्टण**—ठाण—स्थित होना, कायोत्सर्ग करना, निसीयण—बैठना, तुयट्टण—शयन करना, करवट बदलना। **एगत्तीभावकरणता**—एकत्रीभावकरण—एकाग्र करना। **भायणभूए**—भाजनभूत—आधारभूत। **आणापाणूण**—आन—प्राण—श्वासोच्छ्वासो का।[2]

---

१ (क) तत्त्वार्थसूत्र (प सुखलालजी) अ ५, सू १ से १० तक
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २१९२-९३
(ग) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६०८

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ६०८

पंचास्तिकायप्रदेश-अद्धासमयो का परस्पर जघन्योत्कृष्टप्रदेश-स्पर्शनानिरूपण :
८ अस्तिकायस्पर्शनाद्वार

२९. [१] एगे भते ! धम्मऽत्थिकायपएसे केवतिएहिं धम्मऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

गोयमा ! जहन्नपए तीहिं, उक्कोसपए छहिं ।

[२९-१ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, कितने धर्मास्तिकाय के प्रदेशो द्वारा स्पृष्ट (छुआ हुआ) होता है ?

[२९-१ उ] गौतम ! वह जघन्य पद मे तीन प्रदेशो से और उत्कृष्ट पद मे छह प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[२] केवतिएहिं अधम्मऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

जहन्नपए चउहिं, उक्कोसपदे सत्तहिं ।

[२९-२ प्र] (भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश,) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[२९-२ उ] (गौतम ! वह) जघन्य पद मे चार प्रदेशो से और उत्कृष्ट पद मे सात अधर्मास्तिकाय प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[३] केवतिएहिं आगासऽत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?

सत्तहिं ।

[२९-३ प्र] वह (धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[२९-३ उ] (गौतम ! वह) सात (आकाश-) प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[४] केवतिएहिं जीवऽत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?

अणतेहिं ।

[२९-४ प्र] (भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[२९-४ उ] (गौतम ! वह) अनन्त (जीव-) प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[५] केवतिएहिं पोग्गलऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

अणतेहिं ।

[२९-५ प्र] (भगवन् ! वह) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[२९-५ उ] (गौतम ! वह) अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[६] केवतिएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?

सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे । जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं ।

[२९-६ प्र] (भगवन् ! वह धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) अद्धाकाल के कितने समयों से स्पृष्ट होता है ?

[२९-६ उ] (गौतम ! वह) कथञ्चित् स्पृष्ट होता है और कथञ्चित् स्पृष्ट नही होता। यदि स्पृष्ट होता है तो नियमत अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है।

३०. [१] एगे भंते ! अहम्मऽत्थिकायपएसे केवतिएहिं धम्मऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

गोयमा ! जहन्नपए चउहिं, उक्कोसपए सत्तहिं।

[३०-१ प्र] भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[३०-१ उ] (गौतम ! वह अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश,) धर्मास्तिकाय के जघन्य पद मे चार और उत्कृष्ट पद मे सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है।

[२] केवतिएहिं अहम्मऽत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?

जहन्नपए तीहिं, उक्कोसपदे छहिं। सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स।

[३०-२ प्र] (भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) कितने अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[३०-२ उ] (गौतम ! वह) जघन्य पद मे तीन और उत्कृष्ट पद मे छह प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के वर्णन के समान समझना चाहिए।

३१ [१] एगे भंते ! आगासऽत्थिकायपएसे केवतिएहिं धम्मऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे। जति पुट्ठे जहन्नपदे एक्केण वा दोहि वा तीहि वा चउहिं वा, उक्कोसपदे सत्तहिं।

[३१-१ प्र] भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[३१-१ उ] (गौतम ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश से) कदाचित् स्पृष्ट होता है, कदाचित् स्पृष्ट नही होता। यदि स्पृष्ट होता है तो जघन्य पद मे एक, दो तीन या चार प्रदेशो से और उत्कृष्ट पद मे सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है।

[२] एवं अहम्मऽत्थिकायपएसेहिं वि।

[३१-२] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट के विषय मे जानना चाहिए।

[३] केवतिएहिं आगासऽत्थिकायपदेसेहिं० ?

छहिं।

[३१-३ प्र] (भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशो से (स्पृष्ट होता है ?)

[३१-३ उ] (गौतम ! वह) छह प्रदेशो से (स्पृष्ट होता है।)

[४] केवतिएहिं जीवऽत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?

सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे । जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं ।

[३१-४ प्र] (भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[३१-४ उ] वह कदाचित् स्पृष्ट होता है, कदाचित् नही । यदि स्पृष्ट होता है तो नियमत अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[५] एव पोग्गलऽत्थिकायपएसेहि वि अद्धासमएहि वि ।

[३१-५] इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशो से तथा अद्धाकाल के समयो से स्पृष्ट के विषय मे जानना चाहिए ।

३२. [१] एगे भते ! जीवऽत्थिकायपएसे केवतिएहिं धम्मऽत्थि० पुच्छा ।

जहन्नपए चउहिं, उक्कोसपए सत्तहिं ।

[३२-१ प्र.] भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो मे स्पृष्ट होता है ?

[३२-१ उ] गौतम ! वह जघन्य पद मे धर्मास्तिकाय के चार प्रदेशो से और उत्कृष्टपद मे सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[२] एवं अधम्मऽत्थिकायपएसेहि वि ।

[३२-२] इसी प्रकार वह अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[३] केवतिएहि आगासऽत्थि० ?

सत्तहिं ।

[३२-३ प्र] (भगवन् !) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशो से वह स्पृष्ट होता है ?

[३२-३ उ] (गौतम ! वह) आकाश० के सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[४] केवतिएहि जीवऽत्थि० ?

सेस जहा धम्मऽत्थिकायस्स ।

[३२-४ प्र] भगवन् ! जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशो से वह (जीवास्तिकायिक एक प्रदेश) स्पृष्ट होता है ?

[३२-४ उ] (गौतम !) शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के प्रदेश के समान (समझना चाहिए ।)

३३. एगे भते ! पोग्गलऽत्थिकायपएसे केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं० ?

एव जहेव जीवऽत्थिकायस्स ।

[३३ प्र] भगवन् ! एक पुद्गलास्तिकायिक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[३३ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवास्तिकाय के एक प्रदेश के (विषय मे कथन किया, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए ।)

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू. २९ से ३३ तक) मे एक-एक धर्मास्तिकाय आदि पाचो के एक-एक प्रदेश का अन्यान्य अस्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पर्श होता है, इसकी प्ररूपणा अष्टम अस्तिकाय-स्पर्शनाद्वार के माध्यम से की गई है ।

धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश का अन्य अस्तिकाय-प्रदेशो से स्पर्श—धर्मास्तिकाय आदि के (एक) प्रदेश की जघन्य (सब से थोडे) अन्य प्रदेशो के साथ स्पर्शना तब होती है, जब वह लोकान्त के एक कोने मे होता है । उसकी स्थिति भूमि के निकटवर्ती घर के कोने के समान होती है । उस समय जघन्य पद मे वहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, ऊपर के एक प्रदेश से और पास के दो प्रदेशो से एक विवक्षित प्रदेश स्पृष्ट होता है, उसकी स्थापना इस प्रकार होती है—[चित्र: ० / ०००] इस प्रकार **धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश**, जघन्यत धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशो से स्पृष्ट होता है । तथा **उत्कृष्टतः** वह चारो दिशाओ के चार प्रदेशो से, और ऊर्ध्व तथा अधोदिशा के एक-एक प्रदेश से, इस प्रकार छह प्रदेशो से स्पृष्ट होता है । स्थापना— ००००० इस प्रकार होती है । धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अधर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशो से तो उसी प्रकार स्पृष्ट होता है, जिस प्रकार धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशो से स्पृष्ट होता है तथा धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश के स्थान मे रहे हुए अधर्मास्तिकाय के चौथे एक प्रदेश से भी वह स्पृष्ट होता है । इस प्रकार जघन्य पद मे वह चार अधर्मास्तिकायिक प्रदेशो से स्पृष्ट होता है । उत्कृष्ट पद मे छह दिशाओ के छह प्रदेशो से और सातवे धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश के स्थान मे रहे हुए अधर्मास्तिकाय के एक प्रदेश से, यो सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

आकाशास्तिकाय के भी पूर्वोक्त सात प्रदेशो की स्पर्शना—होती है, क्योकि लोकान्त मे भी अलोकाकाश होता है ।

जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेशो से—धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश स्पृष्ट होता है, क्योकि धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश पर और उसके पास अनन्त जीवो के अनन्तप्रदेश विद्यमान होते है ।

इसी प्रकार वह **पुद्गलास्तिकाय के भी अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट** होता है ।

अद्धाकाल के समयो की स्पर्शना—अद्धाकाल केवल समय क्षेत्र (ढाई द्वीप और दो समुद्र) मे ही होता है, बाहर नही, क्योकि समय, घडी, घटा आदि काल सूर्य की गति से ही निष्पन्न होता है । उससे धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नही होता । यदि स्पृष्ट होता है तो अनन्त अद्धा-समयो से स्पृष्ट होता है, क्योकि वे अनादि हैं, इसलिए उनकी अनन्त समयो की स्पर्शना होती है । अथवा वर्त्तमान समय विशिष्ट अनन्त द्रव्य उपचार से अनन्त समय कहलाते है । इसलिए अद्धाकाल अनन्त समयो से स्पृष्ट हुआ कहलाता है ।

अधर्मास्तिकाय के एक प्रदेश की दूसरे द्रव्यो के प्रदेशो से स्पर्शना—धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश की स्पर्शना के समान समझना चाहिए ।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६११
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२०५

आकाशास्तिकाय के एक प्रदेश की धर्मास्तिकायादि से स्पर्शना—आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश, लोक की अपेक्षा धर्मास्तिकाय के प्रदेश से स्पृष्ट होता है और अलोक की अपेक्षा स्पृष्ट नही होता। यदि स्पृष्ट होता है तो जघन्य पद मे लोकान्तवर्ती धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश से, शेष धर्मास्तिकाय प्रदेशो मे निर्गत अग्रभागवर्ती अलोकाकाश का एक प्रदेश स्पृष्ट होता है। वक्रगत आकाशप्रदेश धर्मास्तिकाय के दो प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। जिस अलोकाकाश के एक प्रदेश के आगे, नीचे और ऊपर धर्मास्तिकाय के प्रदेश है, वह धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। स्थापना इस प्रकार है— । जो आकाश प्रदेश लोकान्त के एक कोने मे स्थित हे, वह तदाश्रित (तदवगाढ) धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश से तथा ऊपर या नीचे रहे हुए अन्य एक प्रदेश से और दो दिशाओ मे रहे हुए दो प्रदेशो से, इस प्रकार धर्मास्तिकाय के चार प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। स्थापना इस प्रकार है— । जो आकाश प्रदेश, धर्मास्तिकाय के नीचे के एक प्रदेश से ऊपर के एक प्रदेश से तथा दो दिशाओ मे रहे हुए दो प्रदेशो से और वही रहे हुए धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश से स्पृष्ट होता है, वह इस प्रकार धर्मास्तिकाय पाच प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। जो आकाशप्रदेश धर्मास्तिकाय के ऊपर के एक प्रदेश से, नीचे के एक प्रदेश से, तीन दिशाओ के तीन प्रदेशो से और वही रहे हुए एक प्रदेश से स्पृष्ट होता है, वह छह प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। जो आकाशप्रदेश धर्मास्तिकाय के ऊपर और नीचे के एक-एक प्रदेश से तथा चार दिशाओ के चार प्रदेशो से और वही रहे हुए एक प्रदेश से स्पृष्ट होता है, वह इस प्रकार सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से भी उसकी स्पर्शना जाननी चाहिए।
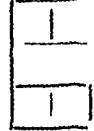
लोकाकाश और अलोकाकाश का एक प्रदेश, छहो दिशाओ मे रहे हुए आकाशास्तिकाय के प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। इसलिए उसकी स्पर्शना छह प्रदेशो से बताई गई है।

यदि अलोकाकाश का प्रदेशविशेष हो तो वह जीवास्तिकाय से स्पृष्ट नही होता, क्योकि वहाँ जीवो का अभाव है। यदि लोकाकाश का प्रदेश हो तो, वह जीवास्तिकाय से स्पृष्ट होता है।[1]

इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशो तथा अद्धाकाल के समयो की स्पर्शना के विषय मे समझना चाहिए।

यदि जीवास्तिकाय का एक प्रदेश लोकान्त के एक कोण मे होता है तो धर्मास्तिकाय के चार प्रदेशो से (नीचे या ऊपर के एक प्रदेश से, दो दिशाओ के दो प्रदेशो से और एक तदाश्रित प्रदेश से) स्पृष्ट होता है, क्योकि स्पर्शक प्रदेश सबसे अल्प होते है। जीवास्तिकाय का एक प्रदेश, एक आकाशप्रदेशादि पर केवलिसमुद्घात के समय ही पाया जाता है। उत्कृष्ट पद मे जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के सात पूर्वोक्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से भी स्पर्शना जाननी चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६११
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२०६

जीवास्तिकाय के प्रदेश की स्पर्शना के समान पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश की स्पर्शना भी जाननी चाहिए।[1]

३४. [१] दो भंते ! पोग्गलऽत्थिकायप्पदेसा केवतिएहिं धम्मत्थिकायपएसेहिं पुट्ठा ?

जहन्नपए छहिं, उक्कोसपदे बारसहिं ।

[३४-१ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट है ?

[३४-१ उ] गौतम ! वे जघन्य पद मे धर्मास्तिकाय के छह प्रदेशो से और उत्कृष्ट पद मे बारह प्रदेशो से स्पृष्ट है ।

[२] एवं अहम्मऽत्थिकायप्पएसेहि वि ।

[३४-२] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से भी वे (पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश) स्पृष्ट होते हैं ।

[३] केवतिएहिं आगासत्थिकाय० ?

बारसहिं ।

[३४-३ प्र] भगवन् ! वे आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?

[३४-३ उ] गौतम ! वे आकाशास्तिकाय के १२ प्रदेशो से स्पृष्ट हैं ।

[४] सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स ।

[३४-४] शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिए ।

३५. [१] तिन्नि भंते ! पोग्गलऽत्थिकायपदेसा केवतिएहिं धम्मत्थि० ?

जहन्नपदे अट्ठहिं, उक्कोसपदे सत्तरसहिं ।

[३५-१ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते हैं ?

[३५-१ उ] गौतम ! वे (तीन प्रदेश) जघन्य पद मे (धर्मास्तिकाय के) आठ प्रदेशो और उत्कृष्ट पद मे १७ प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ।

[२] एवं अहम्मत्थिकायपदेसेहि वि ।

[३५-२] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो से भी वे (तीन प्रदेश) स्पृष्ट होते है ।

[३] केवइएहिं आगासत्थि० ?

सत्तरसहिं ।

[३५-३ प्र] भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशो से (वे स्पृष्ट होते हैं ?)

[३५-३ उ] गौतम ! वे सत्तरह प्रदेशो से स्पृष्ट होते हैं ।

---

१ (क) वही, पृ २२०६ (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६११

[४] सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स।

[३५-४] शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिए।

३६. एवं एएणं गमेणं भाणियव्वा जाव दस, नवरं जहन्नपदे दोन्नि पक्खिवियव्वा, उक्कोसपए पच।

[३६] इसी आलापक के समान यावत् दश प्रदेशो तक इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जघन्य पद मे दो और उत्कृष्ट पद मे पाच का प्रक्षेप करना चाहिए।

३७. चत्तारि पोग्गलऽत्थिकाय० ?

जहन्नपदे दसहिं, उक्को० बावीसाए।

[३७ प्र] (भगवन्!) पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश (धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?)

[३७ उ] (गौतम! वे) जघन्य पद मे दस प्रदेशो से और उत्कृष्ट पद मे बाईस प्रदेशो से (स्पृष्ट होते है।)

३८. पंच पोग्गल० ?

जह० बारसहिं, उक्कोस० सत्तावीसाए।

[३८ प्र] (भगवन्!) पुद्गलास्तिकाय के पाच प्रदेश (धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?)

[३८ उ] (गौतम! वे) जघन्य पद मे बारह प्रदेशो से और उत्कृष्ट पद मे सत्ताईस प्रदेशो से स्पृष्ट होते है।

३९. छ पोग्गल० ?

जह० चोद्दसहिं, उक्को० बत्तीसाए।

[३९ प्र] (भगवन्!) पुद्गलास्तिकाय के छह प्रदेश (धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?)

[३९ उ] (गौतम! वे) जघन्यपद मे चौदह और उत्कृष्ट पद मे बत्तीस प्रदेशो से (स्पृष्ट होते है।)

४०. सत्त पो० ?

जहन्नेणं सोलसहिं, उक्को० सत्ततीसाए।

[४० प्र] (भगवन्!) पुद्गलास्तिकाय के सात प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से (स्पृष्ट होते है ?)

[४० उ] (गौतम! वे) जघन्य पद मे सोलह और उत्कृष्ट पद मे सैतीस प्रदेशो से (स्पृष्ट होते है।)

४१. अट्ठ पो० ?

जह० अट्ठारसहिं, उक्कोसेणं बायालीसाए ।

[४१ प्र] (भगवन् !) पुद्गलास्तिकाय के आठ प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?

[४१ उ] (गौतम ! वे) जघन्य पद मे अठारह और उत्कृष्ट पद मे बयालीस प्रदेशो से (स्पृष्ट होते हैं ।)

४२. नव पो० ?

जह० वीसाए, उक्को० सीयालीसाए ।

[४२ प्र] (भगवन् !) पुद्गलास्तिकाय के नौ प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?

[४२ उ] (गौतम ! वे) जघन्य पद मे बीस और उत्कृष्ट पद मे छियालीस प्रदेशो से (स्पृष्ट होते हैं ।)

४३. दस० ?

जह० बावीसाए, उक्को० बावण्णाए ।

[४३ प्र] (भगवन् !) पुद्गलास्तिकाय के दस प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से (स्पृष्ट होते है ?

[४३ उ] (गौतम ! वे) जघन्य पद मे बाईस और उत्कृष्ट पद मे बावन प्रदेशो से (स्पृष्ट होते है ?)

४४. आगासऽत्थिकायस्स सव्वत्थ उक्कोसगं भाणियव्वं ।

[४४] आकाशास्तिकाय के लिए सर्वत्र उत्कृष्ट पद ही कहना चाहिए ।

४५. [१] संखेज्जा भंते ! पोग्गलऽत्थिकायपएसा केवतिएहिं धम्मऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठा ?

जहन्नपदे तेणेव सखेज्जएण दुगुणेणं दुरूवाहिएणं, उक्कोसपए तेणेव संखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं ।

[४५-१ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के सख्यात प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?

[४५-१ उ] गौतम ! जघन्य पद मे उन्ही सख्यात प्रदेशो को दुगुने करके उनमे दो रूप और अधिक जोडे और उत्कृष्ट पद मे उन्ही सख्यात प्रदेशो को पाच गुने करके उनमे दो रूप और अधिक जोडे, उतने प्रदेशो से वे स्पृष्ट होते है ।

[२] केवतिएहिं अहम्मऽत्थिकाएहिं० ?

एवं चेव ।

[४५-२ प्र] (भगवन् !) वे अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होते है ?

[४५-२ उ] (गौतम !) पूर्ववत् (धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिए) ।

[३] केवतिएहिं आगासऽत्थिकाय० ?

तेणेव संखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं ।

[४५-३ प्र] भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

[४५-३ उ] (गौतम !) उन्हीं संख्यात प्रदेशों को पाँच गुणे करके उनमें दो रूप और जोड़े, उतने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ।

[४] केवतिएहिं जीवत्थिकाय० ?

अणंतेहिं ।

[४५-४ प्र] (भगवन् !) वे जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

[४५-४ उ] (गौतम ! वे) अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ।

[५] केवतिएहिं पोग्गलत्थिकाय० ?

अणंतेहिं ।

[४५-५ प्र] (भगवन् ! वे) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

[४५-५ उ] (गौतम ! वे) अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ।

[६] केवतिएहिं अद्धासमयेहिं० ?

सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे जाव अणंतेहिं ।

[४५-६ प्र] (भगवन् ! वे) अद्धाकाल के कितने समयों से स्पृष्ट होते हैं ?

[४५-६ उ] (गौतम ! वे) कदाचित् स्पृष्ट होते हैं और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होते, यावत् अनन्त समयों से स्पृष्ट होते हैं ।

४६. [१] असंखेज्जा भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा केवतिएहिं धम्मऽत्थि० ?

जहन्नपदे तेणेव असंखेज्जएणं दुगुणेणं दुरूवाहिएणं, उक्को० तेणेव असंखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं ।

[४६-१ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

[४६-१ उ] गौतम ! जघन्य पद में उन्हीं असंख्यात प्रदेशों को दुगुने करके उनमें दो रूप अधिक जोड़ दें, उतने (धर्मास्तिकायिक) प्रदेशों से (पुद्गलास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश) स्पृष्ट होते हैं और उत्कृष्ट पद में उन्हीं असंख्यात प्रदेशों को पांच गुणे करके उनमें दो रूप अधिक जोड़ दें, उतने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ।

[२] सेसं जहा संखेज्जाणं जाव नियमं अणंतेहिं ।

[४६-२] शेष सभी वर्णन संख्यात प्रदेशों के समान जानना चाहिए, यावत् नियमतः अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

४७. अणंता भंते ! पोग्गलऽत्थिकायपएसा केवतिएहिं धम्मऽत्थिकाय० ?

एवं जहा असंखेज्जा तहा अणंता वि निरवसेसं ।

[४७ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

[४७ उ] (गौतम !) जिस प्रकार असंख्यात प्रदेशों के विषय में कहा, उसी प्रकार अनन्त प्रदेशों के विषय में भी समस्त कथन करना चाहिए ।

४८. [१] एगे भंते ! अद्धासमए केवतिएहिं धम्मऽत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?

सत्तहिं ।

[४८-१ प्र] भगवन् ! अद्धाकाल का एक समय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

[४८-१ उ] (गौतम ! वह) सात प्रदेशों से (स्पृष्ट होता है ।)

[२] केवतिएहिं अहम्मऽत्थि० ?

एवं चेव ।

[४८-२ प्र] (भगवन् ! वह) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से (स्पृष्ट होता है ?)

[४८-२ उ] पूर्ववत् (धर्मास्तिकाय के समान) जानना चाहिए ।

[३] एवं आगासऽत्थिकाएहि वि ।

[४८-३] इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेशों से (अद्धाकाल के एक समय की स्पर्शना के विषय में) भी (कहना चाहिए ।)

[४] केवतिएहिं जीव० ?

अणतेहिं ।

[४८-४ प्र.] (भगवन् ! अद्धाकालिक एक समय) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

[४८-४ उ] (गौतम ! वह) अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ।

[५] एवं जाव अद्धासमएहिं ।

[४८-५] इसी प्रकार यावत् अनन्त अद्धासमयों से स्पृष्ट होता है ।

४९. [१] धम्मऽत्थिकाए णं भंते ! केवतिएहिं धम्मऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

नत्थि एक्केण वि ।

[४९-१ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय द्रव्य, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

[४९-१ उ] गौतम ! वह एक भी प्रदेश से स्पृष्ट नहीं होता ।

[२]· केवतिएहिं अधम्मऽत्थिकायप्पएसहिं० ?

असखेज्जेहिं ।

[४९-२ प्र] (भगवन् ! वह) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[४९-२ उ] (गौतम !) वह असख्येय प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[३] केवतिएहिं आगासऽत्थिकायप० ?

असखेज्जेहिं ।

[४९-३ प्र.] (भगवन् ! वह) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[४९-३ उ] (गौतम ! वह) असख्येय प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[४] केवतिएहिं जीवऽत्थिकायपए० ?

अणतेहिं ।

[४९-४ प्र.] (भगवन् ! वह) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[४९-४ उ.] (गौतम ! वह उसके) अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[५] केवतिएहि पोग्गलत्थिकायपएसेहि० ?

अणतेहि ।

[४९-५ प्र] भगवन् ! वह) पुद्‌गलास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[४९-५ उ] (गौतम ! वह उसके) अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ।

[६] केवतिएहि अद्धासमएहि० ?

सिय पुट्ठे सिय नो पुट्ठे । जइ पुट्ठे नियमा अणंतेहिं ।

[४९-६ प्र] (भगवन् ! वह) अद्धाकाल के कितने समयो से स्पृष्ट होता है ?

[४९-६ उ] (गौतम ! वह) कदाचित् स्पृष्ट होता है, और कदाचित् नही होता । यदि स्पृष्ट होता है तो (वह उसके) नियमत अनन्त समयो से (स्पृष्ट होता है ।)

५०. [१] अधम्मऽत्थिकाए णं भते ! केव० धम्मत्थिकाय० ?

असंखेज्जेहिं ।

[५०-१ प्र] भगवन् ! अधर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[५०-१ उ] (गौतम ! वह उसके) असख्यात प्रदेशो से (स्पृष्ट होता है ।)

[२] केवतिएहि अहम्मत्थि० ?

नत्थि एक्केण वि ।

[५०-२ प्र] भगवन् ! वह अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशो से स्पृष्ट होता है ?

[५०-२ उ] गौतम ! वह (अधर्मास्तिकायिक द्रव्य) उसके (अधर्मास्तिकाय के) एक भी प्रदेश से (स्पृष्ट नही होता ।)

[३] सेस जहा धम्मत्थिकायस्स ।

[५०-३] शेष सभी (द्रव्यो के प्रदेशो) से स्पर्शना के विषय के धर्मास्तिकाय के समान (जानना चाहिए ।)
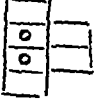
५१. एवं एतेणं गमएण सव्वे वि सट्ठाणए नत्थेक्केण वि पुट्ठा । परट्ठाणए आदिल्लएहिं तीहिं असखेज्जेहिं भाणियव्व, पच्छिल्लएसु तिसु अणता भाणियव्वा जाव अद्धासमयो त्ति—जाव केवतिएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?

नत्थेक्केण वि ।

[५१] इसी प्रकार इसी आलापक (पाठ) द्वारा सभी द्रव्य स्वस्थान मे एक भी प्रदेश से स्पृष्ट नही होते, (किन्तु) परस्थान मे आदि के (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन) तीनो के असख्यात प्रदेशो से स्पर्शना कहनी चाहिए, पीछे के तीन स्थानो (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय, इन तीनो) के अनन्त प्रदेशो से स्पर्शना यावत् अद्धासमय तक कहनी चाहिए । (यथा—) [प्र] "अद्धाकाल, कितने अद्धासमयो से स्पृष्ट होता है ?" [उ] अद्धाकाल के एक भी समय से स्पृष्ट नही होता ।

विवेचन—प्रस्तुत १८ सूत्रो (सू. ३४ से ५१ तक) मे पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश से लेकर सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेशो की धर्मास्तिकाय से लेकर अद्धासमय तक के प्रदेशो से स्पर्शना की, तदनन्तर एक अद्धाकाल की धर्मास्तिकायादि के प्रदेशो से स्पर्शना की प्ररूपणा की गई है । अन्तिम तीन सूत्रो मे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्यो की धर्मास्तिकायादि छह के प्रदेशो से स्पर्शना की प्ररूपणा की है ।

पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशो की धर्मास्तिकायादि के प्रदेशो से स्पर्शना—इस विषय मे चूर्णिकार का विवेचन यह है कि—लोकान्त मे द्विप्रदेशिक स्कन्ध एक प्रदेश को अवगाहित करके रहा हुआ है, तथापि 'एक प्रदेश पर प्रतिद्रव्य की अवगाहना होती है' इस नय के मतानुसार अवगाहित प्रदेश एक होते हुए भी भिन्न मानने से वह दो प्रदेशो से स्पृष्ट है तथा उसके ऊपर नीचे जो प्रदेश है, वह भी दो पुद्गलो के स्पर्श से पूर्वोक्त नयमतानुसार दो प्रदेशो से ही स्पृष्ट है । पार्श्ववर्ती दो प्रदेश एक-एक अणु को स्पर्श करते है । इस प्रकार जघन्य पद मे पुद्गलास्तिकाय का द्विप्रदेशी (द्व्यणुक) स्कन्ध धर्मास्तिकाय के छह प्रदेशो से स्पृष्ट है । यदि पूर्वोक्त प्रकार से नय की विवक्षा न की जाए तो द्व्यणुक स्कन्ध की जघन्यत. चार प्रदेशो से ही स्पर्शना होती है । वृत्तिकार के मतानुसार—छह कोष्ठक इस प्रकार बनाकर— वीच के जो दो बिन्दु हैं, उन्हे दो परमाणु समझना । उनमे से इस ओर का परमाणु इस ओर के धर्मास्तिकाय के प्रदेश से तथा दूसरी ओर का परमाणु दूसरी ओर के धर्मास्तिकायिक प्रदेश से स्पृष्ट है । इस प्रकार दो प्रदेशो से तथा दो प्रदेशो के मध्य मे स्थापित दो परमाणु, आगे के दो प्रदेशो से स्पृष्ट होते हैं । इस प्रकार एक के साथ एक और दूसरे के साथ दूसरा, यो कुल चार प्रदेश हुए और दो प्रदेश अवगाढ होने के कारण स्पृष्ट है । इस प्रकार कुल छह प्रदेश स्पृष्ट होते है । उत्कृष्ट पद मे बारह प्रदेशो से स्पर्शना होती है । यथा—दो परमाणु द्विप्रदेशावगाढ होने सेदो प्रदेश, ऊपर के दो प्रदेश, नीचे के दो प्रदेश, दोनो ओर के दो-दो प्रदेश और उत्तर-दक्षिण के दो-दो

प्रदेश, इस प्रकार बारह प्रदेशो से स्पर्शना होती है। स्थापना इस प्रकार है—
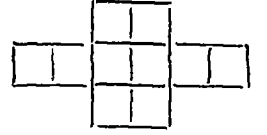
इसी प्रकार अधर्मास्तिकायिक प्रदेशो से स्पर्शना होती है।

आकाशास्तिकाय के बारह प्रदेशो से स्पर्शना होती है। लोकान्त मे भी आकाशप्रदेश विद्यमान होने से इसमे जघन्य पद नही होता।[1]

पुद्गलास्तिकाय के तीन से दस प्रदेश तक की धर्मास्तिकायादि के प्रदेशो से स्पर्शना—पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश, जघन्य पद मे धर्मास्तिकाय के आठ प्रदेशो से स्पृष्ट होते हैं। वे तीन प्रदेश एक प्रदेशावगाढ होते हुए भी पूर्वोक्त नयमतानुसार अवगाढ तीन प्रदेश नीचे के तथा तीन प्रदेश ऊपर के और दो प्रदेश दोनो ओर के, इस प्रकार धर्मास्तिकाय के ८ प्रदेशो से स्पर्शना होती है। यहाँ जघन्य पद मे सर्वत्र विवक्षित प्रदेशों को दुगुना करके दो और मिलाने पर जितने प्रदेश होते है, उतने प्रदेशों से स्पर्शना होती है। उत्कृष्ट पद मे विवक्षित प्रदेशो को पाचगुणे करके, दो और मिलाएँ उतने प्रदेशो से स्पर्शना होती है। जैसे—एक प्रदेश को दुगुना करने पर दो होते है, उनमे दो और मिलाने पर चार होते हैं। इस प्रकार जघन्यपद मे एक प्रदेश की चार प्रदेशो से स्पर्शना होती है। उत्कृष्ट पद मे, एक प्रदेश को पाचगुणा करने पर पाच होते हैं, उनमे दो और मिलाने पर सात होते है। इस प्रकार उत्कृष्ट पद मे एक प्रदेश सात प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार तीन से १० प्रदेश तक के विषय मे समझ लेना चाहिए।

इसकी स्थापना इस प्रकार समझ लेनी चाहिए—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	परमाणु सख्या
४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	जघन्य स्पर्श
७	१२	१७	२२	२७	३२	३७	४२	४७	५२	उत्कृष्ट स्पर्श

आकाशास्तिकाय का सभी स्थान पर (एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक) उत्कृष्ट पद ही होता है, जघन्य पद नही, क्योकि आकाश सर्वत्र विद्यमान है।[2]

पुद्गलास्तिकाय के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेशो की स्पर्शना—दस के उपरान्त सख्या की गणना सख्यात मे होती है। यथा—वीस प्रदेशो का एक स्कन्ध लोकान्त के एक प्रदेश पर रहा हुआ है। वह अमुक नय के मतानुसार वीस अवगाढ प्रदेशो से ऊपर या नीचे के वीस प्रदेशो से और दोनो ओर के दो प्रदेशो मे, इस प्रकार जघन्यपद मे ४२ प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। उत्कृष्ट पद मे निरुपचरित (वास्तविक) वीस अवगाढ प्रदेशो से, नीचे के वीस प्रदेशो से, ऊपर के वीस प्रदेशो

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२०७-२२०८

(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ६११

२ (क) वही, पत्र ६११

से, पूर्व और पश्चिम दिशा (दोनो ओर) के वीस-वीस प्रदेशो से तथा उत्तर और दक्षिण दिशा के एक-एक प्रदेश से, इस प्रकार कुल मिलाकर एक सौ दो प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। असख्यात और अनन्त प्रदेशो की स्पर्शना के विषय मे भी पूर्वोक्त नियम समझना चाहिए। किन्तु अनन्त के विषय मे विशेषता यह है कि जिस प्रकार जघन्य पद मे ऊपर या नीचे अवगाढ प्रदेश औपचारिक हैं, उसी प्रकार उत्कृष्टपद के विषय मे भी समझना चाहिए। क्योकि अवगाह से निरुपचरित अनन्त आकाश-प्रदेश नही होते, असख्यात होते हैं।[1]

अद्धासमय की स्पर्शना—समयक्षेत्रवर्ती वर्त्तमानसमयविशिष्ट परमाणु को यहाँ अद्धासमयरूप से समझना चाहिए। अन्यथा धर्मास्तिकाय के सात प्रदेशो से अद्धासमय की स्पर्शना नही हो सकती। यहाँ जघन्य पद नही है, क्योकि अद्धासमय मनुष्यक्षेत्रवर्ती है। जघन्य पद तो लोकान्त मे सम्भवित होता है, किन्तु लोकान्त मे काल नही है। अद्धासमय की स्पर्शना सात प्रदेशो से होती है। क्योकि अद्धासमयविशिष्ट परमाणुद्रव्य धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश मे अवगाढ होता है और धर्मास्तिकाय के छह प्रदेश उसके छहो दिशाओ मे होते है। इस प्रकार उसके सात प्रदेशो से स्पर्शना होती है।

अद्धासमय जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। क्योकि वे एक प्रदेश पर भी अनन्त होते है।

एक अद्धासमय पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशो से और अनन्त अद्धासमयो से स्पृष्ट होता है। क्योकि अद्धासमय विशिष्ट अनन्तपरमाणुओ से स्पृष्ट होता है। क्योकि ये उसके स्थान पर और आसपास विद्यमान होते हैं।[2]

समग्र धर्मास्तिकायादि द्रव्यो की स्पर्शना—स्वस्थान-परस्थान—जहाँ धर्मास्तिकायादि द्रव्यो का केवल उनके ही प्रदेशो से स्पर्शना का विचार किया जाए, वह स्वस्थान कहलाता है और जब दूसरे द्रव्यो के प्रदेशो से स्पर्शना का विचार किया जाए, तो वह परस्थान कहलाता है। स्वस्थान मे तो वह सम्पूर्ण द्रव्य अपने एक भी प्रदेश से स्पृष्ट नही होता, क्योकि सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय द्रव्य से धर्मास्तिकाय के कोई पृथक् प्रदेश नही है।

और परस्थान मे धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्यो के असख्यप्रदेशो से स्पृष्ट होता है। क्योकि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और तत्सम्बद्ध आकाशास्तिकाय के असख्य प्रदेश हैं। क्योकि धर्मास्तिकाय असख्य प्रदेश-स्वरूप सम्पूर्ण लोकाकाश मे है। जीवादि तीन द्रव्यो के विषय मे अनन्त प्रदेशो द्वारा स्पृष्ट होता है। क्योकि इन तीनो के अनन्त प्रदेश हैं। आकाशास्तिकाय मे इतनी विशेषता है कि वह धर्मास्तिकायादि के प्रदेशो से कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नही होता। जो स्पृष्ट होता है, वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय के असख्य प्रदेशो से और जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेशो से स्पृष्ट होता है। क्योकि धर्मास्तिकाय अनन्त जीवप्रदेशों से व्याप्त है। यावत्—एक अद्धासमय, एक भी अद्धासमय से स्पृष्ट नही होता। क्योकि निरुपचरित अद्धासमय एक ही होता है। इसलिए समयान्तर के साथ उसकी स्पर्शना नही होती। जो समय बीत चुका है, वह तो विनष्ट

---

१ भगवती अ वृत्ति, ६११

२ वही, पत्र ६१२

हो गया और अनागत समय अभी उत्पन्न ही नहीं हुआ। अतएव अतीत और अनागत के समय असत्स्वरूप होने से उनके साथ वर्तमान समय की स्पर्शना नहीं हो सकती।[1]

धर्मास्तिकाय की तरह अधर्मास्तिकाय के छह, आकाशास्तिकाय के छह, जीवास्तिकाय के छह और अद्धासमय के छह सूत्र कहने चाहिए।

पंचास्तिकाय-प्रदेश-अद्धासमयों का परस्पर विस्तृत प्रदेशावगाहनानिरूपण : नौवाँ अवगाहनाद्वार

५२. [१] जत्थ णं भंते ! एगे धम्मऽत्थिकायपएसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मऽत्थिकाय-पएसा ओगाढा ?

नत्थेक्को वि।

[५२-१ प्र] भगवन् ! जहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ (अवगाहन करके स्थित) है, वहाँ धर्मास्तिकाय के दूसरे कितने प्रदेश अवगाढ हैं ?

[५२-१ उ] गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय का दूसरा एक भी प्रदेश अवगाढ नहीं है।

[२] केवतिया अधम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

एक्को।

[५२-२ प्र] भगवन् ! वहाँ अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं ?

[५२-२ उ] (गौतम !) वहाँ एक प्रदेश अवगाढ होता है।

[३] केवतिया आगासऽत्थिकाय० ?

एक्को।

[५२-३ प्र] (भगवन् ! वहाँ) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[५२-३ उ] (उसका) एक प्रदेश अवगाढ होता है।

[४] केवतिया जीवऽत्थि० ?

अणंता।

[५२-४ प्र] (भगवन् !) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[५२-४ उ] (गौतम ! उसके) अनन्त प्रदेश अवगाढ होते हैं।

[५] केवतिया पोग्गलऽत्थि० ?

अणंता।

[५२-५ प्र] (भगवन् ! वहाँ) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[५२-५ उ] (गौतम ! उसके) अनन्त प्रदेश अवगाढ होते हैं।

[६] केवतिया अद्धा समया० ?

सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा। जति ओगाढा अणंता।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६१३
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५ पृ. २२०९

[५२-६ प्र] अद्धासमय कदाचित् अवगाढ होते हैं और कदाचित् नही होते। यदि अवगाढ होते है तो अनन्त अद्धासमय अवगाढ होते हैं।

५३ [१] जत्थ णं भंते ! एगे अधम्मऽत्थिकायपएसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थि० ?

एक्को।

[५३-१ प्र] भगवन् ! जहाँ अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[५३-१ उ] (गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय का) एक प्रदेश अवगाढ होता है।

[२] केवतिया अहम्मऽत्थि० ?

नत्थि एक्को वि।

[५३-२ प्र] (वहाँ) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[५३-२ उ] (वहाँ) उसका एक प्रदेश भी अवगाढ नही होता।

[३] सेस जहा धम्मऽत्थिकायस्स।

[५३-३] शेष (कथन) धर्मास्तिकाय के समान (समझना चाहिए।)

५४. [१] जत्थ णं भंते ! एगे आगासऽत्थिकायपएसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मऽत्थिकाय० ?

सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा। जति ओगाढा एक्को।

[५४-१ प्र] भगवन् ! जहाँ आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[५४-१ उ] गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय के प्रदेश कदाचित् अवगाढ होते हैं और कदाचित् अवगाढ नही होते। यदि अवगाढ होते हैं तो एक प्रदेश अवगाढ होता है।

[२] एवं अहम्मत्थिकायपएसा वि।

[५४-२] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो के विषय मे भी जानना चाहिए।

[३] केवतिया आगासऽत्थिकाय० ?

नत्थेक्को वि।

[५४-३ प्र] (भगवन् ! वहाँ) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[५४-३ उ] (वहाँ) एक प्रदेश भी (उसका) अवगाढ नही होता।

[४] केवतिया जीवऽत्थि० ?

सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा। जति ओगाढा अणंता।

[५४-४ प्र] (भगवन् ! वहाँ) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[५४-४ उ] (गौतम ! वे) कदाचित् अवगाढ होते है एव कदाचित् अवगाढ नही होते। यदि अवगाढ होते हैं तो अनन्त प्रदेश अवगाढ होते हैं।

[५] एव जाव अद्धासमया ।

[५४-५] इसी प्रकार यावत् अद्धासमय तक कहना चाहिए ।

५५. [१] जत्थ ण भते ! एगे जीवऽत्थिकायपएसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मऽत्थि० ?
एक्को ।

[५५-१ प्र] भगवन् ! जहाँ जीवास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[५५-१ उ] (गौतम ! वहाँ उसका) एक प्रदेश अवगाढ होता है ।

[२] एव अहम्मऽत्थिकाय० ।

[५५-२] इसी प्रकार (वहाँ) अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो के विषय मे जानना चाहिए ।

[३] एवं आगासऽत्थिकायपएसा वि ।

[५५-३] आकाशास्तिकाय के प्रदेशो के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

[४] केवतिया जीवऽत्थि० ?
अणंता ।

[५५-४ प्र] (भगवन् ! वहाँ) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?
[५५-४ उ] (गौतम ! वहाँ उसके) अनन्त प्रदेश अवगाढ होते है ।

[५] सेस जहा धम्मऽत्थिकायस्स ।

[५५-५] शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान समझना चाहिए ।

५६. जत्थ णं भते ! एगे पोग्गलऽत्थिकायपदेसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मऽत्थिकाय० ? एव जहा जीवऽत्थिकायपएसे तहेव निरवसेस ।

[५६ प्र] भगवन् ! जहाँ पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं ?

[५६ उ] (गौतम !) जिस प्रकार जीवास्तिकाय के प्रदेशो के विषय मे कहा, उसी प्रकार समस्त कथन करना चाहिए ।

५७ [१] जत्थ ण भते ! दो पोग्गलऽत्थिकायपएसा ओगाढा तत्थ केवतिया धम्मऽत्थिकाय० ? सिय एक्को, सिय दोण्णि ।

[५७-१ प्र] भगवन् ! जहाँ पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढ होते है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अगावढ होते हे ?

[५७-१ उ] (गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय का) कदाचित् एक या कदाचित् दो प्रदेश अवगाढ होते है ।

[२] एवं अहम्मऽत्थिकायस्स वि ।

[५७-२] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेश के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] एवं आगासऽत्थिकायस्स वि ।

[५७-३] इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेश के विषय मे जानना चाहिए ।

[४] सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स ।

[५७-४] शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान समझना चाहिए ।

५८. [१] जत्थ ण भते ! तिन्नि पोग्गलत्थि० तत्थ केवतिया धम्मऽत्थिकाय० ?
सिय एक्को, सिय दोन्नि, सिय तिन्नि ।

[५८-१ प्र] भगवन् ! जहाँ पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश अवगाढ होते है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[५८-१ उ] (गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय का) कदाचित् एक, कदाचित् दो या कदाचित् तीन प्रदेश अवगाढ होते हैं ।

[२] एवं अहम्मऽत्थिकायस्स वि ।

[५८-२] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय मे भी कहना चाहिए ।

[३] एवं आगासऽत्थिकायस्स वि ।

[५८-३] आकाशास्तिकाय के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

[४] सेस जहेव दोण्हं ।

[५८-४] शेष (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय इन) तीनो के विषय के, जिस प्रकार दो पुद्गलप्रदेशो के विषय मे कहा था उसी प्रकार तीन पुद्गलप्रदेशो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

५९ एवं एक्केक्को वड्ढियव्वो पएसो आदिल्लएहि तीहिं अत्थिकाएहि । सेसं जहेव दोण्हं जाव दसण्हं सिय एक्को, सिय दोन्नि, सिय तिन्नि जाव सिय दस । संखेज्जाण सिय एक्को, सिय दोन्नि, जाव सिय दस, सिय संखेज्जा । असखेज्जाण सिय एक्को, जाव सिय सखेज्जा, सिय असंखेज्जा । जहा असंखेज्जा एवं अणता वि ।

[५९] आदि के तीन अस्तिकायो के साथ एक-एक प्रदेश बढाना चाहिए ।

शेष के विषय मे जिस प्रकार दो पुद्गल प्रदेशो के विषय मे कहा था, उसी प्रकार यावत् दस प्रदेशो तक कहना चाहिए । अर्थात् जहाँ पुद्गलास्तिकाय के दस प्रदेश अवगाढ होते है, वहाँ धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक, दो, तीन, यावत् कदाचित् दस प्रदेश अवगाढ होते है ।

जहाँ पुद्गलास्तिकाय के सख्यात प्रदेश अवगाढ होते है, वहाँ धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक, दो, तीन, यावत् कदाचित् दस प्रदेश यावत् कदाचित् सख्यात प्रदेश अवगाढ होते है । जहाँ पुद्गला-

स्तिकाय के असख्यात प्रदेश अवगाढ होते है, वहाँ धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक प्रदेश यावत् कदाचित् सख्यात प्रदेश और कदाचित् असख्यात प्रदेश अवगाढ होते है।

जिस प्रकार पुद्गलास्तिकाय के विषय मे कहा है, उसी प्रकार अनन्त प्रदेशो के विषय मे भी कहना चाहिए। अर्थात्—जहाँ पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाढ होते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक प्रदेश यावत् सख्यात प्रदेश और असख्यात प्रदेश अवगाढ होते है।

६०. [१] जत्थ ण भते ! एगे अद्धासमये ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मऽत्थि० ?

एक्को।

[६०-१ प्र] भगवन् ! जहाँ एक अद्धासमय अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[६०-१ उ] (गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय का) एक प्रदेश अवगाढ होता है ?

[२] केवतिया अहम्मऽत्थि० ?

एक्को।

[६०-२ प्र] (भगवन् ! वहाँ) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[६०-२ उ.] (वहाँ उसका) एक प्रदेश अवगाढ होता है।

[३] केवतिया आगासऽत्थि० ?

एक्को।

[६०-३ प्र] (भगवन् ! वहाँ) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[६०-३ उ] (गौतम ! वहाँ आकाशास्तिकाय का) एक प्रदेश अवगाढ होता है।

[४] केवइया जीवऽत्थि० ?

अणता।

[६०-४ प्र] (भगवन् ! वहाँ) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[६०-४ उ] (गौतम ! वहाँ जीवास्तिकाय के) अनन्त प्रदेश अवगाढ होते है।

[५] एवं जाव अद्धासमया।

[६०-५ प्र] इसी प्रकार यावत् अद्धासमय तक कहना चाहिए।

६१. [१] जत्थ णं भते ! धम्मऽत्थिकाये ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपएसा ओगाढा ?

नत्थि एक्को वि।

[६१-१ प्र] भगवन् ! जहाँ एक धर्मास्तिकाय-द्रव्य अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?

[६१-१ उ] (गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय का) एक भी प्रदेश अवगाढ नही होता।

[२] केवतिया अहम्मऽत्थिकाय० ?

असंखेज्जा ।

[६१-२ प्र] (भगवन् ! वहाँ) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?
[६१-२ उ] (गौतम ! वहाँ) अधर्मास्तिकाय के असख्येय प्रदेश अवगाढ होते हैं ।

[३] केवतिया आगास० ?

असखेज्जा ।

[६१-३ प्र] (वहाँ) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?
[६१-३ उ] (वहाँ उसके) असख्येय प्रदेश अवगाढ होते है ।

[४] केवतिया जीवऽत्थिकाय० ?

अणता ।

[६१-४ प्र] (वहाँ) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?
[६१-४ उ] (वहाँ उसके) अनन्त प्रदेश (अवगाढ होते है ।)

[५] एव जाव अद्धा समया ।

[६१-५] इसी प्रकार यावत् अद्धासमय (तक कहना चाहिए ।)

६२. [१] जत्थ णं भते ! अहम्मऽत्थिकाये ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मऽत्थिकाय० ?

असखेज्जा ।

[६२-१ प्र] भगवन् ! जहाँ एक अधर्मास्तिकाय-द्रव्य अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते हैं ?

[६२-१ उ] (गौतम ! वहाँ धर्मास्तिकाय के) असख्येय प्रदेश अवगाढ होते है ।

[२] केवतिया अहम्मत्थि० ?

नत्थि एक्को वि ।

[६२-२ प्र] (वहाँ) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ होते है ?
[६२-२ उ] (अधर्मास्तिकाय का) एक भी प्रदेश (वहाँ) अवगाढ नही होता ।

[३] सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स ।

[६२-३] शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान करना चाहिए ।

६३. एवं सव्वे सट्ठाणे नत्थि एक्को वि भाणियव्वं । परट्ठाणे आदिल्लगा तिन्नि असखेज्जा भाणियव्वा, पच्छिल्लगा तिन्नि अणता भाणियव्वा जाव अद्धासमओ त्ति—जाव केवतिया अद्धासमया ओगाढा ?

नत्थि एक्को वि ।

[६३] इस प्रकार धर्मास्तिकायादि सब द्रव्यो के 'स्वस्थान' मे एक भी प्रदेश नही होता, किन्तु परस्थान मे प्रथम के तीन द्रव्यो (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय) के

असख्येय प्रदेश कहने चाहिए, और पीछे के तीन द्रव्यो (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय) के अनन्त प्रदेश कहने चाहिए । यावत्—[प्र] (एक अद्धाकाल द्रव्य मे) कितने अद्धासमय अवगाढ होते है ?' [उ] एक भी अवगाढ नही होता, (इस प्रकार) 'अद्धासमय' तक कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत १२ सूत्रों (सू ५२ से ६३ तक) मे नौवे अवगाहनाद्वार के माध्यम से धर्मास्तिकाय आदि के एक, दो, यावत् दस, सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश अवगाहित होने की स्थिति मे परस्पर उन्ही धर्मास्तिकायादि के प्रदेशो की अवगाहना की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे धर्मास्तिकायादि प्रत्येक समग्र द्रव्य हो, वहाँ धर्मास्तिकायादि छह के प्रदेशो का भी निरूपण किया गया है ।

धर्मास्तिकायादि के एक प्रदेश पर धर्मास्तिकायादि के प्रदेशो का अवगाहन—धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश के स्थान पर धर्मास्तिकाय का अन्य प्रदेश अवगाढ नही होता । अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का वहाँ एक-एक प्रदेश अवगाढ होता है, तथा जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त-अनन्त प्रदेश अवगाढ होते है, क्योकि धर्मास्तिकाय का एक-एक प्रदेश उनके अनन्त प्रदेशो से व्याप्त है । धर्मास्तिकाय सम्पूर्ण लोकव्यापी है और अद्धासमय केवल मनुष्यलोकव्यापी है । अत धर्मास्तिकाय के प्रदेश पर अद्धासमयो का क्वचित् अवगाह है और क्वचित्-कही नही भी है । जहाँ अवगाह होता है, वहाँ अनन्त का अवगाह है । धर्मास्तिकाय के समान ही अधर्मास्तिकाय के भी छह सूत्र कहने चाहिए । आकाशास्तिकाय के विषय मे धर्मास्तिकाय का प्रदेश कदाचित् अवगाढ है और नही भी है, क्योकि आकाशास्तिकाय लोकालोकपरिमाण है जब कि धर्मास्तिकाय के प्रदेश लोकाकाश मे ही है, अलोकाकाश मे नही । वहाँ धर्मास्तिकाय नही है ।[1]

पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशो की अवगाहना—जहाँ पुद्गलास्तिकाय का द्वयणुकस्कन्ध (द्विप्रदेशीस्कन्ध) एक आकाशप्रदेश मे अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश ही अवगाहता है, और जब वह आकाशास्तिकाय के दो प्रदेशो को अवगाहता है, तब धर्मास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढ होते है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के एक प्रदेश और दो प्रदेशो के अवगाहन की घटना स्वय कर लेनी चाहिए । जब पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश आकाशास्तिकाय के एक प्रदेश को अवगाहते है तब धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ होता है । जब आकाशास्तिकाय के दो प्रदेशो को अवगाहते है, तब धर्मास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढ होते है । जब आकाशास्तिकाय के तीन प्रदेशो को अवगाहते है, तब धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेश अवगाढ होते है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विषय मे भी समझना चाहिए । जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय-सम्बन्धी तीन सूत्रो का कथन भी पूर्ववत् करना चाहिए । विशेष यह है कि पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेशो के स्थान पर जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाढ होते है ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१४
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२२०

जिस प्रकार पुद्‌गलास्तिकाय के तीन प्रदेशो की अवगाहना के विषय मे धर्मास्तिकायादि के एक-एक प्रदेश की वृद्धि की है, उसी प्रकार पुद्‌गलास्तिकाय के चार, पाच आदि प्रदेशो की अवगाहना के विषय मे भी एक-एक प्रदेश की वृद्धि करनी चाहिए।

जहाँ पुद्‌गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाढ होते है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कदाचित् एक, दो यावत् कदाचित् सख्यात, अथवा असख्यात प्रदेश अवगाढ होते है। अनन्त नही, क्योकि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश के अनन्त प्रदेश नही होते, असख्यात ही होते है।[1]

समग्र धर्मास्तिकायादि द्रव्य पर अन्य धर्मास्तिकायादि प्रदेशो का अवगाह—जहाँ समग्र धर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय का अन्य एक भी प्रदेश अवगाढ नही होता। क्योकि उसमे प्रदेशान्तरो का अभाव है। अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के वहाँ असंख्य प्रदेश अवगाढ होते है। क्योकि इनके असख्य प्रदेश होते है। जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और अद्धासमय के अनन्त प्रदेश होते है, इसलिए इन पर अनन्त प्रदेश अवगाढ होते हैं।[2]

पांच एकेन्द्रियों का परस्पर अवगाहना-निरूपण : दसवाँ जीवावगाढद्वार

६४. [१] जत्थ णं भंते ! एगे पुढविकाइए ओगाढे तत्थ केवतिया पुढविकाइया ओगाढा ?
असखेज्जा।

[६४-१ प्र] भगवन् ! जहाँ एक पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होता है, वहाँ दूसरे कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते है ?

[६४-१ उ] (गौतम ! वहाँ) असख्य (पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते है।)

[२] केवतिया आउक्काइया ओगाढा ?
असखेज्जा।

[६४-२ प्र] (भगवन् ! वहाँ) कितने अप्कायिक जीव अवगाढ होते है ?

[६४-२ उ] (गौतम ! वहाँ अप्कायिक) असख्य जीव (अवगाढ होते है।)

[३] केवतिया तेउकाइया ओगाढा ?
असखेज्जा।

[६४-३ प्र] (भगवन् ! वहाँ) कितने तेजस्कायिक जीव अवगाढ होते है ?

[६४-३ उ] (गौतम ! वहाँ तेजस्काय के) असख्य जीव (अवगाढ होते है।)

[४] केवतिया वाउ० ओगाढा ?
असखेज्जा।

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २२२०-२२२१
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१४-६१५

२ (क) वही, पत्र ६१५
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२२१

[६४-४ प्र] (भगवन् ! वहाँ) वायुकायिक जीव कितने अवगाढ होते है ?

[६४-४ उ] (गौतम ! वहाँ) असख्य जीव (अवगाढ होते है ।)

[५] केवतिया वणस्सतिकाइया ओगाढा ?

अणंता ।

[६४-५ प्र] (भगवन् ! वहाँ) कितने वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ होते हैं ?

[६४-५ उ] (गौतम ! वहाँ वे) अनन्त (जीव अवगाढ होते है ।)

६५. [१] जत्थ ण भंते ! एगे आउकाइए ओगाढे तत्थ ण केवतिया पुढवि० ?

असखेज्जा ।

[६५-१ प्र] भगवन् ! जहाँ एक अप्कायिक जीव अवगाढ होता है, वहाँ कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते हैं ?

[६५-१ उ] गौतम ! वहाँ असख्य पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते है ।

[२] केवतिया आउ० ?

असखेज्जा । एव जहेव पुढविकाइयाणं वत्तव्वया तहेव सव्वेसिं निरवसेसं भाणियव्वं जाव वणस्सतिकाइयाण—जाव केवतिया वणस्सतिकाइया ओगाढा ?

अणंता ।

[६५-२ प्र] (भगवन् वहाँ) अन्य अप्कायिक जीव कितने अवगाढ होते है ?

[६५-२ उ] (गौतम ! वहाँ वे) असख्य अवगाढ होते है । जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार अन्यकायिक जीवो की समस्त वक्तव्यता, यावत् वनस्पतिकायिक तक कहनी चाहिए। (यथा) यावत्—[प्र.] 'वहाँ कितने वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ होते हैं ?' [उ] '(वहाँ) अनन्त अवगाढ होते हैं ।'

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ६४-६५) द्वारा एकेन्द्रिय जीवो के परस्पर अवगाहन के विषय मे दसवे जीवावगाढद्वार के माध्यम से प्रतिपादन किया गया है ।

पृथ्वीकायादि मे से एक मे, पृथ्वीकायादि पांचो प्रकार के जीवो की अवगाहनप्ररूपणा—जहाँ एक पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ है, वहाँ पृथ्वीकायिकादि चारो काय के असख्य सूक्ष्म जीव अवगाढ है । जैसे कि कहा है—'जत्थ एगो, तत्थ नियमा असंखेज्जा ।' किन्तु वहाँ वनस्पतिकाय के अनन्त जीव अवगाढ है । इसी प्रकार पाचो कायो के विषय मे समझ लेना चाहिये ।[1]

धर्माऽधर्माऽकाशास्तिकायो पर बैठने आदि का दृष्टान्तपूर्वक निषेध-निरूपण : ग्यारहवाँ अस्तिप्रदेश-निषीदनद्वार

६६. [१] एयंसि णं भते ! धम्मत्थिकाय० अधम्मत्थिकाय० आगासत्थिकायसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठित्तए वा निसीइत्तए वा तुयट्टित्तए वा ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१५

नो इणट्ठे समट्ठे, अणंता पुण तत्थ जीवा ओगाढा ।

[६६-१ प्र] भगवन् ! इन धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय पर कोई व्यक्ति बैठने (या ठहरने), सोने, खडा रहने, नीचे बैठने और लेटने (या करवट बदलने) मे समर्थ हो सकता है ?

[६६-१ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है । उस स्थान पर अनन्त जीव अवगाढ होते है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—एयंसि णं धम्मत्थि० जाव आगासत्थिकायंसि नो चक्किया केयि आसइत्तए वा जाव ओगाढा ?

गोयमा ! से जहा नामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा जहा रायप्पसेणइज्जे जाव दुवारवयणाइं पिहेइ; दुवारवयणाइं पिहित्ता तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं पदीवसहस्सं पलीवेज्जा; से नूणं गोयमा ! ताओ पदीवलेस्साओ अन्नमन्नसंबद्धाओ अन्नमन्नपुट्ठाओ जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

'हंता, चिट्ठंति ।' "चक्किया णं गोयमा ! केयि तासु पदीवलेस्सासु आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा ?"

'भगवं ! णो इणट्ठे समट्ठे, अणंता पुण तत्थ जीवा ओगाढा ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं जाव वुच्चइ ओगाढा ।

[६६-२ प्र] भगवन् यह किसलिए कहा जाता है कि इन धर्मास्तिकायादि पर कोई भी व्यक्ति ठहरने, सोने आदि मे समर्थ नही हो सकता, यावत् वहाँ अनन्तजीव अवगाढ होते हैं ?

[६६-२ उ] गौतम ! जैसे कोई कूटागारशाला हो, जो बाहर और भीतर दोनो ओर से लीपी हुई हो, चारो ओर से ढँकी हुई (सुरक्षित) हो, उसके द्वार भी गुप्त (सुरक्षित) हो, इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्रानुसार, यावत्-द्वार के कपाट बद कर (ढँक) देता है, (यहाँ तक जानना चाहिए ।) उस कूटागारशाला के द्वार के कपाटो को बन्द करके ठीक मध्यभाग मे (कोई) जघन्य (कम से कम) एक, दो या तीन और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) एक हजार दीपक जला दे, तो हे गौतम ! (उस समय) उन दीपको की प्रभाएँ परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध (ससक्त) होकर, एक दूसरे (की प्रभा) को छूकर यावत् परस्पर एकरूप होकर रहती है न ?

[गौतम द्वारा उत्तर]—हाँ, भगवन् ! (वे इसी प्रकार से) रहती है ।

[भगवान् द्वारा प्रश्न]—हे गौतम ! क्या कोई व्यक्ति उन प्रदीप प्रभाओ पर बैठने, सोने यावत् करवट बदलने मे समर्थ हो सकता है ?

[गौतम द्वारा उत्तर]—भगवन् ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है । उन प्रभाओ पर अनन्त जीव अवगाहित होकर रहते है ।

(भगवान् द्वारा उपसहार—) इसी कारण से हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा है कि (इस

धर्मास्तिकायादि त्रिक मे न कोई पुरुष वैठ सकता है, न सो सकता है, न खडा रह सकता है) यावत् न ही करवट वदल सकता है; (क्योंकि ये तीनो ही द्रव्य अमूर्त्त हैं, फिर भी) इनमे अनन्त जीव अवगाढ हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे धर्मास्तिकायादि पर किसी व्यक्ति की वैठने, लेटने आदि की अशक्यता को कूटगारशाला के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है।

कठिन शब्दार्थ— **एयसि**—इस पर। **चक्किया**—समर्थ हो सकता है। **आसइत्तए**—वैठने या ठहरने मे। **सइत्तए**—सोने मे या शयन करने मे। **चिट्ठित्तए**—खडा रहने या ठहरने मे। **निसीइत्तए**—नीचे वैठने मे। **तुयट्टित्तए**—करवट वदलने मे या लेटने मे। **पलीवेज्जा**—जला दे। **अन्नमन्नघडत्ताए**—एक दूसरे के साथ एकमेक (एकरूप) होकर। **पदीवलेस्सासु**—दीपको की प्रभाओ पर।[1]

वहुसम, सर्वसंक्षिप्त, विग्रह-विग्रहिक लोक का निरूपण : वारहवाँ वहुसमद्वार

६७. कहि ण भते ! लोए वहुसमे ? कहि णं भते ! लोए सव्वविग्गहिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डगपयरेसु, एत्थ णं लोए वहुसमे, एत्थ णं लोए सव्वविग्गहिए पन्नत्ते।

[६७ प्र] भगवन् ! लोक का वहु-समभाग कहाँ है ? (तथा) हे भगवन् ! लोक का सर्व-सक्षिप्त भाग कहाँ कहा गया है ?

[६७ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभा (नरक-) पृथ्वी के ऊपर के और नीचे के क्षुद्र (लघु) प्रतरो मे लोक का वहुसम भाग है और यही लोक का सर्वसक्षिप्त (सवसे सकीर्ण) भाग कहा गया है।

६८. कहि ण भते ! विग्गहविग्गहिए लोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! विग्गहकंडए, एत्थ णं विग्गहविग्गहिए लोए पन्नत्ते।

[६८ प्र] भगवन् ! लोक का विग्रह-विग्रहिक भाग (लोकरूप शरीर का वक्रतायुक्त भाग) कहाँ कहा गया है ?

[६८ उ] गौतम ! जहाँ विग्रह-कण्डक (वक्रतायुक्त अवयव) है, वही लोक का विग्रह-विग्रहिक भाग कहा गया है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. ६७-६८) मे वारहवे वहुसमद्वार के माध्यम से लोक के वहु-समभाग एव विग्रह-विग्रहिक भाग के सम्वन्ध मे प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत की गई है।

कठिन शब्दार्थ—**वहुसमे**—अत्यन्त सम, प्रदेशो की वृद्धि-हानि से रहित भाग। **सव्वविग्गहिए**—सर्वसक्षिप्तभाग, सव से छोटा या सकीर्ण भाग। **विग्गह-विग्गहिए**—विग्रह (वक्रतायुक्त)—विग्रहिक—(शरीर का भाग)। **विग्गहकडए**—विग्रहकण्डक वक्रतायुक्त अवयव।[2]

---

१ भगवतीसूत्र प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा १०, पृ ७०९

२. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१६

(ख) भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२२३

लोक का वहु समभाग—यह चौदह रज्जू-परिमाण वाला लोक कही वढ़ा हुआ है तो कही घटा हुआ है। इस प्रकार की वृद्धि और हानि से रहित भाग को 'वहुसम' कहते हैं। इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वी मे दो क्षुल्लक (लघुतम) प्रतर हैं। ये सवसे छोटे हैं। ऊपर के क्षुद्र प्रतर से प्रारम्भ होकर ऊपर ही ऊपर प्रतर-वृद्धि होती है और नीचे के क्षुल्लक प्रतर से नीचे-नीचे की ओर प्रतर-वृद्धि होती है। शेष प्रतरो की अपेक्षा ये प्रतर छोटे हैं, क्योकि इनकी लम्वाई-चौड़ाई एक रज्जू-परिमित है। ये दोनो प्रतर तिर्यक्लोक के मध्यवर्ती है।[1]

लोक का विग्रह-विग्रहिक—इस समग्र लोक की आकृति पुरुष-शरीराकार मानी जाती है। कमर पर हाथ रख कर खड़े हुए पुरुष के दोनो हाथो की कुहनियो (कूर्पर) का स्थान वक्र (टेढा) होता है। इसी प्रकार इस लोक मे पचम ब्रह्मलोक नामक देवलोक के पास लोक का कूर्परस्थानीय (कुहनी जैसा) वक्रभाग है। इसे ही 'विग्रहकण्डक' कहते है, अथवा जहाँ प्रदेशो की वृद्धि या हानि होने से वक्रता होती है, उस भाग को भी विग्रहकण्डक कहते हैं। यहाँ लोकरूप शरीर का वक्रतायुक्त भाग है। यह (विग्रहकण्डक) प्राय. लोकान्त मे है।[2]

लोक-संस्थाननिरूपण : तेरहवाँ लोक-संस्थानद्वार

६९. किंसंठिए णं भते ! लोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! सुपतिट्ठगसंठिए लोए पन्नत्ते, हेट्ठा वित्थिण्णे, मज्झे जहा सत्तमसए पढमुद्देसे (स० ७ उ० १ सु. ५) जाव अंतं करेंति।

[६९ प्र] भगवन् ! इस लोक का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[६९ उ] गौतम ! इस लोक का सस्थान सुप्रतिष्ठक के आकार का कहा गया है। यह लोक नीचे विस्तीर्ण है, मध्य मे सक्षिप्त (सकीर्ण) है, इत्यादि वर्णन सप्तम शतक के प्रथम उद्देशक (सू ५) के अनुसार, यावत्—ससार का अन्त करते है—यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे लोक के आकार के विषय मे सप्तम शतक के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

लोक की आकृति और परिमाण—नीचे एक औधा (उल्टा) मिट्टी का सकोरा रखा जाए, उसके ऊपर एक सीधा और उसके ऊपर एक उल्टा सकोरा रखा जाए। इसका जो आकार वनता है, वही लोक का सस्थान (आकार) है। इस आकृति से यह स्पष्ट है कि लोक नीचे से चौड़ा है, वीच मे सकीर्ण हो जाता है, कुछ ऊपर फिर चौड़ा होता जाता है और सवसे ऊपर फिर संकीर्ण हो जाता है। वहाँ लोक की चौडाई सिर्फ एक रज्जू रह जाती है। इस प्रकार 'संसार का अन्त करते हैं', यहाँ तक जो लोक सम्वन्धी विस्तृत विवेचन भगवतीसूत्र के सप्तम शतक, प्रथम उद्देशक, पचम सूत्र मे किया गया है, उसे यहाँ भी जान लेना चाहिए।[3]

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१६

२. भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २२२४

३. भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २२२५

अधोलोक-तिर्यक्लोक-ऊर्ध्वलोक के अल्पबहुत्व का निरूपण

७०. एतस्स ण भते ! अहेलोगस्स तिरियलोगस्स उड्ढलोगस्स य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे तिरियलोए, उड्ढलोए असखेज्जगुणे, अहेलोए विसेसाहिए ।

सेव भते ! सेव भते ! ति० ।

[७० प्र] भगवन् ! अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक मे, कौन-सा लोक किस लोक से छोटा (अल्प) यावत् वहुत (अधिक या बडा), सम अथवा विशेषाधिक है ?

[७० उ] गौतम ! सवसे थोडा (छोटा) तिर्यक् लोक है। (उससे) ऊर्ध्वलोक असख्यात गुणा है और उससे अधोलोक विशेषाधिक (विशेष बडा) है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करते है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तीनो लोको की न्यूनाधिकता (छोटे-बडे की तरतमता) बताई गई है।

कौन छोटा-कौन बड़ा ?—तिर्यग्लोक सबसे छोटा इसलिए है कि वह केवल १८०० योजन लम्वा है, जवकि उर्ध्वलोक की अवगाहना ७ रज्जू मे कुछ कम है, इसलिए वह तिर्यग्लोक से असख्यातगुना वडा है और अधोलोक सबसे अधिक बडा (विशेषाधिक) इसलिए है कि उसकी अवगाहना कुछ अधिक ७ रज्जू परिमाण है। इसलिए वह ऊर्ध्वलोक से विशेषाधिक है।[1]

॥ तेरहवाँ शतक चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१६
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२२५

पंचमो उद्देसओ : आहरो

पंचम उद्देशक : नैरयिकों आदि का आहार

चौवीस दण्डकों में आहारादि-प्ररूपणा

१. नेरतिया ण भंते ! किं सचित्ताहारा, अचित्ताहारा० ?

पढमो नेरइयउद्देसओ निरवसेसो भाणियव्वो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ तेरसमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१ प्र] भगवन् ! नैरयिक सचित्ताहारी है, अचित्ताहारी या मिश्राहारी है ?

[१ उ] गौतम ! नैरयिक न तो सचित्ताहारी है और न मिश्राहारी है, वे अचित्ताहारी है। (इसी प्रकार असुरकुमार आदि के आहार के विषय मे भी कहना चाहिए ।)

(इसके उत्तर मे) यहाँ (प्रज्ञापनासूत्र के अट्ठाईसवे आहारपद का) समग्र प्रथम उद्देशक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रज्ञापनासूत्र के २८ वे आहारपद के प्रथम उद्देशक के अतिदेश पूर्वक नैरयिक, असुरकुमार आदि २४ दण्डकवर्ती जीवो के आहार का प्ररूपण किया गया है ।[1]

॥ तेरहवाँ शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ देखिये—पण्णवणासुत्त भाग १, सू १७९३-१८६४, पृ ३९२-४००
(श्री महावीर जैन विद्यालय द्वारा प्रकाशित)

छट्ठो उद्देसओ : उववाए

छठा उद्देशक : उपपात (आदि)

चौवीस दण्डको में सान्तर-निरन्तर-उपपात-उद्वर्त्तन-निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२. संतरं भंते ! नेरतिया उववज्जति, निरतर नेरतिया उववज्जति ?

गोयमा ! सतर पि नेरतिया उववज्जति, निरतर पि नेरतिया उववज्जति ।

[२ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर (समय आदि के अन्तर—व्यवधान सहित) उत्पन्न होते है या निरन्तर (समयादि के अन्तर के विना लगातार) उत्पन्न होते रहते हैं ?

[२ उ.] गौतम ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते रहते है ।

३. एवं असुरकुमारा वि ।

[३] असुरकुमार भी इसी तरह (सान्तर-निरन्तर दोनो प्रकार से उत्पन्न होते है ।)

४. एवं जहा गंगेये (स० ९ उ० ३२ सु० ३-१३) तहेव दो दडगा जाव सतर पि वेमाणिया चयति, निरंतरं पि वेमाणिया चयति ।

[४] इसी प्रकार जैसे नौवे शतक के बत्तीसवे गागेय उद्देशक (सूत्र ३-१३) मे उत्पाद और उद्वर्तना के सम्बन्ध मे दो दण्डक कहे हैं, वैसे ही यहाँ भी, यावत् वैमानिक सान्तर भी च्यवते है और निरन्तर भी च्यवते रहते है, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

विवेचन—सर्व संसारी जीवो मे सान्तर-निरन्तर-उत्पत्ति उद्वर्त्तना—प्रस्तुत चार सूत्रो मे नैरयिको से लेकर वैमानिको तक की उत्पत्ति और उद्वर्त्तना सम्बन्धी सान्तर-निरन्तर-प्ररूपणा नौवे शतक के बत्तीसवे गागेय उद्देशक के अतिदेशपूर्वक की गई है ।

चमरचंच आवास का वर्णन एवं प्रयोजन

५. कहिं णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे नाम आवासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे एवं जहा बितियसए सभाउद्देसवत्तव्वया (स० २ उ० ८ सु० १) सच्चेव अपरिसेसा नेयव्वा, नवरं इम नाणत्तं जाव तिगिच्छकूडस्स उप्पायपव्वयस्स चमरचचाए रायहाणीए चमरचचस्स आवासपव्वयस्स अन्नेसि

च वहूणं० सेसं तं चेव जाव तेरसअंगुलाइं अद्ध गुलं च किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं। तीसे णं चमर-चचाए रायहाणीए दाहिणपच्चत्थिमेणं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पन्नासं च सहस्साइं अरुणोदगसमुद्द तिरियं वीतीवइत्ता एत्थ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे नामं आवासे पण्णत्ते, चउरासीतिं जोयणसहस्साइं आयामविक्खमेणं, दो जोयणसयसहस्सा पन्नट्ठिं च सहस्साइं छच्च वत्तीसे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं। से णं एगेणं पागारेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते। से णं पागारे दिवड्ढं जोयणसय उड्ढं उच्चत्तेणं, एवं चमरचंचाराय-हाणीवत्तव्वया भाणियव्वा सभाविहूणा जाव चत्तारि पासायपंतीओ।

[५ प्र] भगवन ! असुरेन्द्र और असुरकुमारराज 'चमर' का 'चमरचच' नामक आवास कहाँ कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! जम्वूद्वीप मे मन्दर (मेरु) पर्वत से दक्षिण मे तिरछे असख्य द्वीप-समुद्रो को पार करने के वाद, जैसे कि द्वितीय शतक के आठवे उद्देशक (सू १) मे कहा गया है (अरुणवर द्वीप की वाह्य वेदिका के अन्त से अरुणवर समुद्र मे वयालीस हजार योजन जाने के वाद चमरेन्द्र का तिगिञ्छक कूट नामक उपपात-पर्वत आता है। उससे दक्षिण दिशा मे ६५५ करोड़, ३५ लाख, ५० हजार योजन दूर अरुणोदक समुद्र मे तिरछा जाने के वाद नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के भीतर ४० हजार योजन गहरे जाने पर चमरेन्द्र की चमरचचा नाम की राजधानी है, इत्यादि) यह समग्र वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए। यहाँ विशेष अन्तर इतना ही है कि यावत् तिगिञ्छकूट के उत्पात-पर्वत का, चमरचचा राजधानी का, चमरचच नामक आवास-पर्वत का और अन्य वहुत-से द्वीप आदि तक का शेष सव वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् (तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन गाऊ, दो सौ अठाईस धनुष और) कुछ विशेषाधिक साढे तेरह अगुल (चमरचंचा राजधानी की) परिधि है। उस चमरचचा राजधानी से दक्षिण-पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) मे ६५५ करोड, ३५ लाख ५० हजार योजन दूर अरुणोदक समुद्र मे तिरछे पार करने के वाद वहाँ असुरेन्द्र एव असुरकुमारो के राजा चमर का चमरचच नामक आवास कहा गया है, जो लम्वाई-चौडाई मे ८४ हजार योजन है। उसकी परिधि (चारो ओर से घेरा) दो लाख पैसठ हजार छह सौ वत्तीस योजन से कुछ अधिक है। यह आवास एक प्राकार (परकोटे) से चारो ओर से घिरा हुआ है। वह प्राकार ऊँचाई मे डेढ सौ योजन ऊँचा है। इस प्रकार चमरचचा राजधानी की सारी वक्तव्यता, सभा को छोड़ कर, यावत् चार प्रासाद-पक्तियाँ हैं, (यहाँ तक) कहनी चाहिए।

६ [१] चमरे णं भंते ! असुरिंदे असुरकुमारराया चरमचंचे आवासे वसहि उवेति ? नो इणट्ठे समट्ठे।

[६-१ प्र] भगवन् ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर क्या उस 'चमरचंच' आवास मे निवास करके रहता है ?

[६-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है।

[२] से केणं खाइ अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'चमरचचे आवासे, चमरचंचे आवासे' ?

गोयमा ! जे जहानामए इहं मणुस्सलोगंसि उवगारियलेणा इ वा, उज्जाणियलेणा इ वा,

निज्जाणियलेणा इ वा, धारवारियलेणा इ वा, तत्थ ण बहवे मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयति सयति जहा रायप्पसेणइज्जे जाव[1] कल्लाणफलवित्तिविसेस पच्चणुभवमाणा विहरति, अन्नत्थ पुण वसहिं उवेंति, एवामेव गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचे आवासे केवल किड्डारति-पत्तियं, अन्नत्थ पुण वसहिं उवेति । से तेणट्ठेण जाव आवासे ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति जाव विहरति ।

[६-२ प्र] भगवन् ! फिर किस कारण से चमरेन्द्र का आवास 'चमरचच' आवास कहलाता है ?

[६-२ उ] गौतम ! जिस प्रकार यहाँ मनुष्यलोक मे औपकारिक लयन (प्रासादादि के पीठ-तुल्य घर), उद्यान मे बनाये हुए घर, नगर-प्रदेश-गृह (नगर के निकटवर्ती बने हुए घर, अथवा नगर-निर्गम गृह-अर्थात् नगर से निकलने वाले द्वार के पास बने हुए घर), जिसमे पानी के फव्वारे लगे हो, ऐसे घर (धारावारिक लयन) होते है, वहाँ बहुत-से मनुष्य एव स्त्रियाँ आदि बैठते हैं, सोते है, इत्यादि सब वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार, यावत्—कल्याणरूप फल और वृत्ति विशेष का अनुभव करते हुए वहाँ विहरण (सैर) करते है, किन्तु (वहाँ वे लोग स्थायी निवास नही करते,) उनका (स्थायी) निवास अन्यत्र होता है । इसी प्रकार हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर का चमरचच नामक आवास केवल क्रीडा और रति के लिए है, (वह स्थान उसका स्थायी आवास नही है,) वह अन्यत्र (स्थायीरूप से) निवास करता है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि चमरेन्द्र चमरचच नामक आवास मे निवास करके नही रहता ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम-स्वामी विचरण करते हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ५-६) मे चमरेन्द्र के चमरचच नामक आवास के अतिदेश पूर्वक नियत स्थान का, उसकी लम्बाई-चौडाई, परिधि, उसके सौन्दर्य आदि का समग्र वर्णन एवं उसमे चमरेन्द्र का स्थायी निवास न होने का दृष्टान्त पूर्वक प्रतिपादन किया गया है ।

कठिन शब्दार्थ—**छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडिओ**—६५० करोड, **पणतीसं च सयसहस्साइं**—पैंतीस लाख, **पन्नास च सहस्साइं**—पचास हजार योजन । **चउरासीति जोयणसहस्साइ आयाम-विक्खभेणं**—चौरासी हजार योजन लम्बाई-चौडाई (आयाम-विष्कम्भ) मे । **परिक्खेवेण**—परिक्षेप, परिधि । **उड्ड उच्चत्तेणं**—ऊँचाई मे । **पासाय-पतीओ**—प्रासादपक्तियाँ । **वसहिं उवेति**—स्थायी निवास के लिए आता है । **उवगारिलेणा**—औपकारिक गृह (भवनो के नीचे बरामदा वगैरह घर) । **उज्जाणियलेणाइं**—लोगो के उपकारार्थ उद्यानो मे बने हुए घर) अथवा नगर की निकटवर्ती धर्मशालादि के मकान । **णिज्जाणियलेणाइ**—नगर के निर्गम (बाहर निकलने) पर आराम के लिए बने हुए घर । **धारवारियलेणाइं**—जिनमे पानी के फव्वारे (धारावारिक) छूट रहे हो, ऐसे मकान । **किड्डा-रति-**

---

१ 'जाव' पद से राजप्रश्नीय (पृ १९६-२०० मे उक्त) पाठ समझना चाहिए—" 'चिट्ठ ति निसीयति तुयट्ट ति हसति रमति ललति कीलति किड्डति मोहयति' । पुरापोराणाण सुचिन्नाण सुपरिक्कताण सुभाण कडाण कम्माण ।"

पत्तियं—क्रीडा (खेल-कूद) और रति (भोगविलास) के लिए। **आसयति**—आश्रय लेते है, थोडा विश्राम लेते हैं अथवा थोडा सोते है—लेटते हैं। **सयंति**—विशेष आश्रय लेते है, अधिक विश्राम लेते है, या अधिक सोते है,। [**चिट्ठंति**—ठहरते या खडे रहते है। **निसीयति**—बैठते है। **तुयट्टति**—करवट बदलते हैं। **हसति**—हसते है। **रमंति**—पासो से खेलते है। **कीलंति**—कामक्रीडा करते हैं। **किड्डति**—क्रीडा करते हैं। **मोहयति**—मोहित करते है अर्थात् विमुग्ध होकर प्रणय करते हैं।] **किड्डारतिपत्तिय**—क्रीडा मे रति—आनन्द लेने के लिए, अथवा क्रीडा और रति के निमित्त।[1]

उदायन नरेश वृत्तान्त

भगवान् का राजगृहनगर से विहार, चम्पापुरी में पदार्पण

७ तए णं समणे भगव महावीरे अन्नदा कदायि रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ जाव विहरति।

[७] तदनन्तर श्रमण भगवन् महावीर किसी अन्य (एक) दिन राजगृह नगर के गुणशील नामक चैत्य से यावत् (अन्यत्र) विहार कर देते है।

८. तेण कालेण तेणं समएण चंपा नामं नयरी होत्था। वण्णओ।* पुण्णभद्दे चेतिए। वण्णओ। तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कदायि पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव विहरमाणे जेणेव चपानगरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेतिए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जाव विहरइ।

[८] उस काल, उस समय मे चम्पा नाम की नगरी थी। (उसका) वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरीवर्णन के अनुसार जानना चाहिए। (उसमे) पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। (उसका) वर्णन (करना चाहिए।) किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्वी से (क्रमश) विचरण करते हुए यावत् विहार करते हुए जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ (उसका) पूर्णभद्र नामक चैत्य था. वहाँ पधारे यावत् विचरण करने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ७-८) मे भगवान् महावीर स्वामी के राजगृह नगर से विहार का तथा चम्पा नगरी मे पदार्पण का वर्णन किया है। चम्पा नगरी मे उनका पदार्पण क्यो हुआ ? उसका रहस्य आगे के सूत्रो से प्रकट होगा।

उदायन नृप, राजपरिवार, वीतिभयनगर आदि का परिचय

९. तेणं कालेण तेण समएण सिंधुसोवीरेसु जणवएसु वीतीभए नाम नगरे होत्था। वण्णओ।*

[९] उस काल, उस समय सिन्धु-सौवीर जनपदो मे वीतिभय नामक नगर था। (उसका) वर्णन (करना चाहिए।)

१०. तस्स ण वीतीभयस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं मियवणे नाम उज्जाणे होत्था। सव्वोउय० वण्णओ।*

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६१७-६१८

(ख) भगवती हिन्दीविवेचन, भा. ५, पृ २२२९

* 'वण्णओ' शब्द से सर्वत्र औपपातिक सूत्रानुसार वर्णन समझना। —भगवती अ वृ, पत्र ६१८

[१०] उस वीतिभय नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशाभाग (ईशानकोण) मे मृगवन नामक उद्यान था। वह सभी ऋतुओ के पुष्प आदि से समृद्ध था, इत्यादि वर्णन (करना चाहिए।)

११. तत्थ णं वीतीभए नगरे उदायणे नाम राया होत्था, महया० वण्णओ।

[११] उस वीतिभय नगर मे उदायन नामक राजा था। वह महान् हिमवान् (हिमालय) पर्वत के समान था, (इत्यादि सब) वर्णन (करना चाहिए।)

१२-१३. तस्स ण उदायणस्स रण्णो पभावती नाम देवी होत्था। सुकुमाल० वण्णओ, जाव विहरति।

[१२-१३] उस उदायन राजा की प्रभावती नाम की देवी (पटरानी) थी। वह सुकुमाल (हाथ-पैरो वाली) थी, इत्यादि वर्णन यावत्-विचरण करती थी, (यहाँ तक) करना चाहिए।

१४. तस्स ण उदायणस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए अभीयी नाम कुमारे होत्था। सुकुमाल० जहा सिवभद्दे (स० ११ उ० ९ सु० ५) जाव पच्चुवेक्खमाणे विहरइ।

[१४] उस उदायन राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज अभीचि नामक कुमार था। वह सुकुमाल था। उसका शेष वर्णन (शतक ११ उ ९ सू ५ मे उक्त) शिवभद्र के समान यावत् वह राज्य का निरीक्षण करता हुआ रहता था, (यहाँ तक) जानना चाहिए।

१५ तस्स ण उदायणस्स रण्णो नियए भाइणेज्जे केसी नामं कुमारे होत्था, सुकुमाल० जाव सुरूवे।

[१५] उस उदायन राजा का अपना (सगा) भानजा केशी नामक कुमार था। वह भी सुकुमाल यावत् सुरूप था।

१६. से णं उदायणे राया सिंधुसोवीरप्पामोक्खाण सोलसण्ह जणवयाण, वीतीभयप्पामोक्खाण तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागरसयाण, महसेणप्पामोक्खाण दसण्ह राईण बद्धमउडाण विदिण्णछत्त-चामर-वालवीयणाण, अन्नेसिं च बहूण राईसर-तलवर-जाव सत्थवाहप्पभितीण आहेवच्च पोरेवच्च जाव कारेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरति।

[१६] वह उदायन राजा सिन्धु सौवीर आदि सोलह जनपदो (देशो) का, वीतिभय-प्रमुख तीन सौ त्रेसठ नगरो और आकरो का स्वामी था। जिन्हे छत्र, चामर और बाल-व्यजन (पखे) दिये गए थे, ऐसे महासेन-प्रमुख दस मुकुटबद्ध राजा तथा अन्य बहुत-से राजा, ऐश्वर्यसम्पन्न व्यक्ति, (अथवा युवराज), तलवर (कोतवाल), यावत्-सार्थवाह-प्रभृति जनो पर आधिपत्य करता हुआ तथा राज्य का पालन करता हुआ यावत् विचरता था। वह जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता यावत् श्रमणोपासक था।

विवेचन—प्रस्तुत ८ सूत्रो (सू ९ से १६) मे सिन्धु-सौवीर जनपद, उनकी राजधानी वीतिभयनगर, उसके शासक उदायन नृप, उसके राजपरिवार तथा उसके अधीनस्थ राजाओ आदि का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

कठिन शब्दार्थ—उत्तर-पुरत्थिमे—उत्तरपूर्व-ईशानकोण मे। **पच्चुवेक्खमाणे**-भलीभाति (सर्वत्र) निरीक्षण करता हुग्रा। **नियए भाइणेज्जे**—ग्रपना सगा भानजा। **बद्धमउडाणं**—मुकुटबद्ध। **विदिण्णछत्त-चामर-वालवीयणाणं**—जिन्हे छत्र, चामर ग्रौर बालव्यजन (छोटे पखे), राजचिह्नस्वरूप दिये गये थे। **आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव कारेमाणे पालेमाणे**—ग्राधिपत्य करता एव राज्य का ग्रग्रेसरत्व-परिपालन करता हुग्रा।[1]

सिन्धुसौवीर जनपद, वीतिभयनगर : विशेषार्थ—सिन्धुनदी के निकटवर्ती सौवीर—जनपद विशेष—सिन्धुसौवीर जनपद (देश) कहलाते है। **वीतिभय**—जिसमे ईति ग्रौर भीतिरूप भय न हो उसे 'वीतिभय' कहते है। ईतियाँ छह है—(१) ग्रतिवृष्टि, (२) ग्रनावृष्टि, (३-४-५) चूहे, टिड्डीदल, एव पतगे ग्रादि का उपद्रव तथा (६) स्वचक्र-परचक्र का भय (ग्रपने ग्रधीनस्थ राजा, ग्रधिकारी ग्रादि-स्वचक्र तथा शत्रु राजा ग्रादि का भय) उदायन राजा की राजधानी वीतिभयनगर था। 'वीतिभय' को कुछ लोग 'विदर्भ' कहते है।[2]

पौषधरत उदायननृप का भगवद्वन्दनादि-ग्रध्यवसाय

१७. तए ण से उदायणे राया अन्नदा कदायि जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छति, जहा संखे (स० १२ उ० १ सु० १२) जाव विहरति।

[१७] एक दिन वह उदायन राजा जहाँ (ग्रपनी) पौषधशाला थी, वहाँ ग्राए ग्रौर (बारहवे-शतक के प्रथम उद्देशक के १२ वे सूत्र मे वर्णित) शंख श्रमणोपासक के समान पौषध करके यावत् विचरने लगे।

१८. तए णं तस्स उदायणस्स रण्णो पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—"धन्ना णं ते गामाऽऽगर-नगर-खेड-कब्बड-मडब-दोणमुह-पट्टणा-ऽऽसम-सवाह-सन्निवेसा जत्थ णं समणे भगवं महावीरे विहरति, धन्ना ण ते राईसर-तलवर जाव सत्थवाहप्पभितयो जे ण समणं भगव महावीरं वंदंति नमसति जाव पज्जुवासति। जति ण समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं जाव विहरमाणे इहमागच्छेज्जा, इह समोसरेज्जा, इहेव वीतीभयस्स नगरस्स बहिया मियवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ग्रोग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं जाव विहरेज्जा तो णं अह समण भगव महावीर वंदेज्जा, नमंसेज्जा जाव पज्जवासेज्जा।"

[१८] तत्पश्चात् पूर्वरात्रि व्यतीत हो जाने पर पिछली रात्रि के समय (रात्रि के पिछले पहर) मे धर्मजागरिकापूर्वक जागरण करते हुए उदायन राजा को इस प्रकार का ग्रध्यवसाय (सकल्प)

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२३२
(ख) भगवती ग्र वृत्ति, पत्र ६२१

२ (क) वही, पत्र ६२०-६२१
(ख) ग्रतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभा शुका।
स्वचक्र परचक्र च षडेते ईतय स्मृता ॥'
(ग) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२३३

उत्पन्न हुआ —'धन्य हैं वे ग्राम, आकर (खान), नगर, खेड, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सबाह एव सन्निवेश, जहाँ श्रमण भगवन् महावीर विचरण करते है ! धन्य हैं वे राजा, श्रेष्ठी, तलवर यावत् सार्थवाह-प्रभृति जन, जो श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, यावत् उनकी पर्युपासना करते हैं। यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी (अनुक्रम) मे विचरण करते हुए एव एक ग्राम से दूसरे ग्राम यावत् विहार करते हुए यहाँ पधार, यहाँ उनका समवसरण हो और यही वीतिभय नगर के बाहर मृगवन नामक उद्यान मे यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए यावत् विचरण करे, तो मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करू, यावत् उनकी पर्युपासना करू।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे उदायन राजा को अपनी पौषधशाला मे धर्मजागरणा करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार यावत् उनकी पर्युपासना करने का जो सकल्प हुआ, उनका वर्णन है।

कठिन शब्दार्थ—पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि : तीन अर्थ—(१) पूर्वरात्रि व्यतीत होने पर पिछली रात्रि के समय मे, (२) रात्रि के पहले या पिछले पहर मे, (३) पूर्वरात्रि और अपररात्रि के मध्य मे। **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का, (ऐसा)। **अज्झत्थिए**—अध्यवसाय-सकल्प। **समुप्पज्जित्था**—समुत्पन्न हुआ। **अहापडिरूवे ओग्गहं ओगिण्हित्ता**—अपने अनुरूप अवग्रह (निवास के योग्य स्थान की याचना करके, उस) को ग्रहण करके।[1]

भगवान् का वीतिभयनगर मे पदार्पण, उदायन द्वारा प्रव्रज्याग्रहण का संकल्प

१९. तए णं समणे भगवं महावीरे उदायणस्स रण्णो अयमेयारूव अज्झत्थिय जाव समुप्पन्न विजाणित्ता चपाओ नगरीओ पुण्णभद्दाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, प० २ त्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणु० जाव विहरमाणे जेणेव सिंधुसोवीरा जणवदा, जेणेव वीतीभये नगरे, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ जाव विहरति।

[१९] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, उदायन राजा के इस प्रकार के समुत्पन्न हुए अध्यवसाय यावत् सकल्प को जान कर चम्पा नगरी के पूर्णभद्र नामक चैत्य से निकले और क्रमश विचरण करते हुए, ग्रामानुग्राम यावत् विहार करते हुए जहाँ सिन्धु-सौवीर जनपद था, जहाँ वीतिभय नगर था और उसमे मृगवन नामक उद्यान था, वहाँ पधारे यावत् विचरने लगे।

२०. तए ण वीतीभये नगरे सिंघाडग जाव परिसा पज्जुवासइ।

[२०] वीतिभय नगर मे शृगाटक (तिराहे) आदि मार्गों मे (भगवान् के पधारने की चर्चा होने लगी) यावत् परिषद् (भगवान् की सेवा मे पहुँच कर) पर्युपासना करने लगी।

२१. तए ण से उदायणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठ० कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, को० स० २ एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वीयीभय नगरं सब्भितरबाहिरियं जहा कूणिओ

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २२३५
भगवती. अ वृत्ति, पत्र ६२१

उववातिए[1] जाव पज्जुवासति । पभावतीपामोक्खाओ देवीओ तहेव जाव पज्जुवासति । धम्मकहा ।

[२१] उस समय (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पदार्पण की) बात को सुन कर उदायन राजा हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ । उसने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही वीतिभय नगर को भीतर और बाहर से स्वच्छ करवाओ, इत्यादि, औपपातिकसूत्र मे जैसे कूणिक का वर्णन है, तदनुसार यहाँ भी यावत्-(उदायन राजा भगवान् की) पर्युपासना करता है, (यहाँ तक वर्णन करना चाहिए ।) प्रभावती-प्रमुख रानियाँ भी उसी प्रकार यावत् पर्युपासना करती है । (भगवान् ने उस समस्त परिषद् तथा उदायन नृप आदि को) धर्मकथा कही ।

२२. तए ण से उदायणे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियं धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ त्ता समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता एवं वयासी— 'एवमेय भते ! तहमेय भते ! जाव से तहेय तुब्भे वदह, त्ति कट्टु ज नवर देवाणुप्पिया ! अभीयी-कुमार रज्जे ठावेमि । तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामि" ।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध ।

[२२] उस अवसर पर श्रमण भगवान् महावीर से धर्मोपदेश सुन कर एव हृदय मे अवधारण करके उदायन नरेश अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुए । वे खडे हुए और फिर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोले—भगवन् ! जैसा आपने कहा, वैसा ही है, भगवन् ! यही तथ्य, है, यथार्थ है, यावत् जिस प्रकार आपने कहा है, उसी प्रकार है । यो कह कर आगे विशेषरूप से कहने लगे—'हे देवानुप्रिय ! (मेरी इच्छा है) कि अभीचि कुमार का राज्याभिषेक करके उसे राज (सिंहासन) पर विठा दूँ और तव मै आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो कर यावत् प्रव्रजित हो जाऊँ ।'

(भगवान् ने कहा—) 'हे देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो, (वैसा करो,) (धर्मकार्य मे) विलम्ब मत करो ।'

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १९ से २२ तक) मे उदायन राजा के पूर्वोक्त सकल्प को जान कर भगवान् ने वीतिभयनगर मे पदार्पण किया, नागरिको तथा राजपरिवारसहित स्वय उदायन राजा द्वारा भगवान् की वन्दना-पर्युपासनादि तथा धर्मकथा-श्रवण का, तदनन्तर अभीचि कुमार को राज्याभिषिक्त करके स्वय प्रव्रजित होने की इच्छा का तथा भगवान् द्वारा इच्छा को यथासुख शीघ्र कार्यान्वित करने की प्रेरणा का वर्णन है ।[2]

स्वपुत्र-कल्याणकांक्षी उदायननृप द्वारा अभीचि कुमार के बदले अपने भानजे का राज्याभिषेक

२३. तए णं से उदायणे राया समणेण भगवया महावीरेणं एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० समण भगव महावीर वदति नमंसति, व० न० त्ता तमेव आभिसेक्क हत्थि दुरूहति, २ त्ता समणस्स भगवओ

१ देखिये—औपपातिकसूत्र पृ ६१ से ८२ तक मे (आगमोदय समिति)

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ६४३

महावीरस्स अंतियाओ मियवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वीतीभये नगरे तेणेव पहारेत्था गमणाए।

[२३] श्रमण भगवान् महावीर द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उदायन राजा हृष्ट-तुष्ट एव आनन्दित हुए। उदायन नरेश ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और फिर उसी अभिषेक-योग्य पट्टहस्ती पर आरूढ होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास से, मृगवन उद्यान से निकले और (सीधे) वीतभय नगर जाने के लिए प्रस्थान किया।

२४. तए ण तस्स उदायणस्स रण्णो अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—"एव खलु अभीयीकुमारे मम एगे पुत्ते इट्ठे कते जाव किमग पुण पासणयाए ?, त जति ण अह अभीयीकुमार रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय मु डे भवित्ता जाव पव्वयामि तो ण अभीयीकुमारे रज्जे य रट्ठे य जाव जणवए य माणुस्सएसु य कामभोएसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने अणादीयं अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरत ससारकतार अणुपरियट्टिस्सइ, त नो खलु मे सेय अभीयीकुमार रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय मु डे भवित्ता जाव पव्वइत्तए। सेय खलु मे णियग भाइणेज्जं केसिकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवतो जाव पव्वइत्तए"। एव सपेहेति, एव स० २ त्ता जेणेव वीतीभये नगरे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ त्ता वीतीभय नगर मज्झमज्झेण० जेणेव सए गेहे जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छति, उवा० २ त्ता आभिसेक्क हत्थि ठवेति, आ० ठ० २ आभिसेक्काओ हत्थीओ पच्चोरुभइ, आ० प० २ जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयति, नि० २ कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ को० स० २ एव वयासी— खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! वीतीभय नगर सब्भितरवाहिरिय जाव पच्चप्पिणति।

[२४] तत्पश्चात् (मार्ग मे ही) उदायन राजा को इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् (मनोगत सकल्प) उत्पन्न हुआ—'वास्तव मे अभीचि कुमार मेरा एक ही (इकलौता) पुत्र है, वह मुझे अत्यन्त इष्ट एव प्रिय है, यावत् उसका नाम-श्रवण भी दुर्लभ है तो फिर उसके दर्शन दुर्लभ हो, इसमे तो कहना ही क्या ? अत यदि मैं अभीचि कुमार को राजसिंहासन पर विठा कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हो जाऊ तो अभीचि कुमार राज्य और राष्ट्र मे, यावत् जनपद मे और मनुष्य-सम्बन्धी कामभोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित एव अत्यधिक तल्लीन होकर अनादि, अनन्त, दीर्घमार्ग वाले चतुर्गतिरूप ससार-अटवी मे परिभ्रमण करेगा। अत मेरे लिए अभीचि कुमार को राज्यारूढ कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास, मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित होना श्रेयस्कर नही है। अपितु मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं अपने भानजे केशी कुमार को राज्यारूढ करके श्रमण भगवान् महावीर के पास यावत् प्रव्रजित हो जाऊँ।' उदायननृप इस प्रकार अन्तर्मन्थन (सम्प्रेक्षण) करता हुआ वीतिभय नगर के निकट आया वीतिभय नगर के मध्य मे होता हुआ अपने राजभवन के बाहर की उपस्थानशाला मे आया और अभिषेक योग्य पट्टहस्ती को खडा किया। फिर उस पर से नीचे उतरा। तत्पश्चात् वह राजसभा मे सिंहासन के पास आया और पूर्वदिशा की ओर मुख करके उक्त सिंहासन पर बैठा। तदनन्तर अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर उन्हे इस प्रकार का आदेश दिया—देवानुप्रियो ! वीतिभय नगर

को भीतर और बाहर से शीघ्र ही स्वच्छ करवाओ, यावत् कौटुम्बिक पुरुषो ने नगर की भीतर और बाहर से सफाई करवा कर यावत् उनके आदेश-पालन का निवेदन किया।

२५. तए णं से उदायणे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, स० २ एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! केसिस्स कुमारस्स महत्थ महग्घ महरिहं एवं रायाभिसेओ जहा सिवभद्दस्स (स० ११ उ० ९ सु० ७-९) तहेव भाणियव्वो जाव परमायुं पालयाहि इट्ठजणसपरिवुडे सिंधुसोवीरपामोक्खाणं सोलसण्ह जणवदाण, वीतीभयपामोक्खाणं०, महसेणप्पा०, अन्नेसिं च बहूण राईसर-तलवर० जाव कारेमाणे पालेमाणे विहराहि, त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजति।

[२५] तदनन्तर उदायन राजा ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उन्हे इस प्रकार को आज्ञा दी—'देवानुप्रियो! केशी कुमार के महार्थक (सार्थक), महामूल्य, महान् जनो के योग्य यावत् राज्याभिषेक की तैयारी करो।' इसका समग्र वर्णन (शतक ११, उ ९, सूत्र ७ से ९ मे उक्त) शिवभद्र कुमार के राज्याभिषेक के समान यावत्-परम दीर्घायु हो, इष्टजनो से परिवृत होकर सिन्धुसौवीर-प्रमुख सोलह जनपदो, वीतिभय-प्रमुख तीन सौ तिरेसठ नगरो और आकरो तथा मुकुटबद्ध महासेनप्रमुख दस राजाओ एव अन्य अनेक राजाओ, श्रेष्ठियो, कोतवाल (तलवर) आदि पर आधिपत्य करते तथा राज्य का परिपालन करते हुए विचरो', यो (आशीर्वचन) कह कर जय-जय शब्द का प्रयोग किया।

२६ तए णं से केसी कुमारे राया जाते महया जाव विहरति।

[२६] इसके पश्चात् केशी कुमार राजा बना। वह महाहिमवान् पर्वत के समान इत्यादि वर्णन युक्त यावत् विचरण करता है।

विवेचन—उदायन नृप का राज्य सौंपने के विषय मे चिन्तन—भगवान् महावीर के प्रवचन-श्रवण के बाद उदायन नरेश का पहले विचार हुआ कि अपने पुत्र अभीचि कुमार का राज्याभिषेक करके मैं प्रव्रजित हो जाऊँ, किन्तु बाद मे उन्होने अन्तर्मन्थन किया तो उन्हे लगा कि अभीचि कुमार को यदि मैं राज्य सौप दूगा तो वह राज्य, राष्ट्र, जनपद आदि मे तथा मानवीय कामभोगो मे मूर्च्छित, आसक्त एव लोलुप हो जाएगा, फलस्वरूप वह अनादि अनन्त चातुर्गतिक ससारारण्य मे परिभ्रमण करता रहेगा। यह उसके लिए अकल्याणकर होगा। अत उसे राज्य न सौप कर अपने भानजे केशी कुमार को सौप दू।'[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—मुच्छिए—मूर्च्छित—आसक्त। **गिद्धे**—गृद्ध—लुब्ध। **गढिए**—ग्रथित=बद्ध। **अज्झोववण्णे**—अत्यधिक तल्लीन। **अणादीयं**—अनादि—प्रवाहरूप से आदिरहित, **अणवदग्ग**—अनवदग्र—अनन्त—प्रवाहरूप से अन्तरहित। **दीहमद्धं**—दीर्घ मार्ग वाले। **सेयं**—श्रेयस्कर, कल्याणकर। **भाइणेज्जं**—भानजे को। **परमाउ पालयाहि**—दीर्घायु रहो। **सद्द पउजति**—शब्द का प्रयोग करता है।[2]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त)

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२३८

भानजे को राज्य सौंपने के पीछे रहस्य—उदायन राजा ने अभीचिकुमार के विषय मे जिस राज्य को अनिष्टकर समझकर उसे नही सौंपा, वही राज्य अपने भानजे केशीकुमार को क्यो सौंपा ? इसका रहस्य वे ही जाने, या ज्ञानी जाने । परन्तु ऐसा सम्भव है कि भानजे को लघुकर्मी, अत्यधिक श्रद्धालु, विनीत, सम्यग्दृष्टिसम्पन्न एव राज्य के प्रति अलिप्त समझ कर उसे राज्य सौंपा हो । तत्त्व केवलिगम्य है ।

केशी राजा से अनुमत उदायन नृप के द्वारा त्यागवैराग्यपूर्वक प्रव्रज्याग्रहण, मोक्षगमन

२७ तए णं से उदायणे राया केसिं रायाण आपुच्छइ ।

[२७] तदनन्तर उदायन राजा ने (नवाभिषिक्त) केशी राजा से दीक्षा ग्रहण करने के विषय मे अनुमति प्राप्त की ।

२८. तए णं से केसी राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ एव जहा जमालिस्स (स० ९ उ० ३३ सु० ४६-४७) तहेव सब्भिंतरबाहिरियं तहेव जाव निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेति ।

[२८] तब केशी राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और (शतक ९ उ ३३ सू ४६-४७ मे कथित) जमाली कुमार के समान नगर को भीतर-बाहर से स्वच्छ कराया और उसी प्रकार यावत् निष्क्रमणाभिषेक (दीक्षामहोत्सव) की तैयारी करने मे लगा दिया ।

२९. तए णं से केसी राया अणेगगणणायग० जाव परिवुडे उदायणं रायं सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुह निसीयावेति, नि० २ अट्ठसएणं सोवण्णियाण एवं जहा जमालिस्स (स० ९ उ० ३३ सु० ४९) जाव एव वयासी—भण सामी ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? किणा वा ते अट्ठो ? तए णं से उदायणे राया केसिं रायं एवं वयासी—इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! कुत्तियावणाओ एव जहा जमालिस्स (स० ९ उ० ३३ सु० ५०-५६); नवरं पउमावती अग्गकेसे पडिच्छइ पियविप्पयोगदूसह० ।

[२९] फिर केशी राजा ने अनेक गणनायको आदि से यावत् परिवृत होकर, उदायन राजा को उत्तम सिंहासन पर पूर्वाभिमुख आसीन किया और एक सौ आठ स्वर्ण-कलशो से उनका अभिषेक किया, इत्यादि सब वर्णन (शतक ९, उ ३३, सू ४९ मे कथित) जमाली के (दीक्षाभिषेक के) समान कहना चाहिए, यावत् केशी राजा ने (यह सब होने के बाद करबद्ध हो कर) इस प्रकार कहा—'कहिये, स्वामिन् ! हम आपको क्या दे, क्या अर्पण करें, आपका क्या प्रयोजन (आदेश) है, (हमारे लिए) ?' इस पर उदायन राजा ने केशी राजा से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! कुत्रिकापण से हमारे लिए रजोहरण और पात्र मगवाओ ! इत्यादि सब कथन (९ श, उ ३३ सू ५०-५६ मे उक्त) जमाली के वर्णनानुसार समझना चाहिए । विशेषता इतनी ही है कि प्रियवियोग को दु सह अनुभव करने वाली रानी पद्मावती ने (उदायन नृप के स्मृतिचिह्नस्वरूप) उनके अग्रकेश ग्रहण किए ।

३०. तए ण से केसी राया दोच्च पि उत्तरावक्कमण सीहासण रयावेति, दो० र० २ उदायणं राय सेयापीतएहिं कलसेहिं० सेस जहा जमालिस्स (स० ९ उ० ३३ सु० ५७-६०) जाव सन्निसन्ने तहेव अम्मधाती, नवर पउमावती हंसलक्खण पडसाडगं गहाय, सेस त जेव जाव सीयाओ पच्चोरुभति, सी० प० २ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ समण भगवं

महावीरं तिक्खुत्तो वदति नमंसति, वं० २ उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमति, उ० अ० २ सयमेव आभरणमल्लालकार० तं चेव, पउमावती पडिच्छइ जाव घडियव्वं सामी ! जाव नो पमादेयव्वं ति कट्टु, केसी राया पउमावती य समणं भगव महावीरं वंदंति नमंसंति, वं० २ जाव पडिगया।

[३०] तदनन्तर केशी राजा ने दूसरी बार उत्तरदिशा मे (उनके लिए) सिहासन रखवा कर उदायन राजा का पुन श्वेत (चाँदी के) और पीत (सोने के) कलशो से अभिषेक किया, इत्यादि शेष वर्णन (श ९, उ ३३ सू ५७-६० मे उक्त) जमाली के समान, यावत् वह (दीक्षाभिनिष्क्रमण के लिए) शिविका मे बैठ गए। इसी प्रकार धायमाता (अम्बधात्री) के विषय मे भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ पद्मावती रानी हसलक्षण (हस के समान धवल या हस के चित्र) वाले एक पट्टाम्बर को लेकर (शिविका मे दक्षिणपार्श्व की ओर बैठी।) शेष वर्णन जमाली के वर्णनानुसार है, यावत् वह उदायन राजा शिविका से नीचे उतरा और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके समीप आया तथा भगवान् को तीन बार वन्दना-नमस्कार कर उत्तरपूर्व दिशा (ईशानकोण) मे गया। वहाँ उसने स्वयमेव आभूषण, माला, और अलकार उतारे इत्यादि वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। उन (उतारे गए आभूषण, माला अलकार, केश आदि) को पद्मावती देवी (रानी) ने रख लिया। यावत् वह (उदायन मुनि से) इस प्रकार बोली—'स्वामिन् ! सयम मे प्रयत्नशील रहे, यावत् प्रमाद न करे,'—यो कह कर केशी राजा और पद्मावती रानी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और अपने स्थान को वापस चले गए।

३१, तए णं से उदायणे राया सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं०, सेसं जहा उसभदत्तस्स (स० ९ उ० ३३ सु० १६) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

[३१] इसके पश्चात् उदायन राजा (मुनि-वेषी) ने स्वय पचमुष्टिक लोच किया। शेष वृत्तान्त (श ९, उ ३३ सू १६ मे कथित) ऋषभदत्त की वक्तव्यता के अनुसार यावत्—(दीक्षित होकर उदायन मुनि सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एव) सर्वदुःखो से रहित हो गए, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

विवेचन—प्रस्तुत ५ सूत्रो (२७ से ३१ सू तक) मे केशी राजा द्वारा उदायन नृप का निष्क्रमणाभिषेक, उदायन का शिविका से भगवान् की सेवा मे गमन, दीक्षाग्रहण तथा तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए क्रमश मोक्षगमन का प्राय. अतिदेशपूर्वक वर्णन है।

कठिन शब्दार्थ—निक्खमणाभिसेयं—निष्क्रमण—प्रव्रज्या के लिए गृहत्याग करके निकलने के निमित्त अभिषेक निष्क्रमणाभिषेक है। **सोवण्णियाणं**—स्वर्णनिर्मित कलशो से। **कुत्तियावणाओ**—कुत्रिकापण—त्रिभुवनवर्ती वस्तु की प्राप्ति के स्थानरूप दुकान से। **पिय-विप्पयोग-दूसहा**—जिसको प्रियवियोग दु सह है। **रयावेइ**—रखवाया। **सेयापीयएहिं**—सफेद (चादी के) और पीले (सोने के) कलशो से। **पटसाडग**—पट-शाटक, रेशमी वस्त्र। **घडियव्वं**—तप-सयम मे चेष्टा (प्रयत्न) करे।[1]

---

१ (क) भगवती (हिन्दी वि) भा ५, पृ २२४१ (ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका) भा ११, पृ ५०

राज्य-अप्राप्तिनिमित्त से वैरानुबद्ध अभीचिकुमार का वीतिभय नगर छोड़कर चम्पा नगरी मे निवास

३२. तए णं तस्स अभीयिस्स कुमारस्स अन्नदा कदायि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि कुडुंब-जागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं उदायणस्स पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तए णं से उदायणे राया मम अवहाय नियग भागिणेज्जं केसिकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ जाव पव्वइए'। इमेणं एतारूवेणं महता अप्पत्तिएण मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अंतेपुरपरियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए वीतीभयाओ नगराओ निग्गच्छति, नि० २ पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चपा नगरी जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवा० २ कूणिय रायं उवसंपज्जित्ताण विहरइ। इत्थ वि णं से विउलभोगसमितिसमन्नागए यावि होत्था।

[३२] तत्पश्चात् (उदायन राजा के प्रवज्या-ग्रहण करने के बाद) किसी दिन रात्रि के पिछले पहर मे कुटुम्ब-जागरण करते हुए (उदायनपुत्र) अभीचिकुमार के मन मे इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—'मैं उदायन राजा का (औरस) पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज हूँ। फिर भी (मेरे पिता) उदायन राजा ने मुझे छोड कर अपने भानजे केशीकुमार को राजसिंहासन पर स्थापित करके श्रमण भगवान् महावीर के पास यावत् प्रव्रज्या ग्रहण की है।' इस प्रकार के इस महान् अप्रतीति—(अप्रीति)-रूप मनो-मानसिक (आन्तरिक) दु ख से अभिभूत (पीडित) बना हुआ अभीचिकुमार अपने अन्त.पुर-परिवार-सहित अपने भाण्डमात्रोपकरण (समस्त भाजन, शय्यादि सामग्री) को लेकर वीतिभय नगर से निकल गया और अनुक्रम से गमन करता और ग्रामानुग्राम चलता हुआ (एक दिन) चम्पा नगरी मे कूणिक राजा के पास पहुँचा। कूणिक राजा से मिल कर उसका आश्रय ग्रहण करके (वहाँ) रहने लगा। यहाँ भी वह विपुल भोग-सामग्री से सम्पन्न हो गया।

विवेचन—उदायन के प्रति वैरानुबन्ध—उदायन राजा द्वारा अपने पुत्र को छोड कर भानजे को राज्याभिषिक्त करके प्रव्रजित होने के कारण अभीचिकुमार उदायन राजा के अपने प्रति कल्याणकारी शुभभावों को न समझ कर गलतफहमी से उनके प्रति रोषवश अपने अन्त पुर एव समस्त साधन-सामग्री को लेकर वहाँ से कूच करके चम्पापुरी मे कूणिक राजा के पास पहुँचा और उसके आश्रित रहने लगा। इस प्रकार अभीचिकुमार की वैरानुबन्धिनी मनोवृत्ति का प्रस्तुत सूत्र मे निरूपण किया गया है।

कठिनशब्दार्थ—अवहाय—छोड कर। **अप्पत्तिएणं**—अप्रतीतिकर या अप्रीतिजन्य। **मणोमाणसिएणं दुक्खेण**—मन के आन्तरिक दु.ख से। **अतेपुर-परियालसपरिवुडे**—अन्त पुर-परिवार से परिवृत (युक्त) हो कर। **सभंड-मत्तोवगरणमायाए**—भाण्ड मात्र (वर्त्तन) सहित उपकरण (समस्त साधन-सामग्री) लेकर। **उवसंपज्जित्ताणं**—अधीनता (आश्रय) स्वीकार कर। **विउल-भोग समिति-समन्नागए**—प्रचुर भोग-सामग्री से सम्पन्न।[1]

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२४८

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२१

श्रमणोपासक धर्मरत अभीचि को वैरविषयक आलोचन-प्रतिक्रमण न करने से असुर-कुमारत्व प्राप्ति

३३. तए णं से अभीयी कुमारे समणोवासए यावि होत्था, अभिगय० जाव विहरति। उदायणम्मि रायरिसिम्मि समणुबद्धवेरे यावि होत्था।

[३३] उस समय (चम्पा नगरी मे रहते-रहते कालान्तर मे) अभीचि कुमार श्रमणोपासक बना। वह जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता यावत् (बन्ध-मोक्षकुशल हो कर) जीवनयापन करता था। (श्रमणोपासक होने पर भी अभीचि कुमार) उदायन राजर्षि के प्रति वैर के अनुबन्ध से युक्त था।

३४. तेण कालेण तेण समएणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु चोसट्ठि असुर-कुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

[३४] उस काल, उस समय मे (भगवान् महावीर ने) इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो के परिपार्श्व मे असुरकुमारो के चौसठ लाख असुरकुमारावास कहे है।

३५. तए णं से अभीयी कुमारे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणति, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेइ, छे० २ तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु चोयट्ठीए आतावा जाव सहस्सेसु अण्णतरंसि आतावाअसुरकुमारावासंसि आतावाअसुरकुमारदेवत्ताए उववन्ने।

[३५] उस अभीचि कुमार ने बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन किया और उस (अन्तिम) समय मे अर्द्धमासिक सल्लेखना से तीस भक्त अनशन का छेदन किया। उस समय (उदायन राजर्षि के प्रति पूर्वोक्त वैरानुबन्धरूप पाप-) स्थान की आलोचना एव प्रतिक्रमण किये विना मरण के समय कालधर्म को प्राप्त करके (अभीचि कुमार) इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो के निकटवर्ती चौसठ लाख आताप नामक असुरकुमारावासो मे से किसी आताप नामक असुरकुमारावास मे आतापरूप असुरकुमार देव के रूप मे उत्पन्न हुआ।

३६. तत्थ णं अत्थेगइयाणं आतावगाण असुरकुमाराणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिती पन्नत्ता। तत्थ ण अभीयिस्स वि देवस्स एग पलिओवम ठिती पन्नत्ता।

[३६] वहाँ कई आताप-असुरकुमार देवो की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है। वहाँ अभीचि देव की स्थिति भी एक पल्योपम की है।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ३३ से ३६ तक) मे अभीचि कुमार के श्रमणोपासक होने पर उदायन राजर्षि के वैरानुबद्ध होने तथा उस पापस्थान की अन्तिम समय मे आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही अर्द्धमासिक अनशनपूर्वक काल करने से आताप-असुरकुमारो मे एक पल्योपम की स्थिति वाले देव बनने का वर्णन किया है।

देवलोकच्यवनानन्तर अभीचि को भविष्य मे मोक्षप्राप्ति

३७. से णं भते ! अभीयी देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएणं ठितिक्खएण अणतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अत काहिति ।

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ तेरसमे सए छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥१३-६॥

[३७ प्र] भगवन् ! वह अभीचि देव उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय होने के अनन्तर उद्वर्त्तन (मर) करके कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[३७ उ] गौतम ! वह वहाँ से च्यव कर महाविदेह-वर्ष (क्षेत्र) मे (जन्म लेगा) सिद्ध होगा, यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार हे, यो कह कर यावत् गौतम-स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अभीचि देव के असुरकुमार-पर्याय से च्यवन के बाद भविष्य मे महाविदेह क्षेत्र मे मनुष्यजन्म पा कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का प्रतिपादन किया है ।

॥ तेरहवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

सत्तमो उद्देसओ : भासा

सप्तम उद्देशक : भाषा, (मन आदि एवं मरण)

भाषा के आत्मत्व, रूपित्व, अचित्तत्व, अजीवत्वस्वरूप का निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर से) यावत् (गौतमस्वामी ने) इस प्रकार पूछा—

२. आया भंते ! भासा, अन्ना भासा ? गोयमा ! नो आता भासा, अन्ना भासा।

[२ प्र] भगवन् ! भाषा आत्मा (जीवरूप) है या अन्य (आत्मा से भिन्न पुद्गलरूप) है ?
[२ उ] गौतम ! भाषा आत्मा नही है, (वह) अन्य (आत्मा से भिन्न पुद्गलरूप) है।

३. रूविं भंते ! भासा, अरूविं भासा ? गोयमा ! रूवि भासा, नो अरूविं भासा।

[३ प्र] भगवन् ! भाषा रूपी है या अरूपी ?
[३ उ] गौतम ! भाषा रूपी है, वह अरूपी नही है।

४. सचित्ता भंते ! भासा, अचित्ता भासा ? गोयमा ! नो सचित्ता भासा, अचित्ता भासा।

[४ प्र] भगवन् ! भाषा सचित्त (सजीव) है या अचित्त ?
[४ उ] गौतम ! भाषा सचित्त नही है, अचित्त (निर्जीव) है।

५. जीवा भंते ! भासा, अजीवा भासा ? गोयमा ! नो जीवा भासा, अजीवा भासा।

[५ प्र] भगवन् ! भाषा जीव है, अथवा अजीव ?
[५ उ] गौतम ! भाषा जीव नही है, वह अजीव है।

भाषा : जीवों की, अजीवों की नहीं

६. जीवाणं भंते ! भासा, अजीवाणं भासा ? गोयमा ! जीवाणं भासा, नो अजीवाणं भासा।

[६ प्र] भगवन् ! भाषा जीवो के होती है या अजीवो के ?
[६ उ] गौतम ! भाषा जीवो के होती है, अजीवो के भाषा नही होती।

बोले जाते समय ही भाषा, अन्य समय में नहीं

७. पुव्विं भंते ! भासा, भासिज्जमाणी भासा, भासासमयवीतिक्कंता भासा ? गोयमा ! नो पुव्विं भासा, भासिज्जमाणी भासा, नो भासासमयवीतिक्कंता भासा।

[७ प्र] भगवन् ! (बोलने से) पूर्व भाषा कहलाती है या बोलते समय भाषा कहलाती है, अथवा बोलने का समय बीत जाने के पश्चात् भाषा कहलाती है ?

[७ उ] गौतम ! बोलने से पूर्व भाषा नही कहलाती, बोलते समय भाषा कहलाती है, किन्तु बोलने का समय बीत जाने के बाद भी भाषा नही कहलाती ।

भाषा-भेदन : बोलते समय ही

८. पुव्वि भंते ! भासा भिज्जइ, भासिज्जमाणी भासा भिज्जइ, भासासमयवीतिक्कंता भासा भिज्जइ ? गोयमा ! नो पुव्वि भासा भिज्जइ, भासिज्जमाणी भासा भिज्जइ, नो भासासमयवीतिक्कंता भासा भिज्जइ ।

[८ प्र] भगवन् ! (बोलने मे) पूर्व भाषा का भेदन होता है, या बोलते समय भाषा का भेदन होता है, अथवा भाषण (बोलने) का समय बीत जाने के बाद भाषा का भेदन होता है ?

[८ उ] गौतम ! (बोलने से) पूर्व भाषा का भेदन (बिखरना) नही होता, बोलते समय भाषा का भेदन (बिखराव एव फैलाव) होता है, किन्तु बोलने का समय बीत जाने पर भाषा का भेदन नहीं होता ।

चार प्रकार की भाषा

९. कतिविधा ण भंते ! भासा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा भासा पण्णत्ता, त जहा—सच्चा मोसा सच्चामोसा असच्चामोसा ।

[९ प्र] भगवन् ! भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

[९ उ] गौतम ! भाषा चार प्रकार की कही गई है । यथा—सत्य भाषा, असत्य भाषा, सत्यामृषा (मिश्र) भाषा और असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा ।

विवेचन—भाषाविषयक प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत ९ सूत्रो (सू १ से ९ तक) मे भाषा के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये गये हैं ।

भाषा आत्मा क्यों नहीं ?—भाषा आत्मा है या इससे भिन्न ?, यह प्रश्न इसलिए उठाया गया है कि जिस प्रकार ज्ञान आत्मा (जीव) से कथचित् पृथक् होते हुए भी जीव का स्वभाव (धर्म) होने से उसे आत्मा (जीव) कहा गया है, इसी प्रकार भाषा भी जीव के द्वारा व्यापृत होती (बोली जाती है) तथा वह जीव के बन्ध एव मोक्ष का कारण होती है, इसलिए जीव स्वभाव (आत्मा का धर्म) होने से क्या उसे आत्मा नही कहा जा सकता ? अथवा भाषा श्रोत्रेन्द्रिय-ग्राह्य होने से मूर्त्त होने के कारण आत्मा से भिन्न है, अर्थात्—जीवस्वरूप नही है ? यह प्रश्न का आशय है । इसके उत्तर मे यहाँ कहा गया है कि भाषा आत्मरूप (जीवस्वभाव) नही है, क्योकि यह पुद्गलमय—मूर्त्त होने से आत्मा से भिन्न है । जैसे जीव के द्वारा फेंका गया ढेला आदि जीव से भिन्न—अचेतन है, वैसे ही जीव के द्वारा (मुख से) निकली हुई भाषा भी जीव से भिन्न अचेतन है ।

पहले यह कहा गया था कि भाषा जीव के द्वारा व्यापृत होती है, इसलिए ज्ञान के समान जीवरूप होनी चाहिए, किन्तु यह कथन दोषयुक्त है, क्योकि जीव का व्यापार जीव से अत्यन्त भिन्न स्वरूप वाले दात्र (हसिये) आदि मे भी देखा जाता है ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२१

भाषा रूपी है या अरूपी ? प्रश्नोत्तर का आशय—कान के आभूषण के समान भाषा द्वारा श्रोत्रेन्द्रिय का उपकार और उपघात होता है, इसलिए क्या यह श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होने से रूपी है ? अथवा जैसे धर्मास्तिकाय आदि चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य नही होते, इस कारण अरूपी कहलाते है, इसी प्रकार भाषा भी चक्षुरिन्द्रिय द्वारा ग्राह्य न होने से क्या अरूपी नही कही जा सकती ?, यह प्रश्न का आशय है। इसके उत्तर मे कहा गया है कि भाषा रूपी है। भाषा को अरूपी सिद्ध करने के लिए जो चक्षु-अग्राह्यत्व रूप हेतु दिया गया है, वह दोषयुक्त है, क्योकि चक्षु द्वारा अग्राह्य होने से ही कोई अरूपी नही होता। जैसे वायु, परमाणु और पिशाच आदि रूपी होते हुए भी चक्षु-ग्राह्य नही होते।[1]

भाषा सचित्त क्यो नहीं ?—जीवित प्राणी के शरीर की तरह भाषा अनात्मरूपा होते हुए भी सचित्त (सजीव) क्यो नही कही जा सकती ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि भाषा सचित्त नही है, वह जीव के द्वारा निसृष्ट कफ, लीट आदि के समान पुद्गलसमूह रूप होने से अचित्त है।[2]

भाषा जीव क्यो नहीं ?—जो जीव होता है, वह उच्छ्वास आदि प्राणो को धारण करता है, किन्तु भाषा मे उच्छ्वासादि प्राणो का अभाव है, इसलिए वह जीवरूप नही है, अजीवरूप है।[3]

भाषा जीवो के होती है, अजीवो के नहीं : प्रश्नोत्तर का आशय—कुछ लोग वेदो (ऋग्, यजु, साम एव अथर्व इन चार वेदो) की भाषा को अपौरुषेयी (पुरुषप्रयत्न-रहित) मानते हैं, उनकी मान्यता को ध्यान मे रख कर यह प्रश्न किया गया है कि "भाषा जीवो के होती है या अजीवो के भी होती है ?" इसके उत्तर मे कहा गया है कि भाषा जीवो के ही होती है, क्योकि वर्णों का समूह 'भाषा' कहलाता है और वर्ण, जीव के कण्ठ, तालु आदि के व्यापार से उत्पन्न होते हैं। कण्ठ, तालु आदि का व्यापार जीव मे ही पाया जाता है। इसलिए भाषा जीवप्रयत्नकृत होने से जीव के ही होती है। यद्यपि ढोल, मृदग आदि अजीव वाद्यो से या पत्थर, लकडी आदि अजीव पदार्थों से भी शब्द उत्पन्न होता है, किन्तु वह भाषा रूप नही होता। जीव के भाषा-पर्याप्ति से जन्य शब्द को ही भाषा रूप माना गया है।[4]

बोलने के पूर्व और पश्चात् भाषा क्यो नही ?—जिस प्रकार पिण्ड अवस्था मे रही हुई मिट्टी घडा नही कहलाती, इसी प्रकार बोलने से पूर्व भाषा नही कहलाती। जिस प्रकार घडा फूट जाने के बाद ठीकरे की अवस्था मे घडा नही कहलाता, उसी प्रकार भाषा का समय व्यतीत हो जाने पर (यानी बोलने के बाद) भाषा नही कहलाती। जिस प्रकार घट अवस्था मे विद्यमान ही घट कहलाता है, उसी प्रकार बोली जा रही—मुह से निकलती हुई अवस्था मे ही भाषा कहलाती है।[5]

बोलने से पूर्व और पश्चात् भाषा का भेदन क्यो नही ?—बोलने से पूर्व भाषा का भेदन कैसे होगा ? क्योकि जब शब्द-द्रव्य ही नही निकले तो भेदन किनका होगा ? तथा भाषा का समय

१ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ६२१
२ वही, पत्र ६२२
३ वही पत्र ६२२
४ वही, पत्र ६२२
५ वही, पत्र ६२२

व्यतीत हो जाने पर भी भाषा का भेदन नही होता, क्योकि तव तक शब्द भाषापरिणाम को छोड देते है । अत बोले जाने के पश्चात् वक्ता का उत्कृष्ट प्रयत्न न होने से भाषा का भेदन नही हो पाता । भाषा का भेदन तभी तक होता है जब तक शब्द-परिणाम की अवस्था रहती है । वही तक भाषा मे भाष्यमाणता (बोली जाती हुई भाषा का भाषापन) समझना चाहिए । आशय यह है कि जब कोई वक्ता मन्द प्रयत्न वाला होता है तो वह अपने मुख से अभिन्न शब्दद्रव्यो को निकालता है । वे निकले हुए शब्दद्रव्य असख्येय एवं अतिस्थूल होने से बाद मे उनका भेदन होता है । भिन्न होते हुए वे शब्दद्रव्य सख्येय योजन जाकर शब्दपरिणाम का त्याग कर देते है । यदि कोई वक्ता महाप्रयत्न वाला होता है तो आदान-विसर्ग रूप (ग्रहण करने और छोडने रूप) दोनो प्रयत्नो से भेदन करके ही शब्दद्रव्यो को त्यागता है । त्यागे हुए वे शब्दद्रव्य सूक्ष्म एव बहुत होने से अनन्तगुणवृद्धि से बढते हुए छहो दिशाओ मे लोक के अन्त तक जा पहुँचते है । अत यह सिद्ध हुआ कि बोली जा रही भाषा का ही भेदन होता है ।[1]

मन: आत्मा मन नहीं, जीव का है, मनन करते समय ही मन तथा भेदन

१०. आता भंते ! मणे, अन्ने मणे ?

गोयमा ! नो आया मणे, अन्ने मणे ।

[१० प्र] भगवन् ! मन आत्मा है, अथवा आत्मा से भिन्न ?

[१० उ] गौतम ! आत्मा मन नही है । मन (आत्मा से) अन्य (भिन्न) है; इत्यादि ।

११. जहा भासा तहा मणे वि जाव नो अजीवाण मणे ।

[११] जिस प्रकार भाषा के विषय मे (विविध प्रश्नोत्तर कहे गए) उसी प्रकार मन के विषय मे भी यावत्—अजीवो के मन नही होता, (यहाँ तक) कहना चाहिए ।

१२. पुव्वि भंते ! मणे, मणिज्जमाणे मणे ?०

एव जहेव भासा ।

[१२ प्र] भगवन् ! (मनन से) पूर्व मन कहलाता है, या मनन के समय मन कहलाता है, अथवा मनन का समय बीत जाने पर मन कहलाता है ?

[१२ उ.] गौतम ! जिस प्रकार भाषा के सम्बन्ध मे कहा, उसी प्रकार (मन के विषय मे भी कहना चाहिए ।)

१३ पुव्वि भंते ! मणे भिज्जइ, मणिज्जमाणे मणे भिज्जइ, मणसमयवीतिक्कते मणे भिज्जइ ?

एवं जहेव भासा ।

[१३ प्र] भगवन् ! (मनन से) पूर्व मन का भेदन (विदलन) होता है, अथवा मनन करते हुए मन का भेदन होता है, या मनन-समय व्यतीत हो जाने पर मन का भेदन होता है ?

---

१. (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२४९
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२२

[१३ उ] गौतम ! जिस प्रकार भाषा के भेदन के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार मन के भेदन के विषय मे कहना चाहिए ।

मन के चार प्रकार

१४. कतिविधे ण भते ! मणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे मणे पन्नत्ते, तं जहा—सच्चे, जाव असच्चामोसे ।

[१४ प्र] भगवन् ! मन कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१४ उ] गौतम ! मन चार प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) सत्यमन, (२) मृषामन, (३) सत्यमृषा-(मिश्र) मन और (४) असत्यामृषा (व्यवहार) मन ।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू १० से १४ तक) मे भाषा के समान मन के विषय मे शका उठा कर उसी प्रकार समाधान किया गया है । अर्थात्—मन सम्बन्धी समस्त सूत्रो का विवेचन भाषा-सम्बन्धी सूत्रो के समान जानना चाहिए ।

मन : स्वरूप और उसका भेदन—मनोद्रव्य का जो समुदाय मनन-चिन्तन करने मे उपकारी होता है तथा जो मन पर्याप्ति नामकर्म के उदय से सम्पादित है, उसे मन कहते है । वास्तव मे मन एक ही है । मन का भेदन मन का विदलन मात्र ही समझना चाहिए । वर्त्तमान युग की भाषा मे कहा जा सकता है कि मन जब चिन्तन, मनन, स्मरण, निर्णय, निदिध्यासन, सकल्प, विकल्प आदि भिन्न-भिन्न रूप मे करता है, तब उसका बिदलन होता है ।[1]

मणिज्जमाणे : अर्थ—मनन करते हुए या मनन के समय ।[2]

काय : आत्मा है या अन्य ? रूपी-अरूपी है, सचित्त-अचित्त है, जीवाजीव है ?

१५. आया भते ! काये, अन्ने काये ?

गोयमा ! आया वि काये, अन्ने वि काये ।

[१५ प्र] भगवन् ! काय (शरीर) आत्मा है, अथवा अन्य (आत्मा से भिन्न) है ?

[१५ उ] गौतम ! काय आत्मा भी है और आत्मा से भिन्न (अन्य) भी है ।

१६. रूविं भते ! काये पुच्छा ।

गोयमा ! रूविं पि काये, अरूविं पि काये ।

[१६ प्र] भगवन् ! काय रूपी है अथवा अरूपी ?

[१६ उ] गौतम ! काय रूपी भी है और अरूपी भी है ।

१७. एवं सचित्ते वि काए, अचित्ते वि काए ।

[१७] इसी प्रकार काय सचित्त भी है और अचित्त भी है ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२२

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२५२

२ वही, भाग ५, पृ २२५१

१८. एव एक्केक्के पुच्छा । जीवे वि काये, अजीवे वि काए ।

[१८ प्र] इसी प्रकार (भाषा की तरह यहाँ भी) क्रमश एक-एक प्रश्न करना चाहिए। (उनके उत्तर इस प्रकार से है—)

[१८ उ] काय जीवरूप भी है और अजीवरूप भी ।

जीव-अजीव दोनो कायरूप

१९. जीवाण वि काये, अजीवाण वि काए ।

[१९] काय जीवो के भी होता है, अजीवो के भी ।

त्रिविध जीवस्वरूप को लेकर कायनिरूपण-कायभेदनिरूपण

२०. पुव्वि भते ! काये० ? पुच्छा ।

गोयमा ! पुव्वि पि काए, कायिज्जमाणे वि काए, कायसमयवीतिक्कते वि काये ।

[२० प्र] भगवन् ! (जीव का सम्बन्ध होने से) पूर्व काया होती है, (अथवा कायिकपुद्गलो के चीयमान (ग्रहण) होते समय काया होती है या काया-समय (कायिकपुद्गलो के ग्रहण का समय) बीत जाने पर भी काया होती है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ।

[२० उ] गौतम ! (जीव का सम्बन्ध होने से) पूर्व भी काया होती है, चीयमान (कायिक पुद्गलो के ग्रहण) होते समय भी काया होती है और काया-समय (कायिक पुद्गल-ग्रहण का समय) बीत जाने पर भी काया होती है ।

२१. पुव्वि भते ! काये भिज्जइ ?० पुच्छा ।

गोयमा ! पुव्वि पि काए भिज्जइ जाव कायसमयवीतिक्कते वि काये भिज्जति ।

[२१ प्र] भगवन् ! (क्या जीव के द्वारा कायरूप से ग्रहण करने के समय से) पूर्व भी काया का भेदन होता है ? (अथवा कायारूप से पुद्गलो का ग्रहण करते समय काया का भेदन होता है ? या काया-समय बीत जाने पर काया का भेदन होता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।)

[२१ उ] गौतम ! (जीव के द्वारा कायरूप से ग्रहण करने के समय से) पूर्व भी काया का भेदन होता है, जीव के द्वारा काया के पुद्गलो का ग्रहण (चय) होते समय भी काया का भेदन होता है और काय-समय बीत जाने पर भी काय का भेदन होता है ।

काया के सात भेद

२२. कतिविधे ण भंते ! काये पन्नत्ते ?

गोयमा ! सत्तविधे काये पन्नत्ते, त जहा—ओरालिए ओरालियमीसए वेउव्विए वेउव्विय-मीसए आहारए आहारयमीसए कम्मए ।

[२२ प्र] भगवन् ! काय कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२२ उ] गौतम ! काय सात प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) औदारिक,

(२) औदारिकमिश्र, (३) वैक्रिय, (४) वैक्रियमिश्र, (५) आहारक, (६) आहारकमिश्र और (७) कार्मण।

विवेचन—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू १५ से २२ तक) मे विभिन्न पहलुओ से काया के सम्बन्ध मे शका-समाधान प्रस्तुत किये गए हैं।

काय आत्मा भी और आत्मा से भिन्न भी—काय कथचित् आत्मरूप भी है, क्योकि काय के द्वारा कृत कर्मों का अनुभव (फलभोग) आत्मा को होता है। दूसरे के द्वारा किये हुए कर्म का अनुभव दूसरा नही कर सकता। यदि ऐसा होगा तो अकृतागम (नही किये हुए कर्म के अनुभव-भोग) का प्रसग आएगा। किन्तु यदि काया को आत्मा से एकान्तत अभिन्न माना जाएगा तो काया का एक अश से छेदन करने पर आत्मा के छेदन होने का प्रसग आएगा, जो कभी सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त आत्मा को काया से अभिन्न मानने पर शरीर के जल जाने पर आत्मा भी जल कर भस्म हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे परलोकगमन करने वाला कोई आत्मा नही रहेगा। परलोक के अभाव का प्रसग होगा। इसलिए काया को आत्मा से कथचित् भिन्न माना गया। काया का आशिक छेदन करने पर आत्मा को उसका पूर्ण सवेदन होता है, इस दृष्टि से काया कथंचित् आत्मरूप भी माना जाता है। जैसे सोना और मिट्टी, लोहे का पिण्ड और अग्नि, अथवा दूध और पानी दोनों भिन्न-भिन्न होने पर भी मिल जाने पर दोनो अभिन्न-से प्रतीत होते है, उसी प्रकार आत्मा को भी काया के साथ सयोग होने से भिन्न होते हुए भी कथचित् अभिन्न माना जाता है। यही कारण है कि काया को छूने पर आत्मा को उसका सवेदन होता है। काया द्वारा किये गए कार्यो का फल भवान्तर मे आत्मा को भोगना (वेदन करना) पडता है। इसलिए काया को आत्मा से कथचित् अभिन्न माना गया है। कुछ आचार्यों ने माना है कि कार्मणकाय की अपेक्षा से आत्मा काया है, क्योकि कार्मणशरीर और ससारी आत्मा परस्पर एकरूप होकर रहते हैं तथा औदारिक आदि शरीरो की अपेक्षा से काया आत्मा से भिन्न है, क्योकि शरीर के छूटते ही आत्मा पृथक् हो जाती है, इस दृष्टि से काया से आत्मा की भिन्नता सिद्ध होती है।[1]

काया रूपी भी है, अरूपी भी है—औदारिक आदि शरीरो की स्थूलरूपता दृश्यमान होने से काया रूपी है और कार्मण शरीर अत्यन्त सूक्ष्म एव अदृश्यमान होने से उसकी अपेक्षा से अरूपित्व की विवक्षा करने पर काया कथञ्चित् अरूपी भी मानी जाती है।[2]

काया सचित्त भी है, अचित्त भी—जीवित अवस्था मे काया चैतन्य से युक्त होने के कारण सचित्त है और मृतावस्था मे उसमे चैतन्य का अभाव होने से अचित्त भी है।[3]

काया जीव भी है, अजीव भी—विवक्षित उच्छ्वास आदि प्राणो से युक्त होने से औदारिकादि शरीरो की अपेक्षा से काया जीव है और मृत होने पर उच्छ्वासादि प्राणो से रहित हो जाने से वह अजीव भी है।[4]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२३

२ वही, पत्र ६२३

३ वही, पत्र ६२३

४ वही, पत्र ६२३

जीवों के भी काय होता है, अजीवों के भी—जीवों के काय (शरीर) होता है यह तो प्रत्यक्षसिद्ध है। मिट्टी के लेप आदि से बनाई गई शरीर की आकृति अजीवकाय भी होती है।[1]

काया पहले-पीछे भी और वर्तमान में भी—जीव का सम्बन्ध होने से पूर्व भी काया होती है, जैसे—मेढक का मृत कलेवर। उसका भविष्य में जीव के साथ सम्बन्ध होने पर वह जीव का काय बन जाता है। वर्तमान में जीव के द्वारा उपचित किया जाता हुआ भी काय होता है। जैसे—जीवित शरीर। काय—समय व्यतीत हो जाने अर्थात् जीव के द्वारा कायरूप से उपचय करना बन्द हो जाने पर भी काय रहता है, जैसे मृत कलेवर।[2]

काया का भेदन पहले, पीछे और वर्तमान में भी—जिस घड़े में भविष्य में मधु रखा जाएगा, उसे मधुघट कहा जाता है। इसी प्रकार जीव के द्वारा कायरूप से ग्रहण करने के समय से पूर्व भी काय होता है। उस में प्रतिक्षण पुद्गलों का चय-अपचय होने से उस द्रव्यकाय का भेदन होता है। जीव के द्वारा कायारूप में ग्रहण करते समय भी काया का भेदन होता है, जैसे—बालू से भरी हुई मुट्ठी में से उसके कण प्रतिक्षण झड़ते रहते हैं, वैसे ही काया में से प्रतिक्षण पुद्गल झड़ते रहते हैं। जिस घड़े में घी रखा गया था, उसमें से घी निकाल लेने पर भी उसे 'घी का घड़ा' कहते हैं, वैसे ही काय-समय व्यतीत हो जाने पर भी भूतभाव की अपेक्षा से उसे काय कहा जाता है। भेदन होना पुद्गलों का स्वभाव है, इसलिए उस भूतपूर्व काय का भी भेदन होता है।[3]

चूर्णिकार के अनुसार व्याख्या—चूर्णिकार ने 'काय' शब्द का अर्थ—'समस्त पदार्थों का सामान्य चयरूप शरीर' किया है। उनके अनुसार आत्मा भी काय है, अर्थात् प्रदेश-सचयरूप है तथा काय प्रदेश-सचयरूप होने से आत्मा से भिन्न भी है। पुद्गलस्कन्धों की अपेक्षा से काय रूपी भी है और जीव-धर्मास्तिकायादि की अपेक्षा से काय अरूपी भी है। जीवित शरीर की अपेक्षा से काय सचित्त भी है और अचेतन सचय की अपेक्षा से काय अचित्त भी है। उच्छ्वासादि-युक्त अवयव-सचय की अपेक्षा से काय जीव है और उच्छ्वासादि अवयव-सचय के अभाव में काय अजीव भी है। जीवों के काय का अर्थ है—जीवराशि और अजीवों के काय का अर्थ है—परमाणु आदि की राशि। इस प्रकार विभिन्न अपेक्षाओं से काय से सम्बन्धित शेष पदों की व्याख्या भी समझ लेनी चाहिए।[4]

काय के सात प्रकारों का अर्थ—**औदारिककाय**—उदार अर्थात् प्रधान स्थूल पुद्गलस्कन्धरूप होने से औदारिक तथा उपचीयमान होने से काय कहलाता है। यह पर्याप्तक जीव के होता है। **औदारिकमिश्र**—औदारिकशरीर कार्मणशरीर के साथ मिश्र हो, तब औदारिकमिश्र होता है, यह अपर्याप्तक जीव के होता है। **वैक्रियकाय**—पर्याप्तक देवों आदि के होता है। **वैक्रियमिश्र**—वैक्रिय-शरीर कार्मण के साथ मिश्रित हो तब वैक्रियमिश्र होता है। यह अप्रतिपूर्ण वैक्रियशरीर वाले देव आदि के होता है। **आहारक**—आहारकशरीर निष्पन्न होने पर आहारककाय कहलाता है। **आहारकमिश्र**—आहारकशरीर का परित्याग करके औदारिक शरीर ग्रहण करने के लिए उद्यत

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२३

२ वही, पत्र ६२३

३ (क) वही, पत्र ६२३
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२५३

४. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२३

मुनिराज के औदारिकशरीर के साथ मिश्रता होने से आहारकमिश्रकाय होता है। **कार्मणकाय**—विग्रहगति मे अथवा केवलिसमुद्घात के समय कार्मणकायशरीर होता है।[1]

मरण के पांच प्रकार

२३. कतिविधे ण भंते ! मरणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविधे मरणे पन्नत्ते, त जहा—आवीचियमरणे ओहिमरणे आतियतियमरणे बालमरणे पडियमरणे।

[२३ प्र] भगवन् ! मरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२३ उ] गौतम ! मरण पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) आवीचिकमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यन्तिकमरण, (४) वालमरण और (५) पण्डितमरण।

विवेचन—पञ्चविध मरण के लक्षण—मरण की परिभाषा—आयुष्य पूर्ण होने पर आत्मा का शरीर से वियुक्त होना (छूटना) अथवा शरीर से प्राणो का निकल जाना तथा बन्धे हुए आयुष्यकर्म के दलिको का क्षय होना 'मरण' कहलाता है। वह मरण पाच प्रकार का है। उनके लक्षण क्रमश इस प्रकार हैं—(१) **आवीचिकमरण**—वीचि (तरग) के समान प्रतिसमय भोगे हुए अन्यान्य आयुष्यकर्मदलिको के उदय के साथ-साथ क्षय रूप अवस्था आवीचिकमरण है, अथवा जिस मरण मे वीचि-विच्छेद अविद्यमान रहे अर्थात्—विच्छेद न हो—आयुष्यकर्म की परम्परा चालू रहे, उसे आवीचिमरण कहा जा सकता है। (२) **अवधिमरण**—अवधि (मर्यादा)-सहित मरण। नरकादिभवो के कारणभूत वर्त्तमान आयुष्यकर्मदलिको को भोग कर (एक वार) मर जाता है, यदि पुन उन्ही आयुष्यकर्मदलिको को भोग कर मृत्यु प्राप्त करे, तव अवधिमरण कहलाता है। उन द्रव्यो की अपेक्षा से पुनर्ग्रहण की अवधि तक जीव मृत रहता है, इस कारण वह अवधिमरण कहलाता है। परिणामो की विचित्रता के कारण कर्मदलिको को ग्रहण करके छोड देने के वाद पुन उनका ग्रहण करना सम्भव होता है। (३) **आत्यन्तिकमरण**—अत्यन्तरूप से मरण आत्यन्तिकमरण है। अर्थात्—नरकादि आयुष्यकर्म के रूप मे जिन कर्मदलिको को एक वार भोग कर जीव मर जाता है, उन्हे फिर कभी नही भोगकर मरना। उन कर्मदलिको की अपेक्षा से जीव का मरण आत्यन्तिकमरण कहलाता है। (४) **बालमरण**—अविरत (व्रतरहित) प्राणियो का मरण। (५) **पण्डितमरण**—सर्वविरत साधुवर्ग का मरण।[2]

आवीचिमरण के भेद-प्रभेद और स्वरूप

२४. आवीचियमरणे ण भते ! कतिविधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पन्नत्ते, त जहा—दव्वावीचियमरणे खेत्तावीचियमरणे कालावीचियमरणे भवावीचियमरणे भावावीचियमरणे।

[२४ प्र] भगवन् ! आवीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२४ उ] गौतम ! आवीचिकमरण पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२४

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२५ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२६१

(१) द्रव्यावीचिकमरण, (२) क्षेत्रावीचिकमरण, (३) कालावीचिकमरण, (४) भवावीचिकमरण और (५) भावावीचिकमरण।

२५. दव्वावीचियमरणे ण भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—नेरइयदव्वावीचियमरणे तिरिक्खजोणियदव्वावीचियमरणे मणुस्सदव्वावीचियमरणे देवदव्वावीचियमरणे।

[२५ प्र] भगवन् ! द्रव्यावीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२५ उ] गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है यथा—(१) नैरयिक-द्रव्यावीचिकमरण, (२) तिर्यग्योनिक-द्रव्यावीचिकमरण, (३) मनुष्य-द्रव्यावीचिकमरण और (४) देव-द्रव्यावीचिकमरण।

२६. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'नेरइयदव्वावीचियमरणे, नेरइयदव्वावीचियमरणे' ?

गोयमा ! जं णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं नेरइयाउयत्ताए गहियाइं बद्धाइं पुट्ठाइं कडाइं पट्ठवियाइं निविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमन्नागयाइं भवंति ताइं दव्वाइं आवीची अणुसमयं निरंतरं मरंतीति कट्टु, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'नेरइयदव्वावीचियमरणे, नेरइयदव्वावीचियमरणे'।

[२६ प्र] भगवन् ! नैरयिक-द्रव्यावीचिकमरण को नैरयिक-द्रव्यावीचिकमरण किस लिए कहते हैं ?

[२६ उ] गौतम ! क्योंकि नारकद्रव्य (नारकजीव) रूप से वर्तमान नैरयिक ने जिन द्रव्यों को नारकायुष्य रूप में स्पर्श रूप से ग्रहण किया है, बन्धन रूप से बांधा है, प्रदेशरूप से प्रक्षिप्त कर पुष्ट किया है, अनुभाग रूप से विशिष्ट रसयुक्त किया है, स्थिति-सम्पादनरूप से स्थापित किया है, जीवप्रदेशों में निविष्ट किया है, अभिनिविष्ट (अत्यन्त गाढरूप से निविष्ट), किया है तथा जो द्रव्य अभिसमन्वागत (उदयावलिका में आ गए) हैं, उन द्रव्यों को (भोग कर) वे प्रतिसमय निरन्तर छोड़ते (मरते) रहते हैं। इस कारण से हे गौतम ! नैरयिकों के द्रव्यआवीचिमरण को नैरयिक-द्रव्यावीचिकमरण कहते हैं।

२७. एवं जाव देवदव्वावीचियमरणे।

[२७] इसी प्रकार (तिर्यञ्चयोनिक-द्रव्यावीचिकमरण, मनुष्य-द्रव्यावीचिकमरण) यावत् देव-द्रव्यावीचिकमरण के विषय में कहना चाहिए।

२८. खेत्तावीचियमरणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—नेरइयखेत्तावीचियमरणे जाव देवखेत्तावीचियमरणे।

[२८ प्र] भगवन् ! क्षेत्रावीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२८ उ.] गौतम ! क्षेत्रावीचिकमरण चार प्रकार का कहा गया है। यथा—नैरयिक-क्षेत्रावीचिकमरण (तिर्यञ्चयोनिक-क्षेत्रावीचिकमरण, मनुष्य-क्षेत्रावीचिकमरण) यावत् देव-क्षेत्रावीचिकमरण।

२९ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'नेरइयखेत्तावीचियमरणे, नेरइयखेत्तावीचियमरणे' ?

गोयमा ! जं णं नेरइया नेरइयखेत्ते वट्टमाणा जाइं दव्वाइं नेरइयाउयत्ताए एवं जहेव दव्वावीचियमरणे तहेव खेत्तावीचियमरणे वि ।

[२९ प्र] भगवन् ! नैरयिक-क्षेत्रावीचिकमरण नैरयिक-क्षेत्रावीचिकमरण क्यो कहा जाता है ?

[२९ उ] गौतम ! नैरयिक क्षेत्र मे रहे हुए (वर्त्तमान) जिन द्रव्यो को नारकायुष्यरूप मे नैरयिकजीव ने स्पर्शरूप से ग्रहण किया है, यावत् उन द्रव्यो को (भोग कर) वे प्रतिसमय निरन्तर छोडते (मरते) रहते हैं, (इस कारण से हे गौतम ! नैरयिक-क्षेत्रावीचिकमरण को नैरयिक-क्षेत्रा-वीचिक मरण कहा जाता है,) इत्यादि सब कथन द्रव्यावीचिकमरण के समान क्षेत्रावीचिकमरण के विषय मे भी करना चाहिए ।

३०. एवं जाव भावावीचियमरणे ।

[३०] इसी प्रकार यावत् (कालावीचिकमरण, भवावीचिकमरण), भावावीचिकमरण तक कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू २४ से ३० तक) मे आवीचिकमरण के प्रकार तथा उनके प्रत्येक के भेद एव स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है ।

आवीचिकमरण के भेद-प्रभेद—आवीचिकमरण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से पाच भेद किये हैं । फिर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इस प्रकार चार गतियो की अपेक्षा से प्रत्येक के चार-चार भेद किये है ।[1]

नैरयिक-कालावीचिकमरण—नैरयिक नैरयिककाल मे रहते हुए जिन आयुष्यकर्मो को स्पर्शादि करके भोगकर छोडते हैं, फिर नये कर्मदलिक उदय मे आते है, उन्हे भोगकर छोडते जाते है, इस प्रकार का क्रम निरन्तर चलता रहता हो, उसे नैरयिक-कालावीचिकमरण कहते है ।

नैरयिक-भवावीचिकमरण—इसी प्रकार नैरयिक-भव मे रहते हुए वे जिन आयुकर्मो का बन्धन आदि करके भोगते है और छोडते है, वह नैरयिक-भवावीचिकमरण कहलाता है ।[2]

कठिन शब्दो के अर्थ—णेरइएदव्वे वट्टमाणा—नारकरूप (नारक जीव रूप) से वर्त्तमान (रहते हुए) । **नेरइयाउयत्ताए**—नैरयिक-आयुष्य रूप से । **गहियाइ**—गृहीत—स्पर्शरूप से ग्रहण किये । **बद्धाइ**—बधनरूप से बाँधे । **पुट्ठाइं**—प्रदेश-प्रक्षिप्त करके पुष्ट किये । **पट्ठवियाइ**—स्थितिरूप से स्थापित किये । **निविट्ठाइ**—जीवप्रदेशो मे प्रविष्ट किये । **अभिनिविट्ठाइं**—जीवप्रदेशो मे अत्यन्त गाढरूप से निविष्ट किये । **अभिसमण्णागयाइं**—उदयावलिका मे आ गए अर्थात् उदयाभिमुख बने हुए । **मरति**—छोडते है, भोग कर मरते है । **अणुसमयं**—प्रतिसमय । **निरंतरं**—विना व्यवधान के ।[3]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२५ का साराश

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२५

अवधिमरण के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप

३१. ओहिमरणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वोहिमरणे खेत्तोहिमरणे जाव भावोहिमरणे।

[३१ प्र.] भगवन् ! अवधिमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३१ उ.] गौतम ! अवधिमरण पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—द्रव्यावधिमरण, क्षेत्रावधिमरण (कालावधिमरण, भवावधिमरण और) यावत् भावावधिमरण।

३२. दव्वोहिमरणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—नेरइयदव्वोहिमरणे जाव देवदव्वोहिमरणे।

[३२ प्र.] भगवन् ! द्रव्यावधिमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३२ उ.] गौतम ! द्रव्यावधिमरण चार प्रकार का कहा गया है। यथा—नैरयिक-द्रव्यावधिमरण, यावत् (तिर्यञ्चयोनिक-द्रव्यावधिमरण, मनुष्य-द्रव्यावधिमरण), देवद्रव्यावधिमरण।

३३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'नेरइयदव्वोहिमरणे, नेरइयदव्वोहिमरणे' ?

गोयमा ! जं णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपयं मरंति, ते णं नेरइया ताइं दव्वाइं अणागते काले पुणो वि मरिस्संति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव दव्वोहिमरणे।

[३३ प्र.] भगवन् ! नैरयिक-द्रव्यावधिमरण नैरयिक-द्रव्यावधिमरण क्यों कहलाता है ?

[३३ उ.] गौतम ! नैरयिकद्रव्य (नारक जीव) के रूप में रहे हुए नैरयिक जीव जिन द्रव्यों को इस (वर्तमान) समय में छोड़ते (भोग कर मरते) हैं, फिर वे ही जीव पुनः नैरयिक हो कर उन्हीं द्रव्यों को ग्रहण कर भविष्य में फिर छोड़ेंगे (मरेंगे); इस कारण हे गौतम ! नैरयिक-द्रव्यावधिमरण नैरयिक-द्रव्यावधिमरण कहलाता है।

३४. एवं तिरिक्खजोणिय० मणुस्स० देवोहिमरणे वि।

[३४] इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-द्रव्यावधिमरण, मनुष्य-द्रव्यावधिमरण और देव-द्रव्यावधिमरण भी कहना चाहिए।

३५. एवं एएणं गमएणं खेत्तोहिमरणे वि, कालोहिमरणे वि, भवोहिमरणे वि, भावोहिमरणे वि।

[३५] इसी प्रकार के आलापक क्षेत्रावधिमरण, कालावधिमरण, भवावधिमरण और भावावधिमरण के विषय में भी कहने चाहिए।

विवेचन—अवधिमरण के भेद-प्रभेद—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. ३१ से ३५ तक) में अवधिमरण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से पांच भेद किये हैं, फिर उनके भी प्रत्येक के नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव, यों गति की अपेक्षा से चार-चार भेद किये हैं।

आत्यन्तिकमरण के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप

३६. आतियंतियमरणे णं भंते !० पुच्छा।

गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वातियंतियमरणे, खेत्तातियंतियमरणे, जाव भावातियंतियमरणे।

[३६ प्र] भगवन् ! आत्यन्तिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३६ उ] गौतम ! आत्यन्तिकमरण पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—द्रव्यात्यन्तिक-मरण, क्षेत्रात्यन्तिकमरण यावत् भावात्यन्तिकमरण।

३७. दव्वातियतियमरणे णं भते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, जहा—नेरइयदव्वातियतियमरणे जाव देवदव्वातियतियमरणे।

[३७ प्र] भगवन् ! द्रव्यात्यन्तिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है।

[३७ उ] गौतम ! द्रव्यात्यन्तिकमरण चार प्रकार का कहा गया है। यथा—नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण यावत् देव-द्रव्यात्यन्तिक मरण।

३८. से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'नेरइयदव्वातियतियमरणे, नेरइयदव्वातियंतियमरणे' ?
गोयमा ! ज णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपतं मरंति, जे णं नेरइया ताइं दव्वाइं अणागते काले नो पुणो वि मरिस्सति। से तेणट्ठेणं जाव मरणे।

[३८ प्र] भगवन् ! नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण क्यो कहलाता है ?

[३८ उ] गौतम ! नैरयिक द्रव्य रूप मे रहे हुए (वर्तमान) नैरयिक जीव जिन द्रव्यो को इस समय (वर्तमान मे) छोडते है, वे नैरयिक जीव उन द्रव्यो को भविष्यत्काल मे फिर कभी नही छोडेंगे। इस कारण हे गौतम ! नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण 'नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण' कहलाता है।

३९. एवं तिरिक्ख० मणुस्स० देव०।

[३९] इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण, मनुष्य-द्रव्यात्यन्तिकमरण एव देव-द्रव्यात्यन्तिकमरण के विषय मे कहना चाहिए।

४०. एव खेत्तातियतियमरणे वि, जाव भावातियतियमरणे वि।

[४०] इसी प्रकार (द्रव्यात्यन्तिकमरण के समान) क्षेत्रात्यन्तिकमरण, यावत् (कालात्यन्तिकमरण, भवात्यन्तिकमरण,) भावात्यन्तिकमरण भी जानना चाहिए।

विवेचन—आत्यन्तिकमरण : भेद-प्रभेद—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ३६ से ४० तक मे आत्यन्तिकमरण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से पाच भेद बताए गए हैं। फिर उनके भी चार गतियो की अपेक्षा से चार-चार भेद किये गए है।

बालमरण के भेद और स्वरूप

४१. बालमरणे णं भते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुवालसविहे पन्नत्ते तं जहा—वलयमरणे जहा खंदए (स० २ उ० १ सु० २६) जाव गिद्धपट्ठे।

[४१ प्र] भगवन् ! बालमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४१ उ] गौतम ! वह बारह प्रकार का कहा गया है। यथा—वलयमरण इत्यादि, द्वितीय शतक के प्रथम उद्देशक के (सू. २६ के) स्कन्दकाधिकार के अनुसार, यावत् गृध्रपृष्ठमरण तक जानना चाहिए।

विवेचन—बालमरण : बारह प्रकार—बालमरण के बारह प्रकार ये हैं—(१) वलय (वलन्)-मरण, (२) वशार्त्त-मरण, (३) अन्तःशल्य-मरण, (४) तद्भव-मरण, (५) गिरि-पतन, (६) तरु-पतन, (७) जल-प्रवेश, (८) ज्वलन-प्रवेश, (९) विष-भक्षण, (१०) शस्त्रावपाटन, (११) वैहानस-मरण और (१२) गृद्धपृष्ठ-मरण। इन बारह भेदों का विस्तृत अर्थ द्वितीय शतक के प्रथम उद्देशक के (सू. २६ में) स्कन्दकप्रकरण में दिया गया है।[1]

पण्डितमरण के भेद और स्वरूप

४२. पंडियमरणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य।

[४२ प्र] भगवन् ! पण्डितमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४२ उ] गौतम ! पण्डितमरण दो प्रकार का कहा गया है। यथा—पादपोपगमनमरण और भक्तप्रत्याख्यानमरण।

४३. पाओवगमणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—णीहारिमे य, अणीहारिमे य, नियमं अपडिकम्मे।

[४३ प्र] भगवन् ! पादपोपगमनमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४३ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) निर्हारिम और (२) अनिर्हारिम। (दोनों प्रकार का यह पादपोपगमनमरण) नियमतः अप्रतिकर्म (शरीर-संस्काररहित) होता है।

४४. भत्तपच्चक्खाणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

एवं तं चेव, नवरं नियमं सपडिकम्मे।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ तेरसमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥ १३.७ ॥

[४४ प्र] भगवन् ! भक्तप्रत्याख्यानमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४४ उ] (गौतम !) वह भी इसी प्रकार (पूर्ववत् दो प्रकार का) है, विशेषता यह है कि दोनों प्रकार का यह मरण नियमतः सप्रतिकर्म (शरीरसंस्कारसहित) होता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं।

---

१ व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र (श्री आगमप्रकाशनसमिति ब्यावर) खण्ड १, पृ. १८०

विवेचन—पण्डितमरण : भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप—पण्डितमरण के मुख्यतया दो भेद है—पादपोपगमन और भक्त-प्रत्याख्यान । **पादपोपगमन** का अर्थ है—सथारा करके कटे हुए वृक्ष की तरह जिस स्थान पर, जिस रूप मे एक वार लेट जाए, फिर उसी स्थान मे निश्चल होकर लेटे रहना और उसी रूप मे समभावपूर्वक शरीर त्याग देना । इस मरण मे हाथ-पैर हिलाने या नेत्रो की पलक झपकाने का भी आगार नही होता । यह मरण नियमत· अप्रतिकर्म (शरीर को धोना, मलना आदि शरीरसस्कार से रहित) होता है ।[1]

भक्तप्रत्याख्यान—यावज्जीवन तीन या चारो प्रकार के आहारो का त्याग करके समभावपूर्वक मृत्यु का वरण करना भक्तप्रत्याख्यानमरण है । इसे भक्तपरिज्ञा भी कहते हैं । इगितमरण भक्तप्रत्याख्यान का ही विशिष्ट प्रकार है, इसलिए उसका पृथक् उल्लेख नही किया गया । भक्तप्रत्याख्यानमरण नियमत सप्रतिकर्म (शरीरसस्कारयुक्त) होता है । इसमे हाथ-पैर हिलाने तथा शरीर की सारसभाल करने का आगार रहता है ।[2]

निर्हारिम—अनिर्हारिम—ये दोनो भेद पादपोपगमन एवं भक्तप्रत्याख्यान, इन दोनो के हैं । निर्हार कहते है—वाहर निकालने को । जो साधु गॉव आदि के अन्दर ही किसी मकान या उपाश्रय मे शरीर छोडता है, उस साधु के शव का उपाश्रय आदि से वाहर निकाल कर अन्तिम सस्कार किया जाता है । अतएव उस साधु का पण्डितमरण निर्हारिम कहलाता है । परन्तु जो साधु अरण्य या गुफा आदि मे आहारादि का त्याग करके अन्तिम समय मे शरीर छोडता है, समभाव पूर्वक मरता है, उसके मृत शरीर को कही वाहर निकाला नही जाता । इसलिए उक्त साधु के पण्डितमरण को 'अनिर्हारिम' कहते है ।[3]

।। तेरहवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२६२

२ व्याख्याप्रज्ञप्ति (श्री आगमप्रकाशनसमिति) खण्ड १, पृ. १८१

३ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२६२

अट्ठमो उद्देसओ : 'कम्म'

अष्टम उद्देशक : कर्मप्रकृति

प्रज्ञापना के अतिदेशपूर्वक कर्मप्रकृतिभेदादि निरूपण

१. कति ण भते ! कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ । एव बधट्ठितिउद्देसओ भाणियव्वो निरवसेसो जहा पन्नवणाए ।

सेवं भंते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ तेरसमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥१३-८॥

[१ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतिया कितनी कही गई है ?

[१ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतिया आठ कही गई है । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के २३ वे पद के द्वितीय बन्ध-स्थिति-उद्देशक का सम्पूर्ण कथन करना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरण करने लगे ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रज्ञापनासूत्र के तेईसवे पद के द्वितीय बन्ध-स्थिति नामक उद्देशक के अतिदेशपूर्वक क्रमश आठ मूल कर्मप्रकृतिया, फिर इन आठो के भेद, (जैसे कि—ज्ञानावरणीय आदि आठ, फिर ज्ञानावरणीय के पाच भेद इत्यादि), तदनन्तर ज्ञानावरणीयादि आठो कर्मों के स्थिति-बन्ध का वर्णन, फिर एकेन्द्रियादि जीवो के अनुसार बन्ध का निरूपण किया गया है ।[1]

॥ तेरहवां शतक : आठवा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) प्रज्ञापना पद २३, उ २, सू १६८७ से १७५३, पृ ३६७-८४
—पण्णवणासुत्त भा. १ (महावीर जैन विद्यालय)

(ख) वाचनान्तर मे सग्रहणी गाथा इस प्रकार है—
"पयडीण भेय ठिईबधो विय इदियाणुवाएण ।
केरिसय जहन्नठिइ बधइ उक्कोसिय वावि ॥"
—भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२६

नवमो उद्देसओ : अणगारे केयाघडिया

नौवाँ उद्देशक : अनगार मे केयाघटिका (वैक्रियशक्ति)

१. रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर से गौतम स्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा—

रस्सी बधी घड़िया, स्वर्णादिमंजूषा बास आदि की चटाई लोहादिभार लेकर चलने वाले व्यक्ति सम भावितात्मा अनगार की वैक्रियशक्ति

२. से जहानामए केयि पुरिसे केयाघडिय गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा केयाघडियाकिच्चहत्थगतेण अप्पाणेण उड्ढ वेहास उप्पएज्जा ?

गोयमा ! हता, उप्पएज्जा ।

[२ प्र] भगवन् ! जैसे कोई पुरुष रस्सी से बधी हुई घटिका (छोटा घडा) लेकर चलता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी (वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य से) रस्सी से बंधी हुई घटिका स्वय हाथ मे लेकर ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! (वह इस प्रकार) उड सकता है ।

३. अणगारे ण भते ! भावियप्पा केवतियाइं पभू केयाघडियाकिच्चहत्थगयाइ रूवाइं विउव्वित्तए ?

गोयमा ! से जहानामए जुवतिं जुवाणे हत्थेण हत्थे एवं जहा ततियसते पचमुद्देसए (स० ३ उ० ५ सु० ३) जाव नो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु वा विउव्वति वा विउव्विस्सति वा ।

[३ प्र] भगवन् ! भावितात्मा अनगार रस्सी से बधी हुई घटिका हाथ मे ग्रहण करने रूप कितने रूपो की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[३ उ] गौतम ! तृतीय शतक के पचम उद्देशक (सू ३) मे जैसे युवती-युवक के हस्तग्रहण का दृष्टान्त दे कर समझाया है, वैसे ही यहाँ समझना चाहिए । यावत् यह उसकी शक्तिमात्र है । सम्प्राप्ति (सम्पादन) द्वारा कभी इतने रूपो की विक्रिया की नही, करता भी नही और करेगा भी नही ।

४. से जहानामए केयि पुरिसे हिरण्णपेलं गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा हिरण्णपेलहत्थकिच्चगतेणं अप्पाणेणं०, सेसं तं चेव ।

[४ प्र] भगवन् ! जैसे कोई पुरुष हिरण्य (चादी) की मजूषा (पेटी) लेकर चलता है, वैसे

ही क्या भावितात्मा अनगार भी हिरण्य-मजूषा हाथ मे लेकर (विक्रिया-सामर्थ्य से) स्वय ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[४ उ] हाँ, गौतम ! (इसका समाधान भी) पूर्ववत् समझना चाहिए।

५. एव सुवण्णपेलं, एवं रयणपेल, वइरपेलं, वत्थपेल, आभरणपेलं।

[५] इसी प्रकार स्वर्णमजूषा, रत्नमजूषा, वज्र (हीरक) मजूषा, वस्त्रमजूषा एव आभरण-मजूषा (हाथ मे लेकर वैक्रियशक्ति से आकाश मे उड सकता है,) इत्यादि (प्रश्नोत्तर) पूर्ववत् (करना चाहिए।)

६. एवं वियलकिडं, सुंबकिड चम्मकिड कवलकिड।

[६] इसी प्रकार विदलकट (बाँस की चटाई), शुम्बकट (वीरणघास की चटाई), चर्मकट (चमडे से बुनी हुई चटाई या खाट आदि) एव कम्बलकट (ऊन के कम्बल का बिछौना) (इन सभी रूपों की विकुर्वणा करके हाथ मे लेकर ऊँचे आकाश मे उड सकता है, इत्यादि प्रश्नोत्तर पूर्ववत् कहना चाहिए)।

७. एव अयभार तवभारं तउयभार सीसगभार हिरण्णभार सुवण्णभार वइरभार।

[७] इसी प्रकार लोह का भार, तावे का भार, कलई (कथीर), का भार, शीशे का भार, हिरण्य (चादी) का भार, सोने का भार और वज्र (हीरे) का भार (लेकर इन सब रूपो की विक्रिया करके ऊँचे आकाश मे उड सकता है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्नोत्तर कहना चाहिए।)

विवेचन—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू. १ से ७ तक) मे भावितात्मा अनगार की वैक्रियशक्ति के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रश्नोत्तर किये गये है कि वह वैक्रियशक्ति से विकुर्वणा करके रज्जुवद्धघटिका अनेक घटिकाएँ तथा हिरण्य, स्वर्ण, रत्न, वज्र, वस्त्र एव आभरण की मजूषा तथा विदल, शुम्ब, चर्म एव कम्बल का कट तथा लोहे, ताम्बे, कथीर, शीशे, चादी, सोने और वज्र का भार स्वय हाथ मे लेकर ऊँचे आकाश मे उड सकता है या नही ? सभी प्रश्नो के विषय मे भगवान् का उत्तर एक सदृश स्वीकृतिसूचक है।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—**केयाघडिय**—किनारे पर रस्सी से बधी हुई घटिका—छोटी घडिया। **केयाघडियाकिच्च-हत्थगतेणं**—केयाघटिका रूप कृत्य (कार्य) को स्वय हस्तगत करके (हाथ मे लेकर)। **वेहासं**—आकाश मे। **उप्पएज्जा**—उड सकता है। **हिरण्णपेलं**—चादी की पेटी—मजूषा। **सुवण्णपेलं**—सोने की पेटी। **रयणपेल**—रत्नो की पेटी। **वइरपेल**—वज्र—हीरो की पेटी। **वियलकिडं**—विदल अर्थात्—वास को चीर कर उसके टुकडो से वनाई हुई कट—चटाई। **सुंबकिड**—वीरणघास की चटाई। **चम्मकिड**—चमडे से बुनी हुई चटाई, खाट आदि। **कवलकिड**—ऊन का वना हुआ बिछाने का कम्बल। **अयभार**—लोहे का भार। **तउयभार**—रागे या कथीर का भार। **सीसगभार**—शीशे का भार। **वइरभार**—वज्रभार-हीरे का भार।[2]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठटिप्पण) भा २, पृ ६५३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२७

चमचेड़-यज्ञोपवीत-जलौका-बीजंबीज-समुद्र-वायस आदि की क्रियावत् भावितात्मा वैक्रियशक्तिनिरूपण

८. से जहानामए वग्गुली सिया, दो वि पाए उल्लबिया उल्लबिया उड्ढंपादा अहोसिरा चिट्ठेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वग्गुलीकिच्चगएण अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं० ।

[८ प्र] भगवन् ! जैसे कोई वग्गुलीपक्षी (चमगादड) अपने दोनो पैर (वृक्ष आदि मे ऊपर) लटका-लटका कर पैरो को ऊपर और सिर को नीचा किये रहती है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी उक्त चमगादड की तरह अपने रूप की विकुर्वणा करके स्वय ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[८ उ] हाँ, गौतम ! वह (इस प्रकार का रूप बना कर) उड सकता है ।

९ एव जण्णोवइयवत्तव्वया भाणितव्वा जाव विउव्विस्सति वा ।

[९] इसी प्रकार यज्ञोपवीत-सम्बन्धी वक्तव्यता भी कहनी चाहिए । (अर्थात्—जैसे कोई विप्र गले मे जनेऊ धारण करके गमन करता है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी विकुर्वणा कर सकता है), (यह वक्तव्यता) यावत् 'सम्प्राप्ति द्वारा विकुर्वणा करेगा नही,' (यहाँ तक) कहनी चाहिए ।

१०. से जहानामए जलोया सिया, उदगसि कायं उव्विहिया उव्विहिया गच्छेज्जा, एवामेव० सेस जहा वग्गुलीए ।

[१० प्र] (भगवन् !) जैसे कोई जलौका (जौक—पानी मे उत्पन्न होने वाला द्वीन्द्रिय जीव-विशेष) अपने शरीर को उत्प्रेरित करके (ठेल-ठेल कर) पानी मे चलती है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ?

[१० उ] (गौतम !) यह सभी निरूपण वग्गुलीपक्षी के निरूपण के समान जानना चाहिए ।

११ से जहानामए बीयंबीयगसउणे सिया, दो वि पाए समतुरंगेमाणे समतुरंगेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे०, सेस तं चेव ।

[११ प्र] भगवन् ! जैसे कोई बीजबीज पक्षी अपने दोनो पैरो को घोडे की तरह एक साथ उठाता-उठाता हुआ गमन करता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी · इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ।

[११ उ] (हाँ, गौतम ! उड सकता है), शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

१२. से जहानामए पक्खिबिरालए सिया, रुक्खाओ रुक्खं डेवेमाणे डेवेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे०, सेस तं चेव ।

[१२ प्र] (भगवन् !) जिस प्रकार कोई पक्षीबिडालक एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष को लाघता-लाघता (या एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर छलाग लगाता-लगाता) जाता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी इत्यादि प्रश्न ।

[१२ उ] (हाँ, गौतम ! उड सकता है ।) शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

१३. से जहानामए जीवजीवगसउणए सिया, दो वि पाए समतुरंगेमाणे समतुरंगेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे०, सेस त चेव।

[१३ प्र] (भगवन्!) जैसे कोई जीवजीवक पक्षी अपने दोनो पैरो को घोडे के समान एक साथ उठाता-उठाता गमन करता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी इत्यादि प्रश्न पूर्ववत्।

[१३ उ] (हां, गौतम! उड सकता है।) शेष सभी कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

१४. से जहाणामए हसे सिया, तीरातो तीर अभिरममाणे अभिरममाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे हसकिच्चगतेणं अप्पाणेण०, त चेव।

[१४ प्र] (भगवन्!) जैसे कोई हस (विशाल सरोवर के) एक किनारे से दूसरे किनारे पर क्रीडा करता-करता चला जाता है, क्या वैसे ही भावितात्मा अनगार भी हसवत् विकुर्वणा करके गगन मे उड सकता है?

[१४ उ] (हां, गौतम! उड सकता है।) यहां भी सभी वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१५. से जहानामए समुद्दवायसए सिया, वीयीओ वीयिं डेवेमाणे डेवेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव०, तहेव।

[१५ प्र] (भगवन्!) जैसे कोई समुद्रवायस (समुद्री कौआ) एक लहर (तरग) से दूसरी लहर का अतिक्रमण करता-करता चला जाता है, क्या वैसे ही भावितात्मा अनगार भी इत्यादि प्रश्न।

[१५ उ] यहां भी पूर्ववत् उत्तर समझना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत आठ सूत्रो मे आठ उदाहरण देकर शास्त्रकार ने उनके समान रूप बनाने की भावितात्मा अनगार की वैक्रिय शक्ति के विषय मे प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये है।

आठ प्रश्न—(१) चमगादड के समान दोनो पैर वृक्ष आदि पर लटका कर पैर ऊपर सिर नीचा किये हुए रहता है, तद्वत्।

(२) यज्ञोपवीत धारण किये हुए विप्र की तरह?

(३) जलौका अपने शरीर को पानी मे ठेल-ठेल कर चलती है, उस प्रकार?

(४) जैसे बीजबीज पक्षी दोनो पैरो को घोडे की तरह उठाता-उठाता गमन करता है, क्या उसके समान?

(५) जैसे पक्षी विडालक एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उछलता हुआ जाता है, क्या उसी प्रकार?

(६) जैसे जीवजीव पक्षी दोनो पैरो को घोडे की तरह एक साथ उठाता हुआ गमन करता है, क्या उस तरह?

(७) जैसे हस एक तट से दूसरे तट पर क्रीडा करता हुआ जाता है, क्या उसी प्रकार ?

(८) जैसे समुद्री कौआ एक लहर से दूसरी लहर को अतिक्रमण करता-करता जाता है, क्या उसी प्रकार ?

इन आठो ही प्रश्नो का उत्तर स्वीकृति सूचक है ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ –**वग्गुली**—चर्मपक्षी-चमचेड । **जन्नोवइय**—यज्ञोपवीत । **उव्विहिय**—उत्प्रेरित करके—ठेल ठेल कर । **बीयबीयग-सउणे**—बीजबीजक नाम का पक्षीविशेष। **समतुरगेमाणे**—दोनो पैर अश्व के समान एक साथ उठाता हुआ । **पक्खिबिरालए**—पक्षीविडालक नामक प्राणी । **डेवेमाणे**—अतिक्रमण करता—लाघता हुआ या छलाग लगाता हुआ । **वीईओ वीइ**—एक तरग से दूसरी तरग पर ।[2]

चक्र, छत्र, चर्म, रत्नादि लेकर चलने वाले पुरुषवत् भावितात्मा अनगार की विकुर्वणा-शक्तिनिरूपण

१६. से जहानामए केयि पुरिसे चक्क गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा चक्कहत्थकिच्चगएण अप्पाणेणं०, सेस जहा केयाघडियाए ।

[१६ प्र] (भगवन् !) जैसे कोई पुरुष हाथ मे चक्र ले कर चलता है, क्या वैसे ही भावितात्मा अनगार भी (वैक्रियशक्ति से) तदनुसार विकुर्वणा करके चक्र हाथ मे लेकर स्वय ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[१६ उ] (हाँ, गौतम !) सभी कथन रज्जुवद्धघटिका के समान जानना चाहिए ।

१७. एव छत्तं ।

[१७] इसी प्रकार छत्र के विपय मे भी कहना चाहिए ।

१८. एव चम्मं ।[3]

[१८] इसी प्रकार चर्म (या चामर) के सम्वन्ध मे भी कथन करना चाहिए ।

१९ से जहानामए केयि पुरिसे रयण गहाय गच्छेज्जा,० एव चेव । एव वइर, वेरुलिय, जाव[4] रिट्ठं ।

[१९ प्र] (भगवन् !) जैसे कोई पुरुष रत्न लेकर गमन करता है, (क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न) ।

[१९ उ] (गौतम !) यहाँ भी पूर्ववत् कहना चाहिए । इसी प्रकार वज्र, वैडूर्य यावत् रिष्टरत्न तक पूर्ववत् आलापक कहना चाहिए ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ६५४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६२८

३ पाठान्तर—'चामर'

४. 'जाव' पद सूचक पाठ—"लोहियक्ख मसारगल्ल हसगब्भ पुलग सोगधिय जोईरस अक अजण रयण जायरूव अजणपुलग फलिह ति ।"

२०. एव उप्पलहत्थग, एव पउमहत्थग एव कुमुदहत्थगं, एव जाव[1] से जहानामए केयि पुरिसे सहस्सपत्तग गहाय गच्छेज्जा,० एव चेव ।

[२० प्र.] इसी प्रकार उत्पल हाथ मे लेकर, पद्म हाथ मे लेकर एव कुमुद हाथ मे लेकर तथा जैसे कोई पुरुष यावत् सहस्रपत्र (कमल) हाथ मे लेकर गमन करता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२० उ] (हाँ, गौतम !) उसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू १६ से २० तक) मे पूर्ववत् चक्र, छत्र, चर्म (चामर), रत्न, वज्र, वैडूर्य, रिष्ट आदि रत्न तथा उत्पल, पद्म, कुमुद, यावत् सहस्रपत्रकमल आदि हाथ मे ले कर चलता है, उसी प्रकार तथाविध रूपो की विकुर्वणा करके ऊर्ध्व-आकाश मे उडने की भावितात्मा अनगार की शक्ति की प्ररूपणा की गई है ।[2]

कमलनाल तोड़ते हुए चलने वाले पुरुषवत् अनगार की वैक्रियशक्ति

२१. से जहानामए केयि पुरिसे भिस अवद्दालिय अवद्दालिय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भिसकिच्चगएण अप्पाणेण०, त चेव ।

[२१ प्र] (भगवन् !) जिस प्रकार कोई पुरुष कमल की डडी को तोडता-तोडता चलता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वय इस प्रकार के रूप की विकुर्वणा करके ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[२१ उ] (हाँ, गौतम !) शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए ।

मृणालिका, वनखण्ड एवं पुष्करिणी बना कर चलने की वैक्रियशक्ति-निरूपण

२२. से जहानामए मुणालिया सिया, उदगसि काय उम्मज्जिय उम्मज्जिय चिट्ठेज्जा, एवामेव०, सेस जहा वग्गुलीए ।

[२२ प्र] (भगवन् !) जैसे कोई मृणालिका (नलिनी) हो और वह अपने शरीर को पानी मे डुबाए रखती है तथा उसका मुख बाहर रहता है, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२२ उ] (हाँ, गौतम !) शेष सभी कथन वग्गुली के समान जानना चाहिए ।

२३. से जहानामए वणसडे सिया किण्हे किण्होभासे[3] जाव निकुरुबभूए पासादीए ४, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वणसडकिच्चगतेण अप्पाणेण उड्ढ वेहास उप्पएज्जा, सेस त चेव ।

---

१ 'जाव' पद सूचक पाठ—नलिणहत्थग सुभगहत्थग सोगधियहत्थग पु डरीयहत्थग महापु डरीयहत्थग सयवत्तहत्थग त्ति" अ० वृ० ॥

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ६५५

३ 'जाव' पद सूचक पाठ—नीले नीलोभासे हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे निद्धे निद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे किण्हे किण्हच्छाए नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए सीए सीयच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए घणकडियकडिच्छाए रम्मे महामेहनिउरुबभूए त्ति" अ० वृ०, पत्र ६२८

[२३ प्र] (भगवन् !) जिस प्रकार कोई वनखण्ड हो, जो काला, काले प्रकाश वाला, नीला, नीले आभास वाला, हरा, हरे आभास वाला यावत् महामेघसमूह के समान प्रसन्नतादायक, दर्शनीय, अभिरूप एव प्रतिरूप (सुन्दरतम) हो, क्या इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी—(वैक्रियशक्ति से) स्वय वनखण्ड के समान विकुर्वणा करके ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[२३ उ] (हाँ, गौतम !) शेष सभी कथन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

२४. से जहानामए पुक्खरणी सिया, चउक्कोणा समतीरा अणुपुव्वसुजाय० जाव[1] सद्दुन्नइय-महुरसरणादिया पासादीया ४, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा पोक्खरणीकिच्चगएण अप्पाणेण उड्ढ वेहास उप्पएज्जा ? हंता, उप्पतेज्जा ।

[२४ प्र] (भगवन् !) जैसे कोई पुष्करिणी हो, जो चतुष्कोण और समतीर हो तथा अनुक्रम से जो शीतल गभीर जल से सुशोभित हो, यावत् विविध पक्षियो के मधुर स्वर-नाद आदि से युक्त हो तथा प्रसन्नतादायिनी, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो, क्या इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी (वैक्रियशक्ति से) उस पुष्करिणी के समान रूप की विकुर्वणा करके स्वय ऊँचे आकाश मे उड सकता है ?

[२४ उ] हाँ,गौतम ! वह उड सकता है ।

२५. अणगारे ण भंते ! भावियप्पा केवतियाइं पभू पोक्खरणीकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?० सेस तं चेव जाव[2] विउव्वस्सति वा ।

[२५ प्र] भगवन् ! भावितात्मा अनगार (पूर्वोक्त) पुष्करिणी के समान कितने रूपो की विकुर्वणा कर सकता है ?

[२५ उ] (हे गौतम !) शेष सभी कथन पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत्—परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने इतने रूपो की विकुर्वणा की नही, वह करता भी नही और करेगा भी नही, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू २१ से २५ तक) मे भावितात्मा अनगार की वैक्रियशक्ति के सम्बन्ध मे पाच रूपको द्वारा प्रश्न उठाया गया है । भगवान् का सब मे स्वीकृतिसूचक समाधान पूर्वोक्त सूत्रो के अतिदेशपूर्वक प्रस्तुत किया गया है ।

पाच प्रश्न (१) क्या कमल की डडी को तोडते हुए चलने वाले पुरुष की तरह तथारूप विक्रिया करके आकाश मे उड सकता है ?

(२) क्या पानी मे डुबी और मुख बाहर निकली हुई मृणालिका की तरह रूप की विकुर्वणा कर सकता है ?

---

१. 'जाव' पद सूचक पाठ—"अणुपुव्वसुजायवप्पगभीरसीयलजला" अवृ० ॥

२ 'जाव' पद सूचक पाठ—"सुय-वरहिण-मयणसाय-कोच-कोइल-कोज्जक-भिगारक-कोडलक-जीवजीवक-नदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारडग-चक्कवाय-कलहस-सारस-अणेग-सउणगणमिहुणविरइयसद्दुन्नइयमहुरसरनाइय त्ति" अवृ. ॥

(३) दर्शनीय वनखण्ड के समान रूपविकुर्वणा कर सकता है ?

(४) रमणीय पुष्करिणी, वापी-सम रूपविकुर्वणा करके आकाश मे उड सकता है ?

(५) पूर्वोक्त पुष्करिणी के समान कितने रूपो की विकुर्वणा कर सकता है ?[१]

कठिन शब्दार्थ—**भिसं**—कमलनाल, मृणाल । **अवद्दालिय**—तोडता हुआ । **मुणालिया**—नलिनी । **उम्मज्जिय**—डुबकी लगाती हुई । **किण्होभास**—काले प्रकाश या आभास वाला । **निकुरबभूए**—समूह के समान । **सद्दुन्नइयमधुरसर णादिया**—(पक्षियो के) उन्नत शब्द, मधुर स्वर और निनाद से गूजती हुई ।[२]

मायी (प्रमादी) द्वारा विकुर्वणा, अप्रमादी द्वारा नही

२६. से भते ! किं मायी विउव्वइ, अमायी विउव्वइ ?

गोयमा ! मायी विउव्वति, नो अमायी विउव्वति ।

[२६ प्र] भगवन् ! क्या (पूर्वोक्त रूपो की) विकुर्वणा मायी (अनगार) करता है, अथवा अमायी (अनगार) ?

[२६ उ] गौतम ! मायी विकुर्वणा करता है, अमायी (अनगार) विकुर्वणा नही करता ।

उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किये विना मरने से अनाराधकता

२७. मायी ण तस्स ठाणस्स अणालोइया० एव जहा ततियसए चउत्थुद्देसए (स० ३ उ० ४ सु० १९) जाव अत्थि तस्स आराहणा ।

सेव भते ! सेवं भते ! जाव विहरति ।

॥ तेरसमे सए नवमो उद्देसओ समत्तो ॥ १३-९ ॥

[२७] मायी अनगार यदि उस (विकुर्वणा रूप प्रमाद-) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना ही कालधर्म को प्राप्त हो जाए तो उसके आराधना नही (विराधना) होती है, इत्यादि तीसरे शतक के चतुर्थ उद्देशक (सू १९) के अनुसार यावत्—आलोचना और प्रतिक्रमण कर ले तो उसके आराधना होती है, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन आराधक-विराधक का रहस्य—प्रस्तुत उद्देशक मे भावितात्मा अनगार की विविध प्रकार की वैक्रिय शक्ति की प्ररूपणा की गई है, किन्तु उद्देशक के उपसहार मे स्पष्ट वता दिया है कि

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणीयुक्त) भा २, पृ ६५५-६५६

२ (क) भगवती अ वृत्ति

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२७०

इस प्रकार की विकुर्वणा वैक्रियलब्धिसम्पन्न मायी (प्रमादी) अनगार करता है, अमायी (अप्रमादी) अनगार नही करता। किन्तु मायी (प्रमादी) अनगार किसी कारणवश यदि इस प्रकार की विकुर्वणा करके अन्तिम समय मे आलोचना-प्रतिक्रमण कर लेता है, तो वह आराधक होता है। यदि वह इस प्रमादस्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है तो विराधक होता है।[1]

॥ तेरहवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ. ६५६
(ख) व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र खण्ड १ (आगमप्रकाशन समिति) श ३ उ. ४ सू १९, पृ. ३५९-३६०
(ग) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२७२

दसमो उद्देसओ : 'समुग्घाए'

दसवाँ उद्देशक : (छाद्मस्थिक) समुद्घात

छाद्मस्थिक समुद्घातः स्वरूप, प्रकार आदि का निरूपण

१. कति णं भते ! छाउमत्थिया समुग्घाया पन्नत्ता ? गोयमा ! छ छाउमत्थिया समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा—वेदणासमुग्घाते, एवं छाउमत्थिया समुग्घाता नेतव्वा जहा पण्णवणाए जाव आहारगसमुग्घातो त्ति ।

सेव भंते ! सेवं भते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ तेरसमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १३-१० ॥

[१ प्र] भगवन् ! छाद्मस्थिक (छद्मस्थ जीवो का) समुद्घात कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! छाद्मस्थिक समुद्घात छह प्रकार का कहा गया है । यथा—वेदनासमुद्घात इत्यादि छाद्मस्थिक समुद्घातो के विषय मे (सब वर्णन) प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीसवें समुद्घातपद के अनुसार यावत् आहारकसमुद्घात तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरने लगे ।

विवेचन—प्रस्तुत उद्देशक मे प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीसवे समुद्घातपद के अतिदेशपूर्वक छह छाद्मस्थिक समुद्घातो का निरूपण किया गया है । समुद्घात का व्युत्पत्त्यर्थ एव परिभाषा—सम—एकीभाव से उत्—प्रबलतापूर्वक, घात (निर्जरा) करना समुद्घात है । तात्पर्य यह है कि वेदना आदि के अनुभव के साथ एकीभूत आत्मा, कालान्तर मे भोगने योग्य वेदनीयादि कर्मप्रदेशो की उदीरणा द्वारा उदय में लाकर प्रबलता मे उनका घात करता है, वह समुद्घात कहलाता है ।

छाद्मस्थिक का अर्थ—जिन्हे केवलज्ञान नही हुआ है, जो अकेवली है, वे छद्मस्थ हैं और उनका समुद्घात छाद्मस्थिक समुद्घात है । वह छह प्रकार का है (१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात, (५) तैजस-समुद्घात और (६) आहारकसमुद्घात । क्रमश इनके लक्षण इस प्रकार है—**वेदनासमुद्घात**—वेदना के कारण होने वाला समुद्घात वेदनासमुद्घात है । वह असातावेदनीय कर्म की अपेक्षा से होता है । तात्पर्य यह है कि असातावेदनीय के कारण वेदनापीडित जीव अनन्तानन्त कर्मस्कन्धो से व्याप्त आत्मप्रदेशो को शरीर मे बाहर निकालता है और उनसे मुख, उदर आदि छिद्रो एव कान तथा स्कन्ध आदि अन्तरालो को पूर्ण करके लम्बाई चौडाई मे शरीर-परिमाण क्षेत्र में व्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त्त तक ठहरता है । उस अन्तर्मुहूर्त्त काल मे वह बहुत-से असातावेदनीय कर्मपुद्गलो की निर्जरा कर लेता है, यह वेदनासमुद्घात है ।

कषायसमुद्घात—कषाय-चारित्रमोहनीय कर्म के आश्रित क्रोधादि कषाय के कारण होने वाला समुद्घात कषायसमुद्घात है । तीव्र क्रोधादि कषाय से व्याकुल जीव जब अपने आत्मप्रदेशो को

वाहर निकाल कर और उनसे मुख, उदर आदि छिद्रो एव कान, आदि अन्तरालो को भरकर लम्बाई-चौडाई मे शरीर-परिमाण क्षेत्र मे व्याप्त हो-होकर अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है, तव वह कपायकर्मरूप पुद्गलो की प्रजलता से निर्जरा करता है। यह कपायसमुद्घात है।

मारणान्तिकसमुद्घात—मरणकाल मे होने वाला समुद्घात मारणान्तिकसमुद्घात है। मारणान्तिकसमुद्घात आयुष्यकर्म अन्तर्मुहूर्त्त शेप रहने पर होता है। अर्थात्—जव आयुष्यकर्म एक अन्तर्मुहूर्त्त मात्र शेप रहता है, तब कोई जीव मुख-उदरादि छिद्रो तथा कर्ण-स्कन्धादि अन्तरालो मे बाहर निकाले हुए अपने आत्मप्रदेशो को भर कर विष्कम्भ (घेरा) और मोटाई मे शरीरपरिमाण, लम्बाई मे कम से कम अपने शरीर के अगुल के असख्यातवे भाग-परिमाण तथा अधिक से अधिक एक दिशा मे असख्यात-योजन क्षेत्र को व्याप्त करके रहता है और प्रभूत आयुष्यकर्मपुद्गलो की निर्जरा करता है।

वैक्रियसमुद्घात—विक्रिया के प्रारम्भ करने पर होने वाला समुद्घात वैक्रियसमुद्घात है। यह नामकर्म के आश्रित होता है। वैक्रिय लब्धिवाला जीव विक्रिया करते समय आत्मप्रदेशो को शरीर से बाहर निकाल कर विष्कम्भ और मोटाई मे शरीर-परिमाण तथा लम्बाई मे सख्यात-योजन-परिमाण दण्ड निकालता है और पूर्वबद्ध स्थूल वैक्रियशरीरनामकर्म के पुद्गलो की निर्जरा कर लेता है।

तैजस-समुद्घात—यह समुद्घात तेजोलेश्या निकालते समय तैजसशरीरनामकर्म के आश्रित होता है। तेजोलेश्या की स्वाभाविक लब्धि प्राप्त कोई साधु आदि ७-८ कदम पीछे हट कर जब आत्मप्रदेशो को विष्कम्भ और मोटाई मे शरीर-परिमाण और लम्बाई मे सख्यातयोजन-परिमाण दण्ड शरीर से बाहर निकाल कर क्रोध के विपयभूत जीवादि को जलाता है, तव तैजसनामकर्म के प्रभूत कर्मपुद्गलो की निर्जरा करता है।

आहारकसमुद्घात—यह समुद्घात आहारकशरीर नामकर्म के आश्रित होता है। आहारक-शरीर का प्रारम्भ करने पर होने वाला समुद्घात आहारकसमुद्घात कहलाता है। आशय यह है कि आहारकशरीर की लब्धिवाला कोई मुनिराज आहारकशरीर के निर्माण की इच्छा से अपने आत्म-प्रदेशो को विष्कम्भ और मोटाई मे शरीरपरिमाण और लम्बाई मे सख्यातयोजन-परिमाण दण्ड के आकार मे बाहर निकालता है, तब वह यथास्थूल पूर्वबद्ध आहारकशरीरनामकर्म के प्रभूत कर्मपुद्गलो की निर्जरा कर लेता है।

प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीसवे समुद्घात-पद मे 'केवलीसमुद्घात' का भी वर्णन है, किन्तु वह यहाँ अप्रासगिक होने से उसका वर्णन नही किया गया है।[1]

॥ तेरहवाँ शतक : दसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ तेरहवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १ सू २१४७, पृ ४३८ (महावीर जैन विद्यालय)
(ख) भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ६२९
(ग) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२७३-२२७४

चोद्दसमं सयं : चौदहवाँ शतक

प्राथमिक

※ व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के इस चौदहवें शतक मे दस उद्देशक हैं, इसमे भावितात्मा अनगार, केवली, सिद्ध, आदि के ज्ञान एव लब्धि आदि से सम्बन्धित विषयो के अतिरिक्त उन्माद, शरीर, पुद्गल, अग्नि, किमाहार आदि विविध तात्त्विक विषयो का भी निरूपण किया गया है ।

※ प्रथम उद्देशक चरम है । इसमे भावितात्मा अनगार की चरम और परम देवावास के मध्य की गति का वर्णन है । तदनन्तर चौवीस दण्डको मे अनन्तरोपपन्नकादि की तथा अनन्तरोपपन्नादि के आयुष्यबन्ध की, अनन्तरनिर्गतादि की तथा अनन्तरनिर्गत आदि के आयुष्यबन्ध की, अनन्तरखेदोपपन्नादि की एव अनन्तरखेदनिर्गतादि की तथा इन सबके आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा की गई है ।

※ द्वितीय उद्देशक मे विविध उन्माद और उसके कारण तथा चौवीस दण्डको मे विविध उन्माद और उनके कारणो की मीमासा की गई है । तदनन्तर स्वाभाविक वृष्टि एव देवकृत वृष्टि का तथा चतुर्विध देवकृत तमस्काय का सहेतुक निरूपण किया गया है ।

※ तृतीय उद्देशक मे भावितात्मा अनगार के शरीर के मध्य मे से होकर जाने के महाकाय देव के सामर्थ्य-असामर्थ्य का सहेतुक निरूपण है । फिर चौवीस दण्डको मे परस्पर सत्कारादि विनय की प्ररूपणा की गई है । तत्पश्चात् अल्पर्द्धिक महर्द्धिक, और समर्द्धिक देव-देवियो के मध्य मे से होकर एक दूसरे के निकलने का वर्णन है । अन्त मे सातो नरको के नैरयिको को अनिष्ट पुद्गलपरिणाम, वेदनापरिणाम और परिग्रहसज्ञापरिणाम के अनुभव का निरूपण किया गया है ।

※ चतुर्थ उद्देशक मे पुद्गल के त्रिकालापेक्षी विविध वर्णादि परिणामो की, जीव के त्रिकालापेक्षी सुख-दु ख आदि विविध परिणामो की प्ररूपणा की गई है । तदनन्तर परमाणु पुद्गल की शाश्वतता-अशाश्वतता तथा चरमता-अचरमता की चर्चा की गई है । अन्त मे परिणाम के जीव-परिणाम और अजीव-परिणाम, ये दो भेद बताकर प्रज्ञापनासूत्र के समग्र परिणामपद का अतिदेश किया गया है ।

※ पचम उद्देशक मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के अग्नि मे होकर गमन सामर्थ्य की तथा शब्दादि दस स्थानो मे इष्टानिष्ट स्थानो के अनुभव की एवं महर्द्धिक देव द्वारा तिर्यक् पर्वतादि उल्लघन-प्रोल्लघन-सामर्थ्य-असामर्थ्य की प्ररूपणा की गई है ।

※ छठे उद्देशक मे चौवीस दण्डकों के जीवो द्वारा पुद्गलो के आहार, परिणाम, योनि और स्थिति की तथा वीचिद्रव्य-अवीचिद्रव्याहार की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे शक्रेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र तक के देवेन्द्रो की दिव्य भोगोपभोग-प्रक्रिया का वर्णन है ।

* सातवे 'सश्लिष्ट' उद्देशक मे भगवान् द्वारा गौतम स्वामी को इसी भव के बाद अपने समान सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का आश्वासन दिया गया है। तत्पश्चात् अनुत्तरौपपातिक देवो की जानने-देखने की शक्ति का तथा छह प्रकार के तुल्य के स्वरूप का पृथक्-पृथक् विश्लेषण किया गया है। फिर अनशनकर्ता अनगार द्वारा मूढता-अमूढतापूर्वक आहाराध्यवसाय की चर्चा की गई है। अन्त मे लवसप्तम और अनुत्तरौपपातिक देव स्वरूप की सहेतुक प्ररूपणा की गई है।

* आठवे उद्देशक मे रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी एव अलोकपर्यन्त परस्पर अबाधान्तर की प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् शालवृक्ष आदि के भावी भवो की, अम्बड परिव्राजक के सात सौ शिष्यो की आराधकता की, अम्बड को दो भवो के बाद मोक्षप्राप्ति की, अव्याबाध देवो की अव्याबाधता की, सिर काटकर कमण्डलु मे डालने की शक्रेन्द्र की वैक्रिय-शक्ति की तथा जृम्भक देवो के स्वरूप, भेद, गति एव स्थिति की प्ररूपणा की गई है।

* नौवे उद्देशक मे भावितात्मा अनगार की ज्ञान-सम्बन्धी और प्रकाशपुद्गलस्कन्ध-सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है। तदनन्तर चौवीस दण्डको मे पाए जाने वाले आत्त-अनात्त, इष्टानिष्ट आदि पुद्गलो की, महर्द्धिक देव की भाषासहस्रभाषणशक्ति की, सूर्य के अन्वर्थ तथा उसकी प्रभा आदि के शुभत्व की परिचर्चा की गई है। अन्त मे श्रामण्यपर्यायसुख की देवसुख के साथ तुलना की गई है।

* दसवे उद्देशक मे केवली एव सिद्ध द्वारा छद्मस्थादि को तथा केवली द्वारा नरकपृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक को तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक को जानने-देखने की शक्ति की प्ररूपणा की गई है।

* प्रस्तुत उद्देशक मे कुल मिला कर देव, मनुष्य, अनगार, केवली, सिद्ध, नैरयिक, तिर्यञ्च आदि जीवो की आत्मिक एव शारीरिक दोनो प्रकार की शक्तियो का रोचक वर्णन है।[1] □□

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ६५८ से ६८८ तक

चोद्दसमं सयं : चौदहवाँ शतक

चौदहवें शतक के उद्देशकों के नाम

१. चर १ उम्माद २ सरीरे ३ पोग्गल ४ अगणी ५ तहा किमाहारे ६ ।
समिट्ठमतरे ७-७ खलु अणगारे ९ केवली चेव १० ॥ १ ॥

[१-गाथार्थ]—[चौदहवें शतक के दस उद्देशक इस प्रकार है—] (१) चरम, (२) उन्माद, (३) शरीर (४) पुद्गल, (५) अग्नि तथा (६) किमाहार, (७) संश्लिष्ट, (८) अन्तर, (९) अनगार और (१०) केवली ।

विवेचन—प्रस्तुत गाथा मे चौदहवे शतक के १० उद्देशको के सार्थक नामो का उल्लेख किया गया है—(१) चरम—'चरम' (चर) शब्द से उपलक्षित होने से प्रथम उद्देशक का नाम 'चरम' है । (२) उन्माद—उन्माद (पागलपन) के अर्थ का प्रतिपादक होने से द्वितीय उद्देशक 'उन्माद' है । (३) शरीर—शरीर शब्द से उपलक्षित होने से तृतीय उद्देशक का नाम 'शरीर' है । (४) 'पुद्गल' के विषय मे कथन होने से चतुर्थ उद्देशक का नाम 'पुद्गल' है । (५) अग्नि—'अग्नि' शब्द से उपलक्षित होने के कारण पचम उद्देशक का नाम 'अग्नि' है । (६) किमाहार—'किस दिशा का आहार वाला होता है,' इस प्रकार के प्रश्न से युक्त होने के कारण छठे उद्देशक का नाम 'किमाहार' है । (७) संश्लिष्ट—'चिरससिट्ठोऽसि गोयमा !', इस पद मे आए हुए 'संश्लिष्ट' शब्द से युक्त होने से सप्तम उद्देशक का नाम 'संश्लिष्ट' है । (८) अन्तर—नरक-पृथ्वियों के अन्तर का प्रतिपादक होने से आठवे उद्देशक का नाम 'अन्तर' है । (९) अनगार—इसका सर्वप्रथम पद 'अनगार' है, इसलिए नौवे उद्देशक का नाम 'अनगार' है और (१०) केवली—उद्देशक के प्रारम्भ मे 'केवली' पद होने से इस उद्देशक का नाम 'केवली' है ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३०

पढमो उद्देसओ : 'चरम'

प्रथम उद्देशक : चरम (-परम के मध्य की गति आदि)

भावितात्मा अनगार की चरम-परम मध्य मे गति, उत्पत्ति-प्ररूपणा

२. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[२] राजगृह नगर मे यावत् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

३. अणगारे ण भंते ! भावियप्पा चरम देवावासं वीतिक्कते, परमं देवावास असपत्ते, एत्थ ण अंतरा काल करेज्जा, तस्स णं भते ! कहिं गती, कहिं उववाते पन्नत्ते ?

गोयमा ! जे से तत्थ परिपस्सओ तल्लेसा देवावासा तहिं तस्स गती, तहिं तस्स उववाते पन्नत्ते । से य तत्थगए विराहेज्जा कम्मलेस्सामेव पडिपडइ, से य तत्थ गए नो विराहेज्जा तामेव लेस्स उवसपज्जित्ताण विहरइ ।

[३ प्र] भगवन् ! (कोई) भावितात्मा अनगार, (जिसने) चरम (पूर्ववर्त्ती सौधर्मादि) देवावास (देवलोक) का उल्लघन कर लिया हो, किन्तु परम (परभागवर्ती सनत्कुमारादि) देवावास (देवलोक) को प्राप्त न हुआ हो, यदि वह इस मध्य मे ही काल कर जाए तो भते ! उसकी कौन-सी गति होती है, कहाँ उपपात होता है ?

[३ उ] गौतम ! जो वहाँ (चरम देवावास और परम देवावास के) परिपार्श्व मे उस लेश्या वाले देवावास होते हैं, वही उसकी गति होती है और वही उसका उपपात होता है । वह अनगार यदि वहाँ जा कर अपनी पूर्वलेश्या को विराधता (छोडता) है, तो कर्मलेश्या (भावलेश्या) से ही गिरता है और यदि वह वहाँ जा कर उस लेश्या को नही विराधता (छोडता) है, तो वह उसी लेश्या का आश्रय करके विचरता (रहता) है ।

४. अणगारे ण भते ! भावियप्पा चरम असुरकुमारावासं वीतिक्कंते, परमं असुरकुमारा० ?
एव चेव ।

[४ प्र] भगवन् ! (कोई) भावितात्मा अनगार, जो चरम असुरकुमारावास का उल्लघन कर गया और परम असुरकुमारावास को प्राप्त नही हुआ, यदि इसके बीच मे ही वह काल कर जाए तो उसकी कौन-सी गति होती है, उसका कहाँ उपपात होता है ?

[४ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए ।

५. एवं जाव थणियकुमारावासं, जोतिसियावास। एवं वेमाणियावास जाव विहरइ।

[५] इसी प्रकार यावत्—स्तनितकुमारावास, ज्योतिष्कावास और वैमानिकावास पर्यन्त (यावत्) विचरते हैं, यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—चरम-परम के मध्य मे गति, उत्पत्ति—उपर्युक्त प्रश्न का आशय यह है कि कोई भावितात्मा अनगार, जो लेश्या के उत्तरोत्तर प्रशस्त अध्यवसाय-स्थानो मे वर्त्तमान है, वह यदि पूर्ववर्ती सौधर्मादि देवलोको मे उत्पन्न होने योग्य स्थितिवन्ध आदि का उल्लघन कर गया हो, किन्तु अभी तक परम (ऊपर रहे हुए) सनत्कुमारादि देवलोको मे उत्पन्न होने योग्य स्थितिवन्ध आदि अध्यवसायो को प्राप्त नही हुआ और इसी मध्य (अवसर) मे अगर उसकी मृत्यु हो जाए तो वह कहाँ जाता है, कहाँ उत्पन्न होता है ? इसका उत्तर भगवान् ने यो दिया है कि वह चरमदेवावास और परमदेवावास के निकटवर्ती उस लेश्या वाले देवावासो मे जाता है, वही उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि सौधर्मादि देवलोक और सनत्कुमारादि देवलोको के पास मे जो ईशान आदि देवलोक है, उनमे अर्थात्—जिस लेश्या मे वह अनगार काल करता है, उसी लेश्या वाले देवावासो मे उत्पन्न होता है, क्योकि यह सिद्धान्त वचन है—

'जल्लेसे मरइ जीवे, तल्लेसे चेव उववज्जइ'—अर्थात्—'जीव जिस लेश्या मे मरण पाता है, उसी लेश्या (वाले जीवो) मे उत्पन्न होता है।' अर्थात्—उन देवावासो मे उस अनगार की गति होती है। जिस लेश्या-परिणाम से वहाँ वह उत्पन्न होता है, यदि उस परिणाम की वह विराधना कर देता है तो द्रव्यलेश्या वही होते हुए भी कर्मलेश्या (भावलेश्या)—जीवपरिणति से वह गिर जाता है। तात्पर्य यह है कि वह शुभ भावलेश्या से गिर कर अशुभ भावलेश्या मे चला जाता है, क्योकि देव और नैरयिक द्रव्यलेश्या से नही गिरते, वह तो पहले वाली ही रहती है, किन्तु भावलेश्या से गिर जाते है। द्रव्यलेश्या तो देवो की अवस्थित रहती है। यदि वह अनगार जिस लेश्यापरिणाम से वहाँ (चरमदेवावास और परमदेवावास के मध्यवर्ती देवावास मे) उत्पन्न होता है, यदि वह उस लेश्या-परिणाम की विराधना नही करता, तो वह जिस लेश्या से वहाँ उत्पन्न हुआ है, उसी लेश्या मे जीवनयापन करता है। यह सामान्य देवावासो को लेकर कहा गया है। विशेष देवावासो की अपेक्षा अगला सूत्र कहा गया है।

शंका-समाधान—(प्र) जो भावितात्मा अनगार है, वह असुरकुमारो मे कैसे उत्पन्न होता है ? वहाँ तो सयम के विराधक जीव ही उत्पन्न होते हैं ? इसके समाधान मे वृत्तिकार कहते हैं—यहाँ भावितात्मापन पूर्वकाल की अपेक्षा से समझना चाहिए। अन्तिम समय मे वे सयम के विराधक होने से असुरकुमारादि मे उत्पन्न हो सकते है। अथवा यहाँ भावितात्मा का आशय **'बालतपस्वी भावितात्मा'** समझना चाहिए।[1]

चौवीस दण्डकों में शीघ्रगति-विषयक प्ररूपणा

६. नेरइयाणं भंते ! कहं सीहा गती ? कहं सीहे गतिविसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से जहानामए केयि पुरिसे तरुणे बलवं जुगवं जाव[2] निउणसिप्पोवगए आउंटिय

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३०-६३१
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२७७-२२७८

२ 'जाव' शब्द सूचक पाठ—जुवाणे, अप्पातके, थिरग्गहत्थे, दढपाणि-पाय-पास-पिट्ठ तरोरुपरिणए, तलजमलजुयल-परिघ-निभबाहू, चम्मेट्ठ-दुहण-मुट्ठियसमाहयनिचियगायकाए, ओरसबलसमन्नागए, लघण-पवणजइणवायामसमत्थे, छेए, दक्खे, पत्तट्ठे, कुसले, मेहावी, निउणे"-अवृ० पत्र ६३१

बाहं पसारेज्जा, पसारियं वा बाहं आउटेज्जा, विक्खिण्ण वा मुट्ठि साहरेज्जा, साहरिय वा मुट्ठि विक्खिरेज्जा, उम्मिसियं वा अच्छि निमिसेज्जा, निमिसित वा अच्छि उम्मिसेज्जा, भवेयारूवे ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

नेरइया ण एगसमएण वा दुसमएण वा तिसमएण वा विग्गहेणं उववज्जंति, नेरयाणं गोयमा ! तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते ।

[६ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो की शीघ्र गति कैसी है ? और उनकी शीघ्रगति का विषय किस प्रकार का कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! जैसे कोई तरुण, बलवान् एव युगवान् (सुषम-दु षमादिकाल मे उत्पन्न हुआ विशिष्ट बलशाली) यावत् निपुण एव शिल्पशास्त्र का ज्ञाता हो, वह अपनी सकुचित बाह को शीघ्रता से फैलाए और फैलाई हुई बाँह को सकुचित करे; खुली हुई मुट्ठी बद करे और बद मुट्ठी खोले, खुली हुई आँख बन्द करे और बद आँख खोले तो (हे गौतम !) क्या नैरयिक जीवो को इस प्रकार की शीघ्र गति तथा शीघ्र गति का विषय होता है ?

(गौतम—) (भगवन् !) यह अर्थ समर्थ नही है ।

(भगवान्—) (गौतम !) नैरयिक जीव एक समय की, दो समय की, अथवा तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होते हैं । हे गौतम ! नैरयिको की ऐसी शीघ्र गति है और इस प्रकार का शीघ्र गति का विषय कहा गया है ।

७. एव जाव वेमाणियाण, नवर एगिंदियाण चउसमइए विग्गहे भाणियव्वे । सेसं तं चेव ।

[७] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक (अर्थात्—चौवीस ही दण्डको मे) जानना चाहिए । विशेषता यह है कि एकेन्द्रियो मे उत्कृष्ट चार समय की विग्रहगति कहनी चाहिए । शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए ।

विवेचन—शीघ्रगति से तात्पर्य—एक भव से दूसरे भव मे जाने को यहाँ 'गति' कहा है । नैरयिक जीव, नरक गति मे एक समय, दो समय या तीन समय की गति से उत्पन्न होते है । उसमे एक समय की गति 'ऋजुगति' होती है और दो या तीन समय की गति विग्रहगति होती है । इस गति को यहाँ 'शीघ्रगति' कहा गया है । हाथ को पसारने और सिकोडने आदि मे असख्यात समय लगते है, इसलिए उसे शीघ्रगति नही कहा है । जब जीव, समश्रेणी मे रहे हुए उत्पत्ति-स्थान मे जा कर उत्पन्न होता है, तब एक समय की ऋजुगति होती है और जब विषमश्रेणी मे रहे हुए उत्पत्तिस्थान मे जा कर उत्पन्न होता है, तब दो या तीन समय की विग्रहगति होती है और एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट चार समय की विग्रहगति होती है ।[1]

जब कोई जीव भरतक्षेत्र की पूर्व दिशा से नरक मे पश्चिम दिशा मे उत्पन्न होता है, तब वह पहले समय मे नीचे आता है, दूसरे समय मे तिरछे उत्पत्तिस्थान मे जाकर उत्पन्न होता है । इस प्रकार उसकी दो समय की विग्रहगति होती है ।

जब कोई जीव भरतक्षेत्र की पूर्व दिशा से नरक मे वायव्यकोण (विदिशा) मे उत्पन्न होता है, तब एक समय मे समश्रेणी द्वारा नीचे जाता है । दूसरे समय मे पश्चिम दिशा मे जाता है

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२७९

और तीसरे समय मे तिरछे वायव्यकोण मे रहे अपने उत्पत्तिस्थान मे जाकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार तीन समय की विग्रहगति होती है। यही नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवो (एकेन्द्रिय जीवो के सिवाय) की शीघ्रगति और शीघ्रगति का विषय कहा गया है।[1]

एकेन्द्रिय जीवो की चार समय की विग्रहगति—इस प्रकार समझनी चाहिए—जीव की गति श्रेणी के अनुसार होती है। अत त्रसनाडी से बाहर रहा हुआ कोई एकेन्द्रिय जीव जब दूसरे भव मे जाता है, तब पहले समय मे त्रसनाडी से बाहर अधोलोक की विदिशा से दिशा की ओर जाता है। दूसरे समय मे लोक के मध्य भाग मे प्रविष्ट होता है। तीसरे समय मे ऊँचा (ऊर्ध्वलोक मे) जाता है और चौथे समय मे त्रसनाडी मे निकल कर दिशा मे नियत—उत्पत्तिस्थान मे जाता है। यह बात सामान्यतया अधिकाश एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा कही गई है, और[2] एकेन्द्रिय जीव बहुधा इसी प्रकार गति करते हैं, अन्यथा एकेन्द्रिय जीवो की पाच समय की विग्रह गति भी सम्भव है। वह इस प्रकार—पहले समय मे त्रसनाडी मे बाहर, वह अधोलोक की विदिशा से दिशा की ओर जाता है। दूसरे समय मे लोक के मध्य भाग मे प्रवेश करता है। तीसरे समय मे ऊर्ध्वलोक मे जाता है। चौथे समय मे वहाँ से दिशा की ओर जाता है और पाचवे समय मे विदिशा मे रहे हुए उत्पत्तिस्थान मे जाता है। इस प्रकार पाच समय की विग्रह गति भी कही गई है।[3]

कठिनशब्दार्थ—**सीहा**—शीघ्र, **आउटेज्जा**—सिकोडे। **उण्णिमिसिय**—खुली हुई। **विक्खिण्णं**—खोली हुई।[4]

चौवीस दण्डकों मे अनन्तरोपपन्नकादि प्ररूपणा

८. [१] नेरइया णं भंते ! किं अणतरोववन्नगा, परपरोववन्नगा, अणंतरपरंपरअणुववन्नगा वि ?

गोयमा ! नेरइया अणंतरोववन्नगा वि, परंपरोववन्नगा वि, अणतरपरपरअणुववन्नगा वि।

[८-१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक अनन्तरोपपन्नक है, परम्परोपपन्नक है, अथवा अनन्तर-परम्परानुपपन्नक हैं ?

[८-१ उ] गौतम ! नैरयिक अनन्तरोपपन्नक भी है, परम्परोपपन्नक भी हैं और अनन्तर-परम्परानुपपन्नक भी हैं।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव अणतरपरपरअणुववन्नगा वि ?

गोयमा ! जे ण नेरइया पढमसमयोववन्नगा ते ण नेरइया अणतरोववन्नगा, जे ण नेरइया अपढमसमयोववन्नगा ते णं नेरइया परपरोववन्नगा, जे ण नेरइया विग्गहगतिसमावन्नगा ते ण नेरइया अणंतरपरपरअणुववन्नगा। से तेणट्ठेण जाव अणुववन्नगा वि।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३२
(ख) भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२७९-२२८०

२ वही, हिन्दी विवेचन भा ५, पृ २२८०

३ विदिसाउ दिसि पढमे, बीए पइ सरइ नाडिमज्झमि।
उड्ढ तइए तुरिए उ नीइ विदिस तु पचमए॥ —अ वृत्ति, पत्र ६३२

४ भगवती (हिन्दीविवेचन), भा ५, पृ २२८०

[८-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा है कि नैरयिक यावत् (अनन्तरो०, परम्परो०) और अनन्तर-परम्परानुपपन्नक भी है ?

[८-२ उ] गौतम ! जिन नैरयिको को उत्पन्न हुए अभी प्रथम समय ही हुआ है (उत्पत्ति मे एक समय का भी व्यवधान नही पडा), वे (नैरयिक) अनन्तरोपपन्नक (कहलाते है)। जिन नैरयिको को उत्पन्न हुए अभी दो, तीन आदि समय हो चुके है, (अर्थात्—प्रथम समय के सिवाय द्वितीयादि समय हो गए है,) वे (नैरयिक) परम्परोपपन्नक (कहलाते) है और जो नैरयिक जीव नरक मे उत्पन्न होने के लिए (अभी) विग्रहगति मे चल रहे है, वे (नैरयिक) अनन्तर-परम्परानुपपन्नक (कहलाते) हैं। इस कारण से हे गौतम ! नैरयिक जीव यावत् अनन्तर-परम्परानुपपन्नक भी है ।

९. एवं निरतर जाव वेमाणिया ।

[९] इसी प्रकार (यह पाठ) निरन्तर यावत् वैमानिक (तक कहना चाहिए) ।

विवेचन—अनन्तरोपपन्नक—जिनकी उत्पत्ति मे समय आदि का अन्तर (व्यवधान) नही है, अर्थात्—जिन्हे उत्पन्न हुए प्रथम समय हुआ है, वे । **परम्परोपपन्नक**—जिन्हे उत्पन्न हुए दो-तीन आदि समय हो गए हो, वे । **अनन्तर-परम्परानुपपन्नक**—जिनकी उत्पत्ति न तो भव के प्रथम समय मे हुई है और न ही द्वितीयादि समयो मे, ऐसे विग्रहगति-समापन्नक जीव **अनन्तर-परम्परानुपपन्नक** कहलाते है। नैरयिक जीव जब विग्रहगति मे होते हैं,[1] तब पूर्वोक्त दोनो प्रकार की उत्पत्ति का अभाव होता है ।

अनन्तरोपपन्नकादि चौवीस दण्डको मे आयुष्यबंध-प्ररूपणा

१०. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउय पकरेंति ? तिरिक्ख-मणुस्स-देवाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! नो नेरइयाउय पकरेंति, जाव नो देवाउयं पकरेंति ।

[१० प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिक, नैरयिक का आयुष्य बाँधते है, अथवा तिर्यञ्च का, मनुष्य का या देव का आयुष्य बाँधते है ?

[१० उ] गौतम ! वे नैरयिक का आयुष्य नही बाँधते, यावत् (तिर्यञ्च का, मनुष्य का एव) देव का आयुष्य भी नही बाँधते ।

११. परंपरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउय पकरेंति, जाव देवाउय पकरेंति ?

गोयमा ! नो नेरइयाउय पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउय पि पकरेंति, मणुस्साउय पि पकरेंति, नो देवाउय पकरेंति ।

[११ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक नैरयिक, क्या नैरयिक का आयुष्य बाँधते है, यावत् क्या देवायुष्य बाँधते हैं ?

[११ उ] गौतम ! वे नैरयिक का आयुष्य नही बाँधते, वे तिर्यञ्च का आयुष्य बाँधते हैं, मनुष्य का आयुष्य भी बाँधते हैं, (किन्तु) देवायुष्य नही बाँधते ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३३

१२. अणंतरपरंपरअणुववन्नगा ण भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं प० पुच्छा ।

गोयमा ! नो नेरइयाउय पकरेंति, जाव नो देवाउय पकरेंति ।

[१२ प्र] भगवन् ! अनन्तर-परम्परानुपपन्नक नैरयिक, क्या नैरयिक का आयुष्य बाँधते है ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न ।

[१२ उ] गौतम ! वे नैरयिक का आयुष्य नही बाँधते, यावत् (तिर्यञ्च का, मनुष्य का या) देव का आयुष्य नही बाँधते ।

१३. एवं जाव वेमाणिया, नवर पंचिदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य परपरोववन्नगा चत्तारि वि आउयाइ पकरेंति । सेस त चेव ।

[१३] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक (चौवीस दण्डको मे आयुष्यवन्ध का कथन करना चाहिए ।) विशेषता यह है कि परम्परोपपन्नक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य नारकादि, चारो प्रकार का अर्थात् चारो मे से किसी भी एक का आयुष्य बाँधते है । शेष (सभी कथन) पूर्ववत् (करना चाहिए ।)

विवेचन—निष्कर्ष—अनन्तरोपपन्नक और अनन्तर-परम्परानुपपन्नक जीव नरकादि चारो गतियो का आयुष्य नही बाँधते, क्योंकि उस अवस्था मे उस प्रकार के कोई अध्यवसाय (परिणाम) नही होते । 'परिणामे बन्ध' इस सिद्धान्तानुसार उस समय चारो गति के जीवो के आयुष्यबन्ध नही होता । परम्परोपपन्नक नैरयिक जीव एव देव अपना आयुष्य छह मास शेष रहते तिर्यञ्च या मनुष्य का आयुष्यबन्ध करते है । परम्परोपपन्नक मनुष्य और तिर्यञ्च तो चारो ही गति का आयुष्य बाँधते है । अपने आयु के तृतीयादि भाग मे, या कोई-कोई छह महीने शेष रहते आयुष्य बाँधते है ।[1]

चौवीस दण्डकों में अनन्तर-निर्गतादि-प्ररूपणा

१४. [१] नेरइया ण भंते ! किं अणतरनिग्गया परपरनिग्गया अणंतरपरपरअनिग्गया ?

गोयमा ! नेरइया ण अणतरनिग्गया वि जाव अणतरपरपरअनिग्गया वि ।

[१४-१ प्र] भगवन् ! क्या नारक जीव अनन्तर-निर्गत है, परम्पर-निर्गत है या अनन्तर-परम्परा-अनिर्गत है ?

[१४-१ उ] गौतम ! नैरयिक अनन्तर-निर्गत भी होते है, परम्पर-निर्गत भी होते है और अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत भी होते है ।

[२] से केणट्ठेणं जाव अणिग्गता वि ?

गोयमा ! जे णं नेरइया पढमसमयनिग्गया ते णं नेरइया अणतरनिग्गया, जे ण नेरइया अपढमसमयनिग्गया ते ण नेरइया परंपरनिग्गया, जे ण नेरइया विग्गहगतिसमावन्नगा ते ण नेरइया अणतरपरंपरअणिग्गया । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव अणिग्गता वि ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३३

[१४-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिक अनन्तर-निर्गत भी होते है, यावत् अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत भी होते है ?

[१४-२ उ] गौतम! जिन नैरयिको को नरक से निकले प्रथम समय ही है, वे अनन्तर-निर्गत है, जो नैरयिक अप्रथम (प्रथम-समय-व्यतिरिक्त समय-द्वितीयादि समय) मे निर्गत हुए (निकले) हैं, वे 'परम्पर-निर्गत' है और जो नैरयिक विग्रहगति-समापन्नक है, वे 'अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत' है। इसी कारण, हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव, यावत् (अनन्तर-निर्गत भी हैं, परम्पर-निर्गत भी है और) अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत भी है।

१५. एवं जाव वेमाणिया।

[१५] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

विवेचन—अनन्तर-निर्गत—एक भव से निकल कर दूसरा भव प्राप्त होने के प्रथम समयवर्ती जीव। **परम्पर-निर्गत**—जिन जीवो को एक भव से निकल कर भवान्तर को प्राप्त हुए दो-तीन आदि समय हो चुके है, वे। **अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत**—जो एक भव से निकल कर भवान्तर मे उत्पत्तिस्थान को प्राप्त नही हुए, अभी जो विग्रहगति मे ही है, ऐसे जीव।[1]

चौवीस ही दण्डको के जीव अनन्तर-निर्गत, परम्पर-निर्गत और अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत, तीनो प्रकार के होते है।

अनन्तरनिर्गतादि चौवीस दण्डकों में आयुष्यबन्ध-प्ररूपणा

१६. अणंतरनिग्गया ण भंते! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति, जाव देवाउयं पकरेंति?

गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउय पकरेंति।

[१६ प्र] भगवन्! अनन्तरनिर्गत नैरयिक जीव, क्या नारकायुष्य बाधते है यावत् देवायुष्य बाधते है ?

[१६ उ] गौतम! वे न तो नरकायुष्य बाधते है, न तिर्यञ्चायु, न मनुष्यायु और न ही देवायुष्य बाधते है।

१७. परंपरनिग्गया णं भंते! नेरइया किं नेरइयाउयं० पुच्छा।

गोयमा! नेरइयाउयं पि पकरेंति, जाव देवाउय पि पकरेंति।

[१७ प्र] भगवन्! परम्पर-निर्गत नैरयिक, क्या नरकायु बाधते है? इत्यादि (पूर्ववत्) पृच्छा।

[१७ उ] गौतम! वे नरकायुष्य भी बाधते है, यावत् देवायुष्य भी बाधते है।

१८. अणतरपरपरअणिग्गया णं भंते! नेरइया० पुच्छा०।

गोयमा! नो नेरइयाउयं पि पकरेंति, जाव नो देवाउयं पि पकरेंति।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३३

[१८ प्र.] भगवन् ! अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत नैरयिक, क्या नारकायुष्य बांधते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१८ उ.] गौतम ! वे न तो नारकायुष्य बांधते, यावत् न देवायुष्य बांधते हैं ।

१९. निरवसेसं जाव वेमाणिया ।

[१९] इसी प्रकार शेष सभी कथन यावत् वैमानिक तक करना चाहिए ।

विवेचन—निष्कर्ष—परम्पर-निर्गत सभी जीव सर्वगतियों का आयुष्य बांधते हैं, क्योंकि परम्पर-निर्गत नैरयिक, मनुष्य और तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय ही होते हैं । वे सर्वायुबन्धक होते हैं । इस प्रकार परम्पर-निर्गत सभी वैक्रिय जन्म वाले जीव (अर्थात्—देव और नैरयिक) तथा औदारिक जन्म वाले कितने ही जीव मनुष्य और तिर्यञ्च होते हैं । इसलिए परम्परनिर्गत जीव सभी गति का आयुष्य बांधते हैं ।[1]

चौवीस दण्डकों में अनन्तरखेदोपपन्नादि अनन्तरखेदनिर्गतादि एवं आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा

२०. नेरइया णं भंते ! किं अणंतरखेदोववन्नगा, परंपरखेदोववन्नगा, अणंतरपरंपरखेदाणुववन्नगा ?

गोयमा ! नेरइया०, एवं एतेणं अभिलावेणं ते चेव चत्तारि दंडगा भाणियव्वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ चोद्दसमे सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ १४-१ ॥

[२० प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीव क्या अनन्तर-खेदोपपन्न हैं, परम्पर-खेदोपपन्न हैं अथवा अनन्तरपरम्परा-खेदानुपपन्न हैं ?

[२० उ.] गौतम नैरयिक जीव, अनन्तर-खेदोपपन्न भी हैं, परम्पर-खेदोपपन्न भी हैं और अनन्तर-परम्पर-खेदानुपपन्नक भी हैं । इस अभिलाप द्वारा वे ही पूर्वोक्त चार दण्डक कहने चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर यावत् गौतम-स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—**अनन्तर-खेदोपपन्नक**—उत्पत्ति के प्रथम समय में ही जिनकी उत्पत्ति दुःखयुक्त है । **परम्पर-खेदोपपन्नक**—जिनकी खेदयुक्त उत्पत्ति में दो-तीन आदि समय व्यतीत हो चुके हैं, वे । **अनन्तर-परम्पर-खेदानुपपन्नक**—जिनकी अनन्तर अथवा परम्पर खेदयुक्त उत्पत्ति नहीं है, वे । ऐसे जीव विग्रहगतिवर्ती होते हैं ।[2]

---

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ६३८

२. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६३८

तीनो के विषय मे पूर्वोक्त चार दण्डक—इस प्रकार है—(१) खेदोपपन्नक दण्डक, (२) खेदोपपन्नक सम्बन्धी आयुष्यबन्ध का दण्डक, (३) खेदनिर्गत दण्डक, और (४) खेदनिर्गत-सम्बन्धी आयुष्यबध का दण्डक। ये चारो दण्डक[1] पूर्वोक्त वक्तव्यतानुसार कहने चाहिए।

॥ चौदहवाँ शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३४

बीओ उद्देसओ : 'उम्माद'

द्वितीय उद्देशक : उन्माद (प्रकार, अधिकारी)

उन्माद : प्रकार, स्वरूप और चौवीस दण्डको मे सहेतुक प्ररूपणा

१. कतिविधे ण भते ! उम्मादे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, त जहा—जक्खाएसे य मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएण । तत्थ ण जे मे जक्खाएसे से ण सुहवेयणतराए चेव, सुहविमोयणतराए चेव । तत्थ ण जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएण मे ण दुहवेयणतराए चेव, दुहविमोयणतराए चेव ।

[१ प्र.] भगवन् ! उन्माद कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! उन्माद दो प्रकार का कहा गया है । यथा—यक्षावेश से और मोहनीय कर्म के उदय मे (होने वाला) । इनमे से जो यक्षावेशरूप उन्माद है, उसका सुखपूर्वक वेदन किया जा सकता है और वह सुखपूर्वक छुडाया (विमोचन कराया) जा सकता है । (किन्तु) इनमे से जो मोहनीयकर्म के उदय मे होने वाला उन्माद है, उसका दु खपूर्वक वेदन होता है और दु खपूर्वक ही उससे छुटकारा पाया जा सकता है ।

२. [१] नेरइयाण भते ! कतिविधे उम्मादे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उम्मादे पन्नत्ते, त जहा—जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएण ।

[२-१ प्र] भगवन् ! नारक जीवो मे कितने प्रकार का उन्माद कहा गया है ?

[२-१ उ] गौतम ! उनमे दो प्रकार का उन्माद कहा गया है । यथा—यक्षावेशरूप उन्माद और मोहनीय कर्म के उदय मे होने वाला उन्माद ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'नेरइयाण दुविहे उम्मादे पन्नत्ते, त जहा—जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स जाव उदएण' ?

गोयमा ! देवे वा से असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा, से ण तेसि असुभाण पोग्गलाण पक्खिवणयाए जक्खाएस उम्माय पाउणिज्जा । मोहणिज्जस्स वा कम्मस्स उदएण मोहणिज्ज उम्माय पाउणेज्जा, से तेणट्ठेण जाव उदएण ।

[२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि नारको के दो प्रकार के उन्माद कहे गए है, यक्षावेशरूप और मोहनीयकर्म के उदय से होने वाला ?

[२-२ उ.] गौतम ! यदि कोई देव, नैरयिक जीव पर अशुभ पुद्गलो का प्रक्षेप करता है, तो उन अशुभ पुद्गलो के प्रक्षेप से वह नैरयिक जीव यक्षावेशरूप उन्माद को प्राप्त होता है और मोहनीय

कर्म के उदय से मोहनीयकर्मजन्य उन्माद को प्राप्त होता है। इस कारण, हे गौतम! दो प्रकार का उन्माद कहा गया है, यावत् मोहनीयकर्मोदय से होने वाला उन्माद।

३. असुरकुमाराण भंते! कतिविधे उम्मादे पन्नत्ते ?

गोयमा! दुविहे उम्माए पन्नत्ते। एवं जहेव नेरइयाणं, नवरं—देवे वा से महिड्डियतराए असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा, से णं तेसिं असुभाणं पोग्गलाणं पक्खिवणयाए जक्खाएसं उम्मादं पाउणेज्जा, मोहणिज्जस्स वा०। सेसं तं चेव। से तेणट्ठेणं जाव उदएणं।

[३ प्र] भगवन्! असुरकुमारो मे कितने प्रकार का उन्माद कहा गया है ?

[३ उ] गौतम! नैरयिको के समान उनमे भी दो प्रकार का उन्माद कहा गया है। विशेषता (अन्तर) यह है कि उनकी अपेक्षा महर्द्धिक देव, उन असुरकुमारो पर अशुभ पुद्गलो का प्रक्षेप करता है और वह उन अशुभ पुद्गलो के प्रक्षेप से यक्षावेशरूप उन्माद को प्राप्त हो जाता है तथा मोहनीय-कर्म के उदय से मोहनीयकर्मजन्य उन्माद को प्राप्त होता है। शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

४. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[४] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो (तक के उन्माद के विषय मे समझना चाहिए।)

५. पुढविकाइयाणं जाव मणुस्साणं, एतेसिं जहा नेरइयाणं।

[५] पृथ्वीकायिको से लेकर यावत् मनुष्यो तक नैरयिको के समान कहना चाहिए।

६. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं।

[६] वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्कदेव और वैमानिकदेवो (के उन्माद) के विषय मे भी असुरकुमारो के समान कहना चाहिए।

विवेचन—उन्माद : प्रकार और कारण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू १-७ तक) मे उन्माद के दो प्रकार (यक्षावेश जन्य और मोहनीयजन्य) बता कर, नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चौवीस दण्डकवर्त्ती जीवो मे इन दोनो प्रकार के उन्मादो का अस्तित्व बताया है। यक्षावेशरूप उन्माद के कारण मे थोडा-थोडा अन्तर है। वह यह है कि चार प्रकार के देवो को छोड कर नैरयिको, पृथ्वीकायादि तिर्यञ्चो और मनुष्यो पर कोई देव अशुभ पुद्गलो का प्रक्षेप करता है, तब वे यक्षावेश-उन्मादग्रस्त होते है, जबकि चारो प्रकार के देवो पर कोई उनसे भी महर्द्धिक देव अशुभ पुद्गल-प्रक्षेप करता है तो वे यक्षावेशरूप उन्माद से ग्रस्त होते हैं।[1]

उन्माद का स्वरूप—उन्मत्तता को उन्माद कहते है, अर्थात् जिससे स्पष्ट या शुद्ध चेतना (विवेकज्ञान) लुप्त हो जाए, उसे उन्माद कहते है।

यक्षावेश-उन्माद का लक्षण—शरीर मे भूत, पिशाच, यक्ष आदि देवविशेष के प्रवेश करने से जो उन्माद है, वह यक्षावेश-उन्माद है।[2]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा २, पृष्ठ ६६१-६६२
२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३५

मोहनीयजन्य-उन्माद : स्वरूप और प्रकार—मोहनीयकर्म के उदय से आत्मा का पारमार्थिक (वास्तविक सत्-असत् का) विवेक नष्ट हो जाना, मोहनीय-उन्माद कहलाता है। इसके दो भेद है—मिथ्यात्वमोहनीय-उन्माद और चारित्रमोहनीय-उन्माद। मिथ्यात्वमोहनीय-उन्माद के प्रभाव से जीव अतत्त्व को तत्त्व और तत्त्व को अतत्त्व मानता है। चारित्रमोहनीय के उदय से जीव विपयादि के स्वरूप को जानता हुआ भी अज्ञानी के समान उसमे प्रवृत्ति करता है। अथवा चारित्रमोहनीय की वेद नामक प्रकृति के उदय से जीव हिताहित का भान भूल कर स्त्री आदि मे आसक्त हो जाता है, मोह के नशे मे पागल बन जाता है। वेदोदय काम-ज्वर मे उन्मत्त जीव की दस दशाएँ इस प्रकार है—

> चिंतेइ १ दट्ठुमिच्छइ २ दीह नीससइ ३ तह जरे ४ दाहे ५।
> भत्तअरोअग ६, मुच्छा ७ उन्माय ८ न याणई ९ मरणं १०॥ १॥

अर्थात्—तीव्र वेदोदय (काम) से उन्मत्त हुआ जीव (१) सर्व प्रथम विपयो, कामभोगो या स्त्रियों आदि का चिन्तन करता है, (२) फिर उन्हे देखने के लिए लालायित होता है, (३) न प्राप्त होने पर दीर्घ नि श्वास डालता है, (४) काम-ज्वर उत्पन्न हो जाता है, (५) दाहग्रस्त के समान पीडित हो जाता है, (६) खाने-पीने मे अरुचि हो जाती है, (७) कभी-कभी मूर्च्छा (बेहोशी) आ जाती है, (८) उन्मत्त होकर बडबडाने लगता है, (९) काम के आवेग मे उसका विवेकज्ञान लुप्त हो जाता है और अन्त मे (१०) कभी कभी मोहावेशवश मृत्यु भी हो जाती है।[1]

दोनो उन्मादो मे सुखवेद्य-सुखमोच्य कौन ?—मोहजन्य उन्माद की अपेक्षा यक्षाविष्ट उन्माद का सुखपूर्वक वेदन और विमोचन हो जाता है, जबकि मोहजन्य उन्माद दु खपूर्वक वेद्य एव मोच्य है। उसकी अपेक्षा दु.खपूर्वक वेदन एव विमोचन इसलिए होता है कि मोहनीय कर्म अनन्त ससार-परिभ्रमण एव परिवृद्धि का कारण है। ससार-परिभ्रमण रूप दु ख का वेदन कराना मोहनीय का स्वभाव है। यक्षावेश-उन्माद का सुखपूर्वक वेदन इसलिए होता है कि वह अधिक से अधिक एकभवाश्रयी होता है, जबकि मोहनीयजन्य उन्माद कई भवो तक चलता है। इसलिए उसका छुडाना सरल नही है। वह बडी कठिनाई से छुटाया जा सकता है। विद्या, मत्र, तत्र इष्ट देव या अन्य देवो द्वारा भी उसका छुटाया जाना अशक्य-सा है। यक्षावेश सुखविमोचनतर है। क्योकि यक्षाविष्ट पुरुष को खोडा—बेडी आदि बन्धन मे डाल देने पर वह वश मे हो जाता है, जबकि मिथ्यात्वमोहनीयजन्य उन्माद इस तरीके से कदापि मिटता नही। कहा भी है—

> सर्वज्ञ-मन्त्रवाद्यपि, यस्य न सर्वस्य निग्रहे शक्तः।
> मिथ्या-मोहोन्माद', स केन किल कथ्यता तुल्यः ? ॥

सर्वज्ञ या मत्रवादी महापुरुष भी मोहनीयजन्य उन्माद का निराकरण करने मे (मिथ्यात्वरूपी मोहोन्माद को दूर करने) मे समर्थ नही है। इसलिए बताइए कि मिथ्यात्व मोहनीयजन्य उन्माद की किसके साथ तुलना की जा सकती है। इसलिए दोनो उन्मादो मे से यक्षावेश रूप उन्माद का सुखपूर्वक वेदन-विमोचन हो सकता है।[2]

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६३५

२. (क) भगवती हिन्दीविवेचन भा ५, पृ २२१०-११ (ख) भगवती अ. वृ, पत्र ६३५

स्वाभाविकवृष्टि और देवकृतवृष्टि का सहेतुक निरूपण

७. अत्थि णं भंते ! पज्जन्ने कालवासी वुट्ठिकायं पकरेति ? हंता, अत्थि ।

[७ प्र] भगवन् ! कालवर्षी (काल—समय पर बरसने वाला) मेघ (पर्जन्य) वृष्टिकाय (जलसमूह) बरसाता है ?

[७ उ] हाँ, गौतम ! वह बरसाता है ।

८. जाहे ण भंते ! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकाय काउकामे भवति से कहमियाणि पकरेति ?

गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया अब्भतरपरिसाए देवे सद्दावेति, तए ण ते अब्भतरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा मज्झिमपरिसाए देवे सद्दावेंति, तए णं ते मज्झिमपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरपरिसाए देवे सद्दावेंति, तए णं ते बाहिरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरबाहिरगे देवे सद्दावेंति, तए ण ते बाहिरबाहिरगा देवा सद्दाविया समाणा आभियोगिए देवे सद्दावेंति, तए ण ते जाव सद्दाविया समाणा वुट्ठिकाइए देवे सद्दावेंति, तए णं ते वुट्ठिकाइया देवा सद्दाविया समाणा वुट्ठिकायं पकरेंति । एव खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकायं पकरेति ।

[८ प्र] भगवन् ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करने की इच्छा करता है, तब वह किस प्रकार वृष्टि करता है ?

[८ उ] गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करना चाहता है, तब (अपनी) आभ्यन्तर परिषद् के देवो को बुलाता है । बुलाए हुए वे आभ्यन्तर परिषद् के देव मध्यम परिषद् के देवों को बुलाते है । तत्पश्चात् बुलाये हुए वे मध्यम परिषद् के देव, बाह्य परिषद् के देवों को बुलाते हैं, तब बुलाये हुए वे बाह्य-परिषद् के देव बाह्य-बाह्य (बाहर-बाहर—बाह्य परिषद् से बाहर) के देवो को बुलाते है । फिर वे बाह्य-बाह्य देव आभियोगिक देवो को बुलाते है । इसके पश्चात् बुलाये हुए वे आभियोगिक देव वृष्टिकायिक देवो को बुलाते है और तब वे बुलाये हुए वृष्टिकायिक देव वृष्टि करते है । इस प्रकार हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करता है ।

९. अत्थि ण भंते ! असुरकुमारा वि देवा वुट्ठिकाय पकरेंति ?

हंता, अत्थि ।

[९ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमार देव भी वृष्टि करते है ?

[९ उ] हाँ, गौतम ! (वे भी वृष्टि) करते है ।

१०. किंपत्तिय णं भंते ! असुरकुमारा देवा वुट्ठिकायं पकरेंति ?

गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो एएसि णं जम्मणमहिमासु वा, निक्खमणमहिमासु वा, नाणुप्पायमहिमासु वा परिनिव्वाणमहिमासु वा एव खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा वुट्ठिकाय पकरेंति ।

[१० प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव किस प्रयोजन से वृष्टि करते है ?

[१० उ] गौतम ! जो ये अरिहन्त भगवान् होते है, उनके जन्म-महोत्सवो पर, निष्क्रमण-महोत्सवो पर, ज्ञान (केवलज्ञान) की उत्पत्ति के महोत्सवो पर, परिनिर्वाण-महोत्सवो पर, हे गौतम ! इन अवसरो पर असुरकुमार देव वृष्टि करते हैं ।

११. एव नागकुमारा वि ।

[११] इसी प्रकार नागकुमार देव भी वृष्टि करते है ।

१२. एव जाव थणियकुमारा ।

[१२] यावत् स्तनितकुमारो तक भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

१३. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिया एव चेव ।

[१३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

विवेचन—निष्कर्ष—प्रस्तुत सात सूत्रो मे मेघ द्वारा स्वाभाविक और भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो द्वारा बिना मौसम के तीर्थंकर भगवन्तो के पचकल्याणक महोत्सवो के निमित्त से स्वैच्छिक वृष्टि करने का वर्णन किया है । शक्रेन्द्र द्वारा वृष्टि करने की प्रक्रिया का भी वर्णन किया गया है ।

इस वर्णन पर से 'ईश्वर की इच्छा होती है, तब वह वर्षा वरसाता है,' इस मान्यता का निराकरण हो जाता है । तथ्य यह है कि वृष्टि या तो मेघ द्वारा मौसम पर स्वाभाविक होती है अथवा देवेच्छाकृत होती है । अथवा पर्जन्य इन्द्र को भी कहते है ।[1]

कठिनशब्दार्थ—**पज्जण्णे**—पर्जन्य—मेघ । **वुट्ठिकाय**—वृष्टिकाय—जलवृष्टिसमूह । **काउ-कामे**—करने का इच्छुक । **कहमियाणि**—किस प्रकार से । **किंपत्तिय**—किस निमित्त (प्रयोजन) से, किस लिए । **णाणुप्पायमहियासु**—केवलज्ञान की उत्पत्ति-महोत्सवो पर । **कालवासी**—काल-समय पर (प्रावृट्—वर्षा ऋतु मे) वरसने वाला । पर्जन्य का अर्थ इन्द्र करने पर वह भी तीर्थंकरजन्म-महोत्सव आदि पर वरसाता है ।[2]

ईशानदेवेन्द्रादि चतुर्विधदेवकृत तमस्काय का सहेतुक निरूपण

१४. जाहे ण भते ! ईसाणे देविंदे देवराया तमुकाय कातुकामे भवति से कहमियाणि पकरेति ?

गोयमा ! ताहे चेव ण ईसाणे देविंदे देवराया अब्भितरपरिसाए देवे सद्दावेति, तए ण ते अब्भितरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा एव जहेव सक्कस्स जाव तए ण ते आभियोगिया देवा सद्दाविया समाणा तमुकाइए देवे सद्दावेंति, तए ण ते तमुकाइया देवा सद्दाविया समाणा तमुकाय पकरेंति, एवं खलु गोयमा ! ईसाणे देविंदे देवराया तमुकाय पकरेति ।

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ६३५

२ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६३५-६३६

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२९२

[१४ प्र] भगवन्! जब देवेन्द्र देवराज ईशान तमस्काय करना चाहता है, तब किस प्रकार करता है?

[१४ उ] गौतम! जब देवेन्द्र देवराज ईशान तमस्काय करना चाहता है, तब आभ्यन्तर परिषद् के देवो को बुलाता है और फिर वे बुलाए हुए आभ्यन्तर परिषद् के देव मध्यम परिषद् के देवो को बुलाते है, इत्यादि सब वर्णन, यावत्—'तब बुलाये हुए वे आभियोगिक देव तमस्कायिक देवो को बुलाते है. और फिर वे समाहूत तमस्कायिक देव तमस्काय करते हैं, यहाँ तक शक्रेन्द्र (द्वारा वृष्टिकाय प्रक्रिया) के समान जानना चाहिए। हे गौतम! इस प्रकार देवेन्द्र देवराज ईशान तमस्काय करता है।

१५. अत्थि ण भते! असुरकुमारा वि देवा तमुकाय पकरेंति?

हता, अत्थि।

[१५ प्र] भगवन् क्या असुरकुमार देव भी तमस्काय करते है?

[१५ उ] हाँ, गौतम! (वे) करते है।

१६. किंपत्तिय ण भते! असुरकुमारा देवा तमुकाय पकरेंति?

गोयमा! किड्डारतिपत्तिय वा, पडिणीयविमोहणट्ठयाए वा, गुत्तिसारक्खणहेउं वा अप्पणो वा सरीरपच्छायणट्ठयाए, एवं खलु गोयमा! असुरकुमारा वि देवा तमुकायं पकरेंति।

[१६ प्र] भगवन्! असुरकुमार देव किस कारण से तमस्काय करते हैं?

[१६ उ] गौतम! क्रीडा और रति के निमित्त, शत्रु (विरोधी, प्रत्यनीक) को विमोहित करने के लिए, गोपनीय (छिपाने योग्य) धनादि की सुरक्षा के हेतु, अथवा अपने शरीर को प्रच्छादित करने (ढँकने) के लिए, हे गौतम! इन कारणो से असुरकुमार देव भी तमस्काय करते है।

१७. एव जाव वेमाणिया।

सेव भते! सेव भते! त्ति जाव विहरइ।

॥ चोद्दसमे सए : बितिओ उद्देसओ समत्तो ॥ १४-२ ॥

[१७] इसी प्रकार (शेष भवनपति देव, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा) यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन—देवेन्द्र ईशान कृत तमस्काय प्रक्रिया—यह प्रक्रिया भी शक्रेन्द्र-वृष्टिकाय की प्रक्रिया के समान है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ६६३

चतुर्विध देवकृत तमस्काय के चार कारण—तमस्काय का अर्थ है—अन्धकार-समूह। उसे करने के चार कारण ये हैं—(१) क्रीडा एवं रति के निमित्त (२) विरोधी को विमूढ बनाने के लिए (३) गोपनीय द्रव्यरक्षार्थ और (४) स्वशरीर-प्रच्छादनार्थ।[1]

कठिनशब्दार्थ—**तमुक्काय**—तमस्काय—अन्धकार समूह। **किड्डारतिपत्तिय**—क्रीडा और रति (भोगविलास) के निमित्त। **गुत्तिसारक्खणहेउ**—गुप्त निधि की सुरक्षा के लिए।[2]

॥ चौदहवां शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२९५

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३६

२ वही, पत्र ६३६

तइओ उद्देसओ : 'सरीरे'

तृतीय उद्देशक : महाशरीर द्वारा अनगार आदि का व्यतिक्रमण

द्वारगाथा—महक्काए सक्कारे सत्थेण वीवयंति देवा उ। वासं चेव य वाणा नेरइयाणं तु परिणामे ॥

[द्वारगाथार्थ—(१) महाकाय, (२) सत्कार, (३) देवो द्वारा व्यतिक्रमण, (४) शस्त्र द्वारा अवक्रमण, (५) नैरयिको द्वारा पुद्गल-परिणामानुभव, (६) वेदनापरिणामानुभव और (७) परिग्रह-सज्ञानुभव।]

भावितात्मा अनगार के मध्य में से होकर जाने का देव का सामर्थ्य-असामर्थ्य

१. [१] देवे ण भते ! महाकाये महासरीरे अणगारस्स भावियप्पणो मज्झमज्झेण वीयीवएज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतीवएज्जा।

[१-१ प्र] भगवन् ! क्या महाकाय और महाशरीर देव भावितात्मा अनगार के बीच मे होकर—[उसे पार करके] निकल जाता है ?

[१-१ उ] गौतम ! कोई निकल जाता है, और कोई नही।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति 'अत्थेगइए वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतीवएज्जा' ?

गोयमा ! देवा दुविहा पन्नत्ता, त जहा—मायीमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य, अमायीसम्मद्दिट्ठी-उववन्नगा य। तत्थ ण जे से मायीमिच्छद्दिट्ठीउववन्नए देवे से ण अणगार भावियप्पाणं पासति, पासित्ता नो वदति, नो नमसति, नो सक्कारेइ, नो सम्माणेति, नो कल्लाण मगल देवत जाव पज्जुवासति। से ण अणगारस्स भावियप्पणो मज्झमज्झेणं वीतीवएज्जा तत्थ णं जे से अमायीसम्म-द्दिट्ठिउववन्नए देवे, से ण अणगार भावियप्पाण पासति, पासित्ता वंदति नमसति जाव पज्जुवासइ, से ण अणगारस्स भावियप्पणो मज्झमज्झेणं नो वीयीवएज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव नो वीयीवएज्जा।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि कोई बीच मे अतिक्रमण करके चला जाता है, कोई नही जाता ?

[१-२ उ] गौतम ! देव दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक एव (२) अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। इन दोनो मे से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक देव होता है, वह भावितात्मा अनगार को देखता है, (किन्तु) देख कर न तो वन्दना-नमस्कार करता है, न सत्कार-सम्मान करता है और न ही कल्याणरूप, मगलरूप, देवतारूप एव ज्ञानवान् मानता है,

यावत् न पर्युपासना करता है। ऐसा वह देव भावितात्मा अनगार के बीच मे होकर चला जाता है, किन्तु जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक देव होता है, वह भावितात्मा अनगार को देखता है। देख कर वन्दना-नमस्कार, सत्कार-सम्मान करता है, यावत् (कल्याण, मगल, देव एव ज्ञानमय मानता है) तथा पर्युपासना करता है। ऐसा वह देव भावितात्मा अनगार के बीच मे होकर नही जाता।

२. असुरकुमारे णं भंते ! महाकाये महासरीरे०, एव चेव।

[२ प्र] भगवन् ! क्या महाकाय और महाशरीर असुरकुमार देव भावितात्मा अनगार के मध्य मे होकर जाता है ?

[२ उ] गौतम ! इस विषय मे पूर्ववत् समझना चाहिए।

३. एव देवदंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणिए।

[३] इसी प्रकार देव-दण्डक (भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और) यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

विवेचन—जो देव मायी-मिथ्यादृष्टि होता है, वह भावितात्मा अनगार के बीच मे होकर निकल जाता है, क्योकि वह अनगार को देख कर भी उसके प्रति भक्तिमान् नही होता है। इसलिए उसे वन्दनादि नही करता, न उसे कल्याण-मगलादि रूप मान कर उसकी उपासना करता है। इसके विपरीत अमायी-सम्यग्दृष्टि देव, भावितात्मा अनगार को देखते ही उसे वन्दनादि करता है, कल्याणादि रूप मान कर उसकी उपासना करता है। अत वह उसके बीच मे होकर नही जाता। ऐसा चारो ही प्रकार के देवो के लिए कहा गया है।[1]

देव-दण्डक ही क्यो ?—देव-दण्डक का आशय है—चारो जाति के देवो मे ही इस प्रकार की सम्भावना है। नैरयिको तथा पृथ्वीकायिकादि जीवो के पास ऐसे साधन तथा सामर्थ्य सम्भव नही है। इसलिए इस प्रसग मे देव-दण्डक ही कहा गया है।[2]

महाकाय, महाशरीर : दोनो मे अन्तर—यद्यपि काय और शरीर दोनो का अर्थ एक ही है, परन्तु यहाँ दोनो का अर्थ पृथक्-पृथक् है। यहाँ महाकाय का अर्थ है—प्रशस्तकाय वाला अथवा (बडे) विशाल निकाय-परिवार वाला। महाशरीर का अर्थ है—विशाल काय शरीर वाला। **वीइवएज्जा**—चला जाता है, लाघ जाता है।[3]

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे सत्कारादि विनय-प्ररूपणा

४. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं सक्कारे ति वा सम्माणे ति वा किइकम्मे ति वा अब्भुट्ठाणे इ वा अंजलिपग्गहे ति वा आसणाभिग्गहे ति वा आसणाणुप्पदाणे ति वा, एंतस्स पच्चुग्गच्छणया, ठियस्स पज्जुवासणया, गच्छंतस्स पडिसंसाहणया ? नो तिणट्ठे समट्ठे।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ६६३-६६४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३७

३ महान् वृहन् प्रशस्तो वा कायो—निकायो यस्य स महाकाय ।
महासरीरे त्ति वृहत्तनु ॥ —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३६

[४ प्र] भगवन्! क्या नारकजीवों में (परस्पर) सत्कार, सम्मान, कृतिकर्म (वन्दन), अभ्युत्थान, अजलिप्रग्रह, आसनाभिग्रह, आसनाऽनुप्रदान, अथवा नारक के सम्मुख (स्वागतार्थ) जाना, बैठे हुए आदरणीय व्यक्ति की सेवा (पर्युपासना) करना, उठ कर जाते हुए (सम्मान्य पुरुष) के पीछे (कुछ दूर तक) जाना इत्यादि विनय-भक्ति है?

[४ उ] गौतम! यह अर्थ (बात नैरयिकों में) समर्थ (शक्य, सम्भव) नहीं है।

५. अत्थि ण भंते! असुरकुमाराण सक्कारे ति वा सम्माणे ति वा जाव पडिससाहणता?
हता, अत्थि।

[५ प्र] भगवन्! असुरकुमारों में (परस्पर) सत्कार, सम्मान यावत् अनुगमन आदि विनयभक्ति होती है।

[५ उ] हाँ, गौतम! है।

६. एव जाव थणियकुमाराण।

[६] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों तक (के विषय में कहना चाहिए।)

७. पुढविकाइयाण जाव चउरिंदियाण, एएसिं जहा नेरइयाणं।

[७] जिस प्रकार नैरयिकों के लिए कहा है, उसी प्रकार पृथिवीकायादि से ले कर यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक जानना चाहिए।

८. अत्थि ण भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण सक्कारे ति वा जाव पडिससाधणया?
हता, अत्थि, नो चेव ण आसणाभिग्गहे ति वा, आसणाणुप्पयाणे ति वा।

[८ प्र] भगवन्! क्या पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों में सत्कार, सम्मान, यावत् अनुगमन आदि विनय है?

[८ उ] हाँ, गौतम! है, परन्तु इनमें आसनाभिग्रह या आसनाऽनुप्रदानरूप विनय नहीं है।

९. मणुस्साणं जाव वेमाणियाण जहा असुरकुमाराण।

[९] जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा, उसी प्रकार मनुष्यों से लेकर यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू ४ से ९ तक) में नैरयिकों से ले कर वैमानिक तक चौवीस दण्डकवर्ती जीवों में सत्कार-सम्मानादि विनयव्यवहार का निरूपण किया गया है। **निष्कर्ष**—नैरयिक जीवों, पच स्थावरों, तीन विकलेन्द्रिय जीवों में परस्पर सत्कार-सम्मानादि विनयव्यवहार नहीं है, क्योंकि उनके पास इस प्रकार के साधन नहीं है तथा वे सदैव दु खग्रस्त रहते हैं। तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवों में आसनाऽभिग्रह तथा आसनाऽनुप्रदानरूप विनयव्यवहार को छोड कर शेष सब विनयव्यवहार सम्भव है। क्योंकि पचेन्द्रियतिर्यंचों के व्यक्त भाषा तथा हाथ का अभाव होने से ये दोनों प्रकार के विनय सम्भव नहीं हैं। चारों प्रकार के देवों और मनुष्यों में सत्कार-सम्मानादि सभी प्रकार के विनयव्यवहार हैं।

कठिनशब्दार्थ—**सक्कारेइ**—सत्कार अर्थात् विनययोग्य के प्रति वन्दनादि द्वारा आदर करना, अथवा उत्तम वस्त्रादिप्रदान द्वारा सत्कार करना। **सम्माणेइ**—सम्मान—तथाविध बहुमान करना।

किइकम्मेइ—कृतिकर्म—वन्दन करना अथवा उनके आदेशानुसार कार्य करना। अब्भुट्ठाणेइ—अभ्युत्थान—आदरणीय व्यक्ति को देखते ही आदर देने के लिए आसन छोड कर खडे हो जाना। अंजलिपग्गहे—दोनो हाथो को जोडना, करबद्ध होना। आसणाभिग्गहे—आसन लाकर देना और विराजने के लिए आदरपूर्वक कहना। आसणाणुप्पदाणे—आसनाऽनुप्रदान—आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा कर बिछाना। एतस्स पच्चुग्गच्छणया—आते हुए (सम्मान्य) पुरुष के सम्मुख जाना। ठियस्स पज्जुवासणया—बैठे हुए आदणीय पुरुष की पर्युपासना करना। गच्छंतस्स पडिसंसाहणया—जब आदरणीय व्यक्ति उठ कर जाने लगे तब कुछ दूर तक उसके पीछे जाना।

अल्पर्द्धिक-महर्द्धिक-समर्द्धिक देव-देवियो के मध्य में से व्यतिक्रमनिरूपण

१०. अप्पिड्डिए ण भंते! देवे महिड्डियस्स देवस्स मज्झमज्झेणं वीतीवएज्जा?

नो तिणट्ठे समट्ठे।

[१० प्र] भगवन्! अल्प ऋद्धि वाला देव, क्या महर्द्धिक देव के मध्य मे हो कर जा सकता है?

[१० उ] गौतम! यह अर्थ (बात) शक्य नही है।

११. समिड्डिए ण भंते! देवे समिड्डियस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा?

णो तिणट्ठे समट्ठे, पमत्तं पुण वीतीवएज्जा।

[११ प्र] भगवन्! समर्द्धिक (समान ऋद्धि वाला) देव, सम ऋद्धि वाले देव के मध्य मे मे होकर जा सकता है?

[११ उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, (किन्तु यदि समान ऋद्धि वाला देव) प्रमत्त (असावधान) हो तो (दूसरा समर्द्धिक देव उसके मध्य मे से) जा सकता है।

१२. से णं भंते! किं सत्थेण अवक्कमित्ता पभू, अणवक्कमित्ता पभू?

गोयमा! अवक्कमित्ता पभू, नो अणवक्कमित्ता पभू।

[१२ प्र] भगवन्! मध्य मे होकर जाने वाला देव, शस्त्र का प्रहार करके जा सकता है या विना प्रहार किये ही जा सकता है?

[१२ उ] गौतम! वह शस्त्राक्रमण करके जा सकता है, विना शस्त्राक्रमण किये नही जा सकता।

१३. से ण भंते! किं पुव्वि सत्थेण अवक्कमित्ता पच्छा वीतीवएज्जा, पुव्वि वीतीवतित्ता पच्छा सत्थेण अवक्कमेज्जा?

एवं एएणं अभिलावेणं जहा दसमसए आतिड्डीउद्देसए (स० १० उ० ३ सु० ६-१७) तहेव निरवसेसं चत्तारि दंडगा भाणितव्वा जाव महिड्डीया वेमाणिणी अप्पिड्डियाए वेमाणिणीए।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३७
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २२९८

[१३ प्र] भगवन्! वह देव, पहले शस्त्र का आक्रमण करके पीछे जाता है, अथवा पहले जा कर तत्पश्चात् शस्त्र से आक्रमण करता है?

[१३ उ] गौतम! पहले शस्त्र का प्रहार करके फिर जाता है, किन्तु पहले जा कर फिर शस्त्र-प्रहार करता है, ऐसा नही होता। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा दशवे शतक के (तीसरे) 'आइड्ढिय' उद्देशक (सू ६ से १७ तक) के अनुसार समग्र रूप से चारो दण्डक, यावत् महाऋद्धि वाली वैमानिक देवी, अल्पऋद्धि वाली वैमानिक देवी के मध्य मे से होकर जा (निकल) सकती है, (यहाँ तक) कहना चाहिए।

विवेचन—चार दण्डक, तीन आलापक और निष्कर्ष—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १० से १३ तक) मे चार दण्डको मे प्रत्येक मे तीन-तीन आलापक कहे गए है। **चार दण्डक ये हैं**—(१) देव और देव, (२) देव और देवी, (३) देवी और देव और (४) देवी और देवी।[1] इन चारो दण्डको के प्रत्येक के तीन आलापक यो है—(१) **अल्पर्द्धिक और महर्द्धिक**, प्रथम आलापक, (२) **समर्द्धिक और असमर्द्धिक**, द्वितीय आलापक तथा (३) **महर्द्धिक और अल्पर्द्धिक** तृतीय आलापक, जो मूलपाठ मे साक्षात् नही कहा गया है, उसके लिए दशवे शतक का अतिदेश किया गया है। **द्वितीय अलापक के अन्त मे सूत्रांश** इस प्रकार कहना चाहिए—"पहले शस्त्र द्वारा आक्रमण करके पीछे जाता है, किन्तु पहले जाकर बाद मे शस्त्र द्वारा आक्रमण नही करता।"

तृतीय आलापक का कथन इस प्रकार—

[प्र] भगवन्! महर्द्धिक देव, अल्पर्द्धिक देव के मध्य मे हो कर जा सकता है?

[उ] हाँ, गौतम! जा सकता है।

[प्र] भगवन्! महर्द्धिक देव, शस्त्राक्रमण करके जा सकता है या शस्त्राक्रमण किये विना ही जा सकता है?

[उ] गौतम! शस्त्राक्रमण करके भी जा सकता है और शस्त्राक्रमण किये विना भी जा सकता है।

[प्र] भगवन्! पहले शस्त्राक्रमण करके पीछे जाता है या पहले जा कर बाद मे शस्त्राक्रमण करता है?

[उ] गौतम! वह पहले शस्त्राक्रमण करके पीछे भी जा सकता है अथवा पहले जा कर बाद मे भी शस्त्राक्रमण कर सकता है।[2]

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ६३७

२ (क) वही, अ वृत्ति, पत्र ६३७

(ख) भगवती श १०, उ ३, सूत्र ६-१७

(ग) द्वितीयालापक का सूत्रशेप—'गोयमा! पुव्वि सत्थेण अक्कमित्ता वीईवएज्जा, नो पुव्वि वीईवइत्ता पच्छा सत्थेण अक्कमिज्जा।'—भगवती श १०, उ ३ सू ६-१७

(घ) तृतीय महर्द्धिक-अल्पर्द्धिक-आलापक—'महड्ढिए ण भते! देवे अप्पड्ढियस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीईवएज्जा?'' हता, वीईवएज्जा। 'से ण भते! किं सत्थेण अक्कमित्ता पभू अणक्कमित्ता पभू?' 'गोयमा! अक्कमित्ता वि पभू, अणक्कमित्ता वि पभू। 'से ण भते! किं पुव्वि सत्थेण अक्कमित्ता पच्छा वीइवएज्जा, पुव्वि वीइवएज्जा, पच्छा सत्थेण अक्कमेज्जा?' 'गोयमा! पुव्वि वा सत्थेण अक्कमित्ता पच्छा वीइवएज्जा, पुव्वि वा वीइवइत्ता पच्छा सत्थेण अक्कमिज्जा।'—भगवती श १० उ ३, सू ६-१७

जीवाभिगमसूत्रातिदेशपूर्वक नैरयिको के द्वारा बीस प्रकार के परिणामानुभव का प्रतिपादन

१४. रतणप्पभापुढविनेरइया ण भते । केरिसय पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरति ?
गोयमा ! अणिट्ठ जाव अमणाम ।

[१४ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलपरिणामो का अनुभव करते रहते है ?

[१४ उ] गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम (मन के प्रतिकूल पुद्गलपरिणाम) का अनुभव करते रहते है।

१५ एव जाव अहेसत्तमापुढविनेरइया ।

[१५] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको तक कहना चाहिए ।

१६ एव वेदणापरिणाम ।

[१६] इसी प्रकार वेदना-परिणाम का भी (अनुभव करते है ।)

१७ एवं जहा जीवाभिगमे बितिए नेरइयउद्देसए, जाव अहेसत्तमापुढविनेरइया ण भते ! केरिसय परिग्गहसण्णापरिणाम पच्चणुभवमाणा विहरति ?

गोयमा ! अणिट्ठ जाव अमणाम ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ चोद्दसमे सए तइओ उद्देसओ समत्तो ॥ १४-३ ॥

[१७] इसी प्रकार जीवाभिगमसूत्र (की तृतीय प्रतिपत्ति) के द्वितीय नैरयिक उद्देशक मे जैसे कहा है, वैसे यहाँ भी वे समग्र आलापक कहने चाहिए, यावत्—

[प्र] भगवन् ! अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक, किस प्रकार के परिग्रहसज्ञा-परिणाम का अनुभव करते रहते है ?

[उ.] गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम परिग्रहसज्ञा-परिणाम का अनुभव करते है, (यहाँ तक समझना चाहिए ।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १४ से १७ तक) मे जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक सातो नरकपृथ्वियो के नैरयिको द्वारा पुद्गलपरिणाम, वेदनापरिणाम आदि बीस परिणाम-द्वारो मे

विविध प्रकार के अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ परिणामो के अनुभव का प्रतिपादन किया गया है ।[1]

दस प्रकार की वेदनाओ का परिणामानुभव—नैरयिक जीव अशुभतम पुद्गल-परिणामो का अनुभव करने के उपरात शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, खुजली, परतत्रता, भय, शोक, जरा और व्याधि, इन १० प्रकार की वेदनाओ का भी अनिष्टतम परिणामानुभव करते है ।[2]

।। चौदहवां शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ पोग्गलपरिणाम १ वेयणाइ २ लेसाइ ३ नाम-गोए य ४ ।
अरई ५ भए ६ य सोगे ७ खुहा ८ पिवासा ९ य वाही य १० ।।१।।
उस्सासे ११ अणुतावे १२ कोहे १३ माणे १४ य माय १५ लोभे य १६ ।
चत्तारि य सन्नाओ २० नेरइयाण परीणामो ।। २ ।। —जीवा प्रति ३ उ २ पत्र १०९-२७

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २२०३

चउत्थो उद्देसओ : 'पोग्गल'

चतुर्थ उद्देशक : पुद्गल (आदि के परिणाम)

पोग्गल १ खंधे २ जीवे ३ परमाणु ४ सासए य ५ चरमे य ।
दुविहे खलु परिणामे, अजीवाण य जीवाण ॥६॥

[उद्देशक-प्रतिपाद्य संग्रह गाथार्थ]—(१) पुद्गल, (२) स्कन्ध, (३) जीव, (४) परमाणु, (५) शाश्वत, (६) और अन्त मे—द्विविध परिणाम—जीवपरिणाम और अजीवपरिणाम, ये छह प्रतिपाद्य-विषय चतुर्थ उद्देशक मे है ।

त्रिकालवर्ती विविधस्पर्शादिपरिणत पुद्गल की वर्णादि परिणाम-प्ररूपणा

१. एस णं भंते ! पोग्गले तीतमणंत सासय समय समय लुक्खी, समय अलुक्खी, समयं लुक्खी वा अलुक्खी वा, पुव्वि च ण करणेण अणेगवण्ण अणेगरूव परिणाम परिणमइ, अह से परिणामे निज्जिण्णे भवति तओ पच्छा एगवण्णे एगरूवे सिया ?

हंता, गोयमा ! एस ण पोग्गले तीत०, त चेव जाव एगरूवे सिया ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या यह पुद्गल (परमाणु या स्कन्ध) अनन्त, अपरिमित और शाश्वत अतीतकाल मे एक समय तक रूक्ष स्पर्श वाला रहा, एक समय तक अरूक्ष (स्निग्ध) स्पर्श वाला और एक समय तक रूक्ष और स्निग्ध दोनो प्रकार के स्पर्श वाला रहा ? (तथा) पहले करण (अर्थात् प्रयोग-करण और विस्रसाकरण) के द्वारा (क्या यही पुद्गल) अनेक वर्ण और अनेक रूप वाले परिणाम से परिणत हुआ और उसके बाद उस अनेक वर्णादि परिणाम के क्षीण (निर्जीर्ण) होने पर वह एक वर्ण और एक रूप वाला भी हुआ था ?

[१ उ] हां, गौतम ! यह पुद्गल ... अतीत काल मे ... इत्यादि सर्वकथन, यावत्—'एक रूप वाला भी हुआ था', (यहाँ तक कहना चाहिए) ।

२. एस ण भंते ! पोग्गले पडुप्पन्न सासय समय० ?

एव चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! यह पुद्गल (परमाणु या स्कन्ध) शाश्वत वर्तमानकाल मे एक समय तक ... ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! पूर्वोक्त कथनानुसार जानना चाहिए ।

३. एव अणागयमणत पि ।

[३] इसी प्रकार अनन्त और शाश्वत अनागत काल मे एक समय तक, (इत्यादि प्रश्नोत्तर भी पूर्ववत् जानना चाहिए ।)

४. एस णं भंते ! खधे तीतमणंतं० ?

एव चेव खधे वि जहा पोग्गले ।

[४ प्र] भगवन् ! यह स्कन्ध अनन्त शाश्वत अतीत, (वर्तमान और अनागत) काल मे, एक समय तक, इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ।

[४ उ] गौतम ! जिस प्रकार पुद्गल के विषय मे कहा था, उसी प्रकार स्कन्ध के विषय मे कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो मे पुद्गल और स्कन्ध के भूत-वर्तमान-भविष्य मे एक समय तक रूक्ष-स्निग्धादि स्पर्श वाला था, वही एक समय बाद स्निग्ध और रूक्ष परिवर्तन वाला तथा जो एक समय अनेक वर्णादिरूप था, वह एकवर्णादि रूप हो जाता है ।

कठिनशब्दार्थ—**लुक्खी**—रूक्ष स्पर्श वाला । **अलुक्खी**—अरूक्ष—स्निग्धस्पर्श वाला । **तीयमणत**—अनन्त अतीत । **सासय**—शाश्वत, अक्षय । **पडुप्पण्ण**—प्रत्युत्पन्न-वर्तमान ।[1]

पुद्गल अर्थ और परिणाम-परिवर्तन—पुद्गल शब्द से यहाँ दो अर्थ लिये जा सकते है—परमाणु और स्कन्ध । परमाणु मे एक समय मे रूक्षस्पर्श पाया जाता है तो दूसरे समय मे स्निग्ध हो सकता है । द्वचणुक आदि स्कन्ध मे तो एक ही समय मे स्निग्ध और रूक्ष दोनो स्पर्श पाए जा सकते है । क्योकि उसका एक देश रूक्ष और एक देश स्निग्ध हो सकता है । वह अनेक वर्णादि (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) परिणाम मे परिणत होता है, वही फिर एक वर्णादि मे परिणत हो सकता है । अर्थात् वह एक वर्णादि-परिणाम के पहले प्रयोगकरण द्वारा या विश्रसाकरण द्वारा अनेक वर्णादिरूप पर्याय को प्राप्त होता है । परमाणु तो समयभेद से अनेक वर्णादिरूप मे परिणत होता है किन्तु स्कन्ध समय-भेद से तथा युगपत् अनेक-वर्णादिरूप से परिणत हो सकता है । उस परमाणु या स्कन्ध का जब अनेक वर्णादि-परिणाम क्षीण हो जाता है, तब वह एक वर्णादि पर्याय मे परिणत हो जाता है । यहाँ पुद्गल और स्कन्ध दोनो के विषय मे त्रिकालसम्बन्धी प्रश्न करके उत्तर दिया गया है ।[2]

वर्तमानकाल के साथ यहाँ अनन्त शब्द प्रयुक्त नही है, क्योकि वर्तमान मे अनन्तत्व असभव है ।

जीव के त्रिकालापेक्षी सुखी-दुःखी आदि विविध परिणाम

५. एस ण भंते ! जीवे तीतमणत सासय समय समयं दुक्खी, समय अदुक्खी, समय दुक्खी वा अदुक्खी वा ? पुव्वि च ण करणेण अणेगभावं अणेगभूतं परिणाम परिणमइ, अह से वेयणिज्जे निज्जिण्णे भवति ततो पच्छा एगभावे एगभूते सिया ?

हता, गोयमा ! एस ण जीवे जाव एगभूते सिया ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३८

२ (क) वही, अ वृत्ति, पत्र ६३९

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५

[५ प्र] भगवन् ! क्या यह जीव अनन्त और शाश्वत अतीत काल मे, एक समय मे दु खी, एक समय मे अदु खी—(सुखी) तथा एक समय मे दु खी और अदु खी (उभय रूप) था ? तथा पहले करण (प्रयोगकरण और विश्रसाकरण) द्वारा अनेकभाव वाले अनेकभूत (अनेकरूप) परिणाम से परिणत हुआ था ? और इसके वाद वेदनीयकर्म (और उपलक्षण मे ज्ञानावरणीयादि कर्मों) की निर्जरा होने पर जीव एकभाव वाला और एकरूप वाला था ?

[५ उ] हाँ, गौतम ! यह जीव यावत् एकरूप वाला था ।

६. एव पडुप्पन्न सासय समय ।

[६] इसी प्रकार शाश्वत वर्तमान काल के विषय मे भी समझना चाहिए ।

७ एव अणागयमणत सासय समय ।

[७] अनन्त अनागतकाल के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) समझना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ५-६-७) मे जीव के सुखी, दु खी आदि परिणामो के परिवर्तित होने के सम्बन्ध मे भूत, वर्तमान और भविष्यत्-कालसम्बन्धी प्रश्नोत्तर किये गए है ।

आशय—यह जीव अनन्त और शाश्वत अतीत काल मे, एक समय मे दु खी, एक समय मे अदु खी (सुखी) तथा एक समय मे दु खी और सुखी था । इस प्रकार अनेक परिणामो से परिणत होकर पुन किसी समय एकभावपरिणाम मे परिणत हो जाता है । एकभावपरिणाम मे परिणत होने से पूर्व काल-स्वभावादि कारण समूह से एव शुभाशुभकर्म-बन्ध की हेतुभूत क्रिया से, सुखदु खादिरूप अनेकभावरूप परिणाम से परिणत होता है । पुन दु खादि अनेकभावो के हेतुभूत वेदनीयकर्म और ज्ञानावरणीयादि कर्मों के क्षीण होने पर स्वाभाविकसुखरूप एकभाव से परिणत होता है ।[1]

परमाणुपुद्गल की शाश्वतता-अशाश्वतता एव चरमता-अचरमता का निरूपण

८. [१] परमाणुपोग्गले ण भते ! किं सासए, असासए ?

गोयमा ! सिय सासए, सिय असासए ।

[८-१ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल शाश्वत है या अशाश्वत ?

[८-१ उ] गौतम ! वह कथञ्चित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'सिय सासए, सिय असासए' ?

गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए, वण्णपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासए । से तेणट्ठेण जाव सिय असासए ।

[८-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि (परमाणुपुद्गल) कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है ?

[८-२ उ] गौतम ! द्रव्यार्थरूप से शाश्वत है और वर्ण (वर्ण, गन्ध, रस) यावत् स्पर्श-पर्यायो की अपेक्षा से अशाश्वत है । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि परमाणुपुद्गल कथचित् शाश्वत और कथचित् अशाश्वत है ।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६३९

९. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं चरिमे, अचरिमे ?

गोयमा ! दव्वादेसेणं नो चरिमे, अचरिमे, खेत्तादेसेण सिय चरिमे सिय अचरिमे; कालादेसेण सिय चरिमे, सिय अचरिमे; भावादेसेण सिय चरिमे, सिय अचरिमे।

[९ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल चरम है या अचरम ?

[९ उ] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा (द्रव्यादेश से) चरम नही, अचरम है, क्षेत्र की अपेक्षा (क्षेत्रादेश से) कथचित् चरम है और कथचित् अचरम है, काल की अपेक्षा (कालादेश से) कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है तथा भावादेश से भी कथचित् चरम है और कथचित अचरम है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से ८ वे सूत्र मे परमाणुपुद्गल की शाश्वतता-अशाश्वतता का और नौवे सूत्र मे उसकी चरमता-अचरमता का प्रतिपादन किया गया है।

परमाणुपुद्गल शाश्वत कैसे, अशाश्वत कैसे ?—परमाणुपुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से शाश्वत है, क्योकि स्कन्ध के साथ मिल जाने पर भी उसकी सत्ता नष्ट नही होती। उस समय वह 'प्रदेश' कहलाता है। किन्तु वर्णादि पर्यायो की अपेक्षा परमाणुपुद्गल अशाश्वत है, क्योकि पर्याये विनश्वर है, परिवर्तनशील हैं।[1]

चरम, अचरम की परिभाषा : परमाणु की अपेक्षा से—जो परमाणु विवक्षित परिणाम से रहित होकर पुन उस परिणाम को कदापि प्राप्त नही होता, वह परमाणु, उस परमाणु की अपेक्षा 'चरम' कहलाता है। जो परमाणु उस परिणाम को पुन प्राप्त होता है, वह उस अपेक्षा से 'अचरम' कहलाता है।[2]

परमाणुपुद्गल चरम कैसे, अचरम कैसे ?—**द्रव्य की अपेक्षा से**—परमाणु चरम नही, अचरम है, क्योकि परिणाम से रहित बना हुआ परमाणु सघात-परिणाम को प्राप्त होकर पुन कालान्तर मे परमाणु-परिणाम को प्राप्त होता है। **क्षेत्र की अपेक्षा से**—परमाणु कथचित् चरम और कथचित् अचरम है। जिस क्षेत्र मे किसी केवलज्ञानी ने केवलीसमुद्घात किया था, उस समय जो परमाणु वहाँ रहा हुआ था, वह समुद्घात-प्राप्त उक्त केवलज्ञानी के सम्बन्ध-विशेष से वह परमाणु पुन कदापि उस क्षेत्र को आश्रय नही करता, क्योकि वे समुद्घात-प्राप्त केवली निर्वाण को प्राप्त हो चुके है। वे अब उस क्षेत्र मे पुन कभी भी नही आयेगे। इसलिए उस क्षेत्र की अपेक्षा वह परमाणु 'चरम' कहलाता है। किन्तु विशेषणरहित क्षेत्र की अपेक्षा परमाणु फिर उस क्षेत्र मे अवगाढ होता है, इसलिए 'अचरम कहलाता है। **काल की अपेक्षा से**—परमाणुपुद्गल कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है। यथा—जिस प्रात काल आदि समय मे केवली ने समुद्घात किया था, उस काल मे जो परमाणु रहा हुआ था, वह परमाणु उस केवली-समुद्घात-विशिष्ट काल को प्राप्त नही कर सकता, क्योकि वे केवलज्ञानी मोक्ष चले गए। अत वे पुन कभी समुद्घात नही करेगे।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४०

२ (क) वही, अ वृत्ति, पत्र ६४०

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २३०८

इसलिए उस अपेक्षा काल से परमाणु चरम है और विशेषण-रहित काल की अपेक्षा परमाणु अचरम है। **भाव की अपेक्षा**—परमाणु चरम भी है और अचरम भी। यथा—केवली-समुद्घात के समय जो परमाणु वर्णादि भावविशेष को प्राप्त हुआ था, वह परमाणु विवक्षित केवली-समुद्घात विशिष्ट वर्णादि परिणाम की अपेक्षा चरम है, क्योंकि केवलज्ञानी के निर्वाण प्राप्त कर लेने से वह परमाणु पुनः उस विशिष्ट परिणाम को प्राप्त नहीं होता। विशेषणरहित भाव की अपेक्षा वह अचरम है। यह व्याख्या चूर्णिकार के मतानुसार की गई है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**दव्वट्ठयाए**—द्रव्य की अपेक्षा। **वण्णपज्जवेहिं**—वर्ण के पर्यायों से। **दव्वादेसेणं**—द्रव्यादेश (द्रव्य की अपेक्षा से)। **चरिमे**—अन्तिम। **अचरिमे**—अचरम।[2]

परिणाम : प्रज्ञापनाऽतिदेशपूर्वक भेद-प्रभेद-निरूपण

१०. कतिविधे णं भंते ! परिणामे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे परिणामे पन्नत्ते, तं जहा—जीवपरिणामे य, अजीवपरिणामे य। एवं परिणामपदं निरवसेसं भाणियव्वं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति।

॥ चोद्दसमे सए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥१४-४॥

[१० प्र.] भगवन् ! परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१० उ.] गौतम ! परिणाम दो प्रकार का कहा गया है। यथा—जीवपरिणाम और अजीव-परिणाम।

इस प्रकार यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का समग्र परिणामपद (तेरहवाँ पद) कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है--यों कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन—परिणाम : लक्षण और भेद-प्रभेद—द्रव्य का सर्वथा एक रूप में नहीं रहना अर्थात् द्रव्य की अवस्थान्तर-प्राप्ति ही परिणाम है।[3]

परिणाम के मुख्यतया दो भेद हैं—जीवपरिणाम और अजीवपरिणाम।

जीवपरिणाम के दस भेद हैं—[१] गति, (२) इन्द्रिय, (३) कषाय, (४) लेश्या, (५) योग, (६) उपयोग, (७) ज्ञान, (८) दर्शन, (९) चारित्र और (१०) वेद। **अजीव-परिणाम के भी १० भेद** हैं—(१) बन्धन, (२) गति, (३) संस्थान, (४) भेद, (५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) अगुरुलघु और (१०) शब्दपरिणाम।[4]

चौदहवाँ शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४०
 (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २३०८

२ वही (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २३०८

३ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४१

४ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४१
 (ख) प्रज्ञापनासूत्र (पण्णवणासुत्त) भा. १ सू. ९२५-५७ (महावीर विद्यालय प्रकाशन) पृ. २२९ से २३३ तक

पंचमो उद्देसओ : 'अगणी'

पंचम उद्देशक : अग्नि

स गाहा—नेरइय अगणिमज्झे दस ठाणा तिरिय पोग्गले देवे ।
पव्वय भित्ती उल्लंघणा य पल्लघणा चेव ।।

[उद्देशक-विषयक सग्रहगाथा का अर्थ—पचम उद्देशक मे मुख्य प्रतिपाद्य विषय तीन है—(१) नैरयिक आदि (से लेकर वैमानिक पर्यन्त) का अग्नि मे से होकर गमन, (२) चौवीस दण्डको मे दस स्थानो के इष्टानिष्ट अनुभव और (३) देव द्वारा बाह्यपुद्गलग्रहणपूर्वक पर्वतादि के उल्लघन-प्रलघन का सामर्थ्य ।][1]

चौवीस दण्डकों की अग्नि मे होकर गमनविषयक-प्ररूपणा

१. [१] नेरइए ण भते ! अगणिकायस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगतिए वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतीवएज्जा ।

[१-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव अग्निकाय के मध्य मे हो कर जा सकता है ?

[१-१ उ] गौतम ! कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नही जा सकता ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'अत्थेगतिए वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतीवएज्जा ?

गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, त जहा—विग्गहगतिसमावन्नगा य अविग्गहगतिसमावन्नगा य । तत्थ ण जे से विग्गहगतिसमावन्नए नेरतिए से णं अगणिकायस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा । से ण तत्थ झियाएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

नो खलु तत्थ सत्थ कमति । तत्थ ण जे से अविग्गहगतिसमावन्नए नेरइए से ण अगणिकायस्स मज्झमज्झेण णो वीतीवएज्जा । से तेणट्ठेणं जाव नो वीतीवएज्जा ।

[१-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहते है कि कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नही जा सकता ?

[१-२ उ] गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये है । यथा—विग्रहगति-समापन्नक और अविग्रहगति-समापन्नक । उनमे से जो विग्रहगति-समापन्नक नैरयिक है, वे अग्निकाय के मध्य मे होकर जा सकते हैं ।

[प्र] भगवन् ! क्या (वे अग्नि के मध्य मे से हो कर जाते हुए) अग्नि से जल जाते है ?

---

१ [ ] यह उद्देशकार्थ-संग्रहगाथा वृत्ति मे है । अ वृ ६४२

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि उन पर अग्निरूप शस्त्र नही चल सकता अर्थात् अग्नि का असर नही होता ।

उनमे से जो अविग्रहगतिसमापन्नक नैरयिक है वे अग्निकाय के मध्य मे होकर नही जा सकते, (क्योकि नरक मे बादर अग्नि नही होती) । इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नही जा सकता ।

२. [१] असुरकुमारे ण भंते अगणिकायस्स० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतीवएज्जा ।

[२-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव अग्निकाय के मध्य मे हो कर जा सकते है ?

[२-१ उ] गौतम ! कोई जा सकता है और कोई नही जा सकता ।

[२] से केणट्ठेण जाव नो वीतीवएज्जा ?

गोयमा ! असुरकुमारा दुविहा पन्नत्ता, त जहा—विग्गहगतिसमावन्नगा य अविग्गहगतिसमावन्नगा य । तत्थ ण जे से विग्गहगतिसमावन्नए असुरकुमारे से ण एव जहेव नेरतिए जाव कमति ।

तत्थ ण जे से अविग्गहगतिसमावन्नए असुरकुमारे से ण अत्थेगतिए अगणिकायस्स मज्झमज्झेणं वीतीवएज्जा, अत्थेगइए नो वीइवएज्जा ।

जे ण वीतीवएज्जा से ण तत्थ झियाएज्जा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

नो खलु तत्थ सत्थ कमति । से तेणट्ठेण० ।

[२-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कोई असुरकुमार अग्नि के मध्य मे हो कर जा सकता है, और कोई नही जा सकता ?

[२-२ उ] गौतम ! असुरकुमार दो प्रकार के कहे गए है । यथा—विग्रहगति-समापन्नक और अविग्रहगति-समापन्नक । उनमे से जो विग्रहगति-समापन्नक असुरकुमार है, वे नैरयिको के समान हैं, यावत् उन पर अग्नि-शस्त्र असर नही कर सकता । उनमे जो अविग्रहगति-समापन्नक असुरकुमार है, उनमे से कोई अग्नि के मध्य मे हो कर जा सकता है और कोई नही जा सकता ।

[प्र] जो (असुरकुमार) अग्नि के मध्य मे हो कर जाता है, क्या वह जल जाता है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि उस पर अग्नि आदि शस्त्र का असर नही होता । इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कोई असुरकुमार जा सकता है और कोई नहीं जा सकता ।

३. एव जाव थणियकुमारे ।

[३] इसी प्रकार (नागकुमार से लेकर) यावत् स्तनितकुमार देव (तक कहना चाहिए ।)

४. एगिंदिया जहा नेरइया ।

[४] एकेन्द्रियो के विषय मे नैरयिको के समान कहना चाहिए ।

५ वेइंदिया णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झमज्झेणं० ?

जहा असुरकुमारे तहा वेइंदिए वि। नवर जे णं वीतीवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा ? हंता, झियाएज्जा। सेसं तं चेव।

[५ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव अग्निकाय के मध्य मे से हो कर जा सकते हैं ?

[५ उ] जिस प्रकार असुरकुमारो के विषय मे कहा उसी प्रकार द्वीन्द्रियो के विषय मे कहना चाहिए। परन्तु इतनी विशेषता है कि—

[प्र] भगवन् ! जो द्वीन्द्रिय जीव अग्नि के बीच मे हो कर जाते हैं, वे जल जाते है ?

[उ] हाँ, वे जल जाते हैं। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

६. एवं जाव चउरिंदिए।

[६] इसी प्रकार (का कथन) यावत् चतुरिन्द्रिय तक (करना चाहिए।)

७. [१] पंचिदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! अगणिकाय० पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगतिए वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा।

[७-१ प्र] भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय-तिर्यंग्योनिक जीव अग्नि के मध्य मे होकर जा सकते हैं ?

[७-१ उ] गौतम ! कोई जा सकता है और कोई नही जा सकता।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—विग्गहगतिसमावन्नगा य अविग्गहगतिसमावन्नगा य। विग्गहगतिसमावन्नए जहेव नेरइए जाव नो खलु तत्थ सत्थं कमइ। अविग्गहगइसमावन्नगा पचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—इड्डिप्पत्ता य अणिड्डिप्पत्ता य। तत्थ णं जे से इड्डिप्पत्ते पंचेंदियतिरिक्खजोणिए से णं अत्थेगतिए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतीवएज्जा।

जे णं वीतीवएज्जा से ण तत्थ झियाएज्जा ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

नो खलु तत्थ सत्थं कमइ। तत्थ णं जे से अणिड्डिप्पत्ते पंचेंदियतिरिक्खजोणिए से णं अत्थेगतिए अगणिकायस्स मज्झमज्झेणं वीतीवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा।

जे णं वीतीवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा ?

हंता, झियाएज्जा ! से तेणट्ठेणं जाव नो वीतीवएज्जा।

[७-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है ?

[७-२ उ] गौतम ! पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जीव दो प्रकार के हैं यथा—विग्रहगति-समापन्नक और अविग्रहगति-समापन्नक। जो विग्रहगति-समापन्नक पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक हैं, उनका कथन नैरयिक के समान जानना चाहिए, यावत् उन पर शस्त्र असर नही करता। अविग्रह-समापन्नक पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं—ऋद्धिप्राप्त और अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धि-अप्राप्त)। जो ऋद्धिप्राप्त, पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हैं, उनमे से कोई अग्नि के मध्य मे हो कर जाता है और कोई नही जाता।

[प्र.] जो अग्नि में हो कर जाता है, क्या वह जल जाता है ?

[उ.] यह अर्थ समर्थ नहीं, क्योंकि उस पर (अग्नि आदि) शस्त्र असर नहीं करता। परन्तु जो ऋद्धि-अप्राप्त पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हैं, उनमें से भी कोई अग्नि में हो कर जाता है और कोई नहीं जाता।

[प्र.] जो अग्नि में से हो कर जाता है, क्या वह जल जाता है ?

[उ.] हाँ, वह जल जाता है।

इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि कोई अग्नि में से हो कर जाता है और कोई नहीं जाता।

८. एवं मणूस्से वि।

[८] इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिए।

९. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिए जहा असुरकुमारे।

[९] वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकों के विषय में असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

विवेचन—विग्रहगति-समापन्नक और अविग्रह-गतिसमापन्नक—एक गति में दूसरी गति में जाते हुए जीव **विग्रहगति-समापन्नक** कहलाते हैं। वह जीव उस समय कार्मणशरीर से युक्त होता है और कार्मणशरीर सूक्ष्म होने से उस पर अग्नि आदि शस्त्र असर नहीं कर सकते। जो जीव उत्पत्तिक्षेत्र को प्राप्त हैं, वे **अविग्रहगति-समापन्नक** कहलाते हैं। अविग्रहगति-समापन्नक का अर्थ यहाँ 'ऋजुगति-प्राप्त' विवक्षित नहीं है, क्योंकि उसका यहाँ प्रसंग नहीं है। उत्पत्तिक्षेत्र को प्राप्त नैरयिक जीव, अग्निकाय के बीच में से होकर नहीं जाता, क्योंकि नरक में बादर अग्निकाय का अभाव है। मनुष्यक्षेत्र में ही बादर अग्निकाय होता है। उत्तराध्ययन आदि शास्त्रों में 'हुयासणे जलतंमि दड्ढ पुव्वो अणेगसो,' अर्थात् नारक जीव अनेक बार जलती आग में जला, इत्यादि वर्णन आया है, वहाँ अग्नि के सदृश कोई उष्णद्रव्य समझना चाहिए। सम्भव है, तेजोलेश्या द्रव्य की तरह का कोई तथाविध शक्तिशाली द्रव्य हो।

असुरकुमारादि भवनपति की अग्नि-प्रवेश-शक्ति—विग्रहगति-प्राप्त असुरकुमार का वर्णन विग्रहगतिप्राप्त नैरयिक के समान जानना चाहिए। अविग्रहगतिप्राप्त (उत्पत्ति क्षेत्र को प्राप्त) असुरकुमारादि जो मनुष्यलोक में आते हैं, वे यदि अग्नि के मध्य में होकर जाते हैं, तो जलते नहीं क्योंकि वैक्रिय शरीर अतिसूक्ष्म है और उनकी गति शीघ्रतम होती है। जो असुरकुमार आदि मनुष्यलोक में नहीं आते, वे अग्नि के मध्य में होकर नहीं जाते। शेष तीन जाति के देवों की भी अग्निप्रवेश-शक्ति उनके समान ही है।[1]

स्थावरजीवों की अग्निप्रवेश-शक्ति-अशक्ति—विग्रहगति-प्राप्त एकेन्द्रिय जीव अग्नि के बीच में होकर जा सकते हैं और वे सूक्ष्म होने से जलते नहीं हैं। अविग्रहगति-प्राप्त एकेन्द्रिय जीव अग्नि के बीच में होकर नहीं जाते, क्योंकि वे स्थावर हैं। अग्नि और वायु, जो गतित्रस हैं, वे अग्नि के

१. (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४२ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५ पृ. २३१५

बीच मे होकर जा सकते है, किन्तु यहाँ उनकी विवक्षा नही है। यहाँ तो स्थावरत्व की विवक्षा है। यद्यपि वायु आदि की प्रेरणा से पृथ्वी आदि का अग्नि के मध्य मे गमन सम्भव है, परन्तु यहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक गमन की विवक्षा की गई है। एकेन्द्रिय जीव स्थावर होने से स्वतन्त्रतापूर्वक अग्नि के मध्य मे होकर नही जा सकते।

पचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य की अग्निप्रवेश-शक्ति-अशक्ति—जो विग्रहगति-समापन्नक है, उनका वर्णन नैरयिक के समान है। किन्तु अविग्रहगति-समापन्न तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और मनुष्य, जो वैक्रियलब्धिसम्पन्न (ऋद्धि प्राप्त) है और मनुष्यलोकवर्ती है, वे मनुष्यलोक मे अग्नि का सद्भाव होने से उसके बीच मे होकर जा सकते हैं। जो मनुष्यक्षेत्र से बाहर के क्षेत्र मे है वे अग्नि मे से होकर नही जाते, क्योकि वहाँ अग्नि का अभाव है। जो ऋद्धि-अप्राप्त है, वे भी कोई-कोई (जादूगर आदि) अग्नि मे से होकर जाते है, कोई नही जाते, क्योकि उनके पास तथाविध सामग्री का अभाव है। किन्तु ऋद्धिप्राप्त तो अग्नि मे होकर जाने पर भी जलते नही, जबकि ऋद्धि-अप्राप्त जो अग्नि मे होकर जाते है, वे जल सकते है।[1]

कठिनशब्दार्थ—वीइवएज्जा—चला जाता है, लाघ जाता है। **झियाएज्जा**—जल जाता है। **इड्ढिपत्ता**—वैक्रियलब्धि-सम्पन्न। **कमइ**—जाता है, असर करता है, लगता है।[2]

चौवीस दण्डकों में शब्दादि दस स्थानो मे इष्टानिष्ट स्थानो के अनुभव की प्ररूपणा

१०. नेरतिया दस ठाणाइ पच्चणुभवमाणा विहरंति, त जहा—अणिट्ठा सद्दा, अणिट्ठा रूवा, जाव अणिट्ठा फासा, अणिट्ठा गती, अणिट्ठा ठिती, अणिट्ठे लायण्णे, अणिट्ठे जसोकित्ती, अणिट्ठे उट्ठाणकम्मबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमे।

[१०] नैरयिक जीव दस स्थानो का अनुभव करते रहते है। यथा—(१) अनिष्ट शब्द, (२) अनिष्ट रूप, (३) अनिष्ट गन्ध, (४) अनिष्ट रस, (५) अनिष्ट स्पर्श, (६) अनिष्ट गति, (७) अनिष्ट स्थिति, (८) अनिष्ट लावण्य, (९) अनिष्ट यश कीर्ति और (१०) अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार—पराक्रम।

११. असुरकुमारा दस ठाणाइ पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—इट्ठा सद्दा, इट्ठा रूवा जाव इट्ठे उट्ठाणकम्मबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमे।

[११] असुरकुमार दस स्थानो का अनुभव करते रहते है। यथा—इष्ट शब्द, इष्ट रूप यावत् इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम।

१२. एवं जाव थणियकुमारा।

[१२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए।

१३. पुढविकाइया छट्ठाणाइ पच्चणुभवमाणा विहरति, तं जहा—इट्ठाणिट्ठा फासा, इट्ठाणिट्ठा गती, एव जाव परक्कमे।

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३१५-१६ (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४२

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ. २३११

[१३] पृथ्वीकायिक जीव (इन दस स्थानों में से) छह स्थानों का अनुभव करते रहते हैं। यथा—(१) इष्ट-अनिष्ट स्पर्श (२) इष्ट-अनिष्ट गति, यावत् (३) इष्टानिष्ट स्थिति, (४) इष्टानिष्ट लावण्य, (५) इष्टानिष्ट यश कीर्ति और (६) इष्टानिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम।

१४. एवं जाव वणस्सइकाइया।

[१४] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक कहना चाहिए।

१५. बेइंदिया सत्तट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—इट्ठाणिट्ठा रसा, सेसं जहा एगिंदियाणं।

[१५] द्वीन्द्रिय जीव (दस में से) सात स्थानों का अनुभव करते रहते हैं। यथा—इष्टानिष्ट रस इत्यादि शेष एकेन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए।

१६. तेइंदिया णं अट्ठट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—इट्ठाणिट्ठा गंधा, सेसं जहा बेइंदियाणं।

[१६] त्रीन्द्रिय जीव (दस में से) आठ स्थानों का अनुभव करते हैं। यथा—इष्टानिष्ट गन्ध इत्यादि शेष द्वीन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए।

१७ चउरिंदिया नवट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—इट्ठाणिट्ठा रूवा, सेसं जहा तेइंदियाणं।

[१७] चतुरिन्द्रिय जीव (दस में से) नौ स्थानों का अनुभव करते हैं। यथा—इष्टानिष्ट रूप इत्यादि शेष त्रीन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए।

१८ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दसट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—इट्ठाणिट्ठा सद्दा जाव परक्कमे।

[१८] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव दस स्थानों का अनुभव करते हैं। यथा—इष्टानिष्ट शब्द यावत् इष्टानिष्ट उत्थान—कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम।

१९. एवं मणुस्सा वि।

[१९] इसी प्रकार मनुष्यों के विषय में भी कहना चाहिए।

२०. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

[२०] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों तक असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

विवेचन—अनिष्ट, इष्टानिष्ट एवं इष्ट स्थानों के अधिकारी—प्रस्तुत सूत्रों में चौवीस दण्डकवर्ती जीवों में से अनिष्ट, इष्ट या इष्टानिष्ट शब्दादि स्थानों में से किनको कितने स्थानों का अनुभव होता है? इसका निरूपण किया गया है।

नैरयिको को दस अनिष्टस्थानो का अनुभव—नैरयिको को अनिष्ट शब्द आदि ५ इन्द्रिय-विषयो का अनुभव प्रतिक्षण होता रहता है। उनको अप्रशस्त विहायोगति या नरकगति रूप अनिष्ट गति होती है। नरक मे रहने रूप अथवा नरकायु रूप अनिष्ट स्थिति होती है। शरीर का बेडोल होना अनिष्ट लावण्य होता है। अपयश और अपकीर्ति के रूप मे नारको को अनिष्ट यश कीर्ति का अनुभव होता है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ नैरयिक जीवो का उत्थानादि वीर्य विशेष अनिष्ट—निन्दित होता है।[1]

देवो का दस इष्ट स्थानो का अनुभव—चारो जाति के देवो का इष्ट शब्द आदि दसो स्थानों का अनुभव होता है।

पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो एव मनुष्यो को दस इष्टानिष्ट स्थानो का अनुभव—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चो और मनुष्यो को इष्ट एव अनिष्ट दोनो प्रकार के दसो स्थानो का अनुभव होता है।[2]

एकेन्द्रिय जीवो को छह इष्टानिष्टस्थानो का अनुभव—एकेन्द्रिय जीवो को शब्द, रूप, रस और गन्ध का अनुभव नही होता क्योकि उन्हे श्रोत्रादि द्रव्य इन्द्रियाँ प्राप्त नही हैं। वे उपर्युक्त १० स्थानो मे से शेष ६ स्थानो का ही अनुभव करते हैं। वे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के क्षेत्र मे उत्पन्न हो सकते-हैं और उनके साता और असाता दोनो का उदय सम्भव है। इसलिए उनमे इष्ट और अनिष्ट दोनो प्रकार के स्पर्शादि होते है। यद्यपि एकेन्द्रिय जीव स्थावर हैं, इसलिए उनमे स्वाभाविक रूप से गमन-गति सम्भव नही है, तथापि उनमे परप्रेरित गति होती है। वह शुभा-शुभ रूप होने से इष्टानिष्ट गति कहलाती है। मणि मे इष्ट लावण्य होता है और पत्थर मे अनिष्ट लावण्य होता है। इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवो मे इष्टानिष्ट लावण्य होता है। स्थावर होने से एकेन्द्रिय जीवो मे उत्थानादि प्रकट रूप मे दिखाई नही देते, किन्तु सूक्ष्म रूप से उनमे उत्थानादि हैं। पूर्वभव मे अनुभव किये हुए उत्थानादि के सस्कार के कारण भी उनमे उत्थानादि होते हैं और वे इष्टानिष्ट होते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवो को क्रमश जिह्वा, नासिका और नेत्र इन्द्रिय मिल जाने से उन्हे क्रमश इष्टानिष्ट रस, गन्ध और रूप का अनुभव होता है।[3]

महर्द्धिक देव का तिर्यक्पर्वतादि-उल्लंघन-प्रलंघन-सामर्थ्य-असामर्थ्य

२१. देवे ण भते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू तिरियपव्वतं वा तिरियभित्ति वा उल्लघेत्तए वा पल्लघेत्तए वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये विना तिरछे पर्वत को या तिरछी भीत को एक बार उल्लघन करने अथवा बार-बार उल्लघन (प्रलघन) करने मे समर्थ है ?

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४३

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) पृ ६७०-६७१

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४३

२२. देवे ण भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू तिरियपव्वत जाव पल्लघेत्तए वा ?

हता, पभू ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ चोद्दसमे सए पचमो उद्देसओ समत्तो ॥ १४५ ॥

[२२ प्र] भगवन ! क्या महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके तिरछे पर्वत को या तिरछी भीत को (एक बार) उल्लघन एव (बार-बार) प्रलघन करने मे समर्थ है ?

[२२ उ.] हाँ, समर्थ है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है—यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—महर्द्धिक देव का उल्लघन-सामर्थ्य—बाह्य (भवधारणीय शरीर से अतिरिक्त) पुद्गलो को ग्रहण किये बिना कोई भी महर्द्धिक देव मार्ग मे आने वाले तिरछे पर्वत या पर्वतखण्ड अथवा भीत आदि का उल्लघन या प्रलघन नही कर सकता । बाहर के पुद्गलो को ग्रहण करके ही उन्हे उल्लघन-प्रलघन कर सकता है ।[1]

कठिनशब्दार्थ—महेसक्खे—महासौख्यसम्पन्न । **बाहिरए पोग्गले**—भवधारणीय शरीर के अतिरिक्त बाह्य पुद्गलो को । **अपरियाइत्ता**—बिना ग्रहण किये । **उल्लघेत्तए**—एक बार लाघने मे । **पल्लघेत्तए**—बार-बार लाघने मे, पार करने मे ।[2]

॥ चौदहवाँ शतक : पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४३-६४४

२ (क) वही, अ वृत्ति, पत्र ६४४

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३१९

छट्ठो उद्देसओ : 'किमाहारे'

छठा उद्देशक : किमाहार (आदि)

चौवीस दण्डकों में आहार-परिणाम, योनि-स्थिति-निरूपण

१. रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से श्री गौतमस्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा—

२. नेरतिया ण भते ! किमाहारा, किंपरिणामा, किंजोणीया, किंठितीया पन्नत्ता ?

गोयमा ! नेरइया ण पोग्गलाहारा, पोग्गलपरिणामा, पोग्गलजोणीया, पोग्गलट्ठितीया, कम्मोवगा, कम्मनियाणा, कम्मट्ठितीया, कम्मुणामेव विप्परियासमेति ।

[२ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव किन द्रव्यो का आहार करते है ? किस तरह परिणमाते हैं ? उनकी योनि (उत्पत्तिस्थान) क्या है ? उनकी स्थिति का क्या कारण है ?

[२ उ] गौतम ! नैरयिक जीव पुद्गलो का आहार करते है और उसका पुद्गल-रूप परिणाम होता है। उनकी योनि शीतादि स्पर्शमय पुद्गलो वाली है । आयुष्य कर्म के पुद्गल उनकी स्थिति के कारण है। बन्ध द्वारा वे ज्ञानावरणीयादि कर्म के पुद्गलो को प्राप्त है। उनके नारकत्व-निमित्तभूत कर्म निमित्तरूप है। कर्मपुद्गलो के कारण उनकी स्थिति है। कर्मो के कारण ही वे विपर्यास (अन्य पर्याय) को प्राप्त होते है ।

३. एव जाव वेमाणिया ।

[३] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए ।

विवेचन—सकल ससारी जीवो की आहारादि-प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के आहार, परिणमन, योनि एव स्थितिहेतु की प्ररूपणा की गई है ।

कठिनशब्दार्थ—पोग्गलजोणीया—पुद्गल अर्थात् शीतादि स्पर्श वाले पुद्गल जिनकी योनि है, वे पुद्गलयोनिक । नारक शीतयोनिक एव उष्णयोनिक होते है। **पोग्गलट्ठितीया**—पुद्गल अर्थात् आयुष्य कर्म पुद्गलरूप जिनकी स्थिति है वे पुद्गलस्थितिक । नरक मे स्थिति के हेतु आयुष्य पुद्गल ही है। **कम्मोवगा**—जिनको ज्ञानावरणीयादि पुद्गल रूप कर्म वन्ध के द्वारा प्राप्त होते हैं। **कम्म-नियाणा**—जिनके नारकत्व रूप कर्मबन्ध निमित्त (निदान) है, वे कर्मनिदान । **कम्मट्ठितीया**—कर्म-स्थितिक-कर्मपुद्गलो से जिनकी स्थिति है, वे। **कम्मुणामेव विप्परियासमेति**—कर्मों के कारण विपर्यास-पर्यायो (पर्याप्त-अपर्याप्त आदि अवस्थाओ) को प्राप्त हैं ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४४

चौवीस दण्डकों में वीचिद्रव्य-अवीचिद्रव्याहार-प्ररूपणा

४. [१] नेरइया णं भंते ! किं वीचिदव्वाइं आहारेंति, अवीचिदव्वाइं आहारेंति ?

गोयमा ! नेरतिया वीचिदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचिदव्वाइं पि आहारेंति।

[४-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का आहार करते हैं अथवा अवीचि-द्रव्यों का ?

[४-१ उ.] गौतम ! नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं और अवीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'नेरतिया वीचि० तं चेव जाव आहारेंति' ?

गोयमा ! जे णं नेरइया एगपदेसूणाइं पि दव्वाइं आहारेंति ते णं नेरतिया वीचिदव्वाइं आहारेंति जे णं पडिपुण्णाइं दव्वाइं आहारेंति ते णं नेरइया नेरतिया अवीचिदव्वाइं आहारेंति। से तेणट्ठेणं ! गोयमा ! एवं वुच्चति जाव आहारेंति।

[४-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता कि नैरयिक ... यावत् अवीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं ?

[४-२ उ.] गौतम ! जो नैरयिक एक प्रदेश न्यून (कम) द्रव्यों का आहार करते हैं, वे वीचिद्रव्यों का आहार करते हैं और जो परिपूर्ण द्रव्यों का आहार करते हैं, वे नैरयिक अवीचिद्रव्यों का आहार करते हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं और अवीचिद्रव्यों का भी।

५. एवं जाव वेमाणिया।

[५] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

विवेचन—वीचिद्रव्य और अवीचिद्रव्य की परिभाषा—जितने पुद्गलों (द्रव्यसमूह) से सम्पूर्ण आहार होता है, उसे अवीचिद्रव्य आहार कहते हैं और सम्पूर्ण आहार से एक प्रदेश भी कम आहार होता है, उसे वीचिद्रव्य का आहार कहते हैं।[1]

शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक देवेन्द्रों के दिव्य भोगों की उपभोगपद्धति

६. जाहे णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजिउकामे भवति से कहमिदाणिं पकरोति ?

गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया एगं महं नेमिपडिरूवगं विउव्वति, एगं

---

१. वीचि—विवक्षितद्रव्याणां तदवयवानां च परस्परेण पृथक्भावः, ('विचिर् पृथक्भावे' इति वचनात्)। तत्र वीचिप्रधानानि द्रव्याणि वीचिद्रव्याणि एकादिप्रदेशन्यूनानीत्यर्थः। एतन्निषेधाद् अवीचिद्रव्याणि।

—भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४४

जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेण, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ जाव[1] अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेण, तस्स णं नेमिपडिरूवगस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पन्नत्ते जाव[2] मणीण फासो। तस्स ण नेमिपडिरूवगस्स बहुमज्झदेसभागे, तत्थ ण महं एगं पासायवडेंसगं विउव्वति, पच जोयणसयाइं उड्ढ उच्चत्तेण, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय० वण्णओ जाव[3] पडिरूवं। तस्स णं पासायवडेंसगस्स उल्लोए पउमलयाभत्तिचित्ते जाव पडिरूवे। तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव मणीणं फासो। मणिपेढिया अट्ठजोयणिया[4] जहा वेमाणियाणं। तीसे ण मणिपेढियाए उवरिं मह एगे देवसयणिज्जे विउव्वति। सयणिज्जवण्णओ[5] जाव पडिरूवे। तत्थ णं से सक्के देविंदे देवराया अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहि य अणिएहिं—नट्टाणिएण य गधव्वाणिएण य—सद्धि महयाहयनट्ट जाव दिव्वाइ[6] भोगभोगाइ भु जमाणे विहरति।

[६ प्र] भगवन्! जब देवेन्द्र देवराज शक्र भोग्य मनोज्ञ दिव्य स्पर्शादि विषयभोगो का उपभोग करना चाहता है, तब वह किस प्रकार (उपभोग) करता है?

[६ उ] गौतम! उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र, एक महान् चक्र के सदृश गोलाकार (नेमि-प्रतिरूपक) स्थान की विकुर्वणा करता है, जो लम्बाई-चौडाई मे एक लाख योजन होता है। उसकी परिधि (घेरा) तीन लाख (तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष्य और) यावत् कुछ अधिक साढे तेरह अगुल होती है। चक्र के समान गोलाकार उस स्थान के ऊपर अत्यन्त समतल एव रमणीय भूभाग होता है, (उसका वर्णन समझ लेना चाहिए) यावत् मणियो का मनोज्ञ स्पर्श होता है, (यहाँ तक कहना चाहिए।) (फिर) वह उस चक्राकार स्थान के ठीक मध्यभाग मे एक महान् प्रासादावतसक (प्रासादो मे आभूषण रूप श्रेष्ठ भवन) की विकुर्वणा करता है। जो ऊँचाई मे पाच सौ योजन होता है। उसका विष्कम्भ (विस्तार) ढाई सौ योजन होता है। वह प्रासाद अभ्युद्गत (अत्यन्त ऊँचा) और प्रभापुञ्ज से व्याप्त होने से मानो वह हँस रहा हो, इत्यादि प्रासाद-वर्णन, (करना चाहिए) यावत्—वह दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होता है (तक जानना चाहिए।) उस प्रासादावतसक का उपरितल (ऊपरी भाग) पद्म लताओ के

---

१ जाव पद सूचक पाठ—सोलस य जोयणसहस्साइ दो य सयाइ सत्तावीसाहियाइ कोसतिय अट्ठावीसाहिय धणुसय तेरस य अगुलाइ ति" अवृ० ॥

२ जाव पद सूचक पाठ—'से जहानामए आलिंगपोक्खरे इ वा मुइगपोक्खरे इ वा इत्यादि। ....तथा सच्छाएहि सप्पभेहिं समरीईहिं सउज्जोएहिं नाणाविहपचवण्णेहिं मणीहिं उवसोहिए, त जहा—किण्हेहिं ५ इत्यादि वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्णको मणीना वाच्य इति" अवृ० ॥

३ जाव पद सूचक पाठ—पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे त्ति" अवृ० ॥

४ मणिपीठिका का वर्णन—तस्स ण बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण महं एग मणिपेढियं विउव्वइ, सा ण मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइ आयामविक्खभेण पन्नत्ता, चत्तारि जोयणाइ बाहल्लेण सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूव त्ति"

५ शय्यावर्णन—तस्स ण देवसयणिज्जस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते , तं 'जहा—नाणामणिमया पडिपाया, सोवण्णिया पाया, नाणामणिमयाइ पायसीसगाइ इत्यादिरिति" अवृ० ॥

६ 'जाव' पद सूचक पाठ—महयाहयनट्टगीयवाइयततीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेण ति।

चित्रण से विचित्र यावत् प्रतिरूप होता है। उस प्रासादावतसक के भीतर का भूभाग अत्यन्त सम और रमणीय होता है, इत्यादि वर्णन यावत्—वहाँ मणियो का स्पर्श होता है यहाँ तक जानना चाहिए। वहाँ लम्बाई-चौडाई मे आठ योजन की मणिपीठिका होती है, जो वैमानिक देवो की मणिपीठिका के समान होती है। उस मणिपीठिका के ऊपर वह एक महान् देवशय्या की विकुर्वणा करता है। उस देवशय्या का वर्णन यावत् 'प्रतिरूप है', (यहाँ तक) करना चाहिए। वहाँ देवेन्द्र देवराज शक्र अपने-अपने परिवारसहित आठ अग्रमहिषियो के साथ, गन्धर्वानीक और नाट्यानीक, इन दो प्रकार के अनीको (सैन्यो) के साथ, जोर-जोर मे आहत हुए (वजाए गए) नाट्य, गीत और वाद्य के शब्दो द्वारा यावत् दिव्य भोग्य (विषय) भोगो का उपभोग करता है।

७. जाहे ण ईसाणे देविंदे देवराया दिव्वाइ० जहा सक्के तहा ईसाणे वि निरवसेस।

[७ प्र] भगवन्! जब देवेन्द्र देवराज ईशान दिव्य भोग्य भोगो का उपभोग करना चाहता है, तब वह कैसे करता है?

[७ उ] जिस प्रकार शक्र के लिए कहा है, उसी प्रकार का समग्र कथन ईशान इन्द्र के लिए करना चाहिए।

८. एव सणकुमारे वि, नवर पासायवडेंसओ छज्जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण तिण्णि जोयणसयाइ विक्खभेण। मणिपेढिया तहेव अट्ठजोयणिया। तीसे ण मणिपेढियाए उवरिं एत्थ ण महेग सीहासण विउव्वति, सपरिवार भाणियव्व। तत्थ ण सणकुमारे देविंदे देवराया बावत्तरीए सामाणिय-साहस्सीहि जाव चउहि य बावत्तरीहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं बहूहिं सणकुमारकप्पवासीहिं वेमाणिएहि देवेहि य देवीहि य सद्धि सपरिवुडे महया जाव विहरति।

[८] इसी प्रकार सनत्कुमार के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि उनके प्रासादावतसक की ऊँचाई छह सौ योजन और विस्तार तीन सौ योजन होता है। आठ योजन (लम्बाई-चौडाई) की मणिपीठिका का उसी प्रकार वर्णन (पूर्ववत्) करना चाहिए। उस मणिपीठिका के ऊपर वह अपने परिवार के योग्य आसनो सहित एक महान् सिंहासन की विकुर्वणा करता है। (इत्यादि सब) कथन पूर्ववत् करना चाहिए। वहाँ देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहत्तर हजार सामानिक देवो के साथ यावत् दो लाख ८८ हजार आत्मरक्षक देवो के साथ और सनत्कुमार कल्पवासी बहुत-से वैमानिक देव-देवियो के साथ प्रवृत्त होकर महान् गीत और वाद्य के शब्दो द्वारा यावत् दिव्य भोग्य विषयभोगो का उपभोग करता हुआ विचरण करता है।

९. एव जहा सणकुमारे तहा जाव पाणतो अच्चुतो, नवर जो जस्स परिवारो सो तस्स भाणियव्वो। पासायउच्चत्त ज सएसु सएसु कप्पेसु विमाणाण उच्चत्त, अद्धद्ध वित्थारो जाव अच्चुयस्स नव जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण, अद्धपचमाइ जोयणसयाइ विक्खभेण, तत्थ ण गोयमा! अच्चुए देविंदे देवराया दसहि सामाणियसाहस्सीहिं जाव विहरति। सेस त चेव।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

॥ चोद्दसमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥ १४.६ ॥

[९] सनत्कुमार (देवेन्द्र) के समान यावत् प्राणत और अच्युत (देवेन्द्र तक के विषय मे कहना चाहिए।) विशेष यह है कि जिसका जितना परिवार हो, उतना कहना चाहिए। अपने-अपने कल्प के विमानो की ऊँचाई के बराबर प्रासाद की ऊँचाई तथा उनके विस्तार से आधा विस्तार कहना चाहिए। यावत् अच्युत देवलोक (के इन्द्र) का प्रासादावतमक नौ मौ योजन ऊँचा है और चार मौ पचास योजन विस्तृत है। हे गौतम! उसमे देवेन्द्र देवराज अच्युत, दस हजार मामानिक देवों के माथ यावत् (विषय) भोगो का उपभोग करता हुआ विचरता है। शेष सभी वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी विचरते हैं।

विवेचन—शक्रेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र तक के विषयभोग की उपभोगपद्धति—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ६ से ९ तक) मे शक्रेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र तक की विषयभोग के उपभोग की प्रक्रिया का वर्णन है। परन्तु शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र की तरह सनत्कुमारेन्द्र और माहेन्द्र, ब्रह्मलोकेन्द्र और लान्तकेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र और सहस्रारेन्द्र, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्प के इन्द्र, देवशय्या की विकुर्वणा नही करते, वे सिंहासन की विकुर्वणा करते है, क्योकि वे दो-दो इन्द्र, क्रमश केवल स्पर्श, रूप, शब्द एव मन से ही विषयोपभोग करते है, कायप्रवीचार ईशान-देवलोक तक ही है। सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक के इन्द्र क्रमश स्पर्श, रूप, शब्द और मन से ही प्रवीचार कर लेते है। इसलिए इन सब इन्द्रो को शय्या का प्रयोजन नही है। सनत्कुमारेन्द्र का परिवार ऊपर बतलाया गया है। माहेन्द्र के ७० हजार सामानिक देव और दो लाख अस्सी हजार आत्मरक्षक देव होते हैं। ब्रह्मलोकेन्द्र के ६० हजार, लान्तकेन्द्र के ५० हजार, महाशुक्रेन्द्र के ४० हजार, सहस्रारेन्द्र के ३० हजार, आनत-प्राणत कल्प के इन्द्र के २० हजार और आरण-अच्युत कल्प के इन्द्र के १० हजार सामानिक देव होते हैं। इनसे चार गुणे आत्मरक्षक देव होते हैं।[1]

सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के विमान ६०० योजन ऊँचे है। इसलिए उनके प्रासादो की ऊँचाई भी ६०० योजन होती है। ब्रह्मलोक और लान्तक मे ७०० योजन, महाशुक्र और सहस्रार मे ८०० योजन, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्प मे प्रासाद ९०० योजन ऊँचे होते है और इन सबका विस्तार प्रासाद से आधा होता है। यथा—अच्युतकल्प मे प्रासाद ९०० योजन ऊँचा होता है, तो उसका विस्तार ४५० योजन होता है। अच्युतदेवलोक मे अच्युतेन्द्र दस हजार सामानिक देवो के साथ यावत् विचरता है।[2]

चक्राकार स्थान की विकुर्वणा क्यो?—इसका समाधान वृत्तिकार यो करते हैं कि सुधर्मा सभा जैसे भोगस्थान होते हुए भी शक्रेन्द्र चक्राकार स्थान को विकुर्वणा इसलिए करता है कि सुधर्मा सभा मे जिन भगवान् की आराधना होने से उस स्थान मे विषयभोग सेवन करना उनकी आशातना करना है। इसीलिए शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र या सनत्कुमारेन्द्र आदि इन्द्र अपने सामानिकादि देवो के परिवार-

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४६

(ख) स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रवीचारा द्वयोर्द्वयो। परेऽप्रवीचारा। —तत्त्वार्थ ४

२ (क) भगवती अ, वृत्ति. पत्र ६४६

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३२५-२३२६

सहित चक्राकार वाले स्थान में जाते हैं। क्योंकि उनके समक्ष स्पर्श आदि विषयों का उपभोग करना अविरुद्ध है। शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र वहाँ परिवार सहित नहीं जाते। क्योंकि वे कायप्रवीचारी होने से अपने सामानिकादि परिवार के समक्ष कायपरिचारणा (काया द्वारा विषयोपभोग सेवन) करना लज्जनीय और अनुचित समझते हैं।[1]

कठिनशब्दार्थ—**णेमिपडिरूवग**—नेमि-चक्र के प्रतिरूप-सदृश गोलाकार। **बहुसमरमणिज्जे**—अत्यन्त सम और रम्य। **उल्लोए**—उल्लोक या उल्लोच—उपरितल। **अट्ठजोयणिया**—लम्बाई-चौडाई में आठ योजन। **सीहासण विउव्वइ सपरिवार**—(सनत्कुमारेन्द्र) स्वपरिवार योग्य आसनों से युक्त सिंहासन की विकुर्वणा करता है।[2]

॥ चौदहवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४६

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ६४६

सत्तमो उद्देसओ : 'संसिट्ठ'

सातवाँ उद्देशक : 'संश्लिष्ट'

भगवान् द्वारा गौतमस्वामी को इस भव के बाद अपने समान सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का आश्वासन

१. रायगिहे जाव परिसा पडिगया।

[१] राजगृह नगर मे यावत् परिषद् धर्मोपदेश श्रवण कर लौट गई।

२. 'गोयमा !' दी समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—चिरसंसिट्ठोऽसि मे गोयमा !, चिरसंथुतोऽसि मे गोयमा !, चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा !, चिरझुसिओऽसि मे गोयमा ! चिराणुगओऽसि मे गोयमा ! चिराणुवत्ती सि मे गोयमा ! अणंतरं देवलोए, अणंतरं माणुस्सए भवे, किं परं मरणा कायस्स भेदा इतो चुता, दो वि तुल्ला एगट्ठा अविसेसमणाणत्ता भविस्सामो।

[२] श्रमण भगवान् महावीर ने, 'हे गौतम !' इस प्रकार भगवान् गौतम को सम्बोधित करके यो कहा—गौतम ! तू मेरे साथ चिर-संश्लिष्ट है, हे गौतम ! तू मेरा चिर-संस्तुत है, तू मेरा चिर-परिचित भी है। गौतम ! तू मेरे साथ चिर-सेवित या चिरप्रीत है। चिरकाल से, हे गौतम ! तू मेरा अनुगामी है। तू मेरे साथ चिरानुवृत्ति है, गौतम ! इससे (पूर्व के) अनन्तर देवलोक में (देवभव में) तदनन्तर मनुष्यभव मे (स्नेह सम्बन्ध था)। अधिक क्या कहा जाए, इस भव मे मृत्यु के पश्चात्, इस शरीर से छूट जाने पर, इस मनुष्यभव से च्युत हो कर हम दोनो तुल्य (एक सरीखे) और एकार्थ (एक ही प्रयोजन वाले, अथवा एक ही लक्ष्य—सिद्धिक्षेत्र मे रहने वाले) तथा विशेषतारहित एव किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित हो जाएँगे।

विवेचन—भगवान् महावीर द्वारा श्री गौतमस्वामी को आश्वासन—अपने द्वारा दीक्षित शिष्यो को केवलज्ञान प्राप्त हो जाने एव स्वय को चिरकाल तक केवलज्ञान प्राप्त न होने से खिन्न बने हुए श्री गौतमस्वामी को आश्वासन देते हुए भगवान् महावीर कहते हैं—गौतम, तू चिरकाल से मेरा परिचित है, अतएव तेरा मेरे प्रति भक्तिराग होने से तुझे केवलज्ञान प्राप्त नही हो रहा है, इत्यादि। इसलिए खिन्न मत हो। हम दोनो इस शरीर के छूट जाने पर एक समान सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाएँगे।[१]

कठिनशब्दार्थ—भावार्थ—चिरसंसिट्ठो—चिरकाल से संश्लिष्ट, अर्थात् चिरकाल से स्नेह से वद्ध। **चिरसंथुओ**—चिरसंस्तुत, अर्थात् चिरकाल से स्नेहवश तूने मेरी प्रशंसा की है। **चिरपरिचिओ**—चिरपरिचित—मेरे साथ तेरा लम्बे समय से परिचय रहा है। या पुनः पुन. दर्शन से तू चिरकाल से

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४७

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३२८

अभ्यस्त हो गया है। चिरभुसिए—चिरजूषित—चिरकाल से तू मेरे साथ सेवित है, अथवा चिरकाल से तेरी मेरे प्रति प्रीति रही है। चिराणुगए—चिरानुगत, चिरकाल से तू मेरा अनुगामी—अनुसरणकर्ता है। चिराणुवित्ती—चिरानुवृत्ति, चिरकाल से तेरी वृत्ति मेरे अनुकूल रही है। इओ चुए—इस मनुष्यभव से च्युत होने पर।

एगट्ठा : दो रूप दो अर्थ—(१) एकार्थ—एक (समान) अनन्तसुखरूप अर्थ—प्रयोजन वाले, (२) एकस्थ—सिद्धिक्षेत्र की अपेक्षा से एक क्षेत्राश्रित। अविसेसमणाणत्ता—ज्ञान-दर्शनादिपर्यायों में एक समान तथा अभिन्न (भिन्नतारहित)।[1]

अनुत्तरौपपातिक देवों की जानने-देखने की शक्ति की प्ररूपणा

३. [१] जहा णं भंते ! वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा णं अणुत्तरोववातिया वि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति ?

हंता, गोयमा ! जहा णं वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा अणुत्तरोववातिया वि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति।

[३-१ प्र] भगवन् ! जिस प्रकार अपन दोनों इस (पूर्वोक्त) अर्थ को जानते-देखते हैं, क्या उसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देव भी इस अर्थ (बात) को जानते-देखते हैं ?

[३-१ उ] हाँ, गौतम ! जिस प्रकार अपन दोनों इस (पूर्वोक्त) बात को जानते-देखते हैं, उसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देव भी इस अर्थ को जानते-देखते हैं।

[२] से केणट्ठेणं जाव पासंति ?

गोयमा ! अणुत्तरोववातियाणं अणंताओ मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमन्नागयाओ भवंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति जाव पासंति।

[३-२ प्र] भगवन् ! क्या कारण है कि जिस प्रकार हम दोनों इस बात को जानते-देखते हैं, उसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देव भी जानते-देखते हैं ?

[३-२ उ] गौतम ! अनुत्तरौपपातिक देवों को (अवधिज्ञान की लब्धि से) मनोद्रव्य की अनन्त वर्गणाएँ (ज्ञेयरूप से) लब्ध (उपलब्ध) हैं, प्राप्त हैं, अभिसमन्वागत होती हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि यावत् अनुत्तरौपपातिक देव भी जानते-देखते हैं।

विवेचन—प्रश्नोत्थान का आशय—भगवान् के कथन से आश्वासन पा कर गौतमस्वामी ने दूसरा प्रश्न उठाया—भगवन् ! भविष्य में इस भव के छूटने पर हम दोनों तुल्य और ज्ञान-दर्शनादि में समान हो जाएँगे, यह बात आप तो केवलज्ञान से जानते हैं, मैं आपके कथन से जानता हूँ, किन्तु क्या अनुत्तरौपपातिक देव भी यह बात जानते-देखते हैं ? यह इस प्रश्न का आशय है।

भगवान् का उत्तर—अनुत्तरौपपातिक देव विशिष्ट अवधिज्ञान द्वारा मनोद्रव्यवर्गणाओं को जानते-देखते हैं। अयोगी-अवस्था में अदर्शन के कारण हम दोनों के निर्वाणगमन का निश्चय करते

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४७

हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जाता है कि वे अपन दोनो के भावी तुल्य अवस्थारूप अर्थ को जानते-देखते हैं।[1]

छह प्रकार का तुल्य

४. कतिविधे णं भंते ! तुल्लए पन्नत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे तुल्लए पन्नत्ते, तं जहा—दव्वतुल्लए खेत्ततुल्लए कालतुल्लए भवतुल्लए भावतुल्लए सठाणतुल्लए।

[४ प्र] भगवन् ! तुल्य कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! तुल्य छह प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) द्रव्यतुल्य, (२) क्षेत्रतुल्य, (३) कालतुल्य, (४) भवतुल्य, (५) भावतुल्य और (६) सस्थानतुल्य।

विवेचन—तुल्य शब्द का अर्थ—जिन एक कोटि के पदार्थों मे एक दूसरे से समानता हो, वहाँ उनमे परस्पर तुल्यता का प्रतिपादन किया जाता है। यहाँ द्रव्यादि छह दृष्टियो से तुल्य का कथन है।

द्रव्य-तुल्य-निरूपण

५. से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'दव्वतुल्लए, दव्वतुल्लए' ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वतो तुल्ले, परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गल-वतिरित्तस्स दव्वओ णो तुल्ले। दुपएसिए खधे दुपएसियस्स खंधस्स दव्वओ तुल्ले, दुपएसिए खधे दुपएसियवतिरित्तस्स खंधस्स दव्वओ णो तुल्ले। एवं जाव दसपएसिए। तुल्लसखेज्जपएसिए खधे तुल्लसंखेज्जपएसियस्स खधस्स दव्वओ तुल्ले, तुल्लसखेज्जपएसिए खधे तुल्लसखेज्जपएसियवतिरित्तस्स खधस्स दव्वओ णो तुल्ले। एव तुल्लअसखेज्जपएसिए वि। तुल्लअणतपदेसिए वि। से तेट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति 'दव्वतुल्लए, दव्वतुल्लए'।

[५ प्र] भगवन् ! 'द्रव्यतुल्य' द्रव्यतुल्य क्यो कहलाता है ?

[५ उ] गौतम ! एक परमाणु-पुद्गल, दूसरे परमाणु-पुद्गल से द्रव्यत तुल्य है, किन्तु परमाणु-पुद्गल से भिन्न (व्यतिरिक्त) दूसरे पदार्थो के साथ द्रव्य से तुल्य नही है। इसी प्रकार एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु द्विप्रदेशिक स्कन्ध से व्यतिरिक्त दूसरे स्कन्ध के साथ द्विप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य से तुल्य नही है। इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध तक कहना चाहिए। एक तुल्य-सख्यात-प्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे तुल्य-सख्यात-प्रदेशिक स्कन्ध के साथ द्रव्य से तुल्य है परन्तु तुल्य-सख्यात-प्रदेशिक-स्कन्ध से व्यतिरिक्त दूसरे स्कन्ध के साथ द्रव्य से तुल्य नही है। इसी प्रकार तुल्य-असख्यात-प्रदेशिक-स्कन्ध के विषय मे भी कहना चाहिए। तुल्य-अनन्त-प्रदेशिक-स्कन्ध के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी कारण से हे गौतम ! 'द्रव्यतुल्य' द्रव्यतुल्य कहलाता है।

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३२८
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४७

विवेचन—द्रव्यतुल्य : दो अर्थ—(१) द्रव्यत—एक अणु आदि की अपेक्षा से जो तुल्य हो, वह द्रव्यतुल्य है, अथवा (२) जो द्रव्य, दूसरे द्रव्य के साथ तुल्य हो, वह द्रव्यतुल्य है।[1]

क्षेत्रतुल्यनिरूपण

६ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'खेत्ततुल्लए, खेत्ततुल्लए' ?

गोयमा ! एगपदेसोगाढे पोग्गले एगपदेसोगाढस्स पोग्गलस्स खेत्तओ तुल्ले, एगपदेसोगाढे-पोग्गले एगपएसोगाढवतिरित्तस्स पोग्गलस्स खेत्तओ णो तुल्ले। एवं जाव दसपदेसोगाढे, तुल्लसंखेज्ज-पदेसोगाढे० तुल्लसंखेज्ज०। एवं तुल्लअसंखेज्जपदेसोगाढे वि। से तेणट्ठेणं जाव खेत्ततुल्लए।

[६ प्र] भगवन् ! 'क्षेत्रतुल्य' क्षेत्रतुल्य क्यों कहलाता है ?

[६ उ] गौतम ! एकप्रदेशावगाढ (आकाश के एक प्रदेश पर रहा हुआ) पुद्गल दूसरे एकप्रदेशावगाढ पुद्गल के साथ क्षेत्र से तुल्य कहलाता है, परन्तु एकप्रदेशावगाढ-व्यतिरिक्त पुद्गल के साथ, एकप्रदेशावगाढ पुद्गल क्षेत्र से तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत्—दस-प्रदेशावगाढ पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिए तथा एक तुल्य संख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गल, अन्य तुल्य संख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गल के साथ तुल्य होता है। इसी प्रकार तुल्य असंख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिए। इसी कारण से, हे गौतम ! 'क्षेत्रतुल्य' क्षेत्रतुल्य कहलाता है।

विवेचन—क्षेत्रतुल्य का अर्थ—जहाँ दो क्षेत्र, एकप्रदेशावगाढत्व आदि की अपेक्षा से तुल्य हों, वहाँ क्षेत्रतुल्य कहलाता है।[2]

कालतुल्यनिरूपण

७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'कालतुल्लए, कालतुल्लए' ?

गोयमा ! एगसमयठितीए पोग्गले एग० कालओ तुल्ले, एगसमयठितीए पोग्गले एगसमय-ठितीयवतिरित्तस्स पोग्गलस्स कालओ णो तुल्ले। एवं जाव दससमयट्ठितीए। तुल्लसंखेज्जसमयठितीए एवं चेव। एवं तुल्लअसंखेज्जसमयट्ठितीए वि। से तेणट्ठेणं जाव कालतुल्लए, कालतुल्लए।

[७ प्र] भगवन् ! 'कालतुल्य' कालतुल्य क्यों कहलाता है ?

[७ उ] गौतम ! एक समय की स्थिति वाला पुद्गल, अन्य एक समय की स्थिति वाले पुद्गल के साथ काल से तुल्य है, किन्तु एक समय की स्थिति वाले पुद्गल के अतिरिक्त दूसरे पुद्गलों के साथ, एक समय की स्थिति वाला पुद्गल काल से तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले पुद्गल तक के विषय में कहना चाहिए। तुल्य संख्यातसमय की स्थिति वाले पुद्गल तक के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए और तुल्य असंख्यातसमय की स्थिति वाले पुद्गल के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। इस कारण से, हे गौतम ! 'कालतुल्य' कालतुल्य कहलाता है।

---

१. द्रव्यत—एकाणुकाद्यपेक्षया तुल्यकं द्रव्यतुल्यकम्। अथवा द्रव्यं च तत्तुल्यकं च द्रव्यान्तरेणेति द्रव्यतुल्यकम्, विशेषणव्यत्ययात्। —भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४९

२. क्षेत्रत—एकप्रदेशावगाढत्वादिना तुल्यकं क्षेत्रतुल्यकम्। —भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४९

विवेचन—कालतुल्य का तात्पर्य—समय, आवलिका, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास आदि को काल कहते है। एक समय की स्थिति वाला पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले पुद्गल के साथ काल से तुल्य है, किन्तु एक समय के अतिरिक्त दो आदि समयो की स्थिति वाला पुद्गल काल से तुल्य नही है।

भवतुल्यनिरूपण

८. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'भवतुल्लए, भवतुल्लए' ?

गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स भवट्ठयाए तुल्ले, नेरइए नेरइयवतिरित्तस्स भवट्ठयाए नो तुल्ले। तिरिक्खजोणिए एव चेव। एव मणुस्से। एव देवे वि। से तेणट्ठेण जाव भवतुल्लए, भवतुल्लए।

[८ प्र] भगवन् ! 'भवतुल्य' भवतुल्य क्यो कहलाता है ?

[८ उ] गौतम ! एक नैरयिक जीव, दूसरे नैरयिक जीव (या जीवो) के साथ भव-तुल्य है, किन्तु नैरयिक जीवो के अतिरिक्त (तिर्यञ्च-मनुष्यादि दूसरे जीवो) के साथ नैरयिक जीव, भव से तुल्य नही है। इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिको के विषय मे समझना चाहिए। मनुष्यो के तथा देवो के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। इस कारण, हे गौतम ! 'भवतुल्य' 'भवतुल्य' कहलाता है।

विवेचन—भवतुल्य का भावार्थ—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार भवो मे से जो प्राणी जिस प्राणी के साथ भव की अपेक्षा तुल्य—समान—है, वह भवतुल्य कहलाता है। नरक भव के जीव की तिर्यञ्चादि भव के जीव के साथ भवतुल्यता नही है।[1]

भावतुल्यनिरूपण

९. से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ 'भावतुल्लए, भावतुल्लए' ?

गोयमा ! एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स भावओ तुल्ले, एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालगवतिरित्तस्स पोग्गलस्स भावओ णो तुल्ले। एव जाव दसगुणकालए। तुल्लसखेज्ज-गुणकालए पोग्गले तुल्लसखेज्ज०। एव तुल्लअसखेज्जगुणकालए वि। एव तुल्लअणंतगुणकालए वि। जहा कालए एव नीलए लोहियए हालिद्दए सुक्किल्लए। एव सुब्भिगन्धे दुब्भिगंधे एव तित्ते जाव महुरे। एव कक्खडे जाव लुक्खे। उदइए भावे उदइयस्स भावस्स भावओ तुल्ले, उदइए भावे उदइयभाव-वइरित्तस्स भावस्स भावओ नो तुल्ले। एव उवसमिए खइए खयोवसमिए पारिणामिए, सन्निवातिए भावे सन्निवातियस्स भावस्स। से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चति 'भावतुल्लए, भावतुल्लए'।

[९ प्र] भगवन् ! 'भावतुल्य' भावतुल्य किस कारण से कहलाता है ?

[९ उ.] गौतम ! एकगुण काले वर्ण वाला पुद्गल, दूसरे एकगुण काले वर्ण वाले पुद्गल के साथ भाव से तुल्य है किन्तु एक गुण काले वर्ण वाला पुद्गल, एक गुण काले वर्ण से अतिरिक्त दूसरे पुद्गलो के साथ भाव से तुल्य नही है। इसी प्रकार यावत् दस गुण काले पुद्गल तक कहना चाहिए। इसी प्रकार तुल्य सख्यात-गुण काला पुद्गल तुल्य सख्यातगुण काले पुद्गल के साथ, तुल्य

---

१. भवो—नारकादि तेन तुल्यता यस्याऽसौ भवतुल्य। —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४९

असख्यातगुण काला पुद्गल तुल्य-असख्यातगुण काले पुद्गल के साथ और तुल्य अनन्तगुण काला पुद्गल, तुल्य अनन्तगुण काले पुद्गल के साथ भाव से तुल्य है। जिस प्रकार काला वर्ण कहा, उसी प्रकार नीले, लाल, पीले और श्वेत वर्ण के विषय मे भी कहना चाहिए। इसी प्रकार सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध और इसी प्रकार तिक्त यावत् मधुर रस तथा कर्कश यावत् रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गल के विषय मे भावतुल्य का कथन करना चाहिए। औदयिक भाव औदयिक भाव के साथ (भाव-) तुल्य है, किन्तु वह औदयिक भाव के सिवाय अन्य भावो के साथ भावत तुल्य नही है। इसी प्रकार औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक भाव के विषय मे भी कहना चाहिए। सान्निपातिक भाव, सान्निपातिक भाव के साथ भाव से तुल्य है। इसी कारण से, हे गौतम! 'भावतुल्य' भावतुल्य कहलाता है।

विवेचन—भावतुल्यता के विविध पहलू—प्रस्तुत मे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के सर्वप्रकारो मे से प्रत्येक प्रकार के साथ उसी के प्रकार की भावतुल्यता है। जैसे—एक गुण काले वर्ण वाले पुद्गल के साथ एक गुण काले वर्ण वाला पुद्गल भाव से तुल्य है। इसी प्रकार एक गुण नीले पुद्गल की एक गुण नीले पुद्गल के साथ भावतुल्यता है। इसी प्रकार रस, गन्ध एव स्पर्श के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।[1]

तुल्लसखेज्जगुणकालए इत्यादि का आशय—यहाँ जो 'तुल्य' शब्द ग्रहण किया है यह सख्यात के सख्यात भेद होने से सख्यातमात्र के साथ तुल्यता बताने हेतु नही है, अपितु समान सख्यारूप अर्थ के प्रतिपादन के लिए है। इसी प्रकार असख्यात और अनन्त के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

औदयिक आदि पाच भावो की अपने-अपने भाव के साथ सामान्यत भावतुल्यता है, किन्तु अन्य भावो के साथ नही।[2]

औदयिक आदि भावो के लक्षण—औदयिक—कर्मों के उदय से निष्पन्न जीव का परिणाम औदयिक भाव है, अथवा कर्मो के उदय से निष्पन्न नारकत्वादि-पर्यायविशेष औदयिक भाव है।

औपशमिक—उदयप्राप्त कर्म का क्षय और उदय मे न आए हुए कर्म का अमुक काल तक रुकना औपशमिक भाव है, अथवा कर्मों के उपशम से होने वाला जीव का परिणाम औपशमिक भाव कहलाता है। यथा—औपशमिक सम्यग्दर्शन एव चारित्र। **क्षायिक**—कर्मो का क्षय-अभाव ही क्षायिक है। अथवा कर्मो के क्षय से होने वाला जीव का परिणाम क्षायिक भाव है। यथा—केवलज्ञानादि। **क्षायोपशमिक**—उदयप्राप्त कर्म के क्षय के साथ विपाकोदय को रोकना क्षायोपशमिक भाव है, अथवा कर्मो के क्षय तथा उपशम से होने वाला जीव का परिणाम क्षायोपशमिक भाव कहलाता है। यथा—मतिज्ञानादि। क्षायोपशमिक भाव मे विपाकवेदन नही होता, प्रदेशवेदन होता है, जबकि औपशमिक भाव मे दोनो प्रकार के वेदन नही होते। यही क्षायोपशमिक भाव और औपशमिक भाव मे अन्तर है। जीव का अनादिकाल से जो स्वाभाविक परिणाम है, वह **पारिणामिक भाव** है। औदयिक आदि दो-तीन आदि भावो के सयोग से उत्पन्न होने वाला भाव सान्निपातिक भाव है।[3]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूल-पाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ६७६

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४९

३ (क) वही, अ. वृत्ति, पत्र ६४९
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३३४

संस्थानतुल्यनिरूपण

१०. से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'संठाणतुल्लए, संठाणतुल्लए' ?

गोयमा ! परिमंडले संठाणे परिमंडलस्स संठाणस्स संठाणओ तुल्ले, परिमंडले संठाणे परिमंडलसंठाणवतिरित्तस्स संठाणस्स संठाणओ नो तुल्ले । एव वट्टे तसे चउरसे आयए । समचउरससंठाणे समचउरसस्स संठाणस्स संठाणओ तुल्ले, समचउरसे संठाणे समचउरससंठाणवतिरित्तस्स संठाणस्स संठाणओ नो तुल्ले । एव परिमंडले वि । एव जाव हुडे । से तेणट्ठेणं जाव संठाणतुल्लए, संठाणतुल्लए ।

[१० प्र] भगवन् ! 'संस्थानतुल्य' को 'संस्थानतुल्य' क्यो कहा जाता है ?

[१० उ] गौतम ! परिमण्डल-संस्थान, अन्य परिमण्डल-संस्थान के साथ संस्थानतुल्य है, किन्तु दूसरे संस्थानो के साथ संस्थान से तुल्य नही है । इसी प्रकार वृत्त-संस्थान, त्र्यस्र-संस्थान, चतुरस्रसंस्थान एव आयतसंस्थान के विषय मे भी कहना चाहिए । एक समचतुरस्रसंस्थान अन्य समचतुरस्रसंस्थान के साथ संस्थान-तुल्य है, परन्तु समचतुरस्र के अतिरिक्त दूसरे संस्थानो के साथ संस्थान-तुल्य नही है । इसी प्रकार न्यग्रोध-परिमण्डल यावत् हुण्डकसंस्थान तक कहना चाहिए । इसी कारण से, हे गौतम ! 'संस्थान-तुल्य' संस्थान-तुल्य कहलाता है ।

विवेचन—संस्थान : परिभाषा, प्रकार एवं भेदप्रभेद—आकृतिविशेष को संस्थान कहते हैं । वह दो प्रकार का है—अजीवसंस्थान और जीवसंस्थान । **अजीवसंस्थान** के ५ भेद हैं—परिमण्डल, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र और आयत । (१) **परिमण्डल**—जो चूडी के समान गोल हो । इसके दो भेद हैं—घन और प्रतर । (२) **वृत्त**—जो कुम्हार के चाक के समान बाहर से गोल और भीतर से पोलान-रहित हो । इसके दो भेद हैं—घन और प्रतर । इसके भी दो-दो भेद होते हैं—समसंख्या वाले प्रदेशो से युक्त और विषम संख्या वाले प्रदेशो से युक्त । (३) **त्र्यस्र**—त्रिकोणाकार । (४) **चतुरस्र**—चौकोर । (५) **आयत**—जो दण्ड के समान लम्बा हो । इसके तीन भेद है—श्रेण्यायत, प्रतरायत और घनायत । इनके प्रत्येक के दो-दो भेद है—समसंख्या वाले प्रदेशो से युक्त और विषमसंख्या वाले प्रदेशो से युक्त ।[1]

जीवसंस्थान के छह भेद, लक्षण—संस्थान नामकर्म के उदय से सम्पाद्य जीवो की आकृतिविशेष को जीव-संस्थान कहते है । इसके ६ भेद ये हैं—(१) समचतुरस्र, (२) न्यग्रोध-परिमण्डल, (३) सादिसंस्थान, (४) कुब्जकसंस्थान, (५) वामनसंस्थान और (६) हुण्डकसंस्थान ।

(१) **समचतुरस्र**—सम—समान, चतुरस्र—चारो कोण । पल्हथी मार कर बैठने पर जिस शरीर के चारो कोण समान हो । अर्थात्—आसन और कपाल का अन्तर, दोनो घुटनो का अन्तर, बाँए कन्धे और दाहिने घुटने का अन्तर तथा दाहिने कन्धे और बाँए घुटने का अन्तर समान हो, उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते है । अथवा—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के समग्र अवयव ठीक प्रमाण वाले हो, उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४९

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३३५

(२) न्यग्रोध-परिमण्डल—वटवृक्ष को न्यग्रोध कहते हैं। जैसे—वटवृक्ष ऊपर के भाग में फैला हुआ और नीचे के भाग में संकुचित होता है वैसे ही जिस संस्थान में नाभि के ऊपर का भाग विस्तृत—अर्थात्—सामुद्रिक शास्त्र में बताए हुए प्रमाण वाला हो और नीचे का भाग हीन अवयव वाला हो, उसे 'न्यग्रोध-परिमण्डलसंस्थान' कहते हैं।

(३) सादि-संस्थान—सादि का अर्थ है—नाभि के नीचे का भाग। जिस संस्थान में नाभि के नीचे का भाग पूर्ण हो और ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादि-संस्थान कहते हैं। इसका नाम कहीं-कहीं साची संस्थान भी मिलता है। साची कहते हैं—शाल्मली (सेमर) के वृक्ष को। शाल्मली वृक्ष का धड़ जैसा पुष्ट होता है, वैसा उसका ऊपर का भाग नहीं होता। इसी प्रकार जिस शरीर में नाभि के नीचे का भाग परिपुष्ट या परिपूर्ण हो, किन्तु ऊपर का भाग हीन हो, वह साची-संस्थान होता है।

(४) कुब्जक-संस्थान—जिस शरीर में हाथ, पैर, सिर, गर्दन आदि अवयव ठीक हों, परन्तु छाती, पीठ, पेट आदि टेढ़े-मेढ़े हों, उसे कुब्जक-संस्थान कहते हैं।

(५) वामन-संस्थान—जिस शरीर में छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हों, किन्तु हाथ, पैर आदि अवयव छोटे हों, उसे वामन-संस्थान कहते हैं।

(६) हुण्डक-संस्थान—जिस शरीर में समस्त अवयव बेडौल हों, अर्थात्-एक भी अवयव सामुद्रिक शास्त्र के प्रमाणानुसार न हो, उसे हुण्डक-संस्थान कहते हैं।[1]

अनशनकर्ता अनगार द्वारा मूढता-अमूढतापूर्वक आहाराध्यवसाय-प्ररूपणा

११. [१] भत्तपच्चक्खायए णं भंते ! अणगारे मुच्छिए जाव अज्झोववन्ने आहारमाहारेइ, अहे णं वीससाए कालं करेति ततो पच्छा अमुच्छिते अगिद्धे जाव अणज्झोववन्ने आहारमाहारेइ ?

हंता, गोयमा ! भत्तपच्चक्खायए णं अणगारे० तं चेव।

[११-१ प्र.] भगवन् ! भक्तप्रत्याख्यान (आहार का त्याग करके यावज्जीव अनशन) करने वाला अनगार क्या (पहले) मूर्च्छित यावत् अत्यन्त आसक्त होकर आहार ग्रहण करता है, इसके पश्चात् स्वाभाविक रूप से काल (मृत्यु प्राप्त) करता है और तदनन्तर अमूर्च्छित, अगृद्ध यावत् अनासक्त होकर आहार करता है ?

[११-१ उ.] हाँ, गौतम ! भक्तप्रत्याख्यान करने वाला अनगार पूर्वोक्त रूप से आहार करता है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'भत्तपच्चक्खायए णं अण०' तं चेव ?

गोयमा ! भत्तपच्चक्खायए णं अणगारे मुच्छिए जाव अज्झोववन्ने आहारे भवइ, अहे णं वीससाए कालं करेइ तओ पच्छा अमुच्छिते जाव आहारे भवति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव आहारमाहारेति।

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २३३६
(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६४९-६५०

[११-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा गया कि भक्तप्रत्याख्यान करने वाला अनगार पूर्वोक्त रूप से आहार करता है?

[११-२ उ] गौतम! भक्तप्रत्याख्यान करने वाला (कोई) अनगार (प्रथम) मूर्च्छित यावत् अत्यन्त आसक्त हो कर आहार करता है। इसके पश्चात् स्वाभाविक रूप से काल करता है। इसके बाद आहार के विषय मे अमूर्च्छित यावत् अगृद्ध (अनासक्त) हो कर आहार करता है। इसलिए हे गौतम! भक्तप्रत्याख्यान करने वाला (कोई-कोई) अनगार पूर्वोक्त रूप से यावत् आहार करता है।

विवेचन—भक्तप्रत्याख्यान करने वाले किसी-किसी अनगार की ऐसी स्थिति हो जाती है। इसलिए यहाँ उसके मनोभावो के उतार-चढाव का चित्रण किया गया है। भक्तप्रत्याख्यान करने से पूर्व अथवा भक्तप्रत्याख्यान कर लेने के पश्चात् तीव्र क्षुधावेदनीय कर्म के उदयवश वह पहले आहार मे मूर्च्छित, गृद्ध यावत् अत्यासक्त होता है। फिर वह मारणान्तिक समुद्घात करता है। तत्पश्चात् वह उस (मा समु) से निवृत्त होकर मूर्च्छा, गृद्धि यावत् आसक्ति से रहित हो कर प्रशान्त परिणाम पूर्वक आहार का उपयोग करता है। अर्थात्—आहार के प्रति वह मूर्च्छा और आसक्ति रहित बन जाता है। यह समाधान वृत्तिकार का है।

प्रकारान्तर से आशय—धारणा के अनुसार इसकी अर्थसगति इस प्रकार से है—सथारा (यावज्जीव अनशन) करके काल करने वाला अनगार जब काल करके देवलोक मे उत्पन्न होता है, तब उत्पन्न होते ही वह आसक्ति और गृद्धिपूर्वक आहार ग्रहण करता है, तदनन्तर वह आसक्ति-रहित होकर आहार करता है।

कठिन शब्दो के भावार्थ—**मुच्छिए**—मूर्च्छित—आहारसरक्षण मे अनुबद्ध अथवा उक्त (आहार) दोष के विषय मे मूढ या मोहवश। **गिद्धे**—गृद्ध—प्राप्त आहार के विषय मे आसक्त, या अतृप्त होने से उक्त सरस आहार के विषय मे लालसायुक्त। **अज्झोववन्ने**—अध्युपपन्न—आसक्त, अप्राप्त आहार की चिन्ता मे अत्यधिक लीन। **आहार आहारेइ**—वायु, तेलमालिश आदि आदि या मोदकादि आहार्य पदार्थ है। तीव्र क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से असमाधि उत्पन्न होने पर उसके उपशमनार्थ पूर्वोक्त आहार का उपभोग करता है। **वीससाए**—विश्रसा—स्वाभाविक रूप से। **काल करेइ**—काल (मरण) के समान काल—मारणान्तिकसमुद्घात—करता है।

लवसप्तम-देव : स्वरूप एवं दृष्टान्तपूर्वक कारण-निरूपण

१२ [१] अत्थि ण भते! 'लवसत्तमा देवा, लवसत्तमा देवा'?

हता, अत्थि।

[१२-१ प्र] भगवन्! क्या लवसप्तम देव 'लवसप्तम' होते है?

[१२-१ उ] हाँ, गौतम! होते हैं।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५०

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ. २३३७-२३३८

३ भगवती आ वृत्ति, पत्र ६५०

[२] से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चइ 'लवसत्तमा देवा, लवसत्तमा देवा' ?

गोयमा ! से जहानामए केयि पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए सालीण वा वीहीण व गोधूमाण वा जवाण वा जवजवाण वा पिक्काण परियाताण हरियाण हरियकडाण तिक्खेण णवपज्जणएण असियएण पडिसाहरिया पडिसाहरिया पडिसखिविय पडिसखिविय जाव 'इणामेव इणामेव' त्ति कट्टु सत्त लए लएज्जा, जति ण गोयमा ! तेसि देवाण एवतियं काल आउए पहुप्पते तो ण ते देवा तेण चेव भवग्गहणेणं सिज्झता जाव अत करेंता। से तेणट्ठेण जाव लवसत्तमा देवा, लवसत्तमा देवा।

[१२-२ प्र.] भगवन् ! उन्हे 'लवसप्तम' देव क्यो कहते है ?

[१२-२ उ] गौतम ! जैसे कोई तरुण पुरुष यावत् शिल्पकला मे निपुण एव सिद्धहस्त हो, वह परिपक्व, काटने योग्य अवस्था को प्राप्त, (पर्यायप्राप्त), पीले पडे हुए तथा (पत्तो की अपेक्षा से) पीले जाल वाले, शालि, व्रीहि, गेहूँ, जौ, और जवजव (एक प्रकार का धान्य विशेष) की बिखरी हुई नालो को हाथ से इकट्ठा करके मुट्ठी मे पकड कर नई धार पर चढाई हुई तीखी दराती से शीघ्रतापूर्वक 'ये काटे, ये काटे'—इस प्रकार सात लवो (मुट्ठो) को जितने समय मे काट लेता है, हे गौतम ! यदि उन देवो का इतना (सात लवो को काटने जितना समय (पूर्वभव का) अधिक आयुष्य होता तो वे उसी भव मे सिद्ध हो जाते, यावत् सर्व-दुःखो का अन्त कर देते। इसी कारण से, हे गौतम ! (सात लव का आयुष्य कम होने से) उन देवो को 'लवसप्तम' कहते है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (सू. १२, १-२) मे बताया है कि अनुत्तरौपपातिक देवो मे कुछ ऐसे देव होते है, जिनका आयुष्य सात लव अधिक होता तो वे सर्वार्थसिद्ध देव न होकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाते। इसी कारण से इन्हे 'लवसप्तम' कहा है, इस तथ्य को धान्य को मुट्ठो (लयनीय-अवस्था-प्राप्त कवलियो) के दृष्टान्तपूर्वक समझाया गया है।[1]

कठिनशब्दार्थ—परियायाण—काटने योग्य अवस्था (पर्याय) को प्राप्त। **हरियाणं**—पिंगल (पीले) पडे हुए। **हरिय-कडाणं**—पीले पडे हुए जाल वाले (अवथा पीली नाल वाले)। **णव-पज्जणएण**—ताजे लोहे को आग मे तपा कर घन से कूट कर तीखे किये हुए। **असियएण**—दात्र से—दराँती से। **पडिसाहरिया**—बिखरी हुई नालो को हाथ से इकट्ठी करके, **सखिविया**—मुट्ठी मे पकड कर।[2]

लवसप्तम देव नाम क्यो पड़ा ?—शालि आदि धान्य का एक मुट्ठा (कवलिया) काटने मे जितना समय लगता है, उसे 'लव' कहते है। ऐसे सात लव परिमाण आयुष्य (पूर्वभव-मनुष्यभव मे) कम होने से वे विशुद्ध अध्यवसाय वाले मानव मोक्ष मे नही जा सके, किन्तु सर्वार्थसिद्धि विमान मे उत्पन्न हुए। इसी कारण वे 'लवसप्तम' कहलाते है।[3]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मू पा टिप्पणयुक्त) पृ ६७७-६७८

२, भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५१

३ वही, अ वृत्ति, पत्र ६५१

अनुत्तरौपपातिक देव : स्वरूप, कारण और उपपातहेतुककर्म

१३. [१] अत्थि ण भंते ! अणुत्तरोववातिया देवा, अणुत्तरोववातिया देवा ?

हंता, अत्थि ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! क्या अनुत्तरौपपातिक देव, अनुत्तरौपपातिक होते हैं ?

[१३-१ उ] हाँ, गौतम ! होते हैं ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'अणुत्तरोववातिया देवा, अणुत्तरोववातिया देवा' ?

गोयमा ! अणुत्तरोववातियाण देवाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ अणुत्तरोववातिया देवा, अणुत्तरोववातिया देवा ।

[१३-२ प्र] भगवन् ! वे अनुत्तरौपपातिक देव क्यों कहलाते है ?

[१३-२ उ] गौतम ! अनुरौपपातिक देवो को अनुत्तर शब्द, यावत्—(अनुत्तर रूप, अनुत्तर रस, अनुत्तर गन्ध और) अनुत्तर स्पर्श प्राप्त होते हैं, इस कारण, हे गौतम ! अनुत्तरौपपातिक देवो को अनुत्तरौपपातिक देव कहते है ।

१४. अणुत्तरोववातिया ण भंते ! देवा केवतिएण कम्मावसेसेणं अणुत्तरोववातियदेवत्ताए उववन्ना ?

गोयमा ! जावतिय छट्ठभत्तिए समणे निग्गथे कम्मं निज्जरेति एवतिएणं कम्मावसेसेणं अणुत्तरोववातिया देवा अणुत्तरोववातियदेवत्ताए उववन्ना ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। चोद्दसमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।।१४.७ ।।

[१४ प्र] भगवन् ! कितने कर्म शेष रहने पर अनुत्तरौपपातिक देव, अनुत्तरौपपातिक देवरूप मे उत्पन्न हुए हैं ?

[१४ उ] गौतम ! श्रमणनिर्ग्रन्थ षष्ठ-भक्त (वेले के) तप द्वारा जितने कर्मों की निर्जरा करता है, उतने कर्म शेष रहने पर अनुत्तरौपपातिक-योग्य साधु, अनुत्तरौपपातिक देवरूप मे उत्पन्न हुए हैं ।

हे भगवन् यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी, यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे अनुत्तरौपपातिक देवो के अस्तित्व का समर्थन, उनके अनुत्तरौपपातिक होने का कारण तथा कितने कर्म अवशेष रहने पर अनुत्तरौपपातिक देवत्व प्राप्त होता है ? इसकी परिचर्चा की गई है ।

अनुत्तरौपपातिक का शब्दशः अर्थ—जिनका उपपातजन्म अनुत्तरो शब्दादि विषयो का योग होने से अनुत्तर—सर्वप्रधान—होता है, वे अनुत्तरौपपातिक कहलाते है ।[1]

अनुत्तरौपपातिक देवत्वप्राप्ति की योग्यता—कोई श्रमण निर्ग्रन्थ सुसाधु षष्ठभक्त तप से जितने कर्मों की निर्जरा करता है, उतने कर्म अवशिष्ट रहने पर उस साधु को अनुत्तरौपपातिक देवत्व की प्राप्ति होती है ।[2]

।। चौदहवां शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ अनुत्तर—सर्वप्रधानोऽनुत्तरशब्दादिविषययोगात् उपपातो—जन्म अनुत्तरोपपात, सोऽस्ति येषा तेऽनुत्तरोपपातिका । —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५१

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ६५१

अट्ठमो उद्देसओ : 'अंतरे'

अष्टम उद्देशक : (विविध पृथ्वियों का परस्पर) अन्तर

रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी एवं अलोक पर्यन्त परस्पर अबाधान्तर की प्ररूपणा

१. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सक्करप्पभाए य पुढवीए केवतियं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते ।

[१ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी का कितना अबाधा-अन्तर कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! (इन दोनों नरक-पृथ्वियों का) अबाधा-अन्तर असंख्यात हजार योजन का कहा गया है ।

२. सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए वालुयप्पभाए य पुढवीए केवतियं० ?

एवं चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी और वालुकाप्रभापृथ्वी का कितना अबाधा-अन्तर कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) समझना चाहिए ।

३. एवं जाव तमाए अहेसत्तमाए य ।

[३] इसी प्रकार (वालुकाप्रभापृथ्वी से लेकर) यावत् तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए ।

४. अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए अलोगस्स य केवतियं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते ।

[४ प्र.] भगवन् ! अधःसप्तमपृथ्वी और अलोक का कितना अबाधा-अन्तर कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! (इन दोनों का) असंख्यात हजार योजन का अबाधा-अन्तर कहा गया है ।

५. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए जोतिसस्स य केवतियं० पुच्छा ।

गोयमा ! सत्तनउए जोयणसए अबाहाए अंतरे पन्नत्ते ।

[५ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी और ज्योतिष्क-विमानों का कितना अबाधा-अन्तर कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! (इन दोनों का) अबाधा-अन्तर ७९० योजन का कहा गया है ।

६. जोतिसस्स णं भंते ! सोहम्मीसाणाण य कप्पाणं केवतियं० पुच्छा ।

गोयमा ! असखेज्जाइं जोयणाई जाव[1] अतरे पन्नत्ते ।

[६ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्कविमानो और सौधर्म-ईशानकल्पो का अबाधा-अन्तर कितना कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! इनका अबाधान्तर यावत् असख्यात योजन कहा गया है ।

७. सोहम्मीसाणाणं भंते ! सणकुमार-माहिंदाण य केवतियं० ?

एवं चेव ।

[७ प्र] भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प और सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पो का कितना अबाधान्तर कहा गया है ?

[७ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए ।

८. सणकुमार-माहिंदाण भंते ! बंभलोगस्स य कप्पस्स केवतियं० ?

एव चेव ।

[८ प्र] भगवन् ! सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प और ब्रह्मलोककल्प का अबाधान्तर कितना कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! इनका अबाधान्तर भी पूर्ववत् है ।

९. बंभलोगस्स णं भंते ! लतगस्स य कप्पस्स केवतियं० ?

एव चेव ।

[९ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प और लान्तककल्प के अबाधान्तर के विषय मे (पूर्ववत्) प्रश्न ।

[९ उ] गौतम ! (इन दोनो का अबाधान्तर पूर्ववत्) इसी प्रकार (समझना चाहिए ।)

१० लतयस्स णं भंते ! महासुक्कस्स य कप्पस्स केवतियं० ?

एवं चेव ।

[१० प्र] भगवन् ! लान्तककल्प और महाशुक्र कल्प का अबाधान्तर कितना है ?

[१० उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए ।

---

१ 'जाव' पद सूचक प्रज्ञापनासूत्रपाठ—"कहि ण भते ! सोहम्मगदेवाण पज्जत्तापज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! सोहम्मगदेवा परिवसति ? गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वतस्स दाहिणेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढ चदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाण बहूणि जोयणसताणि बहूइं जोयणसहस्साइ बहूइ जोयणसतसहस्साइ बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता एत्थ ण सोहम्मे णाम कप्पे पण्णत्ते०" श्री महावीरजैनविद्यालयप्रकाशित 'पण्णवणासुत्त भाग १' पृ ७०, सू० १९७ [१] ॥

११ एवं महासुक्कस्स सहस्सारस्स य ।

[११] इसी प्रकार (पूर्ववत्) महाशुक्र-कल्प और सहस्रारकल्प का अवाधान्तर जानना चाहिए।

१२ एव सहस्सारस्स आणय-पाणयाण य कप्पाण ।

[१२] इसी प्रकार सहस्रारकल्प और आनत-प्राणनकल्पो का अवाधान्तर है।

१३ एव आणय-पाणयाण आरणऽच्चुयाण य कप्पाण ।

[१३] आनत-प्राणतकल्पो और आरण-अच्युतकल्पो का अवाधान्तर भी इसी प्रकार है।

१४. एव आरणऽच्चुताण गेवेज्जविमाणाण य ।

[१४] आरण-अच्युतकल्पो और ग्रैवेयक विमानो का अवाधान्तर भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

१५. एवं गेवेज्जविमाणाण अणुत्तरविमाणाण य ।

[१५] इसी प्रकार ग्रैवेयक विमानो और अनुत्तर विमानो का अवाधान्तर समझना चाहिए।

१६. अणुत्तरविमाणाण भते ! ईसिपब्भाराए य पुढवीए केवतिए० पुच्छा ।

गोयमा ! दुवालसजोयणे अवाहाए अतरे पन्नत्ते ।

[१६ प्र] भगवन् ! अनुत्तरविमानो और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का अवाधान्तर कितना कहा गया है ?

[१६ उ] गौतम ! (इनका) वारह योजन का अवाधान्तर कहा गया है।

१७. ईसिपब्भाराए ण भते ! पुढवीए अलोगस्स य केवतिए अवाहाए० पुच्छा ।

गोयमा ! देसूण जोयणं अवाहाए अतरे पन्नत्ते ।

[१७ प्र] भगवन् ! ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी और अलोक का कितना अवाधान्तर कहा गया है ?

[१७ उ] गौतम ! (इन दोनो का) अवाधान्तर देशोन योजन (एक योजन से कुछ कम) का कहा गया है।

विवेचन—अवाधा-अन्तर की परिभाषा—यद्यपि अन्तर शब्द मध्य, विशेप आदि अनेक अर्थो मे प्रयुक्त होता है, अत यहाँ अन्य अर्थो को छोड कर एकमात्र व्यवधान अर्थ ही गृहीत हो, इसलिए 'अवाधा' शब्द को 'अन्तर' के पूर्व जोडा गया है। वाधा कहते है—परस्पर सश्लेप होने से होने वाली टक्कर (सघर्पण) को। वैसी वाधा न हो, इसका नाम अवाधा। अवाधापूर्वक अन्तर अर्थात्—व्यवधान, या दूरी अवाधान्तर है। सभी प्रश्नो का आशय यह है कि एक पृथ्वी से दूसरी पृथ्वी आदि की दूरी कितनी है ?[१]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५२

(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिकाटीका) भा ११, पृ-३५८

अवाधान्तर का मापदण्ड—प्रस्तुत मे जो योजनो का प्रमाण बताया गया है, वह प्राय प्रमाणागुल से निष्पन्न समझना चाहिए। कहा भी है—

'**नग-पुढवि-विमाणाइ मिणसु पमाणगुलेण तु।**' 'पर्वत, पृथ्वी और विमानो का माप प्रमाणागुल से करना चाहिए।'

किन्तु ईषत्प्राग्भारापृथ्वी और अलोक के बीच मे जो देशोन योजन का अवाधान्तर (दूरी) बताया है, वह उत्सेधागुल प्रमाण से समझना चाहिये। क्योंकि उस योजन के उपरितन कोस के छठे भाग मे सिद्धो की अवगाहना कही गई है, जो ३३३ धनुष और धनुष के त्रिभाग प्रमाण है। यह अवगाहना उत्सेधागुल (योजन) मानने से ही सगत हो सकती है।[1]

शालवृक्ष, शालयष्टिका और उदुम्बरयष्टिका के भावी भवो की प्ररूपणा

१८. [१] एस ण भते! सालरुक्खए उण्हाभिहते तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिति, कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! इहेव रायगिहे नगरे सालरुक्खत्ताए पच्चायाहिति। से ण तत्थ अच्चियवदियपूइय-सक्कारियसम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइयमहिते यावि भविस्सइ।

[१८-१ प्र] भगवन्! सूर्य की गर्मी से पीडित, तृषा से व्याकुल, दावानल की ज्वाला से झुलसा हुआ यह (प्रत्यक्ष दृश्यमान) शालवृक्ष काल मास मे (मृत्यु के समय मे) काल करके कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा?

[१८-१ उ] गौतम! यह (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला) शालवृक्ष, इसी राजगृहनगर मे पुन शालवृक्ष के रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ यह अर्चित, वन्दित, पूजित, सत्कृत, सम्मानित और दिव्य (दैवीगुणो मे युक्त), सत्य, सत्यावपात, सन्निहित-प्रातिहार्य (पूर्वभवसम्बन्धी देवो द्वारा प्रातिहार्य-सामीप्य प्राप्त किया हुआ) होगा तथा इसका पीठ (चबूतरा), लीपा-पोता हुआ एव पूजनीय होगा।

[२] से ण भते! तओहितो अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अत काहिति।

[१८-२ प्र] भगवन्! वह (पूर्वोक्त) शालवृक्ष वहाँ से मर कर कहाँ जाएगा और कहाँ उत्पन्न होगा?

[१८-२ उ] गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सब दु खो का अन्त करेगा।

१९. [१] एस ण भते! साललट्ठिया उण्हाभिहया तण्हाभिहया दवग्गिजालाभिहया कालमासे जाव कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले महेसरीए नगरीए सामलिरुक्खत्ताए पच्चायाहिति। सा ण तत्थ अच्चियवदियपूइए जाव लाउल्लोइयमहिया यावि भविस्सइ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५२

[१९-१ प्र] भगवन् ! सूर्य के ताप से पीडित, तृषा से व्याकुल तथा दावानल की ज्वाला से प्रज्वलित यह शाल-यष्टिका कालमास मे काल करके कहाँ जाएगी ?, कहाँ उत्पन्न होगी ?

[१९-१ उ] गौतम ! इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे विन्ध्याचल के पादमूल (तलहटी) मे स्थित माहेश्वरी नगरी मे शाल्मली (सेमर) वृक्ष के रूप मे पुन उत्पन्न होगी। वहाँ वह अर्चित, वन्दित और पूजित होगी, यावत् उसका चबूतरा लीपा-पोता हुआ होगा और वह पूजनीय होगी ।

[२] से ण भते ! तओहिंतो अणतरं०, सेसं जहा सालरुक्खस्स जाव अंत काहिति ।

[१९-२ प्र] भगवन् ! वह वहाँ से काल कर के कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

[१९-२ उ] गौतम (पूर्वोक्त) शालवृक्ष के समान (इसके विषय मे भी) यावत् वह सर्वदु खो का अन्त करेगी, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

२०. [१] एस ण भते ! उबरलट्ठिया उण्हाभिहया तण्हाभिहया दवग्गिजालाभिहया कालमासे काल जाव कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पाडलिपुत्ते नामं नगरे पाडलिरुक्खत्ताए पच्चायाहिति । से ण तत्थ अच्चितवंदिय जाव भविस्सइ ।

[२०-१ प्र] भगवन् ! दृश्यमान सूर्य की उष्णता से सतप्त, तृषा से पीडित और दावानल की ज्वाला से प्रज्वलित यह (प्रत्यक्ष दृश्यमान) उदुम्बरयष्टिका (उम्बर वृक्ष की शाखा) कालमास मे काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

[२०-१ उ] गौतम ! इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे पाटलिपुत्र नामक नगर मे पाटली वृक्ष के रूप के पुनः उत्पन्न होगी । वह वहाँ अर्चित, वन्दित यावत् पूजनीय होगी ।

[२] से ण भते ! अणतरं उव्वट्टित्ता० ।

सेसं त चेव जाव अत काहिति ।

[२०-२ प्र] भगवन् ! वह (पूर्वोक्त उदुम्बर-यष्टिका) यहाँ से काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

[२०-२ उ] गौतम ! पूर्ववत् समग्र कथन करना चाहिए, यावत्—वह सर्वदु खो का अन्त करेगी ।

विवेचन—राजगृह मे विराजमान भगवान् महावीर से वनस्पति मे जीवत्व के प्रति अश्रद्धालु श्रोताओ (व्यक्तियो) की अपेक्षा से श्री गौतमस्वामी ने प्रत्यक्ष दृश्यमान शालवृक्ष, शालयष्टिका और उदुम्बरयष्टिका के भविष्य मे अन्य भव मे उत्पन्न होने आदि के सम्बन्ध मे तीन प्रश्न (तीन सूत्रो १८-१९-२० मे) उठाए हैं, जिनका यथार्थ समाधान भगवान् ने किया है ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५३

कठिनशब्दार्थ—दिव्वे—दिव्य, प्रधान। **सच्चोवाए**—सत्यावपात—जिसकी की गई सेवा सफल होती है। **सन्निहियपाडिहेरे**—पूर्वभव से सम्बन्धित देव के द्वारा किया गया सान्निध्य। **लाउल्लोइयमहिते**—जिसका पीठ (चबूतरा) लीपा-पुता हुआ तथा पूजनीय होगा।[1]

शाल वृक्षादि सम्बन्धी तीन प्रश्न—यद्यपि शालवृक्ष आदि मे अनेक जीव होते है, तथापि प्रथम जीव की अपेक्षा से ये तीनो प्रश्न प्रस्तुत किये गए है।[2]

अम्वडपरिव्राजक के सात सौ शिष्य आराधक हुए

२१. तेण कालेण तेण समएण अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसया गिम्हकालसमयंसि एव जहा उववातिए जाव आराहगा।

[२१] उस काल, उस समय अम्बड परिव्राजक के सात सौ शिष्य (अन्तेवासी) ग्रीष्म ऋतु के समय मे विहार कर रहे थे, इत्यादि समस्त वर्णन औपपातिक सूत्रानुसार, यावत्—वे (सभी) आराधक हुए, यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—सात सौ आराधक अम्वड-परिव्राजक शिष्य—औपपातिक सूत्रानुसार सक्षेप मे वृत्तान्त इस प्रकार है—एक वार ग्रीष्मकाल मे अम्वड परिव्राजक के सात सौ शिष्य गगानदी के दोनो किनारो पर आए हुए काम्पिल्यपुर नगर से पुरिमताल नगर की ओर जा रहे थे। जव उन्होने अटवी मे प्रवेश किया तव साथ मे लिया हुआ पानी पी लेने से समाप्त हो गया। अत प्यास से वे सव पीडित हो गए। पास ही गगा नदी मे निर्मल जल वह रहा था। किन्तु उनकी अदत्त (विना दिये हुए) ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा थी। कोई भी जल का दाता उन्हे वहाँ न मिला। वे तृषा से अत्यन्त व्याकुल हुए। उनके प्राण सकट मे पड गए। अन्त मे सभी मरणासन्न साधको ने अर्हन्त भगवान् को 'नमस्कार' करके गगा नदी के किनारे ही यावज्जीव अनशन (सथारा) ग्रहण कर लिया। काल करके वे सभी ब्रह्मलोक कल्प मे उत्पन्न हुए। इस प्रकार वे सभी परलोक के आराधक हुए।[3]

अम्वडपरिव्राजक को दो भवो के अनन्तर मोक्ष प्राप्ति की प्ररूपणा

२२ बहुजणे ण भते! अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति ४—एव खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे नगरे घरसते?

एव जहा उववातिए अम्मडवत्तव्वया जाव दढप्पतिण्णे अंत काहिति।

[२२ प्र] भगवन्! वहुत-से लोग परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहते है यावत् प्ररूपणा करते है कि अम्वड परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर मे सौ घरो मे भोजन करता है तथा रहता है, (क्या यह सत्य है? इत्यादि प्रश्न)।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५३

२. वही, अ वृत्ति, पत्र ६५३

३. (क) औपपातिकसूत्र, सू ३९, पत्र ९४-९५ (आगमोदय समिति)
   (ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ६५३

[२२ उ] हाँ गौतम ! यह सत्य है, इत्यादि औपपातिकसूत्र मे कथित अम्वड-सम्वन्धी वक्तव्यता, यावत्-महर्द्धिक दृढप्रतिज्ञ होकर सर्व दु खो का अन्त करेगा (यहाँ तक कहना चाहिए।)

विवेचन—श्री गौतमस्वामी ने जव यह सुना कि कम्पिलपुर मे अम्वड परिव्राजक एक साथ-एक ही समय मे सौ घरो मे रहता हुआ, सौ घरो मे भोजन करता है, तव उन्होने भगवान् मे इस विपय मे पूछा कि क्या यह सत्य है ? भगवान् ने कहा—हाँ, गौतम ! अम्वड को वैक्रियलब्धि प्राप्त है। उसी के प्रभाव मे वह जनता को विस्मित-चकित करने के लिए एक साथ सौ घरो मे रहता है और भोजन भी करता है। तत्पश्चात् गौतमस्वामी ने पूछा—भगवन् ! क्या अम्वड परिव्राजक आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करेगा ? भगवान् ने कहा—ऐसा सम्भव नही है। यह केवल जीवाजीवादि तत्त्वो का ज्ञाता (सम्यक्त्वी) होकर अन्तिम समय मे यावज्जीवन अनशन करेगा और काल करके ब्रह्मलोककल्प मे उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र मे दृढप्रतिज्ञ नामक महर्द्धिक के रूप जन्म लेगा और चारित्र-पालन करके अन्त समय मे अनशनपूर्वक मर कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा यावत् सर्व दु खो का अन्त करेगा। यह औपपातिकसूत्रोक्त वक्तव्यता का आशय है।[1]

अव्यावाध देवो की अव्यावाधता का निरूपण

२३. [१] अत्थि णं भते ! अव्वावाहा देवा, अव्वाबाहा देवा ?

हंता अत्थि।

[२३-१ प्र] भगवन् ! क्या किसी को वाधा-पीडा नही पहुँचाने वाले अव्यावाध देव हैं ?

[२३-१ उ] हाँ, गौतम ! वे है।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति 'अव्वावाहा देवा, अव्वावाहा देवा' ?

गोयमा ! पभू ण एगमेगे अव्वावाहे देवे एगमेगस्स पुरिसस्स एगमेगंसि अच्छिपत्तसि दिव्वं देविड्ढि दिव्व देवजुति दिव्व देवाणुभागं दिव्व वत्तीसतिविह नट्टविहिं उवदसेत्तए, णो चेव ण तस्स पुरिसस्स किंचि आवाह वा वावाह वा उप्पाएति, छविच्छेयं वा करेति, एसुहुमं च णं उवदंसेज्जा। से तेणट्ठेणं जाव अव्वावाहा देवा, अव्वावाहा देवा।

[२३-२ प्र] भगवन् ! अव्यावाधदेव, अव्यावाधदेव किस कारण से कहे जाते हैं ?

[२३-२ उ] गौतम ! प्रत्येक अव्यावाधदेव, प्रत्येक पुरुष की, प्रत्येक आँख की पपनी (पलक) पर दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव (प्रभाव) और वत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि दिखलाने मे समर्थ है। ऐसा करके वह देव उस पुरुष को किंचित् मात्र भी आवाधा या व्यावाधा (थोडी या अधिक पीडा) नही पहुँचाता और न उनके अवयव का छेदन करता है। इतनी सूक्ष्मता मे वह (अव्यावाध) देव नाट्यविधि दिखला सकता है। इस कारण, हे गौतम ! किसी को जरा भी वाधा न पहुँचाने के कारण वे अव्यावाधदेव कहलाते हैं।

विवेचन—**अव्यावाधदेव कौन और किस जाति के ?**—जो दूसरो को व्यावाधा—पीडा नही पहुँचाते है, वे अव्यावाध कहलाते है। ये लोकान्तिक देवो की जाति के होते हैं। लोकान्तिक

---

१ (क) औपपातिक सूत्र सू ४०, पत्र ९६-९९ (आगमोदय समिति)
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५३

देवों के ९ भेद हैं—(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण (या अरुण) (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) अव्याबाध, (८) अग्न्यर्च (मरुत) और (९) रिष्ट। इनमे से वे अव्याबाध देव हैं।[1]

कठिनशब्दार्थ—**अच्छिपत्तसि**—नेत्र की पलक पर। **उवदसेत्तए पभू**—दिखलाने मे समर्थ है। **आबाहं**—किंचित् बाधा, **बाबाहं**—विशेष बाधा। **छविच्छेय**—शरीर छेदन करने मे। **एसुहुय**—इस प्रकार का सूक्ष्म।[2]

सिर काट कर कमण्डलु में डालने की शक्रेन्द्र की वैक्रियशक्ति

२४. [१] पभू ण भंते! सक्के देविंदे देवराया पुरिसस्स सीसं सापाणिणा असिणा छिंदित्ता कमंडलुम्मि पक्खिवित्तए?

हंता, पभू।

[२४-१ प्र] भगवन्! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, अपने हाथ मे ग्रहण की हुई तलवार से, किसी पुरुष का मस्तक काट कर कमण्डलु मे डालने मे समर्थ है?

[२४-१ उ] हाँ, गौतम! वह समर्थ है।

[२] से कहमिदाणिं पकरेइ?

गोयमा! छिंदिया छिंदिया व ण पक्खिवेज्जा, भिंदिया भिंदिया व ण पक्खिवेज्जा, कुट्टिया कुट्टिया व ण पक्खिवेज्जा, चुण्णिया चुण्णिया व ण पक्खिवेज्जा, ततो पच्छा खिप्पामेव पडिसंघातेज्जा, नो चेव ण तस्स पुरिसस्स किंचि आबाह वा वाबाह वा उप्पाएज्जा, छविच्छेयं पुण करेति, एसुहुमं च ण पक्खिवेज्जा।

[२४-२ प्र] भगवन्! वह (मस्तक को काट कर कमण्डलु मे) किस प्रकार डालता है?

[२४-२ प्र] गौतम! शक्रेन्द्र उस पुरुष के मस्तक को छिन्न-छिन्न (खण्ड-खण्ड) करके (कमण्डलु मे) डालता है। या भिन्न-भिन्न (वस्त्र की तरह चीर कर टुकडे-टुकडे) करके डालता है। अथवा वह कूट-कूट (ऊखल मे तिलो की तरह कूट) कर डालता है। या (शिला पर लोढी से पीसकर) चूर्ण कर करके डालता है। तत्पश्चात् शीघ्र ही वह मस्तक के उन खण्डित अवयवो को एकत्रित करता है और पुन मस्तक बना देता है। इस प्रक्रिया मे उक्त पुरुष के मस्तक का छेदन करते हुए भी वह (शक्रेन्द्र) उस पुरुष को थोडी या अधिक पीडा नही पहुँचाता। इस प्रकार सूक्ष्मतापूर्वक मस्तक काट कर वह उसे कमण्डलु मे डालता है।

---

१ (क) व्याबाधन्ते—पर पीडयन्तीति व्याबाधास्तन्निषेधादव्याबाधा, ते च लोकान्तिकदेवमध्यगता द्रष्टव्या। यदाह—

सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा देव रिट्ठा य॥ —भ अ वृ पत्र ६५४

(ख) सारस्वतादित्य-वह्न्यरुण-गर्दतोयतुषिताऽव्याबाध-मरुतोऽरिष्टाश्च। —तत्त्वार्थ अ ४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५४

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (२४, १-२) मे शक्रेन्द्र द्वारा किसी के मस्तक को छिन्न-भिन्न करके कमण्डलु मे डाल देने की विशिष्ट शक्ति और उसकी प्रक्रिया का निरूपण किया गया है।[1]

जृम्भक देवो का स्वरूप, भेद, स्थिति

२५ [१] अत्थि ण भते ! जभया देवा, जभया देवा ?

हता, अत्थि ।

[२५-१ प्र] भगवन् ! क्या [स्वच्छन्दाचारी की तरह चेष्टा करने वाले] जृम्भक देव होते है ?

[२५-१ उ] हाँ, गौतम ! होते है।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'जभया देवा, जभया देवा' ?

गोयमा ! जभगा ण देवा निच्च पमुदितपक्कीलिया कदप्परतिमोहणसीला, जे णं ते देवे कुद्धे पासेज्जा से ण महतं अयस पाउणेज्जा, जे ण ते देवे तुट्ठे पासेज्जा से णं महतं जस पाउणेज्जा, से तेणट्ठेण गोयमा ! 'जभगा देवा, जभगा देवा' ।

[२५-२ प्र] भगवन् ! वे जृम्भक देव किस कारण कहलाते है ?

[२५-२ उ] गौतम ! जृम्भक देव, सदा प्रमोदी, अतीव क्रीडाशील, कन्दर्प मे रत और मोहन (मैथुनसेवन) शील होते है। जो व्यक्ति उन देवो को क्रुद्ध हुए देखता है, वह महान् अपयश प्राप्त करता है और जो उन देवो को तुष्ट (प्रसन्न) हुए देखता है, वह महान् यश को प्राप्त करता है। इस कारण, हे गौतम ! वे जृम्भक देव कहलाते है।

२६. कतिविहा ण भते ! जभगा देवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पन्नत्ता, त जहा—अन्नजंभगा, पाणजभगा, वत्थजभगा, लेणजभगा, सयणजभगा, पुप्फजभगा, फलजभगा, पुप्फफलजभगा, विज्जाजभगा, अवियत्तिजभगा ।

[२६ प्र] भगवन् ! जृम्भक देव कितने प्रकार के कहे गए है ?

[२६ उ] गौतम ! वे दस प्रकार के कहे गए है। यथा—(१) अन्न-जृम्भक, (२) पान-जृम्भक, (३) वस्त्र-जृम्भक, (४) लयन-जृम्भक, (५) शयन-जृम्भक, (६) पुष्प-जृम्भक, (७) फल-जृम्भक, (८) पुष्प-फल-जृम्भक, (९) विद्या-जृम्भक और (१०) अव्यक्त-जृम्भक।

२७. जंभगा ण भते ! देवा कहिं वसहिं उवेंति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव दीहवेयड्ढेसु चित्तविचित्तजमगपव्वएसु कचणपव्वएसु य, एत्थ ण जभगा देवा वसहिं उवेंति ।

[२७ प्र] भगवन् ! जृम्भक देव कहाँ निवास करते है ?

[२७ उ] गौतम ! जृम्भक देव सभी दीर्घ (लम्बे-लम्बे) वैताढ्य पर्वतो मे, चित्र-विचित्र यमक पर्वतो मे तथा काचन पर्वतो मे निवास करते है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५४

२८. जंभगाणं भंते ! देवाण केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ?
गोयमा ! एग पलिओवमं ठिती पन्नत्ता ।
सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति जाव विरहति ।

॥ चोद्दसमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥ १४८ ॥

[२८ प्र] भगवन् ! जृम्भक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[२८ उ] गौतम ! जृम्भक देवो की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर, गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—जृम्भक देव जो अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द प्रवृत्ति करते है और सतत क्रीडा आदि मे रत रहते है, ऐसे तिर्यग्लोकवासी व्यन्तर जृम्भक देव हैं । ये अतीव कामक्रीडारत रहते हैं । ये वैरस्वामी की तरह वैक्रियलब्धि आदि प्राप्त करके शाप और अनुग्रह करने मे समर्थ होते है । इस कारण जिस पर प्रसन्न हो जाते है, उसे धनादि से निहाल कर देते हैं और जिन पर कुपित होते हैं, उन्हे अनेक प्रकार से हानि भी पहुँचाते है । इनके १० भेद है । (१) **अन्न-जृम्भक**—भोजन को सरस-नीरस कर देने या उसकी मात्रा बढा-घटा देने की शक्ति वाले देव, (२) **पान-जृम्भक**—पानी को घटाने-बढाने, सरस-नीरस कर देने वाले देव । (३) **वस्त्र-जृम्भक**—वस्त्र को घटाने-बढाने आदि की शक्ति वाले देव । (४) **लयन-जृम्भक**—घर-मकान आदि की सुरक्षा करने वाले देव । (५) **शयन-जृम्भक**—शय्या आदि के रक्षक देव । (६-७-८) **पुष्प-जृम्भक, फल-जृम्भक एव पुष्प-फल-जृम्भक**—फूलो, फलो एव पुष्प-फलो की रक्षा करने वाले देव । कही-कही ८ वें पुष्पफल जृम्भक के बदले 'मंत्र-जृम्भक' नाम मिलता है । (९) **विद्या-जृम्भक**—देवी के मत्रो—विद्याओ की रक्षा करने वाले देव और (१०) **अव्यक्त-जृम्भक**—सामान्यतया, सभी पदार्थो की रक्षा आदि करने वाले देव । कही कही इसके स्थान मे 'अधिपति-जृम्भक' पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होता है—राजा आदि नायक के विषय मे जृम्भक देव ।[1]

निवासस्थान—पाच भरत, पाच ऐरवत और पाच महाविदेह, इन १५ क्षेत्रो मे १७० दीर्घ वैताढ्यपर्वत है । प्रत्येक क्षेत्र मे एक-एक पर्वत है तथा महाविदेह क्षेत्र के प्रत्येक विजय मे एक-एक पर्वत है ।

देवकुरु मे शीतोदा नदी के दोनो तटो पर चित्रकूटपर्वत है । उत्तरकुरु मे शीतानदी के दोनो तटो पर यमक-समक पर्वत है । उत्तरकुरु मे शीतानदी से सम्बन्धित नीलवान् आदि ५ द्रह है । उनके पूर्व-पश्चिम दोनो तटो पर दस-दस काचनपर्वत हैं । इस प्रकार उत्तरकुरु मे १०० काचनपर्वत है ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५८

देवकुरु मे शीतोदा नदी से सम्बन्धित निषध आदि ५ द्रहो के दोनो तटो पर दस-दस काचनपर्वत हैं। इस तरह ये भी १०० काचनपर्वत हुए। दोनो मिलकर २०० काचनपर्वत हैं। इन पर्वतो पर जृम्भक देव रहते हैं।[१]

॥ चौदहवाँ शतक : आठवाँ उद्देशक समाप्त ॥

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५४-६५५
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३५३

नवमो उद्देसओ : 'अणगारे'

नौवाँ उद्देशक : भावितात्मा अनगार

भावितात्मा अनगार की ज्ञान सम्बन्धी और प्रकाशपुद्गलस्कन्ध सम्बन्धी प्ररूपणा

१. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणति, न पासति, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ, पासइ ?

हंता, गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा अप्पणो जाव पासति ।

[१ प्र] भगवन् ! अपनी कर्मलेश्या को नहीं जानने-देखने वाला भावितात्मा अनगार, क्या सरूपी(सशरीर) और कर्मलेश्या-सहित जीव को जानता-देखता है ?

[१ उ] हाँ, गौतम ! भावितात्मा अनगार, जो अपनी कर्मलेश्या को नहीं जानता-देखता, वह सशरीर एवं कर्मलेश्या वाले जीव को जानता-देखता है ।

२. अत्थि णं भंते ! सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासंति ४ ?

हंता, अत्थि ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या सरूपी (वर्णादियुक्त), सकर्मलेश्य (कर्मयोग्य कृष्णादि लेश्या के) पुद्गलस्कन्ध अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! वे अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं ।

३. कयरे णं भंते ! सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासंति जाव पभासेंति ?

गोयमा ! जाओ इमाओ चंदिम-सूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेस्साओ बहिया अभिनिस्सडाओ पभासेंति एए णं गोयमा ! ते सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति ४ ।

[३ प्र] भगवन् ! वे सरूपी कर्मलेश्य पुद्गल कौन-से हैं, जो अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं ?

[३ उ] गौतम ! चन्द्रमा और सूर्य देवों के विमानों से बाहर निकली हुई (ये जो) लेश्याएँ (चन्द्र-सूर्य-निर्गत तेज की प्रभाएँ) प्रकाशित, अवभासित यावत् उद्योतित प्रद्योतित, एवं प्रभासित होती हैं, ये ही वे (चन्द्र-सूर्य-निर्गत तेजोलेश्याएँ) हैं, जिनसे, हे गौतम ! वे (पूर्वोक्त) सरूपी सकर्मलेश्य पुद्गलस्कन्ध अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं ।

विवेचन—भावितात्मा अनगार का जानने-देखने का सामर्थ्य—भावितात्मा अनगार वह कहलाता है, जिसका अन्तःकरण तप और संयम से भावित—सुवासित हो । वह यद्यपि छद्मस्थ (अवधिज्ञानादिरहित) होने से ज्ञानावरणीयादि कर्मों के योग्य अथवा कर्मसम्बन्धी कृष्णादि लेश्याओं को जान-देख नहीं सकता, क्योंकि कृष्णादि लेश्याएँ और उनसे श्लिष्ट कर्मद्रव्य अतीव सूक्ष्म होने से

छद्मस्थ के ज्ञान से अगोचर होते है। किन्तु वह कर्म और लेश्या से युक्त तथा शरीरसहित जीव (अपनी आत्मा) को तो जानता—देखता ही है, क्योकि शरीर चक्षु द्वारा ग्राह्य है तथा आत्मा शरीर से सम्बद्ध होने से कथचित् अभेद एव स्वसविदित होने से भावितात्मा अनगार कर्म एव लेश्या से युक्त तथा शरीरसहित स्वात्मा को जानता है।[1]

वर्णादिवाले (सरूवी) एवं कर्मलेश्या वाले पुद्गल-स्कन्ध—चन्द्रमा और सूर्य के विमानो से निकली हुई जो तेजस्वी प्रभाएँ (लेश्याएँ) प्रकाशित होती है, उन लेश्याओ के प्रकाश से ही पूर्वोक्त सरूपी (वर्णादिवाले) और कर्मलेश्या वाले पुद्गल-स्कन्ध भी प्रकाशित होते है। यद्यपि चन्द्र-सूर्य के विमान के पुद्गल पृथ्वीकायिक होने से सचेतन है, इस कारण उनमे कर्मलेश्यावत्ता तो उचित है, किन्तु उनसे निकले हुए प्रकाश के पुद्गल कर्मलेश्या वाले नही होते, तथापि वे उनसे निकले है, इस कारण वे प्रकाश के पुद्गल कार्य मे कारण के उपचार को लेकर कर्मलेश्या वाले कहे गए हैं।[2]

कठिनशब्दार्थ—**सरूवी**—सरूपी—रूप (मूर्त्तता) सहित, वर्णादि वाले या रूप और रूपवान् का अभेदसम्बन्ध होने से शरीर सहित। **सकम्मलेस्सा**—कर्मलेश्यासहित, अर्थात्—कर्मद्रव्यश्लिष्ट कृष्णादि लेश्यायुक्त। **लेस्साओ**—तेज की प्रभाएँ, तेजोलेश्याएँ। **बहियाअभिनिस्सडाओ**—बाहर अभिनि सृत-निकली हुई। **ओभासति**—प्रकाशित-प्रद्योतित होती है।[3]

चौवीस दण्डकों में आत्त-अनात्त, इष्टानिष्ट आदि पुद्गलो की प्ररूपणा

४. नेरतियाण भते ! किं अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला ?

गोयमा ! नो अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला।

[४ प्र] भगवन् ! नैरयिको के आत्त पुद्गल होते है अथवा अनात्त पुद्गल होते हैं ?

[४ उ] गौतम ! उनके आत्त पुद्गल नही होते, अनात्त पुद्गल होते है।

५. असुरकुमाराण भते ! किं अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला ?

गोयमा ! अत्ता पोग्गला, णो अणत्ता पोग्गला।

[५ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के आत्त पुद्गल होते है, अथवा अनात्त पुद्गल होते हैं ?

[५ उ] गौतम ! उनके आत्त पुद्गल होते है, अनात्त पुद्गल नही होते।

६. एव जाव थणियकुमाराण।

[६] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए।

७. पुढविकाइयाण पुच्छा।

गोयमा ! अत्ता वि पोग्गला, अणत्ता वि पोग्गला।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५५
(ख) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा ११, पृ ३९७

२ वही, प्रमेयचन्द्रिका टीका भा ११, पृ ३९७

३. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५५

[७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो के आत्त पुद्गल होते है अथवा अनात्त पुद्गल ?

[७ उ.] गौतम ! उनके आत्त पुद्गल भी होते है और अनात्त पुद्गल भी ।

८. एव जाव मणुस्साण ।

[८] इसी प्रकार (अप्कायिक जीवो से लेकर) यावत् मनुष्यो तक (के विषय मे) कहना चाहिए ।

९. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियाण जहा असुरकुमाराण ।

[९] वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के विषय मे असुरकुमारो के समान कहना चाहिए ।

१०. नेरतियाण भते ! कि इट्ठा पोग्गला, अणिट्ठा पोग्गला ?

गोयमा ! नो इट्ठा पोग्गला, अणिट्ठा पोग्गला ।

[१० प्र] भगवन् ! नैरयिको के पुद्गल इष्ट होते है या अनिष्ट होते है ?

[१० उ] गौतम ! उनके पुद्गल इष्ट नही होते, अनिष्ट पुद्गल होते है ।

११. जहा अत्ता भणिया एव इट्ठा वि, कता वि, पिया वि, मणुन्ना वि भाणियव्वा । एए पंच दडगा ।

[११] जिस प्रकार आत्त पुद्गलो के विषय मे (आलापक) कहे थे, उसी प्रकार इष्ट, कान्त, प्रिय तथा मनोज्ञ पुद्गलो के विषय मे (आलापक) कहने चाहिए। इस प्रकार ये पाच दण्डक कहने चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ४ से ११ तक) मे नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के पाच प्रकार के शुभ-अशुभ पुद्गलो के विषय मे प्रश्नोत्तर किया गया है ।

आत्त आदि का अर्थ—अत्ता : दो रूप. तीन अर्थ—आत्र—जो सब ओर से दु खो से त्राण-रक्षण करता है, सुख उत्पन्न करता है, वह दु खत्राता सुखोत्पादक आत्र है । (२) आप्त—एकान्त हितकारक । (३) अतएव रमणीय । **अनात्त**—दु खकारक—अहितकारी । **इट्ठा**—इष्ट—अभीष्ट । **कता**—कान्त—कमनीय । **पिया**—प्रिय—प्रीतिजनक । **मणुण्णा**—मनोज्ञ—मन के अनुकूल ।[1]

निष्कर्ष—नैरयिको के पुद्गल अनात्त, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय और अमनोज्ञ होते है, जबकि एकेन्द्रिय से लेकर मनुष्यो तक के पुद्गल आत्त-अनात्त, इष्टानिष्ट, कान्ताकान्त, प्रियाप्रिय और मनोज्ञ-अमनोज्ञ, दोनो प्रकार के होते है । चारो ही जाति के देवो के पुद्गल एकान्त आत्त, इष्ट, प्रिय और मनोज्ञ होते हैं ।[2]

---

१ (क) अत्त त्ति-आ—अभिविधिना त्रायन्ते—दु खात् सरक्षन्ति, सुख चोत्पादयन्तीति आत्रा , आप्ता वा—एकान्तहिता । अतएव रमणीया इति वृद्धैर्व्याख्यातम् । —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५६

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३५८

२ (क) भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३५८

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५६

महर्द्धिक वैक्रियशक्तिसम्पन्न देव की भाषासहस्रभाषणशक्ति

१२. [१] देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे रूवसहस्सं विउव्वित्ता पभू भासासहस्सं भासित्तए ?

हंता, पभू ।

[१२-१ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुखी देव क्या हजार रूपो की विकुर्वणा करके, हजार भाषाएँ बोलने मे समर्थ है ?

[१२-१ उ] हाँ, (गौतम !) वह समर्थ है ।

[२] सा ण भते ! कि एगा भासा, भासासहस्स ?

गोयमा ! एगा ण सा भासा, णो खलु तं भासासहस्स ।

[१२-२ प्र] भगवन् ! वह एक भाषा है या हजार भाषाएँ हैं ?

[१२-२ उ] गौतम ! वह एक भाषा है, हजार भाषाएँ नही ।

विवेचन—हजार भाषाएँ बोलने मे समर्थ, किन्तु एक समय मे भाष्यमाण एक भाषा— महर्द्धिक यावत् महासुखी देव हजार रूपो की विकुर्वणा करके हजार भाषाएँ बोल सकता है, किन्तु एक समय वह जो किसी प्रकार की सत्यादि भाषा बोलता है, वह एक ही भाषा होती है, क्योकि एक जीवत्व और एक उपयोग होने से वह एक भाषा कहलाती है, हजार भाषा नही ।[1]

सूर्य का अन्वर्थ तथा उनकी प्रभादि के शुभत्व की प्ररूपणा

१३. तेण कालेण तेणं समएणं भगव गोयमे अचिरुग्गत बालसूरियं जासुमणाकुसुमपुंजप्पगासं लोहीतग पासति, पासित्ता जातसड्ढे जाव समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव नमसित्ता जाव एव वयासी—किमिदं भते ! सूरिए, किमिदं भते ! सूरियस्स अट्ठे ?

गोयमा ! सुभे सूरिए, सुभे सूरियस्स अट्ठे ।

[१३ प्र] उस काल, उस समय मे भगवान् गौतम स्वामी ने तत्काल उदित हुए जासुमन नामक वृक्ष के फूलो (जपाकुसुम) के पुज के समान लाल (रक्त) बालसूर्य को देखा । सूर्य को देखकर गौतमस्वामी को श्रद्धा उत्पन्न हुई, यावत् उन्हे कौतूहल उत्पन्न हुआ, फलत जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके निकट आए और यावत् उन्हे वन्दन-नमस्कार किया और फिर इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! सूर्य क्या है ? तथा सूर्य का अर्थ क्या है ?

[१३ उ] सूर्य शुभ पदार्थ है तथा सूर्य का अर्थ भी शुभ है ।

१४. किमिदं भते ! सूरिए, किमिदं भंते ! सूरियस्स पभा ?

एवं चेव ।

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २३५८ (ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६५६

[१४ प्र] भगवन् ! 'सूर्य' क्या है और 'सूर्य की प्रभा' क्या है ?

[१४ उ] गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

१५. एवं छाया।

[१५] इसी प्रकार छाया (प्रतिबिम्ब) के विषय मे जानना चाहिए।

१६ एव लेस्सा।

[१६] इसी प्रकार लेश्या (सूर्य का तेज पुज या प्रभा) के विषय मे जानना चाहिए।

विवेचन—सूर्य शब्द का अन्वर्थ, प्रसिद्धार्थ एव फलितार्थ—सूर्य क्या पदार्थ है और सूर्य शब्द का क्या अर्थ है ? इस प्रकार श्री गौतमस्वामी के पूछे जाने पर भगवान् ने सूर्य का अन्वर्थ 'शुभ' वस्तु बताया, अर्थात्—सूर्य एक शुभस्वरूप वाला पदार्थ है, क्योकि सूर्य के विमान पृथ्वीकायिक होते है, इन पृथ्वीकायिक जीवो के आतप-नामकर्म की पुण्यप्रकृति का उदय होता है। लोक मे भी सूर्य प्रशस्त (उत्तम) रूप मे प्रसिद्ध है तथा यह ज्योतिष्चक्र का केन्द्र है। सूर्य का शब्दार्थ फलितार्थ के रूप मे इस प्रकार है—

'सूरेभ्यो हितः सूर्य'—इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो क्षमा, दान, तप और युद्ध आदि विषयक शूरवीरो के लिए हितकर (शुभ प्रेरणादायक) होता है, वह सूर्य है। अथवा 'तत्र साधु' इस सूत्रानुसार 'शूरो मे जो साधु हो' वह सूर्य है। इसलिए सूर्य का सभी प्रकार से 'शुभ' अर्थ घटित होता है। सूर्य की प्रभा, कान्ति और तेजोलेश्या भी शुभ है, प्रशस्त है।[1]

कठिनशब्दार्थ—अचिरुग्गय—तत्काल उदित। जासुमणाकुसुम-पुजप्पगास—जासुमन नामक वृक्ष के पुष्पपुञ्ज के समान। किमिद—क्या है ? पभा—प्रभा, दीप्ति। छाया—शोभा या प्रतिबिम्ब। लेश्या—वर्ण अथवा प्रकाश का समूह।[2]

श्रामण्यपर्यायसुख की देवसुख के साथ तुलना

१७ जे इमे भते ! अज्जत्ताए समणा निग्गथा विहरति एते ण कस्स तेयलेस्स वीतीवयति ?

गोयमा ! मासपरियाए समणे निग्गथे वाणमतराण देवाण तेयलेस्स वीतीवयति। दुमासपरियाए समणे निग्गथे असुरिंदवज्जियाण भवणवासीण देवाण तेयलेस्स वीयीवयति। एव एतेण अभिलावेणं तिमासपरियाए समणे० असुरकुमाराण देवाण (? असुरिंदाण) तेय०। चतुमासपरियाए स० गह-नक्खत्ततारारूवाण जोतिसियाण देवाण तेय०। पचमासपरियाए स० चदिम-सूरियाण जोतिसिंदाणं जोतिसराईण तेय०। छम्मासपरियाए स० सोधम्मीसाणाण देवाण०। सत्तमासपरियाए० सणकुमार-माहिंदाण देवाण०। अट्ठमासपरियाए बभलोग-लतगाण देवाण तेयले०। नवमासपरियाए समणे० महासुक्क-सहस्साराण देवाण तेय०। दसमासपरियाए सम० आणय-पाणय-आरण-अच्चुयाण देवाण०।

---

१ (क) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा ११, पृ ४०८

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५६

२ वही, पत्र ६५६

एक्कारसमासपरियाए० गेवेज्जगाणं देवाण०। बारसमासपरियाए समणे निग्गंथे अणुत्तरोववातियाण देवाण तेयलेस्सं वीतीवयति। तेण पर सुक्के सुक्काभिजातिए भवित्ता ततो पच्छा सिज्झति जाव अत करेति।

सेव भते! सेव भते! त्ति जाव विहरति।

॥ चोद्दसमे सए : नवमो उद्देसओ समत्तो ॥१४.९॥

[१७ प्र] भगवन्! जो ये श्रमण निर्ग्रन्थ आर्यत्वयुक्त (पापरहित) होकर विचरण करते हैं, वे किस की तेजोलेश्या (तेज-सुख) का अतिक्रमण करते हैं? (अर्थात्—इन श्रमण निर्ग्रन्थो का सुख, किनके सुख से बढकर-विशिष्ट या अधिक है?)

[१७ उ] गौतम! एक मास की दीक्षापर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ वाणव्यन्तर देवो की तेजोलेश्या (सुखासिका) का अतिक्रमण करता है, (अर्थात्—वह वाणव्यन्तर देवो से भी अधिक सुखी है)। दो मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ असुरेन्द्र (चमरेन्द्र और वलीन्द्र) के सिवाय (समस्त) भवनवासी देवो की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। इसी प्रकार इसी पाठ (अभिलाप) द्वारा तीन मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ, (असुरेन्द्र-सहित) असुरकुमार देवो की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। चार मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूप ज्योतिष्क देवो की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। पाच मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र और सूर्य की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। छह माम की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ सौधर्म और ईशानकल्पवासी देवो की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। सात मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ सनत्कुमार और माहेन्द्र देवो की तेजोलेश्या का, आठ मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ ब्रह्मलोक और लान्तक देवो की तेजोलेश्या का, नौ मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ महाशुक्र और सहस्रार देवो की तेजोलेश्या का, दस मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवो की तेजोलेश्या का, ग्यारह मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ, ग्रैवेयक देवो की तेजोलेश्या का और बारह मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अनुत्तरौपपातिक देवो की तेजोलेश्या का अतिक्रमण कर जाता है। इसके बाद शुक्ल (शुद्धचारित्री) एव परम शुक्ल (निरतिचार—विशुद्धतरचारित्री) हो कर फिर वह सिद्ध होता है, यावत् समस्त दु खो का अन्त करता है।

भगवन्! यह इसी प्रकार हैं, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे एक मास के दीक्षित साधु से लेकर बारह मास के दीक्षित श्रमण-निर्ग्रन्थ के सुख को अमुक-अमुक देवो के सुख से बढकर बताया गया है।

तेजोलेश्या शब्द का अर्थ, भावार्थ, सुखासिका क्यो?—यद्यपि तेजोलेश्या का शब्दश अर्थ होता है—तेज की प्रभा-द्युति आदि। परन्तु यहाँ यह अर्थ विवक्षित नही है। यहाँ तेज शब्द सुख के अर्थ मे व्यवहृत है। इसी कारण तेजोलेश्या का वृत्तिकार ने 'सुखासिका' अर्थ किया है। **सुखासिका** अर्थात्—सुखपूर्वक रहने की वृत्ति (परिणाम-धारा)। सुखासिका का अर्थ यहाँ सुख इसलिए विवक्षित

है कि तेजोलेश्या प्रशस्तलेश्या है और वह सुख की हेतु है। यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके तेजोलेश्या पद से सुखासिका अर्थ प्रतिपादित किया है।[1]

सुक्के सुक्काभिजातिए : विशेषार्थ—शुक्ल का अर्थ यहाँ अभिन्नवृत्त—(अखण्डचारित्री), अमत्सरी, कृतज्ञ, सदारम्भी एवं हितानुबन्ध है तथा 'शुक्लाभिजात्य' का अर्थ परमशुक्ल अर्थात्—निरतिचार-चारित्री—विशुद्धचारित्राराधक। एक वर्ष से अधिक दीक्षा पर्याय वाला क्रमशः शुक्ल एवं परमशुक्ल होकर अन्त में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त यावत् सर्वदुःखों का अन्त करने वाला होता है।

अज्जत्ताए—आर्यत्व से युक्त, अर्थात्—पापकर्म से दूर। **वीइवयति**—व्यतिक्रमण—लांघ जाते हैं।[2]

॥ चौदहवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६५६-६५७

(ख) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा. ११, पृ. ४१५

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६५७

दसमो उद्देसओ : 'केवली'

दसवाँ उद्देशक : केवली (और सिद्ध का ज्ञान)

केवली एवं सिद्ध द्वारा छद्मस्थादि को जानने-देखने का सामर्थ्य निरूपण

१. केवली णं भंते ! छउमत्थं जाणति पासति ?

हंता, जाणति पासति ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं ?

[१ उ] हाँ (गौतम !) जानते देखते हैं ।

२. जहा णं भंते ! केवली छउमत्थं जाणति पासति तहा णं सिद्धे वि छउमत्थं जाणति पासति ?

हंता, जाणति पासति ।

[२ प्र] भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी, छद्मस्थ को जानते-देखते हैं, क्या उसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं ?

[२ उ] हाँ, (गौतम !) (वे भी उसी तरह) जानते-देखते हैं ।

३. केवली णं भंते ! आहोहियं जाणति पासति ?

एवं चेव ।

[३ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी, आधोवधिक (प्रतिनियत क्षेत्र-विषयक अवधिज्ञान वाले) को जानते-देखते हैं ?

[३ उ] हाँ, गौतम ! वे जानते-देखते हैं ।

४. एवं परमाहोहियं ।

[४] इसी प्रकार परमावधिज्ञानी को भी (केवली एवं सिद्ध जानते-देखते हैं, यह कहना चाहिए ।)

५. एवं केवलिं ।

[५] इसी प्रकार केवलज्ञानी एवं सिद्ध यावत् केवलज्ञानी को जानते-देखते हैं ।

६. एवं सिद्धं जाव, जहा णं भंते ! केवली सिद्धं जाणति पासति तहा णं सिद्धे वि सिद्धं जाणति पासति ?

हंता, जाणति पासति ।

[६ प्र] इसी प्रकार केवलज्ञानी भी सिद्ध को जानते-देखते हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि जिस प्रकार केवलज्ञानी सिद्ध को जानते-देखते हैं, क्या उसी प्रकार सिद्ध भी (दूसरे) सिद्ध को जानते-देखते हैं ?

[६ उ] हाँ, (गौतम !) वे जानते-देखते हैं।

विवेचन—केवलज्ञानी और सिद्ध के ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत ६ सूत्रों में क्रमश सात प्रश्नोत्तर अंकित हैं—(१) क्या केवली छद्मस्थ को, (२) सिद्ध छद्मस्थ को, (३) केवली अवधिज्ञानी को, (४) केवली और सिद्ध परमावधिज्ञानी को, (५) केवली और सिद्ध केवलज्ञानी को, (६) केवलज्ञानी सिद्ध को तथा (७) सिद्ध सिद्धभगवान् को जानते-देखते हैं ? इन सातों के ही शास्त्रीय 'हाँ' में हैं।

केवली और सिद्धों द्वारा भाषण, उन्मेषण-निमेषणादिक्रिया-अक्रिया की प्ररूपणा

७. केवली ण भंते ! भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ?

हंता, भासेज्ज वा वागरेज्ज वा।

[७ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी बोलते हैं, अथवा प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

[७ उ] हाँ, गौतम ! वे बोलते भी हैं और प्रश्न का उत्तर भी देते हैं।

८. [१] जहा णं भंते ! केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा तहा णं सिद्धे वि भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ?

नो तिणट्ठे समट्ठे।

[८-१ प्र.] भगवन् ! जिस प्रकार केवली बोलते हैं या प्रश्न का उत्तर देते हैं, उसी प्रकार सिद्ध भी बोलते हैं और प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

[८-१ उ] यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नहीं है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहा णं केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ?

गोयमा ! केवली णं सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कारपरक्कमे, सिद्धे णं अणुट्ठाणे जाव अपुरिसक्कारपरक्कमे, से तेणट्ठेणं जाव वागरेज्ज वा।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हैं कि केवली बोलते हैं एवं प्रश्न का उत्तर देते हैं, किन्तु सिद्ध भगवान् बोलते नहीं हैं और न प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

[८-२ उ] गौतम ! केवलज्ञानी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषकार-पराक्रम से सहित हैं, जबकि सिद्ध भगवान् उत्थानादि यावत् पुरुषकार-पराक्रम से रहित हैं। इस कारण से, हे गौतम ! सिद्ध भगवान् केवलज्ञानी के समान नहीं बोलते और न प्रश्न का उत्तर देते हैं।

९. केवली णं भंते ! उम्मिसेज्ज वा निमिसेज्ज वा ?

हंता, उम्मिसेज्ज वा निमिसेज्ज वा, एवं चेव।

[९ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानी अपनी आँखें खोलते हैं, अथवा मूंदते हैं ?

[९ उ] हाँ, गौतम! वे आँखे खोलते और बद करते है। इसी प्रकार सिद्ध के विषय मे पूर्ववत् इन दोनो बातो का निषेध समझना चाहिए।

१०. एव आउट्टेज्ज वा पसारेज्ज वा।

[१०] इसी प्रकार (केवलज्ञानी शरीर को) सकुचित करते हैं और पसारते (फैलाते) भी है।

११. एवं ठाण वा सेज्ज वा निसीहिय वा चेएज्जा।

[११] इसी प्रकार वे खडे रहते (अथवा स्थिर रहते अथवा बैठते या करवट बदलते-लेटते) हैं, वसति मे रहते हैं (निवास करते हैं) एव निषीधिका (अल्पकाल के लिए निवास) करते हैं।

(सिद्ध भगवान् के विषय मे पूर्वोक्त कारणो से इन सब बातो का निषेध समझना चाहिए।)

विवेचन—केवली एवं सिद्ध के विषय मे भाषादि ९ बातो सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत ५ सूत्रो (सू ७ से ११ तक) मे केवली और सिद्ध के विषय मे—भाषण, प्रश्न का उत्तर-प्रदान, नेत्र-उन्मेष, नेत्र निमेष आकुचन, प्रसारण तथा स्थिर रहना, निवास करना, अल्पकालिक निवास करना, इन ९ प्रश्नो का सहेतुक उत्तर क्रमश विधि-निषेध के रूप मे दिया गया है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**भासेज्ज**—बिना पूछे बोलते हैं। **वागरेज्ज**—पूछने पर प्रश्न का उत्तर देते हैं। **उम्मिसेज्ज**—आँखें खोलते हैं। **निमिसेज्ज**—आँखें मूदते है। **आउट्टेज्ज**—आकुचन करते, सिकोड़ते हैं। **ठाण**—खडे होना या स्थिर होना, बैठना, करवट बदलना या लेटना। **सेज्जं**—निवास (वसति) **निसीहिय**—निषीधिका—अल्पकालिक निवास (वसति), **चेएज्जा**—करते हैं।[2]

केवली द्वारा नरकपृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को जानने देखने की प्ररूपणा

१२. केवली ण भते! इम रयणप्पभ पुढविं 'रयणप्पभपुढवी' ति जाणति पासति?

हता, जाणति पासति।

[१२ प्र] भगवन्! क्या केवलज्ञानी रत्नप्रभापृथ्वी को 'यह रत्नप्रभापृथ्वी है' इस प्रकार जानते-देखते है?

[१२ उ] हाँ (गौतम!) वे जानते-देखते हैं।

१३. जहा ण भते! केवली इम रयणप्पभं पुढविं 'रयणप्पभपुढवी' ति जाणति पासति तहा ण सिद्धे वि रयणप्पभ पुढविं 'रयणप्पभपुढवी' ति जाणति पासति?

हता, जाणति पासति।

[१३ प्र] भगवन्! जिस प्रकार केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को 'यह रत्नप्रभापृथ्वी है,' इस प्रकार जानते-देखते है, उसी प्रकार क्या सिद्ध भी इस रत्नप्रभापृथ्वी को, यह रत्नप्रभापृथ्वी है, इस प्रकार जानते-देखते हैं?

[१३ उ] हाँ (गौतम!) वे जानते-देखते है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण युक्त) पृ ६८७

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५७-६५८

१४. केवली ण भंते ! सक्करप्पभं पुढविं 'सक्करप्पभपुढवी' ति जाणति पासति ?

एवं चेव ।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या केवली, शर्कराप्रभापृथ्वी को, 'यह शर्कराप्रभापृथ्वी है ?'—इस प्रकार जानते-देखते है ?

[१४ उ] हाँ, गौतम ! उसी प्रकार (केवली और सिद्ध दोनो के विषय मे पूर्ववत्) समझना चाहिए ।

१५ एव जाव अहेसत्तमा ।

[१५] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी तक (पूर्वोक्त रूप से दोनो के विषय मे) समझना चाहिए ।

१६. केवली ण भंते ! सोहम्म कप्प 'सोहम्मकप्पे' ति जाणति पासति ? हंता, जाणति० ।

एव चेव ।

[१६ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी सौधर्मकल्प को 'यह सौधर्मकल्प है'—इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

[१६ उ] हां, गौतम, वे जानते-देखते है, इसी प्रकार सिद्धो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

१७. एवं ईसाण ।

[१७] इसी प्रकार ईशान देवलोक के जानने-देखने के विषय मे जानना चाहिए ।

१८. एवं जाव अच्चुय ।

[१८] इसी प्रकार (सनत्कुमार देवलोक से लेकर) यावत् अच्युतकल्प (तक के जानने-देखने) के विषय मे कहना चाहिए ।

१९. केवली ण भंते ! गेवेज्जविमाणे 'गेवेज्जविमाणे' त्ति जाणति पासति ?

एव चेव ।

[१९ प्र] भगवन् ! क्या केवली भगवान् ग्रैवेयकविमान को 'ग्रैवेयकविमान है'—इस प्रकार जानते-देखते है ?

[१९ उ] हाँ, गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए ।

२०. एव अणुत्तरविमाणे वि ।

[२०] इसी प्रकार (पाच) अनुत्तर विमानो के (जानने-देखने के) विषय मे (कहना चाहिए ।)

२१. केवली ण भंते ! ईसिपब्भार पुढविं 'ईसीपब्भारपुढवी' ति जाणति पासति ?

एव चेव ।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी ईषत्प्राग्भारपृथ्वी को 'ईषत्प्राग्भारपृथ्वी है'—इस प्रकार जानते-देखते है ?

[२१ उ] (हाँ, गौतम !) पूर्ववत् समझना चाहिए ।

२२. केवली ण भंते ! परमाणुपोग्गलं 'परमाणुपोग्गले' त्ति जाणति पासति ?

एव चेव ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी परमाणुपुद्गल को 'यह परमाणुपुद्गल है'—इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

[२२ उ] इस विषय मे भी पूर्ववत् समझना चाहिए ।

२३. एव दुपदेसियं खंधं ।

[२३] इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे समझना चाहिए ।

२४. एवं जाव जहा णं भंते ! केवली अणंतपदेसिय खंधं 'अणंतपदेसिए खंधे' त्ति जाणति पासति तहा णं सिद्धे वि अणतपदेसियं जाव पासति ?

हता, जाणति पासति ।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। चोद्दसमे सए दसमो उद्देसओ समत्तो ।।१४-१०।।

चोद्दसमं सय समत्तं ।।१४।।

[२४] इसी प्रकार यावत्—[प्र] भगवन् ! जैसे केवली, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध को, 'यह अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध है'—इस प्रकार जानते-देखते हैं, क्या वैसे ही सिद्ध भी अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध को—'अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध है', इस प्रकार जानते-देखते है ? [उ] हाँ, (गौतम !) वे जानते-देखते हैं । यहाँ तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम-स्वामी विचरण करते है ।

विवेचन—प्रस्तुत १३ सूत्रो (सू १२ से २४ तक) मे केवली और सिद्ध के द्वारा रत्नप्रभा-पृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक के तथा एक परमाणुपुद्गल तथा द्विप्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के जानने-देखने के सम्बन्ध मे[1] प्रश्नोत्तर पूर्ववत् किये गए है । केवली शब्द से आशय—यहाँ भवस्थ केवली से है, क्योकि सिद्ध के विषय मे आगे पृथक् प्रश्न किया गया है ।[2]

।। चौदहवाँ शतक, दसवाँ उद्देशक समाप्त ।।

।। चौदहवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ६८७-६८८

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५८

पण्णरसमं सयं : पन्द्रहवाँ शतक

गोशालक-चरित

प्राथमिक

※ व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के पन्द्रहवे शतक मे गोशालक के जन्म से लेकर भगवान् महावीर के शिष्य वनने, विमुख होने, अवर्णवाद करने तथा तेजोलेश्या से स्वय दग्ध होने से लेकर अनन्तससार-परिभ्रमण करने और अन्त मे आराधक होकर मोक्ष प्राप्त करने का क्रमश वर्णन है । एक प्रकार से इस शतक मे गोशालक के जीवन के आरोह-अवरोहो द्वारा कर्मसिद्धान्त की सत्यता का प्ररूपण है ।

※ गोशालक के जीवन मे पतन का प्रारम्भ तिल के पौधे के भविष्य के सम्बन्ध मे भगवान् से पूछ कर उन्हे झुठलाने की कुचेष्टा से प्रारम्भ होता है । फिर एकान्तत सर्वजीवो के प्रति परिवृत्यवाद की मिथ्या मान्यता को लेकर मिथ्यात्व का—मतमोह का विषवृक्ष बढता ही जाता है, तत्पश्चात् वैश्यायन वालतपस्वी को छेडने पर उसके द्वारा गोशालक पर प्रहार की गई तेजोलेश्या का भगवान् ने शीतलेश्या द्वारा निवारण किया, यह जानकर भगवान् से आग्रहपूर्वक तेजोलेश्या का प्रशिक्षण लेने के बाद तेजोलेश्या सिद्ध हो जाने से गोशालक का अहकार दिनानुदिन वढता गया । अपने पास आनेवाले के जीवनविषयक निमित्तकथन भूत-भविष्यकथन कर देने से उस युग का मूढ समाज गोशालक के प्रति आकर्षित होता जाता था । छह दिशाचर भी गोशलक के इस प्रकार के प्रचार से आकर्षित होकर उसके मत का प्रचार करने लगे ।

※ ऐसा प्रतीत होता है कि श्रावस्ती नगरी मे भगवान् महावीर और तथागत वुद्ध दोनो का वार-वार आवागमन रहा । इसलिए गोशालक भी श्रावस्ती मे हालाहला कुम्भकारी के यहाँ जम कर प्रचार और उत्सूत्रप्ररूपण करने लगा । स्वय को जिन कहने लगा । गोशालक की तीर्थंकर के रूप मे प्रसिद्धि उसकी वाचालता के कारण भी हुई । उसके अजीविकमतानुयायी वढने लगे, जवकि भगवान् तथा भगवान् के साधु-साध्वी-गण प्रचार कम करते थे, आचार (पचाचार) मे उनका दृढ विश्वास था । यही कारण है कि गोशालक का प्रचार धु आधार होने से उसकी वात पर लोग विश्वास करने लगे । इस कारण उसके अह को वल मिला । अत वह भगवान् के समक्ष भी धृष्ट होकर अपने अहकार का प्रदर्शन करता रहा और स्वयं भगवान् के समक्ष ही अड गया । उनके उपकार को भूल कर स्वय को छिपाता रहा । अपने पूर्वभव की तथा स्वय को तीर्थंकर सिद्ध करने की कपोलकल्पित असगत मान्यताओ का प्रतिपादन करता रहा । भगवान् ने उसे चोर के दृष्टान्तपूर्वक प्रेम से समझाया भी, किन्तु उसका प्रभाव उल्टा ही हुआ । वह भगवान् को मरने-मारने की धमकी देता रहा । भगवान् के दो शिष्यो ने जव गोशालक के समक्ष प्रतिवाद किया, उसे स्वकर्तव्य समझाया तो उसने सुनी-अनसुनी करके उन दोनो को भस्म करने के लिए तेजोलेश्या छोडी । उनमे से एक तत्काल भस्म हो गए, दूसरे अनगार पीडित हो गए ।

※ इसके पश्चात् भी जब गोशालक ने भगवान् को छह मास के अन्त मे पित्तज्वर से दाहपीडावश छद्मस्थावस्था मे ही मरने की धमकी दी तो भगवान् ने जनता मे मिथ्याप्रचार की सम्भावना को लेकर प्रतिवाद किया और कहा—गोशालक सात रात्रि मे ही पित्तज्वर से पीडित होकर छद्मस्थ अवस्था मे ही मृत्यु को प्राप्त होगा तथा स्वय के १६ वर्ष तक जीवित रहने की भविष्यवाणी की। भगवान् के साधुओ ने गोशालक को तेजोहीन समझ धर्मचर्चा मे पराजित किया। फलत बहुत से आजीविक-स्थविर गोशालक का साथ छोड भगवान् की शरण मे आगए।

※ गोशालक ने भगवान् को तेजोलेश्या के प्रहार से मारना चाहा था, किन्तु वह उसी के लिए घातक बन गई। वह उन्मत्त की तरह प्रलाप, मद्यपान, नाच-गान आदि करने लगा। अपने दोषो के ढँकने के लिए वह चरमपान, चरमगान आदि ८ चरमो की मनगढन्त प्ररूपणा करने लगा। अयपुल नामक आजीविकोपासक गोशालक की उन्मत्त चेष्टाएँ देख विमुख होने वाला था, उसे स्थविरो ने ऊटपटाग समझाकर पुन गोशालकमत मे किया।

※ गोशालक ने अपना अन्तिम समय निकट जान कर अपने स्थविरो को निकट बुलाकर धूमधाम से शवयात्रा निकालने तथा मरणोत्तर क्रिया करने का निर्देश शपथ दिलाकर किया। किन्तु जब सातवी रात्रि व्यतीत हो रही थी तभी गोशालक को सम्यक्त्व उपलब्ध हुआ और उसने स्वय आत्मनिन्दापूर्वक अपने कुकृत्यो तथा उत्सूत्र-प्ररूपणा का रहस्योद्घाटन किया और मरण के अनन्तर अपने शव की विडम्बना करने का निर्देश दिया। स्थविरो ने उसके आदेश का औपचारिक पालन ही किया।

※ इसके पश्चात् भगवान् के शरीर मे पित्तज्वर का प्रकोप, लोकापवाद सुन सिंह अनगार को शोक, भगवान् द्वारा मन समाधान, रेवती के यहाँ से औषध लाने का आदेश तथा औषध-सेवन से रोगोपशमन, भगवान् के आरोग्यलाभ से चतुर्विध संघ, देव-देवी-दानव-मानवादि सबको प्रसन्नता हुई।

※ शतक के उपसहार मे गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने गोशालक के भावी जन्मो की झाकी बतलाकर सभी योनियो और गतियो मे अनेक वार भ्रमण करने के पश्चात् क्रमश. आराधक होकर महाविदेह क्षेत्र मे दृढप्रतिज्ञ केवली होकर अन्त मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का उज्ज्वल भविष्य कथन किया है।

※ प्रस्तुत शतक से आजीविक सम्प्रदाय के सिद्धान्त और इतिहास का पर्याप्त परिचय मिलता है।

□□

पण्णरसमं सतं : पन्द्रहवाँ शतक

गोशालक चरित

मध्य-मंगलाचरण

१. नमो सुयदेवयाए भगवतीए।

[१] भगवती श्रुतदेवता को नमस्कार हो।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र द्वारा शास्त्रकार ने विशालकाय व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का मध्यमगलाचरण विघ्नोपशमनार्थ किया है।

श्रावस्ती निवासी हालाहला का परिचय एवं गोशालक का निवास

२ तेण कालेण तेण समयेण सावत्थी नाम नगरी होत्था। वण्णओ।

[२] उस काल उस समय मे श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उसका वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

३. तीसे ण सावत्थीए नगरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ ण कोट्ठए नाम चेतिए होत्था। वण्णओ।

[३] उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तरपूर्व-दिशाभाग मे कोष्ठक नामक चैत्य (उद्यान) था। उसका वर्णन पूर्ववत्।

४. तत्थ ण सावत्थीए नगरीए हालाहला नाम कुंभकारी आजीविओवासिया परिवसति, अड्ढा जाव अपरिभूया आजीवियसमयसि लद्धट्ठा गहितट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिजपेम्माणुरागरत्ता 'अयमाउसो! आजीवियसमये अट्ठे, अय परमट्ठे, सेसे अणट्ठे' त्ति आजीवियसमएण अप्पाण भावेमाणी विहरति।

[४] उस श्रावस्ती नगरी मे आजीविक (गोशालक) मत की उपासिका हालाहला नाम की कुम्भारिन रहती थी। वह आढ्य (धन आदि से सम्पन्न) यावत् अपरिभूत थी। उसने आजीविक-सिद्धान्त का अर्थ (रहस्य) प्राप्त कर लिया था, सिद्धान्त के अर्थ को ग्रहण (स्वीकार या ज्ञात) कर लिया था, उसका अर्थ पूछ लिया था, अर्थ का निश्चय कर लिया था। उसकी अस्थि (हड्डी) और मज्जा (रग-रग आजीविक मत के प्रति) प्रेमानुराग से रग गई थी। 'हे आयुष्मन्! यह आजीविक सिद्धान्त ही सच्चा अर्थ है, यही परमार्थ है, शेष सब अनर्थ है', इस प्रकार वह आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करती हुई रहती थी।

५. तेणं कालेणं तेणं समयेणं गोसाले मखलिपुत्ते चतुवीसवासपरियाए हालाहलाए कुंभकारीए कुंभारावणसि आजीवियसंघसंपरिवुडे आजीवियसमयेण अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

[५] उस काल उस समय मे चौवीस वर्ष की दीक्षापर्याय वाला मखलिपुत्र गोशालक, हाला-हला कुम्भारिन की कुम्भकारापण (मिट्टी के वर्तनो की दूकान) मे आजीविक सघ मे परिवृत होकर आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता था।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो मे आजीविकसम्प्रदायाचार्य मखलीपुत्र गोशालक के चरित के सन्दर्भ मे श्रावस्ती नगरी की आजीविक सम्प्रदाय की परम उपासिका हालाहला कुभारिन का सक्षिप्त परिचय देते हुए श्रावस्तीस्थित उसकी दूकान मे गोशालक के आजीविक सघसहित निवास करने का वर्णन किया गया है।[1]

गोशालक का छह दिशाचरो को अष्टांगमहानिमित्तशास्त्र का उपदेश एव सर्वज्ञादि अपलाप

६. तए णं तस्स गोसालस्स मखलिपुत्तस्स अन्नदा कदायि इमे छद्दिसाचरा अंतियं पादुब्भवित्था, तं जहा—सोणे कणदे कणियारे अच्छिद्दे अग्गिवेसायणे अज्जुणे गोमायु (गोयम) पुत्ते।

[६] तदनन्तर किसी दिन उस मखलिपुत्र गोशालक के पास ये छह दिशाचर आए (प्रादुर्भूत हुए)। यथा—(१) शोण, (२) कनन्द, (३) कर्णिकार, (४) अच्छिद्र, (५) अग्निवैश्यायन और (६) गौतम (गोमायु)—पुत्र अर्जुन।

७. तए ण ते छद्दिसाचरा अट्ठविह पुव्वगय मग्गदसम सएहिं सएहिं मतिदसणेहिं निज्जूहति, स० निज्जूहित्ता गोसाल मंखलिपुत्तं उवट्ठाइसु।

[७] तत्पश्चात् उन छह दिशाचरो ने पूर्वश्रुत मे कथित अष्टाग निमित्त, (नौवे गीत-) मार्ग तथा दसवे (नृत्य-) मार्ग को अपने-अपने मति-दर्शनो से पूर्वश्रुत मे से उद्धृत किया, फिर मखलिपुत्र गोशालक के पास उपस्थित (शिष्यभाव से दीक्षित) हुए।

८. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते तेण अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेण सव्वेसि पाणाण सव्वेसि भूयाण सव्वेसि जीवाणं सव्वेसि सत्ताणं इमाइ छ अणतिक्कमणिज्जाइं वागरणाइं वागरेति, तं जहा—लाभ अलाभं सुहं दुक्खं जीवितं मरण तहा।

[८] तदनन्तर वह मखलिपुत्र गोशालक, उस अष्टाग महानिमित्त के किसी उपदेश (उल्लोक-मात्र) द्वारा सर्व प्राणो, सभी भूतो, समस्त जीवो और सभी सत्त्वो के लिए इन छह अनतिक्रमणीय (जो अन्यथा—असत्य न हो, ऐसी) बातो के विषय मे उत्तर देने लगा। वे छह बाते ये हैं—(१) लाभ, (२) अलाभ, (३) सुख, (४) दुःख, (५) जीवन और (६) मरण।

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ, ६८९

९. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते तेण अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेण सावत्थीए नगरीए अजिणे जिणप्पलावी, अणरहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, अजिणे जिणसद्द पगासेमाणे विहरति।

[९] और तब मखलिपुत्र गोशालक, अष्टाग महा-निमित्त के स्वल्प उपदेशमात्र से श्रावस्ती नगरी मे जिन नही होते हुए भी, 'मैं जिन हूँ' इस प्रकार प्रलाप करता हुआ, अर्हन्त न होते हुए भी, 'मैं अर्हत् हूँ', इस प्रकार का वकवास करता हुआ, केवली न होते हुए भी, 'मैं केवली हूँ' इस प्रकार का मिथ्याभाषण करता हुआ, सर्वज्ञ न होते हुए भी 'मै सर्वज्ञ हूँ', इस प्रकार मृषाकथन करता हुआ और जिन न होते हुए भी अपने लिए 'जिनशब्द' का प्रयोग करता हुआ विचरता था।

विवेचन—आजीविक मत प्रचार-प्रसार के तीन प्रारम्भिक निमित्त—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ६ से ९ तक) मे *आजीविक-मतीय प्रचार-प्रसार के प्रारम्भिक तीन निमित्त कौन-कौन से वने ?* इसकी सक्षिप्त झाकी दी है—(१) सर्वप्रथम मखलीपुत्र गोशालक के पास ६ दिशाचर शिष्यभाव से दीक्षित हुए। (२) तत्पश्चात् अष्टाग महानिमित्त शास्त्र के माध्यम से लोगो को जीवन की ६ वातो का उत्तर देना और (३) जिन, अर्हत् आदि न होते हुए भी स्वय को जिन अर्हत् आदि के रूप मे प्रकट करना।[1]

दिशाचर कौन थे ?—वृत्तिकार ने दिशाचर का अर्थ किया है—जो दिशा—मर्यादा मे चलते है, या विविध दिशाओ मे जो विचरण करते है और मानते है कि हम भगवान् के शिष्य हैं। प्राचीन वृत्तिकार कहते हैं कि ये छह दिशाचर भगवान् के ही शिष्य थे, किन्तु सयम मे शिथिल (पासत्थ—पार्श्वस्थ) हो गए थे। चूर्णिकार के मतानुसार ये भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानीय—शिष्यानुशिष्य (पार्श्वापत्य) थे।[2]

अष्टाग महानिमित्त—अष्टविध महानिमित्त इस प्रकार हैं—(१) दिव्य, (२) औत्पात, (३) आन्तरिक्ष, (४) भौम, (५) आग, (६) स्वर, (७) लक्षण और (८) व्यजन।[3]

कठिनशब्दार्थ—अट्ठविह पुव्वगय मग्गदसम : भावार्थ—पूर्व नामक श्रुतविशेष से उद्धृत अष्टविध निमित्त तथा नवम-दशम दो मार्ग (नवम शब्द यहाँ लुप्त है), अर्थात्—गीतमार्ग (नौवाँ) और नृत्यमार्ग (दसवाँ)। **केणइ उल्लोयमेत्तेण**—किसी उल्लोकमात्र से—उपदेशमात्र से—किसी प्रश्न का उत्तर देकर। **सएहिं मतिदसणेहिं**—अपनी-अपनी वुद्धि और दृष्टि से—प्रमेयवस्तु के विश्लेपण से। **निज्जूहति**—निर्यूहण किया—अर्थात्—पूर्वलक्षण श्रुतपर्याय समूह से निर्धारित—उद्धृत किया। **उवट्ठाइसु**—उपस्थित हुए—उसके शिष्यरूप मे आश्रित—दीक्षित हुए। **अणइक्कमणिज्जाइ**—

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू पा टि युक्त) भा २, पृ ६९०

२ दिशा—मेरा चरन्ति—यान्ति, मन्यन्ते भगवतो वय शिष्या इति दिक्चरा देशाटा वा। दिक्चरा भगवच्छिष्या पार्श्वस्थीभूता इति टीकाकार। पासावच्चिज्जत्ति चूर्णिकार। —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५९

३ वही, अ वृत्ति, पत्र ६५९

अनतिक्रमणीय—जिन्हे टाला नही जा सकता, ऐसे अनिवार्य । वागरणाइ वागरेति—पुरुषार्थोपयोगी ६ बातो के विषय मे पूछने पर यथार्थरूप मे उत्तर देता था।' बतलाता था।' सव्वण्णू—सर्वज्ञ।'

गोशालक की वास्तविकता जानने की गौतमस्वामी की जिज्ञासा, भगवान् द्वारा समाधान

१०. तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग जाव पहेसु वहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव एव परूवेति—एव खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव पकासेमाणे विहरति, से कहमेय मन्ने एव ?

[१०] इसके बाद श्रावस्ती नगरी मे शृंगाटक (सिंघाडे के आकार वाले त्रिक—तिराहे) पर, यावत् राजमार्गो पर बहुत-से लोग एक-दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करने लगे—हे देवानुप्रियो! (हमने) निश्चित ही (ऐसा सुना है) कि गोशालक मखलिपुत्र 'जिन' हो कर अपने आप को 'जिन' कहता हुआ, यावत् 'जिन' शब्द से अपने आपको प्रकट (प्रकाश) करता हुआ विचरता है, तो इसे ऐसा कैसे माना जाए ?

११. तेण कालेण तेण समएणं सामी समोसढे। जाव परिसा पडिगता।

[११] उस काल, उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे, यावत् परिषद् धर्मोपदेश सुन कर वापिस चली गई।

१२. तेणं कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूतीणामं अणगारे गोयमे गोत्तेण जाव छट्ठं छट्ठेण एव जहा बितियसए नियठुद्देसए (स० २ उ० ५ सु० २१-२४) जाव अडमाणे बहुजणसद्द निसामेइ—"बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति ४—एव खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव पकासेमाणे विहरइ। से कहमेय मन्ने एव ?"।

[१२] उस काल, उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी (शिष्य) गौतम-गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार यावत् छठ-छठ (बेले-बेले) पारणा करते थे, इत्यादि वर्णन दूसरे शतक के पाचवे निर्ग्रन्थ-उद्देशक (सू २१ से २४) के अनुसार समझना। यावत् गोचरी के लिए भ्रमण (भिक्षाटन) करते हुए गौतमस्वामी ने बहुत-से लोगो के शब्द सुने, (वे) बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कह रहे थे, यावत् प्ररूपणा कर रहे थे कि देवानुप्रियो! मखलिपुत्र गोशालक जिन हो कर अपने आपको जिन कहता हुआ, यावत् जिन शब्द से स्वयं को प्रकट करता हुआ विचरता है। उसकी यह बात कैसे मानी जाए ?

१३. तए ण भगव गोयमे बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे जाव भत्त-पाणं पडिदसेति जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते! ०, तं चेव जाव जिणसद्द पगासेमाणे विहरइ, से कहमेत भते! एवं ? तं इच्छामि ण भते! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स उट्ठाणपारियाणियं परिकहियं।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६५९
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २३७०

[१३] तदनन्तर भगवान् गौतम को बहुत-से लोगो से यह बात सुन कर एव मन मे अवधारण कर यावत् प्रश्न पूछने की श्रद्धा (मन मे) उत्पन्न हुई, यावत् (भगवान् के निकट पहुँच कर उन्होने) भगवान् को आहार-पानी दिखाया। फिर यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—'भगवन्! मै छट्ठ (बेले के तप) के पारणे मे भिक्षाटन इत्यादि सब पूर्वोक्त कहना चाहिए, यावत् गोशालक 'जिन' शब्द से स्वय को प्रकट करता हुआ विचरता है, तो हे भगवन्! उसका यह कथन कैसा है? अत भगवन्! मैं मखलिपुत्र गोशालक का जन्म से लेकर अन्त तक का वृत्तान्त (आपके श्रीमुख से) सुनना चाहता हूँ।

विवेचन—मखलिपुत्र गोशालक के चरित की जिज्ञासा—प्रस्तुत ४ सूत्रो (सू १० से १३ तक) मे मखलिपुत्र गोशालक के विषय मे बहुत-से लोगो से सुनकर श्री गौतमस्वामी के मन मे भगवान् से इसका समाधान प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई, जिसकी सक्षिप्त झाकी प्रस्तुत है।

जिज्ञासा के कारण ये हैं—(१) श्रावस्ती नगरी मे तिराहे-चौराहे आदि पर बहुत-से लोगो का परस्पर गोशालक के जिन आदि होने के सम्बन्ध मे वार्तालाप। (२) राजगृह मे विराजमान भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गौतम ने छठ तप के पारणे के लिए नगर मे भिक्षाटन करते हुए बहुत-से लोगो से गोशालक के विषय मे वही चर्चा सुनी। (३) भगवान् की सेवा मे पहुँचकर भगवान् के समक्ष अपनी गोशालक चरितविषयक जिज्ञासा प्रस्तुत की और भगवान् से समाधान मागा।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—**जिणप्पलावी**—जिन न होते हुए भी जिन कहने वाला। **पडिदसेति**—दिखलाता है। **उट्ठाणपारियाणियं**—उत्थान—जन्म से लेकर पर्यवसान—अन्त तक का चरित।[2]

गोशालक के माता-पिता का परिचय तथा भद्रा माता के गर्भ में आगमन

१४. 'गोतमा!' दी समणे भगव महावीरे भगव गोयम एव वयासी—ज ण गोयमा! से बहुजणे अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति ४ 'एव खलु गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव पगासेमाणे विहरति' त ण मिच्छा, अह पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एव खलु एयस्स गोसालस्स मखलिपुत्तस्स मखली णाम मखे पिता होत्था। तस्स ण मखलिस्स मखस्स भद्दा नाम भारिया होत्था, सुकुमाल० जाव पडिरूवा। तए ण सा भद्दा भारिया अन्नदा कदायि गुव्विणी यावि होत्था।

[१४] — (भगवन् ने कहा) हे गौतम! इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—गौतम! बहुत-से लोग, जो परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपित करते हैं कि मखलिपुत्र गोशालक 'जिन' हो कर तथा अपने आपको 'जिन' कहता हुआ यावत् 'जिन' शब्द से स्वय को प्रकट करता हुआ विचरता है, यह बात मिथ्या है। हे गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि मखलिपुत्र गोशालक का, मख जाति

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ६९१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६१
'उट्ठाण-पारियाणिय' ति परियान—विविधव्यतिकरपरिगमन, तदेव पारियानिक— चरितम्। उत्थानात्—जन्मन आरभ्य पारियानिकम् उत्थानपारियानिक तत् परिकथित भगवद्भिरिति गम्यते। —अ वृत्ति

का मखली नाम का पिता था। उस मखजातीय मखली की भद्रा नाम की भार्या (पत्नी) थी। वह सुकुमाल हाथ-पैर वाली यावत् प्रतिरूप (सुन्दर) थी। किसी समय वह भद्रा नामक भार्या गर्भवती हुई।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे गोशालक के जिन होने के दावे का खण्डन करते हुए भगवान् ने उसके पिता-माता का परिचय देकर कहा—मखली की भार्या भद्रा के गर्भ में गोशालक आया।[1]

शरवण-सन्निवेश मे गोबहुल ब्राह्मण की गोशाला मे मंखलि-भद्रा का निवास, गोशालक का जन्म और नामकरण

१५. तेणं कालेणं तेण समएणं सरवणे नामं सन्निवेसे होत्था, रिद्धत्थिमिय जाव सन्निभप्पगासे पासादीए ४।

[१५] उस काल उस समय मे 'शरवण' नामक सन्निवेश (नगर के बाहर का प्रदेश—उपनगर) था। वह ऋद्धि-सम्पन्न, उपद्रव-रहित यावत् देवलोक के समान प्रकाश वाला और मन को प्रसन्न करने वाला था, यावत् प्रतिरूप था।

१६. तत्थ णं सरवणे सन्निवेसे गोबहुले नामं माहणे परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूते रिउव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था। तस्स णं गोबहुलस्स माहणस्स गोसाला यावि होत्था।

[१६] उस सन्निवेश मे 'गोबहुल' नामक एक ब्राह्मण (माहन) रहता था। वह आढ्य यावत् अपराभूत था। वह ऋग्वेद आदि वैदिकशास्त्रो के विषय मे भलीभाति निपुण था। गोबहुल ब्राह्मण की एक गोशाला थी।

१७. तए णं से मखली मखे अन्नदा कदायि भद्दाए भारियाए गुव्विणीए सद्धिं चित्तफलगहत्थगए मखत्तणेण अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव सरवणे सन्निवेसे जेणेव गोबहुलस्स माहणस्स गोसाला तेणेव उवागच्छति, उवा० २ गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए एगदेससि भडनिक्खेवं करेति, भड० क० २ सरवणे सन्निवेसे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसहीए सव्वओ समता मग्गणगवेसणं करेति, वसहीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणे अन्नत्थ वसहिं अलभमाणे तस्सेव गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए एगदेससि वासावासं उवागए।

[१७] एक दिन वह मखली नामक भिक्षाचर (मख) अपनी गर्भवती भद्रा भार्या को साथ लेकर निकला। वह चित्रफलक हाथ मे लिये हुए चित्र बता कर आजीविका करने वाले भिक्षुको की वृत्ति से (मखत्व से) अपना जीवनयापन करता हुआ, क्रमश ग्रामानुग्राम विचरण करता हुआ जहाँ शरवण नामक सन्निवेश था और जहाँ गोबहुल ब्राह्मण की गोशाला थी, वहाँ आया। फिर उसने गोबहुल ब्राह्मण की गोशाला के एक भाग मे अपना भाण्डोपकरण (सामान) रखा। तत्पश्चात् वह शरवण सन्निवेश मे उच्च-नीच-मध्यम कुलो के गृहसमूह मे भिक्षाचर्या के लिए घूमता हुआ

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा २, (मू पा टिप्पण) पृ ६९१

वसति मे चारो ओर सर्वत्र अपने निवास के लिए स्थान की खोज करने लगा। सर्वत्र पूछताछ और गवेषणा करने पर भी जब कोई निवासयोग्य स्थान नही मिला तो उसने उसी गोवहुल ब्राह्मण की गोशाला के एक भाग मे वर्षावास (चातुर्मास) विताने के लिए निवास किया।

१८ तए ण सा भद्दा भारिया नवण्ह मासाण वहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीतिक्कंताण सुकुमाल जाव पडिरूव दारग पयाता।

[१८] तदनन्तर (वहाँ रहते हुए) उस भद्रा भार्या ने पूरे नौ मास और साढे सात रात्रि-दिन व्यतीत होने पर एक सुकुमाल हाथ-पैर वाले यावत् सुरूप पुत्र को जन्म दिया।

१९. तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीतिक्कते जाव वारसाहदिवसे अयमेतारूव गोण्ण गुणनिप्फन्न नामधेज्ज करेंति—जम्हा ण अम्ह इमे दारए गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए जाए त होउ ण अम्ह इमस्स दारगस्स नामधेज्ज 'गोसाले, गोसाले' त्ति। तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्ज करेंति 'गोसाले' त्ति।

[१९] तत्पश्चात् ग्यारहवाँ दिन बीत जाने पर यावत् वारहवे दिन उस बालक के माता-पिता ने इस प्रकार का गौण (गुणयुक्त), गुणनिष्पन्न नामकरण किया कि—हमारा यह वालक गोवहुल ब्राह्मण की गोशाला मे जन्मा है। इसलिए हमारे इस वालक का नाम गोशालक हो और तभी उस बालक के माता-पिता ने उस वालक का नाम 'गोशालक' रखा।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू १५ मे १९ तक) मे गोशालक के जन्मस्थान, जन्म और नामकरण का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है— (१) शरवण सन्निवेश मे वेदादि निपुण गोवहुल ब्राह्मण की गोशाला थी। (२) गोशालक का पिता मखली अपनी गर्भवती पत्नी भद्रा को लेकर शरवण सन्निवेश मे गोवहुल की गोशाला मे आया। भिक्षाटन के समय उसने सारा गाँव छान मारा, किन्तु उसे अन्य कोई निवासयोग्य स्थान न मिला अत वही वर्षावास विताने हेतु पडाव डाला। (३) उसी गोशाला मे भद्रा ने एक वालक को जन्म दिया। (४) १२ वें दिन माता-पिता ने उस वालक का गुण-निष्पन्न गोशालक नाम रक्खा।[1]

यौवनवयप्राप्त गोशालक द्वारा स्वयं मखवृत्ति—

२०. तए ण से गोसाले दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणतमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सयमेव पाडिएक्क चित्तफलग करेति, सय० क० २ चित्तफलगहत्थगए मखत्तणेण अप्पाण भावेमाणे विहरति।

[२०] तदन्तर वह वालक गोशालक वाल्यावस्था को पार करके एव विज्ञान से परिपक्व वुद्धि वाला होकर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। तब उसने स्वय व्यक्तिगत (स्वतन्त्र) रूप से चित्रफलक तैयार किया। व्यक्तिगत रूप से तैयार किये हुए चित्रफलक को स्वय हाथ मे लेकर मख-वृत्ति मे आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।

विवेचन—प्रस्तुत २० वे सूत्र मे युवक गोशालक द्वारा स्वतन्त्र रूप से चित्रपट लेकर मखवृत्ति करने का वर्णन है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ६९२

कठिनशब्दार्थ—**विण्णायपरिणयमेत्ते**—विज्ञान-कार्मिकज्ञान से परिणत—परिपक्व मति वाला। **पाडिएक्क**—प्रत्येक अर्थात्—पिता के फलक से पृथक् व्यक्तिगत फलक। **चित्तफलगहत्थए**—चित्रांकित फलक (पट या पटिया) हाथ मे लेकर। **मखत्तणेण**—मखपन से, चित्र बता कर आजीविका करने वाले भिक्षुको की वृत्ति से।[1]

गोशालक के साथ प्रथम समागम का वृत्तान्त : भगवान् के श्रीमुख से—

२१. तेण कालेण तेण समएण अह गोयमा ! तीस वासाइ अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मा-पितीहिं देवत्ते गतेहिं एव जहा भावणाए[2] जाव एग देवदूसमुपादाय मु डे भवित्ता अगारातो अणगारिय पव्वइए।

[२१] उस काल उस समय मे, हे गौतम ! मैं तीस वर्ष तक गृहवास मे रह कर, माता-पिता के दिवगत हो जाने पर (आचाराग सूत्र के द्वितीय श्रुत-स्कन्ध के १५ वे) भावना नामक अध्ययन के अनुसार (माता-पिता के जीवित रहते मै श्रमण नही बनूगा,—इस प्रकार का अभिग्रह पूर्ण होने पर, मैं हिरण्य-सुवर्ण, सैन्य-वाहनादि का त्याग कर इत्यादि) यावत् एक देवदूष्य वस्त्र ग्रहण करके मुण्डित हुआ और गृहस्थवास को त्याग कर अनगार धर्म मे प्रव्रजित हुआ।

२२. तए ण अह गोतमा ! पढम वास अद्धमास अद्धमासेण खममाणे अट्ठियगाम निस्साए पढम अतरवास वासावास उवागते। दोच्च वास मासमासेण खममाणे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामते दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नगरे जेणेव नालदाबाहिरिया जेणेव ततुवायसाला तेणेव उवागच्छामि, ते० उवा० २ अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हामि, अहा० ओ० २ ततुवायसालाए एगदेसंसि वासावास उवागते। तए ण अह गोतमा ! पढम मासक्खमण उवसपज्जित्ताण विहरामि।

[२२] तत्पश्चात् हे गौतम ! मैं (दीक्षा ग्रहण करने के) प्रथम वर्ष मे अर्द्ध मास-अर्द्धमास क्षमण (पाक्षिक तप) करते हुए अस्थिक ग्राम की निश्रा मे, प्रथम वर्षाऋतु के अवसर (अन्तर) पर वर्षावास के लिए आया। दूसरे वर्ष मे मै मास-मास-क्षमण (एक मासिक तप) करता हुआ, क्रमश विचरण करता और ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ राजगृह नगर मे नालन्दा पाडा के बाहर, जहाँ तन्तुवायशाला (जुलाहो की बुनकरशाला) थी, वहाँ आया। फिर उस तन्तुवायशाला के एक भाग मे यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके मै वर्षावास के लिए रहा। तत्पश्चात्, हे गौतम ! मै प्रथम मास-क्षमण (तप) स्वीकार करके कालयापन करने लगा।

---

१ (क) 'विज्ञान कार्मणे ज्ञाने'—हैमनाममाला
 (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६१
 (ग) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २३७४

२. "एव जहा भावणाए त्ति आचारद्वितीयश्रुतस्कन्धस्य पञ्चदशेऽध्ययने। अनेन चेद सूचितम्—समत्तपइण्णे 'नाह समणो होह अम्मापियरम्मि जीवते' त्ति समाप्ताभिग्रह इत्यर्थ.। चिच्चा हिरण्ण चिच्चा सुवण्ण चिच्चा बल इत्यादीति" अवृ ॥ ३

२३. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते चित्तफलगहत्थगए मखत्तणेण अप्पाण भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नगरे जेणेव नालदाबाहिरिया जेणेव ततुवायसाला तेणेव उवागच्छति, ते० उवा० २ ततुवायसालाए एगदेससि भडनिक्खेव करेइ, भड० क० २ रायगिहे नगरे उच्च-नीय जाव अन्नत्थ कत्थयि वसहिं अलभमाणे तीसे व ततुवायसालाए एगदेससि वासावासं उवागते जत्थेव ण अह गोयमा ! ।

[२३] उस समय वह मखलिपुत्र गोशालक चित्रफलक हाथ मे लिये हुए मखपन से (चित्रपट-अकित चित्र दिखा कर) आजीविका करता हुआ क्रमश विचरण करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाता हुआ, राजगृह नगर मे नालदा पाडा के बाहरी भाग मे, जहाँ तन्तुवायशाला थी, वहाँ आया। फिर उस तन्तुवायशाला के एक भाग मे उसने अपना भाण्डोपकरण (सामान) रखा। तत्पश्चात् राजगृह नगर में उच्च, नीच और मध्यम कुल मे भिक्षाटन करते हुए उसने वर्षावास के लिए दूसरा स्थान ढूढने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसे अन्यत्र कही भी निवासस्थान नही मिला, तब उसी तन्तुवायशाला के एक भाग मे, हे गौतम ! जहाँ मैं रहा हुआ था, वही, वह भी वर्षावास के लिए रहने लगा।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू २१-२२-२३) मे भगवान् महावीर ने अपने श्रीमुख से गोशालक के साथ प्रथम समागम का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है।

कठिनशब्दार्थ—देवत्तगतेहिं—देवलोक हो जाने पर। **अणगारियं पव्वइए**—अनगारधर्म मे प्रव्रजित हुआ। **अद्धमास अद्धमासेण खममाणे**—अर्द्धमास (पक्ष), अर्द्ध मास का तप करते हुए। **पढम अतरवास**—प्रथम वर्ष के अन्तर—अवसर पर। **वासावास**—वर्षावास (चातुर्मास) के लिए। **णिस्साए**—निश्रा मे—आश्रय लेकर। **उवागए**—आया। **तनुवायसाला**—बुनकर शाला।[1]

प्रथम समागम-वृत्तान्त—(१) माता-पिता के दिवगत हो जाने के बाद अनगार धर्म मे प्रव्रजित होने का वृत्तान्त। (२) दीक्षा लेने के बाद अर्द्धमासक्षमण तप करते हुए प्रथम वर्षावास अस्थिक ग्राम मे बिताया। द्वितीय वर्षावास मास-मास क्षमण तप करते हुए राजगृह मे नालन्दा पाडा के बाहर स्थित तन्तुवायशाला मे बिता रहे थे। (३) उस समय मखलीपुत्र गोशालक अपनी मखवृत्ति से आजीविका करता हुआ घूमता-घामता राजगृह मे, अन्यत्र कोई अच्छा स्थान न मिलने से उसी तन्तुवायशाला मे आकर रह गया।[2] यही भगवान् के साथ गोशालक का प्रथम समागम हुआ।

विजय गाथापतिगृह मे भगवत्पारणा, पंचदिव्यप्रादुर्भाव, गोशालक द्वारा प्रभावित होकर भगवान् के शिष्य बनाने का वृत्तान्त

२४. तए ण अह गोयमा ! पढममासक्खमणपारणगसि ततुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, ततु० प २ णालद बाहिरिय मज्झमज्झेण जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छामि, ते० उवा० २ रायगिहे नगरे उच्च-नीय जाव अडमाणे विजयस्स गाहावतिस्स गिह अणुप्पविट्ठे।

१, (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६३
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३७७

२ विहायपण्णत्तिसुत्त भा २, (मू पा १९) पृ ६९३-६९४

[२४] तदनन्तर, हे गौतम ! मैं प्रथम मासक्षमण के पारणे के दिन तन्तुवायशाला से निकला और फिर नालन्दा के बाहरी भाग के मध्य मे होता हुआ राजगृह नगर मे आया। वहाँ ऊँच, नीच और मध्यम कुलो मे यावत् भिक्षाटन करते हुए मैंने विजय नामक गाथापति के घर मे प्रवेश किया।

२५ तए ण से विजये गाहावती मम एज्जमाण पासति, पा० २ हट्ठतुट्ठ० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेति, खि० अ० २ पादपीढाओ पच्चोरुभति, पाद० प० २ पाउयाओ ओमुयइ, पा० ओ० २ एगसाडिय उत्तरासग करेति, एग० क० २ अजलिमउलियहत्थे मम सत्तट्ठपयाइ अणुगच्छति, अ० २ मम तिक्खुत्तो आदाहिणपदाहिण करेति, क० २ मम वदति नमसति, मम व २ मम विउलेण असण-पाण-खाइम-साइमेण 'पडिलाभेस्सामि' त्ति कट्टु तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे।

[२५] उस समय विजय गाथापति (अपने घर के निकट) मुझे आते हुए देख अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। वह शीघ्र ही अपने सिंहासन से उठा और पादपीठ से नीचे उतरा। फिर उसने पैर से खडाऊँ निकाली। एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासग किया। दोनो हाथ जोड कर सात-आठ कदम मेरे सम्मुख आया और मुझे तीन वार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। फिर वह ऐसा विचार करके अत्यन्त सतुष्ट हुआ कि मैं आज भगवान् को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप (चतुर्विध) आहार से प्रतिलाभू गा। वह प्रतिलाभ लेता हुआ भी सतुष्ट हो रहा था और प्रति-लाभित होने के वाद भी सन्तुष्ट रहा।

२६. तए ण तस्स विजयस्स गाहावतिस्स तेण दव्वसुद्धेण दायगसुद्धेण पडिगाहगसुद्धेण तिविहेण तिकरणसुद्धेण दाणेण मए पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, ससारे परित्तीकते, गिहसि य से इमाइ पच दिव्वाइ पादुब्भूयाइ, त जहा—वसुधारा वुट्ठा १, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिते २, चेलुक्खेवे कए ३, आहयाओ देवदुदुभीओ ४, अतरा वि य ण आगासे 'अहो ! दाणे, अहो ! दाणे' त्ति घुट्ठे ५।

[२६] उस अवसर पर उस विजय गाथापति ने उस दान मे द्रव्यशुद्धि से, दायक (दाता की) शुद्धि से और पात्रशुद्धि के कारण तथा तीन करण-मन-वचन-काया और कृत, कारित और अनुमोदित की शुद्धिपूर्वक मुझे प्रतिलाभित करने से उसने देव का आयुष्य-वन्ध किया, ससार परिमित (परित्त) किया। उसके घर मे ये पाच दिव्य प्रादुर्भूत (प्रकट) हुए। यथा—(१) वसुधारा की वृष्टि, (२) पाच वर्णो के फूलो की वृष्टि, (३) ध्वजारूप वस्त्र की वृष्टि (४) देवदुन्दुभि का वादन और (५) आकाश मे 'अहो दानम्, अहो दानम्' की घोषणा।

२७. तए ण रायगिहे नगरे सिंघाडग जाव पहेसु वहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव एव परूवेति—धन्ने ण देवाणुप्पिया ! विजये गाहावती, कतत्थे णं देवाणुप्पिया ! विजये गाहावती, कयपुन्ने ण देवाणुप्पिया ! विजये गाहावती, कयलक्खणे ण देवाणुप्पिया ! विजये गाहावती, कया ण लोया देवाणुप्पिया ! विजयस्स गाहावतिस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले विजयस्स गाहावतिस्स, जस्स ण गिहसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं

पंच दिव्वाइं पादुब्भूयाइं, त जहा—वसुधारा वुट्ठा जाव अहो दाणे घुट्ठे। त धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया ण लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले विजयस्स गाहावतिस्स, विजयस्स गाहावतिस्स।

[२७] उस समय राजगृह नगर मे शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क मार्गो यावत् राजमार्गो मे बहुत-से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहने लगे, यावत् प्ररूपणा करने लगे कि—हे देवानुप्रियो ! विजय गाथापति धन्य है, देवानुप्रियो ! विजय गाथापति कृतार्थ है, देवानुप्रियो ! विजय गाथापति कृतपुण्य (पुण्यशाली) है, देवानुप्रियो। विजय गाथापति कृतलक्षण (उत्तम लक्षणो वाला) है, देवानुप्रियो ! विजय गाथापति के उभयलोक सार्थक है और विजय गाथापति का मनुष्य जन्म और जीवन रूप फल सुलब्ध (प्रशसनीय) है कि जिसके घर मे तथारूप सौम्यरूप साधु (उत्तम श्रमण) को प्रतिलाभित करने से ये पाच दिव्य प्रकट हुए है। यथा—वसुधारा की वृष्टि यावत 'अहोदान, अहोदान' की घोषणा हुई है। अत विजय गाथापति धन्य है, कृतार्थ है, कृतपुण्य है, कृतलक्षण है। उसके दोनो लोक सार्थक है। विजय गाथापति का मानवजन्म एव जीवन सफल है—प्रशसनीय है।

२८. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते बहुजणस्स अतिय एयमट्ठ सोच्चा निसम्म समुप्पन्नससए समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव विजयस्स गाहावतिस्स गिहे तेणेव उवागच्छति, ते० उवा० २ पासति विजयस्स गाहावतिस्स गिहसि वसुधार वुट्ठ, दसद्धवण्ण कुसुम निवडिय। मम च ण विजयस्स गाहावतिस्स गिहाओ पडिनिक्खममाण पासति, पासित्ता हट्ठतुट्ठ० जेणेव मम अतिय तेणेव उवागच्छति, उवा० २ मम तिक्खुत्तो आदाहिणपदाहिण करेति, क० २ मम वदति नमसति, व० २ मम एव वयासी—तुब्भे ण भते ! मम धम्मायरिया, अह ण तुब्भ धम्मतेवासी।

[२८] उस अवसर पर मखलिपुत्र गोशालक ने भी बहुत-से लोगो से यह बात (घटना) सुनी और समझी। इससे उसके मन मे पहले सशय और फिर कुतूहल उत्पन्न हुआ। वह विजय गाथापति के घर आया। फिर उसने विजय गाथापति के घर मे बरसी हुई वसुधारा तथा पाच वर्ण के निष्पन्न कुसुम भी देखे। उसने मुझे (श्रमण भ महावीर को) भी विजय गाथापति के घर से बाहर निकलते हुए देखा। यह देख कर वह (गोशालक) हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। फिर मेरे पास आकर उसने तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। तदनन्तर वह मुझसे इस प्रकार बोला—'भगवन् ! आप मेरे धर्माचार्य है और मै आपका धर्म-शिष्य हूँ।'

२९. तए ण अह गोयमा ! गोसालस्स मखलिपुत्तस्स एयमट्ठ नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए सचिट्ठामि।

[२९] हे गौतम ! इस पर मैने मखलिपुत्र गोशालक की इस बात का आदर नही किया, उसे स्वीकार नही किया। मै मौन रहा।

विवेचन—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू २४ से २९ तक) मे शास्त्रकार ने विजय गाथापति के यहाँ हुए भगवान् महावीर के प्रथम मासक्षमण के पारणे का, उसके प्रभाव से प्रकट हुए पाच दिव्यो का तथा विजय गाथापति की उस निमित्त मे हुई सार्वजनिक प्रशसा से प्रभावित गोशालक द्वारा भगवान् का समर्थन न होते हुए भी उनके शिष्य बनने का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है।'

१, वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मू पा टि), पृ ६९४-६९५

कठिनशब्दार्थ—**अडमाणे**—भिक्षाटन करते हुए। **एज्जमाण**—आते हुए। **अब्भुट्ठेति**—उठा। **पच्चोरुभति**—उतरा। **पाउयाओ ओमुयइ**—पादुकाएँ निकाली। **अजलिमउलियहत्थे**—दोनो हाथ जोड कर। **दव्वसुद्धेण**—द्रव्य—ओदनादि के शुद्ध—उद्गमादिदोषरहित होने से। **दायगसुद्धेण**—दाता के शुद्ध—आशसा आदि दोषो से रहित होने से। **पडिगाहगसुद्धेणं**—प्रतिग्राहक—आदाता (पात्र) के शुद्ध—किसी प्रकार के प्रतिफल या स्पृहा से रहित होने से। **तिविहेण तिकरणसुद्धेण**—त्रिविध—मन-वचन-काया की तथा तीन करण—कृत-कारित-अनुमोदित की शुद्धि से। **दसद्धवण्णे कुसुमे**—दस के आधे-पाच वर्ण के फूल। **चेलुक्खेवे कए**—ध्वजारूप वस्त्रो की वृष्टि की। **घुट्ठे**—उद्घोष किया। **कयलक्खणे**—उत्तमलक्षणो वाला। **णो आढामि**—आदर नही दिया। **णो परिजाणामि**—स्वीकार नही किया। **तुसिणीए सचिट्ठामि**—मौन रहा।[1]

द्वितीय से चतुर्थ मासखमण के पारणे तक का वृत्तान्त, भगवान् के अतिशय से पुनः प्रभावित गोशालक द्वारा शिष्यताग्रहण

३०. तए ण अह गोयमा ! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि, प० २ णालद बाहिरियं मज्झमज्झेण जेणेव ततुवायसाला तेणेव उवागच्छामि, उवा० २ दोच्चं मासक्खमण उवसपज्जित्ताण विहरामि।

[३०] इसके पश्चात्, हे गौतम ! मैं राजगृह नगर मे निकला और नालन्दा पाडा से बाहर मध्य मे होता हुआ उस तन्तुवायशाला मे आया। वहाँ मैं द्वितीय मासक्षमण स्वीकार करके रहने लगा।

३१. तए ण अह गोयमा ! दोच्चमासक्खमणपारणगसि ततुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, त० प० २ नालद बाहिरिय मज्झमज्झेण जेणेव रायगिहे नगरे जाव अडमाणे आणदस्स गाहावतिस्स गिह अणुप्पविट्ठे।

[३१] फिर, हे गौतम ! मै दूसरे मासक्षमण के पारणे के समय तन्तुवायशाला से निकला और नालन्दा के बाहरी भाग के मध्य मे से होता हुआ राजगृह नगर मे यावत् भिक्षाटन करता हुआ आनन्द गाथापति के घर मे प्रविष्ट हुआ।

३२. तए ण से आणदे गाहावती मम एज्जमाण पासति, एव जहेव विजयस्स, नवर मम विउलाए खज्जगविहीए 'पडिलाभेस्सामी' ति तुट्ठे। सेस त चेव जाव तच्चं मासक्खमणं उवसपज्जित्ताण विहरामि।

[३२] उस समय आनन्द गाथापति ने मुझे आते हुए देखा, इत्यादि सारा वृत्तान्त विजय गाथापति के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि—'मैं विपुल खण्ड-खाद्यादि (खाजा आदि) भोजन-सामग्री से (भगवान् महावीर को) प्रतिलाभूगा', यो विचार कर (वह आनन्द गाथापति) सन्तुष्ट (प्रसन्न) हुआ। शेष समग्र वृत्तान्त (यहाँ से लेकर) यावत्—'मैं तृतीय मासक्षमण स्वीकार करके रहा', (यहाँ तक) पूर्ववत् (कहना चाहिए।)

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६३-६६४
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३७९-२३८०

३३. तए ण अहं गोतमा ! तच्चमासक्खमणपारणगंसि ततुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, तं० प० २ तहेव जाव अडमाणे सुणदस्स गाहावतिस्स गिह अणुपविट्ठे ।

[३३] तदनन्तर, हे गौतम ! तीसरे मासक्षमण के पारणे के लिये मैने तन्तुवायशाला से वाहर निकल कर यावत् सुनन्द गाथापति के घर मे प्रवेश किया ।

३४. तए ण से सुणदे गाहावती०, एव जहेव विजए गाहावती, नवर मम सव्वकामगुणिएण भोयणेण पडिलाभेति । सेस त चेव जाव चउत्थ मासक्खमण उवसपज्जित्ताण विहरामि ।

[३४] तब सुनन्द गाथापति ने ज्यो ही मुझे आते हुए देखा, इत्यादि सारा वर्णन विजय गाथापति के समान (कहना चाहिए ।) विशेषता यह है कि उसने (सुनन्द ने) मुझे सर्वकामगुणित (सर्वरसो से युक्त) भोजन से प्रतिलाभित किया । (यहाँ से लेकर) शेष सर्ववृत्तान्त, यावत् मै चतुर्थ मासक्षमण स्वीकार करके विचरण करने लगा, (यहाँ तक) पूर्ववत् (कहना चाहिए ।)

३५. तीसे ण नालदाए वाहिरियाए अदूरसामते एत्थ ण कोल्लाए नाम सन्निवेसे होत्था । सन्निवेसवण्णओ ।

[३५] उस नालन्दा के वाहरी भाग से कुछ दूर 'कोल्लाक' नामक सन्निवेश था । सन्निवेश का वर्णन (पूर्ववत् जान लेना चाहिए ।)

३६. तत्थ ण कोल्लाए सन्निवेसे बहुले नाम माहणे परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए रिउव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था ।

[३६] उस कोल्लाक सन्निवेश मे वहुल नामक ब्राह्मण (माहन) रहता था । वह आढ्य यावत् अपरिभूत था और ऋग्वेद (आदि वैदिक धर्मशास्त्रो) मे यावत् निपुण था ।

३७. तए ण से वहुले माहणे कत्तियचातुम्मासियपाडिवगंसि विउलेण महु-घयसजुत्तेण परमन्नेण माहणे आयामेत्था ।

[३७] उस वहुल ब्राह्मण ने कार्तिकी चौमासी की प्रतिपदा के दिन प्रचुर मधु और घृत से सयुक्त परमान्न (खीर) का भोजन ब्राह्मणो को कराया एव आचामित (कुल्ले आदि के द्वारा मुख शुद्ध) कराया ।

३८. तए ण अह गोयमा ! चउत्थमासक्खमणपारणगंसि ततुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, तं० प० २ णालद वाहिरिय मज्झमज्झेण निग्गच्छामि, नि० २ जेणेव कोल्लाए सन्निवेसे तेणेव उवागच्छामि, ते० उ० २ कोल्लाए सन्निवेसे उच्च-नीय जाव अडमाणे बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुप्पविट्ठे ।

[३८] तभी मै चतुर्थ मासक्षमण के पारणे के लिए तन्तुवायशाला से निकला और नालन्दा के वाहरी भाग के मध्य मे से होकर कोल्लाक सन्निवेश आया । वहाँ उच्च, नीच, मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ पर्यटन करता हुआ मैं वहुल ब्राह्मण के घर मे प्रविष्ट हुआ ।

३९. तए ण से बहुले माहणे ममं एज्जमाण तहेव जाव ममं विउलेण महु-घयसजुत्तेणं परमन्नेण 'पडिलाभेस्सामी' ति तुट्ठे। सेस जहा विजयस्स जाव बहुलस्स माहणस्स, बहुलस्स माहणस्स।

[३९] उस समय बहुल ब्राह्मण ने मुझे आते देखा, इत्यादि समग्र वर्णन पूर्ववत् यावत्—'मैं (आज भ महावीर स्वामी को) मधु (खाड) और घी से सयुक्त परमान्न से प्रतिलाभित करूगा,' ऐसा विचार कर वह (बहुल ब्राह्मण) सन्तुष्ट हुआ। शेष सब वर्णन विजय गाथापति के समान यावत्—'बहुल ब्राह्मण का मनुष्यजन्म और जीवनफल प्रशसनीय है', (यहाँ तक कहना चाहिए।)

४०. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते मम ततुवायसालाए अपासमाणे रायगिहे नगरे सब्भतरबाहिरिए मम सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेइ। मम कत्थति सुति वा खुति वा पवत्ति वा अलभमाणे जेणेव ततुवायसाला तेणेव उवागच्छति, उवा० २ साडियाओ य पाडियाओ य कुंडियाओ य पाहणाओ य चित्तफलगं च माहणे आयामेति, आ० २ सउत्तरोट्ठ मुंड कारेति, स० का० २ ततुवायसालाओ पडिनिक्खमति, त० प० २ णालद बाहिरिय मज्झमज्झेण निग्गच्छति, नि० २ जेणेव कोल्लागसन्निवेसे तेणेव उवागच्छइ।

[४०] उस समय मखलिपुत्र गोशालक ने मुझे तन्तुवायशाला मे नही देखा तो, राजगृह नगर के बाहर और भीतर सब ओर मेरी खोज की, परन्तु कही भी मेरी श्रुति (आवाज), क्षुति (छीक) और प्रवृत्ति न पा कर पुन तन्तुवायशाला मे लौट गया। वहाँ उसने शाटिकाएँ (अन्दर पहनने के वस्त्र), पाटिकाएँ (उत्तरीय—ऊपर पहनने के वस्त्र), कुण्डिकाएँ (भोजनादि के बर्तन), उपानत् (पगरखी) एव चित्रपट (चित्राकित फलक) आदि ब्राह्मणो को दे दिये। फिर (मस्तक मे लेकर) दाढी-मूछ (उत्तरोष्ठ) सहित मुडन करवाया।

इसके पश्चात् वह तन्तुवायशाला से बाहर निकला और नालन्दा से बाहरी भाग के मध्य मे से चलता हुआ कोल्लाकसन्निवेश मे आया।

४१. तए ण तस्स कोल्लागस्स सन्निवेसस्स बहिया बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव परूवेति—धन्ने ण देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, त चेव जाव जीवियफले बहुलस्स माहणस्स, बहुलस्स माहणस्स।

[४१] उस समय उस कोल्लाकसन्निवेश के बाहर बहुत-से लोग परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, यावत् प्ररूपणा कर रहे थे—'देवानुप्रियो! धन्य है बहुल ब्राह्मण!' इत्यादि कथन पूर्ववत्, यावत्—बहुल ब्राह्मण का मानवजन्म और जीवनरूप फल प्रशसनीय है, (यहाँ तक जानना चाहिए।)

४२. तए ण तस्स गोसालस्स मखलिपुत्तस्स बहुजणस्स अंतिय एयमट्ठ सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जारिसिया णं ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवतो महावीरस्स इड्ढी जुती जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे पत्ते

अभिसमन्नागए नो खलु अत्थि तारिसिया अन्नस्स कस्सइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढी जुती जाव परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागते, त निस्संदिद्धं ण 'एत्थं मम धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे भविस्सति' त्ति कट्टु कोल्लाए सन्निवेसे सब्भितर बाहिरिए ममं सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेति। मम सव्वओ जाव करेमाणे कोल्लागस्स सन्निवेसस्स बहिया पणियभूमीए मए सद्धि अभिसमन्नागए।

[४२] उस समय बहुत-से लोगो से इस (पूर्वोक्त) बात को सुन कर एव अवधारण करके उस मखलिपुत्र गोशालक के हृदय मे इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् सकल्प समुत्पन्न हुआ कि— मेरे धर्माचार्य एव धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर को जैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य तथा पुरुषकार-पराक्रम आदि उपलब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत हुए हैं, वैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम आदि अन्य किसी भी तथारूप श्रमण या माहन को उपलब्ध, प्राप्त, और अभिसमन्वागत नही है। इसलिए नि सदेह मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अवश्य यही होंगे, ऐसा विचार करके वह कोल्लाक-सन्निवेश के बाहर और भीतर सब ओर मेरी शोध-खोज करने लगा। सर्वत्र मेरी खोज करते हुए कोल्लाक-सन्निवेश के बाहर के भाग की मनोज्ञ भूमि मे मेरे साथ उसकी भेट हुई।

४३. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते हट्ठतुट्ठ० मम तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण जाव नमसित्ता एव वदासी—'तुब्भे ण भते! मम धम्मायरिया, अह ण तुब्भ अतेवासी।

[४३] उस समय मखलिपुत्र गोशालक ने प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर तीन बार दाहिनी ओर से मेरी प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका अन्तेवासी (शिष्य) हूँ।

४४. तए ण अह गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेमि।

[४४] तब हे गौतम! मैंने मखलिपुत्र गोशालक की इस बात को स्वीकार किया।

४५. तए ण अह गोयमा! गोसालेण मंखलिपुत्तेण सद्धि पणियभूमीए छव्वासाइं लाभं अलाभं सुखं दुक्ख सक्कारमसक्कार पच्चणुभवमाणे अणिच्चजागरियं विहरित्था।

[४५] तत्पश्चात् हे गौतम! मैं मखलिपुत्र गोशालक के साथ उस प्रणीत भूमि मे (प्रदेश मे) छह वर्ष तक लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, सत्कार-असत्कार का अनुभव करता हुआ अनित्यता-जागरिका (अनित्यता का अनुप्रेक्षण) करता हुआ विहार करता रहा।

विवेचन—प्रस्तुत सोलह सूत्रों (सू० ३० से ४५ तक) मे भगवान् ने अपने द्वितीय, तृतीय, और चतुर्थ मासखमण के पारणे का पूर्ववत् वर्णन किया है। इधर चतुर्थ मासखमण का पारणा बहुल ब्राह्मण के यहाँ हुआ, उधर गोशालक भ महावीर को तन्तुवायशाला मे न देखकर ढूढता ढूढता थक गया तब पुन तन्तुवायशाला मे आया। उसने अपने समस्त उपकरण ब्राह्मणो को दान मे दे दिये और दाढी, सिर आदि के सब केश मुँडवा कर भगवान् की खोज मे निकला। कोल्लाक-सन्निवेश के

बाहर बहुल ब्राह्मण की प्रशसा सुनकर अनुमान लगाया कि यही भगवान् महावीर होने चाहिए। वह कोल्लाक-सन्निवेश के बाहर भगवान् से मिला। गोशालक ने वन्दन-नमन करके भगवान् के समक्ष स्वय को शिष्य रूप मे समर्पित कर दिया। भगवान् ने भी उसे स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् गोशालक के साथ भगवान् ६ वर्ष तक विचरण करते रहे। यहाँ तक का वृत्तान्त भगवान् ने फरमाया है।[1]

भावी अनेक अनर्थों के कारणभूत अयोग्य गोशालक को भगवान् ने क्यो शिष्य के रूप मे स्वीकार कर लिया ? इस प्रश्न का समाधान टीकाकार यो करते है—उस समय तक भगवान् पूर्ण वीतराग नही हुए थे, अतएव परिचय के कारण उनके हृदय मे स्नेहगर्भित अनुकम्पा उत्पन्न हुई, छद्मस्थ होने से भविष्यत्कालीन दोषो की ओर उनका उपयोग नही लगा अथवा अवश्य भवितव्य ऐसा ही था, इससे उसे शिष्य रूप मे स्वीकार कर लिया।[2]

कठिनशब्दार्थ—मग्गण-गवेसण—मार्गण—शोध-खोज और गवेषण पूछताछ या पता लगाना, ढूढना। **महुघयसजुत्तेण**—मधु (शक्कर) और घी से युक्त। **खज्जगविहीए**—खाजे की भोजनविधि से। **परमन्नेण**—परमान्न, खीर से। **आयामेत्था**—आचमन कराया। **पणीयभूमीए**—(१) पणित-भूमि—भाण्डविश्राम-स्थान—भण्डोपकरण रख कर विश्राम लेने का स्थान, अथवा प्रणीतभूमि—मनोज्ञ भूमि। **सउत्तरोट्ठं**—दाढी-मूछ सहित मस्तक के केशो का। **पडिसुणेमि**—मैने स्वीकार (समर्थन) किया।[3]

गोशालक द्वारा तिल के पौधे को लेकर भगवान् को मिथ्यावादी सिद्ध करने की कुचेष्टा

४६. तए ण अहं गोयमा ! अन्नदा कदायि पढमसरदकालसमयसि अप्पवुट्ठिकायसि गोसालेण मखलिपुत्तेण सद्धिं सिद्धत्थगामाओ नगराओ कुम्मग्गामं नगर संपट्ठिए विहाराए। तस्स ण सिद्धत्थग्गामस्स नगरस्स कुम्मग्गामस्स नगरस्स य अतरा एत्थ ण महं एगे तिलथंभए पत्तिए पुप्फिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठति। तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते त तिलथभग पासति, पा० २ मम वदति नमसति, व० २ एव वदासी—एस णं भते ! तिलथंभए किं निप्फज्जिस्सति, नो निप्फज्जिस्सति ? एते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कहिं गच्छिहिंति ? कहिं उववज्जिहिंति ? तए णं अहं गोयमा ! गोसाल मंखलिपुत्त एव वयासी—गोसाला ! एस ण तिलथभए निप्फज्जिस्सति, नो न निप्फज्जिस्सइ, एए य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाइस्सति।

[४६] तदनन्तर, हे गौतम ! किसी दिन प्रथम शरत्-काल के समय, जब वृष्टि का अभाव था, मखलिपुत्र गोशालक के साथ सिद्धार्थग्राम नामक नगर से कूर्मग्राम नामक नगर की ओर

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पण युक्त) पृ ६९५ से ६९८

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६४

३ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३८२ से २३८७

विहार के लिए प्रस्थान कर चुका था। उस समय सिद्धार्थग्राम और कूर्मग्राम के बीच मे तिल का एक बड़ा पौधा था। जो पत्र-पुष्प युक्त था, हरीतिमा (हराभरा होने) की श्री (शोभा) मे अतीव शोभायमान हो रहा था। गोशालक ने उस तिल के पौधे को देखा। फिर मेरे पास आकर वन्दन—नमस्कार करके पूछा—भगवन्! यह तिल का पौधा निष्पन्न (उत्पन्न) होगा या नही? इन सात तिलपुष्पो के जीव मर कर कहाँ जाएँगे, कहाँ उत्पन्न होगे? इस पर हे गौतम! मैंने मखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा—गोशालक! यह तिलस्तवक (तिल का पौधा) निष्पन्न होगा। नही निष्पन्न होगा, ऐसी बात नही है और ये सात तिल के फूल मर कर इसी तिल के पौधे की एक तिलफली मे सात तिलो के रूप मे (पुन) उत्पन्न होगे।

४७. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते मम एव आइक्खमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहति, नो पत्तियति, नो रोएइ; एतमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे मम पणिहाए 'अय ण मिच्छावादी भवतु' त्ति कट्टु मम अतियाओ सणिय सणिय पच्चोसक्कइ, स० प० २ जेणेव से तिलथभए तेणेव उवागच्छति, उ० २ तं तिलथभग सलेट्ठुयाय चेव उप्पाडेइ, उ० २ एगते एडेति, तक्खणमेत्तं च णं गोयमा! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए। तए ण से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पा० २ खिप्पामेव पविज्जुयाति, खि० प० २ खिप्पामेव नच्चोदग नातिमट्टिय पविरलपप्फुसियं रयरेणुविणासण दिव्व सलिलोदग वास वासति जेण से तिलथभए आसत्थे पच्चायाते बद्धमूले तत्थेव पतिट्ठिए। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तस्सेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसगलियाए सत्त तिला पच्चायाता।

[४७] इस पर मेरे द्वारा कही गई इस बात पर मखलिपुत्र गोशालक ने न श्रद्धा की, न प्रतीति की और न ही रुचि की। इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही करता हुआ, 'मेरे निमित्त से यह मिथ्यावादी (सिद्ध) होजाएँ', ऐसा सोच कर गोशालक मेरे पास से धीरे-धीरे पीछे खिसका और उस तिल के पौधे के पास जाकर उस तिल के पौधे को मिट्टी सहित समूल उखाड कर एक ओर फेंक दिया। पौधा उखाडने के बाद तत्काल आकाश मे दिव्य बादल प्रकट हुए। वे बादल शीघ्र ही जोर-जोर से गर्जने लगे। तत्काल बिजली चमकने लगी और अधिक पानी और अधिक मिट्टी का कीचड न हो, इस प्रकार से कही-कही पानी की बूदाबादी होकर रज और धूल को शान्त करने वाली दिव्य जलवृष्टि हुई, जिससे तिल का पौधा वही जम गया। वह पुन उगा और बद्धमूल होकर वही प्रतिष्ठित हो गया और वे सात तिल के फूलो के जीव मर कर पुन उसी तिल के पौधे की एक फली मे सात तिल के रूप मे उत्पन्न हो गए।

विवेचन—भगवान् को मिथ्यावादी सिद्ध करने की गोशालक की कुचेष्टा—प्रस्तुत दो सूत्रो (४६-४७) मे भगवान् ने बताया है कि गोशालक ने एक तिल के पौधे को लेकर उसकी निष्पत्ति के विषय मे पूछा। मैंने यथातथ्य उत्तर दिया किन्तु मुझे झूठा सिद्ध करने हेतु उसने पौधा उखाड कर दूर फेंक दिया। किन्तु सयोगवश वृष्टि हुई, उससे वह तिल का पौधा पुन जम गया, आदि वर्णन यहाँ किया गया है। यह कथन गोशालक की अयोग्यता सिद्ध करता है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा. टि) भा २, पृ ६९९-७००

कठिनशब्दार्थ— अप्पवुट्ठिकायंसि—अल्प शब्द यहाँ अभावार्थक होने से वृष्टि का अभाव होने से, यह अर्थ उपयुक्त है। **सपट्ठिए विहाराए**— विहार के लिए प्रस्थान किया। **तिलथभए**—तिल का स्तवक, पौधा। **पढमसरदकालसमयंसि**—प्रथम शरत्काल के समय मे। सैद्धान्तिक परिभाषानुसार शरत्काल के दो मास माने जाते है—मार्गशीर्ष और पौष। इन दोनो मे से प्रथम शरत्काल—मार्गशीर्ष मास कहलाता है। **हरियग-रेरिज्जमाणे**—हरा या हरा-भरा होने से अत्यन्त सुशोभित। **निप्फज्जिस्सति**—निपजेगा, उगेगा। **तिलसगलियाए**—तिल की फली मे। **पविरल-पप्फुसिय**—थोडे या हलके स्पर्श वाले, अथवा थोडे-से फुहारे। **अब्भ-वद्दलए**—आकाश के वादल। **मम पणिहाए**—मेरे आश्रय—निमित्त से। **पच्चोसक्कइ**—पीछे हटा, या खिसका। **सणियं सणियं**—धीरे-धीरे। **रयरेणुविणासण**—रज (वायु के द्वारा आकाश मे उड कर छाई हुई धूल के कण) तथा रेणु (भूमिस्थित धूल के कण), दोनो का विनाशक—शान्त करने वाला। **पतणतणाति**—प्रकर्ष रूप से—जोर से तनतनाया—गर्जा। **आसत्थे**—स्थित हुए।[1]

मौन का अभिग्रह, फिर प्रश्न का उत्तर क्यो ?—यद्यपि भगवान् ने मौन रहने का अभिग्रह किया था किन्तु एकाध प्रश्न का उत्तर देना उनके नियम के विरुद्ध न था। याचनी आदि भाषा बोलना खुला था। इसलिए गोशालक के प्रश्न का उत्तर दिया।

वैश्यायन के साथ गोशालक की छेड़खानी, उसके द्वारा तेजोलेश्याप्रहार, गोशालकरक्षार्थ भगवान् द्वारा शीतलेश्या द्वारा प्रतीकार

४८. तए णं अहं गोयमा ! गोसालेण मखलिपुत्तेण सद्धिं जेणेव कुम्मग्गामे नगरे तेणेव उवागच्छामि ।

[४८] तदनन्तर, हे गौतम ! मै गोशालक के साथ कूर्मग्राम नगर मे आया।

४९. तए णं तस्स कुम्मगामस्स नगरस्स बहिया वेसियायणे नामं बालतवस्सी छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिया पगिज्झिया सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरति, आदिच्चतेयतवियाओ य से छप्पदाओ सव्वओ समंता अभिनिस्सवंति, पाण-भूय-जीव-सत्तदयट्ठयाए च णं पडियाओ पडियाओ तत्थेव तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चोरुभेति ।

[४९] उस समय कूर्मग्राम नगर के बाहर वैश्यायन नामक वालतपस्वी निरन्तर छठ-छठ तप कर्म करने के साथ-साथ दोनो भुजाएँ ऊँची रख कर सूर्य के सम्मुख खडा होकर आतापनभूमि मे आतापना ले रहा था। सूर्य की गर्मी से तपी हुई जूएँ (षट्पदिकाएँ) चारो ओर उसके सिर से नीचे गिरती थी और वह तपस्वी, प्राण, भूत, जीव और सत्त्वो की दया के लिए बार-बार पडती (गिरती) हुई उन जूओ को उठा कर बार-बार वही की वही (मस्तक पर) रखता जाता था।

५०. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं पासति, पा० २ मम अंतियाओ सणियं सणियं पच्चोसक्कति, मम० पा० २ जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छति, उवा० २

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६२

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३८८ से २३९० तक

वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासि—किं भवं मुणी मुणिए? उदाहु जूयासेज्जायरए? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालस्स मखलिपुत्तस्स एयमट्ठं णो आढाति नो परिजाणति, तुसिणीए सचिट्ठति। तए णं से गोसाले मखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—किं भवं मुणी मुणिए जाव सेज्जायरए? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालेणं मखलिपुत्तेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुभति, आयावण० प० २ तेयासमुग्घाएणं समोहन्नति, ते० स० २ सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कति, स० प० २ गोसालस्स मखलिपुत्तस्स वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरति।

[५०] तभी मखलिपुत्र गोशालक ने वैश्यायन बालतपस्वी को (ज्यों ही) देखा (त्यों ही) मेरे पास से धीरे-धीरे खिसक कर वैश्यायन बालतपस्वी के निकट आया और उसे गोशालक ने इस प्रकार कहा—"क्या आप तत्त्वज्ञ या तपस्वी मुनि हैं या जूँओं के शय्यातर (स्थानदाता) हैं?"

वैश्यायन बालतपस्वी ने मखलिपुत्र गोशालक के इस कथन को आदर नहीं दिया और न ही उसे स्वीकार किया, किन्तु वह मौन रहा। इस पर मखलिपुत्र गोशालक ने दूसरी और तीसरी बार वैश्यायन बालतपस्वी को फिर इसी प्रकार पूछा—आप तत्त्वज्ञ या तपस्वी मुनि हैं या जूँओं के शय्यातर हैं?

गोशालक ने जब दूसरी और तीसरी बार वैश्यायन बालतपस्वी को इस प्रकार कहा (छेड़ा) तो वह शीघ्र कुपित हो (क्रोध से भड़क) उठा यावत् क्रोध से दाँत पीसता हुआ आतापनाभूमि से नीचे उतरा। फिर तैजस-समुद्घात करके वह सात-आठ कदम पीछे हटा। इस प्रकार मखलिपुत्र गोशालक के वध (भस्म करने) के लिए उसने अपने शरीर से (उष्ण) तेजोलेश्या बाहर निकाली।

५१. तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणा तेयलेस्सा पडिहया।

[५१] तदनन्तर, हे गौतम! मैंने मखलिपुत्र गोशालक पर अनुकम्पा करने के लिए, वैश्यायन बालतपस्वी की तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने के लिए शीतल तेजोलेश्या बाहर निकाली। जिससे मेरी शीतल तेजोलेश्या से वैश्यायन बालतपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हो गया।

५२. तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेयलेस्साए साउसिणं तेयलेस्सं पडिहयं जाणित्ता गोसालस्स य मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता साउं उसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरति, साउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—से गतमेयं भगवं!, गतमेयं भगवं!।

[५२] तत्पश्चात् मेरी शीतल तेजोलेश्या से अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ तथा गोशालक के शरीर को थोड़ी या अधिक पीड़ा या अवयवक्षति नहीं हुई जान कर वैश्यायन बालतपस्वी ने अपनी उष्ण तेजोलेश्या वापस खींच (समेट) ली। उसने मुझ से फिर इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैंने जान लिया, भगवन्! मैं समझ गया।'

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ४८ से ५२ तक) मे गोशालक द्वारा वैश्यायन बालतपस्वी को चिढा कर छेडछाड करने का, वैश्यायन द्वारा क्रुद्ध होकर गोशालक पर तेजोलेश्या के प्रहार करने का, भगवान् द्वारा गोशालक के प्राणरक्षार्थ शीत-तेजोलेश्या का प्रतिघात करने का एवं यह देख कर वैश्यायन द्वारा भी अपनी उष्ण तेजोलेश्या वापस खीच लेने का, इस प्रकार चार क्रमो मे यह वृत्तान्त अंकित किया गया है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**सद्धिं**—साथ। **उड्ढ बाहाओ पगिज्झिय**—दोनो भुजाएँ ऊँची रख कर। **आयावणभूमीए**—आतापना भूमि मे। **आइच्च-तेयतवियाओ**—आदित्य—सूर्य के तेज-ताप से तपी हुई। **छप्पईओ**—षट्पदी जूएँ। **पडियाओ**—पडी-गिरी हुई। **सणियं सणियं**—शनै शनैः। **भव**—आप। **मुणिए**—तत्त्वज्ञ अथवा तपस्वी। **जुया-सेज्जायरए**—जुओ के शय्यातर (जुओ के घर के स्वामी)। **आसुरुत्ते**—कुपित हुआ। **मिसिमिसेमाणे**—मिसमिसाहट करते (क्रोध से दात पीसते) हुए। **तेया-समुग्घाएण**—तैजस-समुद्घात। **वहाए**—वध के लिए। **तेयं**—तेजोलेश्या। **पडिसाहरणट्ठयाए**—पीछे हटाने-प्रतिहत करने के लिए। **उसिणा**—उष्ण। **साउसिण**—स्वकीय उष्ण। **तेयलेस्सं**—तेजोलेश्या को। **अकीरमाणं**—नही करता हुआ। **सायं**—अपनी। **गतमेयं**—(मैंने) जान लिया।[2]

भगवान् द्वारा गोशालक पर तेजोलेश्याप्रहार के शमन का वृत्तान्त तथा गोशालक को तेजोलेश्याविधि का कथन

५३. तए णं से गोसाले मखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—किं णं भते! एस जूयासेज्जायरए तुब्भे एव वदासी—'से गयमेत भगवं! गयमेतं भगवं!'? तए णं अहं गोयमा! गोसालं मखलिपुत्तं एवं वदामि—"तुमं ण गोसाला! वेसियायणं बालतवस्सिं पाससि, पा० २ ममं अंतियातो सणिय सणिय पच्चोसक्कसि, प० २ जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छसि, ते० उ० २ वेसियायण बालतवस्सिं एव वयासी—किं भवं मुणी मुणिए? उदाहु जूयासेज्जायरए? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी तव एयमट्ठं नो आढाति, नो परिजाणति, तुसिणीए संचिट्ठति। तए णं तुमं गोसाला! वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—किं भव मुणी जाव सेज्जायरए? तए ण से वेसियायणे बालतवस्सी तुमं (?मे) दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव पच्चोसक्कति. प० २ तव वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरति। तए णं अहं गोसाला! तव अणुकंपणट्ठताए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणतेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि जाव पडिहयं जाणित्ता तव य सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता सायं उसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरति, सायं० प० २ ममं एवं वयासी—से गयमेयं भगवं!, गयमेय भगवं!"।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ७००-७०१

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६८

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ. २३९२-२३९३

[५३] तदनन्तर मखलिपुत्र गोशालक ने मुझ से यों पूछा—'भगवन् ! इस जुओं के शय्यातर ने आपको इस प्रकार क्या कहा कि—'भगवन् ! मैंने जान लिया, भगवन् !' मैं समझ गया ? इस पर हे गौतम ! मखलिपुत्र गोशालक से मैंने यों कहा—हे गोशालक ! ज्यों ही तुमने वैश्यायन बालतपस्वी को देखा, त्यों ही तुम मेरे पास से शनैः शनैः खिसक गए और जहाँ वैश्यायन बालतपस्वी था, वहाँ पहुँच गए। फिर उसके निकट जा कर तुमने वैश्यायन बालतपस्वी से इस प्रकार कहा—क्या आप तत्त्वज्ञ मुनि हैं अथवा जूंओं के शय्यातर हैं ? उस समय वैश्यायन बालतपस्वी ने तुम्हारे उस कथन का आदर नहीं किया (सुना-अनसुना कर दिया) और न ही उसे स्वीकार किया, बल्कि वह मौन रहा। जब तुमने दूसरी और तीसरी बार भी वैश्यायन बालतपस्वी को उसी प्रकार कहा, तब वह एकदम कुपित हुआ यावत् वह पीछे हटा और तुम्हारा वध करने के लिए उसने अपने शरीर से तेजोलेश्या निकाली। हे गोशालक ! तब मैंने तुझ पर अनुकम्पा करने के लिए वैश्यायन बालतपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने के लिए अपने अन्तर से शीतल तेजोलेश्या निकाली, यावत् उससे उसकी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ जान कर तथा तेरे शरीर को किंचित् भी बाधा-पीड़ा या अवयवक्षति नहीं हुई, देख कर उसने अपनी उष्ण तेजोलेश्या वापस खींच ली। फिर मुझे इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं जान गया, भगवन् ! मैंने भलीभांति समझ लिया।'

५४. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते मम अंतियाओ एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीए जाव संजायभये मम वंदति नमंसति, मम वं० २ एवं वयासी—कहं णं भंते ! संखित्तविउलतेयलेस्से भवति ? तए णं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयामि—जे णं गोसाला ! एगाए सणहाए कुम्मास-पिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय जाव विहरइ से णं अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेस्से भवति। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते मम एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेति।

[५४] तत्पश्चात् मखलिपुत्र गोशालक मेरे (मुख) से यह (उपर्युक्त) बात सुन कर और अवधारण करके डरा, यावत् भयभीत होकर मुझे वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—'भगवन् ! संक्षिप्त और विपुल तेजोलेश्या कैसे प्राप्त (उपलब्ध) होती है ?' हे गौतम ! तब मैंने मखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा 'गोशालक ! नखसहित बन्द की हुई मुट्ठी में जितने उड़द के बाकुले आवें तथा एक विकटाशय (चुल्लू भर) जल (अचित्त पानी) से निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले के) तपश्चरण के साथ दोनों भुजाएँ ऊँची रख कर यावत् आतापना लेता रहता है, उस व्यक्ति को छह महीने के अन्त में संक्षिप्त और विपुल तेजोलेश्या प्राप्त होती है।' यह सुन कर मखलिपुत्र गोशालक ने मेरे इस कथन को विनयपूर्वक सम्यक् रूप से स्वीकार किया।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रों (५३-५४) में दो तथ्यों का प्रतिपादन किया है—(१) गोशालक को ज्ञात हो गया कि मुझ पर वैश्यायन बालतपस्वी द्वारा किये गए उष्णतेजोलेश्या के प्रहार को भगवान् ने अपनी शीततेजोलेश्या द्वारा शान्त कर दिया, (२) संक्षिप्तविपुल तेजोलेश्या की प्राप्ति की विधि बतला कर गोशालक की जिज्ञासा का समाधान किया।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ७०९-६०२१

शब्दार्थ—मुणी मुणिए—मुनि, तपस्वी या मुणित—ज्ञाततत्व ।[1]

सखित्तविउलतेयलेस्से—सक्षिप्त और विपुल दोनो प्रकार की तेजोलेश्या । तेजोलेश्या अप्रयोग काल मे सक्षिप्त होती है, जबकि प्रयोगकाल मे विपुल हो जाती है ।[2]

भीए—डरा । सणहाए—नख—सहित । अर्थात्—जिस मुट्ठी के बद किये जाने पर अंगुलियो के नख, अगूठे के नीचे लगे, वह सनखा मुट्ठी (पिण्डिका) कहलाती है । कुम्मासपिडियाए—आधे भीगे हुए मूग आदि से अथवा उडद से भरी (सनख) पिण्डिका (मुट्ठी) । वियडासएणं—विकट—(अचित्त) जल, उसका आशय या आश्रय विकटाशय या विकटाश्रय (चुल्लू भर जल) से ।[3]

भगवान् द्वारा गोशालक की रक्षा और तेजोलेश्या विधि-निर्देश—कुछ लोग यह प्रश्न उठाते हैं कि भगवान् ने गोशालक की रक्षा क्यो की ? तथा उसे तेजोलेश्या की विधि क्यो बताई ? क्योकि आगे चल कर गोशालक ने भगवान् के दो शिष्यो का तेजालेश्या से घात किया तथा भगवान् की भी अपकीर्ति की । इसका समाधान वृत्तिकार इस प्रकार करते है—भगवान् दया के सागर थे । उनके मन मे गोशालक के प्रति कोई द्वेषभाव या दुर्भाव नही था । इसलिए गोशालक की रक्षा की । सुनक्षत्र और सर्वानुभूति, इन दो मुनियो की रक्षा न करने का उनका भाव नही था, बल्कि उन्होने सभी मुनियो से उस समय गोशालक के साथ किसी प्रकार का विवाद न करने की चेतावनी दी थी । फिर उस समय भगवान् वीतराग थे, इसलिए लब्धिविशेष का प्रयोग नही करते थे । लब्धिविशेष का प्रयोग छद्मस्थ-अवस्था मे ही उन्होने किया था । लब्धि का प्रयोग करना प्रमाद है और वीतराग-अवस्था मे प्रमाद हो नही सकता, छद्मस्थ-अवस्था मे क्षम्य है । उक्त दो मुनियो की रक्षा न कर सकने का एक कारण—अवश्यम्भावी भाव था ।[4] अर्थात्—भगवान् को ज्ञात था कि इन मुनियो के आयुष्य का अन्त इसी प्रकार होने वाला है ।

गोशालक द्वारा भगवान् के साथ मिथ्यावाद, एकान्त- परिवृत्यपरिहारवाद की मान्यता और भगवान् से पृथक् विचरण

५५. तए ण अह गोयमा ! अन्नदा कदायि गोसालेणं मखलिपुत्तेण सद्धि कुम्मग्गामाओ नगराओ सिद्धत्थग्गाम नगर संपत्थिए विहाराए । जाहे य मो त देस हव्वमागया जत्थ ण से तिलथंभए तए ण से गोसाले मंखलिपुत्ते मम एवं वदासि—"तुब्भे णं भंते ! तदा ममं एवं आइक्खह जाव परूवेह—'गोसाला ! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सति, नो न निप्फ०, तं चेव जाव पच्चायाइस्सति' तं णं मिच्छा, इम णं पच्चक्खमेव दीसति 'एस ण से तिलथंभए णो निप्फन्ने, अनिप्फन्नमेव; ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता नो एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त

---

१ भगवती अ वृ पत्र ६६८

२ 'सक्षिप्ता-अप्रयोगकाले, विपुला-प्रयोगकाले तेजोलेश्या-लब्धि-विशेषो यस्य स तथा ।'—भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ६६८

३ (क) वही, अ वृत्ति, पत्र ६६८

(ख) भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३९१ से २३९६ तक

४ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६८

तिला पच्चायाता"। तए णं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वदामि—"तुमं णं गोसाला! तदा मम एवं आइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहसि, नो पत्तियसि, नो रोएसि, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे ममं पणिहाए 'अयं णं मिच्छावादी भवतु' त्ति कट्टु ममं अंतियाओ सणियं सणियं पच्चोसक्कसि, प० २ जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छसि, उ० २ जाव एगंतमंते एडेसि, तक्खणमेत्तं गोसाला! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूते। तए णं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव०, तं चेव जाव तस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया। तं एस णं गोसाला! से तिलथंभए निप्फन्ने, णो अनिप्फन्नमेव, ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाता। एवं खलु गोसाला! वणस्सतिकाइया पउट्टपरिहारं परिहरंति"।

[५५] हे गौतम! इसके पश्चात् किसी एक दिन मंखलिपुत्र गोशालक के साथ मैंने कूर्मग्राम-नगर से सिद्धार्थग्रामनगर की ओर विहार के लिए प्रस्थान किया। जब हम उस स्थान (प्रदेश) के निकट आए, जहाँ वह तिल का पौधा था, तब गोशालक मंखलिपुत्र ने मुझ से इस प्रकार कहा—'भगवन्! आपने मुझे उस समय इस प्रकार कहा था, यावत् प्ररूपणा की थी कि हे गोशालक! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा, यावत् तिलपुष्प के सप्त जीव मर कर सात तिल के रूप में पुनः उत्पन्न होंगे, किन्तु आपकी वह बात मिथ्या हुई, क्योंकि यह प्रत्यक्ष दिख रहा है कि यह तिल का पौधा उगा ही नहीं और वे तिलपुष्प के सात जीव मर कर इस तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उत्पन्न नहीं हुए।'

हे गौतम! तब मैंने मंखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा—हे गोशालक! जब मैंने तुझ से ऐसा कहा था, यावत् ऐसी प्ररूपणा की थी, तब तूने मेरी उस बात पर न तो श्रद्धा की, न प्रतीति की, न ही उस पर रुचि की, बल्कि उक्त कथन पर श्रद्धा, प्रतीति या रुचि न करके तू मुझे लक्ष्य करके कि 'यह मिथ्यावादी हो जाए' ऐसा विचार कर मेरे पास से धीरे-धीरे खिसक गया था और जहाँ वह तिल का पौधा था, वहाँ जा पहुँचा यावत् उस तिल के पौधे को तूने मिट्टी सहित उखाड़ कर एकान्त में फेंक दिया। लेकिन हे गोशालक! उसी समय आकाश में दिव्य बादल प्रकट हुए यावत् गर्जने लगे, इत्यादि यावत् वे तिलपुष्प तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उत्पन्न हो गए हैं। अतः हे गोशालक! यही वह तिल का पौधा है, जो निष्पन्न हुआ है, अनिष्पन्न नहीं रहा है और वे ही सात तिलपुष्प के जीव मर कर इसी तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार हे गोशालक! वनस्पतिकायिक जीव मर-मर कर उसी वनस्पतिकाय के शरीर में पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

५६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते मम एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहति ३। एतमट्ठं असद्दहमाणे जाव अरोयेमाणे जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छति, उ० २ ततो तिलथंभयाओ तं तिलसंगलियं खुडति, खुडित्ता करतलंसि सत्त तिले पप्फोडेइ। तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ते सत्त तिले गणेमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु सव्वजीवा वि पउट्टपरिहारं परिहरंति'। एस णं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स पउट्टे। एस णं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ममं अंतियाओ आयाए अवक्कमणे पन्नत्ते।

[५६] तब मखलिपुत्र गोशालक ने मेरे इस कथन यावत् प्ररूपण पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही की। बल्कि उस कथन के प्रति अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करता हुआ वह उस तिल के पौधे के पास पहुँचा और उसकी तिलफली तोडी, फिर उसे हथेली पर मसल कर (उसमे से) सात तिल बाहर निकाले। तदनन्तर उस मखलिपुत्र गोशालक को उन सात तिलो को गिनते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् सकल्प उत्पन्न हुआ—सभी जीव इस प्रकार परिवृत्य-परिहार करते है (अर्थात्—मर कर पुन उसी शरीर मे उत्पन्न हो जाते है।) हे गौतम! मखलिपुत्र गोशालक का यह परिवर्त्त (परिवर्त्त-परिहार-वाद) है और हे गौतम! मुझसे (तेजोलेश्या-प्राप्ति की विधि जानने के बाद) मखलिपुत्र गोशालक का यह अपना (स्वेच्छा से) अपक्रमण (पृथक् विचरण) है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (५५-५६) मे गोशालक द्वारा भगवान् के साथ मिथ्या-प्रतिवाद करने का तथा भगवान् का कथन सत्य सिद्ध हो जाने पर भी दुराग्रहवश सर्वजीवो के परिवर्त्त-परिहार की मिथ्या मान्यता को लेकर भगवान् से पृथक् विचरण करने का प्रतिपादन है।[1]

कठिनशब्दार्थ—खुडति—तोडता है। **पप्फोडेइ**—मसलता है। **पउट्टपरिहार**—परिवृत्त होकर—उसी (वनस्पति-शरीर) का परिहार—परिभोग (उत्पाद) करते है। **आयाए**- अपने से, स्वेच्छा से गोशालक स्वय, अथवा (तेजलेश्याप्राप्ति का उपदेश) आदान—ग्रहण करके। **अवक्कमणे**—अपक्रमण-पृथक् विचरण।[2]

गोशालक का मिथ्या-आग्रह—भगवान् ने बताया था कि वनस्पतिकायिक जीव परिवृत्य-मर कर परिहार करते है, अर्थात् मर कर बार-बार पुन उसी शरीर मे उत्पन्न हो जाते है, किन्तु गोशालक ने मिथ्याग्रहवश सभी जीवो के लिए एकान्त रूप से 'परिवृत्य-परिहारवाद' मान लिया। यह उसकी मिथ्या मान्यता थी।[3]

गोशालक को तेजोलेश्या की प्राप्ति, अहंकारवश जिन-प्रलाप एव भगवान् द्वारा स्ववक्तव्य का उपसहार

५७. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते एगाए सणहाए कुम्मासपिडियाए एगेण य वियडासएण छट्ठ छट्ठेण अनिक्खित्तेण तवोकम्मेण उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय जाव विहरइ। तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते अतो छण्ह मासाण सखित्तविउलतेयलेस्से जाते।

[५७] तत्पश्चात् मखलिपुत्र गोशालक नखसहित एक मुट्ठी मे आवे, इतने उडद के बाकलो से तथा एक चुल्लूभर पानी से निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) के तपश्चरण के साथ दोनो बाहे ऊँची करके सूर्य के सम्मुख खडा रह कर आतापना-भूमि मे यावत् आतापना लेने लगा। ऐसा करते हुए गोशालक को छह मास के अन्त मे, सक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्या प्राप्त हो गई।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ७०३-७०४

२ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३९७ से २३९९

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६६६

३ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २३९९

५८ तए ण तस्स गोसालस्स मखलिपुत्तस्स अन्नदा कदायि इमे छद्दिसाचरा अतिय पादुब्भविल्था, त जहा—सोणे०, त चेव सव्व जाव अजिणे जिणसद्द पगासेमाणे विहरति। तं नो खलु गोयमा ! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे, जिणप्पलावी जाव जिणसद्द पगासेमाणे विहरति। गोसाले ण मखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी जाव पगासेमाणे विहरति।

[५८] इसके बाद मखलिपुत्र गोशालक के पास किसी दिन ये छह दिशाचर प्रकट हुए। यथा-शोण इत्यादि सब कथन पूर्ववत् यावत्-जिन न होते हुए भी अपने आपको जिन शब्द से प्रकट करता हुआ विचरण करने लगा है। अत हे गौतम ! वास्तव मे मखलिपुत्र गोशालक 'जिन' नही है, वह 'जिन' शब्द का प्रलाप करता हुआ यावत् 'जिन' शब्द मे स्वय को प्रसिद्ध (प्रकट) करता हुआ विचरता है। वस्तुत मखलिपुत्र गोशालक अजिन (जिन नही) है, जिनप्रलापी है, यावत् जिन शब्द से स्वय को प्रकट करता हुआ विचरता है।

५९. तए ण सा महतिमहालिया महच्चपरिसा जहा सिवे (स० ११ उ० ९ सु० २६) जाव पडिगया।

[५९] तदनन्तर वह अत्यन्त बडी परिषद् (ग्यारहवे शतक उद्देशक ९, सू २६ मे कथित) शिवराजर्षि के समान धर्मोपदेश सुन कर यावत् वन्दना-नमस्कार कर वापस लौट गई।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रों ५७-५८-५९ मे भगवान् ! गोशालक के जीवनवृत्त का उपसहार करते हुए निम्नोक्त तथ्यों को उजागर करते है—(१) गोशालक ने विधिपूर्वक तपश्चरण करके तेजोलेश्या प्राप्त कर ली। (२) अहकारवश जिन न होते हुए भी स्वय को जिन कहने लगा। (३) गोशालक दम्भी है, वह जिन नही है, किन्तु जिन-प्रलापी है। (४) एक विशाल परिषद् मे भगवान् ने इस सत्य-तथ्य को उजागर किया।[1]

भगवान् द्वारा अपने अजिनत्व का प्रकाशन सुन कर कुंभारिन की दूकान पर कुपित गोशालक की ससंघ जमघट

६०. तए ण सावत्थीए नगरीए सिंघाडग जाव बहुजणो अन्नमन्नस्स जाव परूवेइ—"ज णं देवाणुप्पिया ! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरति त मिच्छा, समणे भगव महावीरे एव आइक्खति जाव परूवेति 'एव खलु तस्स गोसालस्स मखलिपुत्तस्स मखली नाम मखे पिता होत्था। तए ण तस्स मंखलिस्स०, एव चेव सव्व भाणितव्व जाव अजिणे जिणसद्द पकासेमाणे विहरति'। तं नो खलु गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरति, गोसाले ण मखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी जाव विहरति। समणे भगव महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्द पगासेमाणे विहरति"।

[६०] तदनन्तर श्रावस्ती नगरी मे शृ गाटक (त्रिकोणमार्ग) यावत् राजमार्गो पर बहुत-से लोग एक दूसरे से यावत् प्ररूपणा करने लगे—हे देवानुप्रियो ! जो यह गोशालक मखलि-पुत्र अपने-

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मू. पा टि) पृ ७०४

आप को 'जिन' हो कर, 'जिन' कहता यावत् फिरता है, यह वात मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि उस मखलिपुत्र गोशालक का 'मखली' नामक मख (भिक्षाचर) पिता था। उस समय उस मखली का ' इत्यादि पूर्वोक्त समस्त वर्णन, यावत्—वह (गोशालक) जिन नही होते हुए भी 'जिन' शब्द से अपने आपको प्रकट करता है। इसलिए मखलिपुत्र गोशालक जिन नही है। वह 'जिन' शब्द का प्रलाप करता हुआ, यावत् विचरता है। अतएव वस्तुत मखलिपुत्र गोशालक अजिन है, किन्तु जिन-प्रलापी हो कर यावत् विचरता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी 'जिन' है, 'जिन' कहते हुए यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करते हुए विचरते है।

६१. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते बहुजणस्स अतिय एयमट्ठ सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे आतावणभूमितो पच्चोरुभति, आ० प० २ सावत्थि नगरिं मज्झंमज्झेण जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुभकारावणे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ हालाहलाए कुभकारीए कुभकारावणसि आजीवियसघसपरिवुडे महता अमरिस वहमाणे एव वा वि विहरति।

[६१] जब मखलिपुत्र गोशालक ने बहुत-से लोगो से यह वात सुनी, तव उसे सुनकर और अवधारण करके वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, यावत् मिसमिसाहट करता (क्रोध से दात पीसता) हुआ आतापनाभूमि से नीचे उतरा और श्रावस्ती नगरी के मध्य मे होता हुआ हालाहला कुम्भारिन की बर्तनो की दूकान पर आया। वह हालाहला कुम्भारिन की बर्तनो की दूकान पर आजीविकसघ से परिवृत हो (घिरा रह) कर अत्यन्त अमर्ष (रोष) धारण करता हुआ इसी प्रकार विचरने लगा।

विवेचन—क्रुद्ध गोशालक भगवान् को बदनाम करने की फिराक मे—प्रस्तुत दो सूत्रो (६०-६१) मे भगवान् द्वारा गोशालक की वास्तविकता प्रकट किये जाने पर श्रावस्ती के लोगो के मुह से सुनकर क्रुद्ध गोशालक द्वारा हालाहला कुभारिन की दुकान पर सघ-सहित, भगवान् को बदनाम करने हेतु आने का वर्णन है।[1]

गोशालक द्वारा अर्थलोलुप-वणिकवर्ग-विनाशदृष्टान्त-कथनपूर्वक आनन्द स्थविर को भगवद्-विनाशकथनचेष्टा

६२. तेण कालेण तेणं समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स अतेवासी आणदे नामं थेरे पगतिभद्दए जाव विणीए छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरति। तए ण से आणदे थेरे छट्ठक्खमणपारणगसि पढमाए पोरिसीए एव जहा गोयमसामी (स० २ उ० ५ सु० २२-२४) तहेव आपुच्छइ, तहेव जाव उच्च-नीय-मज्झिम जाव अडमाणे हालाहलाए कुभकारीए कुंभकारावणस्स अदूरसामतेणं वीतीवयति।

[६२] उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर का अन्तेवासी (शिष्य) आनन्द नामक स्थविर था। वह प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था और निरन्तर छठ-छठ (वेले-वेले) का तपश्चरण

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७०४

करता हुआ और सयम एव तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था। उस दिन आनन्द स्थविर ने अपने छठक्षमण (बेले के तप) के पारणे के दिन प्रथम पौरुषी (प्रहर) मे स्वाध्याय किया यावत्—(शतक २, उ ५ सू २२-२४ मे कथित) गौतमस्वामी (की चर्या) के समान भगवान् से (भिक्षाचर्या की) आज्ञा मागी और उसी प्रकार ऊँच, नीच और मध्यम कुलो मे यावत् भिक्षार्थ पर्यटन करता हुआ हालाहला कुम्भारिन की वर्तनो की दूकान के पास मे गुजरा।

६३. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते आणद थेर हालाहलाए कुभकारीए कुभकारावणस्स अदूरसामतेण वीतीवयमाण पासति, पासित्ता एव वयासी—एहि ताव आणदा! इओ एग मह ओवमिय निसामेहि।

[६३] जब मखलिपुत्र गोशालक ने आनन्द स्थविर को हालाहला कुम्भारिन की वर्तनो की दुकान के निकट से जाते हुए देखा, तो इस प्रकार बोला—'अरे आनन्द! यहाँ आओ, एक महान् (विशिष्ट या मेरा) दृष्टान्त सुन लो।'

६४. तए ण से आणदे थेरे गोसालेण मखलिपुत्तेण एव वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए, कुभकारीए कुंभकारावणे जेणेव गोसाले मखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छति।

[६४] गोशालक के द्वारा इस प्रकार कहने पर आनन्द स्थविर, हालाहला कुम्भारिन की वर्तनो की दुकान मे (बैठे) गोशालक के पास आया।

६५ तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते आणद थेर एव वदासी—

"एव खलु आणदा! इतो चिरातीयाए अद्धाए केयी उच्चावया वणिया अत्थऽत्थी अत्थलुद्धा अत्थगवेसी अत्थकखिया अत्थपिवासा अत्थगवेसणयाए नाणाविहविउलपणियभडमायाए सगडी-सागडेण सुबहु भत्त-पाणपत्थयण गहाय एग मह अगामिय अणोहिय छिन्नावाय दीहमद्ध अडवि अणुप्पविट्ठा।

"तए ण तेसि वणियाण तीसे अगामियाए अणोहियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए कचि देस अणुप्पत्ताण समाणाण से पुव्वगहिए उदए अणुपुव्वेण परिभुज्जमाणे परिभुज्जमाणे खीणे।

"तए ण ते वणिया खीणोदगा समाणा तण्हाए परिब्भवमाणा अन्नमन्न सद्दावेंति, अन्न० स० २ एव वयासि—'एव खलु देवाणुप्पिया! अम्ह इमीसे अगामियाए जाव अडवीए कचि देस अणुप्पत्ताण समाणाण से पुव्वगहिते उदए अणुपुव्वेण परिभुज्जमाणे परिभुज्जमाणे खीणे, त सेय खलु देवाणुप्पिया! अम्ह इमीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगस्स सव्वतो समता मग्गणगवेसण करेत्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अतिय एयमट्ठ पडिसुर्णेति, अन्न० पडि० २ तीसे ण अगामियाए जाव अडवीए उदगस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेंति। उदगस्स सव्वतो समता मग्गणगवेसण करेमाणा एग मह वणसड आसादेंति किण्ह किण्होभास जाव[1] निकुरबभूय पासादीय जाव पडिरूव। तस्स णं वणसडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण महेग वम्मीय आसादेंति। तस्स ण वम्मीयस्स चत्तारि वप्पूओ अब्भुग्गयाओ

१ 'जाव' पद सूचक पाठ' 'नील नीलोभास हरिय हरिओभास' इत्यादि। —भगवती अ वृ पत्र ६७२

अभिनिसढाओ, तिरियं सुसपग्गहिताओ, अहे पन्नगद्धरूवाओ पन्नगद्धसंठाणसंठियाओ पासादीयाओ जाव पडिरूवाओ।

"तए णं ते वणिया हट्टतुट्ठ० अन्नमन्नं सद्दावेंति, अन्न० स० २ एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमीसे अगामियाए जाव सव्वतो समंता मग्गणगवेसणं करेमाणेहिं इमे वणसंडे आसादिते किण्हे किण्होभासे०, इमस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए इमे वम्मीए आसादिए, इमस्स णं वम्मीयस्स चत्तारि वप्पूओ अब्भुग्गयाओ जाव पडिरूवाओ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स पढमं वपुं भिंदित्तए अवियाइं इत्थ ओरालं उदगरयणं अस्सादेस्सामो'।

"तए णं वणिया अन्नमन्नस्स अंतियं एतमट्ठं पडिस्सुर्णेति, अन्न० प० २ तस्स वम्मीयस्स पढमं वपुं भिंदति, ते णं तत्थ अच्छं पत्थं जच्चं तणुयं फालियवण्णाभं ओरालं उदगरयणं आसादेंति।

"तए णं ते वणिया हट्टतुट्ठ० पाणियं पिबंति, पा० पि० २ वाहणाइं पज्जेंति, वा० प० २ भायणाइं भरेंति, भा० भ० २ दोच्चं पि अन्नमन्नं एवं वदासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स दोच्चं पि वपुं भिंदित्तए, अवियाइं एत्थ ओरालं सुवण्णरयणं अस्सादेस्सामो।

"तए णं ते वणिया अन्नमन्नस्स अंतियं एयमट्ठं पडिस्सुर्णेति, अन्न० प० २ तस्स वम्मीयस्स दोच्चं पि वपुं भिंदति। ते णं तत्थ अच्छं जच्चं तावणिज्जं महत्थं महग्घं महरिहं ओरालं सुवण्णरयणं अस्सादेंति।

"तए णं ते वणिया हट्टतुट्ठ० भायणाइं भरेंति, भा० भ० २ पवहणाइं भरेंति, प० भ० २ तच्चं पि अन्नमन्नं एवं वदासि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स तच्चं पि वपुं भिंदित्तए, अवियाइं एत्थ ओरालं मणिरयणं अस्सादेस्सामो।

"तए णं ते वणिया अन्नमन्नस्स अंतियं एतमट्ठं पडिसुर्णेति, अन्न० प० २ तस्स वम्मीयस्स तच्चं पि वपुं भिंदति। ते णं तत्थ विमलं निम्मलं नित्तलं निक्कलं महत्थं महग्घं महरिहं ओरालं मणिरयणं अस्सादेंति।

"तए णं ते वणिया हट्टतुट्ठ० भायणाइं भरेंति, भा० भ० २ पवहणाइं भरेंति, प० भ० २ चउत्थं पि अन्नमन्नं एवं वदासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले मणिरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स चउत्थं पि वपुं भिंदित्तए, अवियाइं एत्थ उत्तमं महग्घं महरिहं ओरालं वइररतणं अस्सादेस्सामो।

"तए णं तेसिं वणियाणं एगे वणिए हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए निस्सेसिए हिय-सुह-निस्सेसकामए ते वणिए एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स

पटमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे जाव तच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले मणिरयणे अस्सादिए, त होउ अलाहि पज्जत्त णे, एसा चउत्थी वप्पू मा भिज्जउ, चउत्थी ण वप्पू सउवसग्गा यावि होज्जा ।

"तए ण ते वणिया तस्स वणियस्स हियकामगस्स सुहकाम० जाव हिय-सुह-निस्सेसकामगस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एतमट्ठ नो सद्दहति जाव नो रोयेंति, एयमट्ठं असद्दहमाणा जाव अरोयेमाणा तस्स वम्मीयस्स चउत्थ पि वप्पुं भिंदति, ते ण तत्थ उग्गविस चडविस घोरविस महाविस अतिकायमहाकाय-मसि-मूसाकालग नयणविसरोसपुण्ण अजणपुंजनिगरप्पगास रत्तच्छ जमलजुयल-चचलचलतजीह धरणितलवेणिभूय उक्कडफुडकुडिलजडुलकक्खडविकडफडाडोवकरणदच्छ लोहागर-धम्ममाणधमधमेंतघोस अणागलियचडतिव्वरोस समुहि तुरिय चवल धमत दिट्ठीविस सप्प सघट्टेंति । तए ण से दिट्ठीविसे सप्पे तेहिं वणिएहि सघट्टिए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे सणिय सणिय उट्ठेति, उ० २ सरसरसरस्स वम्मीयस्स सिहरतल द्रुहति, सर० द्रु० २ आदिच्च णिज्झाति, आ० णि० २ ते वणिए अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वतो समता समभिलोएति । तए ण ते वणिया तेण दिट्ठीविसेण सप्पेण अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समता समभिलोइया समाणा खिप्पामेव सभडमत्तोवगरणमाया एगाहच्च कूडाहच्च भासरासीकया यावि होत्था । तत्थ ण जे से वणिए तेसिं वणियाण हियकामए जाव हिय-सुह-निस्सेसकामए से ण आणुकपिताए देवयाए सभडमत्तोवकरणमायाए नियग नगर साहिए ।

"एवामेव आणदा ! तव वि धम्मायरिएण धम्मोवएसएण समणेण नायपुत्तेण ओराले परियाए अस्सादिए, ओराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगा सदेवमणुयासुरे लोए पुवति गुवति तुवति 'इति खलु समणे भगव महावीरे, इति खलु समणे भगव महावीरे' । त जदि मे से अज्ज किंचि वदति तो ण तवेण तेएण एगाहच्च कूडाहच्च भासरासिं करेमि जहा वा वालेण ते वणिया । तुम च ण आणदा ! सारक्खामि सगोवामि जहा वा से वणिए तेसिं वणियाण हितकामए जाव निस्सेसकामए आणुकपियाए देवयाए सभंडमत्तोवगरण० जाव साहिए । त गच्छ ण तुम आणदा ! तव धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स णातपुत्तस्स एयमट्ठ परिकहेहि ।"

[६५] तदनन्तर मखलिपुत्र गोशालक ने आनन्द स्थविर से इस प्रकार कहा—

'हे आनन्द ! आज से बहुत वर्षो (काल) पहले की बात है । कई उच्च एव नीची स्थिति के धनार्थी, धनलोलुप, धन के गवेषक, अर्थाकाक्षी, अर्थपिपासु वणिक्, धन की खोज मे नाना प्रकार के किराने की सुन्दर वस्तुएँ, अनेक गाडे-गाडियो मे भर कर और पर्याप्त भोजन-पानरूप पाथेय ले कर ग्रामरहित, जल-प्रवाह से रहित, सार्थ आदि के आगमन से विहीन तथा लम्बे पथ वाली एक महा-अटवी मे प्रविष्ट हुए ।

'ग्रामरहित (अथवा अनिष्ट), जल-प्रवाहरहित, सार्थों के आवागमन से रहित उस दीर्घमार्ग वाली अटवी के कुछ भाग मे, उन वणिको के पहुँचने के बाद, अपने साथ पहले का लिया हुआ पानी (पेयजल) क्रमश पीते-पीते समाप्त हो गया ।

'जल समाप्त हो जाने से तृषा से पीडित वे वणिक् एक दूसरे को बुला कर इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रियो ! इस अग्राम्य यावत् महा-अटवी के कुछ भाग मे पहुँचते ही हमारे साथ मे पहले से लिया पानी क्रमश पीते-पीते समाप्त हो गया है, इसलिए अब हमे इसी अग्राम्य यावत् अटवी मे चारो ओर पानी की शोध-खोज करना श्रेयस्कर है ।' इस प्रकार विचार करके उन वणिको ने परस्पर इस बात को स्वीकार किया और उस ग्रामरहित यावत् अटवी मे वे सब चारो ओर पानी की शोध-खोज करने लगे । सब ओर पानी की खोज करते हुए वे एक महान् वनखण्ड मे पहुँचे, जो श्याम, श्याम-आभा से युक्त यावत् प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यावत् सुन्दर था । उस वनखण्ड के ठीक मध्यभाग मे उन्होने एक वडा वल्मीक (वाबी) देखा । उस वल्मीक के सिंह के स्कन्ध के केसराल के समान ऊँचे उठे हुए चार शिखराकार-शरीर थे । वे शिखर तिर्छे फैले हुए थे । नीचे अर्द्धसर्प के समान (नीचे से विस्तीर्ण और ऊपर से सकुचित) थे । अर्द्धसर्पाकार वल्मीक आल्हादोत्पादक यावत् सुन्दर थे ।

'उस वल्मीक को देखकर वे वणिक् हर्षित और सन्तुष्ट हो कर और परस्पर एक दूसरे को बुला कर यो कहने लगे—'हे देवानुप्रियो ! इस अग्राम्य यावत् अटवी मे सब ओर पानी की शोध-खोज करते हुए हमे यह महान् वनखण्ड मिला है, जो श्याम एव श्याम-आभा के समान है, इत्यादि । इस वल्मीक के चार ऊँचे उठे हुए यावत् सुन्दर शिखर हैं । इसलिए हे देवानुप्रियो ! हमे इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोडना श्रेयस्कर है, जिसमे हमे यहाँ (गर्त मे) वहुत-सा उत्तम उदक मिलेगा ।' तव वे सव वणिक् परस्पर एक दूसरे की बात स्वीकार करते हैं और फिर उस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोडते है, जिसमे से उन्हे स्वच्छ, पथ्य-कारक, उत्तम, हल्का और स्फटिक के वर्ण जैसा श्वेत बहुत-सा श्रेष्ठ जल (उदकरत्न) प्राप्त हुआ ।

'इसके वाद वे वणिक् हर्षित और सन्तुष्ट हुए । उन्होने वह पानी पिया, अपने बैलो आदि वाहनो को पिलाया और पानी के वर्तन भर लिये ।

'तत्पश्चत् उन्होने दूसरी वार भी परस्पर इस प्रकार वार्तालाप किया—हे देवानुप्रियो ! हमे इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोडने से वहुत-सा उत्तम जल प्राप्त हुआ है । अतः देवानुप्रियो ! अब हमे इस वल्मीक के द्वितीय शिखर को तोडना श्रेयस्कर है, जिससे हमे पर्याप्त उत्तम स्वर्ण (स्वर्णरत्न) प्राप्त हो ।

'इस पर सभी वणिको ने परस्पर इस बात को स्वीकार किया और उन्होने उस वल्मीक के द्वितीय शिखर को भी तोडा । उसमे से उन्हे स्वच्छ उत्तम जाति का, ताप को सहन करने योग्य महार्घ—(महामूल्यवान्), महार्ह (अत्यन्त योग्य) पर्याप्त स्वर्णरत्न मिला ।

'स्वर्ण प्राप्त होने से वे वणिक् हर्षित और सन्तुष्ट हुए । फिर उन्होने अपने वर्तन भर लिये और वाहनो (बैलगाडियो) को भी भर लिया ।

'फिर तीसरी बार भी उन्होने परस्पर इस प्रकार परामर्श किया—देवानुप्रियो ! हमने इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोडने से प्रचुर उत्तम जल प्राप्त किया, फिर दूसरे शिखर को तोडने से विपुल उत्तम स्वर्ण प्राप्त किया । अतः हे देवानुप्रियो ! हमे अब इस वल्मीक के तृतीय शिखर को तोडना श्रेयस्कर है । जिससे कि हमे वहाँ उदार मणिरत्न प्राप्त हो ।

'तदनन्तर वे सभी वणिक् एक दूसरे के साथ इस बात के लिए सहमत हो गए। फिर उन्होंने उस वल्मीक के तृतीय शिखर को भी तोड़ डाला। उसमें से उन्हें विमल, निर्मल, अत्यन्त गोल, निष्कल (दूषणरहित) महान् अर्थ वाले, महामूल्यवान्, महार्ह (अत्यन्त योग्य), उदार मणिरत्न प्राप्त हुए।

'इन्हें देख कर वे वणिक् अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मणियों से अपने वर्तन भर लिये, फिर उन्होंने अपने वाहन भी भर लिये।

'तत्पश्चात् वे वणिक् चौथी वार भी परस्पर विचार-विमर्श करने लगे—हे देवानुप्रियो! हमें इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोडने से प्रचुर उत्तम जल प्राप्त हुआ, दूसरे शिखर को तोडने से उदार स्वर्णरत्न प्राप्त हुआ, फिर तीसरे शिखर को तोडने से हमें उदार मणिरत्न प्राप्त हुए। अत. अब हमें इस वल्मीक के चौथे शिखर को भी तोडना श्रेयस्कर है, जिससे हे देवानुप्रियो! हमें उसमें से उत्तम, महामूल्यवान्, महार्ह (अत्यन्त योग्य) एवं उदार वज्ररत्न प्राप्त होंगे।

'यह सुन कर उन वणिकों मे एक वणिक्' जो उन सवका हितैपी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पक और नि श्रेयसकारी तथा हित-सुख-नि श्रेयसकामी था, उसने अपने उन साथी वणिकों से कहा—देवानुप्रियो! हमें इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोडने से स्वच्छ यावत् उदार जल मिला यावत् तीसरे शिखर को तोड़ने से उदार मणिरत्न प्राप्त हुए। अत अब वस कीजिए। अपने लिए इतना ही पर्याप्त है। अब यह चौथा शिखर मत तोडो। कदाचित् चौथा शिखर तोडना हमारे लिये उपद्रवकारी (उपसर्गयुक्त) हो सकता है।

'उस समय हितैपी, सुखकामी यावत् हित-सुख-नि श्रेयसकामी उस वणिक् के इस कथन यावत् प्ररूपण पर उन वणिकों ने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। उक्त हितैपी वणिक् की हितकर बात पर श्रद्धा यावत् रुचि न करके उन्होंने उस वल्मीक के चतुर्थ शिखर को भी तोड डाला। शिखर टूटते ही वहाँ उन्हें एक दृष्टिविष सर्प का स्पर्श हुआ, जो उग्रविषवाला, प्रचण्ड विषधर, घोरविष-युक्त, महाविष से युक्त, अतिकाय (स्थूल शरीर वाला), महाकाय, मसि (स्याही) और मूषा के समान काला, दृष्टि के विष से रोषपूर्ण, अजन-पुज (काजल के ढेर) के समान कान्ति वाला, लाल-लाल आँखों वाला, चपल एवं चलती हुई दो जिह्वा वाला, पृथ्वीतल की वेणी के समान, उत्कट स्पष्ट कुटिल जटिल कर्कश विकट फटाटोप करने में दक्ष, लोहार की धौंकनी (धम्मण) के समान धमधमाय-मान (सू-सू) शब्द करने वाला, अप्रत्याशित (अनाकलित) प्रचण्ड एवं तीव्र रोष वाला, कुक्कुर के मुख से भसने के समान, त्वरित चपल एवं धम-धम शब्द वाला था। तत्पश्चात् उस दृष्टिविष सर्प का उन वणिकों से स्पर्श होते ही वह अत्यन्त कुपित हुआ यावत् मिसमिसाट शब्द करता हुआ शनैः शनैः उठा और सरसराहट करता हुआ वल्मीक के शिखर-तल पर चढ गया। फिर उसने सूर्य की ओर टकटकी लगा कर देखा। (सूर्य की ओर से दृष्टि हटा कर) उसने उस वणिक्वर्ग की ओर अनिमेष दृष्टि से चारों ओर देखा। उस दृष्टिविष सर्प द्वारा वे वणिक् सब ओर अनिमेष दृष्टि से देखे जाने पर किराने के सामान आदि माल एवं वर्तनों व उपकरणों सहित एक ही प्रहार से कूटाघात (पाषाणमय महायन्त्र के आघात) के समान तत्काल जला कर राख का ढेर कर दिये गए। उन वणिकों में से जो वणिक् उन वणिकों का हितकामी यावत् हित-सुख-नि श्रेयसकामी था, उस पर नागदेवता ने अनुकम्पायुक्त होकर भण्डोपकरण सहित उसे अपने नगर में पहुँचा दिया।

'इसी प्रकार, हे आनन्द ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र ने उदार (प्रधान) पर्याय, प्राप्त की है। देवो, मनुष्यो और असुरो सहित इस लोक मे 'श्रमण भगवान् महावीर', 'श्रमण भगवान् महावीर', इस रूप मे उनकी उदार कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक (श्लाघा, या धन्यवाद) फैल रहे है, गुजायमान हो रहे है, स्तुति के विषय बन रहे है। (सर्वत्र उनकी प्रशसा या स्तुति हो रही है।) इससे अधिक की लालसा करके यदि वे आज से मुझे (या मेरे विषय मे) कुछ भी कहेगे, तो जिस प्रकार उस सर्पराज ने एक ही प्रहार से उन वणिको को कूटाघात के समान जला कर भस्मराशि कर डाला, उसी प्रकार मैं भी अपने तप और तेज से एक ही प्रहार मे उन्हे भस्मराशि (राख का ढेर) कर डालूगा। जिस प्रकार उन वणिको के हितकामी यावत् नि श्रेयसकामी वणिक् पर उस नागदेवता ने अनुकम्पा की और उसे भण्डोपकरण सहित अपने नगर मे पहुँचा दिया था, उसी प्रकार हे आनन्द ! मैं भी तुम्हारा सरक्षण और सगोपन करूगा। इसलिए, हे आनन्द ! तुम जाओ और अपने धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र को यह बात कह दो।'

विवेचन—गोशालक की धमकी—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ६२ से ६५) मे भगवान् महावीर को धमकी देने के लिए उनके शिष्य आनन्द स्थविर को गोशालक द्वारा कहे गए एक उपमा-दृष्टान्त का निरूपण है।

दृष्टान्तसार—अर्थलुब्ध कुछ वणिक् धन की खोज मे अपनी गाडियो मे बहुत-सा माल भर कर निकले। उन्होने साथ मे भोजन-पानी भी ले लिया था। किन्तु ज्यो ही वे एक भयकर अटवी मे कुछ दूर तक गये कि साथ लिया हुआ पानी समाप्त हो गया। वे सब पानी की खोज मे चले। उन्हे कुछ दूर जाने पर एक बाबी मिली। उसके ऊँचे उठे हुए चार शिखर थे। सब वणिको ने उसके प्रथम शिखर को तोडने का निश्चय किया। तोडा तो उसमे से स्वच्छ जल निकला। सबने प्यास बुझाई। साथ मे पानी भर लिया। फिर दूसरे शिखर को तोडने का निश्चय करके उसे तोडा, तो उसमे से शुद्ध सोना निकला। सबने उसे बर्तनो और गाडियो मे भर लिया। फिर उन्होने तीसरे शिखर को तोडने का निश्चय करके उसे भी तोडा तो उत्तम मणिरत्न निकले। सबने बर्तनो और गाडियो मे भर लिये। अब उन्होने लोभवश चौथे शिखर को भी तोडने का निश्चय किया। किन्तु उनमे से एक हितैषी ने उन सबको तोडने से रोका, कहा—इसे तोडने से उपद्रव होगा, किन्तु उसकी बात न मान कर उन्होने चौथे शिखर को तोडा तो उसमे से एक भयकर दृष्टिविष सर्प निकला। उसने उन सबको माल-सामान सहित भस्म कर डाला, किन्तु उस हितैषी वणिक् पर अनुकम्पा करके उसे माल-सहित अपने नगर मे पहुँचा दिया। गोशालक ने इस दृष्टान्त को भगवान् महावीर पर इस प्रकार घटित किया कि ज्ञातपुत्र श्रमण ने अब तक बहुत यशकीर्ति, प्रसिद्धि, प्रशसा आदि अर्जित कर ली है। अब लोभवश यदि वह अधिक प्रसिद्धि आदि प्राप्त करने के लिए मेरे विषय मे कुछ भी बोलेंगे तो मै भी उस सर्प की तरह उन्हे भस्म कर दूगा। केवल तुम्हारी सुरक्षा करूगा। यह बात तुम अपने धर्माचार्य ज्ञातपुत्र श्रमण से कह दो।[1]

कठिनशब्दो के विशेषार्थ—मह ओवमिय : दो अर्थ—(१) मेरे से सम्बन्धित उपमा—दृष्टान्त, या (२) महान्—विशिष्ट उपमा—दृष्टान्त। **चिरातीताए अद्धाए**—बहुत प्राचीन काल मे। **उच्चावया**—उत्तम (विशिष्ट) और अनुत्तम (साधारण)। **अत्थकखिया**—प्राप्त अर्थ मे निरन्तर

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ७०५ से ७०९

इच्छा—आकाक्षा वाले । अत्थपिवासिया—अप्राप्त अर्थविपयक तृष्णा वाले। पणिय भडे—पणित अर्थात्—व्यापार के लिए भाण्ड—माल, किराना । भत्त-पाण-पत्थयण—भक्त—भोजन, पान—पानी रूप पाथेय (मार्ग के लिए भाता) । अगामिय दो रूप (१) अग्रामिक—ग्रामरहित, अथवा (२) अकामिक—अनिष्ट। अणोहिय—अगाध जल-प्रवाह (ओघ) से रहित । छिन्नावायं—आवागमन से रहित । दीहमद्ध —दीर्घ—लम्बे मार्ग या काल वाली । वप्पुओ—शरीर अर्थात् शिखर । अभिनिसढाओ—केसरीसिंह के स्कन्ध की मटा (केसराल) के समान जिसके चारो ओर ऊँची-ऊँची मटाएँ (केसराल) निकली हैं। सुसपगहियाओ—सुसवृत— अतिविस्तीर्ण नही। पणगद्धरूवाओ—अर्द्ध-सर्परूप, अर्थात्—उदर कटे हुए सर्प को पूछ से ऊँचा किया हुआ सर्प अर्द्धसर्प होता है, जिसका अधोभाग विस्तीर्ण और ऊपर का भाग पतला होता है। तणुय—हल्का। ओराल—प्रधान। जच्च—जात्य—उत्तम जाति का। उदगरयण—उदकरत्न—जल की जाति मे उत्कृष्ट।[1] पज्जेंति—पिलाया । तावणिज्जं—तापनीय—ताप सहने योग्य । महरिहं—महान् व्यक्तियो के योग्य । नित्तलं—निम्नल—अत्यन्त गोल। निस्सेयसिए—नि श्रेयस—कल्याण का इच्छुक। समुहियतुरिय-चवल धमत—कुत्ते के मुख की तरह आवाज करने मे अति त्वरित और चपल शब्द करने वाला। एगाहच्च—एक ही आहत—प्रहार या झटके मे मार देने वाला। कूडाहच्च—कूट—पापाणमय यत्र के आघात के समान। पुव्वति—उछल रही—चल रही है। गुवति—गाये जाते हैं। थुवति—स्तुति की जाती है। तवेणं तेएण—तपोजन्य तेज से अथवा तप से प्राप्त तेज—तेजोलेश्या से । वालेण—व्याल—सर्प ने । सारक्खामि—जलने से बचाऊगा। सगोवयामि—क्षेम—सुरक्षित स्थान मे पहुँचा कर रक्षा करूगा।[2]

गोशालक के साथ हुए वार्तालाप का निवेदन, गोशालक के तप-तेज के सामर्थ्य का प्ररूपण, श्रमणो को उसके साथ प्रतिवाद न करने का भगवत्सन्देश

६६. तए ण से आणदे थेरे गोसालेण मखलिपुत्तेण एव वुत्ते समाणे भीए जाव सजायभये गोसालस्स मखलिपुत्तस्स अतियाओ हालाहलाए कुभकारीए कुभकारावणाओ पडिनिक्खमति, प० २ सिग्ध तुरिय ५ सावत्थि नगरि मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, नि० २ जेणेव कोट्ठए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ समण भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेति, क० २ वदति नमंसति, व० २ एवं वयासी—"एव खलु अह भते ! छट्ठक्खमणपारणगसि तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय जाव अडमाणे हालाहलाए कुभकारीए जाव वीयीवयामि । तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते मम हालाहलाए जाव पासित्ता एव वदासि—एहि ताव आणदा ! इओ एग महं ओवमिय निसामेहि । तए ण अह गोसालेण मखलिपुत्तेण एव वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए कुभकारीए कुंभकारावणे जेणेव गोसाले मखलिपुत्ते तेणेव

१ वल्मीक मे जल की सभावना—इस प्रकार के भूमि के गर्त मे पानी होता है, अत वल्मीक मे अवश्य ही गर्त (गड्ढे) होने चाहिए। शिखर को तोडने मे गर्त प्रकट हो जाएगा, और वहाँ जल अवश्य होगा, ऐसी सभावना की गई। —भगवती, अ वृत्ति, पत्र ६७२

२ (क) भगवती, अ वृत्ति, पत्र ६७१ मे ६७३ तक

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४०३ मे २४१२ तक

उवागच्छामि । तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते ममं एव वयासी—'एव खलु आणंदा ! इतो चिरातीआए अद्धाए केयि उच्चावया वणिया०, एव तं चेव जाव सव्व निरवसेसं भाणियव्वं जाव नियगनगर साहिए । त गच्छ ण तुम आणदा ! तव धम्मायरियस्स धम्मोव० जाव परिकहेहि' ।

त पभू ण भते ! गोसाले मखलिपुत्ते तवेण तेएणं एगाहच्च कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए ? विसए ण भते ! गोसालस्स मखलिपुत्तस्स जाव करेत्तए ? समत्थे णं भते ! गोसाले जाव करेत्तए ?"

"पभू ण आणदा ! गोसाले मखलिपुत्ते तवेणं जाव करेत्तए, विसए ण आणंदा ! गोसालस्स जाव करेत्तए, समत्थे णं आणदा ! गोसाले जाव करेत्तए । नो चेव ण अरहंते भगवते, पारितावणिय पुण करेज्जा । जावतिए णं आणदा ! गोसालस्स मखलिपुत्तस्स तवतेए एत्तो अणतगुणविसिट्ठयराए चेव तवतेए अणगाराण भगवताण, खंतिखमा पुण अणगारा भगवतो । जावइए ण आणदा ! अणगाराण भगवताणं तवतेए एत्तो अणतगुणविसिट्ठयराए चेव तवतेए थेराण भगवताणं, खंतिखमा पुण थेरा भगवतो । जावतिए णं आणंदा ! थेराण भगवताण तवतेए एत्तो अणतगुणविसिट्ठयराए चेव तवतेए अरहताण भगवताण, खतिखमा पुण अरहता भगवतो । त पभू ण आणदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेण तेयेणं जाव करेत्तए, विसए णं आणंदा ! जाव करेत्तए, समत्थे ण आणदा ! जाव करेत्तए, नो चेव ण अरहते भगवंते, पारियावणियं पुण करेज्जा ।

त गच्छ णं तुमं आणंदा ! गोयमाईण समणाण निग्गथाणं एयमट्ठ परिकहेहि—मा ण अज्जो ! तुब्भ केयि गोसाल मखलिपुत्त धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएतु, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेउ, धम्मिएण पडोयारेण पडोयारेउ । गोसाले ण मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने" ।

[६६] उस समय मखलिपुत्र गोशालक के द्वारा आनन्द स्थविर को इस प्रकार (व्यापारियो की दुर्दशा के दृष्टान्तपूर्वक) कहे जाने पर आनन्द स्थविर भयभीत हो गए, यावत् उनके मन मे डर बैठ गया । वह मखलिपुत्र गोशालक के पास से हालाहला कुम्भकारी की दूकान से निकले और शीघ्र एव त्वरितगति से श्रावस्ती नगरी के मध्य मे से होकर जहाँ कोष्ठक उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आए । तीन वार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार करके यो बोले—भगवन् ! मैं आज छठ-खमण (वेले के तप) के पारणे के लिए आपकी आज्ञा प्राप्त कर श्रावस्ती नगरी मे ऊँच, नीच और मध्यम कुलो मे यावत् भिक्षाटन करते हुए जव मैं हालाहला कुम्भारिन की दूकान के पास से होकर जा रहा था, तव मखलिपुत्र गोशालक ने मुझे देखा और वुला कर कहा—'हे आनन्द ! यहाँ आओ और मेरे एक दृष्टान्त को सुन लो ।' मखलिपुत्र गोशालक के द्वारा यह कहने पर जब मै हालाहला कुम्भारिन की दूकान मे मखलिपुत्र गोशालक के पास पहुँचा, तब उसने मुझे इस प्रकार कहा—'हे आनन्द ! आज से वहुत काल पहले कई उन्नत और अवनत वणिक् इत्यादि समग्र वर्णन पूर्ववत्, यावत्—अपने नगर पहुँचा दिया ।' अत हे आनन्द ! तुम जाओ और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक को यावत् कह देना ।

(आनन्द स्थविर—) [प्र] 'भगवन् ! क्या मखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज से एक ही प्रहार मे कूटाघात के समान जला कर भस्मराशि (राख का ढेर) करने मे समर्थ है ? भगवन् ! मखलिपुत्र गोशालक का यह यावत् विपयमात्र है अथवा वह ऐसा करने मे समर्थ भी है ?'

(भगवान्—) [उ] 'हे आनन्द ! मखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज से यावत् भस्म करने मे समर्थ है। हे आनन्द ! मखलिपुत्र गोशालक का यह विषय है। हे आनन्द ! गोशालक ऐसा करने मे भी समर्थ है, परन्तु अरिहन्त भगवन्तो को (जला कर भस्म करने मे समर्थ) नही है। तथापि वह उन्हे परिताप उत्पन्न करने मे समर्थ है। हे आनन्द ! मखलिपुत्र गोशालक का जितना तप-तेज है, उससे अनन्त-गुण विशिष्टतर तप-तेज अनगार भगवन्तो का है, (क्योकि) अनगार भगवन्त क्षान्तिक्षम (क्षमा करने मे समर्थ) होते है। हे आनन्द ! अनगार भगवन्तो का जितना तप-तेज है, उससे अनन्त-गुण विशिष्टतर तप-तेज स्थविर भगवन्तो का है, क्योकि स्थविर भगवन्त क्षान्तिक्षम होते है और हे आनन्द ! स्थविर भगवन्तो का जितना तप-तेज होता है, उससे अनन्त-गुण विशिष्टतर तप-तेज अर्हन्त भगवन्तो का होता है, क्योकि अर्हन्त भगवन्त क्षान्तिक्षम होते है। अत हे आनन्द ! मखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज द्वारा यावत् भस्म करने मे प्रभु (समर्थ) है। हे आनन्द ! यह उसका (कर्तृत्व) विषय (शक्ति) है और हे आनन्द ! वह वैसा करने मे समर्थ भी है, परन्तु अर्हन्त भगवन्तो को भस्म करने मे समर्थ नही, केवल परिताप उत्पन्न कर सकता है।'

(भगवान्—) 'इसलिए हे आनन्द ! तू जा और गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थो को यह बात (मेरा यह सन्देश) कह कि—हे आर्यो ! मखलिपुत्र गोशालक के साथ (तुम मे से) कोई भी (श्रमण) धार्मिक (उसके धर्ममत के प्रतिकूल धर्मसम्बन्धी) प्रतिप्रेरणा (चर्चा) न करे, धर्मसम्बन्धी प्रतिसारणा (उसके मत के विरुद्ध अर्थ रूप स्मरण) न करावे तथा धर्मसम्बन्धी प्रत्युपचार (तिरस्कार) पूर्वक कोई प्रत्युपचार (तिरस्कार) न करे। क्योकि (अब) मखलिपुत्र गोशालक ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के प्रति विशेष रूप से मिथ्यात्व भाव (म्लेच्छत्व या अनार्यत्व) धारण कर लिया है।'

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (६६) के पूर्वार्द्ध मे गोशालक के साथ हुए आनन्द स्थविर के वार्तालाप तथा गोशालक के द्वारा भगवान् को दी गई धमकी का आनन्द द्वारा किया गया निवेदन प्रस्तुत किया गया है। उत्तरार्द्ध मे आनन्द द्वारा गोशालक की भस्म करने की शक्ति के सम्बन्ध मे उठाया गया प्रश्न तथा भगवान् द्वारा आनन्द स्थविर का भीतिनिवारण रूप मन समाधान तथा उसके साथ-साथ भगवान् द्वारा समस्त श्रमण-निर्ग्रन्थो को गोशालक को न छेडने की चेतावनी भी प्रस्तुत की गई है।

गोशालक के तप-तेज की शक्ति—आनन्द स्थविर ने गोशालक द्वारा अपने तप-तेज से दूसरो को भस्म करने के सामर्थ्य (प्रभुत्व) के विषय मे प्रश्न किया है। इसी प्रश्न मे दो प्रश्न गर्भित है, क्योकि प्रभुत्व (सामर्थ्य) दो प्रकार का होता है—(१)विषयमात्र की अपेक्षा से और (२) सम्प्राप्ति रूप (कार्यरूप मे परिणत कर देने) की अपेक्षा से। दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है—योग्यता मे अथवा कर्तृत्वक्षमता से। अर्थात्—गोशालक केवल विषयमात्र से दूसरो को भस्म करने मे समर्थ है अथवा कार्यरूप मे परिणत करने मे भी समर्थ है? भगवान् ने उपसहार करते हुए उत्तर दिया है कि गोशालक विषयमात्र से भस्म करने मे समर्थ है और करणत भी समर्थ है। साथ ही उन्होने क्षमाशील अनगार भगवन्तो, स्थविर भगवन्तो और अरिहन्त भगवन्तो के तप-तेज का सामर्थ्य उत्तरोत्तर अनन्त-गुणविशिष्टतर बताया है। हाँ, इतना अवश्य है कि वह इन्हे पीडित कर सकता है।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६७५
(ख) भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिकाटीका) भा ११, पृ ५९७

भगवान् द्वारा श्रमणो को दी गई चेतावनी का आशय—'वादी भद्र न पश्यति', इस न्याय से तथा **'माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ'** इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमणो के प्रति मिथ्याभाव (अनार्यपन) धारण किये हुए गोशालक को किसी भी रूप मे न छेडने की भगवान् की चेतावनी थी। इसके पीछे एक आशय यह भी सम्भव है कि यद्यपि भगवान् ने गोशालक के तप-तेज के सामर्थ्य की अपेक्षा अनगार एव स्थविर के तप-तेज का सामर्थ्य अनन्त-गुण-विशिष्ट बताया है, बशर्त कि वे क्षान्तिक्षम (क्षमासमर्थ अथवा कष्टसहिष्णुतासमर्थ) हो। हो सकता है छद्मस्थ होने के कारण अनगारो या स्थविरो मे गोशालक के साथ विवाद करते समय या उसके मत का खण्डन करते समय उसके प्रति क्षमाशीलता, अकषायवृत्ति या अद्वेषवृत्ति न रहे और ऐसी स्थिति मे गोशालक का दाव अनगारो या स्थविरो के प्रति लग जाए। इसलिए भगवान् की समस्त साधुओ को गोशालक के प्रति तटस्थ या मध्यस्थ रहने की यह चेतावनी थी।[1]

कठिनशब्दार्थ—पारितावणिय—परितापना या पारितापनिकी क्रिया। **खतिक्खमा**—क्षान्ति-क्रोधनिग्रह करने मे क्षम-समर्थ। **थेराण**—वय, श्रुत, और पर्याय (दीक्षापर्याय) से स्थविरो का। **धम्मियाए पडिचोयणाए**—धर्मसम्बन्धी (गोशालक के मत सम्बन्धी) प्रतिनोदना, उसके मत के प्रतिकूल कर्त्तव्य-प्रोत्साहना रूप से प्रेरणा। **धम्मियाए पडिसरणाए**—(गोशालक के) धर्म मत के प्रतिकूल रूप से विस्मृत अर्थ (बात) की स्मारणा द्वारा। **धम्मिएण पडोयारेण**—धार्मिक (धर्म सम्बन्धी) प्रत्युपचार (तिरस्कार) से अथवा प्रत्युपकार (भ. महावीर द्वारा कृत उपकार का बदला) से। **मिच्छ विप्पडि-वन्ने**—मिथ्यात्व-(म्लेच्छत्व या अनार्यत्व)। विशेष तप से स्वीकार (अगीकार) कर लिया है।[2]

गोशालक के साथ धर्मचर्चा न करने का आनन्दस्थविर द्वारा भगवदादेशनिरूपण

६७. तए ण से आणदे थेरे समणेण भगवता महावीरेण एवं वुत्ते समाणे समण भगव महावीरं वंदति नमसति, व० २ जेणेव गोयमादी समणा निग्गथा तेणेव उवागच्छति, ते० उवागच्छित्ता गोतमादी समणे निग्गथे आमतेति, आ० २ एव वयासि—एव खलु अज्जो! छट्ठक्खमणपारणगंसि समणेणं भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय०, तं चेव सव्व जाव नायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि०, त चेव जाव मा ण अज्जो! तुब्भ केयि गोसालं मखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ जाव मिच्छं विप्पडिवन्ने।

[६७] तत्पश्चात् वह आनन्द स्थविर श्रमण भगवान् महावीर से यह सन्देश सुन कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके जहाँ गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थ थे, वहाँ आए। फिर गौतमादि श्रमण-निर्ग्रन्थो को बुला कर उन्हे इस प्रकार कहा—'हे आर्यो! आज मैं छठक्षमण के पारणे के लिए श्रमण भगवान् महावीर से अनुज्ञा प्राप्त करके श्रावस्ती नगरी मे उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे इत्यादि समग्र वर्णन पूर्ववत् यावत्—(गोशालक का कथन) ज्ञातपुत्र को (जाकर मेरी) यह बात कहना (यहाँ तक कथन करना चाहिए।) यावत् (भगवत्कथन) हे आर्यो! तुम मे से कोई भी गोशालक के साथ उसके धर्म, मत सम्बन्धी प्रतिकूल (कर्त्तव्य-) प्रेरणा मत करना, यावत्

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७०९-७१०

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६७५

(गोशालक ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के प्रति) मिथ्यात्व (अनार्यत्व) को विशेष रूप से अंगीकार कर लिया है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान् द्वारा आनन्द स्थविर के माध्यम से गोशालक के सम्बन्ध मे श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए दी गई चेतावनी का वर्णन है।

भगवान् के समक्ष गोशालक द्वारा अपनी ऊटपटांग मान्यता का निरूपण

६८. जाव च ण आणदे थेरे गोयमाईण समणाण निग्गथाण एयमट्ठं परिकहेति ताव च ण से गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुभकारीए कुभकारावणाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ आजीविय-सघसपरिवुडे महया अमरिस वहमाणे सिग्घ तुरिय जाव सावत्थि नगरि मज्झमज्झेण निग्गच्छति, नि० २ जेणेव कोट्ठए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ समणस्स भगवतो महावीरस्स अदूरसामते ठिच्चा समण भगवं महावीर एव वदासी—

"सुट्ठु ण आउसो! कासवा! मम एव वदासी, साहु ण आउसो! कासवा! ममं एवं वदासी—'गोसाले मखलिपुत्ते मम धम्मतेवासी, गोसाले मखलिपुत्ते मम धम्मंतेवासी'। जे णं से गोसाले मखलिपुत्ते तव धम्मतेवासी से ण सुक्के सुक्काभिजाइए भवित्ता कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने। अह ण उदाई नाम कुडियायणिए। अज्जुणस्स गोयमपुत्तस्स सरीरग विप्पजहामि, अज्जु० विप्प० २ गोसालस्स मखलिपुत्तस्स सरीरग अणुप्पविसामि, गो० अणु० २ इम सत्तमं पउट्टपरिहार परिहरामि।

"जे वि याइ आउसो! कासवा! अम्हं समयसि केयि सिज्झिसु वा सिज्झति वा सिज्झिस्सति वा सव्वे ते चउरासीतिं महाकप्पसयसहस्साइ सत्त दिव्वे सत्त सजूहे सत्त सन्निगब्भे सत्त पउट्टपरिहारे पच कम्मुणि सयसहस्साइ सट्ठिं च सहस्साइ छच्च सए तिण्णि य कम्मसे अणुपुव्वेण खवइत्ता तओ पच्छा सिज्झति, बुज्झति, मुच्चति, परिनिव्वाइति सव्वदुक्खाणमत करेंसु वा, करेंति वा, करिस्सति वा।

"से जहा वा गगा महानदी जतो पवूढा, जहिं वा पज्जुवत्थिता, एस ण अद्धा पच जोयण-सताइ आयामेण, अद्धजोयण विक्खभेण, पंच धणुसयाइ ओवेहेण, एएण गंगापमाणेण सत्त गगाओ सा एगा महागगा, सत्त महागगाओ सा एगा साईणगगा, सत्त सादीणगगाओ सा एगा मड्डुगगा, सत्त मड्डुगगाओ सा एगा लोहियगगा, सत्त लोहियगगाओ सा एगा आवतीगगा, सत्त आवतीगंगाओ सा एगा परमावती, एवामेव सपुव्वावरेण एग गगासयसहस्स सत्तरस य सहस्सा छच्च अगुणपन्नं गगासता भवतीति मक्खाया। तासिं दुविहे उद्धारे पन्नत्ते, त जहा—सुहुमबोंदिकलेवरे चेव, बादरबोंदिकलेवरे चेव। तत्थ ण जे से सुहुमबोंदिकलेवरे से ठप्पे। तत्थ ण जे से बादरबोंदिकलेवरे ततो ण वाससते गते वाससते गते एगमेग गगावालुय अवहाय जावतिएण कालेण से कोट्ठे खीणे णीरए निल्लेवे निट्ठिए भवति से त्त सरे सरप्पमाणे। एएण सरप्पमाणेण तिण्णि सरसयसाहस्सीओ से एगे महाकप्पे। चउरासीतिं महाकप्पसयसयसहस्साइ से एगे महामाणसे। अणतातो सजूहातो जीवे चयं

चयित्ता उवरिल्ले माणसे सजूहे देवे उववज्जति। से ण तत्थ दिव्वाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, विहरित्ता ताओ देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएण ठितिक्खएण अणतर चय चयित्ता पढमे सन्निगब्भे जीवे पच्चायाति। से ण तओहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता मज्झिल्ले माणसे संजहे देवे उववज्जइ। से ण तत्थ दिव्वाइ भोगभोगाइ जाव विहरित्ता ताओ देवलोगाओ आयु० जाव चइत्ता दोच्चे सन्निगब्भे जीवे पच्चायाति। से ण ततोहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता हेट्ठिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जइ। मे ण तत्थ दिव्वाइ जाव चइत्ता तच्चे सन्निगब्भे जीवे पच्चायाति। से ण तओहिंतो जाव उव्वट्टित्ता उवरिल्ले माणुसुत्तरे सजूहे देवे उववज्जति। से ण तत्थ दिव्वाइं भोग० जाव चइत्ता चतुत्थे सन्निगब्भे जीवे पच्चायाति। से ण तओहिंतो अणंतर उव्वट्टित्ता मज्झिल्ले माणुसुत्तरे सजूहे देवे उववज्जति। से ण तत्थ दिव्वाइ भोग० जाव चइत्ता पचमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति। से ण तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता हेट्ठिल्ले माणुसुत्तरे सजूहे देवे उववज्जइ। से ण तत्थ दिव्वाइं भोग० जाव चइत्ता छट्ठे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति। से ण तओहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता बंभलोगे नाम से कप्पे पन्नत्ते पाईणपडीणायते उदीणदाहिणविच्छिण्णे जहा ठाणपदे जाव[1] पंच वडेंसया पन्नत्ता, त जहा—असोगवडेंसए जाव[2] पडिरूवा। से ण तत्थ देवे उववज्जति। से णं तत्थ दस सागरोवमाइ दिव्वाइं भोग० जाव चइत्ता सत्तमे सन्निगब्भे जीवे पच्चायाति।

से णं तत्थ नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण जाव वीतिक्कताण सुकुमालगभद्दलए मिदुकु डलकु चियकेसए मट्ठगंडयलकण्णपीढए देवकुमारसप्पभए दारए पयाति से ण अहं कासवा!।

"तए णं अह आउसो! कासवा! कोमारियपव्वज्जाए कोमारएण बंभचेरवासेण अविद्धकन्नए चेव सखाण पडिलभामि, सखाण पडिलभित्ता इमे सत्त पउट्टपरिहारे परिहरामि, तंजहा—एणेज्जगस्स १ मल्लरामगस्स २ मडियस्स ३ रोहस्स ४ भारद्दाइस्स ५ अज्जुणगस्स गोतमपुत्तस्स ६ गोसालस्स मखलिपुत्तस्स ७।

"तत्थ ण जे से पढमे पउट्टपरिहारे से ण रायगिहस्स नगरस्स बहिया मडियकुच्छिसि चेतियसि उदायिस्स कु डियायणियस्स सरीरग विप्पजहामि, उदा० सरीरग विप्पजहित्ता एणेज्जगस्स सरीरग अणुप्पविसामि। एणेज्जगस्स सरीरग अणुप्पविसित्ता बावीस वासाइ पढम पउट्टपरिहार परिहरामि।

"तत्थ ण जे से दोच्चे पउट्टपरिहारे से ण उद्दडपुरस्स नगरस्स बहिया चदोयरणसि चेतियसि एणेज्जगस्स सरीरग विप्पजहामि, एणेज्जगस्स सरीरग विप्पजहित्ता मल्लरामगस्स सरीरग अणुप्पविसामि, मल्लरामगस्स सरीरग अणुप्पविसित्ता एक्कवीसं वासाइं दोच्च पउट्टपरिहार परिहरामि।

---

१ देखिये पण्णवणासुत्त भा १, सू २०१, पृ ७३ (महावीर जैन विद्यालय प्रकाशन)

२ 'जाव' पद सूचक पाठ—'सत्तिवण्णवडेंसए चपगवडेंसए चूयवडेंसए मज्झे य बभलोयवडेंसए इत्यादि।

— भगवती अ. वृ, पत्र ६७७

"तत्थ ण जे से तच्चे पउट्टपरिहारे से ण चपाए नगरीए बहिया अगमदिरसि चेतियसि मल्लरामगस्स सरीरग विप्पजहामि, मल्लरामगस्स सरीरग विप्पजहित्ता मडियस्स सरीरग अणुप्पविसामि, मडियस्स सरीरग अणुप्पविसित्ता वीस वासाइ तच्च पउट्टपरिहार परिहरामि।

"तत्थ ण जे से चउत्थे पउट्टपरिहारे से ण वाणारसीए नगरीए बहिया काममहावणसि चेतियसि मडियस्स सरीरग विप्पजहामि, मडियस्स सरीरग विप्पजहित्ता राहस्स सरीरग अणुप्पविसामि, राहस्स सरीरग अणुप्पविसित्ता एक्कूणवीस वासाइ चउत्थ पउट्टपरिहार परिहरामि।

"तत्थ ण जे से पचमे पउट्टपरिहारे से ण आलभियाए नगरीए बहिया पत्तकालगसि चेतियसि राहस्स सरीरग विप्पजहामि, राहस्स सरीरग विप्पजहित्ता भारद्दाइस्स सरीरग अणुप्पविसामि, भारद्दाइस्स सरीरग अणुप्पविसित्ता अट्ठारस वासाइ पचम पउट्टपरिहार परिहरामि।

"तत्थ ण जे से छट्ठे पउट्टपरिहारे से ण वेसालीए नगरीए बहिया कुंडियायणियसि चेतियसि भारद्दाइस्स सरीरग विप्पजहामि, भारद्दाइस्स सरीरग विप्पजहित्ता अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स सरीरग अणुप्पविसामि, अज्जुणगस्स० सरीरग अणुप्पविसित्ता सत्तरस वासाइ छट्ठ पउट्टपरिहारं परिहरामि।

"तत्थ ण जे से सत्तमे पउट्टपरिहारे से ण इहेव सावत्थीए नगरीए हालाहलाए कुभकारीए कुभकारावणसि अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स सरीरग विप्पजहामि, अज्जुणयस्स० सरीरग विप्पजहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरग अल थिर धुव धारणिज्ज सीयसह उण्हसह खुहासह विविहदस-मसगपरीसहोवसग्गसहं थिरसघयण ति कट्टु त अणुप्पविसामि, त अणुप्पविसित्ता सोलस वासाइ इमं सत्तम पउट्टपहिार परिहरामि।

"एवामेव आउसो! कासवा! एएण तेत्तीसेण वाससएण सत्त पउट्टपरिहारा परिहरिया भवतीति मक्खाता। त सुट्ठु ण आउसो! कासवा! मम एव वदासि, साधु ण आउसो! कासवा! मम एव वदासि 'गोसाले मखलिपुत्ते मम धम्मतेवासी, गोसाले मखलिपुत्ते मम धम्मतेवासि' त्ति।"

[६८] जब आनन्द स्थविर, गौतम आदि श्रमणनिर्ग्रन्थो को भगवान् का आदेश कह रहे थे, तभी मखलिपुत्र गोशालक आजीवकसघ से परिवृत (युक्त) होकर हालाहला कुम्भकारी की दूकान से निकल कर अत्यन्त रोप धारण किये हुए शीघ्र एव त्वरित गति से श्रावस्ती नगरी के मध्य मे होकर कोष्ठक उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से न अतिदूर और न अतिनिकट खडा रह कर उन्हे इस प्रकार कहने लगा—

आयुष्मन् काश्यप! तुम मेरे विपय मे अच्छा कहते हो! हे आयुष्मन्! तुम मेरे प्रति ठीक कहते हो कि मखलिपुत्र गोशालक मेरा धर्मान्तेवासी है, गोशालक मखलिपुत्र मेरा धर्म-शिष्य है। (परन्तु आपको ज्ञात होना चाहिए कि) जो मखलिपुत्र गोशालक तुम्हारा धर्मान्तेवासी था, वह तो शुक्ल (पवित्र) और शुक्लाभिजात (पवित्र परिणाम वाला) हो कर काल के समय काल करके किसी देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न हो चुका है। मैं तो कौण्डिन्यायन-गोत्रीय उदायी हूँ। मैंने गौतम पुत्र

अर्जुन के शरीर का त्याग किया, फिर मखलिपुत्र गोशालक के शरीर मे प्रवेश किया। मखलिपुत्र गोशालक के शरीर मे प्रवेश करके मैंने यह सातवाँ परिवृत्त परिहार किया है।

हे आयुष्मन् काश्यप! हमारे सिद्धान्त के अनुसार जो भी सिद्ध हुए है, सिद्ध होते है अथवा सिद्ध होगे, वे सब (पहले) चौरासी लाख महाकल्प, (कालविशेष), सात दिव्य (देवभव), सात सयूथ-निकाय, सात सज्ञीगर्भ (मनुष्य-गर्भावास) सात परिवृत्त-परिहार (उसी शरीर मे पुन पुन प्रवेश—उत्पत्ति) और पाच लाख, साठ हजार छह-सौ तीन कर्मो के भेदो को अनुक्रम से क्षय करके तत्पश्चात् सिद्ध होते है, बुद्ध होते है, मुक्त होते है, निर्वाण प्राप्त करते है और समस्त दु खो का अन्त करते है। भूतकाल मे ऐसा किया है, वर्त्तमान मे करते है और भविष्य मे ऐसा करेंगे।

जिस प्रकार गगा महानदी जहाँ से निकलती है, और जहाँ (जा कर) समाप्त होती है, उसका वह मार्ग (अद्धा) लम्बाई मे ५०० योजन है और चौडाई मे आधा योजन है तथा गहराई मे पाँच-सौ धनुष है। उस गगा के प्रमाण वाली सात गगाएँ मिल कर एक महागगा होती है। सात महागगाएँ मिलकर एक सादीनगगा होती है। सात सादीनगगाएँ मिल कर एक मृतगगा होती है। सात मृतगगाएँ मिलकर एक लोहितगगा होती है। सात लोहितगगाएँ मिल कर एक अवन्तीगगा होती है। सात अवन्तीगगाएँ मिल कर एक परमावतीगगा होती है। इस प्रकार पूर्वापर मिल कर कुल एक लाख, सत्रह हजार, छह सौ उनचास गगा नदियाँ होती है, ऐसा कहा गया है।

उन (गगानदियो के बालुकाकण) का दो प्रकार का उद्धार कहा गया है। यथा—(१) सूक्ष्म-बोन्दि-कलेवररूप और (२) बादर-बोन्दि-कलेवररूप। उनमे से जो सूक्ष्मबोदि-कलेवररूप उद्धार है, वह स्थाप्य है (निरुपयोगी है, अतएव उसका विचार करने की आवश्यकता नही है)। उनमे से जो बादर-बोदिकलेवररूप उद्धार है, उसमे से सौ-सौ वर्षों मे गगा की बालू का एक-एक-कण निकाला जाए और जितने काल मे वह गगा-समूहरूप कोठा समाप्त हो जाए, रजरहित निर्लेप और निष्ठित (समाप्त) हो जाए, तब एक 'शरप्रमाण' काल कहलाता है। इस प्रकार के तीन लाख शर-प्रमाण काल द्वारा एक महाकल्प होता है। चौरासी लाख महाकल्पो का एक महामानस होता है। अनन्त सयूथ (अनन्त जीवो के समुदाय रूप निकाय) से जीव च्यव कर सयूथ-देवभव मे उपरितन मानस (शरप्रमाण आयुष्य) द्वारा उत्पन्न होता है। वह वहाँ (देवभव मे) दिव्यभोगो का उपभोग करता रहता है। इस प्रकार दिव्यभोगो का उपभोग करते-करते उस देवलोक का आयुष्य-क्षय, देवभव का क्षय और देवस्थिति का क्षय होने पर तुरन्त (विना अन्तर के) च्यवकर प्रथम सज्ञीगर्भजीव (गर्भज-पचेन्द्रिय मनुष्य) मे उत्पन्न होता है। फिर वह वहाँ से अन्तररहित (तुरन्त) मर कर मध्यम मानस (शरप्रमाण आयुष्य) द्वारा सयूथ देवनिकाय मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ दिव्य भोगो का उपभोग करता है। वहाँ से देवलोक का आयुष्य, भव और स्थिति का क्षय होने पर दूसरी बार फिर सज्ञीगर्भ (गर्भज मनुष्य) मे जन्म लेता है। इसके पश्चात् वहाँ से तुरन्त मर कर अधस्तन मानस (शरप्रमाण) आयुष्य द्वारा सयूथ (देवनिकाय) मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ दिव्य भोग भोग कर यावत् वहाँ से च्यव कर तीसरे सज्ञीगर्भ मे उत्पन्न होता है। फिर वह वहा से मर कर उपरितन मानसोत्तर (महामानस) आयुष्य द्वारा सयूथ देवनिकाय मे उत्पन्न होता है। वहाँ वह दिव्यभोग भोग कर यावत् चतुर्थ सज्ञीगर्भ मे जन्म लेता है। वहाँ से मर कर तुरन्त मध्यम मानसोत्तर आयुष्य द्वारा सयूथ मे उत्पन्न होता है। वहाँ वह दिव्यभोगो का उपभोग कर यावत् वहाँ से च्यव कर पाचवे सज्ञीगर्भ मे

उत्पन्न होता है। वहां से मर कर तुरन्त अधस्तन मानसोत्तर आयुष्य द्वारा संयूथ-देव मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ दिव्य भोगों का उपभोग करके यावत् च्यव कर छठे सञ्ज्ञीगर्भ जीव मे जन्म लेता है।

वह वहाँ से मर कर तुरन्त ब्रह्मलोक नामक कल्प (देवलोक) मे देवरूप मे उत्पन्न होता है, (जिसका वर्णन इस प्रकार कहा गया है—) वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा है, उत्तर-दक्षिण मे चौडा (विस्तीर्ण) है। प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे स्थानपद के अनुसार वर्णन समझना चाहिए, यावत्—उसमे पाच अवतंसक विमान कहे गए हैं। यथा—अशोकावतंसक, यावत् वे प्रतिरूप हैं। इन्ही अवतंसको मे वह देवरूप मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ दस सागरोपम तक दिव्य भोगों का उपभोग कर यावत् वहाँ से च्यव कर सातवें सञ्ज्ञीगर्भ जीव मे उत्पन्न होता है।

वहाँ नौ मास और साढे सात रात्रि-दिवस यावत् व्यतीत होने पर सुकुमाल, भद्र, मृदु तथा (दर्भादि के) कुण्डल के समान कुंचित (घुघराले) केश वाला, कान के आभूषणो से जिसके कपोलस्थल चमक रहे थे, ऐसे देवकुमारसम कान्ति वाले बालक को जन्म दिया। हे काश्यप! वही (बालक) मैं हूं।

इसके पश्चात् हे आयुष्मन् काश्यप! कुमारावस्था मे ली हुई प्रव्रज्या से, कुमारावस्था मे ब्रह्मचर्यवान मे जब मैं अविद्धकर्ण (अव्युत्पन्नमति) था, तभी मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करने की बुद्धि (सख्यान) प्राप्त हुई। फिर मैंने सात परिवृत्त-परिहार(शरीरान्तरप्रवेश) मे संचार किया। यथा—(१) ऐणेयक, (२) मल्लरामक, (३) मण्डिक, (४) रोह, (५) भारद्वाज, (६) गौतमपुत्र अर्जुनक और (७) मंखलिपुत्र गोशालक के (शरीर मे प्रवेश किया।)

उनमे से जो प्रथम परिवृत्त-परिहार (शरीरान्तर-प्रवेश) हुआ, वह राजगृह नगर के बाहर मंडिककुक्षि नामक उद्यान में, कुण्डियायण गोत्रीय उदायी के शरीर का त्याग करके ऐणेयक के शरीर मे प्रवेश किया। ऐणेयक के शरीर मे प्रवेश करके मैंने बाईस वर्ष तक प्रथम परिवृत्त-परिहार (शरीरान्तर मे परिवर्तन) किया।

इनमे में जो द्वितीय परिवृत्त-परिहार हुआ, वह उद्दण्डपुर नगर के बाहर चन्द्रावतरण नामक उद्यान मे मैंने ऐणेयक के शरीर का त्याग किया और मल्लरामक के शरीर मे प्रवेश किया। मल्लरामक के शरीर मे प्रवेश करके मैंने इक्कीस वर्ष तक दूसरे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया।

इनमे से जो तृतीय परिवृत्त-परिहार हुआ, वह चम्पानगरी के बाहर अगमदिर नामक उद्यान मे मल्लरामक के शरीर का परित्याग किया। मल्लरामक-शरीर त्याग करके मैंने मण्डिक के शरीर मे प्रवेश किया। मण्डिक के शरीर मे प्रविष्ट हो कर मैने बीस वर्ष तक तृतीय परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया।

इनमे से जो चतुर्थ परिवृत्त-परिहार हुआ, वह वाराणसी नगरी के बाहर काम-महावन नामक उद्यान मे मण्डिक के शरीर का मैंने त्याग किया और रोहक के शरीर मे प्रवेश किया। रोहक-शरीर मे प्रविष्ट होकर मैंने उन्नीस वर्ष तक चतुर्थ परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया।

उनमे से जो पंचम परिवृत्त-परिहार हुआ, वह आलभिका नगरी के बाहर प्राप्तकालक नाम

के उद्यान मे हुआ। उसमे मैं रोहक के शरीर का परित्याग करके भारद्वाज के शरीर मे प्रविष्ट हुआ। भारद्वाज-शरीर मे प्रविष्ट होकर अठारह वर्ष तक पाँचवे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया।

उनमे से जो छठा परिवृत्त-परिहार हुआ, उसमे मैंने वैशाली नगर के बाहर कुण्डियायन नामक उद्यान मे भारद्वाज के शरीर का परित्याग किया और गौतमपुत्र अर्जुनक के शरीर मे प्रवेश किया। अर्जुनक-शरीर मे प्रविष्ट होकर मैंने सत्रह वर्ष तक छठे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया।

उनमे से जो सातवाँ परिवृत्त-परिहार हुआ, उसमे मैंने इसी श्रावस्ती नगरी मे हालाहला कुम्भकारी की बर्तनो की दूकान मे गौतमपुत्र अर्जुनक के शरीर का परित्याग किया। अर्जुनक के शरीर का परित्याग करके मैंने समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य, शीतसहिष्णु, उष्णसहिष्णु, क्षुधासहिष्णु, विविध दश-मशकादिपरीषह-उपसर्ग-सहनशील, एव स्थिर सहननवाला जानकर, मखलिपुत्र गोशालक के उस शरीर मे प्रवेश किया। उसमे प्रवेश करके मै सोलह वर्ष तक इस सातवे परिवृत्त-परिहार का उपभोग करता हूँ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् काश्यप! इन एक-सौ तेतीस वर्षो मे मेरे ये सात परिवृत्तपरिहार हुए हैं, ऐसा मैंने कहा था। इसलिए आयुष्मन् काश्यप! तुम ठीक कहते हो कि मखलिपुत्र गोशालक मेरा धर्मान्तेवासी है, यह तुमने ठीक ही कहा है आयुष्मन् काश्यप! कि मखलिपुत्र गोशालक मेरा धर्म-शिष्य है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (६८) मे गोशालक ने भगवान् महावीर के समक्ष अपने स्वरूप को छिपाने और भगवान् को झुठलाने हेतु अपनी परिवृत्तपरिहार की मिथ्या मान्यतानुसार अपने सात परिवृत्तपरिहार (शरीरान्तर प्रवेश) की प्ररूपणा की है।

गोशालक के विस्तृत भाषण का आशय—भगवान् द्वारा गोशालक की कलई खुल जाने से वह उन पर क्रुद्ध होकर आया और उपालम्भपूर्वक व्यग करते हुए कहने लगा—आयुष्मन् काश्यप! तुमने मुझे अपना धर्मशिष्य बताया परन्तु तुम्हे मालूम होना चाहिए कि वह जो तुम्हारा धर्मशिष्य गोशालक था, वह तो शुभभावो से मरकर कभी का देवलोक मे उत्पन्न हो चुका है। मैं तुम्हारा धर्मान्तेवासी नही हूँ। मै तो कौण्डिन्यायनगोत्रीय उदायी हूँ। गौतमपुत्र अर्जुन के शरीर का त्याग करके मैं मखलिपुत्र गोशालक के शरीर मे प्रविष्ट हुआ हूँ। यह मेरा सातवाँ परिवृत्तपरिहार है।

इस प्रकार उसने उपर्युक्त बात कहकर अपने स्वरूप को छिपाया और फिर अपने मन कल्पित सिद्धान्तानुसार मोक्ष जाने वालो का क्रम बतलाया है। इसी सन्दर्भ मे उसने स्वसिद्धान्तानुसार महाकल्प, सयूथ, शर-प्रमाण, मानस-शर-प्रमाण, उद्धार आदि का वर्णन किया है। फिर अपने सात प्रवृत्तपरिहारो के नामपूर्वक विस्तृत वर्णन किया है।[1]

गोशालक-सिद्धान्त अस्पष्ट एवं सदिग्ध—वृत्तिकार का अभिप्राय है कि यह सिद्धान्त पूर्वापरविरुद्ध, असगत एव अस्पष्ट है, इसलिए इसकी अर्थसगति हो ही कैसे सकती है?[2]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मू पा टिप्पणयुक्त) पृ ७११ से ७१५ तक

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६७६

कठिन शब्दों के विशेषार्थ—सुक्के—शुक्ल—पवित्र । सुक्काभिजाइए—शुक्ल परिणाम वाला । पउट्ट-परिहार—एक शरीर छोडकर दूसरे को धारण करना । ठप्पे—स्थाप्य—अव्याख्येय । अवहाय—छोड़कर । कोट्ठे—गंगासमुदायात्मक कोष्ठ । निल्लेवे—पूरी तरह साफ-खाली रजकण के लेप का भी अभाव । निट्ठिए—निष्ठित—अवयवरहित किया हुआ । अलथिर—अत्यन्त स्थिर । अविद्धकन्नए—जिसके कान कुश्रुतिरूपी शलाका से बींधे हुए नहीं हैं अर्थात्—जो अभी तक निर्दोषबुद्धि है अव्युत्पन्नमति है । कोरी स्लेट के समान साफ है ।[1]

भगवान् द्वारा गोशालक को चोर के दृष्टान्तपूर्वक स्व-भ्रान्तिनिवारण-निर्देश

६९. तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वदासि—गोसाला ! से जहानामए तेणए सिया, गामेल्लएहिं परब्भमाणे परब्भमाणे कत्थयि गड्डं वा दरिं वा दुग्गं वा णिण्णं वा पव्वयं वा विसमं वा अणस्सादेमाणे एगेणं महं उण्णालोमेण वा सणलोमेण वा कप्पासपोम्हेण वा तणसूएण वा अत्ताणं आवरेत्ताणं चिट्ठेज्जा, से णं अणावरिए आवरियमिति अप्पाणं मन्नति, अप्पच्छन्ने पच्छन्नमिति अप्पाणं मन्नति, अणिलुक्के णिलुक्कमिति अप्पाणं मन्नति, अपलाए पलायमिति अप्पाणं मन्नति, एवामेव तुमं पि गोसाला ! अणन्ने संते अन्नमिति अप्पाणं उवलभसि, तं मा एवं गोसाला !, नारिहसि गोसाला !, सच्चेव ते सा छाया, नो अन्ना ।

[६९] (गोशालक के उपर्युक्त कथन पर) श्रमण भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशालक से यों कहा—गोशालक ! जैसे कोई चोर हो और वह ग्रामवासी लोगों के द्वारा पराभव पाता हुआ (खदेडा जाता हुआ) कहीं गड्ढा, गुफा, दुर्ग (दुर्गम स्थान), निम्न स्थान, पहाड या विषम (बीहड आदि स्थान) नहीं पा कर अपने आपको एक बडे ऊन के रोम, (कम्बल) से, सण के (वस्त्र) रोम से, कपास के बने हुए रोम (वस्त्र) से, तिनको के अग्रभाग से आवृत (ढँक) करके बैठ जाए, और नहीं ढँका हुआ भी स्वयं को ढँका हुआ माने, अप्रच्छन्न (नहीं छिपा) होते हुए भी अपने आपको प्रच्छन्न (छिपा हुआ) माने, लुप्त (अदृश्य) (लुका हुआ) न होने पर भी अपने को लुप्त (अदृश्य—लुका हुआ) माने, पलायित (भागा हुआ) न होते हुए भी अपने को पलायित माने । उसी प्रकार हे गोशालक ! तू अन्य (दूसरा) न होते हुए भी अपने आपको अन्य (दूसरा) बता रहा है । अतः गोशालक ! ऐसा मत कर । गोशालक ! (ऐसा करना) तेरे लिए उचित नहीं है । तू वही है । तेरी वही छाया (प्रकृति) है, तू अन्य (दूसरा) नहीं है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (६९) में भगवान् द्वारा गोशालक को चोर के उदाहरण पूर्वक दिये गए वास्तविक बोध का निरूपण है ।

कठिनशब्दार्थ—तेणए—स्तेन, चोर । गामेल्लएहिं—ग्रामीणों द्वारा । गड्ड—गड्ढा—गर्त्त । दरिं—शृगाल आदि के द्वारा बनाई हुई धुरी या छोटी गुफा । णिण्णं—शुष्क सरोवर आदि निम्न स्थान । अणासादेमाणे—प्राप्त न होने पर । कप्पासपोम्हेण—कपास के रोओं (वस्त्र) से । तणसूएण—तिनको के अग्रभाग से । अत्ताणं आवरेत्ता—अपने आपको ढँक कर । अप्पछन्ने—अप्रच्छन्न ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६७७

अणिलुक्के—जो लुप्त, अदृश्य नही हो। अपलाए—पलायनरहित। अणन्ने—दूसरा नही। उवलभसि—उपलब्ध कराता—दिखाता है। नारिहसि—(ऐसा करना) योग्य—उचित नही। छाया—प्रकृति।[1]

भगवान् के प्रति गोशालक द्वारा अवर्णवाद-मिथ्यावाद

७०. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ समणं भगव महावीरं उच्चावयाहि आओसणाहिं आओसति, उच्चा० आओ० २ उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धसेति, उच्चा० उ० २ उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छेति, उच्चा० नि० २ उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेति, उच्चा० नि० २ एवं वदासि—नट्ठे सि कदायि, विणट्ठे सि कदायि, भट्ठे सि कदायि, नट्ठविणट्ठभट्ठे सि कदायि, अज्ज न भवसि, ना हि ते ममाहिंतो सुहमत्थि।

[७०] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जब मखलिपुत्र गोशालक को इस प्रकार कहा तब वह तुरन्त अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। क्रोध से तिलमिला कर वह श्रमण भगवान् महावीर की अनेक प्रकार के (असमजस) ऊटपटाग (अनुचित) आक्रोशवचनो से भर्त्सना करने लगा, उद्घर्षणायुक्त (दुष्कुलीन है, इत्यादि अपमानजनक) वचनो से अपमान करने लगा, अनेक प्रकार की अनर्गल निर्भर्त्सना द्वारा भर्त्सना करने लगा, अनेक प्रकार के दुर्वचनो से उन्हे तिरस्कृत करने लगा। यह सब करके फिर गोशालक बोला—(जान पडता है) कदाचित् तुम (अपने आचार से) नष्ट हो गए हो, कदाचित् आज तुम विनष्ट (मृत) हो गए हो, कदाचित् आज तुम (अपनी सम्पदा से) भ्रष्ट हो गए हो, कदाचित् तुम नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट हो चुके हो। आज तुम जीवित नहीं रहोगे। मेरे द्वारा तुम्हारा शुभ (सुख) होने वाला नही है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (७०) मे भगवान् द्वारा वास्तविक स्वरूप का भान कराने पर क्रुद्ध और उत्तेजित गोशालक द्वारा भगवान् के प्रति निकाले हुए अनर्गल भर्त्सना, अपमान, तिरस्कार से भरे विद्वेषसूचक उद्गार प्रस्तुत हैं।

शब्दार्थ—उच्चावयाहिं—ऊँचे-नीचे—भले-बुरे **आओसणाहिं**—'तू मर गया' इत्यादि आक्रोश-वचनो से। **उद्धंसणाहि**—तू दुष्कुलीन है इत्यादि अपमानजनक वचनो से। **निब्भंछणाहिं**—निर्भर्त्सनाओ द्वारा—'अब तेरा मुझ-से कोई मतलब नही' इत्यादि कठोर वचनो से। **निच्छोडणाहिं**—प्राप्त पदवी को छोडने के लिए दुष्ट वचनो से अर्थात्—तीर्थकर के चिह्नों को छोड, इत्यादि दुर्वचनो मे। **नट्ठे सि कयाइ**—तू तो कभी का अपने आचार से नष्ट हो गया है।[2]

गोशालक को स्वकर्तव्य समझाने वाले सर्वानुभूति अनगार का गोशालक द्वारा भस्मीकरण

७१. तेणं कालेण तेणं समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स अतेवासी पायीणजाणवए सव्वाणुभूती णामं अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए धम्मायरियाणुरागेण एयमट्ठं असद्दहमाणे उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ गोसाल मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८३
  (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४२९

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८३

निसामेति से वि ताव तं वदति नमसति जाव कल्लाण मगल देवय चेतिय पज्जुवासति, किमग पुण तुम गोसाला ! भगवया चेव पव्वाविए, भगवया चेव मुंडाविए, भगवया चेव सेहाविए, भगवया चेव सिक्खाविए, भगवया चेव बहुस्सुतीकते, भगवश्रो चेव मिच्छ विप्पडिवन्ने, त मा एव गोसाला !, नारिहसि गोसाला !, सच्चेव ते सा छाया, नो अन्ना।

[७१] उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के पूर्व देश मे जन्मे हुए (प्राचीन-जानपदीय) सर्वानुभूति नामक अनगार थे, जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे। वह अपने धर्माचार्य के प्रति अनुरागवश गोशालक के (अनर्गल) प्रलाप के प्रति अश्रद्धा करते हुए उठे और मखलिपुत्र गोशालक के पास आकर कहने लगे—हे गोशालक ! जो मनुष्य तथारूप श्रमण या माहन से एक भी आर्य (पापनिवारणरूप निर्दोष) धार्मिक सुवचन सुनता है, वह उन्हे वन्दना-नमस्कार करता है, यावत् उन्हे कल्याणरूप, मगलरूप, देवस्वरूप, एव ज्ञानरूप मान कर उनकी पर्युपासना करता है, तो हे गोशालक ! तुम्हारे लिए तो कहना ही क्या ? भगवान् ने तुम्हे (धर्मवचन ही नही सुनाया अपितु) प्रव्रजित किया, मुण्डित (दीक्षित) किया, भगवान् ने तुम्हे (व्रत एव आचार की) साधना सिखाई, भगवान् ने तुम्हे (तेजोलेश्यादि विषयक उपदेश देकर) शिक्षित किया, भगवान् ने तुम्हे बहुश्रुत किया, (इतने पर भी) तुम भगवान् के प्रति मिथ्यापन (अनार्यता) अगीकार कर रहे हो ! हे गोशालक ! तुम ऐसा मत करो। तुम्हे ऐसा करना उचित नही है। हे गोशालक ! तुम वही गोशालक हो, दूसरे नहीं, तुम्हारी वही प्रकृति है, दूसरी नही।

७२. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते सव्वाणुभूइणा अणगारेण एव वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ सव्वाणुभूति अणगार तवेणं तेएण एगाहच्च कूडाहच्च भासरासिं करेति।

[७२] सर्वानुभूति अनगार ने जब मखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार की बाते कही तब वह एकदम क्रोध मे आगबबूला हो उठा और अपने तपोजन्य तेज (तेजोलेश्या) से उसने एक ही प्रहार मे कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अनगार को भस्म कर दिया।

७३ तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते सव्वाणुभूइ अणगार तवेण तेएण एगाहच्च जाव भासरासिं करेत्ता दोच्च पि समण भगव महावीर उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ जाव सुहमत्थि।

[७३] सर्वानुभूति अनगार को भस्म करके वह मखलिपुत्र गोशालक फिर दूसरी बार श्रमण भगवान् महावीर को अनेक प्रकार के ऊटपटाग आक्रोश वचनो से तिरस्कृत करने लगा, (इत्यादि) यावत्—बोला—'आज मेरे द्वारा तुम्हारा शुभ होने वाला नही है।'

विवेचन—सर्वानुभूति अनगार का भस्मीकरण—यद्यपि भगवान् महावीर ने सभी निर्ग्रन्थ श्रमणो को गोशालक को छेडने की मनाही की थी, किन्तु धर्माचार्य के प्रति अनुरागवश सर्वानुभूति अनगार से न रहा गया, उन्होंने गोशालक को भगवान् द्वारा उसके प्रति किये गए उपकारो का स्मरण कराया, यथार्थ बात कही, जिस पर अत्यन्त कुपित होकर गोशालक ने उन्हे जला कर भस्म कर दिया। यद्यपि भगवान् ने गोशालक की अपेक्षा अनन्त-गुण-विशिष्ट तप-तेज सामान्य अनगार का बताया था, बशर्ते कि वह क्षमा (क्रोधनिग्रह) समर्थ हो। प्रतीत होता है कि सर्वानुभूति अनगार

के मन मे भगवान् के विषय मे गोशालक के यद्वा-तद्वा आक्रोशपूर्ण एव आक्षेपपूर्ण वचन सुन कर रोष उमड आया हो इसी कारण गोशालक का दाव लग गया हो ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—**पव्वाविए**—प्रव्रजित किया—शिष्यरूप से स्वीकार किया। **मु डाविए**—मुडित किया—मुण्डित गोशालक को शिष्यरूप मे माना। **सेहाविए**—व्रत-आचार आदि पालन करने की साधना सिखाई, **सिक्खाविए**—तेजोलेश्यादि के विषय मे उपदेश देकर शिक्षित किया। **बहुस्सुतीकए**—नियतिवाद आदि के विषय मे हेतु, युक्ति आदि से बहुश्रुत (शास्त्रज्ञ) बनाया।[2]

गोशालक द्वारा भगवान् के किये गए अवर्णवाद का विरोध करने वाले सुनक्षत्र अनगार का समाधिपूर्वक मरण

७४ तेण कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतेवासी कोसलजाणवए सुनक्खत्ते नाम अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए धम्मायरियाणुरागेण जहा सव्वाणुभूती तहेव जाव सच्चेव ते सा छाया, नो अन्ना।

[७४] उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर का कोशल जनपदीय (अयोध्या देश) मे उत्पन्न (एक और) अन्तेवासी सुनक्षत्र नामक अनगार था। वह भी प्रकृति मे भद्र यावत् विनीत था। उसने धर्माचार्य के प्रति अनुरागवश सर्वानुभूति अनगार के समान गोशालक को यथार्थ वात कही, यावत्—'हे गोशालक! तू वही है, तेरी प्रकृति वही है, तू अन्य नही है।

७५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सुनक्खत्तेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ सुनक्खत्तं अणगारं तवेण तेएणं परितावेति। तए णं से सुनक्खत्ते अणगारे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेण तेएण परिताविए समाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वदति नमंसति, वं० २ सयमेव पच महव्वयाइं आरुभेति, स० आ० २ समणा य समणीओ य खामेति, सम० खा० २ आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगते।

[७५] सुनक्षत्र अनगार के ऐसा कहने पर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और अपने तप-तेज मे सुनक्षत्र अनगार को भी परितापित कर (जला) दिया। मखलिपुत्र गोशालक के तप-तेज से जले हुए सुनक्षत्र अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप आकर और तीन वार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करके उन्हे वन्दना-नमस्कार किया। फिर (उनकी साक्षी से) स्वयमेव पच महाव्रतो का आरोपण किया और सभी श्रमण-श्रमणियो से क्षमायाचना की। तदनन्तर आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त कर अनुक्रम से कालधर्म प्राप्त किया।

७६. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते सुनक्खत्तं अणगारं तवेणं तेयेण परितावेत्ता तच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसति सव्वं तं चेव जाव सुहमत्थि।

[७६] अपने तप-तेज से सुनक्षत्र अनगार को जलाने के बाद फिर तोसरी वार मखलिपुत्र

---

१ भगवती (हिन्दी विवेचन), भा ५, पृ २४३२

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८३

गोशालक, श्रमण भगवान् महावीर को अनेक प्रकार के आक्रोशपूर्ण वचनो से तिरस्कृत करने लगा, इत्यादि पूर्ववत्, यावत्—'आज मुझ से तुम्हारा शुभ होने वाला नही है।'

विवेचन—सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि के जलने में अन्तर—सर्वानुभूति के समान सुनक्षत्र अनगार पर भी गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रहार किया, किन्तु सर्वानुभूति अनगार को कूटाघात के समान एक ही प्रहार मे जला कर राख का ढेर कर दिया था, जब कि सुनक्षत्र अनगार को गोशालक इस तरह भस्म नही कर सका। इसके लिए शास्त्रकार ने **'परिताविए'** (परितापित किया—जला दिया) शब्द-प्रयोग किया है। अर्थात्—सुनक्षत्र अनगार तुरन्त भस्म नही हुए किन्तु जलने से घायल हो गए थे। सर्वानुभूति अनगार का शरीर तुरन्त ही भस्म हो गया था, इसलिए उन्हे क्षमापना आलोचना-प्रतिक्रमण आदि का समय नही मिला, जब कि सुनक्षत्र अनगार को क्षमापना, आलोचना-प्रतिक्रमणपूर्वक समाधिमरण का अवसर प्राप्त हो गया था।[1]

कठिन शब्दार्थ—आरुभेति—आरोपित किया, नये सिरे से पच महाव्रत का उच्चारण करके स्वीकार किया। **समाहिपत्ते**—समाधिमरण को प्राप्त हुए। **परिताविए**—पीडित कर दिया, जला दिया।[2]

गोशालक को भगवान् का सदुपदेश, क्रुद्ध गोशालक द्वारा भगवान् पर फेंकी हुई तेजोलेश्या से स्वय का दहन

७७. तए ण समणे भगव महावीरे गोसाल मखलिपुत्त एव वयासि—जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स०, वा त चेव जाव पज्जुवासति किमग पुण गोसाला! तुम मए चेव पव्वाविए जाव मए चेव बहुस्सुतीकते ममं चेव मिच्छ विप्पडिवन्ने?, त मा एव गोसाला! जाव नो अन्ना।

[७७] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने, मखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा—'गोशालक! जो तथारूप श्रमण या माहन से एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनता है, इत्यादि पूर्ववत्, वह भी उसकी पर्युपासना करता है, तो हे गोशालक! तेरे विषय मे तो कहना ही क्या? मैंने तुझे प्रव्रजित किया, यावत् मैंने तुझे बहुश्रुत बनाया, अब मेरे साथ ही तूने इस प्रकार का मिथ्यात्व (अनार्यत्व) अपनाया है। गोशालक! ऐसा मत कर। ऐसा करना तुझे योग्य नही है। यावत्—तू वही है, अन्य नही है। तेरी वही प्रकृति है, अन्य नही।

७८. तए णं से गोसाले मखलिपुत्ते समणेण भगवता महावीरेण एव वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ तेयासमुग्घातेण समोहन्नइ, तेया० स० २ सत्तट्ठपयाइ पच्चोसक्कइ, स० प० २ समणस्स भगवतो महावीरस्स वहाए सरीरगसि तेय निसिरति। से जहानामए वाउक्कलिया इ वा वायमडलिया इ वा

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २४३३
   (ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ७१७

२ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २४३३
   (ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा ११, पृ ६५९

सेलसि वा कुड्डसि वा थभसि वा थूभसि वा आवारिज्जमाणी वा निवारिज्जमाणी वा सा णं तत्थ णो कमति, नो पक्कमति, एवामेव गोसालस्स वि मखलिपुत्तस्स तवे तेये समणस्स भगवतो महावीरस्स वहाए सरीरगंसि निसिट्ठे समाणे से ण तत्थ नो कमति, नो पक्कमति, अचिअंचिय करेति, अचि० क० २ आदाहिणपयाहिण करेत्ति, आ० क० २ उड्ढ वेहास उप्पतिए। से ण तओ पडिहए पडिनियत्तमाणे तमेव गोसालस्स मखलिपुत्तस्स सरीरग अणुडहमाणे अणुडहमाणे अतो अंतो अणुप्पविट्ठे।

[७८] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा इस प्रकार कहने पर मखलिपुत्र गोशालक पुन. एकदम क्रुद्ध हो उठा। उसने क्रोधावेश मे तैजस समुद्घात किया। फिर वह सात-आठ कदम पीछे हटा और श्रमण भगवान् महावीर का वध करने के लिए उसने अपने शरीर मे मे तेजोनिसर्ग किया (तेजोलेश्या निकाली)। जिस प्रकार वातोत्कलिका (ठहर-ठहर कर चलने वाली वायु) वात-मण्डलिका (मण्डलाकार होकर चलने वाली हवा) पर्वत, भीत, स्तम्भ या स्तूप से आवारित (स्खलित) एव निवारित (अवरुद्ध या निवृत्त) होती (हटती) हुई उन शैल आदि पर अपना थोडा-सा भी प्रभाव नही दिखाती, न ही विशेष प्रभाव दिखाती है। इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर का वध करने के लिए मखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपने शरीर मे से बाहर निकाली (छोडी) हुई तपोजन्य तेजोलेश्या, भगवान् महावीर पर अपना थोडा या बहुत कुछ भी प्रभाव न दिखा सकी। (सिर्फ) उसने गमनागमन (ही) किया। फिर उसने दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की और ऊपर आकाश मे उछल गई। फिर वह वहाँ से नीचे गिरी और वापिस लौट कर उसी मखलिपुत्र गोशालक के शरीर को बार-बार जलाती हुई अन्त मे उसी के शरीर के भीतर प्रविष्ट हो गई।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (७७-७८) मे से प्रथम सूत्र मे भगवान् द्वारा गोशालक द्वारा आचरित अनार्यकर्म पर उसे दिए गए उपदेश का वर्णन है। द्वितीय सूत्र मे बताया गया है कि गोशालक द्वारा भगवान् को मारने के लिए छोडी गई तेजोलेश्या उन्हे किञ्चित् क्षति न पहुँचा कर आकाश मे उछली और फिर नीचे आकर, लौट कर गोशालक के शरीर मे प्रविष्ट हुई और उसे बार-बार जलाने लगी। अर्थात्—आक्रमणकर्ता गोशालक भगवान् को जलाने के बदले[1] स्वय जल गया।

कठिनशब्दार्थ—**निसिट्ठे समाणे**—निकलती हुई। **णो कमइ, णो पक्कमइ**—थोडा या बहुत कुछ भी प्रभाव न दिखा सकी, थोडी या बहुत क्षति पहुँचाने मे समर्थ न हुई। **अंचिअचिय करेति** गमनागमन किया। **उप्पतिए**—ऊपर उछली। **पडिहए**—गिरी। **अणुडहमाणे**—बार-बार जलाती हुई।[2]

क्रुद्ध गोशालक की भगवान् के प्रति मरण-घोषणा, भगवान् द्वारा प्रतिवादपूर्वक गोशालक के अन्धकारमय भविष्य का कथन

७९. तए ण से गोसाले मंखलिपुत्ते सएण तेयेणं अन्नाइट्ठे समाणे समणं भगवं महावीरं एव

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू. पा टि) भा २, पृ ७१७-६१८

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८३

(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा ११, पृ ६६४

वदासि—तुम ण आउसो ! कासवा ! मम तवेण तेएणं अन्नाइट्ठे समाणे अंतो छण्ह मासाण पित्तज्जर-परिगयसरीरे दाहवक्कतीए छउमत्थे चेव काल करेस्ससि ।

[७९] तत्पश्चात् मखलिपुत्र गोशालक अपने तेज (तेजोलेश्या) से स्वयमेव पराभूत हो गया । अत (क्रुद्ध होकर) श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहने लगा—'आयुष्मन् काश्यप ! तुम मेरी तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्तज्वर से ग्रस्त शरीर वाले होकर दाह की पीडा से छह मास के अन्त मे छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर जाओगे ।'

८० तए णं समणे भगव महावीरे गोसाल मखलिपुत्त एव वदासि—नो खलु अह गोसाला ! तव तवेण तेयेण अन्नाइट्ठे समाणे अतो छण्ह जाव काल करेस्सामि, अह ण अन्नाइ सोलस वासाइ जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि । तुम ण गोसाला ! अप्पणा चेव सएण तेयेण अन्नाइट्ठे समाणे अतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे जाव छउमत्थे चेव काल करेस्ससि ।

[८०] इस पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा—'हे गोशालक ! तेरी तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त होकर मैं छह मास के अन्त मे, यावत् काल नही करूगा, किन्तु अगले सोलह वर्ष-पर्यन्त जिन अवस्था मे गन्ध-हस्ती के समान विचरूगा । परन्तु हे गोशालक ! तू स्वय अपनी तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त होकर सात रात्रियो के अन्त मे पित्तज्वर से शारीरिक पीडाग्रस्त होकर यावत् छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर जाएगा ।'

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रों मे गोशालक द्वारा भगवान् के भविष्यकथन का तथा उसके प्रतिवाद रूप मे भगवान् ने अपने दीर्घायुष्य का और गोशालक की मृत्यु का कथन किया है ।[1]

कठिनशब्दार्थ—**अन्नाइट्ठे**—अनादिष्ट—अभिव्याप्त या पराभूत । **दाहवक्कतीए**—दाह की पीडा से । **पित्तज्जर-परिगयसरीरे**—जिसके शरीर मे पित्तज्वर व्याप्त हो गया है, वह । **सुहत्थी**—अच्छे हाथी की तरह, गन्ध-हस्ती के समान ।[2]

श्रावस्ती के नागरिको द्वारा गोशालक के मिथ्यावादी और भगवान् के सम्यग्वादी होने का निर्णय

८१. तए ण सावत्थीए नगरीए सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव एव परूवेति—एव खलु देवाणुप्पिया ! सावत्थीए नगरीए बहिया कोट्ठए चेतिए दुवे जिणा सलवेंति, एगे वदति—तुम पुव्वि काल करेस्ससि, एगे वदति-तुम पुव्वि काल करेस्ससि, तत्थ ण के सम्मावादी, के मिच्छावादी ? तत्थ ण जे से अहप्पहाणे जणे से वदति—समणे भगव महावीरे सम्मावादी, गोसाले मखलिपुत्ते मिच्छावादी ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ७१८

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८३

[८१] तदनन्तर श्रावस्ती नगरी के शृ गाटक यावत् राजमार्गो पर बहुत-से लोग परस्पर एक दूसरे से कहने लगे, यावत् प्ररूपणा करने लगे—देवानुप्रियो ! श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य मे दो जिन (तीर्थंकर) परस्पर सलाप कर रहे है। (उनमे से) एक कहता है—'तू पहले काल कर जाएगा।' दूसरा उसे कहता है—'तू पहले मर जाएगा।' इन दोनो मे कौन सम्यग्वादी (सत्यवादी) है, कौन मिथ्यावादी है ? उनमे से जो प्रधान (समझदार) मनुष्य था, उसने कहा—'श्रमण भगवान् महावीर सत्यवादी हैं, मखलिपुत्र गोशालक मिथ्यावादी है।'

विवेचन—निष्कर्ष—'सत्यमेव जयते नानृतम्' इस लोकोक्ति के अनुसार अन्त मे सत्य की विजय हुई। भ महावीर को गोशालक ने झूठा एव दम्भी सिद्ध करना चाहा, मारने की धमकी देकर मारणप्रयोग भी किया किन्तु उसकी एक न चली। अन्त मे भगवान् को लोगो ने सत्यवादी स्वीकार किया। **अहप्पहृणे** अर्थ—यथाप्रधान—मुख्य समझदार व्यक्ति।[1]

निर्ग्रन्थ श्रमणो को गोशालक के साथ धर्मचर्चा करने का भगवान् का आदेश

८२. 'अज्जो !' त्ति समणे भगव महावीरे समणे निग्गथे आमतेत्ता एव वयासि—अज्जो ! से जहानामए तणरासी ति वा कट्ठरासी ति वा पत्तरासी ति वा तयारासी ति वा तुसरासी ति वा भुसरासी ति वा गोमयरासी ति वा अवकररासी ति वा अगणिझामिए अगणिझूसिए अगणिपरिणामिए हयतेये गयतेये नट्ठतेये भट्ठतेये लुत्ततेए विणट्ठतेये जाए एवामेव गोसाले मंखलिपुत्ते ममं वहाए सरीरगसि तेय निसिरेत्ता हयतेये गततेये जाव विणट्ठतेये जाए, त छदेण अज्जो ! तुब्भे गोसालं मखलिपुत्त धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएह, धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेह, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेत्ता धम्मिएण पडोयारेण पडोयारेह, धम्मिएणं पडोयारेण पडोयारेत्ता अट्ठेहि य हेतूहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरण करेह।

[८२] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थो को सम्बोधित कर इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! जिस प्रकार तृणराशि, काष्ठराशि, पत्रराशि, त्वचा (छाल की) राशि, तुषराशि, भूसे की राशि, गोमय (गोबर) की राशि और अवकर राशि (कचरे के ढेर) को अग्नि से थोडा-सा जल जाने पर, आग मे झोक देने (या बहुत झुलस जाने) पर एव अग्नि से परिणामान्तर होने पर उसका तेज हत हो (मारा) जाता है, उसका तेज चला जाता है, उसका तेज नष्ट और भ्रष्ट हो जाता है, उसका तेज लुप्त (अदृश्य) एव विनष्ट हो जाता है, इसी प्रकार मखलिपुत्र गोशालक द्वारा मेरे वध के लिए अपने शरीर से तेज (तेजोलेश्या) निकाल देने पर, अब उसका तेज हत हो (मारा) गया है, उसका तेज चला गया है, यावत उसका तेज (नष्ट-भ्रष्ट) विनष्ट हो गया है। इसलिए, आर्यो ! अब तुम भले ही मखलिपुत्र गोशालक को धर्मसम्बन्धी प्रतिनोदना (उसके मत के विरुद्ध वादविवाद) से प्रति प्रेरित करो, धर्मसम्बन्धी (उसके मत से विरुद्ध बात की) प्रतिस्मारणा (स्मृति) करा कर (विस्मृत अर्थ की) स्मृति कराओ। फिर धार्मिक प्रत्युपचार द्वारा उसका प्रत्युपचार

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ ७१९
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २४३९

करो, इसके बाद अर्थ, हेतु, प्रश्न, व्याकरण (व्याख्या) और कारणो के सम्बन्ध मे (उत्तर न दे सके ऐसे) प्रश्न पूछ कर उसे निरुत्तर (निपृष्ट) कर दो।'

विवेचन—पहले (६६ वे सूत्र मे) भगवान् ने गोशालक के साथ धार्मिक चर्चा या वादविवाद करने के लिए श्रमण निर्ग्रन्थो को मना किया था, क्योकि उस समय गोशालक पर तेजोलेश्या के अहकार का भूत सवार था। किन्तु अब तेजोलेश्या का प्रभाव नष्ट हो जाने से गोशालक के साथ धर्मचर्चा एव वादविवाद करने की श्रमणो को छूट दी, जिससे जनता एव आजीवक मत के साधु और उपासकगण भ्रम मे न रहे, सत्य को जान सकें।[1]

कठिनशब्दार्थ—**अगणि-झामिए**—अग्नि से किंचित् दग्ध (जला हुआ), **अगणिझूसिए**—अग्नि से अत्यन्त झुलसा हुआ। **छंदेण**—इच्छानुसार। **हयतेए**—जिसका तेज हत हो गया (फीका पड गया), **गयतेए**—गततेज। **पडिचोयणा**—प्रतिप्रेरणा। **पडिसारणा**—धर्म का स्मरण कराना। **णिप्पट्ठपसिणवागरण**—प्रश्न का उत्तर न दे सकने योग्य।[2]

भगवदादेश से निर्ग्रन्थो की धर्मचर्चा मे गोशालक निरुत्तर, पीड़ा देने मे असमर्थ, आजीविक स्थविर भगवान् के निश्राय मे

८३. तए ण ते समणा निग्गथा समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ता समाणा समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ जेणेव गोसाले मखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छति, उवा० २ गोसाल मंखलिपुत्त धम्मियाए पडिचोदणाए पडिचोदेंति ध० प० २ धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेंति, ध० प० २ धम्मिएण पडोयारेण पडोयारेंति, ध० प० २ अट्ठेहि य हेऊहि य कारणेहि य जाव[3] निप्पट्ठ-पसिणवागरण करेंति।

[८३] जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा कहा, तब उन श्रमण-निर्ग्रन्थो ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया। फिर जहाँ मखलिपुत्र गोशालक था, वहाँ आए और उसे धर्म-सम्बन्धी प्रतिप्रेरणा (उसके मत के प्रतिकूल वचन) की, धर्मसम्बन्धी प्रतिस्मारणा (उसके मत के प्रतिकूल अर्थ का स्मरण कराना) की, तथा धार्मिक प्रत्युपचार से उसे तिरस्कृत किया, एव अर्थ, हेतु, प्रश्न, व्याकरण और कारणो से उसे निरुत्तर कर दिया।

८४ तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते समणेहिं निग्गथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइज्ज-माणे जाव निप्पट्ठपसिणवागरणे कीरमाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे नो सचाएति समणाण निग्गथाण सरीरगस्स किंचि आवाह वा वाबाह वा उप्पाएत्तए, छविच्छेयं वा करेत्तए।

[८४] इसके बाद श्रमण-निर्ग्रन्थो द्वारा धार्मिक प्रतिप्रेरणा आदि से तथा अर्थ, हेतु, व्याकरण एव प्रश्नो मे यावत् निरुत्तर किये जाने पर गोशालक मखलिपुत्र अत्यन्त कुपित हुआ यावत्

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४३९

२ (क) वही, भा ५, पृ २४३८

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८३-६८४

३ जाव शब्द सूचक पाठ—'वागरण वागरेंति।'

मिसमिसाता हुआ क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित हो उठा। किन्तु अब वह श्रमण-निर्ग्रन्थो के शरीर को कुछ भी पीडा या उपद्रव, पहुँचाने अथवा छविच्छेद करने मे समर्थ नही हुआ।

८५. तए ण ते आजीविया थेरा गोसालं मखलिपुत्तं समणेहिं निग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइज्जमाण, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारिज्जमाणं, धम्मिएणं पडोयारेण पडोयारिज्जमाण अट्ठेहि य हेऊहि य जाव कीरमाण आसुरुत्त जाव मिसिमिसेमाणं समणाण निग्गथाणं सरीरगस्स किंचि आबाह वा वाबाह वा छविच्छेद वा अकरेमाण पासति, पा० २ गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियाओ अत्थेगइया आयाए अवक्कमति, आयाए अ० २ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेंति; क० २ वदति नमसति, व० २ समण भगव महावीरं उवसपज्जित्ताण विहरति। अत्थेगइया आजीविया थेरा गोसाल चेव मखलिपुत्त उवसपज्जित्ताणं विहरति।

[८५] जब आजीविक स्थविरो ने यह देखा कि श्रमण निर्ग्रन्थो द्वारा धर्म-सम्बन्धी प्रतिप्रेरणा, प्रतिस्मारणा और प्रत्युपचार से तथा अर्थ, हेतु व्याकरण एव प्रश्नोत्तर इत्यादि से यावत् मखलिपुत्र गोशालक को निरुत्तर कर दिया गया है, जिससे गोशालक अत्यन्त कुपित यावत् मिसमिसायमान होकर क्रोध से प्रज्वलित हो उठा, किन्तु श्रमण-निर्ग्रन्थो के शरीर को तनिक भी पीडित या उपद्रवित नही कर सका एव उनका छविच्छेद नही कर सका, तब कुछ आजीविक स्थविर गोशालक मखलिपुत्र के पास से (बिना कहे-सुने) अपने आप ही चल पडे। वहाँ से चल कर वे श्रमण भगवान् महावीर के पास आ गए। फिर उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा की और उन्हे वन्दना-नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे श्रमण भगवान् महावीर का आश्रय स्वीकार करके विचरण करने लगे। कितने ही ऐसे आजीविक स्थविर थे, जो मखलिपुत्र गोशालक का आश्रय ग्रहण करके ही विचरते रहे।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (८३ से ८५ तक) गोशालक के पतन एव पराजय से सम्बन्धित तीन वृत्तान्तो का निरूपण है—

(१) गोशालक के साथ धर्मचर्चा करने का भगवान् का आदेश पाकर श्रमणनिर्ग्रन्थों ने गोशालक के साथ धर्मचर्चा की और विभिन्न युक्तियो, तर्कों और हेतुओ से उसे निरुत्तर कर दिया।

(२) निरुत्तर एव पराजित गोशालक उन श्रमणनिर्ग्रन्थो पर अत्यन्त रुष्ट हुआ, किन्तु अब वह क्रोध करके ही रह गया। उसमे श्रमणो को कुछ बाधा-पीडा पहुँचने या उनका अगभग कर देने का सामर्थ्य नही रहा।

(३) जब आजीविक स्थविरो ने गोशालक को निरुत्तर तथा श्रमणो का बाल भी बाका कर सकने मे असमर्थ हुआ देखा तो गोशालक का आश्रय छोड कर वे भगवान् के आश्रय मे आ कर रहने लगे। कुछ आजीविक स्थविर गोशालक के पास ही रहे।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७१९-७२०

गोशालक की दुर्दशा-निमित्तक विविध चेष्टाएँ

८६. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते जस्सट्ठाए हव्वमागए तमट्ठ असाहेमाणे, रुदाइ पलोएमाणे, दीहुण्हाइ नीससमाणे, दाढियाए लोमाइ लुचमाणे, अवडु कडूयमाणे, पुयलिं पप्फोडेमाणे, हत्थे विणिद्धुणमाणे, दोहि वि पाएहिं भूमि कोट्टेमाणे 'हाहा अहो ! हओऽहमस्सी ति कट्टु समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव हालाहलाए कुभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ हालाहलाए कुभकारीए कुंभकारावणसि अवकूणगहत्थगए मज्जपाणग पियमाणे अभिक्खण गायमाणे अभिक्खण नच्चमाणे अभिक्खण हालाहलाए कुंभकारीए अजलिकम्म करेमाणे सीयलएण मट्टियापाणएण आयचणिउदएण गायाइ परिसिचेमाणे विहरइ ।

[८६] मखलिपुत्र गोशालक जिस कार्य को सिद्ध करने के लिए एकदम आया था, उस कार्य को सिद्ध नही कर सका, तब वह (हताश हो कर) चारो दिशाओ मे लम्बी दृष्टि फेकता हुआ, दीर्घ और उष्ण नि श्वास छोडता हुआ, दाढी के बालो को नोचता हुआ, गर्दन के पीछे के भाग को खुजलाता हुआ, बैठक के कूल्हे के प्रदेश को ठोकता हुआ, हाथो को हिलाता हुआ और दोनो पैरो से भूमि को पीटता हुआ, 'हाय, हाय ! ओह मैं मारा गया' यो बडबडाता हुआ, श्रमण भगवान् महावीर के पास से, कोष्ठक-उद्यान से निकला और श्रावस्ती नगरी मे जहाँ हालाहला कुम्भकारी की दुकान थी, वहाँ आया । वहाँ आम्रफल हाथ मे लिए हुए मद्यपान करता हुआ, (मद्य के नशे मे) बार-बार गाता और नाचता हुआ, बारबार हालाहला कुम्भारिन को अजलिकर्म (हाथ जोड कर प्रणाम) करता हुआ, मिट्टी के बर्त्तन मे रखे हुए मिट्टी मिले हुए शीतल जल (आतञ्चनिकोदक) से अपने शरीर का परिसिंचन करता हुआ (शरीर पर छाटता हुआ) विचरने लगा ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (८६) मे पराजित, अपमानित तेजोलेश्या से दग्ध एव हताश गोशालक की तीन प्रकार की कुचेष्टाओ का वर्णन है, जो उसकी दुर्दशा की सूचक है—

(१) पराजित और तेजोलेश्या रहित होने के कारण दीर्घ नि श्वास, दाढी के बाल नोचना, गर्दन के पृष्ठ भाग को खुजलाना, भूमि पर पैर पटकना आदि चेष्टाएँ गोशालक द्वारा की गई ।

(२) अपमान, पराजय और अपयश को भुलाने के लिए गोशालक ने मद्यपान, और उसके नशे मे हो कर गाना, नाचना, हालाहला को हाथ जोडना आदि चेष्टाएँ अपनाई ।

(३) तेजोलेश्याजनित दाह को शान्त करने के लिए गोशालक ने चूसने के लिए हाथ मे आम्रफल (आम की गुठली) ली । तथा कुम्भार के यहाँ मिट्टी के घडे मे रखा हुआ व मिट्टी मिला हुआ ठडा जल शरीर पर सीचने (छिडकने) लगा ।[1]

कठिन-शब्दार्थ—**हव्वमागए**—जल्दी-जल्दी आया था । **असाहेमाणे**—नही साधे जाने पर । **रुदाइ पलोएमाडे**—दिशाओ की ओर दीर्घ दृष्टिपात करता हुआ । **दीहुण्हं नीससमाणे**—दीर्घ और

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा. टि) भा २ पृ ७२०
(ख) भगवती अ वृत्ति, प ६८४

गर्म नि श्वास डालता हुआ। **अवडु कंडूयमाणे**—गर्दन के पीछे के भाग (घाटी) को खुजलाता हुआ। **पुयलि पप्फोडेमाणे**—कूल्हे या जाघ को ठोकना हुआ। **विणिद्धुणमाणे**—हिलाता हुआ। **अभिक्खण**—वारवार। **कोट्टेमाणे**—कूटता या पीटता हुआ। **अबकूणग-हत्थगए**—आम्रफल हाथ मे लेकर। **मट्टियापाणएण आयचणि-उदएण**—मिट्टी मिले हुए ठडे पानी (जिसका दूसरा नाम आतञ्च-निकोदक है) से **गायाइं**—शरीर के अगोपाग।[1]

भगवत्प्ररूपित गोशालक की तेजोलेश्या की शक्ति

८७. **'अज्जो' ति समणे भगवं महावीरे समणे निग्गथे आमतेत्ता एव वयासि—जावतिए णं अज्जो ! गोसालेणं मखलिपुत्तेण ममं वहाए सरीरगंसि तेये निसट्ठे से णं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाण, त जहा—अंगाण वगाण मगहाण मलयाणं मालवगाणं अच्छाणं वच्छाणं कोट्ठाणं पाढाणं लाढाण वज्जाण मोलीण कासीण कोसलाण अवाहाणं सुंभुत्तराणं घाताए वहाए उच्छादणताए भासीकरणताए।**

[८७] तदन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमणनिर्ग्रन्थो को 'हे आर्यो !' इस प्रकार सम्वोधित करके कहा—हे आर्यो ! मखलिपुत्र गोशालक ने मेरा वध करने के लिए अपने शरीर मे से जितनी तेजोलेश्या (तेज) निकाली थी, वह (निम्नोक्त) सोलह जनपदो (देशो) का घात करने, वध करने, उच्छेदन करने और भस्म करने मे पूरी तरह पर्याप्त (समर्थ) थी। वे सोलह जनपद ये है—(१) अग (वर्त्तमान मे आसाम), (२) वग (वगाल), (३) मगध (४) मलयदेश (मलयालम प्रान्त) (५) मालवदेश, (वर्त्तमान मे मध्यप्रदेश), (६) अच्छ, (७) वत्सदेश, (८) कौत्सदेश, (९) पाट, (१०) लाढदेश (११) वज्रदेश, (१२) मौली, (१३) काशी, (१४) कौशल, (१५) अवध और (१६) सुम्भुक्तर।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (८७) मे गोशालक द्वारा भगवान् को मारने के लिए निकाली गई तेजोलेश्या की प्रचण्ड शक्ति का निरूपण किया गया है। गोशालक द्वारा दुरुपयोग के कारण वह शक्ति उसी के लिए मारक वनी।

कुछ जनपदो के वर्त्तमान सम्भावित नाम—अंग—असम, आसाम। **वंग**—वगाल। **मगध**—विहारान्तर्गत राजगृह आदि। **मलय**—कोचीन और मलयालम प्रान्त। **मालव**—वर्त्तमान मे मध्यप्रदेश, मध्य प्रान्त। **अच्छ**—कच्छ का ही दूसरा नाम हो, अथवा सम्भव है अच्छनेरा आदि जनपद हो। **वच्छ**—वत्स देश, कौशाम्वीनगरी जिसकी राजधानी थी। **कोच्छ—कोट्ठ**—कौत्स या कोष्ठ—सभव है काठमाडू (नेपाल की राजधानी) आदि हो। अथवा पठानकोट, सियालकोट आदि मे से कोई हो। **पाट**—सभव है पाटलीपुत्र का ही दूसरा नाम हो। **लाढ**—वर्त्तमान मे सिंहभूम या सथालपरगना, जहाँ आदिवासीवहुल जनता है। **वज्ज—वइर**—वर्त्तमान मे वीरभूम ही प्राचीन वज्रभूमि। काशी, कौशल (अयोध्या) आदि प्रसिद्ध हैं।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८४

(ख) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा ११, पृ ६८८-६८९

२ पाइअसद्दमहण्णवो (द्वितीयसस्करण १९६३)

घात आदि शब्दो के विशेषार्थ —घात—हनन, वध—विनाश, उच्छादन—समूलनाश, उच्चाटन भस्मीकरण—भस्मसात् करना ।[1]

निजपाप-प्रच्छादनार्थ गोशालक द्वारा अष्टचरम एवं पानक-अपानक की कपोल-कल्पित-मान्यता का निरूपण

८८. ज पि य अज्जो ! गोसाले मखलिपुत्ते हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणसि अवऊणगहत्थगए मज्जपाण पियमाणे अभिक्खण जाव अजलिकम्म करेमाणे विहरति । तस्स वि ण वज्जस्स पच्छायणट्ठताए इमाइ अट्ठ चरिमाइ पन्नवेति, त जहा—चरिमे पाणे, चरिमे गेये, चरिमे नट्टे, चरिमे अजलिकम्मे, चरिमे पुक्खलसवट्टए महामेहे, चरिमे सेयणए गधहत्थी, चरिमे महासिलाकटए संगामे अहं च णं इमीसे ओसप्पिणिसमाए चउवीसाए तित्थकराण चरिमे तित्थकरे सिज्झिस्सं जाव अत करेस्स ।

[८८] हे आर्यो ! मखलिपुत्र गोशालक, जो हालाहला कुम्भारिन की दुकान मे आम्रफल हाथ मे लिये हुए मद्यपान करता हुआ यावत् वारवार (गाता, नाचता और) अजलिकर्म करता हुआ विचरता है, वह अपने उस (पूर्वोक्त मद्यपानादि) पाप को प्रच्छादन करने (ढँकने) के लिए इन (निम्नोक्त) आठ चरमो (चरम पदार्थों) की प्ररूपणा करता है । यथा—(१) चरम पान, (२) चरम-गान, (३) चरम नाट्य, (४) चरम अजलिकर्म, (५) चरम पुष्कल-सवर्त्तक महामेघ, (६) चरम सेचनक गन्धहस्ती (७) चरम महाशिलाकण्टक सग्राम और (८) (चरमतीर्थंकर) 'मैं (मखलिपुत्र गोशालक) इस अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकरो मे से चरम तीर्थंकर हो कर सिद्ध होऊँगा यावत् सब दु खों का अन्त करूँगा ।'

८९ ज पि य अज्जो ! गोसाले मखलिपुत्ते सीयलएण मट्टियापाणएण आदंचणिउदएणं गायाइं परिसिचेमाणे विहरति तस्स वि ण वज्जस्स पच्छायणट्ठयाए इमाइ चत्तारि पाणगाइ, चत्तारि अपाणगाइ पन्नवेति ।

[८९] 'हे आर्यो ! मखलिपुत्र गोशालक मिट्टी के बर्तन मे मिट्टी-मिश्रित शीतल पानी द्वारा अपने शरीर का सिंचन करता हुआ विचरता है, वह भी इस पाप को छिपाने के लिए चार प्रकार के पानक (पीने योग्य) और चार प्रकार के अपानक (नही पीने योग्य, किन्तु शीतल और दाहोपशमक) की प्ररूपणा करता है ।

९०. से किं त पाणए ?

पाणए चउव्विहे पन्नत्ते, त जहा—गोपुट्ठए हत्थमद्दियए आयवतत्तए सिलापब्भट्ठए । से त्तं पाणए ।

[९० प्र] पानक (पेय जल) क्या है ?

[९० उ] पानक चार प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) गाय की पीठ से गिरा हुआ,

1. भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भा ११, पृ ६९०-६९१

(२) हाथ मे मसला हुआ, (३) सूर्य के ताप से तपा हुआ और (४) शिला से गिरा हुआ। यह (चतुर्विध) पानक है।

९१ से किं त अपाणए ?

अपाणए चउव्विहे पन्नत्ते, त जहा—थालपाणए तयापाणए सिंबलिपाणए सुद्धपाणए।

[९१ प्र] अपानक क्या है ?

[९१ उ] अपानक चार प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) स्थाल का पानी (२) वृक्षादि की छाल का पानी, (३) सिम्बली (मटर आदि की फली) का पानी और (४) शुद्ध पानी।

९२. से किं त थालपाणए ?

थालपाणए जे ण दाथालग वा दावारग वा दाकुंभग वा दाकलस वा सीयलगं उल्लग हत्थेहिं परामुसइ, न य पाणिय पियइ से त थालपाणए।

[९२ प्र] वह स्थाल-पानक क्या है ?

[९२ उ] स्थाल-पानक वह है, जो पानी से भीगा हुआ स्थाल (थाल) हो, पानी से भीगा हुआ वारक (करवा, सकोरा या मिट्टी का छोटा वर्तन) हो पानी से भीगा हुआ वडा घडा (मटका) हो अथवा पानी से भीगा हुआ कलश (छोटा घडा) हो, या पानी से भीगा हुआ मिट्टी का वर्तन (शीतलक) हो जिसे हाथो से स्पर्श किया जाए, किन्तु पानी पीया न जाए, यह स्थाल-पानक कहा गया है।

९३. से किं त तयापाणए ?

तयापाणए जे ण अब वा अबाडग वा जहा पयोगपए जाव[1] बोरं वा तिंदुरुय वा तरुणग आमग आसगंसि आवीलेति वा पवीलेति वा, न य पाणियं पियइ से त तयापाणए।

[९३ प्र] त्वचा-पानक किस प्रकार का होता है ?

[९३ उ] त्वचा-पानक (वृक्षादि की छाल का पानी) वह है, जो आम्र, अम्बाडग इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के सोलहवे प्रयोग पद मे कहे अनुसार, यावत् वेर, तिन्दुरुक (टेंवरू) पर्यन्त (वृक्षफल) हो, तथा जो तरुण (नया-ताजा) एव अपक्व (कच्चा) हो, (उसकी छाल को) मुख मे रख कर थोडा चूसे या विशेष रूप से चूसे, परन्तु उसका पानी न पीए। यह त्वचा-पानक कहलाता है।

९४ से किं त सिंबलिपाणए ?

सिंबलिपाणए जे ण कलसिंगलिय वा मुग्गसिंगलियं वा माससगलियं वा सिंबलिसिंगलिय वा तरुणिय आमिय आसगंसि आवीलेति वा पवीलेति वा, ण य पाणिय पियइ से त सिंबलिपाणए।

[९४ प्र] वह सिम्बली-पानक किस प्रकार का होता है ?

[९४ उ] सिम्बली (वृक्ष-विशेष की फली) का पानक वह है, जो कलाय (ग्वार या मसूर)

---

१ जाव शब्द सूचक पाठ—भव्व वा फणस वा दालिम वा इत्यादि। —पण्णवणासुत्त भा १, सू १११२, पृ २७३

की फली, मूंग की फली, उडद की फली अथवा सिम्बली (वृक्ष विशेष) की फली आदि, तरुण (ताजी या नई) और अपक्व (कच्ची) हो, उसे कोई मुह मे थोडा चबाता है या विशेष चबाता है, परन्तु उसका पानी नही पीता । वही सिम्बली-पानक होता है ।

९५. से किं त सुद्धपाणए ?

सुद्धपाणए जे ण छम्मासे सुद्ध खादिम खाति—दो मासे पुढविसथारोवगए, दो मासे कट्ठ-सथारोवगए, दो मासे दब्भसथारोवगए । तस्स ण बहुपडिपुण्णाण छण्ह मासाण अतिमराईए इमे दो देवा महिड्ढीया जाव महेसक्खा अतिय पाउब्भवति, त जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य । तए ण ते देवा सीतलएहिं उल्लएहिं हत्थेहिं गायाइ परामुसति, जे ण ते देवे सातिज्जति से ण आसीविसत्ताए कम्म पकरेति, जे ण ते देवे नो सातिज्जति तस्स ण ससि सरीरगसि अगणिकाए सभवति । से ण सएण तेयेण सरीरग झामेति, सरीरग झामेत्ता ततो पच्छा सिज्झति जाव अत करेति । से त्त सुद्धपाणए ।

[९५ प्र] वह शुद्ध पानी किस प्रकार का होता है ?

[९५ उ] शुद्ध पानक वह होता है, जो व्यक्ति छह महीने तक शुद्ध खादिम आहार खाता है, छह महीना मे से दो महीने तक पृथ्वी-सस्तारक पर सोता है, (फिर) दो महीने तक काष्ठ के सस्तारक पर सोता है, (तदनन्तर) दो महीने तक दर्भ (डाभ) के सस्तारक पर सोता है, इस प्रकार छह महीने परिपूर्ण हो जाने पर अन्तिम रात्रि मे उसके पास ये (आगे कहे जाने वाले) दो महर्द्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न देव प्रकट होते है । यथा—पूर्णभद्र और माणिभद्र । फिर वे दोनो देव शीतल और (पानी से भीगे) गीले हाथो से उसके शरीर के अवयवो का स्पर्श करते है । उन देवो का जो अनुमोदन करता है, वह आशीविष रूप से कर्म करता है, और जो उन देवो का अनुमोदन नही करता, उसके स्वय के शरीर मे अग्निकाय उत्पन्न हो जाता है । वह अग्निकाय अपने तेज से उसके शरीर को जलाता है । इस प्रकार शरीर को जला देने के पश्चात् वह सिद्ध हो जाता है, यावत् सर्व दु खो का अन्त कर देता है । यही वह शुद्ध पानक है ।

विवेचन—प्रस्तुत आठ सूत्रो (८८ से ९५ तक) मे गोशालक ने मद्यपान नृत्य-गान तथा शरीर पर शीतल जलसिचन आदि तथा अपने आपको तीर्थकर स्वरूप से प्रसिद्ध करने एव तेजोलेश्या से स्वय के जल जाने आदि अपनी पाप चेष्टाओ पर पर्दा डालने और उन्हे धर्म रूप मे मान्यता देकर लोगो को भ्रम मे डालने के लिए अपने द्वारा आठ प्रकार के चरमो की प्ररूपणा की । इन्हे चरम इसलिए कहा कि 'ये फिर कभी नही होगे ।' इन आठो मे से मद्यपान, नाच, गान और अजलि कर्म, ये चार चरम तो स्वय गोशालक से सम्बन्धित है । पुष्कलसवर्त्तक आदि तीन बातो का इस प्रकरण से कोई सम्बन्ध नही है, तथापि स्वय को अतिशयज्ञानी सिद्ध करने तथा जन मनोरजन करने के लिए एव पूर्वोक्त चरमो मे इनकी समानता बता कर अपने दोषो को छिपाने के लिए इनको भी 'चरम' बता दिया है । आठवे चरम मे, उसने स्वय को चरम तीर्थकर बताया है । अपने चरमजिनत्व को सिद्ध करने के लिए उसने चार प्रकार के पानक और चार प्रकार के अपानक की कल्पना की है । लोगो को यह बताने के लिए कि मै तेजोलेश्या जनित दाहोपशमन के लिए मद्यपान, आम्रफल को चूसना तथा मिट्टी मिले शीतल जल से गात्रसिचन आदि नही करता, मै अपनी तेजोलेश्या से नही जलता,

किन्तु शुद्धपानक वाला तीर्थंकर बनता है तब उसके शरीर से स्वत अग्नि प्रकट होती है, जो उसे जलाती है। वलिक तीर्थंकर जब मोक्ष जाते हैं, तब ये बातें अवश्य होती हैं, अत इनके होने मे कोई दोष नही है। वस्तुत शुद्धपानक की ऊटपटाग कल्पना का पानक से कोई सम्वन्ध नही है।[1]

कठिन शब्दार्थ— **वज्जस्स पच्छायणट्ठताए**—पाप को ढँकने-छिपाने के लिए। **गोपुट्ठए**—गाय की पीठ पर से गिरा हुआ पानी। **दाथालगं**—पानी से भीगा हुआ स्थाल।[2] **ससि**—स्वय के।

अयंपुल का सामान्य परिचय, हल्ला के आकार की जिज्ञासा का उद्भव गोशालक से प्रश्न पूछने का निर्णय, किन्तु गोशालक की उन्मत्तवत् दशा देख अयंपुल का वापस लौटने का उपक्रम

९६ तत्थ ण सावत्थीए नगरीए अयपुले णाम आजीविओवासए परिवसति अड्ढे जहा हालाहला जाव आजीवियसमएण अप्पाण भावेमाणे विहरति।

[९६] उसी श्रावस्ती नगरी मे अयपुल नाम का आजीविकोपासक रहता था। वह ऋद्धि-सम्पन्न यावत् अपराभूत था। वह हालाहला कुम्भारिन के समान आजीविक मत के सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था।

९७. तए ण तस्स अयपुलस्स आजीविओवासगस्स अन्नदा कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि कुडुंबजागरिय जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—किंसठिया ण हल्ला पन्नत्ता ?।

[९७] किसी दिन उस अयपुल आजीविकोपासक को रात्रि के पिछले पहर मे कुटुम्वजागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् सकल्प समुत्पन्न हुआ—'हल्लानामक कीट-विशेष का आकार कैसा बताया गया है?'

९८. तए ण तस्स अयपुलस्स आजीविओवासगस्स दोच्च पि अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एव खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मखलिपुत्ते उप्पन्ननाण-दसणधरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी इहेव सावत्थीए नगरीए हालाहलाए कुम्भकारीए कुंभकारावणसि आजीवियसंघ-सपरिवुडे आजीवियसमएण अप्पाण भावेमाणे विहरति, त सेय खलु मे कल्ल जाव जलते गोसाल मखलिपुत्तं वदित्ता जाव पज्जुवासेत्ता, इम एयारूव वागरणं वागरित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेति, एव सं० २ कल्ल जाव जलते ण्हाए कय जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, साओ० प० २ पादविहारचारेण सावत्थि नगरिं मज्झमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ पासति गोसालं मंखलिपुत्त हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणसि अवऊणगहत्थगय जाव अंजलिकम्मं करेमाण सीयलएणं मट्टिया जाव गायाइ परिसिंचमाणं, पासित्ता लज्जिए विलिए विड्डे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ।

---

1 (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ ७२१-७२२, (ख) भगवती हिन्दीविवेचन भा ५, पृ २४४५-२४४६

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८४

[९८] तदनन्तर उस आजीविकोपासक अयपुल को ऐसा अध्यवसाय यावत् मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मखलिपुत्र गोशालक, उत्पन्न (अतिशय) ज्ञान-दर्शन के धारक, यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है। वे इसी श्रावस्ती नगरी मे हालाहला कुम्भारिन की दुकान मे आजीविकसघ सहित आजीविक-सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते है। अत कल प्रात काल यावत् तेज से जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर मखलिपुत्र गोशालक को वन्दना यावत् पर्युपासना करके ऐसा यह प्रश्न पूछना श्रेयस्कर होगा।' ऐसा विचार करके उसने दूसरे दिन प्रात. सूर्योदय होने पर स्नान-बलिकर्म किया। फिर अल्प भार और महामूल्य वाले आभूषणो से अपने शरीर को अलकृत कर वह अपने घर से निकला और पैदल चल कर श्रावस्ती नगरी के मध्य मे से होता हुआ हालाहला कुम्भारिन की दुकान पर आया। वहा आ कर उसने मखलिपुत्र-गोशालक को हाथ मे आम्रफल लिये हुए, यावत् (नाचते-गाते तथा) हालाहला कुम्भारिन को अजलिकर्म करते हुए, मिट्टी मिले हुए शीतल जल से अपने शरीर के अवयवो को वार-वार सिचन करते हुए देखा तो देखते ही लज्जित, उदास और व्रीडित (अधिक लज्जित) हो गया और धीरे-धीरे पीछे खिसकने लगा।

विवेचन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (९६-९७-९८) मे प्रथम सूत्र मे आजीविकोपासक अयपुल का सामान्य परिचय, द्वितीय सूत्र मे कुटुम्ब जागरण करते हुए उसके मन मे हल्ला नामक कीट के आकार को जानने के उत्पन्न विचार का वर्णन है, और तृतीय सूत्र मे धर्माचार्य मखलिपुत्र गोशालक से इस जिज्ञासा का समाधान पाने के उत्पन्न हुए सकल्प का तथा तदनुसार गोशालक के पास पहुँचने और गोशालक की उन्मत्तवत् दशा देखकर उसके पीछे खिसकने का वृत्तान्त दिया गया है।[1]

कठिनशब्दो के अर्थ—हल्ला—गोवालिका तृण के समान आकार वाला एक कीटविशेष। **वागरण**—प्रश्न। **विलिए**—अकार्यकृत लज्जा से विषण्ण, अथवा व्रीडित—लज्जित। **विड्डे**—व्रीडित अधिक लज्जित।[2]

अयंपुल की डगमगाती श्रद्धा स्थिर हुई, गोशालक से समाधान पाकर संतुष्ट, गोशालक द्वारा वस्तुस्थिति का अपलाप

९९ तए णं ते आजीविया थेरा अयपुल आजीवियोवासग लज्जिय जाव पच्चोसक्कमाण पासंति, पा० २ एव वदासि—एहि ताव अयंपुला! इतो।

[९९] जब आजीविक स्थविरो ने आजीविकोपासक अयपुल को लज्जित होकर यावत् पीछे जाते हुए देखा, तो उन्होने उसे सम्बोधित कर कहा—'हे अयपुल! यहाँ आओ।'

१००. तए ण से अयपुले आजीवियोवासए आजीवियथेरेहिं एव वुत्ते समाणे जेणेव आजीविया थेरा तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ आजीविए थेरे वदति नमसति, वं० २ नच्चासन्ने जाव पज्जुवासति।

[१००] आजीविक स्थविरो द्वारा इस प्रकार (सम्वोधित करके) बुलाने पर अयपुल

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मू पा टि) भा २, ७२२-७२३

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र, ६८४

(ख) पाइअसद्दमहण्णवो, पृ ७८१, ७९९

आजीविकोपासक उनके पास आया और उन्हे वन्दना-नमस्कार करके उनसे न अत्यन्त निकट और न अत्यन्त दूर बैठकर यावत् पर्युपासना करने लगा ।

१०१. 'अयपुल !' त्ति आजीविया थेरा अयपुलं आजीवियोवासगं एवं वदासि—'से नूणं ते अयपुला ! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव किंसंठिया हल्ला पन्नत्ता ? तए णं तव अयपुला ! दोच्चं पि अयमेयारूवे०, तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए, से नूणं ते अयपुला ! अट्ठे समट्ठे ?

'हंता, अत्थि'।

जं पि य अयपुला ! तव धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अबकूणगहत्थगए जाव अंजलिकम्मं करेमाणे विहरइ तत्थ वि णं भगवं इमाइं अट्ठ चरिमाइं पन्नवेति, तं जहा—चरिमे पाणे जाव अंतं करेस्सति । जं पि य अयपुला ! तव धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते सीयलएणं मट्टिया जाव विहरति, तत्थ वि णं भगवं इमाइं चत्तारि पाणगाइं, चत्तारि अपाणगाइं पन्नवेति । से किं तं पाणए ? पाणए जाव ततो पच्छा सिज्झति जाव अंतं करेति । तं गच्छ णं तुमं अयपुला ! एस चेव ते धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते इमं एयारूवं वागरणं वागरेहिति ।

[१०१] 'हे अयपुल' ! इस प्रकार सम्बोधन करके आजीविक स्थविरों ने आजीविकोपासक अयपुल से इस प्रकार कहा—हे अयपुल ! आज पिछली रात्रि के समय यावत् तुझे ऐसा मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'हल्ला' की आकृति कैसी होती है ? इसके पश्चात् हे अयपुल ! तुझे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मैं अपने 'धर्माचार्य' से पूछ कर निर्णय करू, इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए । यावत् तू श्रावस्ती नगरी के मध्य मे होता हुआ, झटपट हालाहला कुम्भारिन की दूकान मे आया, 'हे अयपुल ! क्या यह बात सत्य है ?'

(अयपुल—) 'हाँ, सत्य है ।'

(स्थविर—) हे अयपुल ! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मखलिपुत्र गोशालक जो हालाहला कुम्भारिन की दूकान मे आम्रफल हाथ मे लिये हुए यावत् अंजलिकर्म करते हुए विचरते है वह (इसलिए कि) वे भगवान् गोशालक इस सम्बन्ध मे इन आठ चरमो की प्ररूपणा करते है । यथा—चरम पान, यावत् सर्व दुःखो का अन्त करेंगे । हे अयपुल ! जो ये तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मखलिपुत्र गोशालक मिट्टी मिश्रित शीतल पानी से अपने शरीर के अवयवो पर सिंचन करते हुए यावत् विचरते है । इस विषय मे भी वे भगवान् चार पानक और चार अपानक की प्ररूपणा करते हैं । 'वह पानक किस प्रकार का होता है ?' 'पानक चार प्रकार का होता है, यावत् इसके पश्चात् वे सिद्ध होते है, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते है । अत हे अयपुल ! तू जा और अपने इन धर्माचार्य धर्मोपदेशक मखलिपुत्र गोशालक से अपने इस प्रश्न को पूछ ।

१०२. तए णं से अयपुले आजीवियोवासए आजीविएहिं थेरेहिं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

[१०२] आजीविक स्थविरों द्वारा इस प्रकार कहने पर वह अयपुल आजीविकोपासक हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ और वहाँ से उठकर गोशालक मखलिपुत्र के पास जाने लगा।

१०३. तए णं ते आजीविया थेरा गोसालस्स मखलिपुत्तस्स अवकूणगएडावणट्ठयाए एगतमंते संगारं कुव्वंति।

[१०३] तत्पश्चात् उन आजीविक स्थविरों ने उक्त आम्रफल को एकान्त में डालने का गोशालक को संकेत किया।

१०४. तए णं से गोसाले मखलिपुत्ते आजीवियाण थेराण संगारं पडिच्छइ, स० प० अवकूणगं एगतमंते एडेइ।

[१०४] इस पर मखलिपुत्र गोशालक ने आजीविक स्थविरों का संकेत ग्रहण किया और उस आम्रफल को एकान्त में एक ओर डाल दिया।

१०५ तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ गोसालं मंखलिपुत्तं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासति।

[१०५] इसके पश्चात् अयपुल आजीविकोपासक मखलिपुत्र गोशालक के पास आया और मखलिपुत्र गोशालक की तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की, फिर यावत् (वन्दना-नमस्कार करके) पर्युपासना करने लगा।

१०६. 'अयपुला!' ति गोसाले मखलिपुत्ते अयपुलं आजीवियोवासगं एवं वदासि—'से नूणं अयपुला! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव जेणेव मम अंतियं तेणेव हव्वमागए, से नूणं अयंपुला! अट्ठे समट्ठे?'

'हंता, अत्थि'।

तं नो खलु एस अवकूणए, अवचोयए णं एसे। किंसठिया हल्ला पन्नत्ता? वंसीमूलसंठिया हल्ला पण्णत्ता। वीणं वाएहि रे वीरगा!, वीणं वाएहि रे वीरगा!।

[१०६] 'अयपुल!' इस प्रकार सम्बोधन कर मखलिपुत्र गोशालक ने अयपुल आजीविकोपासक से इस प्रकार पूछा—'हे अयपुल! रात्रि के पिछले पहर में यावत् तुझे ऐसा मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ यावत् (इसी के समाधानार्थ) इसी से तू मेरे पास आया है, हे अयपुल! क्या यह बात सत्य है?'

(अयपुल—) हाँ, (भगवन्! यह) सत्य है।

(गोशालक—) (हे अयपुल!) मेरे हाथ में वह आम्र की गुठली नहीं थी, किन्तु आम्रफल की छाल थी। (तुझे यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी कि) हल्ला का आकार कैसा होता है? (अयपुल) हल्ला का आकार बांस के मूल के आकार जैसा होता है। (तत्पश्चात् उन्मादवश गोशालक ने कहा) 'हे वीरो! वीणा बजाओ! वीरो! वीणा बजाओ।'

१०७. तए ण से अयपुले आजीवियोवासए गोसलेण मंखलिपुत्तेणं इमं एयारूवं वागरण वागरिए समाणे हट्ठतुट्ठ० जाव हियए गोसालं मखलिपुत्त वदति नमसति, वं० २ पसिणाइं पुच्छइ, पसि० पु० २ अट्ठाइ परियादीयति, अ० प० २ उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ गोसालं मंखलिपुत्तं वदति नमंसति जाव पडिगए।

[१०७] तत्पश्चात् मखलिपुत्र गोशालक से अपने प्रश्न का इस प्रकार का समाधान पा कर आजीविकोपासक अयपुल अतीव हृष्टतुष्ट हुआ यावत् हृदय मे अत्यन्त आनन्दित हुआ। फिर उसने मखलिपुत्र गोशालक को वन्दना-नमस्कार किया, कई प्रश्न पूछे, अर्थ (समाधान) ग्रहण किया। फिर वह उठा और पुन मखलिपुत्र गोशालक को वन्दना-नमस्कार करके यावत् अपने स्थान पर लौट गया।

विवेचन—प्रस्तुत नौ सूत्रो (९९ से १०७ तक) मे बताया है कि आजीविकोपासक अयपुल की गोशालक के प्रति डगमगाती श्रद्धा को आजीविक स्थविरो ने उसके मन मे उत्पन्न बात बता कर तथा आठ चरम, पानक-अपानक आदि की मान्यता उसके दिमाग मे ठसा कर गोशालक के प्रति श्रद्धा स्थिर कर दी। फलत बुद्धिविमोहित अयपुल को गोशालक ने जो कुछ कहा, वह सब उसने श्रद्धापूर्वक यथार्थ मान लिया।[1]

गोशालक द्वारा सत्य का अपलाप—गोशालक ने अयपुल से कहा—तुमने जो मेरे हाथ मे आम की गुठली देखी थी, वह आम की छाल थी, गुठली नहीं। गुठलो तो व्रती पुरुषो के लिए अकल्पनीय है। किन्तु आम की छाल त्वक् पानक-रूप होने से निर्वाण गमनकाल मे यह अवश्य ग्राह्य होती है। हल्ला के आकार का कथन करते-करते मद्यमद मे विह्वल होकर गोशालक ने जो उद्गार निकाले थे कि 'वीरो! वीणा बजाओ।' किन्तु यह उन्मत्तवत् प्रलाप सुन कर भी अयपुल के मन मे गोशालक के प्रति अविश्वास या अश्रद्धाभाव नही जागा। क्योकि सिद्धि प्राप्त करने वालो के लिए चरम गान आदि दोषरूप नही हैं, इस प्रकार की बात उसके दिमाग मे पहले से ही स्थविरो ने ठसा दी थी। इस कारण उसकी बुद्धि विमोहित हो गई थी।[2]

कठिनशब्दार्थ—**अंबकूणग-एडावणट्ठयाए**—आम्रफल की गुठली को फेंक देने के लिए। **सगार**—सकेत। **एगतमते**—एकान्त मे, एक ओर। **हल्ला**—तृणगोवालिका कीट-विशेष। राजस्थान मे 'बामणी' नाम से प्रसिद्ध।[3] **एहि एतो**—इधर आ।

प्रतिष्ठा-लिप्सावश गोशालक द्वारा शानदार मरणोत्तर क्रिया करने का शिष्यो को निर्देश

१०८. तए ण से गोसाले मखलिपुत्ते अप्पणो मरण आभोएइ, अप्प० आ० २ आजीविए थेरे सद्दावेइ, आ० स० २ एव वदासि—"तुब्भे ण देवाणुप्पिया! ममं कालगयं जाणित्ता सुरभिणा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ७२४-७२५

२ भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा ११, पृ ७१५-७१७

३ वही, भा ११, पृ ७१७ / (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४५२

गधोदएणं ण्हाणेह, सु० ण्हा० २ पम्हलसुकुमालाए गंधकासाईए गायाइ लूहेह, गा० लू० २ सरसेणं गोसीसेण चंदणेणं गायाइं अणुलिंपह, सर० अ० २ महरिह हसलक्खणं पडसाडगं नियसेह, मह० नि० २ सव्वालकारविभूसियं करेह, स० क० २ पुरिससहस्सवाहिणिं सीय दुरूहह, पुरि० दुरू० २ सावत्थीए नगरीए सिंघाडग० जाव पहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एव वदह—'एव खलु देवाणुप्पिया ! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्दं पगासेमाणे विहरित्ता इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसाए तित्थगराणं चरिमतित्थगरे सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे'। इड्ढिसक्कारसमुदएणं मम सरीरगस्स णीहरणं करेह"। तए णं ते आजीविया थेरा गोसालस्स मखलिपुत्तस्स एतमट्ठं विणएण पडिसुणेंति।

[१०८] तदनन्तर मखलिपुत्र गोशालक ने अपना मरण (निकट भविष्य मे) जान कर आजीविक स्थविरो को अपने पास बुलाया और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! मुझे कालधर्म को प्राप्त हुआ जान कर तुम लोग मुझे सुगन्धित गन्धोदक से स्नान कराना, फिर रोएदार कोमल गन्धकाषायिक वस्त्र (तौलिये) मे मेरे शरीर को पोछना, तत्पश्चात् सरस गोशीर्ष चन्दन से मेरे शरीर के अगो पर विलेपन करना। फिर हसवत् श्वेत महामूल्यवान् पटशाटक मुझे पहनाना। उसके बाद मुझे समस्त अलकारो से विभूषित करना। यह सब हो जाने के पश्चात् मुझे हजार पुरुषो से उठाई जाने योग्य शिविका (पालकी) मे बिठाना। शिविकारूढ करके श्रावस्ती नगरी के शृ गाटक यावत् महापथो (राजमार्गो) मे (होकर ले जाते समय) उच्चस्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना—हे देवानुप्रियो ! यह मखलिपुत्र गोशालक जिन, जिनप्रलापी है, यावत् जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरण कर इस अवसर्पिणी काल के चौवीस तीर्थकरो मे मे अन्तिम तीर्थकर हो कर सिद्ध हुआ है, यावत् समस्त दु खो से रहित हुआ है।' इस प्रकार ऋद्धि (ठाठबाठ) और सत्कार के साथ मेरे शरीर का नीहरण करना (बाहर निकालना)।

उन आजीविक स्थविरो ने मखलिपुत्र गोशालक की बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (११०) मे गोशालक द्वारा अपनी मृत्यु निकट जान कर अपने अनुगामी स्थविरो को शरीर सुसज्जित कर धूमधाम से शवयात्रा निकाल कर मरणोत्तरक्रिया करने के दिये गए निर्देश का वर्णन है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**हंसलक्खणं** दो अर्थ—(१) हस जैसा शुक्ल, या (२) हसचिह्नवाला। **नियसेह**—पहनाना। **सीय**—शिविका। **नीहरण**—बाहर निकालना (मरणोत्तरक्रिया)।[2]

सम्यक्त्वप्राप्त गोशालक द्वारा अप्रतिष्ठापूर्वक मरणोत्तर क्रिया करने का शिष्यो को निर्देश

१०९. तए णं तस्स गोसालस्स मखलिपुत्तस्स सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि पडिलद्धसम्मत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'णो खलु अहं जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्दं पगासेमाणे

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ पृ ७२५-७२६

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ३८५

विहरिए, अहं णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघातए समणमारए समणपडिणीए, आयरिय-उवज्झायाण अयसकारए अवण्णकारए अकित्तिकारए बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहि य अप्पाण वा पर वा तदुभयं वा वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहरित्ता, सएण तेएणं अन्नाइट्ठे समाणे अंतोसत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्दं पगासेमाणे विहरति।' एव सपेहेति, एवं स० २ आजीविए थेरे सद्दावेइ, आ० स० २ उच्चावयसवहसाविए करेति, उच्चा० क० २ एवं वदासि—"नो खलु अहं जिणे जिणप्पलावी जाव पकासेमाणे विहरिए, अहं ण गोसाले चेव मखलिपुत्ते समणघातए जाव छउमत्थे चेव काल करेस्स। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्द पगासेमाणे विहरति। तं तुब्भे ण देवाणुप्पिया! ममं कालगय जाणित्ता वामे पाए सुवेण बधह, वामे० ब० २ तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुभह, ति० उ० २ सावत्थीए नगरीए सिंघाडग० जाव पहेसु आकड्ढविकड्ढि करेमाणा महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वदह—'नो खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरिए, एस णं गोसाले चेव मखलिपुत्ते समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगते, समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव विहरति।' महता अणिड्ढिसक्कारसमुदएणं ममं सरीरगस्स नीहरण करेज्जाह"। एवं वदित्ता कालगए।

[१०९] इसके पश्चात् जब सातवी रात्रि व्यतीत हो रही थी, तब मखलिपुत्र गोशालक को सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। उसके साथ ही उसे इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् मनोगत सकल्प समुत्पन्न हुआ—'मैं वास्तव मे जिन नही हूँ, तथापि मैं जिन-प्रलापी (जिन कहता हुआ) यावत् जिन शब्द से स्वय को प्रकट करता हुआ विचरा हूँ। मैं मखलिपुत्र गोशालक श्रमणो का घातक, श्रमणो को मारने वाला, श्रमणो का प्रत्यनीक (विरोधी), आचार्य-उपाध्याय का अपयश करने वाला, अवर्णवादकर्ता और अपकीर्तिकर्ता हूँ। मैं अत्यधिक असद्भावना-पूर्ण मिथ्यात्वाभिनिवेश से, अपने आपको, दूसरो को तथा स्वपर-उभय को व्युद्ग्राहित करता हुआ, व्युत्पादित (मिथ्यात्व-युक्त) करता हुआ विचरा, और फिर अपनी ही तेजोलेश्या से पराभूत होकर, पित्तज्वराक्रान्त तथा दाह से जलता हुआ सात रात्रि के अन्त मे छद्मस्थ अवस्था मे ही काल करूंगा। वस्तुत. श्रमण भगवान् महावीर ही जिन हैं, और जिनप्रलापी हैं यावत् जिन शब्द से स्वय को प्रकट करते है।

(गोशालक ने अन्तिम समय मे) इस प्रकार सम्प्रेक्षण (स्वय का आलोचन) किया। फिर उसने आजीविक स्थविरो को (अपने पास) बुलाया, अनेक प्रकार की शपथो से युक्त (सौगध दिला) करके इस प्रकार कहा—'मैं वास्तव मे जिन नहीं हूँ, फिर भी जिनप्रलापी तथा जिन शब्द से स्वय को प्रकट करता हुआ विचरा। मैं वही मखलिपुत्र गोशालक एव श्रमणो का घातक हूँ, (इत्यादि वर्णन पूर्ववत्) यावत् छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर जाऊंगा। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ही वास्तव मे जिन हैं, जिनप्रलापी हैं, यावत् स्वय को जिन शब्द से प्रकट करते हुए विहार करते हैं। अत: हे देवानुप्रियो! मुझे कालधर्म को प्राप्त जान कर मेरे बाए पैर को मूज की रस्सी से बाधना और तीन बार मेरे मुह मे थूकना। तदनन्तर शृगाटक यावत् राजमार्गों मे इधर-उधर घसीटते हुए उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना—"देवानुप्रियो! मखलिपुत्र गोशालक 'जिन' नही है, किन्तु वह जिनप्रलापी यावत् जिन शब्द से स्वय को प्रकाशित करता हुआ विचरा है। यह श्रमणो का घात

करने वाला मखलिपुत्र गोशालक है, यावत् छद्मस्थ अवस्था मे ही काल-धर्म को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ही वास्तव मे जिन हैं, जिनप्रलापी है यावत् जिन शब्द का प्रकाश करते हुए विचरते हैं।' इस प्रकार महती अऋद्धि (बडी विडम्बना और असत्कार (असम्मान) पूर्वक मेरे मृत शरीर का नीहरण (बाहर निष्क्रमण) करना, यो कहकर गोशालक कालधर्म को प्राप्त हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (१०९) मे गोशालक को मरण की अन्तिम (सातवी) रात्रि मे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और उसने अपनी अर्जित प्रतिष्ठा एव मानापमान की परवाह न करते हुए आजीविक स्थविरो के समक्ष अपनी वास्तविकता प्रकट करके तदनुसार अप्रतिष्ठापूर्वक मरणोत्तर क्रिया करने का किया गया निर्देश अंकित है।

ऐसी सद्बुद्धि पहले क्यो नहीं, पीछे क्यो ?—गोशालक को भगवान् महावीर के पास रहते हुए तथा शिष्य कहलाने के बावजूद भी ऐसी सद्बुद्धि पहले नही आई, उसका कारण घोर मिथ्यात्व-मोह का उदय था। फलत मिथ्यात्वरूपी भयकर शत्रु के कारण ही पूर्वोक्त स्थिति हो गई थी। जब सम्यक्त्वरत्न प्राप्त हुआ, तब सारी स्थिति ही पूर्णतया पलट गई। आजीविक स्थविरो के समक्ष उसने अब वास्तविक स्थिति प्रकट कर दी। यदि आयुष्य की स्थिति कुछ अधिक होती तो निश्चित ही वह भगवान् महावीर के चरणो मे गिर कर सच्चे अन्तःकरण से क्षमायाचना करता और आलोचना-प्रायश्चित्त ग्रहण कर शुद्ध होता।[1]

कठिन शब्दार्थ—उच्चावय-सवह-साविए—अनेक प्रकार के शपथो से युक्त (शापित)। सु वेण—मू ज या छाल की रस्सी मे। उट्ठुभह—थूकना। आकड्ढ-विकड्ढि—इधर-उधर घसीटते हुए।[2]

आजीविक स्थविरो द्वारा अप्रतिष्ठापूर्वक गुप्त मरणोत्तरक्रिया करके प्रकट में प्रतिष्ठा-पूर्वक मरणोत्तरक्रिया

११०. तए ण ते आजीविया थेरा गोसाल मखलिपुत्त कालगय जाणित्ता हालाहलाए कुंभकारीए कु भकारावणस्स दुवाराइ पिहेंति, दु० पि० २ हालाहलाए कु भकारीए कु भकारावणस्स बहुमज्झदेसभाए सावत्थि नगरिं आलिहंति, सा० आ० २ गोसालस्स मखलिपुत्तस्स सरीरग वामे पाए सु वेण बंधति, वा० बं० २ तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुहंति, ति० उ० २ सावत्थीए नगरीए सिंघाडग० जाव पहेसु आकड्ढविकड्ढि करेमाणा णीय णीयं सद्दे णं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एव वयासि—'नो खलु देवाणुप्पिया ! गोसाले मखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरिए, एस ण गोसाले चेव मखलिपुत्ते समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगते, समणे भगव महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ'। सवहपडिमोक्खणग करेंति, सवहपडिमोक्खणग करेत्ता दोच्च पि पूयासक्कारथिरीकरणट्ठयाए गोसालस्स मखलिपुत्तस्स वामाओ पादाओ सु ब मुयति, सु ब मु० २ हालाहलाए कु भकारीए कु भकारावणस्स दुवारवयणाइ अवगुणति, अव० २ गोसालस्स मखलिपुत्तस्स सरीरग सुरभिणा गधोदएणं ण्हाणेंति, त चेव जाव महया इड्ढिसक्कारसमुदएण गोसालस्स मखलिपुत्तस्स सरीरगस्स नीहरण करेंति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ पृ ७२५-७२६

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ३८५

[११०] तदनन्तर उन आजीविक स्थविरो ने मखलिपुत्र गोशालक को कालधर्म-प्राप्त हुआ जानकर हालाहला कुम्भारिन की दुकान के द्वार बन्द कर दिये। फिर हालाहला कुम्भारिन की दुकान के ठीक बीचो बीच (जमीन पर) श्रावस्ती नगरी का चित्र बनाया। फिर मखलिपुत्र गोशालक के बाएँ पैर को मूज की रस्सी से बाँधा। तीन बार उसके मुख मे थूका। फिर उक्त चित्रित की हुई श्रावस्ती नगरी के शृगाटक यावत् राजमार्गों पर (उसके शव को) इधर-उधर घसीटते हुए मन्द-मन्द स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे देवानुप्रियो ! मखलिपुत्र गोशालक जिन नही, किन्तु जिनप्रलापी होकर यावत् विचरा है। यह मखलिपुत्र गोशालक श्रमणघातक है, (जो) यावत् छद्मस्थ अवस्था मे ही कालधर्म को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वास्तव मे जिन है, जिनप्रलापी है यावत् विचरते है।' इस प्रकार (औपचारिक रूप से शपथ का पालन करके वे स्थविर गोशालक द्वारा दिलाई गई) शपथ से मुक्त हुए। इसके पश्चात् मखलिपुत्र गोशालक के प्रति (जनता की) पूजा-सत्कार (की भावना) को स्थिरीकरण करने के लिए मखलिपुत्र गोशालक के बाएँ पैर मे बधी मूज की रस्सी खोल दी और हालाहला कुभारिन की दूकान के द्वार भी खोल दिये। फिर मखलिपुत्र गोशालक के मृत शरीर को सुगन्धित गन्धोदक से नहलाया, इत्यादि पूर्वोक्त वर्णनानुसार यावत् महान् ऋद्धि-सत्कार-समुदाय (बडे ठाठबाठ) के साथ मखलिपुत्र गोशालक के मृत शरीर का निष्क्रमण किया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (११०) मे गोशालक के द्वारा अप्रतिष्ठापूर्वक अपनी मरणोत्तरक्रिया करने की दिलाई हुई शपथ का स्थविरो द्वारा कल्पित औपचारिकरूप से पालन किये जाने तथा पूर्वोक्त रूप से ही ऋद्धिसत्कारपूर्वक मरणोत्तरक्रिया किये जाने का वृत्तान्त प्रतिपादित है।

कठिन शब्दार्थ—**पिहेंति**—बद किये। **आलिहंति**—चित्रित की। **सुंबेण**—मूज की रस्सी से। **णीयणीय सद्दे ण**—मन्द-मन्द स्वर से। **सवहपडिमोक्खणगं**—दिलाई हुई शपथ से मुक्ति (छुटकारा) **अवगुणति**— खोले।[1]

पूयासक्कार-थिरीकरणट्ठयाए आशय—पूर्व प्राप्त पूजा-सत्कार की स्थिरता के हेतु। स्थविरो का आशय यह था कि यदि हम गोशालक के मृत शरीर की विशिष्ट पूजा-प्रतिष्ठा नही करेंगे तो लोग समझेंगे कि गोशालक न तो 'जिन' हुआ और न ये स्थविर 'जिन' शिष्य है, इस प्रकार पूजासत्कार अस्थिर (ठप्प) हो जाएँगे, इस दृष्टि से पूजा सत्कार को लोकमानस मे स्थिर रखने के लिए स्थविरो ने गोशालक के शव की ठाठबाठ से उत्तरक्रिया की।[2]

भगवान् का मेढिकग्राम मे पदार्पण, वहाँ रोगाक्रान्त होने से लोकप्रवाद

१११. तए ण समणे भगव महावीरे अन्नदा कदायि सावत्थीओ नगरीओ कोट्ठयाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ बहिया जणवयविहार विहरति।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति पत्र ६८५
   (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ २४६१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६८५

[१११] तदनन्तर किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकले और उससे बाहर अन्य जनपदो मे विचरण करने लगे।

११२. तेण कालेणं तेण समएण मेढियग्गामे नाम नगरे होत्था। वण्णओ। तस्स ण मेढियग्गामस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ ण सालकोट्ठए[1] नाम चेतिए होत्था। वण्णओ। जाव पुढविसिलापट्टओ। तस्स ण सालकोट्ठगस्स चेतियस्स अदूरसामते एत्थ ण महेगे मालुयाकच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासे जाव निकुरुवभूए पत्तिए पुप्फिए फलिए हरियगरेरिज्ज-माणे सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठति।

[११२] उस काल उस समय मेढिकग्राम नामक नगर था। (उसका) वर्णन (पूर्ववत्)। उस मेढिकग्राम नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा मे शालकोष्ठक नामक उद्यान था। उसका वर्णन पूर्ववत् यावत् (वहाँ एक) पृथ्वी-शिलापट्टक था, (तक) करना चाहिए। उस शालकोष्ठक उद्यान के निकट एक महान् मालुकाकच्छ था। वह श्याम, श्याम प्रभा वाला, यावत् महामेघ के समान था, पत्रित, पुष्पित, फलित और हरियाली से अत्यन्त लहलहाता हुआ, वनश्री से अतीव शोभायमान रहता था।

११३. तत्थ ण मेढिग्गामे नगरे रेवती नाम गाहावतिणी परिवसति अड्ढा जाव अपरिभूया।

[११३] उस मेढिकग्राम नगर मे रेवती नाम की गाथापत्नी रहती थी। वह आढ्य यावत् अपराभूत थी।

११४. तए ण समणे भगवं महावीरे अन्नदा कदायि पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे जाव जेणेव मेढियग्गामे नगरे जेणेव सालकोट्ठए चेतिए जाव परिसा पडिगया।

[११४] किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी क्रमश विचरण करते हुए मेढिकग्राम नामक नगर के बाहर, जहाँ शालकोष्ठक उद्यान था, वहाँ पधारे, यावत् परिषद् वन्दना करके लौट गई।

११५. तए ण समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगसि विपुले रोगायके पाउब्भूते उज्जले जाव दुरहियासे। पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतिए यावि विहरति। अवि याऽऽइ लोहियवच्चाइं पि पकरेति। चाउव्वण्ण च ण वागरेति—'एव खलु समणे भगव महावीरे गोसालस्स मखलिपुत्तस्स तवेण तेएण अन्नाइट्ठे समाणे अतो छण्ह मासाण पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतिए छउमत्थे चेव काल करेस्सति।

[११५] उस समय श्रमण भगवान् महावीर के शरीर मे महापीडाकारी व्याधि उत्पन्न हुई, जो उज्ज्वल (अत्यन्त दाहकारी) यावत् दुरधिसह्य (दु सह) थी। उसने पित्तज्वर से सारे शरीर को व्याप्त कर लिया था, और (उसके कारण) शरीर मे अत्यन्त दाह होने लगी। तथा (इस रोग के प्रभाव से) उन्हे रक्त-युक्त दस्तें भी लगने लगी। भगवान् के शरीर की ऐसी स्थिति जान कर चारो वर्ण के लोग इस प्रकार कहने लगे—(सुनते है कि) श्रमण भगवान् महावीर मखलिपुत्र गोशालक की

१. पाठान्तर—'साणकोट्ठए'

तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्तज्वर एव दाह से पीडित होकर छह मास के अन्दर छद्मस्थ-अवस्था मे ही मृत्यु प्राप्त करेगे ।

विवेचन—प्रस्तुत पाँच सूत्रो (१११ से ११५) मे भगवान् महावीर के जीवन मे सम्बन्धित पाच बातो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है—

(१) श्रमण भगवान् महावीर का श्रावस्ती मे अन्य जनपदो मे विहार ।

(२) मेढिकग्राम नगर, शालकोष्ठक, यावत् पृथ्वीशिलापट्टक एव मालुकाकच्छ का परिचय ।

(३) मेढिकग्राम नगरवासी रेवती गाथापत्नी का परिचय ।

(४) भगवान् का मेढिकग्राम मे पदार्पण, परिषद् द्वारा धर्मश्रवण ।

(५) इसी बीच भगवान् के शरीर मे पित्तज्वर का भयकर प्रकोप हुआ, जिससे सारे शरीर मे दाह एव खून की दस्ते होने लगी । चतुर्वर्णीय-जनता में यह अफवाह फैल गई कि भगवान् महावीर गोशालक द्वारा फेंकी हुई तेजोलेश्या के प्रभाव मे पित्तज्वराक्रान्त एव दाहपीडित होकर छह मास के अन्दर मे छद्मस्थ-अवस्था मे ही मर जाएँगे ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—**मालुयाकच्छए**—एक गुठली वाले वृक्षविशेषो का कच्छ—गहन वन । **विउले**—विपुल, शरीरव्यापी । **रोगायके**—रोगातक—पीडाकारी व्याधि । **उज्जले**—उज्ज्वल—तीव्र । **पाउब्भूए**—प्रकट हुआ । **दुरहियासे**—दु सह । **दाहवक्कंतिए**—दाह की उत्पत्ति मे । **लोहिय-वच्चाइ**—खून की दस्तें । **चाउव्वण्णं**—ब्राह्मणादि चार वर्ण, अथवा साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विधसघ (चातुर्वर्ण्य श्रमणसंघ) ।[2]

अफवाह सुनकर सिंह अनगार को शोक, भगवान् द्वारा सन्देश पा कर सिंह अनगार का उनके पास आगमन

११६. तेण कालेणं तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतेवासी सीहे नामं अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामते छट्ठछट्ठेण अनिखित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहा० जाव विहरति ।

[११६] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के एक अन्तेवासी सिंह नामक अनगार थे, जो प्रकृति मे भद्र यावत् विनीत थे । वे मालुकाकच्छ के निकट निरन्तर (लगातार) छठ-छठ (बेले-बेले) तपश्चरण के साथ अपनी दोनो भुजाएँ ऊपर उठा कर यावत् आतापना लेते थे ।

११७ तए ण तस्स सीहस्स अणगारस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स भगवतो महावीरस्स सरीरगंसि विपुले रोगायंके पाउब्भूते उज्जले जाव छउमत्थे चेव कालं करिस्सति, वदिस्संति य णं अन्नतित्थिया

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा २ पृ ७२७-७२८

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९०

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २४६३

'छउमत्थे चेव कालगए' इमेण एयारूवेणं महया मणोमाणसिएण दुक्खेण अभिभूए समाणे आयावण-भूमीओ पच्चोरुभति, आया० प० २ जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ मालुयाकच्छयं अतो अतो अणुप्पविसति, मा० अणु० २ महया महया सद्देण कुहुकुहुस्स परुन्ने' ।

[११७] उस समय की बात है, जब सिंह अनगार ध्यानान्तरिका मे (एक ध्यान को समाप्त कर दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने मे) प्रवृत्त हो रहे थे, तभी उन्हे इस प्रकार का आत्मगत यावत् चिन्तन उत्पन्न हुआ—मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के शरीर मे विपुल (शरीर-व्यापी) रोगातक प्रकट हुआ, जो अत्यन्त दाहजनक (उज्ज्वल) है, इत्यादि, यावत् वे छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर जाएँगे। तब अन्यतीर्थिक कहेगे—'वे छद्मस्थ अवस्था मे ही कालधर्म को प्राप्त हो गए।'

इस प्रकार के इस महामानसिक मनोगत दु ख से पीडित बने हुए सिंह अनगार आतापनाभूमि से नीचे उतरे। फिर वे मालुकाकच्छ मे आए और उसके अदर प्रविष्ट हो गए। फिर वे जोर-जोर से रोने लगे।

११८. 'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे समणे निग्गथे आमतेति, आमतेत्ता एव वदासि—'एव खलु अज्जो ! मम अतेवासी सीहे नाम अणगारे पगतिभद्दए०, त चेव सव्व भाणियव्वं जाव परुन्ने। तं गच्छह णं अज्जो ! तुब्भे सीहं अणगार सद्दह।

[११८] (उस समय) 'आर्यो !' इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित करके यो कहा—'हे आर्यो ! आज मेरा अन्तेवासी (शिष्य) प्रकृतिभद्र यावत् विनीत सिंह नामक अनगार, इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् कहना, यावत् अत्यन्त जोर-जोर से रो रहा है।' इसलिए, हे आर्यो ! तुम जाओ और सिंह अनगार को यहाँ बुला लाओ।

११९. तए ण ते समणा निग्गंथा समणेण भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगव महावीर वदति नमसति, व० २ समणस्स भगवतो महावीरस्स अतियातो सालकोट्ठयातो चेतियातो पडिनिक्खमति, सा० प० २ जेणेव मालुयाकच्छए, जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छंति, उवा० २ सीहं अणगार एव वयासी—'सीहा ! धम्मायरिया सद्दावेंति'।

[११९] श्रमण भगवान् महावीर ने जब उन श्रमणनिर्ग्रन्थो से इस प्रकार कहा, तो उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया। फिर भगवान् महावीर के पास से शालकोष्ठक उद्यान से निकल कर, वे मालुकाकच्छवन मे, जहाँ सिंह अनगार थे, वहाँ आए और सिंह अनगार से कहा—हे सिंह ! धर्माचार्य तुम्हे बुलाते हैं।'

१२०. तए ण से सीहे अणगारे समणेहिं निग्गथेहिं सद्धि मालुयाकच्छगाओ पडिनिक्खमति, प० २ जेणेव सालकोट्ठए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवा० समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण० जाव पज्जुवासति।

[१२०] तब सिंह अनगार उन श्रमण-निर्ग्रन्थो के साथ मालुकाकच्छ से निकल कर शाल-

कोष्ठक उद्यान मे, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आए और श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करके यावत् पर्युपासना करने लगे ।

विवेचन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ११६ से १२०) मे सिंह अनगार से सम्वन्धित पाच वातो का निरूपण है—

(१) मालुकाकच्छ के निकट आतापनासहित छठ-छठ तप करने वाले भ महावीर के शिष्य सिंह अनगार थे ।

(२) भगवान् की छाद्मस्थिक अवस्था मे मृत्यु हो जाएगी, यह वात सुन कर मनोदु.खपूर्वक सिंह अनगार का अत्यन्त रुदन ।

(३) श्रमणनिग्रन्थो को सिंह अनगार को वुला लाने का भगवान् का आदेश ।

(४) सिंह अनगार के पास जा कर निर्ग्रन्थो ने भगवान् का सन्देश सुनाया ।

(५) श्रमणो के साथ सिंह अनगार का भगवान् के समीप आगमन, वन्दन-नमन पर्युपासना ।[1]

कठिन-शब्दार्थ—**झाणतरियाए**—ध्यानान्तरिका—एक ध्यान की समाप्ति और दूसरे ध्यान का प्रारम्भ होने से पूर्व । **कुहुकुहुस्स परुन्ने**—कुहुकुहुशब्दपूर्वक (हृदय मे दु ख न समाने से सिसक-सिसक कर) रोए । **मणो-माणसिएण दुक्खेण**—मनोगत मानसिक दु ख से, अर्थात्-जो दु ख वचन आदि द्वारा अप्रकाशित होने से मन मे ही रहे उस दु ख से । **सद्दह**—वुला लाओ ।[2]

१२१. 'सीहा !' दि समणे भगवं महावीरे सीहं अणगारं एव वयासि—'से नूणं ते सीहा ! झाणतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे जाव परुन्ने । से नूणं ते सीहा ! अट्ठे समट्ठे ?' हंता, अत्थि ! 'तं नो खलु अहं सीहा ! गोसालस्स मखलिपुत्तस्स तवेण तेयेण अन्नाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं जाव काल करेस्स । अहं ण अन्नाइ अद्धसोलस वासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि । तं गच्छ णं तुमं सीहा ! मेढियगामं नगरं रेवतीए गाहावतिणीए गिहं, तत्थ णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो, अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमसए तमाहराहि, तेण अट्ठो' ।

[१२१] हे सिंह ! इस प्रकार सम्वोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने सिंह अनगार मे इस प्रकार कहा—'हे सिंह ! ध्यानान्तरिका मे प्रवृत्त होते हुए तुम्हे इस प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हुई यावत् तुम फूट फूट कर रोने लगे, तो हे सिंह ! क्या यह बात सत्य है ?'

(सिंह का उत्तर—) 'हाँ, भगवन् ! सत्य है ।'

(भगवान् सिंह अनगार को आश्वासन देते हुए—) हे सिंह ! मखलिपुत्र गोशालक के तपतेज द्वारा पराभूत होकर मैं छह मास के अन्दर, यावत् (हर्गिज) काल नही करूगा । मैं साढे पन्द्रह

१ विग्राहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा. २ पृ ७२८-७२९

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९०

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४६४

वर्ष तक गन्धहस्ती के समान जिन (तीर्थंकर) रूप मे विचरूंगा। (यद्यपि मेरा शरीर पित्तज्वराक्रान्त है, मैं दाह की उत्पत्ति से पीडित हूँ, अत मेरे मरण की चिन्ता से मुक्त होकर) हे सिंह! तुम मेढिकग्राम नगर मे रेवती गाथापत्नी के घर जाओ और वहाँ रेवती गाथापत्नी ने मेरे लिए कोहले के दो फल सस्कारित करके तैयार किये है, उनमे मुझे प्रयोजन नही है, अर्थात् वे मेरे लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु उसके यहाँ मार्जार नामक वायु को शान्त करने के लिए जो बिजौरापाक कल का तैयार किया हुआ है, उसे ले आओ। उसी से मुझे प्रयोजन है।

१२२ तए ण से सीहे अणगारे समणेण भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० जाव हियए समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ अतुरियमचवलमसभत मुहपोत्तिय पडिलेहेति, मु० प० २ जहा गोयमसामी (स० २ उ० ५ सु० २२) जाव जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ समणस्स भगवतो महावीरस्स अतियातो सालकोट्ठयाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ अतुरिय जाव जेणेव मेढियग्गामे नगरे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ मेढियग्गाम नगरं मज्झमज्झेणं जेणेव रेवतीए गाहावतिणीए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ रेवतीए गाहावतिणीए गिह अणुप्पविट्ठे।

[१२२] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा इस प्रकार का आदेश पाकर सिंह अनगार हर्षित सन्तुष्ट यावत् हृदय मे प्रफुल्लित हुए और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया, फिर त्वरा, चपलता और उतावली से रहित हो कर मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया (शतक २ उ ५ सू २२ मे उक्त कथन के अनुसार) गौतम स्वामी की तरह भगवान् महावीर स्वामी के पास आए, वन्दना-नमस्कार करके शालकोष्ठक उद्यान से निकले। फिर त्वरा, चपलता और शीघ्रता रहित यावत् मेढिकग्राम नगर के मध्य भाग मे हो कर रेवती गाथापत्नी के घर की ओर चले और उसके घर मे प्रवेश किया।

१२३. तए ण सा रेवती गाहावतिणी सीह अणगार एज्जमाण पासति, पा० हट्ठतुट्ठ० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेति, खि० आ० २ सीह अणगार सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, स० अणु० २ तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेति, क० २ वदति नमसति, व० २ एव वयासी—सदिसतु णं देवाणुप्पिया! किमागमणप्पओयण? तए ण से सीहे अणगारे रेवतिं गाहावतिणि एव वयासि—एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए! समणस्स भगवतो महावीरस्स अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठे, अत्थि ते अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि, तेण अट्ठो।

[१२३] तदनन्तर रेवती गाथापत्नी ने सिंह अनगार को ज्यो ही आते देखा, त्यो ही हर्षित एव सन्तुष्ट होकर शीघ्र अपने आसन से उठी। सिंह अनगार के समक्ष सात-आठ कदम गई और तीन बार दाहिनी ओर मे प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली—'देवानुप्रिय! कहिये, किस प्रयोजन से आपका पधारना हुआ?'

तब सिंह अनगार ने रेवती गाथापत्नी से कहा—हे देवानुप्रिये! श्रमण भगवान् महावीर के लिए तुमने जो कोहले के दो फल सस्कारित करके तैयार किये हैं, उनसे प्रयोजन नही है, किन्तु

मार्जार नामक वायु को शान्त करने वाला बिजौरापाक, जो कल का बनाया हुआ है, वह मुझे दो, उसी से प्रयोजन है।'

१२४. तए ण सा रेवती गाहावतिणी सीह अणगार एव वदासि—केस ण सीहा ! से णाणी वा तवस्सी वा जेण तव एस अट्ठे मम आतरहस्सकडे हव्वमक्खाए जतो ण तुम जाणासि ? एवं जहा खदए (स० २ उ० १ सु० २० [२]) जाव जतो ण अह जाणामि।

[१२४] इस पर रेवती गाथापत्नी ने सिंह अनगार से कहा—हे सिंह अनगार ! ऐसे कौन ज्ञानी अथवा तपस्वी है, जिन्होने मेरे अन्तर की यह रहस्यमय वात जान ली और आप से कह दी, जिससे कि आप यह जानते है ?' सिंह अनगार से (शतक २ उ १ सू २०/२ मे उक्त) स्कन्दक के वर्णन के समान (कहा—) यावत्—'भगवान् के कहने से मैं जानता हूँ।'

१२५. तए ण सा रेवती गाहावतिणी सीहस्स अणगारस्स अंतिय एतमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ पत्त मोएति, पत्त मो० २ जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ सीहस्स अणगारस्स पडिग्गहगंसि त सव्व सम्म निसिरति।

[१२५] तब सिह अनगार से यह वात सुन कर एव अवधारण करके वह रेवती गाथापत्नी हर्षित एव सन्तुष्ट हुई। फिर जहाँ रसोईघर था, वहाँ गई और (बिजौरापाक वाला) वर्तन खोला। फिर उस बर्तन को लेकर सिह अनगार के पास आई और सिंह अनगार के पात्र मे वह सारा पाक सम्यक् प्रकार से डाल (बहरा) दिया।

१२६. तए णं तीए रेवतीए गाहावतिणीए तेण दव्वसुद्धेण जाव दाणेण सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे जहा विजयस्स (सु० २६) जाव जम्मजीवियफले रेवतीए गाहा-वतिणीए, रेवतीए गाहावतिणीए।

[१२६] रेवती गाथापत्नी ने उस द्रव्यशुद्धि, दाता की शुद्धि एव पात्र (आदाता) की शुद्धि से युक्त, यावत्-प्रशस्त भावो से दिये गए दान से सिह अनगार को प्रतिलाभित करने से देवायु का बन्ध किया। यावत् इसी शतक मे कथित विजय गाथापति के समान रेवती के लिए भी ऐसी उद्घोषणा हुई—'रेवती गाथापत्नी ने जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया, रेवती गाथापत्नी ने जन्म और जीवन सफल कर लिया।'

१२७. तए ण से सीहे अणगारे रेवतीए गाहावतिणीए गिहाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ मेढियग्गाम नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छति, नि० २ जहा गोयमसामी (स० २ उ० ५ सु० २५ [१]) जाव भत्तपाण पडिदसेति, भ० प० २ समणस्स भगवतो महावीरस्स पाणिसि त सव्व सम्म निसिरति।

[१२७] इसके पश्चात् वे सिंह अनगार, रेवती गाथापत्नी के घर से निकले और मेढिकग्राम नगर के मध्य मे से होते हुए भगवान् के पास पहुँचे और (श २ उ. ५ सू २५-१ मे कथितानुसार) गौतमस्वामी के समान यावत् (लाया हुआ) आहारपानी दिखाया। फिर वह सब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के हाथ मे सम्यक् प्रकार से रख (दे) दिया।

१२८. तए णं समणे भगवं महावीरे अमुच्छिए जाव अणज्झोववन्ने बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ। तए णं समणस्स भगवतो महावीरस्स तमाहारं आहारियस्स समाणस्स से विपुले रोगायंके खिप्पामेव उवसंते हट्ठे जाए अरोए बलियसरीरे। तुट्ठा समणा, तुट्ठाओ समणीओ, तुट्ठा सावगा, तुट्ठाओ सावियाओ, तुट्ठा देवा, तुट्ठाओ देवीओ सदेवमणुयासुरे लोए तुट्ठे हट्ठे जाए—'समणे भगवं महावीरे हट्ठे, समणे भगवं महावीरे हट्ठे'।

[१२८] तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अमूर्च्छित (अनासक्त) यावत् लालसारहित (भाव से) बिल में सर्प-प्रवेश के समान उस (औषधरूप) आहार को शरीररूपी कोठे में डाल दिया। वह (औषधरूप) आहार करने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वह महापीडाकारी रोगातंक शीघ्र ही शान्त हो गया। वे हृष्टपुष्ट, रोगरहित और शरीर में बलिष्ठ हो गए। इससे सभी श्रमण तुष्ट (प्रसन्न) हुए, श्रमणियाँ तुष्ट हुईं, श्रावक तुष्ट हुए, श्राविकाएँ तुष्ट हुईं, देव तुष्ट हुए, देवियाँ तुष्ट हुईं, और देव, मनुष्य एवं असुरों सहित समग्र लोक तुष्ट एवं हर्षित हो गया। (कहने लगे—) 'श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हुए, श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हुए।'

विवेचन—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. १२१ से १२८ तक) में रेवती गाथापत्नी के यहाँ बने हुए बिजौरापाक को सिंह अनगार द्वारा लाने और भगवान् के द्वारा उसका सेवन करने से स्वस्थ एवं रोगमुक्त होने का तथा श्रमणादि समग्र लोक के प्रसन्न होने का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है।

शंका : समाधान—प्रस्तुत प्रकरण में आगत **'दुवे कवोयसरीरा'** तथा **'मज्जारकडए कुक्कुडमंसए'** ये मूलपाठ विवादास्पद हैं। जैन तीर्थंकरों एवं श्रमण-श्रावकवर्ग की मौलिक मर्यादाओं तथा आगम-रहस्यों से अनभिज्ञ लोग इस पाठ का मांसपरक अर्थ करके भगवान् महावीर पर मांसाहारी होने का आक्षेप करते हैं। परन्तु यह उनकी भ्रान्ति है। क्योंकि एक तो ऐसा आहार तीर्थंकर या साधुवर्ग के लिए तो क्या, सामान्य मार्गानुसारी गृहस्थ के लिए भी हर परिस्थिति में वर्जित है। दूसरे, खून की दस्तों को बंद करने एवं संग्रहणी रोग तथा वात-पित्तशमन के लिए मांसाहार कथमपि पथ्य नहीं है।[1] यही कारण है कि इनके अर्थ 'निघण्टु' आदि कोषों में वनस्पति-परक मिलते हैं,[2] वृत्तिकार ने भी वनस्पतिपरक अर्थ से इसकी संगति की है। **कवोयसरीरा : दो अर्थ**—(१) कपोत—

---

१ (क) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा. ११, पृ. ७७८
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २४६९
(ग) नरकगति के ४ कारण के लिए देखो—स्थानांग स्था. ४ '... कुणिमाहारेण।'

२ (क) पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डम्। —सुश्रुतसंहिता
(ख) 'कूष्माण्डं शीतलं वृष्यं' —कैयदेवनिघण्टु
(ग) 'पारावतं सुमधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत्।'—सुश्रुतसंहिता
(घ) स्थानांग सूत्र, स्थान ९, सू. ३, वृत्ति
(ङ) 'वत्थुल-पोरग-मज्जार-पोइवल्लीय-पालक्का।''—प्रज्ञापनापद १
(च) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ६९१
(छ) रेवतीदानसमालोचना

कबूतर पक्षी के वर्ण के समान फल भी कपोत—कूष्माण्ड (कोहला), छोटा कपोत-कपोतक (छोटा कोहला), तद्रूप शरीर—वनस्पतिजीव-देह होने से कपोतकशरीर, अथवा (२) कपोत शरीर की तरह धूसरवर्ण की सदृशता होने से कपोतकफल यानी कूष्माण्ड फल, अर्थात् सस्कृत किये हुए कपोत-(कूष्माण्डफल)। **मज्जारकडएकुक्कुडमंसए**—दो अर्थ—(१) मार्जार नामक उदरवायु विशेष, उसका उपशमन करने के लिए कृत—सस्कृत—मार्जारकृत, अथवा (२) मार्जार अर्थात्—विरालिका नामक वनस्पतिविशेष उससे कृत—भावित। कुर्कुटमासक अर्थात्—विजौरापाक (बीजपूरककटाह)। प्रस्तुत प्रकरण मे रेवती गाथापत्नी के यहाँ से भगवान् ने कोहलापाक न लाने तथा विजौरापाक लाने का आदेश क्यो दिया? इसका समाधान वृत्तिकार यो करते है कि भगवान् ने केवलज्ञान से जान लिया कि कोहलापाक रेवती गाथापत्नी ने मेरे लिए बना कर तैयार किया है। इसलिए वह औद्देशिक-दोषयुक्त होने से भगवान् ने उसे लाने का निषेध कर दिया, किन्तु जो दूसरा बीजौरापाक था, वह उसके यहाँ स्वाभाविक रूप से अपने घर के लिए बनाया गया था, वह निर्दोप था, अत वह ग्रहण करने योग्य समझ कर लाने का आदेश दिया था। यही कारण है कि पहले के लिए **'तेहिं नो अट्ठे'** और पिछले के लिए **'आहराहि तेण अट्ठो'** शब्दो का प्रयोग किया है।[1]

इसके विशेष स्पष्टीकरण के लिए पाठक **'रेवती-दान-समालोचना'** (स्व शतावधानी प. मुनि श्री रत्नचन्द्रजी म द्वारा लिखित) देखे।

कठिनशब्दार्थ —अतुरियमचवलमसंभतं—त्वरा (शीघ्रता), चपलता और सम्भ्राति (हडबडी) से रहित। **पत्तग मोएति**—पात्रक—कटोरदान को खोला या छीके से उतारा। **बिलमिव पन्नगभूएणं**—सर्प जैसे सीधा बिल मे घुस जाता है, उसी प्रकार स्वय (भ महावीर) ने वह आहार स्वाद का आनन्द न लेते हुए मुख मे डाला। **किमागमणप्पओयणं**—आपके पधारने का क्या प्रयोजन है? रहस्सवडे—गुप्त बात। **सव्वं सम्म णिस्सिरइ**—सारा पाक सम्यक् प्रकार से पात्र मे डाल दिया। **णिबद्धे**—बाध लिया। **हट्ठे**—हृष्ट—व्याधिरहित। **अरोगे**—नीरोग—पीडारहित।[2]

१२९. 'भंते!' त्ति भगव गोयमे समणं भगवं महावीरं वदति नमसति, वं० २ एवं वदासी—एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नाम अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए, से ण भते! तदा गोसालेण मंखलिपुत्तेणं तवेण तेयेण भासरासीकए समाणे कहिं गए, कहि उववन्ने?

एवं खलु गोयमा! ममं अतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नाम अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए से णं तदा गोसालेणं मखलिपुत्तेण तवेणं तेएण भासरासीकए समाणे उड्ढं चदिमसूरिय जाव बंभ-लतक-महासुक्के कप्पे वीतीवइत्ता सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ ण अत्थेगतियाण देवाण अट्ठारस सागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता, तत्थ णं सव्वाणुभूतिस्स वि देवस्स अट्ठारस सागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता। से ण भते! सव्वाणुभूती देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएणं ठितिक्खएण जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति।

---

१ (क) स्यान्मातुलुङ्ग 'कफवातहन्ता।' —सुश्रुतसहिता
(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा ११, पृ ७७९ से ७९३ तक

२ (क) भगवती अ वृत्ति पत्र ६९१, (ख) भग हिन्दीविवेचन भा ५, पृ २४६८

[१२९ प्र] 'भगवन् !' इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! देवानुप्रिय का अन्तेवासी पूर्वदेश मे उत्पन्न सर्वानुभूति नामक अनगार, जो कि प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था, और जिसे मखलिपुत्र गोशालक ने अपने तप-तेज से (जला कर) भस्म कर दिया था, वह मर कर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?'

[१२९ उ] हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी पूर्वदेशोत्पन्न सर्वानुभूति अनगार, जो कि प्रकृति से भद्र, यावत् विनीत था, जिसे उस समय मखलिपुत्र गोशालक ने अपने तप-तेज से जला कर भस्मसात् कर दिया था, ऊपर चन्द्र और सूर्य का यावत् ब्रह्मलोक, लान्तक और महाशुक्रकल्प का अतिक्रमण कर सहस्रारकल्प मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ है । वहाँ के कई देवो की स्थिति अठारह सागरोपम की कही गई है । सर्वानुभूति देव की स्थिति भी अठारह सागरोपम की है । वह सर्वानुभूति देव उस देवलोक से आयुष्यक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर यावत् महाविदेह वर्ष (क्षेत्र) मे (जन्म लेकर) सिद्ध होगा यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा ।

सुनक्षत्र अनगार की भावी गति-उत्पत्तिसम्बन्धी निरूपण

१३०. एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी कोसलजाणवते सुनक्खत्ते नाम अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए, से ण भंते ! तदा गोसालेण मखलिपुत्तेण तवेण तेयेण परितावए समाणे कालमासे काल किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने ?

एवं खलु गोयमा ! मम अतेवासी सुनक्खत्ते नाम अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए, से ण तदा गोसालेण मखलिपुत्तेण तवेणं तेयेण परिताविए समाणे जेणेव ममं अतिए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ वदति नमसति, व० २ सयमेव पच महव्वयाइ आरुभेति, सयमेव पच० आ० २ समणा य समणीओ य खामेति, स० खा० २ आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालमासे काल किच्चा उड्ढ चदिम-सूरिय जाव आणय-पाणयारणे कप्पे वीतीवइत्ता अच्चुते कप्पे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ ण अत्थेगतियाण देवाण बावीस सागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता, तत्थ ण सुनक्खत्तस्स वि देवस्स बावीस सागरोवमाइ०, सेस जहा सव्वाणुभूतिस्स जाव अत काहिति ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (१२९) मे श्री गौतम स्वामी द्वारा सर्वानुभूति अनगार की गति-उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भगवान् से पूछे गए प्रश्न का उत्तर प्रतिपादित है ।

[१३० प्र] भगवन् ! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कौशलजनपदोत्पन्न सुनक्षत्र नामक अनगार, जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था, वह मखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपने तप-तेज से परितापित किये जाने पर काल के अवसर पर काल करके कहाँ गया ? कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[१३० उ] गौतम ! मेरा अन्तेवासी सुनक्षत्र नामक अनगार, जो प्रकृति से भद्र, यावत् विनीत था, वह उस समय मखलिपुत्र गोशालक के तप-तेज से परितापित हो कर मेरे पास आया । फिर उसने मुझे वन्दना-नमस्कार करके स्वयमेव पञ्चमहाव्रतो का उच्चारण (आरोपण) किया । फिर श्रमण-श्रमणियो से क्षमापना की, और आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त कर काल के

समय मे काल करके ऊपर चन्द्र और सूर्य को यावत् आनत-प्राणत और आरणकल्प का अतिक्रमण करके वह अच्युतकल्प मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ है। वहाँ कई देवो की स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। सुनक्षत्र देव की स्थिति भी बाईस सागरोपम की है। शेष सभी वर्णन सर्वानुभूति अनगार के समान, यावत्—सभी दुःखो का अन्त करेगा; (यहाँ तक कहना चाहिए।)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (१३०) मे सुनक्षत्र अनगार की भावी गति-उत्पत्ति के सम्बन्ध मे श्री गौतमस्वामी द्वारा पूछे गए प्रश्न और भगवान् द्वारा दिये गये उत्तर का निरूपण है।

गोशालक का भविष्य

१३१. एव खलु देवाणुप्पियाणं अतेवासी कुसिस्से गोसाले नामं मंखलिपुत्ते, से ण भते ! गोसाले मखलिपुत्ते कालमासे काल किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने ?

एवं खलु गोयमा ! ममं अतेवासी कुसिस्से गोसाले नाम मंखलिपुत्ते समणघातए जाव छउमत्थे चेव कालमासे काल किच्चा उड्ढं चंदिमसूरिय जाव अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाण देवाण बावीस सागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता, तत्थ ण गोसालस्स वि देवस्स बावीस सागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता।

[१३१ प्र] भगवन् ! देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य गोशालक मखलिपुत्र काल के अवसर मे काल करके कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[१३१ उ] हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी कुशिष्य मखलिपुत्र गोशालक, जो श्रमणो का घातक था, यावत् छद्मस्थ-अवस्था मे ही काल के समय मे काल करके ऊँचे चन्द्र और सूर्य का यावत् उल्लंघन करके अच्युतकल्प मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ है। वहाँ कई देवो की स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। उनमे गोशालक की स्थिति भी बाईस सागरोपम की है।

विवेचन—गोशालक अन्तिम समय मे सम्यग्दृष्टि होकर आराधनापूर्वक शुभभावो मे कालधर्म को प्राप्त हुआ था, इसलिए गोशालक भी अच्युत देवलोक मे उत्पन्न हुआ और भगवान् ने उस की अनन्तर गति और उत्पत्ति प्रस्तुत सूत्र मे अच्युतकल्प के देवरूप मे बताई है।[1]

गोशालक : देवभव से लेकर मनुष्यभव तक : विमलवाहन राजा के रूप में

१३२. से णं भते ! गोसाले देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले पुंडेसु जणवएसु सतदुवारे नगरे सम्मुतिस्स रन्नो भद्दाए भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिति। से णं तत्थ नवण्हं मासाण बहुपडिपुण्णाणं जाव वीतिक्कंताणं जाव सुरूवे दारए पयाहिति, जं रयणि च णं से दारए जाहिति, तं रयणि च णं सतदुवारे नगरे सब्भंतरबाहिरिए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीतिक्कंते जाव संपत्ते

---

१ वियाहपण्णत्ति, सुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ७३१-७३३

बारसाहदिवसे अयमेयारूव गोण्ण गुणनिप्फन्न नामधेज्ज काहिति—जम्हा ण अम्ह इमसि दारगसि जायसि समाणंसि सतदुवारे नगरे सब्भंतरबाहिरिए जाव रयणवासे य वासे वुट्ठे, तं होउ ण अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्ज 'महापउमे, महापउमे'।

"तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्ज करेहिति 'महापउमो' त्ति"।

"तए णं त महापउम दारग अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायग जाणित्ता सोभणसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्तमुहुत्तसि महया महया रायाभिसेगेण अभिसिचेहिति। से ण तत्थ राया भविस्सइ महता हिमवत० वण्णओ जाव विहरिस्सति।"

"तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अन्नदा कदायि दो देवा महिड्ढिया जाव महेसक्खा सेणाकम्म काहिति, त जहा—पुणभद्दे य माणिभद्दे य। तए ण सतदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर० जाव सत्थवाहप्पभितयो अन्नमन्न सद्दावेहिति, अन्न० स० २ एव वदिहिति—जम्हा ण देवाणुप्पिया! अम्ह महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढीया जाव सेणाकम्म करेंति त जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य; तं होउ ण देवाणुप्पिया! अम्ह महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि नामधेज्जे 'देवसेणे, देवसेणे'।'

"तए ण तस्स महापउमस्स रन्नो दोच्चे वि नामधेज्जे भविस्सति 'देवसेणे' ति।"

"तए ण तस्स देवसेणस्स रण्णो अन्नदा कदायि सेते सखतलविमलसन्निगासे चउद्दते हत्थिरयणे समुप्पज्जिस्सइ। तए ण से देवसेणे राया त सेत सखतलविमलसन्निगास चउद्दत हत्थिरयण दुरूढे समाणे सयदुवार नगर मज्भमज्भेण अभिक्खण अभिक्खण अतिजाहिति य निज्जाहिति य। तए ण सयदुवारे नगरे बहवे राईसर जाव पभितयो अन्नमन्न सद्दावेहिति अन्न० स० २ एव वदिहिति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेते सखतलविमलसन्निगासे चउद्दते हत्थिरयणे समुप्पन्ने, त होउ ण देवाणुप्पिया! अम्ह देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे 'विमलवाहणे विमलवाहणे'।"

"तए ण तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे भविस्सति 'विमलवाहणे' त्ति।"

"तए ण से विमलवाहणे राया अन्नदा कदायि समणेहिं निग्गथेहिं मिच्छ विप्पडिवज्जिहिति—अप्पेगतिए आओसेहिति, अप्पेगतिए अवहसिहिति, अप्पेगतिए निच्छोडेहिति, अप्पेगतिए निब्भच्छेहिति, अप्पेगतिए बधेहिति, अप्पेगतिए णिरुभेहिति, अप्पेगतियाण छविच्छेद करेहिति, अप्पेगइए मारेहिति, अप्पेगतिए पमारेहिइ, अप्पेगतिए उद्दवेहिति, अप्पेगतियाण वत्थ पडिग्गह कवल पायपुंछणं आछिदिहिति विच्छिदिहिति भिदिहिति अवहरिहिति, अप्पेगतियाणं भत्तपाण वोच्छिदिहिति, अप्पेगतिए णिन्नगरे करेहिति, अप्पेगतिए निव्विसए करेहिति।"

"तए ण सतद्दुवारे नगरे बहवे राईसर जाव वदिहिति—'एव खलु देवाणुप्पिया! विमल-वाहणे राया समणेहिं निग्गथेहिं मिच्छ विप्पडिवन्ने अप्पेगतिए आओसति जाव निव्विसए करेति, तं नो खलु देवाणुप्पिया! एय अम्ह सेय, नो खलु एय विमलवाहणस्स रण्णो सेय रज्जस्स वा रट्ठस्स वा

बलस्स वा वाहणस्स वा पुरस्स वा अतेउरस्स वा जणवयस्स वा सेयं, जं णं विमलवाहणे राया समणेहिं निग्गथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने। त सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं विमलवाहणं रायं एयमट्ठं विण्णवित्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अतियं एयमट्ठं पडिसुणेंति, अन्न० प० २ जेणेव विमलवाहणे राया तेणेव उवागच्छंति, उवा० २ करयलपरिग्गहियं विमलवाहणं रायं जएणं विजएणं वद्धावेहिंति, जएणं विजएण वद्धावित्ता एवं वदिहिंति—'एव खलु देवाणुप्पिया समणेहिं निग्गथेहिं मिच्छ विप्पडिवन्ना अप्पेगतिए आओसति जाव अप्पेगतिए निव्विसए करेंति, तं नो खलु एय देवाणुप्पियाण सेयं, नो खलु एयं अम्ह सेय, नो खलु एय रज्जस्स वा जाव जणवदस्स वा सेयं, जं णं देवाणुप्पिया समणेहिं निग्गथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ना, त विरमतु ण देवाणुप्पिया एयस्सट्ठस्स अकरणयाए।'

"तए ण से विमलवाहणे राया तेहिं बहूहिं राईसर जाव सत्थवाहप्पभितीहिं एयमट्ठं विन्नत्ते समाणे 'नो धम्मो त्ति, नो तवो,' त्ति, मिच्छाविणएणं एयमट्ठ पडिसुणेहिति।"

"तस्स ण सतदुवारस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ णं सुभूमिभागे नामं उज्जाणे भविस्सति, सव्वोउय० वण्णओ।"

"तेण कालेणं तेणं समएण विमलस्स अरहओ पउप्पए सुमगले नामं अणगारे जातिसपन्ने जहा धम्मघोसस्स वण्णओ (स० ११ उ० ११ सु० ५३) जाव संखित्तविउलतेयलेस्से तिणाणोवगए सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेण जाव आयावेमाणे विहरिस्सति।

"तए ण से विमलवाहणे राया अन्नदा कदायि रहचरिय काउ निज्जाहिति। तए णं से विमलवाहणे राया सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते रहचरियं करेमाणे सुमंगलं अणगारं छट्ठंछट्ठेणं जाव आतावेमाण पासिहिति, पा० २ आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे सुमंगलं अणगारं रहसिरेणं णोल्लावेहिति।

"तए ण से सुमगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा रहसिरेणं णोल्लाविए समाणे सणियं सणियं उट्ठेहिति., स० उ० २ दोच्च पि उड्ढ बाहाओ पगिज्झिय जाव आयावेमाणे विहरिस्सति।

"तए णं से विमलवाहणे राया सुमगलं अणगारं दोच्चं पि रहसिरेणं णोल्लावेहिति।"

"तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा दोच्चं पि रहसिरेणं णोल्लाविए समाणे सणियं सणियं उट्ठेहिति, स० उ० २ ओहिं पउंजिहिति, ओहिं प० २ विमलवाहणस्स रण्णो तीयद्धं आभोएहिति, ती० आ० २ विमलवाहणं रायं एवं वदिहिति—'नो खलु तुमं विमलवाहणे राया, नो खलु तुमं देवसेणे राया, नो खलु तुमं महापउमे राया, तुम णं इओ तच्चे भवग्गहणे गोसाले नामं मंखलिपुत्ते होत्था समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगए। तं जति ते तदा सव्वाणुभूतिणा अणगारेणं पभुणा वि होइऊणं सम्मं सहियं खमियं तितिक्खियं अहियासियं जइ ते तदा सुनक्खत्तेणं अणगारेणं पभुणा वि होइऊणं सम्मं सहियं जाव अहियासियं, जइ ते तदा समणेणं भगवता महावीरेणं पभुणा वि

जाव अहियासियं, त नो खलु अह तहा सम्म सहिस्स जाव अहियासिस्सं, अह ते नवर सहयं सरहं ससारहीयं तवेण तेयेणं एगाहच्च कूडाहच्चं भासरासिं करेज्जामि'।"

"तए ण से विमलवाहणे राया सुमगलेण अणगारेण एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे सुमगल अणगार तच्च पि रहसिरेण णोल्लावेहिति।"

"तए ण से सुमगले अणगारे विमलवाहणेण रण्णा तच्च पि रहसिरेण नोल्लाविए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुहति, आ० प० २ तेयासमुग्घातेण समोहन्निहिति, तेया० स० २ सत्तट्ठपयाइ पच्चोसक्किहिति, सत्तट्ठ० पच्चो० २ विमलवाहण रायं सहयं ससारहीय तवेण तेयेण जाव भासरासिं करेहिति।"

[१३२ प्र] भगवन्! वह गोशालक देव उस देवलोक से आयुष्य, भव और स्थिति का क्षय होने पर, देवलोक से च्यव कर यावत् कहाँ उत्पन्न होगा?

[१३२ उ] गौतम! इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के (अन्तर्गत) भारतवर्ष (भरतक्षेत्र) मे विन्ध्यपर्वत के पादमूल (तलहटी) मे, पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नामक नगर मे सन्मूर्ति नाम के राजा की भद्रा-भार्या की कुक्षि मे पुत्ररूप मे उत्पन्न होगा। वह वहाँ नौ महीने और साढे सात रात्रिदिवस यावत् भलीभाति व्यतीत होने पर यावत् सुन्दर (रूपवान्) बालक के रूप मे जन्म लेगा। जिस रात्रि मे उस बालक का जन्म होगा, उस रात्रि मे शतद्वार नगर के भीतर और बाहर, अनेक भार-प्रमाण और अनेक कुम्भप्रमाण पद्मो (कमलों) एव रत्नो की वर्षा होगी। तब उस बालक के माता-पिता ग्यारह दिन बीत जाने पर बारहवे दिन उस बालक का गुणयुक्त एव गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे— क्योंकि हमारे इस बालक का जब जन्म हुआ, तब शतद्वार नगर के भीतर और बाहर यावत् पद्मो और रत्नो की वर्षा हुई थी, इसलिए हमारे इस बालक का नाम—'महापद्म' हो।

तदनन्तर ऐसा विचार कर उस बालक के माता-पिता उसका नाम रखेंगे—'महापद्म'।

तत्पश्चात् उस महापद्म बालक के माता-पिता उसे कुछ अधिक आठ वर्ष का जान कर शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त्त मे बहुत बडे (या बडे धूमधाम से) राज्याभिषेक से अभिषिक्त करेंगे। इस प्रकार वह (महापद्म) वहाँ का राजा बन जाएगा। औपपातिक मे वर्णित राज-वर्णन के समान इसका वर्णन जान लेना चाहिए—वह महाहिमवान् आदि पर्वत के समान महान् एव बलशाली होगा, यावत् वह (राज्यभोग करता हुआ) विचरेगा।

किसी समय दो महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव उस महापद्म राजा का सेनापतित्व करेंगे। वे दो देव इस प्रकार हैं—पूर्णभद्र और माणिभद्र। यह देख कर शतद्वार नगर के बहुत-से राजेश्वर (मण्डलपति), तलवर, राजा, युवराज यावत् सार्थवाह आदि परस्पर एक दूसरे को बुलायेंगे और कहेंगे—देवानुप्रियो! हमारे महापद्म राजा के महर्द्धिक यावत् महासौख्यशाली दो देव सेनाकर्म करते हैं। इसलिए (हमारी सम्मति है कि) देवानुप्रियो! हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम-देवसेन या देवसैन्य हो।

तब उस महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' या 'देवसैन्य' भी होगा।

तदनन्तर किसी दिन उस देवसेन राजा के शखदल (—खण्ड) या शखतल के समान निर्मल एव श्वेत चार दातो वाला हस्तिरत्न समुत्पन्न होगा। तब वह देवसेन राजा उस शखतल (दल) के समान श्वेत एव निर्मल चार दात वाले हस्तिरत्न पर आरूढ हो कर शतद्वार नगर के मध्य मे होकर बार-बार बाहर जाएगा और आएगा। यह देख कर बहुत-से राजेश्वर यावत् सार्थवाह प्रभृति परस्पर एक दूसरे को बुलाएँगे और फिर इस प्रकार कहेगे—'देवानुप्रियो! हमारे देवसेन राजा के यहाँ शखदल या शखतल के समान श्वेत, निर्मल एव चार दातो वाला हस्तिरत्न समुत्पन्न हुआ है, अत. हे देवानुप्रियो! हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमल-वाहन' भी हो।'

तत्पश्चात् उस देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' भी हो जाएगा।

तदनन्तर किसी दिन विमलवाहन राजा श्रमण-निर्ग्रन्थो के प्रति मिथ्याभाव (—अनार्यत्व) को अपना लेगा। वह कई श्रमणनिर्ग्रन्थो के प्रति आक्रोश करेगा, किन्ही का उपहास करेगा, कतिपय साधुओ को एक दूसरे से पृथक्-पृथक् कर देगा, कइयो की भर्त्सना करेगा। कई श्रमणो को बाधेगा कइयो का निरोध (जेल मे बद) करेगा, कई श्रमणो के अगच्छेदन करेगा, कुछ को मारेगा, कइयो पर उपद्रव करेगा, कतिपय श्रमणो के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोछन को छिन्नभिन्न कर देगा, नष्ट कर देगा, चीर-फाड देगा या अपहरण कर लेगा। कई श्रमणो के आहार-पानी का विच्छेद करेगा और कई श्रमणो को नगर और देश से निर्वासित करेगा।

(उसका यह रवैया देख कर) शतद्वार नगर के बहुत-से राजा, ऐश्वर्यशाली यावत् सार्थवाह आदि परस्पर यावत् कहने लगेंगे—देवानुप्रियो! विमलवाहन राजा ने श्रमणनिर्ग्रन्थो के प्रति अनार्यपन अपना लिया है, यावत् कितने ही श्रमणो को इसने देश से निर्वासित कर दिया है, इत्यादि। अत देवानुप्रियो! यह हमारे लिए श्रेयस्कर नही है। यह न विमलवाहन राजा के लिए श्रेयस्कर है और न राज्य, राष्ट्र, बल (सैन्य) वाहन, पुर, अन्त पुर अथवा जनपद (देश) के लिए श्रेयस्कर है कि विमलवाहन राजा श्रमण-निर्ग्रन्थो के प्रति अनार्यत्व को अगीकार करे। अत देवानुप्रियो! हमारे लिए यह उचित है कि हम विमलवाहन राजा को इस विषय मे विनयपूर्वक निवेदन करे। इस प्रकार वे सब परस्पर एक दूसरे की बात मानेंगे और इस प्रकार निश्चय करके विमलवाहन राजा के पास आएँगे। करबद्ध होकर विमलवाहन राजा को जय-विजय शब्दो से वधाई देगे। फिर इस प्रकार कहेगे—हे देवानुप्रिय! श्रमण-निर्ग्रन्थो के प्रति आपने अनार्यत्व अपनाया है, कइयो पर आप आक्रोश करते है, यावत् कई श्रमणो को आप देश-निर्वासित करते है। अत हे देवानुप्रिय! यह आपके लिए श्रेयस्कर नही है, न हमारे लिए यह श्रेयस्कर है और न ही यह राज्य, राष्ट्र यावत् जनपद के लिए श्रेयस्कर है कि आप देवानुप्रिय श्रमण-निर्ग्रन्थो के प्रति अनार्यत्व स्वीकार करे। अत हे देवानुप्रिय! आप इस अकार्य को करने से रुकें, (इस दुराचरण को बन्द करे)।

तदनन्तर इस प्रकार जब वे राजेश्वर यावत् सार्थवाह आदि विनयपूर्वक राजा विमलवाहन से विनति करेंगे, तब वह राजा—धर्म (कुछ) नही, तप निरर्थक है, इस प्रकार की बुद्धि होते हुए भी मिथ्या-विनय बता कर उनकी इस विनन्ति को मान लेगा।

उस शतद्वार नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा मे सुभूमि भाग नाम का उद्यान होगा, जो सब ऋतुओ मे फल-पुष्पो से समृद्ध होगा, इत्यादि वर्णन पूर्ववत्।

उस काल उस समय मे विमल नामक तीर्थंकर के प्रपौत्र-शिष्य 'सुमंगल' नामक होगे। उनका वर्णन (शतक ११, उ ११ सू ५३ मे उक्त) धर्मघोष अनगार के समान, यावत् संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या वाले, तीन ज्ञानो से युक्त वह सुमंगल नामक अनगार, सुभूमिभाग उद्यान से न अति दूर और न अति निकट निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) तप के साथ यावत् आतापना लेते हुए विचरेंगे।

वह विमलवाहन राजा किसी दिन रथचर्या करने के लिए निकलेगा। जब सुभूमिभाग उद्यान से थोडी दूर रथचर्या करता हुआ वह विमलवाहन राजा, निरन्तर छठ-छठ तप के साथ आतापना लेते हुए सुमंगल अनगार को देखेगा, तब उन्हे देखते ही वह एकदम क्रुद्ध होकर यावत् मिसमिसायमान (क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित) होता हुआ रथ के अग्रभाग से सुमंगल अनगार को टक्कर मार कर नीचे गिरा देगा।

विमलवाहन राजा द्वारा रथ के अग्रभाग से टक्कर मार कर सुमंगल अनगार को नीचे गिरा देने पर वह (सुमंगल अनगार) धीरे-धीरे उठेंगे और दूसरी बार फिर बाहे ऊँची करके यावत् आतापना लेते हुए विचरेंगे।

तब वह विमलवाहन राजा फिर दूसरी बार रथ के अग्रभाग से टक्कर मार कर नीचे गिरा देगा, अत सुमंगल अनगार फिर दूसरी बार शनै शनै उठेंगे और अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर विमलवाहन राजा के अतीत काल को देखेंगे। फिर वह विमलवाहन राजा से इस प्रकार कहेंगे—'तुम वास्तव मे विमलवाहन राजा नही हो, तुम देवसेन राजा भी नही हो, और न ही तुम महापद्म राजा हो, किन्तु तुम इससे पूर्व तीसरे भव मे श्रमणो के घातक गोशाल नामक मंखलिपुत्र थे, यावत् तुम छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर (मर) गए थे। उस समय समर्थ होते हुए भी सर्वानुभूति अनगार ने तुम्हारे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन कर लिया था, क्षमा कर दिया था, तितिक्षा की थी और उसे अध्यासित (समभावपूर्वक सहन) किया था। इसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार ने भी समर्थ होते हुए यावत् अध्यासित किया था। उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने भी समर्थ होते हुए भी यावत् अध्यासित (समभावपूर्वक सहन) कर लिया था। किन्तु मैं इस प्रकार सहन यावत् अध्यासित नही करूंगा। मैं तुम्हे अपने तप-तेज से घोडे, रथ और सारथी सहित एक ही प्रहार से कूटाघात के समान राख का ढेर कर दूंगा।

जब सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा से ऐसा कहेंगे, तब वह एकदम कुपित यावत् क्रोध से आगबबूला हो उठेगा और फिर तीसरी बार भी रथ के सिरे से टक्कर मार कर सुमंगल अनगार को नीचे गिरा देगा।

जब विमलवाहन राजा अपने रथ के सिरे से टक्कर मार कर, सुमंगल अनगार को तीसरी बार नीचे गिरा देगा, तब सुमंगल अनगार अतीव क्रुद्ध यावत् कोपावेश से मिसमिसाहट करते हुए आतापना भूमि से नीचे उतरेंगे और तैजस-समुद्घात करके सात-आठ कदम पीछे हटेंगे, फिर विमलवाहन राजा को अपने तप-तेज से, घोडे, रथ और सारथि सहित एक ही प्रहार से यावत् (जला कर) राख का ढेर कर देंगे।

विवेचन—प्रस्तुत लम्बे सूत्र (सू १३२) मे गोशालक के देवभव से लेकर मनुष्यभव मे विमलवाहन राजा के रूप मे, सुमंगल अनगार को तीन बार पीडा देने पर उनके द्वारा तपोजन्य तेजोलेश्या से भस्म कर देने तक का वृत्तान्त उल्लिखित किया गया है।

एक शंका : समाधान—समवायागसूत्र की टीका से ज्ञात होता है कि उत्सर्पिणी काल मे 'विमल' नामक इक्कीसवे तीर्थंकर होगे और वे अवसर्पिणी काल के चतुर्थ तीर्थंकर के स्थान मे प्राप्त होते है। उनसे पहले के अर्वाचीन तीर्थंकरो के अन्तर काल मे करोडो सागरोपम व्यतीत हो जाते हैं, जबकि यह महापद्म राजा तो बारहवे देवलोक की बाईस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके होगा, ऐसा मूलपाठ मे उल्लेख है। इसलिए इसके साथ महापद्म की सगति बैठनी कठिन है। किन्तु वृत्तिकार ने दूसरी तरह से इसकी सगति इस प्रकार बिठाई है—बाईस सागरोपम की स्थिति के पश्चात् जो तीर्थंकर उत्सर्पिणी काल मे होगा, उसका नाम 'विमल' होगा—ऐसा सभवित है। क्योकि एक ही नाम के अनेक महापुरुष होते हैं।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—**विञ्झगिरिपायमूले**—विन्ध्याचल की तलहटी मे। **पच्चायाहिति**—उत्पन्न होगा। **दारए**—बालक। **भारग्गसो**—भार प्रमाण। पुरुष जितना बोझ उठा सके, उसे अथवा १२० पल-प्रमाण वजन को 'भार' या भारक कहते है। यही भार-प्रमाण है। **कुंभग्गसो**—अनेक कुम्भ-प्रमाण। कुम्भ-प्रमाण के तीन भेद है—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। ६० आढक प्रमाण का जघन्य कुम्भ, ८० आढक प्रमाण का मध्यम कुम्भ और १०० आढक प्रमाण का उत्कृष्ट कुम्भ होता है। **पउमवासे**—पद्मवर्षा। **सेणाकम्मं**—सैनिक कर्म।

सखतल—विमल-सण्णिकासे : दो रूप : दो अर्थ—(१) शख-दल—शखखण्ड, (२) शखतल के समान विमल-निर्मल। **समुप्पज्जिस्सइ**—समुत्पन्न होगा। **अभिजाहिति, णिज्जाहिति**—आएगा और जाएगा, आवागमन करेगा। **विप्पडिवज्जिहिति**—विपरीतता अपनाएगा। **आओसेहिति**—आक्रोश-वचन कहेगा, झिडकेगा। **अवहसिहिति**—हसी उडाएगा। **निच्छोडेहिति**—पृथक् करेगा। **निब्भच्छेहिति**—भर्त्सना करेगा—दुर्वचन बोलेगा। **णिरुंभेहिति**—निरोध करेगा—रोकेगा। **पमारेहिइ**—मारना प्रारम्भ करेगा। **उद्दवेहिति**—उपद्रव करेगा। **आच्छिदिहिइ**—थोडा छेदन करेगा। **विच्छिदिहिति**—विशेष रूप से या विविध प्रकार से छेदन करेगा। **भिदिहिति**—तोड फोड करेगा। **अवहरिहिति**—अपहरण करेगा, उछाल देगा। **णिन्नगरे करेहिति**—नगरनिर्वासन करेगा। **निव्विसए करेहिति**—देश-निकाला दे देगा। **विण्णवित्तए**—विनति करे। **विरमतु**—रुके, बद करे। **पउप्पए**—प्रपौत्रशिष्य—शिष्य सन्तान। **रहचरिय**—रथचर्या। **आयावेमाणं**—आतापना लेते हुए। **रहसिरेण**—रथ के सिरे से। **णोल्लावेहिति**—गिरा देगा। **पभुणा**—समर्थ होते हुए। **तितिक्खियं**—तितिक्षा की। **सहयं**—घोडे सहित। **सरह**—रथसहित। **ससारहिय**—सारथिसहित।[2]

राज्य और राष्ट्र मे अन्तर—प्राचीन काल मे राजा, मन्त्री, राष्ट्र, कोश, दुर्ग (किला), बल (सेना) और मित्रवर्ग, इन सात को राज्य कहा जाता था और जनपद अर्थात्—राज्य के एक देश को राष्ट्र, किन्तु वर्तमान काल की भौगोलिक व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक प्रान्त को राज्य (State) कहा जाता है, और कई प्रान्त मिल कर एक राष्ट्र होता है। कई जिले मिल कर एक प्रान्त होता है।[3]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९१

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९१

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४७६ से २५८६

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९२

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्र च कोशो दुर्गं बल सुहृत्।

सप्तागमुच्यते राज्य बुद्धिसत्त्वसमाश्रयम्॥ राष्ट्र जनपदैकदेश।'

सुमंगल अनगार की भावी गति : सर्वार्थसिद्ध विमान एवं मोक्ष

१३३. सुमगले णं भते ! अणगारे विमलवाहण राय सहय जाव भासरासिं करेत्ता कहिं गच्छिहिति कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! सुमगले ण अणगारे विमलवाहण राय सहय जाव भासरासिं करेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालस जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणे बहूइ वासाइं सामण्णपरियाग पाउणेहिति, बहूइ० पा० २ मासियाए सलेहणाए सट्ठि भत्ताइ अणसणाए जाव छेदेत्ता आलोइय-पडियकते समाहिपत्ते कालमासे० उड्ढ चदिम जाव गेवेज्जविमाणावाससय वीतीवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति । तत्थ ण देवाण अजहन्नमणुक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता । तत्थ ण सुमगलस्स वि देवस्स अजहन्नमणुक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता ।

[१३३ प्र] भगवन् ! सुमगल अनगार, अश्व, रथ और सारथि सहित (राजा विमल-वाहन को) भस्म का ढेर करके, स्वय काल करके कहाँ जाएँगे, कहाँ उत्पन्न होगे ?

[१३३ उ] गौतम ! विमलवाहन राजा को घोडा, रथ और सारथि सहित भस्म करने के पश्चात् सुमगल अनगार बहुत-से उपवास (चउत्थ), बेला (छट्ठ), तेला (अट्ठम), चौला (दशम), पचौला (द्वादश) यावत् विचित्र प्रकार के तपश्चरणो से अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षो तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करेगे । फिर एक मास की सलेखना से साठ भक्त अनशन का यावत् छेदन करेगे और आलोचना एव प्रतिक्रमण करके समाधिप्राप्त होकर काल के अवसर मे काल करेगे । फिर वे ऊपर चन्द्र, सूर्य, यावत् एक सौ ग्रैवेयक विमानावासो का अतिक्रमण करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे देवरूप मे उत्पन्न होगे । वहाँ देवो की अजघन्यानुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्टता से रहित) तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है । वहाँ सुमगल देव की भी अजघन्यानुत्कृष्ट (पूरे) तेतीस सागरोपम की स्थिति होगी ।

१३४. से ण भते ! सुमगले देवे ताओ देवलोगाओ जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंत काहिति ।

[१३४ प्र०] भगवन् ! वह सुमगलदेव उस देवलोक से च्यव कर कहा जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[१३४ उ] गौतम ! वह सुमगलदेव उस देवलोक से च्यवकर यावत् महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा, यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे सुमगल अनगार की सर्वार्थसिद्ध देवभव मे और तत्पश्चात् महा-विदेह क्षेत्र मे उत्पत्ति और मोक्षगति का निरूपण किया गया है । **अजहन्नमणुक्कोसेणं**—सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवो की जघन्य और उत्कृष्ट, यो दो प्रकार की स्थिति नही है किन्तु सभी देवो की तेतीस सागरोपम की स्थिति होती है ।[1]

---

१ भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २४८८

गोशालक के भावी दीर्घकालीन भवभ्रमण का दिग्दर्शन

१३५. विमलवाहणे णं भते ! राया सुमंगलेणं अणगारेणं सहये जाव भासरासीकए समाणे कहिं गच्छिहिति, कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! विमलवाहणे णं राया सुमगलेणं अणगारेण सहये जाव भासरासीकए समाणे अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

[१३५ प्र] भगवन् ! सुमगल अनगार द्वारा अश्व, रथ और सारथि-महित भस्म किया हुआ विमलवाहन राजा कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[१३५ उ] गौतम ! सुमगल अनगार के द्वारा अश्व, रथ और सारथि-सहित भस्म किये जाने पर विमलवाहन राजा अध सप्तम पृथ्वी मे, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरको मे नैरयिकरूप से उत्पन्न होगा ।

१३६. से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववज्जिहिति । तत्थ वि ण सत्थवज्झे दाहवक्कतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

[१३६] वहाँ से यावत् उद्वर्त्त (मर) कर मत्स्यो मे उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्र के द्वारा वध होने पर दाहज्वर की पीडा से काल करके दूसरी बार फिर अध मप्तम पृथ्वी मे उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासो मे नैरयिकरूप मे उत्पन्न होगा ।

१३७. से ण ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे जाव किच्चा छट्ठाए तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

[१३७] वहाँ से उद्वर्त्त (मर) कर फिर सीधा दूसरी वार मत्स्यो मे उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्र से वध होने पर यावत् काल कर छठी तम-प्रभा पृथ्वी मे उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले नरकावासो मे नैरयिकरूप से उत्पन्न होगा ।

१३८. से णं तओहिंतो जाव उव्वट्टित्ता इत्थियासु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाह० जाव दोच्चं पि छट्ठाए तमाए पुढवीए उक्कोसकाल जाव उव्वट्टित्ता दोच्चं पि इत्थियासु उववज्जिहिति । तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए उक्कोसकाल जाव उव्वट्टित्ता उरएसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे जाव किच्चा दोच्चं पि पंचमाए जाव उव्वट्टित्ता दोच्चं पि उरएसु उववज्जिहिति जाव किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसकाल-ट्ठितीयंसि जाव उव्वट्टित्ता सीहेसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे तहेव जाव किच्चा दोच्चं पि चउत्थीए पंक० जाव उव्वट्टित्ता दोच्चं पि सीहेसु उववज्जिहिति जाव किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसकाल जाव उव्वट्टित्ता पक्खीसु उववज्जिहिति । तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा दोच्चं पि तच्चाए वालुय जाव उव्वट्टित्ता दोच्चं पि पक्खीसु उवव० जाव किच्चा दोच्चाए

सक्करप्पभाए जाव उव्वट्टित्ता सिरीसिवेसु उवव०। तत्थ वि ण सत्थ० जाव किच्चा दोच्च पि दोच्चाए सक्करप्पभाए जाव उव्वट्टित्ता दोच्च पि सिरीसिवेसु उववज्जिहिति जाव किच्चा इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठितीयसि नरगसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति, जाव उव्वट्टित्ता सण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा असण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा असण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा दोच्चं पि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पलिओवमस्स असखेज्जइभागट्ठितीयसि णरगसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से ण ततो जाव उव्वट्टित्ता जाइ इमाइ खहचरविहाणाइ भवति, त जहा—चम्मपक्खीण लोमपक्खीण समुग्गपक्खीण विततपक्खीण तेसु अणेगसतसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाहिति। सव्वत्थ वि ण सत्थवज्झे दाहवक्कतीए कालमासे काल किच्चा जाइ इमाइ भुयपरिसप्पविहाणाइ भवति, त जहा—गोहाण नउलाण जहा पण्णवणापदे जाव[1] जाहगाण चाउप्पाइयाण, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो सेसं जहा खहचराण, जाव किच्चा जाइ इमाइ उरपरिसप्पविहाणाइं भवति, तं जहा—अहीणं अयगराण आसालियाण महोरगाण, तेसु अणेगसयसह० जाव किच्चा जाइ इमाइं चउप्पयविहाणाइ भवति, त जहा—एगखुराण दुखुराण गडीपदाण सणहपदाण, तेसु अणेगसयसह० जाव किच्चा जाइ इमाइ जलचर-विहाणाइ भवति, त जहा—मच्छण कच्छभाण जाव[2] सुंसुमाराण, तेसु अणेगसयसहस्स० जाव किच्चा जाइं इमाइ चउरिंदियविहाणाइ भवति, त जहा—अधियाण पोत्तियाणं जहा पण्णवणापदे जाव[3] गोमयकीडाण, तेसु अणेगसय० जाव किच्चा जाइ इमाइ तेइदियविहाणाइ भवति, तं जहा—उवचियाणं जाव[4] हत्थिसोंडाण, तेसु अणेगसय० जाव किच्चा जाइ इमाइ बेइंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा—पुलाकिमियाण जाव[5] समुद्दलिक्खाण, तेसु अणेगसय० जाव किच्चा जाइ इमाइं वणस्सतिविहाणाइ भवति, त जहा—रुक्खाण गुच्छाण जाव[6] कुहुणाण, तेसु अणेगसय० जाव पच्चायाइस्सइ। उस्सन्नं च णं कडुयरुक्खेसु कडुयवल्लीसु सव्वत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा जाइ इमाइं वाउकाइयविहाणाइं भवति, त जहा—पाईणवाताण जाव[7] सुद्धवाताणं, तेसु अणेगसयसहस्स० जाव किच्चा जाइ इमाइ तेउक्काइयविहाणाइ भवति, त जहा—इंगालाण जाव[8] सूरकतमणिनिस्सियाण,

---

१ देखिये पण्णवणासुत्त भा १ सू ८५, पृ ३३ (महावीर जैन विद्यालय-प्रकाशित) मे— सरडाण मल्लाण इत्यादि। —अ वृ पत्र ६९३

२ 'जाव' पद सूचक पाठ—'गाहाण मगराण इत्यादि।

३ देखिये पण्णवणासुत्त भा १, सू ५८-१, पृ २८ (महावीर जैन विद्यालय प्रकाशित) मे।

४ 'जाव' पद सूचित पाठ—रोहिणियाण कुथूण पिवीलियाण इत्यादि।

५ 'जाव' पद सूचित पाठ—कुच्छिकिमियाण गडूपलगाण गोलोमाण इत्यादि।

६ 'जाव' पद सूचक पाठ—गुम्माण लयाण वल्लीण पव्वगाण तणाण वलयाण हरियाण ओसहीण जलरुहाण ति।

७ 'जाव' पद सूचक पाठ—'पटीणवायाण दाहिणवायाण' इत्यादि।

८, 'जाव' पद सूचक पाठ—'जालाण मुम्मुराण अच्चीण' इत्यादि।

तेसु अणेगसयसह० जाव किच्चा जाइं इमाइं आउकाइयविहाणाइ भवंति, त जहा—उस्साण जाव[1] खातोदगाण, तेसु अणेगसयसह० जाव पच्चायाइस्सति, उस्सण्णं च णं खारोदएसु खातोदएसु, सव्वत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा जाइं इमाइं पुढविकाइयविहाणाइ भवति, तं जहा—पुढवीणं सक्कराणं जाव[2] सूरकंताण, तेसु अणेगसय० जाव पच्चायाहिति, उस्सन्न च ण खरबादरपुढविकाइएसु, सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे।

जाव किच्चा रायगिहे नगरे बाहिं खरियत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा दोच्च पि रायगिहे नगरे अंतोखरियत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ वि ण सत्थवज्झे जाव किच्चा इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विझगिरिपादमूले वेभेले सन्निवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए पच्चायाहिति। तए ण तं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं जोव्वणमणुप्पत्तं पडिरूविएण सुक्केण पडिरूविएणं विणएण पडिरूवियस्स भत्तारस्स भारियत्ताए दलइस्सति। सा णं तस्स भारिया भविस्सति इट्ठा कंता जाव अणुमया भडकरंडगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविया, चेलपेला इव सुसंपरिहिया, रयणकरडओ विव सुरक्खिया सुसंगोविया—'मा णं सीयं मा णं उण्हं जाव परीसहोवसग्गा फुसंतु'। तए णं सा दारिया अन्नदा कदापि गुव्विणी ससुरकुलाओ कुलघरं निज्जमाणी अंतरा दवग्गिजालाभिहया कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु अग्गिकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

[१३८] वहाँ से वह यावत् निकल कर स्त्रीरूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्राघात से मर कर दाहज्वर की वेदना से यावत् दूसरी बार पुन छठी तम प्रभा पृथ्वी मे उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासो मे नैरयिक होगा। वहाँ से यावत् निकल कर पुन दूसरी बार स्त्रीरूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से वध होने पर यावत् काल करके पंचम धूमप्रभा पृथ्वी मे उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला नैरयिक होगा। वहाँ से यावत् मर कर उर परिसर्पो मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्राघात से यावत् मर कर दूसरी बार पचम नरकपृथ्वी मे, यावत् वहाँ से निकल कर दूसरी बार पुन: उर परिसर्पो मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके चौथी पकप्रभा पृथ्वी मे उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासो मे नैरयिक रूप मे उत्पन्न होगा, यावत् वहाँ से निकलकर सिंहो मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र द्वारा मारा जाकर यावत् दूसरी बार चौथे नरक मे उत्पन्न होगा। यावत् वहाँ से निकल कर दूसरी बार सिंहो मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके तीसरी वालुकाप्रभा नरकपृथ्वी मे उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होगा। यावत् वहाँ से निकल कर पक्षियो मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्राघात से मर कर फिर दूसरी बार तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् शस्त्राघात से मर कर दूसरी बार पक्षियो मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् निकल कर सरीसृपो मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से मारा जा कर यावत् दूसरी बार भी शर्कराप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके दूसरी बार पुनः सरीसृपो में उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले

---

१ 'जाव' पद सूचक पाठ—'हिमाण महियाण' ति।

२ 'जाव' पद सूचक पाठ—'वालुयाण उवलाण' इत्यादि। —भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९४

नरकावासो मे नैरयिक रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् निकल कर सज्ञीजीवो मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र द्वारा मारा जाकर यावत् काल करके असज्ञीजीवो मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्राघात से यावत् काल करके दूसरी वार इमी रत्नप्रभापृथ्वी मे पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नरकावासो मे नैरयिकरूप मे उत्पन्न होगा।

वह वहाँ मे निकल कर जो ये खेचरजीवो के भेद है, जैसे कि—चर्मपक्षी, लोमपक्षी, समुद्गकपक्षी और विततपक्षी, उनमे अनेक लाख वार मर-मर कर वार-वार वही उत्पन्न होता रहेगा। मर्वत्र शस्त्र से मारा जा कर दाह-वेदना से काल के अवसर मे काल करके जो ये भुजपरिसर्प के भेद है, जैसे कि—गोह, नकुल (नेवला) इत्यादि प्रज्ञापना-सूत्र के प्रथम पद के अनुसार (उन सभी मे उत्पन्न होगा,) यावत् जाहक आदि चौपाये जीवो मे अनेक लाख वार मर कर वार-वार उन्ही मे उत्पन्न होगा। शेप सव खेचरवत् जानना चाहिए, यावत् काल करके जो ये उर परिसर्प के भेद होते है, जैसे कि—सर्प, अजगर, आशालिका और महोरग, आदि, इनमे अनेक लाख वार मर-मर कर वार-वार इन्ही मे उत्पन्न होगा। यावत् वहाँ से काल करके जो ये चतुष्पद जीवो के भेद है, जैसे कि एक खुर वाला, दो खुर वाला गण्डीपद और सनखपद, इनमे अनेक लाख वार उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके जो ये जलचरजीव-भेद है, जैसे कि—मत्स्य, कच्छप यावत् सुसुमार इत्यादि, उनमे लाख वार उत्पन्न होगा। फिर वहाँ से यावत् काल करके जो ये चतुरिन्द्रिय जीवो के भेद है, जैसे कि—अन्धिक, पौत्रिक इत्यादि, प्रज्ञापनासूत्र के प्रथमपद के अनुसार यावत् गोमय-कीटो मे अनेक लाख वार उत्पन्न होगा। फिर वहा से यावत् काल करके जो ये त्रीन्द्रियजीवो के भेद हैं, जैसे कि—उपचित यावत् हस्तिशौण्ड आदि, इनमे अनेक लाख वार मर कर पुन पुन उत्पन्न होगा। वहाँ से यावत् काल करके जो ये द्वीन्द्रिय जीवो के भेद हैं, जैसे कि - पुलाकृमि यावत् समुद्रलिक्षा इत्यादि, इनमे अनेक लाख वार मर मर कर, पुन पुन उन्ही मे उत्पन्न होगा।

फिर वहाँ से यावत् काल करके जो ये वनस्पति के भेद है, जैसे कि—वृक्ष, गुच्छ यावत् कुहुना इत्यादि, इनमे अनेक लाख वार मर-मर कर यावत् पुन पुन इन्ही मे उत्पन्न होगा। विशेपतया कटुरस वाले वृक्षो और वेलो मे उत्पन्न होगा। सभी स्थानो मे शस्त्राघात से वध होगा। फिर वहाँ से यावत् काल करके जो ये वायुकायिक जीवो के भेद है, जैसे कि—पूर्ववायु, यावत् शुद्धवायु इत्यादि इनमे अनेक लाख वार मर कर पुन पुन. उत्पन्न होगा। फिर वहाँ से काल करके जो ये तेजस्कायिक जीवो के भेद है, जैसे कि—अगार यावत् सूर्यकान्तमणिनि मृत अग्नि इत्यादि, उनमे अनेक लाख वार मर-मर कर पुन पुन उत्पन्न होगा। फिर वहाँ से यावत् काल करके जो ये अप्कायिक जीवो के भेद हैं, यथा—ओस का पानी, यावत् खाई का पानी इत्यादि, उनमे अनेक लाख वार—विशेषतया खारे पानी तथा खाई के पानी मे उत्पन्न होगा। सभी स्थानो मे शस्त्र द्वारा घात होगा। वहाँ से यावत् काल करके जो ये पृथ्वीकायिक जीवो के भेद है, जैसे कि—पृथ्वी, शर्करा (ककड) यावत् सूर्यकान्तमणि, उनमे अनेक लाख वार उत्पन्न होगा, विशेपतया खर-वादर पृथ्वीकाकाय मे उत्पन्न होगा। सर्वत्र शस्त्र से वध होगा।

वहाँ से यावत् काल करके राजगृह नगर के वाहर (सामान्य) वेश्यारूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ शस्त्र मे वध होने से यावत् काल करके दूसरी वार राजगृह नगर के भीतर (विशिष्ट) वेश्या के रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से वध होने पर यावत् काल करके इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे

विन्ध्य-पर्वत के पादमूल (तलहटी) मे वेभेल नामक सन्निवेश मे ब्राह्मणकुल मे बालिका के रूप मे उत्पन्न होगा। वह कन्या जब बाल्यावस्था का त्याग करके यौवनवय को प्राप्त होगी, तब उसके माता-पिता उचित शुल्क (द्रव्य) और उचित विनय द्वारा पति को भार्या के रूप मे अर्पण करेंगे। वह उसकी भार्या होगी। वह (अपने पति द्वारा) इष्ट, कान्त, यावत् अनुमत, बहुमूल्य सामान के पिटारे के समान, तेल की कुप्पी के समान अत्यन्त सुरक्षित, वस्त्र की पेटी के समान सुसंगृहीत (निरुपद्रव स्थान मे रखी हुई), रत्न के पिटारे के समान सुरक्षित तथा शीत, उष्ण यावत् परीषह उपसर्ग उसे स्पर्श न करे, इस दृष्टि से अत्यन्त सगोपित होगी। वह ब्राह्मण-पुत्री गर्भवती होगी और एक दिन किसी समय अपने ससुराल से पीहर ले जाई जाती हुई मार्ग मे दावाग्नि की ज्वाला से पीडित होकर काल के अवसर मे काल करके दक्षिण दिशा के अग्निकुमार देवो मे देवरूप से उत्पन्न होगी।

१३९. से ण ततोहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता माणुस विग्गह लभिहिति, माणुस विग्गहं लभित्ता केवल बोधिं बुज्झिहिति, केवल बोधिं बुज्झित्ता मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि ण विराहियसामण्णे कालमासे काल किच्चा दाहिणिल्लेसु असुरकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

[१३९] वहाँ से च्यव कर वह मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा। फिर वह केवलबोधि (सम्यक्त्व) प्राप्त करेगा। तत्पश्चात् मुण्डित होकर अगारवास का परित्याग करके अनगार धर्म को प्राप्त करेगा। किन्तु वहाँ श्रामण्य (चारित्र) की विराधना करके काल के अवसर मे काल करके दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवो मे देवरूप से उत्पन्न होगा।

१४०. से ण ततोहिंतो जाव उव्वट्टित्ता माणुसं विग्गह त चेव तत्थ वि णं विराहियसामण्णे कालमासे जाव किच्चा दाहिणिल्लेसु नागकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

[१४०] वहाँ से च्यव कर वह मनुष्य शरीर प्राप्त करेगा, फिर केवलबोधि आदि पूर्ववत् सब वर्णन जानना, यावत् प्रव्रजित होकर चारित्र की विराधना करके काल के समय मे काल करके दक्षिणनिकाय के नागकुमार देवो मे देवरूप से उत्पन्न होगा।

१४१. से ण ततोहिंतो अणतर० एव एएणं अभिलावेण दाहिणिल्लेसु सुवण्णकुमारेसु, दाहिणिल्लेसु विज्जुकुमारेसु, एव अग्गिकुमारवज्ज जाव दाहिणिल्लेसु थणियकुमारेसु०।

[१४१] वहाँ से च्यव कर वह मनुष्यशरीर प्राप्त करेगा, इत्यादि वर्णन पूर्ववत्। यावत् इसी प्रकार के पूर्वोक्त अभिलाप के अनुसार कहना। (विशेष यह है कि श्रामण्य विराधना करके वह क्रमश) दक्षिणनिकाय के सुपर्णकुमार देवो मे उत्पन्न होगा, फिर (इसी प्रकार) दक्षिणनिकाय के विद्युत्कुमार देवो मे उत्पन्न होगा, इसी प्रकार अग्निकुमार देवो को छोड कर यावत् दक्षिणनिकाय के स्तनितकुमार देवो मे देवरूप से उत्पन्न होगा।

१४२. से णं ततो जाव उव्वट्टित्ता माणुस्स विग्गह लभिहिति जाव विराहियसामण्णे जोतिसिएसु देवेसु उववज्जिहिति।

[१४२] वह वहाँ से यावत् निकल कर मनुष्य शरीर प्राप्त करेगा यावत् श्रामण्य की विराधना करके ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होगा ।

१४३. से णं ततो अणतर चयं चइत्ता माणुस्स विग्गह लभिहिति, केवल वोहिं वुज्झिहिति जाव अविराहियसामण्णे कालमाले कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति ।

[१४३] वह वहाँ मे च्यव कर मनुष्य-शरीर प्राप्त करेगा, फिर केवलवोधि (सम्यक्त्व) प्राप्त करेगा । यावत् चारित्र (श्रामण्य) की विराधना किये विना (आराधक होकर) काल के अवसर मे काल करके सौधर्म कल्प मे देव के रूप मे उत्पन्न होगा ।

१४४. से णं ततोहिंतो अणंतर चय चइत्ता माणुस्स विग्गह लभिहिति, केवल वोहिं वुज्झिहिति । तत्थ वि णं अविराहियसामण्णे कालमासे काल किच्चा ईसाणे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति ।

[१४४] उसके पश्चात् वह वहाँ से च्यव कर मनुष्य शरीर प्राप्त करेगा, केवलवोधि भी प्राप्त करेगा । वहाँ भी वह चारित्र की विराधना किये विना काल के समय मे काल करके ईशान देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न होगा ।

१४५. से ण तओहिंतो अणतरं चय चइत्ता माणुस्स विग्गह लभिहिति, केवलं वोहिं वुज्झिहिति । तत्थ वि ण अविराहियसामण्णे कालमासे काल किच्चा सणकुमारे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति ।

[१४५] वह वहाँ से च्यव कर मनुष्य-शरीर प्राप्त करेगा, केवलवोधि प्राप्त करेगा । वहाँ भी वह चारित्र की विराधना किये विना काल के अवसर मे काल करके सनत्कुमार कल्प मे देवरूप मे उत्पन्न होगा ।

१४६. से ण ततोहिंतो एव जहा सणंकुमारे तहा वम्भलोए महासुक्के आणए आरणे० ।

[१४६] वहाँ से च्यव कर, जिस प्रकार सनत्कुमार देवलोक मे उत्पन्न होने का कहा, उसी प्रकार ब्रह्मलोक, महाशुक्र, आनत और आरण देवलोको मे उत्पत्ति के विषय मे कहना चाहिए ।

१४७. से णं ततो जाव अविराहियसामण्णे कालमासे काल किच्चा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति ।

[१४७] वहाँ से च्यव कर वह मनुष्य होगा, यावत् चारित्र की विराधना किये विना काल के अवसर मे काल करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे देव के रूप मे उत्पन्न होगा ।

विवेचन—प्रस्तुत तेरह सूत्रो (सू १३५ से १४७ तक) मे सुमगल अनगार द्वारा रथ-सारथि-अश्वसहित गोशालक के जीव विमलवाहन को भस्म किये जाने से लेकर भविष्य मे सात नरक, खेचर, भुजपरिसर्प, उर परिसर्प, स्थलचर चतुष्पद, जलचर, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय तथा वनस्पति-काय, वायुकाय, तेजस्काय, अप्काय एव पृथ्वीकायिक जीवो मे अनेक लाख वार उत्पन्न होने की,

तत्पश्चात् स्त्री, भार्या, (ब्राह्मणपुत्री), मनुष्य, विराधक होकर असुरकुमार आदि देवो मे, तथा आराधक मानव होकर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशुक्र, आनत और आरण आदि देवलोको मे क्रमश मनुष्य होकर उत्पन्न होने की, और अन्त मे सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे उत्पन्न होने की प्ररूपणा की गई है। इस प्रकार गोशालक के भावी भवभ्रमण का कथन किया गया है।[1]

विमलवाहन राजा का विभिन्न नरको मे उत्पन्न होने का कारण और क्रम—इस प्रकरण मे असज्ञी आदि जीवो की रत्नप्रभादि नरको मे उत्पत्ति होने के सम्बन्ध मे निम्नोक्त गाथा द्रष्टव्य है—

असण्णी खलु पढम, दोच्च च सिरीसिवा तइय पक्खी।
सीहा जंति चउत्थि, उरगा पुण पंचमि पुढवि॥
छट्ठि च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तमि पुढवि॥

अर्थात्—असज्ञी जीव प्रथम नरक तक ही जा सकते है। सरीसृप द्वितीय, पक्षी तृतीय, सिंह चतुर्थ, सर्प पचम, स्त्री षष्ठ और मत्स्य तथा मनुष्य सप्तम नरक तक जाते है।[2]

खेचर पक्षियो के प्रकार और लक्षण—(१) **चर्म पक्षी**—चर्म की पाखो वाले पक्षी, यथा—चमगादड आदि। (२) **रोम (लोम) पक्षी**—रोम की पाखो वाले पक्षी। ये दोनो प्रकार के पक्षी मनुष्य क्षेत्र के भीतर और बाहर होते हैं, जैसे हस आदि (३) **समुद्गक पक्षी**—जिनकी पाखे हमेशा पेटी की तरह वद रहती है। (४) **वितत पक्षी**—जिनकी पाखे हमेशा विस्तृत-खुली हुई रहती हो। ये दोनो प्रकार के पक्षी मनुष्यक्षेत्र से बाहर ही होते है।[3]

पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो में उत्पत्ति : सान्तर या निरन्तर ?—यहाँ पचेन्द्रिय तिर्यञ्चजीवो मे अनेक लाख भवो तक पुन पुन उत्पन्न होने का जो कथन किया गया है, वह सान्तर समझना चाहिए, निरन्तर नही, क्योकि पचेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्य के भव निरन्तर सात या आठ से अधिक नही किये जा सकते हैं। जैसे कि कहा गया है—

'पंचिदिय-तिरिय-नरा सत्तट्ठभवा भवग्गहेण'

अर्थात्—पचेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्य के निरन्तर सात या आठ भव ही ग्रहण किये जा सकते हैं।[4]

चारित्राराधना का स्वरूप—चारित्र-आराधना का स्वरूप एक आचार्य ने इस प्रकार बताया है—

आराहणा य एत्थ चरण-पडिवत्ति-समयओ पभिई।
आमरणतमजस्स सजम-परिपालणं विहिणा॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७३७ से ७४१ तक

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९३

३ वही, पत्र ६९३

४ वही, पत्र ६९३

अर्थात्—चारित्र अंगीकार करने के समय से लेकर मरण-पर्यन्त निरन्तर विधिपूर्वक निरतिचार संयम का परिपालन करना (चारित्र की) आराधना कही गई है।[1]

चारित्रप्राप्ति के अठारह भवों की संगति—विमलवाहन राजा (गोशालक के जीव) के चारित्रप्राप्ति (प्रतिपत्ति) के भव, अग्निकुमार देवों को छोड कर भवनपति और ज्योतिष्कदेवो के विराधनायुक्त भव दस कहे हैं, तथा अविराधनायुक्त (आराधनायुक्त) भव सौधर्मकल्प से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक सात और आठवाँ सिद्धिगमन रूप अन्तिम भव, यों ८ भव होते है। अर्थात्—गोशालक के विराधित और अविराधित दोनो को मिलाने से १८ भव होते हैं, किन्तु सिद्धान्त यह है कि 'अट्ठभवाउ चरित्ते' इस कथनानुसार चारित्रप्राप्ति आठ भव तक ही होती है। फिर इस पाठ की संगति कैसे होगी? इस विषय मे समाधान इस प्रकार है कि यहाँ दस भव जो चारित्र-विराधना के बतलाए हैं, वे द्रव्यचारित्र की अपेक्षा से समझना चाहिए। अर्थात्—उन भवो मे उसे भावचारित्र की प्राप्ति नहीं हुई थी। चारित्र-क्रिया की विराधना होने से उसे विराधक बतलाया है। जैसे—अभव्यजीव चारित्र-क्रिया के आराधक होकर ही नौ ग्रैवेयक तक जाते हैं, किन्तु उन्हे वास्तविक (भाव) चारित्र की प्राप्ति नही होती। इसी प्रकार यहाँ भी दस भवों मे चारित्र की प्राप्ति, द्रव्य-चारित्र की प्राप्ति समझनी चाहिए। इस प्रकार समझने से कोई भी सैद्धान्तिक आपत्ति नही आती।[2] यही कारण है कि चारित्र-विराधना के कारण उसकी असुरकुमारादि देवो मे उत्पत्ति हुई वैमानिकों मे नही।

कठिन-शब्दार्थ—**सत्थवज्झे**—शस्त्रवध्य—शस्त्र से मारे जाने योग्य। **दाहवक्कतीए**—दाह-ज्वर की वेदना मे। **खहयर-विहाणाइं**—खेचर जीवों के विधान—भेद। **अणेगसय-सहस्सखुत्तो**—अनेक लाख बार। **एगखुराणं**—एक खुर वाले अश्व आदि मे। **दुखुराण**—दो खुर वाले गाय आदि मे। **गंडीपयाणं**—गण्डीपदो मे—हाथी आदि मे। **सणहप्पयाण**—सिंह आदि सनख (नखसहित) पैर (पंजे) वाले जीवों मे। **रुक्खाणं**—वृक्षो मे। वृक्ष दो प्रकार के होते है—एक अस्थिक (गुठली) वाले जैसे आम, नीम आदि, और बहुबीजक (अनेक बीज वाले। जैसे—अस्थिक, तिन्दुक आदि। **उस्सन्नं**—बहुलता मे, अधिकांश रूप से, प्राय। **अंतोखरियत्ताए**—नगर के भीतर वेश्या (विशिष्ट वेश्या) के रूप मे। **बाहिं खरियत्ताए**—नगर के बाहर की वेश्या (सामान्य वेश्या) के रूप मे। **उस्साण**—अवश्याय-ओस के जीवों मे। **दारियत्ताए**—कन्या के रूप मे। **पडिरूवएण सुक्केण**—अनुरूप (उचित) शुल्क (द्रव्यदान) से। **तेल्लकेला**—तेल का भाजन (कुप्पी)। **चेलपेडा**—वस्त्र की पेटी-सन्दूक। कुलघर—पितृगृह को। **णिज्जमाणी**—ले जाई जाती हुई। **दाहिणिल्लेसु**—दक्षिण दिशा के, दक्षिण-निकाय के। **केवल बोहिं**—सम्यक्त्व। **विराहिय-सामण्णे**—जिसने चारित्र की विराधना की।[3]

गोशालक का अन्तिम भव—महाविदेह क्षेत्र में दृढप्रतिज्ञ केवली के रूप मे मोक्षगमन

१४८ से णं ततोहिंतो अणंतरं चयं चयित्ता महाविदेहे वासे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति—अड्ढाइं जावं अपरिभूयाइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिति। एवं जहा उववातिए

---

१ वही, पत्र ६९७

२ वही, पत्र ६९५

३. वही, पत्र ६९३, ६९७

दढप्पतिण्णवत्तव्वता सच्चेव वत्तव्वता निरवसेसा भाणितव्वा जाव केवलवरनाण-दसणे समुप्पज्जिहिति ।

[१४८] वहाँ से बिना अन्तर के च्यव कर महाविदेहक्षेत्र मे, जो ये कुल है, जैसे कि—आढ्य यावत् अपराभूत कुल, तथाप्रकार के कुलो मे पुरुप (पुत्र) रूप से उत्पन्न होगा। जिस प्रकार औपपातिक सूत्र मे दृढप्रतिज्ञ की वक्तव्यता कही गई है, वही समग्र वक्तव्यता, यावत्—उत्तम केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न होगा, (यहाँ तक) कहनी चाहिये।

१४९. तए ण से दढप्पतिण्णे केवली अप्पणो तीयद्धं आभोएहिइ, अप्प० आ० २ समण निग्गथे सद्दावेहिति, सम० स० २ एव वदिहिइ—'एवं खलु अहं अज्जो ! इतो चिरातीयाए अद्धाए गोसाले नाम मखलिपुत्ते होत्था समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगए, तम्मूलगं च णं अह अज्जो ! अणादीय अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरत संसारकंतार अणुपरियट्टिए। तं मा ण अज्जो ! तुब्भ वि केयि भवतु आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए आयरिय-उवज्झायाण अयसकारए अवण्णकारए अकित्तिकारए, मा णं से वि एवं चेव अणादीयं अणवयग्ग जाव संसारकंतार अणुपरियट्टिहिति जहा ण अहं'।

[१४९] तदनन्तर (गोशालक का जीव) दृढप्रतिज्ञ केवली अतीत काल को उपयोगपूर्वक देखेंगे। अतीतकाल—निरीक्षण कर वे श्रमण-निर्ग्रन्थो को अपने निकट बुलाएँगे और इस प्रकार कहेंगे—हे आर्यो ! मैं आज से चिरकाल पहले गोशालक नामक मखलिपुत्र था। मैंने श्रमणो की घात की थी। यावत् छद्मस्थ अवस्था मे ही कालधर्म को प्राप्त हो गया था। आर्यो ! उसी महापाप-मूलक (पापकर्म बन्ध के फलस्वरूप) मैं अनादि-अनन्त और दीर्घमार्ग वाले चारगतिरूप ससार-कान्तार (अटवी) मे वारबार पर्यटन (परिभ्रमण) करता रहा। इसलिए हे आर्यो ! तुम मे से कोई (भूलकर) भी आचार्य-प्रत्यनीक (आचार्य के द्वेषी), उपाध्याय-प्रत्यनीक (उपाध्याय के विरोधी) आचार्य और उपाध्याय के अपयश (निन्दा) करने वाले, अवर्णवाद करने वाले और अकीर्ति करने वाले मत होना और जैसे मैंने अनादि-अनन्त यावत् ससार-कान्तार का परिभ्रमण किया, वैसे तुम लोग भी ससाराटवी मे परिभ्रमण मत करना।

१५०. तए ण ते समणा निग्गथा दढप्पतिण्णस्स केवलिस्स अतियं एयमट्ठ सोच्चा निसम्म भीया तत्था तसिता ससारभउव्विग्गा दढप्पतिण्ण केवलिं वदिहिंति नमसिहिंति, व० २ तस्स ठाणस्स आलोएहिंति निंदिहिंति जाव पडिवज्जिहिंति।

[१५०] उस समय दृढप्रतिज्ञ केवली से यह बात सुनकर और अवधारण कर वे श्रमण-निर्ग्रन्थ भयभीत होगे, त्रस्त होगे, और ससार के भय से उद्विग्न होकर दृढप्रतिज्ञ केवली को वन्दना-नमस्कार करेगे। वन्दना-नमस्कार करके वे (अपने-अपने) उस (पाप-) स्थान की आलोचना और निन्दना करेगे यावत् तपश्चरण स्वीकार करेगे।

१५१. तए ण से दढप्पतिण्णे केवली बहूइ वासाइ केवलिपरियाग पाउणेहिति, बहू० पा० २ अप्पणो आउसेसं जाणेत्ता भत्तं पच्चक्खाहिति एव जहा उववातिए जाव सव्वदुक्खाणमत काहिति ।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति जाव विहरति ।

।। तेयनिसग्गो समत्तो ।।

।। समत्त च पण्णरसम सय एक्कसरय ।। १५ ।।

[१५१] इसके बाद दृढप्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवलज्ञानी-पर्याय का पालन करेंगे, फिर अपना आयुष्य-शेष (थोडा-सा आयुष्य शेष) जान कर भक्तप्रत्याख्यान (सथारा) करेंगे । इस प्रकार औपपातिक सूत्र के कथनानुसार वे यावत् सर्वदु खो का अन्त करेंगे ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १४८ से १५१) मे गोशालक के जीव के अन्तिम भव—महाविदेहक्षेत्र मे जन्म और दृढप्रतिज्ञ केवली होकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने तक का वर्णन है । साथ ही यह भी प्रेरणात्मक वर्णन है कि उन्होने अपने केवलज्ञान के आलोक मे अपने अनादि-अनन्त ससार-परिभ्रमण का घटनाचक्र देख कर अपने अनुभव से अनुगामी श्रमणो से भी आचार्यादि के प्रति द्वेष, विरोध, अविनय, आशातना आदि न करने का उपदेश दिया । जिसे श्रमणो ने शिरोधार्य किया और आलोचनादि करके वे शुद्ध हुए ।[1]

पण्णरसमं सयं एक्कसरयं : आशय—इस शतक की पूर्णाहुति मे **'एक्कसरय'** शब्द है जिसका अर्थ हेमचन्द्राचार्य ने किया है—'एक्कसरिय' पद अव्यय है, उसका अर्थ है—शीघ्र, झटपट । आशय यह है कि वर्तमान मे इस शतक के सम्बन्ध मे ऐसी धारणा है कि इस शतक को झटपट एक दिवस मे ही पढना-पढाना चाहिए । अगर एक दिन मे यह शतक पूर्ण न हो तो जब तक इसका अध्ययन-अध्यापन चालू रहे, तब तक आयम्बिल करना चाहिए ।[2]

पुमत्ताए : पुत्तताए : दो पाठ : दो अर्थ—(१) पुरुष के रूप मे, अथवा (२) पुत्र के रूप मे ।[3]

।। तेजोनिसर्ग समाप्त ।।

पन्द्रहवां : एकस्मरिक शतक समाप्त

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७४१-७४२

२ वही, पृ. ७४२

३ वही, पृ ७४२

सोलसमं सयं : सोलहवाँ शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र के सोलहवे शतक मे—चौदह उद्देशक है, जिनमे क्रिया, जरा, कर्म, कर्मक्षय-सामर्थ्य, देव की विपुल वैक्रियशक्ति एव ऋद्धि, स्वप्न, उपयोग, लोकस्वरूप, बलीन्द्रसभा, अवधिज्ञान तथा भवनपति देवो मे आहारादि की समानता-असमानता, आध्यात्मिक, शारीरिक, सामाजिक, भौगोलिक एव दैवीशक्ति आदि विविध विषयो का समावेश किया गया है ।

* **प्रथम उद्देशक** मे एहरन पर हथौडा मारते समय दूसरे पदार्थ के स्पर्श से वायुकाय का हनन, सिगडी मे अग्निकाय की स्थिति, भट्ठी मे लोहा तपाते समय तप्त लोहे को सडासी से उठाने, नीचे रखने, एहरन पर रखने आदि मे कर्ता एव साधन आदि को लगने वाली क्रियाओ की तथा जीव के अधिकरणी एव अधिकरण होने की सयुक्तिक चर्चा-विचारणा की गई है तथा विविध शरीरो इन्द्रियो और योगो को बाधते हुए चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के अधिकरणी-अधिकरण होने की भी चर्चा की गई है ।

* **द्वितीय उद्देशक** मे सर्वप्रथम चौवीसदण्डकवर्ती जीवो मे जरा और शोक किनको और क्यो होता है ? इसका निरूपण करके शक्रेन्द्र के आगमन, उसके द्वारा किया गया अवग्रह-सम्बन्धी प्रश्न, शक्रेन्द्र के कथन की सत्यता, सम्यग्वादिता, उसकी सावद्य-निरवद्य भाषा, उसकी भव्यता-अभव्यता, तथा सम्यग्दृष्टित्व-मिथ्यादृष्टित्व आदि की चर्चा की गई है तथा अन्त मे जीवो के कर्म चैतन्यकृत होते हैं या अचैतन्यकृत, इसका समाधान किया गया है ।

* **तृतीय उद्देशक** मे सर्वप्रथम कर्मप्रकृतियो के बन्ध, वेदन आदि के सह-अस्तित्व की चर्चा की गई है । तदनन्तर श्रमण के अर्शछेदन करने मे वैद्य और श्रमण को लगने वाली क्रियाओ का निरूपण किया गया है ।

* **चतुर्थ उद्देशक** मे विविध कोटि के तपस्वी श्रमण जितने कर्मों का क्षय करते हैं, उतने कर्म नैरयिक जीव सैकडो, हजारो, लाखो, करोडो वर्षों मे खपाता है । यह सोदाहरण-सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है ।

* **पचम उद्देशक** मे शक्रेन्द्र के द्वारा भगवान् से किये गए सक्षिप्त प्रश्नो का सक्षिप्त उत्तर तथा उसका प्रत्यागमन, गौतमस्वामी द्वारा शक्रेन्द्र के शीघ्र लौट जाने के कारण की पृच्छा के उत्तर मे भगवान् ने महाशुक्र कल्पस्थित गगदत्त देव के आगमन, तथा उसके देव बनने का कारण एव भविष्य मे महाविदेहक्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का वृत्तान्त बताया है ।

※ छठे उद्देशक मे स्वप्नदर्शन, उसके प्रकार, स्वप्नदर्शन कब, कैसे और किस अवस्था मे होता है ? स्वप्न के भेद-प्रभेद तथा कौन कैसे स्वप्न देखता है ? एव तीर्थंकरादि की माता कितने-कितने स्वप्न देखती है ? तथा भ महावीर के दस महास्वप्नो तथा उनकी फलनिष्पत्ति का वर्णन है। अन्त मे, मोक्षफलदायक १४ सूत्रो का प्रतिपादन किया गया है।

※ सातवें उद्देशक मे उपयोग और उसके भेदो का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

※ आठवे उद्देशक मे लोक की लम्बाई-चौडाई के परिमाण का, तथा लोक के पूर्वादि विविध चरमान्तो मे जीव, जीव के देश, जीव के प्रदेश, अजीव, अजीव के देश एव अजीव के प्रदेश, तथा तदनन्तर रत्नप्रभापृथ्वी से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक मे जीवादि छहो के अस्तित्व-नास्तित्व के विषय मे शका-समाधान है। तत्पश्चात् परमाणु की एक समय मे लोक के सभी चरमान्तो मे गति-सामर्थ्य की, एव अन्त मे वर्षा का पता लगाने के लिए हाथपैर आदि सिकोडने-पसारने वाले को लगने वाली पाच क्रियाओ की तथा अलोक मे देव के गमन की असमर्थता की प्ररूपणा की गई है।

※ नौवें उद्देशक मे वैरोचनेन्द्र बली की सुधर्मा सभा के स्थान का सक्षिप्त वर्णन है।

※ दसवें उद्देशक मे अवधिज्ञान के प्रकार का प्रज्ञापना के ३३ वे अवधिपद के अतिदेशपूर्वक वर्णन किया गया है।

※ ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें उद्देशक मे क्रमश द्वीपकुमार, उदधिकुमार दिशाकुमार और स्तनितकुमार नामक भवनपतिदेवो के आहार उच्छ्वास-नि श्वास, लेश्या, आयुष्य आदि की एक दूसरे मे समानता-असमानता के विषय मे शका-समाधान प्रस्तुत किये गए हैं।

※ इस प्रकार चौदह उद्देशक कुल मिला कर रोचक, तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सवर्द्धक सामग्री से परिपूर्ण है।※

□□

※ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पण युक्त) पृ. ७४३ से ७७२ तक

सोलसमं सयं : सोलहवाँ शतक

सोलहवें शतक के उद्देशको के नाम

१. अहिकरणि १ जरा २ कम्मे ३ जावतिय ४ गगदत्त ५ सुमिणे य ६ ।
उवयोग ७ लोग ८ बलि ९ ओहि १० दीव ११ उदही १२ दिसा १३ थणिया १४ ॥१॥

[१] सोलहवे शतक मे चौदह उद्देशक है । यथा—(१) अधिकरणी, (२) जरा, (३) कर्म, (४) यावतीय, (५) गगदत्त, (६) स्वप्न, (७) उपयोग, (८) लोक, (९) बलि, (१०) अवधि, (११) द्वीप, (१२) उदधि, (१३) दिशा और (१४) स्तनित ॥ १ ॥

विवेचन—सोलहवें शतक के प्रतिपाद्य विषय—सोलहवे शतक के चौदह उद्देशको मे क्रमश ये विषय है—(१) **प्रथम उद्देशक 'अधिकरणी'** मे अधिकरणी अर्थात् एहरन के विषय मे निरूपण है । (२) **द्वितीय उद्देशक** मे **'जरा'** आदि अर्थ-विषयक कथन है । (३] **तृतीय उद्देशक** मे **कर्म**-विषयक कथन है । (४) **चतुर्थ उद्देशक** का नाम **'यावतीय'** है, क्योकि इसके प्रारम्भ मे **यावतीय** (जावतिय) शब्द है । इसमे कर्मक्षय करने मे विविध श्रमणो एव नारको मे तारतम्य का कथन है । (५) **पंचम उद्देशक** मे **गंगदत्त**—सम्बन्धी जीवनवृत्तान्त है । (६) **छठे उद्देशक** मे **स्वप्न**-सम्बन्धी मीमासा की गई है (७) **सप्तम उद्देशक** मे **उपयोग**-विषयक प्रतिपादन है । (८) **अष्टम उद्देशक** मे **लोकस्वरूप** विषयक कथन है (९) **नौवें उद्देशक** मे बलीन्द्र-विषयक वक्तव्यता है (१०) **दसवें उद्देशक** मे **अवधिज्ञान**-विषयक वक्तव्यता है । (११) **ग्यारहवें उद्देशक** मे **द्वीपकुमार**-विषयक कथन है । (१२) **बारहवें उद्देशक** मे **उदधिकुमार**-विषयक कथन है । (१३) **तेरहवें उद्देशक** मे **दिशाकुमार**-विषयक कथन है, और (१४) **चौदहवें उद्देशक** मे **स्तनितकुमार**-विषयक कथन है ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९६ ६९७

पढमो उद्देसओ : अहिगरणी

प्रथम उद्देशक : अधिकरणी

अधिकरणी मे वायुकाय की उत्पत्ति और विनाश सम्बन्धी निरूपण

२. तेण कालेण तेण समएण रायगिहे जाव पज्जुवासमाणे एव वदासि—

[२] उस काल उस समय मे राजगृह नगर मे यावत् पर्युपासना करते हुए गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

३. अत्थि ण भते ! अधिकरणिसि वाउयाए वक्कमइ ?

हता, अत्थि ।

[३ प्र] भगवन् ! क्या अधिकरणी (एहरन) पर (हथौडा मारते समय) वायुकाय उत्पन्न होता है ?

[३ उ] हाँ गौतम ! (वायुकाय उत्पन्न) होता है ।

४. से भते ! किं पुट्ठे उद्दाइ, अपुट्ठे उद्दाइ ?

गोयमा ! पुट्ठे उद्दाइ, नो अपुट्ठे उद्दाइ ।

[४ प्र] भगवन् ! उस (वायुकाय) का (किसी दूसरे पदार्थ के साथ) स्पर्श होने पर वह मरता है या विना स्पर्श हुए ही मर जाता है ?

[४ उ.] गौतम ! उसका दूसरे पदार्थ के साथ स्पर्श होने पर ही वह मरता है, विना स्पर्श हुए नही मरता ।

५. से भते ! किं ससरीरे निक्खमइ, असरीरे निक्खमइ ?

एव जहा खंदए (स० २ उ० १ सु० ७[३]) जाव से तेणट्ठेण जाव असरीरे निक्खमति ।

[५ प्र] भगवन् ! वह (मृत वायुकाय) शरीरसहित (भवान्तर मे निकल कर) जाता है या शरीररहित जाता है ?

[५ उ] गौतम ! इस विषय मे (द्वितीय शतक, प्रथम उद्देशक सू ७/३ मे उक्त) स्कन्दक—प्रकरण के अनुसार, यावत्—शरीर-रहित हो कर नही जाता, (यहाँ तक) जानना चाहिए ।

विवेचन—प्रश्न, अन्तःप्रश्न : आशय—तृतीयसूत्रगत प्रश्न का आशय यह है कि एहरन पर हथौडा मारते समय एहरन और हथौडे के अभिघात से वायुकाय उत्पन्न होता है या विना अभिघात के ही होता है ?, समाधान है—अभिघात से उत्पन्न होता है, और वह वायुकाय अचित्त होता है, किन्तु उससे सचित्त वायु की हिंसा होती है। अर्थात्—उत्पन्न होते समय वह अचित्त होता है, पीछे वह सचित्त हो जाता है ।

पृथ्वीकायादि पाच स्थावरो के साथ जब विजातीय जीवो का तथा विजातीय स्पर्श वाले पदार्थों का सघर्ष होता है, तब उनके शरीर का घात होता है या विना स्पर्श आदि से ही होता है ? इसी आशय से अन्त प्रश्न किया गया है। उत्तर मे कहा गया है कि किसी दूसरे पदार्थ (अचित्त वायु आदि का) स्पर्श होने पर ही वायुकाय के जीव मरते है, विना स्पर्श हुए नही। यह कथन सोपक्रम आयुष्य की अपेक्षा से है। तीसरा प्रश्न है—जीव परभव मे सशरीर जाता है, या शरीररहित होकर ? इसका उत्तर यह है कि जीव तैजस-कार्मण शरीर की अपेक्षा से शरीरसहित जाता है और औदारिक शरीर आदि की अपेक्षा से शरीररहित होकर जाता है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अधिकरणसि—लोहादि कूटने के लिए जो नीचे रखा जाता है, वह (एहरन) अर्थात् एहरन पर हथौडे से चोट मारते समय। **पुट्ठे**—स्वकाय-शस्त्र आदि से स्पृष्ट होने पर। **निक्खमइ**—निकलता है।[2]

अंगारकारिका मे अग्निकाय की स्थिति का निरूपण

६. इगालकारियाए ण भते ! अगणिकाए केवतिय कालं सचिट्ठइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिन्नि रातिंदियाइं। अन्ने वि तत्थ वाउयाए वक्कमति, न विणा वाउकाएण अगणिकाए उज्जलति।

[६ प्र] भगवन् ! अगारकारिका (सिगडी) मे अग्निकाय कितने काल तक (सचित्त) रहता है ?

[६ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन रातदिन तक सचित्त रहता है। वहाँ अन्य वायुकायिक जीव भी उत्पन्न होते है, क्योकि वायुकाय के विना अग्निकाय प्रज्वलित नही होता।

विवेचन—अग्निकाय की स्थिति—अग्निकाय चाहे सिगडी मे हो या अन्य चूल्हे आदि मे, उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन अहोरात्र की है।

इगालकारियाए· अर्थ—जो अगारो को करती है, वह अगारकारिका—अग्निकारिका—अग्निशकटिका है। उसे देशीभाषा मे 'सिगडी' कहते हैं।

अग्नि और वायु का सम्बन्ध—'यत्राग्निस्तत्र वायु' इस नियमानुसार जहाँ अग्नि होती है, वहाँ वायु अवश्य होती है। अर्थात्—अग्निकाय के साथ वायुकाय के जीव भी उत्पन्न होते है।[3]

तप्त लोह को पकड़ने मे क्रियासम्बन्धी प्ररूपणा

७. पुरिसे णं भते ! अयं अयकोट्ठंसि अयोमयेण संडासएणं उव्विहमाणे वा पव्विहमाणे वा कतिकिरिए ?

गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे अयं अयकोट्ठंसि अयोमयेणं संडासएण उव्विहति वा पव्विहति

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९७
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २५०५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९७-६९८

३. भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९८

वा ताव च ण से पुरिसे काइयाए जाव पाणातिवायकिरियाए पर्चाहि किरियाहिं पुट्ठे, जेसि पि य णं जीवाण सरीरेहिंतो अये निव्वत्तिए, अयकोट्ठे निव्वत्तिए, सडासए निव्वत्तिए, इगाला निव्वत्तिया, इंगालकड्ढणी निव्वत्तिया, भत्था निव्वत्तिया, ते वि ण जीवा काइयाए जाव पर्चाहि किरियाहिं पुट्ठा ।

[७ प्र] भगवन् ! लोहा तपाने की भट्टी (अय.कोष्ठ) मे तपे हुए लोहे को लोहे की सडासी से (पकड कर) ऊँचा-नीचा करने (ऊपर उठाने और नीचे करने) वाले पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[७ उ] गौतम ! जब तक वह पुरुष लोहा तपाने की भट्टी मे लोहे की सडासी से (पकडकर) लोहे को ऊँचा या नीचा करता है, तब तक वह पुरुष कायिकी मे लेकर प्राणातिपातिकी क्रिया तक पाचो क्रियाओ से स्पृष्ट होता है । तथा जिन जीवो के शरीर से लोहा बना है, लोहे की भट्टी बनी है, सडासी बनी है, अगारे बने है, अगारे निकालने की लोहे की छड (यष्टि) बनी है, और धमण बनी है, वे सभी जीव भी कायिकी से लेकर यावत् प्राणातिपातिकी तक पाचो क्रियाओ से स्पृष्ट होते हैं ।

८. पुरिसे ण भते ! अय अयकोट्ठाओ अयोमएण सडासएण गहाय अहिकरणिसि उक्खिवमाणे वा निक्खिवमाणे वा कतिकिरिए ?

गोयमा ! जावं च ण से पुरिसे अय अयकोट्ठाओ जाव निक्खिवति वा ताव च ण से पुरिसे काइयाए जाव पाणातिवायकिरियाए पर्चाहि किरियाहिं पुट्ठे, जेसि पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो अये निव्वत्तिए, सडासए निव्वत्तिते, चम्मेट्ठे निव्वत्तिए, मुट्ठिए निव्वत्तिए, अधिकरणी णिव्वत्तिता, अधिकरणिखोडी णिव्वत्तिता, उदगदोणी णि०, अधिकरणसाला निव्वत्तिया ते वि ण जीवा काइयाए जाव पर्चाहि किरियाहिं पुट्ठा ।

[८ प्र] भगवन् ! लोहे की भट्टी मे से, लोहे को, लोहे की सडासी से पकड कर एहरन (अधिकरणी) पर रखते और उठाते हुए पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[८ उ] गौतम ! जब तक लोहा तपाने की भट्टी मे से लोहे को सडासी से पकड कर यावत् रखता है, तब तक वह पुरुष कायिकी यावत प्राणातिपातिकी तक पाचो क्रियाओ से स्पृष्ट होता है । जिन जीवो के शरीर मे लोहा बना है, सडासी बनी है, घन बना है, हथौडा बना है, एहरन बनी है, एहरन का लकडा बना है गर्म लोहे को ठडा करने की उदकद्रोणी (कुण्डी) बनी है, तथा अधिकरण-शाला (लोहार का कारखाना) बनी है, वे जीव भी कायिकी आदि पाचो क्रियाओ से स्पृष्ट होते है ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ७-८) मे लोहे की भट्टी मे लोहे को सडासी से पकड कर ऊँचा नीचा करने वाले या भट्टी से एहरन पर रखने उठाने वाले व्यक्ति को तथा जिन जीवो के शरीर से लोहा तथा उपकरण बने है, उन सबको कायिकी से लेकर प्राणातिपातिकी तक पाचो क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है ।

पाच क्रियाओ के नाम—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी । इनका स्वरूप पहले बताया जा चुका है ।

कठिनशब्दार्थ—अय—लोहे को, अयकोट्ठंसि—लोहा तपाने की भट्टी मे। उव्विहमाणे—पव्विहमाणे—ऊँचा-नीचा करते हुए। पुट्ठे—स्पृष्ट। णिव्वत्तिए—निष्पन्न (निर्वर्तित)—बनी हुई। इंगालकड्ढणी—अगारे निकालने की लोहे की छड (यष्टि)। भत्था—धमण। उक्खिवमाणे—णिक्खिवमाणे—निकालने और डालते या रखते-उठाते। चम्मेट्ठे—घन। मुट्ठिए—हथौडा। अधिकरणिखोडी—एहरन का लकडा। उदगदोणी—पानी की कुण्डी। अधिकरणसाला—लुहारशाला।[1]

जीव और चौवीस दण्डको मे अधिकरणी-अधिकरण, साधिकरणी-निरधिकरणी, आत्माधिकरणी आदि तथा आत्मप्रयोगनिर्वर्तित आदि अधिकरणसम्बन्धी निरूपण

९. [१] जीवे णं भंते! किं अधिकरणी, अधिकरणं?

गोयमा! जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं पि।

[९-१ प्र] भगवन्! जीव अधिकरणी है या अधिकरण?

[९-१ उ] गौतम! जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी।

[२] से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति 'जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं पि'?

गोयमा! अविरतिं पडुच्च, से तेणट्ठेणं जाव अहिकरणं पि।

[९-२ प्र] भगवन्! किस कारण से यह कहा जाता है कि जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी?

[९-२ उ] गौतम! अविरति की अपेक्षा जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।

१०. नेरतिए णं भंते! किं अधिकरणी, अधिकरणं?

गोयमा! अधिकरणी वि, अधिकरणं पि। एवं जहेव जीवे तहेव नेरइए वि।

[१० प्र] भगवन्! नैरयिकजीव अधिकरणी है या अधिकरण?

[१० उ] गौतम! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है। जिस प्रकार (सामान्य) के विषय मे कहा उसी प्रकार नैरयिक के विषय मे भी जानना चाहिए।

११. एवं निरंतरं जाव वेमाणिए।

[११] इसी प्रकार लगातार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए।

१२. [१] जीवे णं भंते! किं साहिकरणी, निरधिकरणी?

गोयमा! साहिकरणी, नो निरहिकरणी।

[१२-१ प्र] भगवन्! जीव साधिकरणी है या निरधिकरणी?

[१२-१ उ] गौतम! जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नही।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९७

(ख) भगवती, (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ. २५०७

[२] से केणट्ठेणं० पुच्छा।

गोयमा ! अविरतिं पडुच्च, से तेणट्ठेण जाव नो निरहिकरणी।

[१२-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा गया ? इत्यादि प्रश्न।

[१२-२ उ.] गौतम ! अविरति की अपेक्षा जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नहीं।

१३. एवं जाव वेमाणिए।

[१३] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

१४. [१] जीवे णं भंते ! किं आयाहिकरणी, पराहिकरणी, तदुभयाधिकरणी ?

गोयमा ! आयाहिकरणी वि, पराधिकरणी वि, तदुभयाहिकरणी वि।

[१४-१ प्र] भगवन् ! जीव आत्माधिकरणी है, पराधिकरणी है, अथवा उभयाधिकरणी है ?

[१४-१ उ] गौतम ! जीव आत्माधिकरणी भी है पराधिकरणी भी है और तदुभयाधिकरणी भी है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति जाव तदुभयाधिकरणी वि ?

गोयमा ! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेण जाव तदुभयाधिकरणी वि।

[१४-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस हेतु से कहा गया है कि जीव यावत् तदुभयाधिकरणी भी है ?

[१४-२ उ] गौतम ! अविरति की अपेक्षा जीव यावत् तदुभयाधिकरणी भी है।

१५. एवं जाव वेमाणिए।

[१५] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए।

१६. [१] जीवाण भंते ! अधिकरणे किं आयप्पयोगनिव्वत्तिए, परप्पयोगनिव्वत्तिए तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए ?

गोयमा ! आयप्पयोगनिव्वत्तिए वि, परप्पयोगनिव्वत्तिए वि, तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए वि।

[१६-१ प्र] भगवन् ! जीवो का अधिकरण आत्म-प्रयोग से होता है, पर-प्रयोग से निष्पन्न होता है, अथवा तदुभय-प्रयोग से होता है ?

[१६-१उ] गौतम ! जीवो का अधिकरण आत्मप्रयोग से भी निष्पन्न होता है, परप्रयोग से से भी और तदुभय-प्रयोग से भी निष्पन्न होता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ ?

गोयमा ! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेण जाव तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए वि।

[१६-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया ?

[१६-२ उ] गौतम ! अविरति की अपेक्षा से यावत् तदुभयप्रयोग से भी निष्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! यावत् तदुभयप्रयोग-निष्पन्न भी है।

१७. एवं जाव वेमाणियाणं।

[१७] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक जानना चाहिए।

विवेचन—अधिकरण, अधिकरणी : स्वरूप एवं प्रकार—हिंसादि पाप-कर्म के कारणभूत एवं दुर्गति के निमित्तभूत पदार्थो को अधिकरण कहते है। अधिकरण दो प्रकार के होते है—(१) आन्तरिक एव (२) बाह्य। शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि आन्तरिक अधिकरण हैं एव हल, कुदाल, मूसल आदि शस्त्र और धन-धान्यादि परिग्रहरूप वस्तुएँ बाह्य अधिकरण हैं। ये बाह्य और आन्तरिक अधिकरण जिनके हो, वह 'अधिकरणी' कहलाता है। ससारी जीवो के शरीरादि होने के कारण जीव 'अधिकरणी' कहलाता है, और शरीरादि अधिकरणो से कथचित् अभिन्न होने से जीव अधिकरण भी है। निष्कर्ष यह है कि सशरीरी जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी। अविरति की अपेक्षा से जीव अधिकरण भी है और अधिकरणी भी। जो जीव विरत है, उनके शरीरादि होने पर भी वह अधिकरणी और अधिकरण नही है, क्योकि उन पर उसका ममत्वभाव नही है। जो जीव अविरत है, उसके ममत्व होने से वह अधिकरणी और अधिकरण कहलाता है।[1]

साधिकरणी-निरधिकरणी : स्वरूप और रहस्य—शरीरादि अधिकरण से सहित जीव साधिकरणी कहलाता है। ससारी जीव के शरीर, इन्द्रियादिरूप आन्तरिक अधिकरण तो सदा साथ ही रहते हैं, शस्त्रादि बाह्य अधिकरण निश्चित रूप से सदा साथ मे नही भी होते है, किन्तु स्व-स्वामिभाव के कारण अविरति रूप ममत्वभाव साथ मे रहता है। इसलिए शस्त्रादि बाह्य अधिकरण की अपेक्षा भी जीव साधिकरणी कहलाता है। सयमी पुरुषो मे अविरति का अभाव होने से शरीरादि होते हुए भी उनमे साधिकरणता नही है। इसलिए निरधिकरणी का आशय है—अधिकरणदूरवर्ती। वह अविरति मे नही होता, क्योकि उसमे अधिकरणभूत अविरति से दूरवर्तिता नही होती। अथवा अधिकरण कहते हैं—पुत्र एव मित्रादि को। जो जो पुत्र-मित्रादि सहित हो, वह साधिकरणी है, किसी जीव के पुत्रादि का अभाव होने पर भी तद्विषयक विरति का अभाव होने से उसमे साधिकरणता समझ लेनी चाहिए।[2]

'आत्माधिकरणी' इत्यादि पदो की परिभाषा—कृषि आदि आरम्भ मे स्वय प्रवृत्ति करनेवाला आत्माधिकरणी है। दूसरो से कृषि आदि आरम्भ कराने वाला अथवा दूसरो को अधिकरण में प्रवृत्त करने वाला पराधिकरणी है। जो स्वय कृष्यादि आरम्भ करता है और दूसरो से भी करवाता है वह तदुभयाधिकरणी कहलाता है। जो कृषि आदि नही करता है, वह भी अविरति की अपेक्षा से आत्माधिकरणी या पराधिकरणी अथवा तदुभयाधिकरणी कहलाता है।[3]

आत्म-पर-तदुभय-प्रयोगनिर्वर्तित अधिकरण—हिंसादि पापकार्यो मे स्वयं प्रवृत्ति करने वाले, मन आदि के व्यापार (प्रयोग) से निर्वर्तित—निष्पादित अधिकरण—आत्मप्रयोगनिर्वर्तित कहलाता है। दूसरो को हिंसादि पाप-कार्यों मे प्रवृत्त कराने से उत्पन्न वचनादि अधिकरण परप्रयोग—निर्वर्तित कहलाता है और आत्मा के द्वारा दूसरो को प्रवृत्ति कराने के द्वारा उत्पन्न हुआ अधिकरण

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९९

२ वही अ वृत्ति, पत्र ६९९

३ (क) वही, पत्र ६९९,
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५१२

'तदुभय-प्रयोगनिर्वर्तित' कहलाता है। स्थावर आदि जीवो मे वचनादि का व्यापार नही होता, तथापि उनमे अविरतिभाव की अपेक्षा से परप्रयोग-निर्वर्तित अधिकरण कहा गया है।[1]

शरीर, इन्द्रिय एव योगो को बांधते हुए जीवो के विषय मे अधिकरणी-अधिकरण-विषयकप्ररूपणा

१८. कति ण भते ! सरीरगा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पच सरीरगा पन्नत्ता, त जहा—ओरालिए जाव कम्मए।

[१८ प्र] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१८ उ] गौतम ! शरीर पाँच प्रकार के कहे गए है। यथा—औदारिक यावत् कार्मण।

१९. कति ण भते ! इदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पच इदिया पन्नत्ता, तं जहा—सोतिदिए जाव फासिदिए।

[१९ प्र] भगवन् ! इन्द्रियाँ कितनी कही गई है ?

[१९ उ] गौतम ! इन्द्रियाँ पाँच कही गई है। यथा—श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय।

२०. कतिविहे ण भते ! जोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे जोए पन्नत्ते, त जहा—मणजोए वइजोए कायजोए।

[२० प्र] भगवन् ! योग कितने प्रकार के कहे गये है ?

[२० उ] गौतम ! योग तीन प्रकार के कहे गए हैं। यथा—मनोयोग, वचनयोग और काययोग।

२१. [१] जीवे णं भते ! ओरालियसरीर निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी, अधिकरण ?

गोयमा ! अधिकरणी वि, अधिकरण पि।

[२१-१ प्र] भगवन् ! औदारिक शरीर को बाधता (निष्पन्न करता) हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण ?

[२१-१ उ] गौतम ! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ अधिकरणी वि, अधिकरण पि ?

गोयमा ! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेण जाव अधिकरण पि।

[२१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है ?

[२१-२ उ] गौतम ! अविरति के कारण वह यावत् अधिकरण भी है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९९

(ख) भगवती. (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २५१२

२२. पुढविकाइए ण भते ! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी० ?

एव चेव ।

[२२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, औदारिक शरीर को बाधता हुआ अधिकरणी है या अधिकरण ?

[२२ उ] गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए ।

२३. एव जाव मणुस्से ।

[२३] इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक जानना चाहिए ।

२४. एव वेउव्वियसरीरं पि । नवर जस्स अत्थि ।

[२४] इसी प्रकार वैक्रिय शरीर के विषय मे भी जानना चाहिए । विशेषता यह कि जिन जीवो के जो शरीर हो, उनके वही कहना चाहिए ।

२५. [१] जीवे ण भते ! आहारगसरीर निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी० पुच्छा ।

गोयमा ! अधिकरणी वि, अधिकरण पि ।

[२५-१ प्र] भगवन् ! आहारक शरीर बाधता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण ?

[२५-१ उ] गौतम ! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी ।

[२] से केणट्ठेण जाव अधिकरण पि ?

गोयमा ! पमाद पडुच्च । से तेणट्ठेण जाव अधिकरण पि ।

[२५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से उसे अधिकरणी और अधिकरण कहते है ?

[२५-२ उ] गौतम ! प्रमाद की अपेक्षा से वह अधिकरणी और अधिकरण है ।

२६. एव मणुस्से वि ।

[२६] इसी प्रकार मनुष्य के विषय मे जानना चाहिए ।

२७. तेयासरीर जहा ओरालिय, नवर सव्वजीवाण भाणियव्व ।

[२७] तैजसशरीर का कथन औदारिक शरीर के समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि तैजसशरीर-सम्बन्धी वक्तव्य सभी जीवो के विषय मे कहना चाहिए ।

२८. एवं कम्मगसरीर पि ।

[२८] इसी प्रकार कार्मण शरीर के विषय मे भी जानना चाहिए ।

२९. जीवे ण भते ! सोतिंदिय निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी, अधिकरणं ?

एवं जहेव ओरालियसरीर तहेव सोइदियं पि भाणियव्वं । नवर जस्स अत्थि सोतिंदियं ।

[२९ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय को बाधता हुआ जीव, अधिकरणी है या अधिकरण ?

[२९ उ] गौतम ! औदारिक शरीर के वक्तव्य के समान श्रोत्रेन्द्रिय के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए । परन्तु (ध्यान रहे) जिन जीवो के श्रोत्रेन्द्रिय हो, उनकी अपेक्षा ही यह कथन है ।

३०. एव चक्खिदिय-घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिदियाणि वि, नवर जाणियव्व जस्स ज अत्थि।

[३०] इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के विषय मे जानना चाहिए। विशेष-जिन जीवो के जितनी इन्द्रियाँ हो, उनके विषय मे उसी प्रकार जानना चाहिए।

३१. जीवे ण भते। मणजोग निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी, अधिकरण ?

एव जहेव सोतिंदिय तहेव निरवसेस।

[३१ प्र] भगवन्! मनोयोग को बाधता हुआ जीव, अधिकरणी है या/अधिकरण ?

[३१ उ] जैसे श्रोत्रेन्द्रिय के विषय मे कहा, वही सब मनोयोग के विषय मे कहना चाहिए।

३२. वइजोगो एव चेव। नवर एगिंदियवज्जाण।

[३२] वचनयोग के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष-वचनयोग मे एकेन्द्रियो का कथन नही करना चाहिए।

३३. एव कायजोगो वि, नवर सव्वजीवाण जाव वेमाणिए।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

॥ सोलसमे सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ १६ १ ॥

[३३] इसी प्रकार काययोग के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि काययोग सभी जीवो के होता है। अत यावत् वैमानिको तक इसी प्रकार जानना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर श्रीगौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—प्रस्तुत सोलह सूत्रो (सू १८ से ३३) मे पाच शरीरो, पाच इन्द्रियो और तीन योगो की अपेक्षा से सभी जीवो के अधिकरणी एव अधिकरण होने की सहेतुक प्ररूपणा की गई है।

पाच शरीरो की अपेक्षा से—देव और नैरयिक जीवो के औदारिक शरीर नही होता है इसलिए नैरयिको और देवो को छोडकर पृथ्वीकायिक आदि दण्डको के विषय मे ही अधिकरणी एव अधिकरण से सम्बन्धित प्रश्न किया गया है। नैरयिको और देवो को जन्म से प्राप्त भवप्रत्यय वैक्रिय-शरीर होता है। जबकि पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो और मनुष्यो में, जिन्हे वैक्रियशरीर बनाने की शक्ति प्राप्त हुई हो उन्हे लब्धिप्रत्यय वैक्रियशरीर होता है। वायुकाय को वैक्रियशक्ति प्राप्त होने से उसके भी वैक्रिय शरीर होता है।

आहारकशरीर सयमी मुनियो के ही होता है, इसलिए मुख्य प्रश्न मनुष्य के विषय मे ही करना चाहिए। सयत जीवो मे अविरति का अभाव होने पर भी उनमे प्रमादरूप अधिकरण हो सकता है।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ६९९

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ, २५१६

इन्द्रिय और योग की अपेक्षा से भी अधिकरणी और अधिकरण-विषयक कथन शरीर की तरह ही समझना चाहिए।[1]

यहाँ यह ध्यान रखना है, जिस जीव मे जितनी एव जो इन्द्रिया अथवा जितने योग हो, उतने एव वे ही यथायोग्य कहने चाहिए। यहाँ प्रत्येक प्रश्न पहले सामान्य जीवसमूह की अपेक्षा से और फिर दण्डको के क्रम से किया गया है।[2]

॥ सोलहवाँ शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. २, (मूलपाठ-टिप्पण युक्त) पृ ७४६-७४७

२ वही, पृ ७४६-७४७

बीओ उद्देसओ : 'जरा'

द्वितीय उद्देशक · 'जरा'

जीवो और चौवीस दण्डको मे जरा और शोक का निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वदासि—

[१] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर से) (गौतम स्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा—

२. [१] जीवाण भंते ! किं जरा, सोगे ?

गोयमा ! जीवाण जरा वि, सोगे वि ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या जीवों के जरा और शोक होता है ?

[२-१ उ] गौतम ! जीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! जाव सोए वि ?

गोयमा ! जे ण जीवा सारीर वेयण वेदेंति तेसि ण जीवाण जरा, जे ण जीवा माणस वेदण वेदेंति तेसि ण जीवाण सोगे । से तेणट्ठेण जाव सोगे वि ।

[२-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से जीवो को जरा भी होती है और शोक भी होता है ?

[२-२ उ] गौतम ! जो जीव शारीरिक वेदना वेदते (भोगते-अनुभव करते) हैं, उन जीवो को जरा होती है और जो जीव मानसिक वेदना वेदते है, उनको शोक होता है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि जीवो के जरा भी होती है और शोक भी होता है ।

३. एव नेरइयाण वि ।

[३] इसी प्रकार नैरयिको के (जरा और शोक के विषय मे) भी समझ लेना चाहिए ।

४. एव जाव थणियकुमाराण ।

[४] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो के विषय मे भी जान लेना चाहिए ।

५. [१] पुढविकाइयाण भंते ! किं जरा, सोगे ?

गोयमा ! पुढविकाइयाण जरा, नो सोगे ।

[५-१ प्र.] भंते ! क्या पृथ्वीकायिक जीवो के भी जरा और शोक होता है ?

[५-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवो के जरा होती है, शोक नही होता ।

[२] से केणट्ठेणं जाव नो सोगे ?

गोयमा ! पुढविकाइया ण सारीरं वेदणं वेदेंति, नो माणसं वेदणं वेदेंति । से तेणट्ठेणं जाव नो सोगे ।

[५-२ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो के जरा होती है, शोक क्यो नही होता ?

[५-२ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव शारीरिक वेदना वेदते हैं, मानसिक वेदना नहीं वेदते, इस कारण उनके जरा होती है शोक नही होता ।

६. एवं जाव चउरिंदियाणं ।

[६] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक जानना चाहिए ।

७. सेसाणं जहा जीवाणं जाव वेमाणियाणं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव पज्जुवासति ।

[७] शेष जीवो का कथन सामान्य जीवो के समान यावत् वैमानिको तक जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर गौतमस्वामी यावत् पर्युपासना करते हैं ।

विवेचन—जरा और शोक : किनको और क्यो—जरा का अर्थ है—वृद्धावस्था और शोक का अर्थ है—चिन्ता, खिन्नता, दैन्य या खेद आदि । जरा शारीरिक दुःखरूप है और शोक मानसिक दुःखरूप । प्रस्तुत मे 'जरा' शब्द से उपलक्षण से अन्य शारीरिक दुःख तथा शोक से समस्त मानसिक दुःख का ग्रहण किया गया है । चौवीसदण्डकवर्ती जीवो मे जिनके केवल काययोग है, (मनोयोग का अभाव है), उन्हे केवल जरा होती है और जिनके मनोयोग भी है, उनको जरा और शोक दोनो हैं । अर्थात् वे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के दुःखो का वेदन (अनुभव) करते हैं ।[1]

शक्रेन्द्र द्वारा भगवद्दर्शन, प्रश्नकरण एव अवग्रहानुज्ञा-प्रदान

८. तेणं कालेणं तेणं समयेणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे जाव भुंजमाणे विहरति । इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विपुलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे पासति यऽत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे एवं जहा ईसाणे ततियसए (स० ३ उ० १ सु० ३३) तहेव सक्को वि । नवरं आभियोगिए ण सद्दावेति, हरी पायत्ताणियाहिवती, सुघोसा घंटा, पालओ विमाणकारी, पालग विमाणं, उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरपव्वए, सेसं तं चेव, जाव नामगं सावेत्ता पज्जुवासति । धम्मकहा जाव परिसा पडिगया ।

[८] उस काल एव उस समय मे शक्र देवेन्द्र देवराज, वज्रपाणि पुरन्दर यावत् (दिव्य भोगो का) उपभोग करता हुआ विचरता था । वह इस सम्पूर्ण (केवलकल्प) जम्बूद्वीप नामक द्वीप की ओर अपने विपुल अवधिज्ञान का उपयोग लगा-लगा कर जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे श्रमण भगवान् महावीर को देख रहा था । यहाँ तृतीय शतक (के प्रथम उद्देशक, सू ३३) मे कथित ईशानेन्द्र की

---

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ७००

वक्तव्यता के समान शक्रेन्द्र की वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि शक्रेन्द्र आभियोगिक देवों को नहीं बुलाता। इसकी पैदल (पदाति)—सेना का अधिपति हरिणैगमेषी (हरी) देव है, (जो) सुघोषा घंटा (बजाता) है। (शक्रेन्द्र का) विमाननिर्माता पालक देव है। इसके निकलने का मार्ग उत्तरदिशा है। दक्षिण-पूर्व (अग्निकोण) में रतिकर पर्वत है। शेष सभी वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिए। यावत् शक्रेन्द्र भगवान के निकट उपस्थित हुआ और अपना नाम बतला कर भगवान् की पर्युपासना करने लगा। (श्रमण भगवान् महावीर ने) (शक्रेन्द्र तथा परिषद् को) धर्मकथा कही; यावत् परिषद् वापिस लौट गई।

९. तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, २ त्ता एवं वयासी—

[९] तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर एवं अवधारण करके अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार प्रश्न पूछा—

१०. कतिविहे णं भंते! ओग्गहे पन्नत्ते?

सक्का! पंचविहे ओग्गहे पन्नत्ते, तं जहा—देविंदोग्गहे, रायोग्गहे गाहावतिओग्गहे सागारिओग्गहे साधम्मिओग्गहे।

[१० प्र] भगवन्! अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

[१० उ] हे शक्र! अवग्रह पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) देवेन्द्रावग्रह, (२) राजावग्रह, (३) गाथापति (गृहपति)—अवग्रह, (४) सागारिकावग्रह और (५) साधर्मिकाऽवग्रह।

११. जे इमे भंते! अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एएसि णं अहं ओग्गहं अणुजाणामीति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, २ त्ता तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहति, दु० २ जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

[११] (यह सुन कर शक्रेन्द्र ने भगवान् से निवेदन किया—) 'भगवन्! आजकल जो ये श्रमण निर्ग्रन्थ विचरण करते हैं, उन्हें मैं अवग्रह की अनुज्ञा देता हूँ।' यों कह कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके शक्रेन्द्र, उसी दिव्य यान विमान पर चढ़ा और फिर जिस दिशा (जिधर) से आया था, उसी दिशा की ओर (उधर ही) लौट गया।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ८ से ११ तक) में शक्रेन्द्र द्वारा भगवान् के दर्शन, वन्दन-नमन, धर्म-श्रवण, अवग्रहविषयक-प्रश्नकरण, समाधानप्राप्ति, एवं अवग्रहानुज्ञा-प्रदान का निरूपण किया गया है।

अवग्रह : प्रकार और स्वरूप—अवग्रह का अर्थ है—उस स्थान के स्वामी (मालिक) से जो अवग्रह-स्वीकार किया जाता है। वह क्रमशः पांच प्रकार का होता है। यथा—(१) **देवेन्द्रावग्रह**—शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र इन दोनों का अवग्रह-स्वामित्व क्रमशः दक्षिणलोकार्द्ध और उत्तरलोकार्द्ध में है। अतः उनकी आज्ञा लेना देवेन्द्रावग्रह है। (२) **राजाऽवग्रह**—भरतादि क्षेत्रों में छह खण्डों पर चक्रवर्ती

का, तीन खण्डो पर वासुदेव का तथा विभिन्न जनपदो पर अमुक-अमुक शासक या मन्त्री का अवग्रह होता है। (३) **गाथापति-अवग्रह**—माण्डलिकादि का अपने अधीनस्थ देश पर अवग्रह होता है। (४) **सागारिक-अवग्रह**—सागारिक-गृहस्थ का अपने घर या मकान पर अवग्रह होता है। (५) **सार्धमिक-अवग्रह**—समान धर्म-आचार वाला साधु वर्ग परस्पर सार्धमिक कहलाता है। शेष काल मे एक मास और चातुर्मास्य मे चार मास तक पाच-पाच कोस तक के क्षेत्र मे सार्धमिकावग्रह होता है। ढाई-ढाई कोस तक उत्तर-दक्षिण मे, तथा ढाई कोस तक पूर्व-पश्चिम मे, यो ५ कोश तक का अवग्रह होता है। अवग्रह पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द विशेषत साधु-साध्वियो द्वारा ठहरने के स्थान आदि मे स्वामी या सरक्षक से अवग्रह-ग्रहण करने की अनुज्ञा लेने या याचना करने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[1]

कठिनशब्दार्थ—वज्जपाणि—वज्रपाणि—जिसके हाथ मे वज्र हो। **केवलकप्पं**—केवलकल्प, सम्पूर्ण। **आभोएमाणे**—उपयोग लगाते हुए। **उग्गहे**—अवग्रह—स्वामी मे ग्रहण करना।[2]

शक्रेन्द्र की सत्यता, सम्यग्वादिता, सत्यादिभाषिता, सावद्य-निरवद्यभाषिता, एवं भवसिद्धिकता आदि के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

१२. 'भंते!' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ त्ता एवं वयासी—जं णं भंते! सक्के देविंदे देवराया तुब्भे एव वदति सच्चे ण एसमट्ठे?

हंता, सच्चे।

[१२ प्र] भगवन्! इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र ने आप मे पूर्वोक्त रूप से अवग्रह सम्बन्धी जो अर्थ कहा, क्या वह सत्य है?

[१२ उ] हाँ, गौतम! वह अर्थ सत्य है।

१३. सक्के णं भंते! देविंदे देवराया किं सम्मावादी, मिच्छावादी?

गोयमा! सम्मावादी, नो मिच्छावादी।

[१३ प्र] भगवन्! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र सम्यग्वादी है अथवा मिथ्यावादी है?

[१३ उ] गौतम! वह सम्यग्वादी है, मिथ्यावादी नही।

१४. सक्के ण भंते! देविंदे देवराया किं सच्चं भास भासति, मोसं भासं भासति, सच्चामोस भास भासति, असच्चामोसं भासं भासइ?

गोयमा! सच्च पि भास भासति, जाव असच्चामोस पि भासं भासति।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७००-७०१
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५२१

२ (क) वही, पृ २५२०
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७००

[१४ प्र.] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र क्या सत्य भाषा बोलता है, मृषा भाषा बोलता है, सत्यामृषा भाषा बोलता है, अथवा असत्यामृषा भाषा बोलता है ?

[१४ उ.] गौतम ! वह सत्य भाषा भी बोलता है, यावत् असत्यामृषा भाषा भी बोलता है।

१५. [१] सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासति, अणवज्जं भासं भासति ?

गोयमा ! सावज्जं पि भासं भासति, अणवज्जं पि भासं भासति।

[१५-१ प्र.] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र क्या सावद्य (पापयुक्त) भाषा बोलता है या निरवद्य भाषा बोलता है ?

[१५-१ उ.] गौतम ! वह सावद्य भाषा भी बोलता है और निरवद्य भाषा भी बोलता है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सावज्जं पि जाव अणवज्जं पि भासं भासति ?

गोयमा ! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अनिज्जूहित्ताणं भासं भासति ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासति, जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं निज्जूहित्ताणं भासं भासइ ताहे सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासति, से तेणट्ठेणं जाव भासति।

[१५-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया है कि शक्रेन्द्र सावद्य भाषा भी बोलता है और निरवद्य भाषा भी बोलता है ?

[१५-२ उ.] गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र सूक्ष्म काय (अर्थात् हाथ आदि या वस्त्र) से मुख ढँके बिना बोलता है, तब वह सावद्य भाषा बोलता है और जब वह हाथ या वस्त्र से मुख को ढँक कर बोलता है, तब वह निरवद्य भाषा बोलता है। इसी कारण से यह कहा जाता है कि शक्रेन्द्र सावद्य भाषा भी बोलता है और निरवद्य भाषा भी बोलता है।

१६. सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया किं भवसिद्धीए, अभवसिद्धीए, सम्मदिट्ठीए० ?

एवं जहा मोउद्देसए सणंकुमारो (स० ३ उ० १ सु० ६२) जाव नो अचरिमे।

[१६ प्र.] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक ? सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि ? इत्यादि प्रश्न।

[१६ उ.] गौतम ! तृतीय शतक के प्रथम मोका उद्देशक (सू. ६२) में उक्त सनत्कुमार के अनुसार यहाँ भी यावत् अचरम नहीं है, (यहाँ तक जानना चाहिए।)

विवेचन—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. १२ से १६ तक) में शक्रेन्द्र के सम्बन्ध में गौतमस्वामी द्वारा किये गये निम्नोक्त प्रश्नों का समाधान अंकित है।

[प्र. १] अवग्रह सम्बन्धी वक्तव्य सत्य है ? [उ.] सत्य है।

[प्र. २] शक्रेन्द्र सम्यग्वादी है या मिथ्यावादी ? [उ.] सम्यग्वादी है।

[प्र ३] वह सत्या आदि चार प्रकार की भाषाओ मे से कौन-सी भाषा बोलता है ?
[उ] चारो प्रकार की।

[प्र ४] निरवद्य भाषा बोलता है, या सावद्य ? [उ] दोनो प्रकार की भाषा बोलता है।

[प्र ५] भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक ? सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि ? परित्तससारी है या अपरित्त (अनन्त) ससारी ? सुलभबोधि है या दुर्लभबोधि ? आराधक है या विराधक ? चरम है या अचरम ? [उ] इन सब मे प्रशस्तपद ही ग्राह्य है।[1]

कठिन शब्दार्थ—सावज्जं—सावद्य—गर्हितकर्मसहित, पापयुक्त। **अणवज्ज**—निरवद्य-निष्पाप। **सुहुमकाय**—सूक्ष्मकाय—हस्त आदि वस्तु अथवा वस्त्र। **अणिज्जूहित्ता**—लगाए बिना, ढँके बिना। अर्थात् हाथ एव वस्त्र आदि मुख पर लगा (ढँक) कर यतनापूर्वक बोलने वाले के द्वारा जीवरक्षा होती है, इसलिए वह भाषा निरवद्य होती है, इससे भिन्न सावद्य। **सम्मावादी**—सम्यग् बोलने के स्वभाव वाला, सम्यग्वादनशील। सम्यग्वादनशील होते हुए भी प्रमाद आदि के वश सत्य भाषा भी गर्हित कर्म के लिए बोली जाए अथवा मुख पर वस्त्रादि या हाथ आदि लगाए बिना बोली जाए, वह भाषा सावद्य होती है।[2]

जीव और चौवीस दण्डकों में चेतनकृत कर्म की प्ररूपणा

१७. [१] जीवाण भते ! किं चेयकडा कम्मा कज्जंति, अचेयकडा कम्मा कज्जंति ?

गोयमा ! जीवाणं चेयकडा कम्मा कज्जंति, नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति।

[१७-१ प्र] भगवन् ! जीवो के कर्म चेतनकृत होते हैं या अचैतन्यकृत ?

[१७-१ उ] गौतम ! जीवो के कर्म चेतनकृत होते है अचेतनकृत नही होते।

[२] से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ जाव कज्जंति ?

गोयमा ! जीवाण आहारोवचिता पोग्गला बोंदिचिया पोग्गला कलेवरचिया पोग्गला तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति, नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो !। दुट्ठाणेसु दुसेज्जासु दुन्निसीहियासु तहा तहा ण ते पोग्गला परिणमंति, नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो !। आयके से वहाए होंति, सकप्पे से वहाए होंति, मरणते से वहाए होंति, तहा तहा ण ते पोग्गला परिणमंति, नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो !। से तेणट्ठेण जाव कम्मा कज्जंति।

(१७-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि जीवो के कर्म चेतनकृत होते है, अचेतनकृत नही होते ?

[१७-२ उ] गौतम ! जीवों के आहार रूप से उपचित जो पुद्गल है, शरीररूप से जो सचित पुद्गल है और कलेवर रूप से जो उपचित पुद्गल है, वे तथा—तथा रूप से परिणत होते है, इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणो ! कर्म अचेतनकृत नही है। वे पुद्गल दु स्थान रूप से, दु शय्या रूप से और

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ, ७४९-७५०
(ख) व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र प्रथम खण्ड (श्री आगम प्रकाशन समिति व्यावर) श ३, उ १, पृ २९८
२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७०१
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५२३
(ग) महावद्यं न—गर्हितकर्मणेति सावद्या ता।—अ वृत्ति पत्र ७०१

दुर्निषद्या रूप से तथा-तथा रूप से परिणत होते हैं। इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणो! कर्म अचेतनकृत नहीं हैं।

वे पुद्गल आतंक रूप में परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं, वे संकल्प रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं, वे पुद्गल मरणान्त रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं। इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणो! कर्म अचेतनकृत नहीं हैं। हे गौतम! इसीलिए कहा जाता है, यावत् कर्म चेतनकृत होते हैं।

१८. एवं नेरतियाण वि।

[१८] इसी प्रकार नैरयिकों के कर्म भी चेतन्यकृत होते हैं।

१९. एवं जाव वेमाणियाणं।

सेवं भंते! सेवं भंते! जाव विहरति।

॥ सोलसमे सए : बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥ १६-२ ॥

[१९] इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक के कर्मों के विषय में कहना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—कर्मों का कर्त्ता चेतन है, अचेतन नहीं—प्रस्तुत तीन सूत्रों में स्पष्टतः युक्ति एवं तर्कपूर्वक बता दिया गया है कि सामान्य जीवों के या नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के कर्म चेतन (जीव) के द्वारा स्वकृत होते हैं, अचेतनकृत नहीं। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार जीवों के आहार, शरीर, कलेवर आदि रूप में संचित किये हुए पुद्गल आहारादि-रूप से परिणत हो जाते हैं वे कर्मपुद्गल जीवों के ही हैं। क्योंकि वे कर्म पुद्गल शीत, उष्ण, दंश-मशक आदि से युक्त स्थान में, दुःखोत्पादक शय्या (वसति या उपाश्रय) में, तथा दुःखकारक निषद्या (स्वाध्याय भूमि) में दुःखोत्पादक रूप में परिणत होते हैं। दुःख जीवों को ही होता है, अजीवों को नहीं। इसलिए यह स्पष्ट है कि दुःख के हेतुभूत कर्म जीवों ने ही संचित किये हैं। वे कर्म-पुद्गल आतंक (रोग) रूप से संकल्प (भयादि विकल्प) रूप से और मरणान्त (उपघातादि) रूप से अर्थात्—रोगादिजनक असातावेदनीय रूप में परिणत होते हैं और वे वध के हेतुभूत होते हैं। वध जीव का ही होता है। अतः वध के हेतुभूत असातावेदनीय कर्मपुद्गल भी जीवकृत हैं। इस दृष्टि से कहा गया है कि कर्म चेतनकृत होते हैं,[1] अचैतन्यकृत नहीं होते।

कठिन शब्दार्थ—चेयकडा—चेतःकृत-चेतन कृत यानी बद्ध चेतःकृत कर्म। **कज्जति**—होते हैं। **बोंदिचिया**—बोंदि-अव्यक्तावयव रूप शरीर रूप से संचित। **नत्थि अचेयकडा**—अचेतनकृत नहीं।[2]

॥ सोलहवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७०२
  (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. २५२६

२ भगवती अ. वृत्ति पत्र ७०२

तइओ उद्देसओ : कम्मे

तृतीय उद्देशक : कर्म

अष्ट कर्मप्रकृतियो के वेदावेद आदि का प्रज्ञापना के अतिदेशपूर्वक निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वदासि—

[१] राजगृह नगर मे (गौतमस्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा—

२. कति ण भते ! कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ, त जहा— नाणावरणिज्ज जाव अतराइय ।

[२ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी है ?

[२ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ है, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

३. एव जाव वेमाणियाण ।

[३] इस प्रकार यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए ।

४. जीवे ण भते ! नाणावरणिज्ज कम्म वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ वेदेति ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ, एव जहा पन्नवणाए वेदावेउद्देसओ सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो । वेदाबधो वि तहेव । बधावेदो वि तहेव । बधाबधो वि तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणियाण ति ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरति ।

[४ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

[४ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को वेदन करता हुआ जीव) आठ कर्मप्रकृतियो को वेदता है । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के (२७ वे) 'वेद-वेद' नामक पद (उद्देशक) मे कथित समग्र कथन करना चाहिए । वेद-बन्ध, 'बन्ध-वेद' और बन्ध-बन्ध उद्देशक भी, (प्रज्ञापनासूत्र मे उक्त कथन के अनुसार) यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १ से ४ तक) मे आठ कर्मप्रकृतियो के नाम गिना कर प्रज्ञापनासूत्र के वेद-वेद, वेद-बन्ध, बध-वेद एव बध-बन्ध पद के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है ।

वेद-वेद—एक कर्मप्रकृति के वेदन के समय दूसरी कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन होता है, यह जिस उद्देशक (पद) मे बताया गया है, वह प्रज्ञापना का २७ वाँ पद वेद-वेद उद्देशक है ।

वेद-बन्ध.—एक कर्मप्रकृति के वेदन के समय अन्य कितनी कर्मप्रकृतियो का बन्ध होता है, यह जिस उद्देशक मे कहा गया है वह प्रज्ञापना का २६ वाँ पद वेद-बन्ध उद्देशक है।

बन्ध-वेद —एक कर्मप्रकृति को बाँधता हुआ जीव, कितनी कर्मप्रकृतियाँ वेदता है, यह प्रज्ञापना का २५ वाँ पद बंध-वेद उद्देशक है।

बन्ध-बन्ध—एक कर्मप्रकृति को बाधता हुआ जीव दूसरी कितनी कर्मप्रकृतियो को बाधता है, यह जिसमे बताया गया है, वह प्रज्ञापनासूत्र का २४ वाँ पद बन्ध-बन्ध उद्देशकरूप है।[१]

प्रज्ञापना के अनुसार उत्तर—(१) प्रस्तुत पाठ मे एक कर्मप्रकृति को वेदते समय आठ कर्मप्रकृतियो को वेदता है, यह औघिक रूप से उत्तर है। उसका आशय यह है कि सामान्यतया जीव आठो कर्मप्रकृतियो को वेदता है। किन्तु जब मोहनीयकर्म का क्षय या उपशय हो जाता है, तब सात (मोहनीय के सिवाय) कर्मप्रकृतियो को वेदता है, और चार घातिकर्म क्षय होने पर शेष चार अघाति-कर्मप्रकृतियो को वेदता है। (२) वेद-बन्ध पद के अनुसार ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता हुआ जीव सात, आठ, छह या एक कर्मप्रकृति का बन्ध करता है। जब आयुष्यकर्म का बन्ध करता है, तब आठ कर्मप्रकृतियो का बन्ध करता है, जब आयुष्यबन्ध नही करता तब सात कर्मप्रकृतियो का बन्ध करता है। सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान मे आयुष्य और मोहनीय के सिवाय छह कर्मप्रकृतियो का बन्ध करता है। उपशान्तमोहादि दो गुणस्थानो मे केवल एक वेदनीय कर्म को बाधता है। (३) 'बन्ध-वेद' पद के अनुसार—ज्ञानावरणीय कर्म को बाधता हुआ जीव, अवश्य ही आठ कर्मों को वेदता है, इत्यादि वर्णन वहाँ मे जान लेना चाहिए। (४) 'बन्ध-बन्ध' पद के अनुसार—ज्ञानावरणीय कर्म को बाधता हुआ जीव सात, आठ या छह कर्मप्रकृतियो को बाधता है। आयुष्य नही बाधता तब सात, आयुष्य सहित आठ और मोहनीय तथा आयुष्य के बिना ६ कर्मप्रकृतियो को बाधता है, इत्यादि वर्णन वहाँ से जान लेना चाहिए।

मूल पाठ मे 'वेयावेओ' आदि पदो मे प्राकृभाषा के कारण दीर्घ हो गया है।

कायोत्सर्गस्थ अनगार के अर्श-छेदक को तथा अनगार को लगने वाली क्रिया

५. तए ण समणे भगव महावीरे अन्नदा कदायि रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेतियाओ पडिनिक्खमति, प० २ बहिया जणवयविहार विहरति।

[५] किसी समय एक दिन श्रमण भगवान् महावीर राजगृहनगर के गुणशीलक नामक उद्यान से निकले और बाहर के (अन्य) जनपदो मे विहार करने लगे।

६. तेण कालेण तेण समएणं उल्लुयतीरे नामं नगरे होत्था। वण्णओ।

[६] उस काल उस समय मे उल्लूकतीर नाम का नगर था। उसका वर्णन नगरवर्णनवत् जान लेना चाहिए।

---

१ पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण) श्रीमहावीर जैन विद्यालय
सू १७८७-९२, सू १७७५-८६, सूत्र १७६९-७४, सू १७५४-६८ पृ ३९१, ३८९, ३८८, ३८५।

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७०३

७. तस्स ण उल्लुयतीरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं एगजबुए नाम चेतिए होत्था। वण्णओ।

[७] उस उल्लुकतीर नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) मे 'एकजम्बूक' नामक उद्यान था। उसका वर्णन पूर्ववत्।

८. तए ण समणे भगव महावीरे अन्नदा कदायि पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे जाव एगजबुए समोसढे। जाव परिसा पडिगया।

[८] एक वार किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरण करते हुए यावत् 'एकजम्बूक' उद्यान मे पधारे। यावत् परिषद् (धर्मदेशना श्रवण कर) लौट गई।

९. 'भते!' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीरं वंदति नमसति, २ एव वदासि—

[९] 'भगवन्!' यो सम्बोधन करके भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार किया और फिर इस प्रकार पूछा—

१०. अणगारस्स ण भते! भावियप्पणो छट्ठ छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं जाव आतावेमाणस्स तस्स ण पुरत्थिमेण अवड्ढं दिवसं नो कप्पति हत्थ वा पाय वा बाह वा ऊरु वा आउटावेत्तए वा पसारेत्तए वा, पच्चत्थिमेण से अवड्ढं दिवस कप्पति हत्थ वा पाय वा जाव ऊरुं वा आउटावेत्तए वा पसारेत्तए वा। तस्स य असियाओ लबंति, त च वेज्जे अदक्खु, ईसिं पाडेति, ई० २ असियाओ छिंदेज्जा। से नूण भते! जे छिंदति तस्स किरिया कज्जति? जस्स छिज्जति नो तस्स किरिया कज्जइ णऽन्नत्थेगेण धम्मतराइएण?

हता, गोयमा! जे छिंदति जाव धम्मतराइएण।

सेवं भते! सेव भते! त्ति०।

॥ सोलसमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ॥ १६-३ ॥

[१० प्र] भगवन्! निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) के तपश्चरण के साथ यावत् आतापना लेते हुए भावितात्मा अनगार को (कायोत्सर्ग मे) दिवस के पूर्वार्द्ध मे अपने हाथ, पैर, बाह या ऊरु (जघा) को सिकोडना या पसारना कल्पनीय नही है, किन्तु दिवस के पश्चिमार्द्ध (पिछले आधे भाग) मे अपने हाथ, पैर या यावत् ऊरु को सिकोडना या फैलाना कल्पनीय है। इस प्रकार कायोत्सर्गस्थित उस भावितात्मा अनगार की नासिका मे अर्श (मस्सा) लटक रहा हो। उस अर्श को किसी वैद्य ने देखा और यदि वह वैद्य उस अर्श को काटने के लिए उस ऋषि को भूमि पर लिटाए, फिर उसके अर्श को काटे, तो हे भगवन्! क्या जो वैद्य अर्श काटता है, उसे क्रिया लगती है? तथा जिस (अनगार) का अर्श काटा जा रहा है, उसे एक मात्र धर्मान्तरायिक क्रिया के सिवाय दूसरी क्रिया तो नही लगती?

[१० उ] हाँ, गौतम! जो (अर्श को) काटता है, उसे (शुभ) क्रिया लगती है और जिसका अर्श काटा जा रहा है, उस ऋषि को धर्मान्तराय के सिवाय अन्य कोई क्रिया नही लगती।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—राजगृह से विहार करके उल्लूकतीर नगर के बाहर एकजम्बूक उद्यान मे गणधर गौतम द्वारा कायोत्सर्गस्थ भावितात्मा अनगार के अर्श-छेदक वैद्य को तथा उक्त अनगार को लगने वाली क्रिया के विषय मे भगवान् से पूछा गया प्रश्न और उसका उत्तर प्रस्तुत ६ सूत्रो (सू ५ से १० तक) मे अंकित है ।[1]

अर्श-छेदन मे लगने वाली क्रिया—दिन के पिछले भाग मे कायोत्सर्ग मे स्थित न होने से हस्तादि अगो को सिकोडना-पसारना कल्पनीय है । कायोत्सर्ग मे रहे हुए उस भावितात्मा अनगार की नासिका मे लटकते हुए अर्श को देख कर कोई वैद्य उक्त अनगार को भूमि पर लिटा कर धर्मबुद्धि से अर्श को काटे तो उस वैद्य को सत्कार्य-प्रवृत्तिरूप शुभ क्रिया लगती है, किन्तु लोभादिवश अर्श-छेदन करे तो उसे अशुभ क्रिया लगती है । जिस साधु के अर्श को छेदा जा रहा है, उसे निर्व्यापार होने के कारण एक धर्मान्तरायक्रिया के सिवाय और कोई क्रिया नही लगती । शुभध्यान मे विच्छेद (अन्तराय) पडने से अथवा अर्श-छेदन के अनुमोदन से उसे धर्मान्तरायरूप क्रिया लगती है ।[2]

कठिनशब्दार्थ—**पुरत्थिमेण**—दिवस के पूर्वभाग मे—पूर्वाह्न मे । **अवड्ढं दिवसं**—अपार्द्ध दिवस तक । **पच्चत्थिमेण**—दिवस के पश्चिम (पिछले) भाग मे । **असियाओ**—अर्श, चूर्णिकार के अनुसार जो नासिका पर लटक रहा हो । **अदक्खु**—देखा । **ईसिं पाडेइ**—उस ऋषि को अर्श काटने के लिए भूमि पर लिटाता है । **नन्नत्थ**—इसके सिवाय ।[3]

।। सोलहवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ७५१-७५२

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७०४

३ वही, अ. वृत्ति, पत्र ७०४
उल्लूकतीर नगर वर्तमान मे 'उल्लूवेडिया' (वर्द्धमान के निकट) पश्चिमबगाल मे है, सम्भवत वही हो । —स

चउत्थो उद्देसओ : 'जावतियं'

चतुर्थ उद्देशक : 'यावतीय'

तपस्वी श्रमणों के जितने कर्मो को खपाने में नैरयिक लाखों करोड़ों वर्षो में भी असमर्थ : दृष्टान्त पूर्वक निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वदासि—

[१] राजगृह नगर मे (भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा—

२ जावतियं णं भंते ! अन्नगिलायए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरतिया वासेण वा वासेहि वा वाससतेण वा खवयंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२ प्र.] भगवन् ! अन्नग्लायक श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मो की निर्जरा करता है, क्या उतने कर्म नरको मे नैरयिक जीव एक वर्ष मे, अनेक वर्षो मे अथवा सौ वर्षो मे खपा (क्षय कर) देते हैं ?

[२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

३. जावतियं णं भंते ! चउत्थभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरतिया वाससतेण वा वाससतेहि वा वाससहस्सेण वा खवयंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[३ प्र.] भगवन् ! चतुर्थ भक्त (एक उपवास) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मो की निर्जरा करता है, क्या उतने कर्म नरको मे नैरयिक जीव सौ वर्षो मे अनेक सौ वर्षो मे या एक हजार वर्षों मे खपाते हैं ?

[३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

४. जावतियं णं भंते ! छट्ठभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरतिया वाससहस्सेण वा वाससहस्सेहिं वा वाससयसहस्सेण वा खवयंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[४ प्र.[भगवन् ! षष्ठभक्त (बेला) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है, क्या उतने कर्म नरको मे नैरयिक जीव एक हजार वर्षो मे, अनेक हजार वर्षो मे, अथवा एक लाख वर्षों मे क्षय कर पाता है ?

[४ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

५. जावतियं णं भंते ! अट्ठमभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नेरइया वाससयसहस्सेण वा वाससयसहस्सेहिं वा वासकोडीए वा खवयंति ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[५ प्र] भगवन् ! अष्टमभक्त (तेला) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है, क्या उतने कर्म नरकों में नैरयिक जीव एक लाख वर्षों में, अनेक लाख वर्षों में या एक करोड़ वर्षों में क्षय कर पाता है ?

[५ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं ।

६. जावतियं णं भंते ! दसमभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरतिया वासकोडीए वा वासकोडीहिं वा वासकोडाकोडीए वा खवयंति ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[६ प्र] भगवन् ! दशमभक्त (चौला) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है, क्या उतने कर्म नरकों में नैरयिक जीव, एक करोड़ वर्षों में, अनेक करोड़ वर्षों में या कोटाकोटी वर्षों में क्षय कर पाता है ?

[६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं ।

७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—जावतियं अन्नगिलायए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरतिया वासेण वा वासेहिं वा वाससएण वा नो खवयंति, जावतियं चउत्थभत्तिए, एवं तं चेव पुव्वभणियं उच्चारेयव्वं जाव वासकोडाकोडीए वा नो खवयंति ?

गोयमा ! "से जहानामए—केयि पुरिसे जुण्णे जराजज्जरियदेहे सिढिलतयावलितरंगसंपिणद्धगत्ते पविरलपरिसडियदंतसेढी उण्हाभिहए तण्हाभिहए आउरे झुंझिते पिवासिए दुब्बले किलंते, एगं महं कोसंबगंडियं सुक्कं जडिलं गंठिल्लं चिक्कणं वाइद्धं अपत्तियं मुंडेण परसुणा अक्कमेज्जा, तए णं से पुरिसे महंताइं महंताइं सद्दाइं करेइ, नो महंताइं महंताइं दलाइं अवद्दालेति, एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं चिक्कणीकयाइं एवं जहा छट्ठसए (स० ६ उ० १ सु० ४) जाव नो महापज्जवसाणा भवंति ।

"से जहा वा केयि पुरिसे अहिकरणिं आउडेमाणे महया जाव नो महापज्जवसाणा भवंति ।

"से जहानामए—केयि पुरिसे तरुणे बलवं जाव मेहावी निउणसिप्पोवगए एगं महं सामलिगंडियं उल्लं अजडिलं अगंठिल्लं अचिक्कणं अवाइद्धं सपत्तियं तिक्खेण परसुणा अक्कमेज्जा, तए णं से पुरिसे नो महंताइं महंताइं सद्दाइं करेति, महंताइं महंताइं दलाइं अवद्दालेति, एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबादराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं णिट्ठियाइं कयाइं जाव खिप्पामेव परिविद्धत्थाइं भवंति, जावतियं तावतियं जाव महापज्जवसाणा भवंति ।

"से जहा वा केयि पुरिसे सुक्क तणहत्थग जायतेयसि पक्खिवेज्जा एव जहा छट्ठसए (स० ६ उ० १ सु० ४) तहा अयोकवल्ले वि जाव महापज्जवसाणा भवति । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'जावतिय अन्नगिलायए समणे निग्गथे कम्म निज्जरेइ० त चेव जाव वासकोडाकोडीए वा नो खवयति' ।"

सेवं भते ! सेव भते ! जाव विहरइ ।

॥ सोलसमे सए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥ १६-४ ॥

[७ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि अन्नग्लायक श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मो की निर्जरा करता है, उतने कर्म नरको मे नैरयिक, एक वर्ष मे, अनेक वर्षो मे अथवा सौ वर्षों मे नही खपा पाता, तथा चतुर्थभक्त करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों का क्षय करता है, इत्यादि पूर्वकथित वक्तव्य का कथन, यावत्-कोटाकोटी वर्षों मे भी क्षय नही कर सकता । (यहाँ तक) कहना चाहिए ।

[७ उ] गौतम ! जैसे कोई वृद्ध पुरुष है । वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर जर्जरित हो गया है । चमडी शिथिल होने से सिकुड कर सलवटो (झुर्रियो) से व्याप्त है । दातो की पक्ति मे बहुत-से दात, गिर जाने से थोडे-से (विरल) दात रह गए है, जो गर्मी से व्याकुल है, प्यास से पीडित है, जो आतुर (रोगी) भूखा, प्यासा, दुर्बल और क्लान्त (थका हुआ या परेशान) है । वह वृद्ध पुरुष एक बडी कोशम्बवृक्ष की सूखी, टेढी मेढी, गाठगठीली, चिकनी, बाकी, निराधार रही हुई गण्डिका (गाँठगठीली जड) पर एक कुण्ठित (भोथरे) कुल्हाडे से जोर-जोर से शब्द करता हुआ प्रहार करे, तो भी वह उस लकडी के बडे-बडे टुकडे नही कर सकता, इसी प्रकार हे गौतम ! नैरयिक जीवो ने अपने पाप कर्म गाढ किये है, चिकने किये है, इत्यादि छठे शतक (उ १ सू ४) के अनुसार यावत्—वे महापर्यवसान (मोक्ष रूप फल) वाले नही होते । (यहाँ तक कहना चाहिए ।) (इस कारण वे नैरयिक जीव अत्यन्त घोर वेदना वेदते हुए भी महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले नही होते ।)

जिस प्रकार कोई पुरुष एहरन पर घन की चोट मारता हुआ, जोर-जोर से शब्द करता हुआ, (एहरन के स्थूल पुद्गलो को तोडने मे समर्थ नही होता, इसी प्रकार नैरयिक जीव भी गाढ कर्म वाले होते है,) इसलिए वे यावत् महापर्यवसान वाले नही होते । जिस प्रकार कोई पुरुष तरुण है, बलवान् है, यावत् मेधावी, निपुण और शिल्पकार है, वह एक बडे शाल्मली वृक्ष की गीली, अजटिल, अगठिल (गाठ रहित), चिकनाई से रहित, सीधी और आधार पर टिकी गण्डिका पर तीक्ष्ण कुल्हाडे से प्रहार करे तो जोर-जोर से शब्द किये बिना ही आसानी से उसके बडे-बडे टुकडे कर देता है । इसी प्रकार हे गौतम ! जिन श्रमण निर्ग्रन्थो ने अपने कर्म यथा-स्थूल, शिथिल यावत् निष्ठित किये हैं, यावत् वे कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । और वे श्रमण निर्ग्रन्थ यावत् महापर्यवसान वाले होते है ।

हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे हुए घास के पूले को यावत् अग्नि मे डाले तो वह शीघ्र ही जल जाता है, इसी प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थो के यथाबादर कर्म भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।

जैसे कोई पुरुष, पानी की बून्द को तपाये हुए लोहे के कडाह पर डाले तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थो के भी यथाबादर (स्थूल) कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।

छठे शतक के (प्रथम उद्देशक सू ४) के अनुसार यावत् वे महापर्यवसान वाले होते है। इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि अन्नग्लायक श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों का क्षय करता है, इत्यादि, यावत् उतने कर्मो का नैरयिक जीव कोटाकोटी वर्षो मे भी क्षय नही कर पाते।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—प्रस्तुत सात सूत्रो (१ से ७ तक) मे दीर्घकाल तक घोर कष्ट मे पडा हुआ नारक लाखो-करोडो वर्षो मे भी उतने कर्मों का क्षय नही कर पाता, जितने कर्मो का क्षय तपस्वी श्रमण निर्ग्रन्थ अल्प काल मे और अल्प कष्ट से कर देता है, इस तथ्य को भगवान् ने वृद्ध और तरुण पुरुष के, तथा घास के पूले और पानी की बूदो का दृष्टान्त देकर युक्तिपूर्वक सिद्ध किया है। इसका विस्तृत वर्णन छठे शतक के प्रथम उद्देशक मे कर दिया गया है।[1]

अण्णगिलायए-अन्नग्लायक . दो विशेपार्थ—(१) अन्न के विना ग्लानि को पाने वाला। इसका आशय यह है कि जो भूख मे इतना आतुर हो जाता है कि गृहस्थो के घर मे रसोई बन जाए, तब तक भी प्रतीक्षा नही कर सकता, ऐसा भूख सहने मे असमर्थ साधु कूरगडूक मुनि की तरह, गृहस्थो के घर से पहले दिन का बना हुआ वासी कूरादि (अन्न या पके हुए चावल) ला कर प्रात काल ही खाता है, वह अन्नग्लायक है। (२) चूर्णिकार के मतानुसार—भोजन के प्रति इतना नि स्पृह है कि जैसा भी अन्त, प्रान्त, ठडा, वासी अन्न मिले उसे निगल जाता है, वह अन्नगिलायक है।[2]

कठिनशब्दार्थ—**जावतिय**—जितने। **एवतिय**—इतने। **जुण्णे**—जीर्ण—वृद्ध। **जराजज्जरियदेहे**—बुढापे से जर्जरित देह वाला। **सिढिल-तयावलितरंग-सपिणद्धगत्ते**—शिथिल होने के कारण जिसकी चमडी (त्वचा) मे सलवटें (झुरिया) पड गई हो, ऐसे शरीर वाला। **पविरल-परिसडिय-दंतसेढी**—जिसके कई दात गिर जाने से बहुत थोडे (विरल) दात रहे हो। **उण्हाभिहए**—उष्णता से पीडित। **तण्हाभिहए**—प्यास से पीडित। **आउरे**—रोगी। **झुंझिए**—बुभुक्षित—क्षुधातुर। **पिवासिए**—पिपासित। **किलते**—क्लान्त। **कोसंब-गंडिय**—कोशम्ब वृक्ष की लकडी। **जडिल**—मुडी हुई। **गंठिल्ल**—गाठ वाली। **वाइद्धं**—व्यादिग्ध—वक्र। **अपत्तिय**—जिसको आधार न हो। **अवक्कमेज्जा**—प्रहार करे। **परसुणा**—कुल्हाडे से। **महंताइ**—बडे-बडे। **दलाइ अवद्दालेति**—टुकडे कर देता है। **महापज्जवसाणा**—मोक्ष रूप फल वाला। **सुक्क तणहत्थग**—सूखे घास के पूले को। **जायतेयंसि**—अग्नि मे। **परिविद्धत्थाइ**—परिविध्वस्त—नष्ट। **निउणसिप्पोवगए**—निपुण शिल्पकार। **मुंडो**—भोथरा।[3]

॥ सोलहवां शतक चौथा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) वियाहपण्णत्ति सुत्त भा २ पृ ७५३-७५४

(ख) व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र (श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर) खड २ श ६ उ १ सू-४

२ अन्न विना ग्लायति-ग्लानो भवतीति अन्नग्लायक, चूर्णिकारेण तु नि स्पृहत्वात् सीयकूरभोई अतपताहारो।

—अ वृत्ति, पत्र ७०५

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७०५

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५३४

पंचमो उद्देसओ : 'गंगदत्त'

पंचम उद्देशक : गंगदत्त (-जीवनवृत्त)

शक्रेन्द्र के आठ प्रश्नो का भगवान् द्वारा समाधान

१. तेण कालेण तेण समएण उल्लुयतीरे नामं नगरे होत्था। वण्णओ। एगजवुए चेइए वण्णओ।

[१] उस काल उस समय मे उल्लूकतीर नामक नगर था। उसका वर्णन पूर्ववत्। वहाँ एकजम्बूक नाम का उद्यान था। उसका वर्णन पूर्ववत्।

२. तेण कालेणं तेणं समएण सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासति।

[२] उस काल उस समय श्रमण महावीर स्वामी वहाँ पधारे, यावत् परिषद् ने पर्युपासना की।

३. तेण कालेणं तेण समएण सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी एवं जहेव बितियउद्देसए (सु० ८) तहेव दिव्वेण जाणविमाणेणं आगतो जाव जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता जाव नमंसिता एवं वदासि—

[३] उस काल उस समय मे देवेन्द्र देवराज वज्रपाणि शक्र इत्यादि सोलहवे शतक के द्वितीय उद्देशक (के सू ८) मे कथित वर्णन के अनुसार दिव्य यान विमान से वहाँ आया और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार कर उसने इस प्रकार पूछा—

४. देवे ण भते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले अपरियादित्ता पभू आगमित्तए ?
नो इणट्ठे समट्ठे।

[४] भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये बिना यहा आने मे समर्थ है ?

[४ उ] हे शक्र! यह अर्थ समर्थ नही।

५. देवे ण भते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले परियादित्ता पभू आगमित्तए ?
हता, पभू।

[५ प्र] भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके यहाँ आने मे समर्थ है ?

[५ उ] हाँ, शक्र! वह समर्थ है।

६. देवे णं भंते ! महिड्ढीए एवं एतेण अभिलावेण गमित्तए १। एव भासित्तए वा २, विआगरित्तए वा ३, उम्मिसावेत्तए वा निमिसावेत्तए वा ४, आउटावेत्तए वा पसारेत्तए वा ५, ठाण वा सेज्जं वा निसीहिय वा चेइत्तए वा ६, एव विउव्वित्तए वा ७, एव परियारेत्तए वा ८ ?

जाव हंता, पभू।

[६ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव क्या बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके (१) गमन करने, (२) बोलने, या (३) उत्तर देने अथवा (४) आँखे खोलने और बन्द करने, या (५) शरीर के अवयवों को सिकोडने और पसारने मे, अथवा (६) स्थान, शय्या, (वसति) निषद्या (स्वाध्याय भूमि) को भोगने मे, तथा (७) विक्रिया (विकुर्वणा) करने अथवा (८) परिचारणा (विषयभोग) करने मे समर्थ है ?

[६ उ] हा, शक्र ! वह गमन यावत् परिचारणा करने मे समर्थ है।

७. इमाइं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइ पुच्छति, इमाइ० २ सभंतियवंदणएण वदति, सभंतिय० २ तमेव दिव्व जाणविमाण दुरुहति, २ जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगते।

[७] देवेन्द्र देवराज शक्र ने इन (पूर्वोक्त) उत्क्षिप्त (अविस्तृत—सक्षिप्त) आठ प्रश्नो के उत्तर पूछे, और फिर भगवान् को उत्सुकतापूर्वक (अथवा सम्भ्रमपूर्वक) वन्दन करके उसी दिव्य यान-विमान पर चढ कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे लौट गया।

विवेचन—शक्रेन्द्र द्वारा आठ प्रश्न पूछने का आशय—कोई भी सासारिक प्राणी बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना (कोई भी क्रिया कर नही सकता, किन्तु देव तो महर्द्धिक होता है, इसलिए कदाचित् बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये बिना ही गमनादि क्रिया कर सकता हो, इस सम्भावना से शक्रेन्द्र ने ये आठ प्रश्न पूछे थे।[1]

कठिनशब्दार्थ—आगमित्तए—आने मे। वागरित्तए—उत्तर देने मे। उम्मिसावेत्तए निमिसावेत्तए—आंखें खोलने और बद करने मे। आउटावेत्तए पसारेत्तए—अवयव सिकोडने और फैलाने मे। ठाण—पर्यंकादि आसन, कायोत्सर्ग या स्थित रहना। सेज्जं—शय्या या वसति (उपाश्रय), निसीहियं—निषद्या-स्वाध्याय भूमि। चेइत्तए—उपभोग करने मे। परियारेत्तए—परिचारणा करने मे। उक्खित्तपसिणवागरणाइ—सक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर। सभंतिय—उत्सुकता से अथवा सभ्रम-पूर्वक—शीघ्रता से।[2]

शक्रेन्द्र के शीघ्र चले जाने का कारण : महाशुक्रसम्यग्दृष्टिदेव के तेज आदि की असहनशीलता-भगवत्कथन

८. 'भंते !' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदति नमसति, २ एव वयासी—अन्नदा ण भंते ! सक्के देविंदे देवराया देवाणुप्पिय वदति नमसति, वदि० २ सक्कारेति जाव पज्जुवासति,

१ भगवती अ वृत्ति, ७०७

२ (क) वही, पत्र ७०७

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २५३९

किं ण भंते ! अज्ज सक्के देविंदे देवराया देवाणुप्पियं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छइ, २ संभंतियवंदणएणं वंदति०, २ जाव पडिगए ?

'गोयमा !' दि समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वदासि —

"एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे दो देवा महिड्ढीया जाव महेसक्खा एगविमाणंसि देवत्ताए उववन्ना, तं जहा—मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नए, अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नए य।

"तए णं से मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नए देवे तं अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वदासि—परिणममाणा पोग्गला नो परिणया, अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला नो परिणया, अपरिणया।

'तए णं से अमायिसम्मद्दिट्ठीउववन्नए देवे तं मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासी—परिणममाणा पोग्गला परिणया, नो अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला परिणया, नो अपरिणया।

"तं मायिमिच्छद्दिट्ठीउववन्नगं देवं एवं पडिहणइ, एवं पडिहणित्ता ओहिं पउंजति, ओहिं० २ ममं ओहिणा आभोएति, ममं० २ अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे उल्लुयतीरस्स नगरस्स बहिया एगजंबुए चेइए अहापडिरूवं जाव विहरति, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्ता इमं एयारूवं वागरणं पुच्छित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेति, एवं संपेहित्ता चउहि वि सामाणियसाहस्सीहिं० परिवारो जहा सूरियाभस्स जाव निग्घोसनाइतरवेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव उल्लुयतीरे नगरे जेणेव एगजंबुए चेतिए जेणेव ममं अंतियं तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सक्के देविंदे देवराया तस्स देवस्स तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणे ममं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छति, पु० २ संभंतियं जाव पडिगए।"

[८ प्र] 'भगवन्'! इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—भगवन्! अन्य दिनो मे (जब कभी) देवेन्द्र देवराज शक्र (आता है, तब) आप देवानुप्रिय को वन्दन-नमस्कार करता है, आपका सत्कार-सन्मान करता है, यावत् आपकी पर्युपासना करता है, किन्तु भगवन्! आज तो देवेन्द्र देवराज शक्र आप देवानुप्रिय से सक्षेप मे आठ प्रश्नो के उत्तर पूछ कर और उत्सुकतापूर्वक वन्दना नमस्कार करके शीघ्र ही चला गया, इसका क्या कारण है ?

[८ उ] 'गौतम!' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—गौतम! उस काल उस समय मे महाशुक्र कल्प के 'महासामान्य' नामक विमान मे महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न दो देव, एक ही विमान मे देवरूप से उत्पन्न हुए। उनमे से एक मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हुआ और दूसरा अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्न हुआ।

एक दिन उस मायी मिथ्यादृष्टि देव ने अमायी सम्यग्दृष्टि देव से इस प्रकार कहा—परिणमते हुए पुद्गल 'परिणत' नही कहलाते, 'अपरिणत' कहलाते है, क्योकि वे पुद्गल अभी परिणत हो रहे हैं, इसलिए वे परिणत नही, अपरिणत हैं।'

इस पर अमायी सम्यग्दृष्टि देव ने मायी मिथ्यादृष्टि देव से कहा—'परिणमते हुए पुद्गल 'परिणत' कहलाते हैं, अपरिणत नही, क्योकि वे परिणत हो रहे है, इसलिए ऐसे पुद्गल परिणत हैं अपरिणत नही।

इस प्रकार कहकर अमायी सम्यग्दृष्टि देव ने मायी मिथ्यादृष्टि देव को (युक्तियो एव तर्कों से) प्रतिहत (पराजित) किया।

उस प्रकार पराजित करने के पश्चात् अमायी सम्यग्दृष्टि देव ने अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर अवधिज्ञान से मुझे देखा, फिर उसे ऐसा यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे, उल्लूकतीर नामक नगर के बाहर एकजम्बूक नाम के उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यथायोग्य अवग्रह लेकर विचरते है। अत मुझे (वहाँ जा कर) श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार यावत् पर्युपासना करके यह तथारूप (उपर्युक्त) प्रश्न पूछना श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर चार हजार सामानिक देवो के परिवार के साथ सूर्याभ देव के समान, यावत् निर्घोष-निनादित ध्वनिपूर्वक, जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे उल्लूकतीर नगर के एकजम्बूक उद्यान मे मेरे पास आने के लिए उसने प्रस्थान किया। उस समय (मेरे पास आते हुए) उस देव की तथाविध दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव (देवप्रभाव) और दिव्य तेज प्रभा (तेजोलेश्या) को सहन नही करता हुआ, (मेरे पास आया हुआ) देवेन्द्र देवराज शक्र (उसे देखकर) मुझसे सक्षेप मे आठ प्रश्न पूछ कर शीघ्र ही वन्दना-नमस्कार करके यावत् चला गया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (८) मे शक्रेन्द्र झटपट प्रश्न पूछ कर वापिस क्यो लौट गया ? गौतम स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् द्वारा दिया गया सयुक्तिक समाधान प्रस्तुत किया गया है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**मायि-मिच्छादिट्ठिउववन्नए**—मायी मिथ्यादृष्टि रूप मे उत्पन्न। **अमायिसम्मद्दिट्ठि-उववन्नए**—अमायी सम्यग्दृष्टिरूप मे उत्पन्न। **पडिहणइ**—प्रतिहत-पराभूत किया (निरुत्तर किया)।[2]

दिव्व तेयलेस्स असहमाणे : रहस्य—शक्रेन्द्र की भगवान् के पास से सक्षेप मे प्रश्न पूछ कर झटपट चले जाने की आतुरता के पीछे कारण उक्त देव की ऋद्धि, द्युति, प्रभाव, तेज आदि न सह सकना ही प्रतीत होता है। शक्रेन्द्र का जीव पूर्वभव मे कार्तिक नामक अभिनव श्रेष्ठी था और गंगदत्त उससे पहले का (जीर्ण-पुरातन) श्रेष्ठी था। इन दोनो मे प्राय मत्सरभाव रहता था। यही कारण है कि पहले के मात्सर्यभाव के कारण गगदत्त देव की ऋद्धि आदि शक्रेन्द्र को सहन न हुई।[3]

सम्यग्दृष्टि गंगदत्त द्वारा मिथ्यादृष्टिदेव को उक्त सिद्धान्तसम्मत तथ्य का भगवान् द्वारा समर्थन, धर्मोपदेश एव भव्यत्वादि कथन

९ जावं च ण समणे भगव महावीरे भगवतो गोयमस्स एयमट्ठ परिकहेति ताव च ण से देवे त देस हव्वमागए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७५६-७५७

२. (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५०१

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७०७

३ वही अ वृत्ति, पत्र ७०८

[९] जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भगवान् गौतमस्वामी से यह (उपर्युक्त) वात कह रहे थे, इतने मे ही वह देव (अमायी सम्यग्दृष्टि देव) शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा ।

१०. तए ण से देवे समण भगव महावीर तिक्खुत्तो वंदति नमसति, २ एवं वदासी—"एव खलु भते ! महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे एगे मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नए देवे मम एवं वदासी—'परिणममाण पोग्गला नो परिणया, अपरिणया, परिणमतीति पोग्गला नो परिणया, अपरिणया'। तए णं अह तं मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नग देव एव वदामि—'परिणममाणा पोग्गला परिणया, नो अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला परिणया, णो अपरिणया । से कहमेयं भते ! एव ?"

[१०] उस देव ने आते ही श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार किया और पूछा—भगवन् ! महाशुक्र कल्प मे महासामान्य विमान मे उत्पन्न हुए एक मायी मिथ्यादृष्टि देव ने मुझे इस प्रकार कहा—

परिणमते हुए पुद्‌गल अभी 'परिणत' नही कहे जा कर अपरिणत कहे जाते हैं, क्योंकि वे पुद्‌गल अभी परिणम रहे हैं । इसलिए वे 'परिणत' नही, अपरिणत ही कहे जाते है ।

तब मैंने (इसके उत्तर मे) उस मायी मिथ्यादृष्टि देव से इस प्रकार कहा—'परिणमते हुए पुद्‌गल 'परिणत' कहलाते है, अपरिणत नही, क्योकि वे पुद्‌गल परिणत हो रहे है, इसलिए परिणत कहलाते है, अपरिणत नही । भगवन् ! इस प्रकार का मेरा कथन कैसा है ?'

११. 'गगदत्ता !' ई समणे भगवं महावीरे गंगदत्त देवं एवं वदासी—अहं पि ण गगदत्ता ! एवमाइक्खामि० ४ परिणममाणा पोग्गला जाव नो अपरिणया, सच्चमेसे अट्ठे ।

[११ उ] 'हे गगदत्त !' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने गगदत्त देव को इस प्रकार कहा—'गगदत्त ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि परिणमते हुए पुद्‌गल यावत् अपरिणत नही, परिणत है । यह अर्थ (सिद्धान्त) सत्य है ।'

१२. तए ण से गंगदत्ते देवे समणस्स भगवतो महावीरस्स अतिय एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० समण भगवं महावीर वदति नमसति, २ नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ ।

[१२] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से यह उत्तर सुनकर और अवधारण करके वह गगदत्त देव हर्षित और सन्तुष्ट हुआ । उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया । फिर वह न अतिदूर और न अतिनिकट वैठ कर यावत् भगवान् की पर्युपासना करने लगा ।

१३. तए ण समणे भगव महावीरे गगदत्तस्स देवस्स तीसे य जाव धम्मं परिकहेति जाव आराहए भवति ।

[१३] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने गगदत्त देव को और महती परिषद् को धर्म-कथा कही, यावत्—जिसे सुनकर जीव आराधक वनता है ।

१४. तए ण से गगदत्ते देवे समणस्स भगवतो महावीरस्स अतिये धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, २ एवं वदासी—अहं णं भते ! गंगदत्ते देवे किं भवसिद्धिए अभवसिद्धिए ?

एव जहा सूरियाभो[1] जाव वत्तीसतिविहं नट्टविहिं उवदसेति, उव० २ जाव तामेव दिस पडिगए ।

[१४ प्र] उस समय गगदत्त देव श्रमण भगवान् महावीर से धर्मदेशना सुनकर और अवधारण करके हृष्ट-तुष्ट हुआ और फिर उसने खडे हो कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! मैं गगदत्त देव भवसिद्धिक हूँ या अभवसिद्धिक ?

[१४ उ] हे गगदत्त ! (राजप्रश्नीय सूत्र के) सूर्याभदेव के समान (यहाँ समग्र कथन समझना ।)

फिर गगदत्त देव ने भी सूर्याभदेववत् वत्तीस प्रकार की नाट्यविधि (नाट्यकला) प्रदर्शित की और फिर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे लौट गया ।

विवेचन—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू ६ से १४ तक) मे गगदत्त देव द्वारा भगवान् की सेवा मे पहुँच कर अपनी पूर्वोक्त शका का समाधान प्राप्त करके, फिर भगवान् की पर्युपासना करके उनसे धर्मकथा सुनकर तथा अपनी भवसिद्धिकता के विषय मे भगवान् से निर्णय प्राप्त करके हृष्टतुष्ट होकर सूर्याभदेववत् नाट्यकला दिखाने का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है ।[2]

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि देव का कथन—मिथ्यादृष्टि देव का कथन था कि—'जो पुद्गल अभी परिणम रहे हैं, उन्हे 'परिणत' नही कहना चाहिए, क्योकि वर्तमानकाल और भूतकाल मे परस्पर विरोध है । उन्हे 'अपरिणत' कहना चाहिए ।' सम्यग्दृष्टि देव ने उत्तर दिया—परिणमते हुए पुद्गलो को परिणत कहना चाहिए, अपरिणत नही, क्योकि जो परिणमते हैं, उनका अमुक अश परिणत हो चुका है, अत वे सर्वथा 'अपरिणत' नही रहे । 'परिणमते है,' यह कथन उस परिणाम के सद्भाव मे ही हो सकता है, असद्भाव मे नही । जब परिणाम का सद्भाव मान लिया गया हो तो, अमुक अश मे उसकी परिणतता भी अवश्य माननी चाहिए, अन्यथा पुद्गल का अमुक अश मे परिणमन हो जाने पर भी उसकी परिणतता का सर्वथा अभाव हो जाएगा ।[3]

इसीलिए भगवान् ने सम्यग्दृष्टि देव द्वारा कथित तथ्य का समर्थन करते हुए कहा—'**सच्चमेसे अट्ठे** ।'

कठिनशब्दार्थ—**जावं**—जब तक या जिस समय । **ताव**—तभी । **हव्वमागए**—शीघ्र आ पहुँचा ।[4]

---

१ जाव शब्द सूचक पाठ—'सम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी परित्तससारिए अणतससारिए, सुलभबोहिए, दुल्लभबोहिए आराहए विराहए चरिमे अचरिमे', इत्यादि । —अ वृ पत्र ७०८

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ७५७-७५८

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७०७
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५४२

४ वही, (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५४५

गंगदत्तदेव की दिव्य ऋद्धि आदि के सम्बन्ध मे प्रश्न : भगवान् द्वारा पूर्वभव-वृत्तान्त-पूर्वक विस्तृत समाधान

१५. 'भते !' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर जाव एवं वदासी—गंगदत्तस्स ण भते ! देवस्स सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती जाव अणुप्पविट्ठा ?

गोयमा ! सरीर गया, सरीर अणुप्पविट्ठा । कूडागारसालादिट्ठंतो जाव सरीर अणुप्पविट्ठा । अहो ! ण भते ! गगदत्ते देवे महिड्ढीए जाव महेसक्खे ।

[१५ प्र] 'भगवन् !' इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से यावत् इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! गगदत्त देव की वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति यावत् कहाँ गई, कहाँ प्रविष्ट हो गई ?'

[१५ उ] गौतम ! (गगदत्त देव की वह दिव्य देवर्द्धि इत्यादि) यावत् उस गगदत्त देव के शरीर मे गई और शरीर मे ही अनुप्रविष्ट हो गई । यहाँ कूटाकारशाला का दृष्टान्त, यावत् वह शरीर मे अनुप्रविष्ट हुई, (यहाँ तक समझना चाहिए ।)

(गौतम—) अहो ! भगवन् ! गगदत्त देव महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न है !

१६. गगदत्तेण भते ! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती किण्णा लद्धा जाव जं ण गंगदत्तेण देवेण सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया ?

'गोयमा !' ई समणे भगव महावीरे भगव गोयमं एवं वयासी—"एव खलु गोयमा !

"तेणं कालेण तेण समयेण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे णाम नगरे होत्था, वण्णओ । सहसबवणे उज्जाणे, वण्णओ । तत्थ ण हत्थिणापुरे नगरे गगदत्ते नाम गाहावती परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूते ।"

"तेण कालेण तेण समयेण मुणिसुव्वए अरहा आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएण चक्केण जाव पकड्ढिज्जमाणेणं पकड्ढिज्जमाणेण सीसगणसपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं जाव जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरति । परिसा निग्गता जाव पज्जुवासति ।"

"तए ण से गगदत्ते गाहावती इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ० ण्हाते कतबलिकम्मे जाव सरीरे सातो गिहातो पडिनिक्खमति, २ पादविहारचारेण हत्थिणापुर नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छति, नि० २ जेणेव सहसबवणे उज्जाणे जेणेव मुणिसुव्वए अरहा तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ मुणिसुव्वय अरह तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति ।"

"तए ण मुणिसुव्वए अरहा गगदत्तस्स गाहावतिस्स तीसे य महति जाव परिसा पडिगता ।"

"तए ण से गगदत्ते गाहावती मुणिसुव्वयस्स अरहओ अतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ मुणिसुव्वत अरह वदति नमसति, व० २ एव वदासी—'सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयण जाव से जहेय तुब्भे वदह । ज नवर देवाणुप्पिया ! जेट्ठपुत्त कुडुंबे ठावेमि, तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिय मुंडे जाव पव्वयामि" । 'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबध' ।

"तए णं से गगदत्ते गाहावती मुणिसुव्वतेण अरहया एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० मुणिसुव्वं अरहं वदति नमंसति, व० २ मुणिसुव्वयस्स अरहओ अतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणातो पडिनिक्खमति, पडि० २ जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ विपुल असण-पाण० जाव उवक्खडावेइ, उव० २ मित्त-णाति-णियग० जाव आमतेति, आ० २ ततो पच्छा ण्हाते जहा पूरणे (स० ३ उ० २ सु० १९) जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेति, ठा० २ तं मित्त-णाति० जाव जेट्ठपुत्त च आपुच्छति, आ० २ पुरिससहस्सवाहिणि सीयं दुरूहति, पुरिससह० २ मित्त-णाति-नियग० जाव परिजणेण जेट्ठपुत्तेण य समणुगम्ममाणमग्गे सव्विड्ढीए जाव णादितरवेण हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति, नि० २ जेणेव सहसववणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ छत्तादिए तित्थगरातिसए पासति, एवं जहा उद्दायणो (स० १३ उ० ६ सु० ३०) जाव सयमेव आभरण ओमुयइ, स० २ सयमेव पचमुट्ठिय लोयं करेइ, स० २ जेणेव मुणिसुव्वये अरहा, एवं जहेव उद्दायणो (स० १३ उ० ६ सु० ३१) तहेव पव्वइओ। तहेव एक्कारस अंगाइ अधिज्जइ जाव मासियाए सलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए जाव छेदेति, सट्ठि० २ आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालमासे काल किच्चा महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे उववायसभाए देवसएणिज्जंसि जाव गगदत्तदेवत्ताए उववन्ने।"

"तए णं ते गंगदत्ते देवे अहुणोववन्नमेत्तए समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभाव गच्छति, तं जहा—आहारपज्जत्तीए जाव भासा-मणपज्जत्तीए।"

"एव खलु गोयमा! गगदत्तेण देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया"।

[१६ प्र] भगवन्! गगदत्त देव को वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति कैसे उपलब्ध हुई? यावत् जिससे गगदत्त देव ने वह दिव्य देव-ऋद्धि उपलब्ध, प्राप्त और यावत् अभिसमन्वागत (सम्मुख) की?

[१६ उ] 'हे गौतम!' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम मे इस प्रकार कहा—"गौतम! बात ऐसी है कि उस काल उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे हस्तिनापुर नाम का नगर था। उसका वर्णन पूर्ववत्। वहाँ सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। उसका वर्णन भी पूर्ववत् समझना। उस हस्तिनापुर नगर मे गगदत्त नाम का गाथा-पति रहता था। वह आढ्य यावत् अपराभूत (अपराजेय) था।

उस काल उस समय मे धर्म (तीर्थ) की आदि (प्रवर्त्तन) करने वाले यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी आकाशगत (धर्म) चक्रसहित यावत् देवो द्वारा खीचे जाते हुए धर्मध्वजयुक्त, शिष्यगण से सपरिवृत्त हो कर अनुक्रम से विचरते हुए और ग्रामानुग्राम जाते हुए, यावत् मुनिसुव्रत अर्हन्त यावत् सहस्राम्रवन उद्यान मे पधारे, यावत् यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके विचरने लगे। परिषद् वन्दना करने के लिए आई यावत् पर्युपासना करने लगी।

जब गगदत्त गाथापति ने भगवान् श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के पदार्पण की बात सुनी तो वह अतीव हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसने स्नान और बलिकर्म किया यावत् शरीर को अलकृत करके वह अपने घर से निकला और पैदल चल कर हस्तिनापुर नगर के मध्य मे से होता हुआ सहस्राम्रवन

उद्यान मे जहाँ अर्हंत् भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी विराजमान थे, वहाँ पहुँचा । तीर्थंकर मुनिसुव्रत प्रभु को तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करके यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना विधि से पर्युपासना करने लगा ।

तत्पश्चात् अर्हन्त मुनिसुव्रतस्वामी ने गगदत्त गाथापति को और उस महती परिषद् को धर्मकथा कही । धर्मकथा सुनकर यावत् परिषद् लौट गई ।

तीर्थकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी से धर्म सुनकर और अवधारण करके गगदत्त गाथापति हृष्टतुष्ट हो कर खडा हुआ और भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—'भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् आपने जो कुछ कहा, उस पर श्रद्धा करता हूँ । देवानुप्रिय ! विशेष बात यह है कि मै अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप दू गा, फिर आप देवानुप्रिय के समीप मुण्डित यावत् प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।' (श्री मुनिसुव्रतस्वामी ने कहा—) हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वैसा करो, परन्तु धर्मकार्य मे विलम्ब मत करो ।

अर्हत् मुनिसुव्रतस्वामी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह गगदत्त गाथापति हृष्टतुष्ट हुआ सहस्राम्रवन उद्यान से निकला, और हस्तिनापुर नगर मे जहाँ अपना घर था, वहाँ आया । घर आकर उसने विपुल अशन-पान यावत् तैयार करवाया । फिर अपने मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन आदि को आमन्त्रित किया । उसके पश्चात् उसने स्नान किया । फिर (तीसरे शतक के दूसरे उद्देशक सू १९ मे कथित) पूरण सेठ के समान अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब (—कार्य) मे स्थापित किया ।

तत्पश्चात् अपने मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन आदि तथा ज्येष्ठ पुत्र से अनुमति ले कर हजार पुरुषो द्वारा उठाने योग्य शिविका (पालखी) पर चढा और अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन यावत् परिवार एव ज्येष्ठ पुत्र द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ, सर्वऋद्धि (ठाठवाठ) के साथ यावत् वाद्यो के आघोषपूर्वक हस्तिनापुर नगर के मध्य मे हो कर सहस्राम्रवन उद्यान के निकट आया । छत्र आदि तीर्थंकर भगवान् के अतिशय देख कर यावत् (तेरहवे शतक के छठे उद्देशक सू ३० मे कथित) उदायन राजा के समान यावत् स्वयमेव आभूषण उतारे, फिर स्वयमेव पचमुष्टिक लोच किया । इसके पश्चात् तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के पास जा कर (१३ वे शतक, छठे उद्देशक सू ३१ मे कथित) उदायन राजा के समान प्रव्रज्या ग्रहण की, यावत् उसी के समान (गगदत्त अनगार ने) ग्यारह अगो का अध्ययन किया यावत् एक मास की सलेखना से साठ-भक्त अनशन का छेदन किया और फिर आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त हो कर काल के अवसर मे काल करके महाशुक्रकल्प मे महासामान्य नामक विमान की उपपातसभा की देवशय्या मे यावत् गगदत्त देव के रूप मे उत्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात् सद्योजात (तत्काल उत्पन्न) वह गगदत्त देव पचविध पर्याप्तियो से पर्याप्त बना । यथा—आहारपर्याप्ति यावत् भाषा-मन पर्याप्ति ।

इस प्रकार हे गौतम ! गगदत्त देव ने वह दिव्य देव-ऋद्धि यावत् पूर्वोक्त प्रकार से उपलब्ध, प्राप्त यावत् अभिमुख की है ।

विवेचन—गंगदत्त को प्राप्त दिव्य देवर्द्धि—भगवान् ने गौतम स्वामी के पूछने पर गगदत्त की दिव्य देवर्द्धि आदि का कारण पूर्वभव मे हस्तिनापुर नगर के सम्पन्न और अपराभूत गंगदत्त नामक

गृहस्थ द्वारा भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी का धर्मोपदेश सुन कर ससार से विरक्त होकर मुनिसुव्रतस्वामी के पास श्रमणधर्म मे प्रव्रजित होकर सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सम्यक् आराधना करना कहा है। साथ ही अन्तिम समय मे एक मास का सलेखना-सथारा ग्रहण करके समाधिपूर्वक मरण प्राप्त करना भी कहा है। इन्ही कारणो से उसे महाशुक्र देवलोक मे इतनी दिव्य देव-ऋद्धि-द्युति आदि प्राप्त हुई।[1]

कठिनशब्दार्थ—पकड्ढिज्जमाणेण—खीचे जाते हुए। **कुटु बे ठावेमि**—कौटुम्बिक कार्यभार मे स्थापित करू गा, कुटुम्ब का दायित्व सौपू गा। **उवक्खडावेइ**—पकवाया, तैयार करवाया।[2]

पाच पर्याप्तियो मे पर्याप्त—इसलिए कहा गया है कि देवो मे भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति सम्मिलित बधती है।

गंगदत्तदेव की स्थिति तथा भविष्य मे मोक्षप्राप्ति का निरूपण

१७. गगदत्तस्स ण भते ! देवस्स केवतिय काल ठिती पन्नत्ता ?

गोयमा ! सत्तरससागरोवमाइ ठिती पन्नत्ता।

[१७ प्र] भगवन् ! गगदत्त देव की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[१७ उ] गौतम ! उसकी सत्तरह सागरोपम की स्थिति कही है।

१८. गगदत्ते णं भते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएण जाव० ?

महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अत काहिति।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ सोलसमे सए : पचमो उद्देसओ समत्तो ॥१६. ५॥

[१८ प्र.] भगवन् ! गगदत्त देव उस देवलोक से आयुष्य का क्षय, भव और स्थिति का क्षय होने पर च्यव कर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[१८ उ.] गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ सोलहवाँ शतक : पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ७४८-७६०

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५४७, २५४९

छट्ठो उद्देसओ : 'सुमिणे'

छठा उद्देशक : स्वप्न-दर्शन

स्वप्न-दर्शन के पांच प्रकार

१. कतिविधे ण भते ! सुविणदंसणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविहे सुविणदसणे पन्नत्ते, त जहा—अहातच्चे पयाणे चितासुविणे तव्विवरीए अव्वत्तदसणे ।

[१ प्र] भगवन् ! स्वप्न-दर्शन कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! स्वप्नदर्शन पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) यथातथ्य स्वप्न-दर्शन (२) प्रतान स्वप्नदर्शन, (३) चिन्ता स्वप्न-दर्शन, (४) तद्विपरीत स्वप्नदर्शन, और (५) अव्यक्त स्वप्न-दर्शन ।

विवेचन—स्वप्नदर्शन : स्वरूप, प्रकार और लक्षण—सुप्त अवस्था मे किसी भी अर्थ के विकल्प का प्राणी को जो अनुभव होता है, चलचित्र के देखने का-सा प्रत्यक्ष होता है, वह स्वप्न-दर्शन कहलाता है। इसके पाच प्रकार हैं, जिनके लक्षण क्रमश इस प्रकार हैं—

(१) **अहातच्चे : दो रूप : दो अर्थ**—(१) **यथातथ्य** और (२) यथातत्त्व—स्वप्न मे जिस अर्थ को देखा गया, जागृत होने पर उसी को देखना या उसके अनुरूप शुभाशुभ फल की प्राप्ति होना यथातथ्य-स्वप्नदर्शन है। इसके दो प्रकार हैं—(१) **दृष्टार्थाविसवादी**—स्वप्न मे देखे हुए अर्थ के अनुसार जागृत अवस्था मे घटना घटित होना। जैसे-किसी व्यक्ति ने स्वप्न मे देखा कि मेरे हाथ मे किसी ने फल दिया। जागृत होने पर उसी प्रकार की घटना घटित हो, अर्थात्—कोई उसके हाथ मे फल दे दे। (२) **फलाविसवादी**—स्वप्न के अनुसार जिसका फल (परिणाम) अवश्य मिले, वह फलाविसवादी स्वप्नदर्शन है। जैसे-किसी ने स्वप्न मे अपने आपको हाथी आदि पर बैठे देखा, जागृत होने पर कालान्तर मे उसे धनसम्पत्ति आदि की प्राप्ति हो।

(२) **प्रतान-स्वप्नदर्शन**—प्रतान का अर्थ है—विस्तार। विस्तारवाला स्वप्न देखना प्रतानस्वप्नदर्शन है, यह सत्य भी हो सकता है, असत्य भी। (३) **चिन्तास्वप्नदर्शन**—जागृत अवस्था मे जिस वस्तु की चिन्ता रही हो, अथवा जिस अर्थ का चिन्तन किया हो, स्वप्न मे उसी को देखना, चिन्ता-स्वप्न-दर्शन है। (४) **तद्विपरीत स्वप्नदर्शन**—स्वप्न मे जो वस्तु देखी हो, जागृत होने पर उसके विपरीत वस्तु की प्राप्ति होना, तद्विपरीत स्वप्नदर्शन है। जैसे-किसी ने स्वप्न मे अपने शरीर को विष्टा से लिपटा देखा, किन्तु जागृतावस्था मे कोई पुरुष उसके शरीर को शुचि पदार्थ (चदन आदि) से लिप्त करे। (५) **अव्यक्त-स्वप्नदर्शन**—स्वप्न मे देखी हुई वस्तु का अस्पष्ट ज्ञान होना, अव्यक्तस्वप्नदर्शन है।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१०

सुप्त-जागृत-अवस्था मे स्वप्नदर्शन का निरूपण

२. सुत्ते ण भते ! सुविण पासति, जागरे सुविण पासति, सुत्तजागरे सुविण पासति ?

गोयमा ! नो सुत्ते सुविण पासति, नो जागरे सुविण पासति, सुत्तजागरे सुविणं पासति ।

[२ प्र] भगवन् ! सोता हुआ प्राणी स्वप्न देखता है, जागता हुआ देखता है, अथवा सुप्त-जागृत (सोता-जागता) प्राणी स्वप्न देखता है ?

[२ उ] गौतम ! सोता हुआ प्राणी स्वप्न नही देखता, और न जागता हुआ प्राणी स्वप्न देखता है, किन्तु सुप्त-जागृत प्राणी स्वप्न देखता है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र (२) मे स्वप्नदर्शन-सम्बन्धी प्रश्न द्रव्यनिद्रा (द्रव्यत सुप्त) की अपेक्षा से किया गया है । इस दृष्टि से स्वप्न-दर्शन न तो द्रव्यनिद्रावस्था मे होता है, और न द्रव्यजागृतावस्था मे, किन्तु द्रव्यत सुप्तजागृत-अवस्था मे होता है ।[1]

जीवो तथा चौवीस दण्डको मे सुप्त, जागृत एवं सुप्त-जागृत का निरूपण

३. जीवा ण भते ! किं सुत्ता, जागरा, सुत्तजागरा ?

गोयमा ! जीवा सुत्ता वि, जागरा वि, सुत्तजागरा वि ।

[३ प्र] भगवन् ! जीव सुप्त है, जागृत है अथवा सुप्त-जागृत है ?

[३ उ] गौतम ! जीव सुप्त भी हैं, जागृत भी है और सुप्तजागृत भी है ।

४. नेरतिया ण भते ! किं सुत्ता० पुच्छा ।

गोयमा ! नेरइया सुत्ता, नो जागरा, नो सुत्तजागरा ।

[४ प्र] भगवन् ! नैरयिक सुप्त है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४ उ] गौतम ! नैरयिक सुप्त है, जागृत नही है और न वे सुप्तजागृत है ।

५. एव जाव चउरिंदिया ।

[५ प्र.] इसी प्रकार (भवनपतिदेवो से लेकर) यावत् (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और) चतुरिन्द्रिय तक कहना चाहिए ।

६. पचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! किं सुत्ता० पुच्छा ।

गोयमा ! सुत्ता, नो जागरा, सुत्तजागरा वि ।

[६ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव सुप्त है, या सुप्त-जागृत है) इत्यादि प्रश्न ।

[६ उ] गौतम ! वे सुप्त है, जागृत नही है, सुप्त-जागृत भी है ।

७. मणुस्सा जहा जीवा ।

[७] मनुष्यो के सम्बन्ध मे सामान्य जीवो के समान (तीनो) जानना चाहिए ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७११

८. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।

[८] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन नैरयिक जीवों के समान (सुप्त) जानना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू ३ से ८ तक) मे सामान्य जीवों और चौबीस दण्डकों मे भावत सुप्त, जागृत एव सुप्तजागृत की दृष्टि से निरूपण किया गया है ।

द्रव्य और भाव से सुप्त आदि का आशय—सुप्त और जागृत दो प्रकार से कहा जाता है—द्रव्य की अपेक्षा से और भाव की अपेक्षा से । निद्रा लेना द्रव्य से सोना है और विरति-रहित अवस्था भाव से सोना है । स्वप्न सम्बन्धी प्रश्न द्रव्यसुप्त की अपेक्षा से है । प्रस्तुत मे सुप्त, जागृत एव सुप्त-जागृत-सम्बन्धी प्रश्न विरति (भाव) की अपेक्षा से है । जो जीव सर्वविरति से रहित है, वे भावतः सुप्त हैं । जो जीव सर्वविरत हैं, वे भाव से जागृत हैं और जो जीव देशविरत हैं, वे सुप्त-जागृत (भावत सोते-जागते) हैं ।[1]

संवृत आदि मे तथारूप स्वप्न-दर्शन की तथा इनमें सुप्त आदि की प्ररूपणा

९. सवुडे ण भते ! सुविण पासति, असवुडे सुविण पासति, सवुडासंवुडे सुविणं पासति ?

गोयमा ! सवुडे वि सुविणं पासति, असवुडे वि सुविण पासति, संवुडासवुडे वि सुविण पासति । सवुडे सुविण पासति—अहातच्च पासति । असवुडे सुविणं पासति—तहा तं होज्जा, अन्नहा वा त होज्जा । सवुडासवुडे सुविण पासति—एवं चेव ।

[९ प्र] भगवन् ! सवृत जीव स्वप्न देखता है, असवृत जीव स्वप्न देखता है अथवा सवृता-सवृत जीव स्वप्न देखता है ?

[९ उ] गौतम ! सवृत जीव भी स्वप्न देखता है, असवृत भी स्वप्न देखता है और सवृता-सवृत भी स्वप्न देखता है । सवृत जीव जो स्वप्न देखता है, वह यथातथ्य देखता है । असवृत जीव जो स्वप्न देखता है, वह सत्य (तथ्य) भी हो सकता है और असत्य (अतथ्य) भी हो सकता है । सवृता-सवृत जीव जो स्वप्न देखता है, वह भी असवृत के समान (सत्य-असत्य दोनो प्रकार का) होता है ।

१०. जीवा ण भते ! किं सवुडा, असवुडा, सवुडासवुडा ?

गोयमा ! जीवा सवुडा वि, असवुडा वि, सवुडासवुडा वि ।

[१० प्र] भगवन् ! जीव सवृत हैं, असवृत हैं अथवा सवृतासवृत हैं ?

[१० उ] गौतम ! जीव सवृत भी हैं, असवृत भी हैं और सवृतासवृत भी हैं ।

११. एव जहेव सुत्ताणं दडओ तहेव भाणियव्वो ।

[११] जिस प्रकार सुप्त, (जागृत और सुप्त-जागृत) जीवो का दण्डक (आलापक) कहा, उसी प्रकार इनका भी कहना चाहिए ।

---

१ (क) सर्वविरतिरूपनैश्चयिकप्रबोधाऽभावात् सुप्त, सर्वविरतिरूपप्रवरजागरण-सद्भावात् जाग्रत्, तथा अविरति-विरतिरूपप्रसुप्ति-प्रबुद्धतासद्भावात् सुप्त-जाग्रत् इति । —भगवती अ वृत्ति, पत्र ७११

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५५५

विवेचन—सवृत, असवृत और संवृतासवृत का स्वरूप और जागृत आदि मे अन्तर—जिसने आश्रवद्वारो का निरोध कर दिया है, वह सर्वविरत श्रमण सवृत कहलाता है। जिसने आश्रवद्वारो का निरोध नही किया है, वह असवृत है और जिसने आशिक रूप से आश्रवद्वारो का निरोध किया है, आशिक रूप से आश्रवद्वारो का निरोध नही किया है, वह सवृतासवृत है। सवृत और जागृत मे केवल शाब्दिक अन्तर है, अर्थ की अपेक्षा से नही। दोनो सर्वविरत कहलाते है। बोध की अपेक्षा से सर्वविरतियुक्त मुनि जागृत कहलाता है, जब कि तथाविध बोध से युक्त मुनि सर्वविरति की अपेक्षा से सवृत कहलाता है। इसी प्रकार असवृत और अविरत तथा सवृतासवृत और विरताविरत मे भी अर्थ की दृष्टि से कोई अन्तर नही है। सवृत शब्द से यहाँ विशिष्टतर सवृतत्वयुक्त मुनि का ग्रहण किया गया है। वह प्राय कर्मफल के क्षीण होने मे तथा देवानुग्रह से युक्त होने से यथार्थ (सत्य) स्वप्न ही देखता है। दूसरे असवृत और सवृतासवृत जीव तो यथार्थ और अयथार्थ दोनो प्रकार के स्वप्न देखते हैं।[1]

कठिन शब्दार्थ—सवुडे—सवृत मुनि। **सवुडासवुडे**—सवृतासवृत—विरताविरत श्रावक।[2]

सवृत आदि की जागृत आदि से तुलना—भावसुप्त की तरह असवृत भी भावत सुप्त होता है, सवृत भावत जागृत होता है। और सवृतासवृत भावत सुप्तजागृत होता है।[3]

स्वप्नो और महास्वप्नो की सख्या का निरूपण

१२ कति ण भते ! सुविणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! बायालीस सुविणा पन्नत्ता।

[१२ प्र] भगवन् ! स्वप्न कितने प्रकार के होते है ?

[१२ उ] गौतम ! स्वप्न बयालीस प्रकार के कहे गये है।

१३. कति ण भते ! महासुविणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! तीस महासुविणा पन्नत्ता।

[१३ प्र] भगवन् ! महास्वप्न कितने प्रकार के कहे गये है ?

[१३ उ] गौतम ! महास्वप्न तीस प्रकार के कहे गए है।

१४. कति णं भते ! सव्वसुविणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! बावत्तरिं सव्वसुविणा पन्नत्ता।

[१४ प्र] भगवन् ! सभी स्वप्न कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१४ उ] गौतम ! सभी स्वप्न बहत्तर कहे गए हैं ?

विवेचन—विशिष्ट फलसूचक स्वप्नो की सख्या—वैसे तो स्वप्न असख्य प्रकार के हो सकते हैं,

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७११
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५५६

२ वही, पृ २५५६

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ७६१-७६२

किन्तु विशिष्ट फलसूचक स्वप्नो की अपेक्षा ४२ है, तथा महत्तम फलसूचक होने से ३० महास्वप्न वतलाए गए है। कुल मिलाकर दोनो प्रकार के स्वप्नो की सख्या ७२ बतलाई गई है।[1]

तीर्थंकरादि महापुरुषों की माताओ को गर्भ में तीर्थंकरादि के आने पर दिखाई देने वाले महास्वप्नों की संख्या का निरूपण

१५. तित्थयरमायरो ण भते ! तित्थगरसि गब्भ वक्कममाणसि कति महासुविणे पासित्ताणं पडिबुज्झति ?

गोयमा ! तित्थगरमायरो ण तित्थगरंसि गब्भ वक्कममाणसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ताण पडिबुज्झति, तं जहा—गय-वसभ-सीह जाव सिहिं च।

[१५ प्र] भगवन् ! तीर्थंकर का जीव जब गर्भ मे आता है, तव तीर्थंकर की माताएँ कितने महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं ?

[१५ उ] गौतम ! जब तीर्थंकर का जीव गर्भ मे आता है, तब तीर्थंकर की माताएँ इन तीस महास्वप्नो मे से चौदह महास्वप्न देख कर जागृत होती है। यथा—गज, वृषभ, सिंह यावत् अग्नि।

१६. चक्कवट्टिमायरो णं भते ! चक्कवट्टिसि गब्भ वक्कममाणसि कति महासुविणे जाव बुज्झति ?

गोयमा ! चक्कवट्टिमायरो चक्कवट्टिसि गब्भ वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासु० एवं जहा तित्थगरमायरो जाव सिहिं च।

[१६ प्र] भगवन् ! जब चक्रवर्ती का जीव गर्भ मे आता है, तब चक्रवर्ती की माताएँ कितने महास्वप्नो को देख कर जागृत होती है ?

[१६ उ] गौतम ! चक्रवर्ती का जीव गर्भ मे आता है, तव चक्रवर्ती की माताएँ इन (पूर्वोक्त) तीस महास्वप्नो मे से तीर्थंकर की माताओ के समान चौदह महास्वप्नो को देख कर जागृत होती है। यथा—गज यावत् अग्नि।

१७. वासुदेवमायरो ण पुच्छा।

गोयमा ! वासुदेवमायरो जाव वक्कममाणसि एएसिं चोद्दसण्ह अन्नयरे सत्त महासुविणे पासित्ताण पडिबुज्झति।

[१७ प्र] भगवन् ! वासुदेव का जीव जब गर्भ मे आता है, तब वासुदेव की माताएँ कितने महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं ?

[१७ उ] गौतम ! वासुदेव का जीव जब गर्भ मे आता है, तब वासुदेव की माताएँ इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई भी सात महास्वप्न देख कर जागृत होती है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७११

१८. बलदेवमायरो० पुच्छा।

गोयमा ! बलदेवमायरो जाव एएसिं चोद्दसण्ह महासुविणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ताण पडिबुज्झंति।

[१८ प्र] भगवन् ! बलदेव का जीव जब गर्भ मे आता है, तब बलदेव की माताएँ कितने स्वप्न ...इत्यादि पृच्छा ?

[१८ उ] गौतम ! बलदेव की माताएँ, यावत् इन चौदह महास्वप्नो मे से किन्ही चार महास्वप्नों को देख कर जागृत होती हे।

१९. मंडलियमायरो ण भंते ! म० पुच्छा।

गोयमा ! मंडलियमायरो जाव एएसिं चोद्दसण्ह महासुविणाणं अन्नयरं एगं महासुविण जाव पडिबुज्झंति।

[१९ प्र] भगवन् ! माण्डलिक का जीव गर्भ मे आने पर माण्डलिक की माताएँ इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१९ उ] गौतम ! माण्डलिक की माताएँ यावत् इन चौदह महास्वप्नो मे से किसी एक महास्वप्न को देख कर जागृत होती हैं।

विवेचन—विशिष्ट महापुरुषों के जगत् मे आने के संकेत : महास्वप्नो द्वारा—तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि श्लाघ्य पुरुष जगत् मे जब गर्भ मे आते है, उनके आने के शुभसंकेत उनकी माताओ को दिखाई देने वाले स्वप्नों मे प्राप्त हो जाते हैं। किसकी माता को कितने महास्वप्न दिखाई देते है, उनकी यहाँ एक संक्षिप्त तालिका दी जाती है[1]—

१ तीर्थंकर की माता को १४	४ बलदेव की माता को ४
२ चक्रवर्ती की माता को १४	५ माण्डलिक की माता को १
३ वासुदेव की माता को ७	

कठिन शब्दार्थ—पासित्ताणं—देखकर। **पडिबुज्झंति**—जागृत होती है। **महासुविणाणं**—महास्वप्नों मे से। **अन्नयरे**—किन्ही।[2]

विशेष—जब तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती का जीव नरक से निकल कर आता है तो उनकी माता 'भवन' देखती है और जब देवलोक से च्यव कर आता है तो 'विमान' देखती है।[3]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७६२-७६३

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ २५५८

३. वही, भा. ५, पृ. २५५९

भगवान् महावीर को छद्मस्थावस्था की अन्तिम रात्रि मे दिखाई दिये १० स्वप्न और उनका फल

२०. समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयसि इमे दस महासुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे, तं जहा—एगं च ण मह घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ताण पडिवुद्धे १। एग च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलं सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे २। एग च ण महं चित्तविचित्तपक्खग पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ३। एग च ण मह दामदुग सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ४। एग च ण मह सेय गोवग्गं सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ५। एग च ण महं पउमसर सव्वतो समता कुसुमिय सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ६। एग च ण मह सागरं उम्मी-वीयीसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्ण सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ७। एगं च ण मह दिणकर तेयसा जलत सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ८। एगं च ण मह हरिवेरुलियवण्णाभेण नियगेण अतेण माणुसुत्तरं पव्वय सव्वतो समता आवेढियं परिवेढिय सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे ९। एग च णं मह मंदरे पव्वए मदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगय अप्पाण सुविणे पासित्ताण पडिवुद्धे १०।

[२०] श्रमण भगवान् महावीर अपने छद्मस्थ काल की अन्तिम रात्रि मे इन दस महास्वप्नो को देख कर जागृत हुए। वे इस प्रकार हैं—(१) एक महान् घोर (भयकर) और तेजस्वी रूप वाले ताडवृक्ष के समान लम्वे पिशाच को स्वप्न मे पराजित किया, ऐसा स्वप्न देखकर जागृत हुए। (२) श्वेत पाँखो वाले एक महान् पुस्कोकिल (नरजाति के कोयल) को स्वप्न मे देखकर जागृत हुए। (३) चित्र-विचित्र पखो वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न मे देख कर जागृत हुए। (४) स्वप्न मे सर्वरत्नमय एक महान् मालायुगल को देख कर जागृत हुए। (५) स्वप्न मे श्वेतवर्ण के एक महान् गोवर्ग को देख कर प्रतिबुद्ध हुए। (६) चारो ओर से पुष्पित एक महान पद्मसरोवर को स्वप्न मे देखकर जागृत हुए। (७) सहस्रो तरगो (लहरो) और कल्लोलो से कलित (सुशोभित) एक महासागर को अपनी भुजाओ से तिरे, ऐसा स्वप्न देख कर जागृत हुए। (८) अपने तेज से जाज्वल्यमान एक महान् दिवाकर (सूर्य) को स्वप्न मे देख कर जागृत हुए। (९) एक महान् (विशाल) मानुषोत्तर पर्वत को नील वैडूर्य मणि के समान अपने अन्तर भाग (आन्तो) से चारो ओर से आवेष्टित-परिवेष्टित देख कर जागृत हुए। (१०) महान् मन्दर (सुमेरु) पर्वत की मन्दर-चूलिका पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए अपने-आपको देखकर जागृत हुए।

२१. ज णं समणे भगव महावीरे एगं मह घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पा० जाव पडिवुद्धे त ण समणेण भगवता महावीरेण मोहणिज्जे कम्मे मूलओ उग्घातिए १। ज णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सुक्किल जाव पडिवुद्धे त णं समणे भगव महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरति २। ज णं समणे भगवं महावीरे एग मह चित्तविचित्त जाव पडिवुद्धे तं ण समणे भगवं महावीरे विचित्तं ससमय-परसमइय दुवालसंग गणिपिडग आघवेति पन्नवेति परूवेति दसेति निदसेति उवदसेति, तं जहा—आयार सूयगड जाव दिट्ठिवाय ३। जं ण समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामय सुविणे पासित्ताणं पडिवुद्धे तं णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पन्नवेति, तं जहा—

अगारधम्म वा अणगारधम्म वा ४ । ज ण समणे भगव महावीरे एग मह सेयं गोवग्ग जाव पडिबुद्धे त ण समणस्स भगवतो महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे समणसघे, त जहा—समणा समणीओ सावगा सावियाओ ५ । ज ण समणे भगव महावीरे एग मह पउमसर जाव पडिबुद्धे तं ण समणे जाव वीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, त जहा—भवणवासी वाणमतरे जोतिसिए वेमाणिए ६ । ज ण समणे भगव महावीरे एग मह सागर जाव पडिबुद्धे त ण समणेण भगवता महावीरेण अणादीए अणवदग्गे जाव संसारकतारे तिण्णे ७ । ज ण समणे भगव महावीरे एग मह दिणकर जाव पडिबुद्धे त ण समणस्स भगवतो महावीरस्स अणते अणुत्तरे जाव[1] केवलवरनाण-दसणे समुप्पन्ने ८ । ज ण समणे जाव वीरे एग मह हरिवेरुलिय जाव पडिबुद्धे त ण समणस्स भगवतो महावीरस्स ओराला कित्तिवण्णसद्दसिलोया सदेवमणुयासुरे लोगे परितुवति—'इति खलु समणे भगव महावीरे, इति खलु समणे भगव महावीरे' ९ । ज ण समणे भगव महावीरे मदरे पव्वते मदरचूलियाए जाव पडिबुद्धे त ण समणे भगव महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवली धम्म आघवेति जाव उवदसेति १० ।

[२१] प्रथम स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर ने जो एक महान् भयकर और तेजस्वी रूप वाले ताडवृक्षसम लम्बे पिशाच को पराजित किया हुआ देखा, उसका फल यह हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर ने मोहनीय कर्म को समूल नष्ट किया ।।१।।

दूसरे स्वप्न मे जो श्रमण भगवान् महावीर श्वेत पख वाले एक महान् पु स्कोकिल को देखकर जागृत हुए, उसका फल यह कि भगवान् महावीर शुक्लध्यान प्राप्त करके विचरे ।।२।।

तीसरे स्वप्न मे श्रमण भगवान् महावीर जो चित्र-विचित्र पखो वाले एक पु स्कोकिल को देख कर जागृत हुए, उसका फल यह हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने स्वसमय-परसमय के विविध-विचार-युक्त (चित्र-विचित्र) द्वादशाग गणिपिटक का कथन किया, प्रज्ञप्त किया, प्ररूपित किया, दिखलाया, निर्दशित किया और उपदर्शित किया । यथा—आचार (आचाराग) सूत्रकृत (सूत्रकृताग) यावत् दृष्टिवाद ।।३।।

चौथे स्वप्न मे भगवान् महावीर, जो एक सर्वरत्नमय महान् मालायुगल को देख कर जागृत हुए, उसका फल यह कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दो प्रकार का धर्म बतलाया । यथा—अगार-धर्म और अनगार-धर्म ।।४।।

पाँचवे स्वप्न मे श्रमण भगवान् महावीर एक श्वेत महान् गोवर्ग देख कर जागृत हुए, उसका फल यह कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के चातुर्वर्ण्य-युक्त (चार प्रकार का) श्रमण सघ हुआ । यथा—श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका ।।५।।

छठे स्वप्न मे श्रमण भगवान् महावीर एक कुसुमित पद्मसरोवर को देख कर जागृत हुए, उसका फल यह कि श्रमण भगवान् महावीर ने चार प्रकार के देवो की प्ररूपणा की । यथा—भवन-वासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ।।६।।

---

१ 'जाव' पद-सूचक पाठ—निव्वाघाए, निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे ।

सातवे स्वप्न मे श्रमण भगवान् महावीर हजारो तरगो और कल्लोलो मे व्याप्त एक महासागर को अपनी भुजाओ से तिरा हुआ देख कर जागृत हुए, उसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनादि-अनन्त यावत् ससार-कान्तार को पार कर गए ॥७॥

आठवे स्वप्न मे श्रमण भगवान् महावीर, तेज से जाज्वल्यमान एक महान् दिवाकर को देख कर जागृत हुए, उसका फल यह कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को अनन्त, अनुत्तर, निरावरण, निर्व्याघात, समग्र, और प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ ॥८॥

नौवे स्वप्न मे भगवान् महावीर स्वामी एक महान् मानुषोत्तर पर्वत को नील वैडूर्यमणि के समान अपनी आंतो से चारो ओर आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ देखा, उसका फल यह कि देवलोक असुरलोक और मनुष्यलोक मे, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी केवलज्ञान-दर्शन के धारक हैं, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ही केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक है, इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उदार कीर्ति, वर्ण (स्तुति), शब्द (सम्मान या प्रशसा) और श्लोक (यश) को प्राप्त हुए ॥९॥

दसवे स्वप्न मे श्रमण भगवान् स्वामी एक महान् मेरुपर्वत की मन्दर-चूलिका पर अपने आपको सिंहासन पर बैठे हुए देख कर जागृत हुए उसका फल यह कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर देवो मनुष्यो और असुरो की परिषद् के मध्य मे धर्मोपदेश दिया यावत् (धर्म) उपदर्शित किया।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (२०-२१) मे शास्त्रकार ने भगवान् महावीर द्वारा छद्मस्थ-अवस्था की अन्तिम रात्रि मे देखे गए दस स्वप्नो तथा उन दसो के क्रमश: फल का वर्णन किया है।

छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि —दो अर्थ—इस पाठ के दो अर्थ मिलते हैं—(१) छद्मस्थावस्था की अन्तिम रात्रि मे अर्थात्—जिस रात्रि मे ये स्वप्न देखे थे, उसके पश्चात् उसी रात्रि मे भगवान् छद्मस्थावस्था से निवृत्त होकर केवलज्ञानी हो गए थे। (२) छद्मस्थावस्था की रात्रि के अन्तिम भाग (पिछले प्रहर) मे। यहाँ किसी रात्रिविशेष का निर्देश नही किया गया है, किन्तु महापुरुषो द्वारा देखे हुए शुभस्वप्नो का फल तत्काल ही मिला करता है। अत· इन दोनो अर्थो मे से पहला अर्थ ही उचित एव सगत प्रतीत होता है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**तालपिसाय**—ताड वृक्ष के समान लम्बा पिशाच। **सुक्किलपक्खगं**—सफेद पाखो वाले। **पुंसकोइलं**—पुंस्कोकिल—पुरुषजाति का कोयल। **दामदुगं**—माला-युगल। **सेय**—श्वेत। **उम्मीवीयीसहस्स-कलियं**—हजारो तरगो और वीचियो (छोटी तरगो) से कलित (व्याप्त)। **आवेढिय**—चारो ओर से वेष्टित। **परिवेढियं**—वारंवार वेष्टित। **अतेण**—(१) आंतो से, अथवा अन्तरगभागो से। **हरिवेरुलियवण्णाभेणं**—हरित (नील) वैडूर्यमणि के वर्ण के समान। **आघवेइ**—सामान्य-विशेषरूप से कथन करते है। **पन्नवेइ**—सामान्यरूप से प्रज्ञप्त करते हैं। **परूवेइ**—प्रत्येक सूत्र का अर्थपूर्वक विवेचन करते हैं। **दसेइ**—उसे सकल नय-युक्तियो से वतलाते हैं। **निदंसेइ**—अनुकम्पा पूर्वक निश्चित वस्तुस्वरूप का पुन पुन कथन करते हैं या उदाहरण पूर्वक समझाते हैं। **चाउव-**

---

१ (क) 'रात्रेरन्तिमे भागे' —भगवती अ वृत्ति, पत्र ७११
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५६१

ण्णाइण्णे—ज्ञानादिगुणो से आकीर्ण (व्याप्त) चातुर्वर्ण्य (चतुर्विध) सघ। **उग्घाइए**—नष्ट किया। **ओराला**—उदार।[1]

एक-दो भव में मुक्त होने वाले व्यक्तियो को दिखाई देने वाले १४ प्रकार के स्वप्नों का संकेत—

२२. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग महं हयपंतिं वा गयपंति वा जाव[2] उसभपंति वा पासमाणे पासति, दुरूहमाणे दुरूहति, दुरूढमिति अप्पाण मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अतं करेति।

[२२] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे एक महान् अश्वपक्ति, गजपक्ति अथवा यावत् वृषभ-पक्ति का अवलोकन करता हुआ देखे, और उस पर चढने का प्रयत्न करता हुआ चढे तथा अपने आपको उस पर चढा हुआ माने ऐसा स्वप्न देख कर तुरन्त जागृत हो, तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है।

२३. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग मह दामिणिं पाईणपडीणायत दुहओ समुद्दे पुट्ठं पासमाणे पासति, संवेल्लेमाणे संवेल्लेइ, संवेल्लियमिति अप्पाण मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेण जाव अंतं करेइ।

[२३] कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त मे, समुद्र को दोनो ओर से छूती हुई, पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत एक बडी रस्सी (गाय आदि को बाधने की रस्सी) को देखने का प्रयत्न करता हुआ देखे, अपने दोनो हाथो से उसे समेटता हुआ समेटे, फिर अनुभव करे कि मैंने स्वय रस्सी को समेट लिया है, ऐसा स्वप्न देख कर तत्काल जागृत हो, तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सभी दु·खो का अन्त करता है।

२४. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एगं मह रज्जु पाईणपडीणायतं दुहतो लोगंते पुट्ठ पासमाणे पासति, छिंदमाणे छिंदइ, छिन्नमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव जाव अंत करेइ।

[२४] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, दोनो ओर लोकान्त को स्पर्श की हुई तथा पूर्व-पश्चिम लम्बी एक बडी रस्सी को देखता हुआ देखे, उसे काटने का प्रयत्न करता हुआ काट डाले। (फिर) मैंने उसे काट दिया, ऐसा स्वय अनुभव करे, ऐसा स्वप्न देख कर तत्काल जाग जाए तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है।

२५. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग महं किण्हसुत्तगं वा जाव सुक्किलसुत्तगं वा पासमाणे पासति, उग्गोवेमाणे उग्गोवेइ, उग्गोवितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव जाव अत करेति।

[२५] कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त मे, एक बडे काले सूत को या सफेद सूत को देखता हुआ देखे, और उसके उलझे हुए पिण्ड को सुलझाता हुआ सुलझा देता है और मैंने उसे सुलझाया

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ७११

२ 'जाव' पद सूचक पाठ-'नरपति' वा किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गधव्व त्ति।'

है, ऐसा स्वय को माने, ऐसा स्वप्न देख कर शीघ्र ही जागृत हो, तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है।

२६. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एगं मह अयरासिं वा तंबरासिं वा तउयरासिं वा सीसगरासिं वा पासमाणे पासति, दुरूहमाणे दुरूहति, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झइ, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति जाव अत करेति।

[२६] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, एक बडी लोहराशि, तावे की राशि, कथीर की राशि, अथवा शीशे की राशि देखने का प्रयत्न करता हुआ देखे। उस पर चढता हुआ चढे तथा अपने आपको (उस पर) चढा हुआ माने। ऐसा स्वप्न देख कर तत्काल जागृत हो तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है।

२७. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग मह हिरण्णरासिं वा सुवण्णरासिं वा रयणरासिं वा वइररासिं वा पासमाणे पासइ, दुरूहमाणे दुरूहइ, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेण सिज्झति जाव अंतं करेति।

[२७] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे एक महान् चाँदी का ढेर, सोने का ढेर, रत्नो का ढेर अथवा वज्रो (हीरो) का ढेर देखता हुआ देखे, उस पर चढता हुआ चढे, अपने आपको उस पर चढा हुआ माने, ऐसा स्वप्न देखकर तत्क्षण जागृत हो, तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सव दुखो का अन्त करता है।

२८. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग मह तणरासिं वा जहा तेयनिसग्गे (स० १५ सु० ८२) जाव[1] अवकररासिं वा पासमाणे पासति, विक्खिरमाणे विक्खिरइ, विक्खिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव जाव अत करेति।

[२८] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, एक महान् तृणराशि (घास का ढेर) तथा तेजोनिसर्ग नामक पन्द्रहवे शतक के (सू ८२ के) अनुसार यावत् कचरे का ढेर देखता हुआ देखे, उसे बिखेरता हुआ विखेर दे, और मैंने विखेर दिया है, ऐसा स्वय को माने, ऐसा स्वप्न देख कर तत्काल जागृत हो तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सव दु खो का अन्त करता है।

२९. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग मह सरथंभ वा वीरणथभ वा वंसीमूलथभं वा वल्लीमूलथंभं वा पासमाणे पासति, उम्मूलेमाणे उम्मूलेइ, उम्मूलितमिति अप्पाण मन्नति तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव जाव अत करेति।

[२९] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, एक महान् सर-स्तम्भ, वीरण-स्तम्भ, वशीमूल-स्तम्भ अथवा वल्लीमूल-स्तम्भ को देखता हुआ देखे, उसे उखाडता हुआ उखाड फके तथा ऐसा माने

---

१ 'जाव' पद सूचक पाठ—'पत्तरासीति तयारासीति भुसरासीति तुसरासीति वा गोमयरासीति वा ।'

—अ वृ पत्र ७१३

कि मैंने इनको उखाड फैंका है, ऐसा स्वप्न देख कर तत्काल जाग्रत हो तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है ।

३०. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एगं महं खीरकुंभं वा दधिकुंभं वा घयकुंभ वा मधुकुंभं वा पासमाणे पासति, उप्पाडेमाणे[1] उप्पाडेति, उप्पाडितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति तेणेव जाव अतं करेति ।

[३०] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, एक महान् क्षीरकुम्भ, दधिकुम्भ, घृतकुम्भ, अथवा मधुकुम्भ देखता हुआ देखे और उसे उठाता हुआ उठाए तथा ऐसा माने कि स्वय ने उसे उठा लिया है, ऐसा स्वप्न देख कर तत्काल जाग्रत हो तो वह व्यक्ति उसी भव मे सिद्ध हो जाता है, यावत् सर्वदु खों का अन्त करता है ।

३१. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एगं मह सुरावियडकुभ वा सोवीरगवियडकुभ वा तेल्लकुभं वा वसाकुंभं वा पासमाणे पासति, भिंदमाणे भिंदति, भिन्नमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चेण भव० जाव अत करेति ।

[३१] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, एक महान् सुरारूप जल का कुम्भ, सौवीर (काजी) रूप जल कुम्भ, तेलकुम्भ अथवा वसा (चर्वी) का कुम्भ देखता हुआ देखे, फोड़ता हुआ उसे फोड डाले तथा मैंने उसे स्वय फोड डाला है, ऐसा माने, ऐसा स्वप्न देख कर शीघ्र जाग्रत हो तो वह दो भव मे मोक्ष जाता है, यावत् सव दु.खो का अन्त कर डालता है ।

३२. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग महं पउमसर कुसुमियं पासमाणे पासति, ओगाहमाणे ओगाहति, ओगाढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव० तेणेव जाव अतं करेति ।

[३२] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, एक महान् कुसुमित पद्मसरोवर को देखता हुआ देखे, उसमे अवगाहन (प्रवेश) करता हुआ अवगाहन करे तथा स्वय मैंने इसमे अवगाहन किया है, ऐसा अनुभव करे तथा इस प्रकार का स्वप्न देख कर तत्काल जाग्रत हो तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सव दु खो का अन्त करता है ।

३३. इत्थी वा जाव सुविणंते एगं मह सागरं उम्मी-वीयी जाव कलिय पासमाणे पासति, तरमाणे तरति, तिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव० तेणेव जाव अंतं करेति ।

[३३] कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त मे, तरगो और कल्लोलो से व्याप्त एक महासागर को देखता हुआ देखे, तथा तरता हुआ पार कर ले, एव मैंने इसे स्वय पार किया है, ऐसा माने, इस प्रकार का स्वप्न देख कर शीघ्र जाग्रत हो तो वह उसी भव मे सिद्ध होता है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है ।

३४. इत्थी वा जाव सुविणते एगं महं भवणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासति, अणुप्पविसमाणे अणुप्पविसति, अणुप्पविट्ठमिति अप्पाणं मन्नति० तेणेव जाव अंतं करेति ।

---

१ पाठान्तर—'उग्घाडेमाणे, उग्घाडेति, उग्घाडित ०' (ढकना खोलता हुआ, खोलता है, खोल दिया ०)

[३४] कोई स्त्री या पुरुष, स्वप्न के अन्त मे, सर्वरत्नमय एक महाभवन देखता हुआ देखे, उसमे प्रविष्ट होता हुआ प्रवेश करे तथा मै इसमे स्वय प्रविष्ट हो गया हूँ, ऐसा माने, इस प्रकार का स्वप्न देख कर शीघ्र जाग्रत हो तो, वह उसी भव मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है, यावत् सर्वदु खो का अन्त कर देता है ।

३५. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणते एग मह विमाण सव्वरयणामय पाससाणे पासति, दूरूहमाणे दूरूहति, दूरूढमिति अप्पाण मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव जाव अत करेति ।

[३५] कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त मे, सर्वरत्नमय एक महान् विमान को देखता हुआ देखता है, उस पर चढता हुआ चढता है, तथा मैं इस पर चढ गया हूँ, ऐसा स्वय अनुभव करता है, ऐसा स्वप्न देख कर तत्क्षण जाग्रत होता है, तो वह व्यक्ति उसी भव मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ।

विवेचन—मोक्षगामी को दिखाई देने वाले स्वप्न—प्रस्तुत १४ सूत्रो (सू २२ से ३५) मे मोक्षगामी को दिखाई देने वाले १४ प्रकार के स्वप्नो के सकेत दिये है । इनमे से लोहराशि आदि तथा सुराजलकुम्भ आदि का स्वप्न मे देखने वाला व्यक्ति दूसरे भव मे, अर्थात्—मनुष्य सम्वन्धी दूसरे भव मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होता है, शेष वारह सूत्रो मे कथित पदार्थों को तथारूप से स्वप्न मे देखने वाला व्यक्ति उसी भव मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है ।[1]

कठिनशब्दार्थ—सुविणंते—स्वप्न के अन्त मे, अथवा स्वप्न के एक भाग मे । **हयपंति**—घोडो की पक्ति को । **पासमाणे पासति**—पश्यत्ता (देखने) के गुण से युक्त हो कर देखता है, अर्थात् देखने की मुद्रा से युक्त या प्रयत्नशील हो कर देखता है । **दुरूहमाणे दुरूहति**—ऊपर चढता हुआ चढता है । **तक्खणामेव**—तत्काल ही । **दामिणि**—गाय आदि को वाधने की रस्सी । **पाईणपडीणायतं**—पूर्व-पश्चिम-लम्बा । । **दुहओ समुद्दे पुट्ठ**—दोनो ओर से समुद्र को छूती हुई । **संवेल्लेइ**—हाथो से समेटे । **किण्हसुत्तग-सुक्किलसुत्तगं**—काला सूत, सफेद सूत । **उग्गोवेमाणे**—सुलझाता हुआ । **अयरासि**—लोहराशि को । **विक्खिरइ**—बिखेर देता है । **उम्मूलेइ**—जड से उखाड फेकता है । **सुरावियडकुंभं**—सुरा-मदिरा रूप विकट-जल के कुम्भ को । **सोवीर**—सौवीरक—काजी । **ओगाहति**—अवगाहन करता-प्रवेश करता है ।[2]

गन्ध के पुद्‌गल बहते है,

३६. अह भते ! कोट्ठपुडाण वा जाव[3] केयतिपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण वा जाव[4] ठाणाओ वा ठाण सकामिज्जमाणाण किं कोट्ठे वाति जाव केयती वाति ?

---

१ भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २५७०

२ (क) वही, भा ५, पृ २५६६

(ख) भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७१२-७१३

३ 'जाव' पद सूचक पाठ—'पत्तपुडाण वा चोयपुडाण वा तगरपुडाण वा' इत्यादि ।

४ 'जाव' पद-सूचक पाठ—'निब्भिज्जमाणाण वा, उक्किरिज्जमाणाण वा विक्किरिज्जमाणाण वा' इत्यादि ।

—भगवती. अ वृ पत्र ७१३

गोयमा ! नो कोट्ठे वाति जाव नो केयती वाति घाणसहगया पोग्गला वांति ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। सोलसमे सए छट्ठो उद्देसओ समत्तो ।। १६-६ ।।

[३६ प्र] भगवन् ! कोई व्यक्ति यदि कोष्ठपुटो (सुगन्धित द्रव्य के पुडे) यावत् केतकीपुटो को खोले हुए एक स्थान से दूसरे स्थान लेकर जाता हो और अनुकूल हवा चलती हो तो क्या उसका गन्ध वहता (फैलता) है अथवा कोष्ठपुट यावत् केतकीपुट वायु मे वहता है ?

[३६ उ] गौतम ! कोष्ठपुट यावत् केतकीपुट नही वहते, किन्तु घ्राण-सहगामी गन्ध-गुणोपेत पुद्गल वहते है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—कोष्ठपुट आदि वहते हैं या गन्ध-पुद्गल ?—प्रस्तत सूत्र मे भगवान् ने यह निर्णय दिया है, कोष्ठपुट आदि सुगन्धित द्रव्य को खोल कर अनुकूल हवा की दिशा मे ले जाया जा रहा हो तो कोष्ठपुट आदि नही वहते, किन्तु कोष्ठपुट आदि की सुगन्ध के पुद्गल हवा मे फैलते (वहते) हैं, और वे घ्राणग्राह्य होते है ।[1]

कठिन शब्दार्थ—कोट्ठपुडाण—वाससमूह जिस (कोष्ठ) मे पकाया जाता हो, वह कोष्ठ कहलाता है । कोष्ठ के पुट अर्थात् पुडो को कोष्ठपुट कहते है ।[2]

।। सोलहवां शतक : छठा उद्देशक समाप्त ।।

---

१ वियाहपण्णत्ति भा २, (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ७६६-७६७

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१३

सत्तमो उद्देसओ : 'उवओग'

सप्तम उद्देशक : 'उपयोग'

प्रज्ञापनासूत्र-अतिदेशपूर्वक उपयोग-भेद-प्रभेदनिरूपण

१. कतिविधे ण भते ! उवओगे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उवयोगे पन्नत्ते, एव जहा उवयोगपय पन्नवणाए तहेव निरवसेसं भाणियव्व पासणयापय च निरवसेसं नेयव्वं ।

सेव भते ! सेव भंते ! त्ति० ।

सोलसमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।। १६-७ ।।

[१ प्र] भगवन् ! उपयोग कितने प्रकार का कहा है ?

[१ उ] गौतम ! उपयोग दो प्रकार का कहा है। प्रज्ञापनासूत्र के उपयोग पद (२९ वें) मे जिस प्रकार कहा है, वह सब यहाँ कहना चाहिए। तथा (इसी प्रज्ञापनासूत्र का) तीसवाँ पश्यत्तापद भी यहाँ सम्पूर्ण कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतमस्वामी) यावत् विचरते हैं।

विवेचन—उपयोग और पश्यत्ता : स्वरूप, अन्तर और प्रकार—चेतनाशक्ति के व्यापार को उपयोग कहते है। उसके दो भेद है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। साकारोपयोग के ८ भेद हैं—पाच ज्ञान और तीन अज्ञान। अनाकारोपयोग के चक्षुदर्शन आदि चार भेद हैं। इसका समग्र वर्णन प्रज्ञापना के २९ वे पद से समझना चाहिए। 'पश्यतो भाव पश्यत्ता'। अर्थात्—उत्कृष्ट बोध का परिणाम पश्यत्ता है। इसके भी दो भेद है—साकार पश्यत्ता और अनाकार पश्यत्ता। साकार-पश्यत्ता के ६ भेद है, यथा—मतिज्ञान को छोड कर ४ ज्ञान और मति-अज्ञान को छोड कर दो अज्ञान है। अनाकारपश्यत्ता के ३ भेद है। यथा—अचक्षुदर्शन को छोड कर शेष तीन दर्शन। यद्यपि पश्यत्ता और उपभोग, ये दोनो साकार-अनाकार के भेद से तुल्य है, तथापि वर्तमानकालिक स्पष्ट या अस्पष्ट बोध को उपयोग और त्रैकालिक स्पष्ट बोध को पश्यत्ता कहते है। यही पश्यत्ता और उपयोग का अन्तर है।[1]

अचक्षुदर्शन अनाकारपश्यत्ता क्यो नहीं ?—पश्यत्ता कहते हैं—प्रकृष्ट ईक्षण (प्रकर्षतायुक्त देखने) को। इस दृष्टि से पश्यत्ता चक्षुदर्शन मे घटित हो सकती है, अचक्षुदर्शन मे नही। क्योकि प्रकृष्ट ईक्षण चक्षुरिन्द्रिय का ही होता है।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापना (मूलपाठ टिप्पण) भा १, (म जै विद्या) सू १९०८-३५ १९३६-६४, पृ ४०७-९, ४१०-१२

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१३-७१४

२ वही, पत्र ७१४

अट्ठमो उद्देसओ : 'लोग'

अष्टम उद्देशक : 'लोक'

लोक के प्रमाण का तथा लोक के विविध चरमान्तों में जीवाजीवादि का निरूपण

१. केमहालए णं भंते ! लोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! महतिमहालए जहा बारसमसए (स० १२ उ० ७ सु० २) तहेव जाव असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं।

[१ प्र] भगवन् ! लोक कितना विशाल कहा गया है ?

[१ उ.] गौतम ! लोक अत्यन्त विशाल (महातिमहान्) कहा गया है। इसकी समस्त वक्तव्यता) बारहवें शतक (के सातवें उद्देशक सू २ मे कहे) अनुसार यावत्—उस लोक का परिक्षेप (परिधि) असंख्येय कोटाकोटि योजन है, (यहाँ तक कहनी चाहिए।)

२. लोगस्स ण भंते ! पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसे। एवं जहा दसमसए अग्गेयी दिसा (स० १० उ० १ सु० ९) तहेव, नवरं देसेसु अणिंदियाणं आदिल्लविरहिओ। जे अरूवी अजीवा ते छव्विहा, अद्धासमयो नत्थि। सेसं तं चेव सव्वं।

[२ प्र] भगवन् ! क्या लोक के पूर्वीय चरमान्त मे जीव है, जीवदेश हैं, जीवप्रदेश है, अजीव है, अजीव के देश हैं और अजीव के प्रदेश है ?

[२ उ] गौतम ! वहाँ जीव नही है, परन्तु जीव के देश है, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीव के देश है और अजीव के प्रदेश भी है। वहाँ जो जीव के देश हैं, वे नियमत एकेन्द्रिय जीवो के देश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश और द्वीन्द्रिय जीव का एक देश है। इत्यादि सब भग दसवे शतक (के प्रथम उद्देशक के सू. ९) मे कथित आग्नेयी दिशा की वक्तव्यता के अनुसार जानना चाहिए। विशेषता यह है कि 'बहुत देशो के विषय मे अनिन्द्रियो से सम्बन्धित प्रथम भग नही कहना चाहिए, तथा वहाँ जो अरूपी अजीव हैं, वे छह प्रकार के कहे गए है। वहाँ काल (अद्धासमय) नही है। शेष सभी उसी प्रकार जानना चाहिए।

३ लोगस्स णं भंते ! दाहिणिल्ले चरिमंते किं जीवा० ?

एवं चेव।

[३ प्र] भगवन् ! क्या लोक के दक्षिणी चरमान्त मे जीव है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[३ उ] गौतम ! (इस विषय मे) पूर्वोक्त प्रकार से सब कहना चाहिए ।

४. एवं पच्चत्थिमिल्ले वि, उत्तरिल्ले वि ।

[४] इसी प्रकार पश्चिमी चरमान्त और उत्तरी चरमान्त के विषय मे भी कहना चाहिए ।

५. लोगस्स णं भंते ! उवरिल्ले चरिमंते किं जीवा० पुच्छा ।

गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि जाव अजीवपएसा वि । जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य, अहवा एगेंदियदेसा य अणिंदियदेसा य बेंदियस्स य देसे, अहवा एगिंदियदेसा य अणिदियदेसा य बेइंदियाण य देसा । एव मज्झिल्लविरहितो जाव पंचिंदियाणं । 'जे जीवप्पएसा ते नियम एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पएसा य, अहवा एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पदेसा य बेइंदियस्स य पदेसा, अहवा एगिंदियपदेसा य अणिंदियपएसा य बेइंदियाण य पदेसा । एव आदिल्लविरहिओ जाव पंचिंदियाण । अजीवा जहा दसमसए तमाए (स० १० उ० १ सु० १७) तहेव निरवसेसं ।

[५ प्र] भगवन् ! लोक के उपरिम चरमान्त मे जीव है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[५ उ] गौतम ! वहाँ जीव नही है, किन्तु जीव के देश है, यावत् अजीव के प्रदेश भी है । जो जीव के देश है, वे नियमत एकेन्द्रियो के देश और अनिन्द्रियो के देश है । अथवा एकेन्द्रियो के और अनिन्द्रियो के देश तथा द्वीन्द्रिय का एक देश है, अथवा एकेन्द्रियो के और अनिन्द्रियो के देश तथा द्वीन्द्रियो के देश हैं । इस प्रकार बीच के भग को छोड कर द्विकसयोगी सभी भग यावत् पचेन्द्रिय तक कहना चाहिए ।

यहाँ जो जीव के प्रदेश है, वे नियमत एकेन्द्रियो के प्रदेश है और अनिन्द्रियो के प्रदेश है । अथवा एकेन्द्रियो के प्रदेश, अनिन्द्रियो के प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय के प्रदेश है । अथवा एकेन्द्रियो के और अनिन्द्रियो के प्रदेश तथा द्वीन्द्रियो के प्रदेश है । इस प्रकार प्रथम भग के अतिरिक्त शेष सभी भग यावत् पचेन्द्रियो तक कहना चाहिए । दशवे शतक (के प्रथम उद्देशक सू १७) मे कथित तमादिशा की वक्तव्यता के अनुसार यहाँ पर अजीवो की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

६ लोगस्स ण भते ! हेट्ठिल्ले चरिमते किं जीवा० पुच्छा ।

गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि जाव अजीवप्पएसा वि । जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा, अहवा एगिंदियदेसा य बेंदियस्स य देसे, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा । एव मज्झिल्लविरहिओ जाव अणिंदियाण, पदेसा आदिल्लविरहिया सव्वेसिं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमते तहेव । अजीवा जहा उवरिल्ले चरिमते तहेव ।

[६ प्र] भगवन् ! क्या लोक के अधस्तन (नीचे के) चरमान्त मे जीव है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ।

[६ उ] गौतम ! वहाँ जीव नही हैं, किन्तु जीव के देश है, यावत् अजीव के प्रदेश भी है । जो जीव के देश हैं, वे नियमत एकेन्द्रियो के देश है, अथवा एकेन्द्रियो के देश और द्वीन्द्रिय का एक देश है । अथवा एकेन्द्रियो के देश और द्वीन्द्रियो के देश है ।

इस प्रकार वीच के भग को छोड कर शेष भग, यावत्—अनिन्द्रियो तक कहने चाहिए। सभी प्रदेशो के विषय मे आदि के (प्रथम) भग को छोड कर पूर्वीय-चरमान्त की वक्तव्यता के अनुसार कहना चाहिए। अजीवो के विषय मे उपरितन चरमान्त की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए।

विवेचन—पूर्वीय चरमान्त मे जीवादि के सद्भाव-असद्भाव का निरूपण—लोक की पूर्व दिशा का चरमान्त एक प्रदेश के प्रतररूप है। वहाँ असख्यप्रदेशावगाही जीव का सद्भाव नही हो सकता। इसलिए कहा गया है कि वहाँ जीव नही है। परन्तु वहाँ जीव के देश आदि का एक प्रदेश मे भी अवगाह हो सकता है, इसलिए कहा गया है कि वहाँ जीव-देश, जीव-प्रदेश होते है। जो जीव के देश हैं, वे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवो के देश अवश्य होते है। यह असयोगी प्रथम विकल्प है। अथवा द्विकसयोगी विकल्प इस प्रकार है—एकेन्द्रिय जीवो के वहुत होने से एकेन्द्रिय जीवो के अनेक देश और द्वीन्द्रिय जीव वहाँ कादाचित्क होने से कदाचित् द्वीन्द्रिय का एक देश होता है। यद्यपि लोक के चरमान्त मे द्वीन्द्रिय जीव नही होता, तथापि एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होने वाला द्वीन्द्रिय जीव, मारणान्तिक समुद्घात द्वारा उत्पत्तिदेश को प्राप्त होता है, इस अपेक्षा से यह विकल्प वनता है। जिस प्रकार दसवे शतक मे आग्नेयी दिशा की अपेक्षा से जो विकल्प कहे गए है, वे ही यहाँ पूर्व चरमान्त की अपेक्षा से कहने चाहिए। यथा—(१) एकेन्द्रियो के देश और एक द्वीन्द्रिय का देश, (२) अथवा एकेन्द्रियो के देश और द्वीन्द्रियो के देश, (३) अथवा एकेन्द्रिय का देश और त्रीन्द्रिय का एक देश इत्यादि। विशेष यह है कि अनिन्द्रिय-सम्बन्धी देश के विषय मे जो तीन भग दशम शतक के आग्नेयी दिशा के विपय मे कहे गए है, उनमे से प्रथम भग—अथवा एकेन्द्रियो के देश और अनिन्द्रिय का देश, नही कहना चाहिए, क्योकि केवली-समुद्घात के समय आत्मप्रदेश कपाटाकार आदि अवस्था मे होते हैं, तव पूर्व दिशा के चरमान्त मे प्रदेशो की वृद्धि-हानि होने से लोक के दन्तक (दातो के समान विषमस्थानो) मे अनिन्द्रिय जीव (केवलज्ञानी) के वहुत देशो का सम्भव है, एक देश का नही, इसलिए उपर्युक्त भग अनिन्द्रिय मे लागू नही होता।

अरूपी अजीवो के छह प्रकार—(१) धर्मास्तिकाय-देश, (२) धर्मास्तिकाय-प्रदेश, (३) अधर्मास्तिकाय-देश, (४) अधर्मास्तिकाय-प्रदेश, (५) आकाशास्तिकाय-देश और (६) आकाशास्तिकाय-प्रदेश। सातवे अद्धासमय (काल) का वहाँ अभाव है, क्योकि वहाँ समयक्षेत्र नही है। इसी तरह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एव आकाशास्तिकाय का भी आग्नेयी दिशा (लोकान्त) मे अभाव होने से वहाँ ६ प्रकार के अरूपी अजीवो का सद्भाव है।[1]

पूर्व दिशा के चरमान्त की तरह **दक्षिण दिशा, पश्चिमदिशा और उत्तरदिशा के चरमान्त** मे भी जीवादि के सद्भाव के सम्वन्ध मे कहना चाहिए।[2]

उपरितन चरमान्त में जीवादि का सद्भाव—लोक के उपरितन चरमान्त मे सिद्ध हैं, इसलिए वहाँ एकेन्द्रिय देश और अनिन्द्रिय देश होते है। यहाँ यह एक द्विकसंयोगी विकल्प है, त्रिकसयोगी दो-दो भग कहने चाहिए। उनमे एकेन्द्रियो के और अनिन्द्रियो के देश तथा द्वीन्द्रिय के देश इस प्रकार का

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१५
 (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, २५७७

२ (क) वही, (हिन्दी विवेचन) भा ५, २५७७
 (ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ ७६८

मध्यम भग नही होता, क्योकि द्वीन्द्रिय के देश, वहाँ असम्भव है, कारण द्वीन्द्रिय मारणान्तिक समुद्घात द्वारा मर कर ऊपर के चरमान्त मे एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हो, तो वहाँ भी उसका एक देश सभावित है, पूर्व चरमान्त के समान अनेक देश सभावित नही। क्योकि वहाँ प्रदेश की हानि-वृद्धि से होने वाला लोकदन्तक (विषम भाग) प्रतररूप नही होता।

उपरितन चरमान्त की अपेक्षा जीव-प्रदेश प्ररूपणा मे—'एकेन्द्रियो के और अनिन्द्रियो के प्रदेश और द्वीन्द्रिय का एक प्रदेश, यह प्रथम भग नही कहना चाहिए, क्योकि वहाँ द्वीन्द्रिय का एक प्रदेश असभव है, क्योकि केवलीसमुद्घात के समय लोकव्यापक अवस्था के अतिरिक्त जहाँ किसी भी जीव का एक प्रदेश होता है, वहाँ नियमत उसके असख्यात प्रदेश होते है। अजीवो के १० भेद होते हैं, यथा—रूपी अजीव के ४ भेद—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल, एव अरूपी अजीव के ६ भेद—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश, इस प्रकार अजीव के १० भेद हुए। उपरितन चरमान्त के विषय मे अजीव-प्ररूपणा दशवे शतक के प्रथम उद्देशक मे उक्त तमादिशा के विषय मे अजीवो की वक्तव्यता के समान करनी चाहिए।[1]

अधस्तन चरमान्त—नीचे के चरमान्त मे—एकेन्द्रियो के बहुत देश, यह असयोगी एक भग तथा द्विकसयोगी दो भग—(१) एकेन्द्रियो के बहुत देश और द्वीन्द्रिय का एक देश (२) एकेन्द्रियो के बहुत देश और द्वीन्द्रिय के देश, इस प्रकार का मध्यम भग यहाँ नही घटित होता, क्योकि वहाँ लोक-दन्तक का अभाव है। इस प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के साथ दो-दो भग होते है। इस प्रकार जीवदेश की अपेक्षा ११ भग होते हैं। जीव प्रदेश-आश्रयी भग इस प्रकार है। यथा—एकेन्द्रियो के प्रदेश एव द्वीन्द्रिय के प्रदेश, एकेन्द्रिय के प्रदेश और द्वीन्द्रियो के प्रदेश। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के प्रदेश के विषय मे भग जान लेने जान लेने चाहिए। केवल—एकेन्द्रियो के बहुत प्रदेश और द्वीन्द्रिय का एक प्रदेश, यह प्रथम भग असम्भावित होने से घटित नही होता। एकेन्द्रिय के बहुत प्रदेश, इस असयोगी एक भग को मिलाने से जीव-प्रदेश-आश्रयी कुल ११ भग होते हैं।

उपरितन चरमान्त मे कहे अनुसार अधस्तन चरमान्त मे भी रूपी अजीव के चार और अरूपी अजीव के छह, ये सब मिल कर अजीवो के दस भेद होते हैं।[2]

नरक से लेकर वैमानिक एवं यावत् ईषत्प्राग्भार तक पूर्वादि चरमान्तों में जीवाजीवादि का निरूपण

७. इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा० पुच्छा।

गोयमा ! नो जीवा, एवं जहेव लोगस्स तहेव चत्तारि वि चरिमंता जाव उत्तरिल्ले उवरिल्ले

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१५
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २५७८
२ (क) वही भा ५, पृ २५७८
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१६

जहा दसमसए विमला दिसा (स० १० उ० १ सु० १६) तहेव निरवसेस। हेट्ठिल्ले चरिमते जहेव लोगस्स हेट्ठिल्ले चरिमते (सु० ६) तहेव, नवरं देसे पचेंदिएसु तियभंगो, सेसं तं चेव।

[७ प्र] भगवन्! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्वीय चरमान्त मे जीव हैं? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[७ उ.] गौतम! वहाँ जीव नही हैं। जिस प्रकार लोक के चार चरमान्तो के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के चार चरमान्तो के विषय मे यावत् उत्तरीय चरमान्त तक कहना चाहिए। रत्नप्रभा के उपरितन चरमान्त के विषय मे, दसवे शतक (उ १ सू १६) मे (उक्त) विमला दिशा की वक्तव्यता के समान सम्पूर्ण कहना चाहिए। रत्नप्रभा पृथ्वी के अधस्तन चरमान्त की वक्तव्यता लोक के अधस्तन चरमान्त के समान कहनी चाहिए। विशेपता यह है कि जीवदेश के विपय मे पचेन्द्रियो के तीन भग कहने चाहिए। शेष सभी कथन उसी प्रकार करना चाहिए।

८. एवं जहा रयणप्पभाए चत्तारि चरिमता भणिया एवं सक्करप्पभाए वि। उवरिम-हेट्ठिल्ला जहा रयणप्पभाए हेट्ठिल्ले।

[८] जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के चार चरमान्तो के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के भी चार चरमान्तो के विषय मे कहना चाहिए। तथा रत्नप्रभा पृथ्वी के अधस्तन चरमान्त के समान, शर्कराप्रभा-पृथ्वी के उपरितन एव अधस्तन चरमान्त की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

९. एवं जाव अहेसत्तमाए।

[९] इसी प्रकार यावत् अध सप्तम पृथ्वी के चरमान्तो के विषय मे कहना चाहिए।

१०. एव सोहम्मस्स वि जाव अच्चुयस्स।

[१०] इसी प्रकार सौधर्म देवलोक से लेकर यावत् अच्युत देवलोक तक (के चरमान्तो के विपय मे कहना चाहिए।

११. गेविज्जविमाणाणं एवं चेव। नवरं उवरिम-हेट्ठिल्लेसु चरिमंतेसु देसेसु पंचेंदियाण वि मज्झिल्लविरहितो चेव, सेसं तहेव।

[११] ग्रैवेयक विमानो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनमे उपरितन और अधस्तन चरमान्तो के विषय मे, जीवदेशो के सम्बन्ध मे पचेन्द्रियो मे भी बीच का भग नही कहना चाहिए। शेप सभी कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

१२. एव जहा गेवेज्जविमाणा तहा अणुत्तरविमाणा वि, ईसिपब्भारा वि।

[१२] जिस प्रकार ग्रैवेयको के चरमान्तो के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार अनुत्तर-विमानो तथा ईपत्प्राग्भारा-पृथ्वी के चरमान्तो के विषय मे कहना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमान्तो से सम्बन्धित व्याख्या—लोक के चार चरमान्तो के समान रत्नप्रभा पृथ्वी के चार चरमान्तो का कथन करना चाहिए। रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन

चरमान्त के विषय मे दशवे शतक के प्रथम उद्देशक मे उक्त विमला दिशा की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए। यथा—वहाँ कोई जीव नही है, क्योकि वह एक प्रदेश के प्रतररूप होने से उसमे जीव नही समा सकते परन्तु जीवदेश और जीवप्रदेश रह सकते है। उसमे जो जीव के देश हैं वे अवश्य ही एकेन्द्रिय जीव के देश होते है। अथवा (१) एकेन्द्रिय के बहुत देश और द्वीन्द्रिय का एक देश, (२) अथवा एकेन्द्रिय के बहुत देश और द्वीन्द्रिय के बहुत देश अथवा (३) एकेन्द्रिय के बहुत देश और द्वीन्द्रियो के बहुत देश। यो तीन भग होते है, क्योकि रत्नप्रभा मे द्वीन्द्रिय होते हैं और वे एकेन्द्रियो की अपेक्षा थोडे होते हैं, इसलिए इसके उपरितन चरमान्त मे द्वीन्द्रिय का एक देश अथवा बहुत देश सम्भवित है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय से लेकर अनिन्द्रिय तक प्रत्येक के तीन-तीन भग जीवदेश की अपेक्षा से कहने चाहिए। वहाँ जो जीव के प्रदेश हैं, वे अवश्य ही एकेन्द्रिय के है, इसलिए—(१) एकेन्द्रिय के बहुत प्रदेश और द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश है। (२) अथवा एकेन्द्रिय जीव के बहुत प्रदेश और द्वीन्द्रियो के बहुत प्रदेश हैं। इस प्रकार त्रीन्द्रिय से लेकर अनिन्द्रिय तक के भी दो-दो भग जानने चाहिए।

वहाँ रूपी अजीव के ४ और अरूपी अजीव के ७ भेद होते है, क्योकि समयक्षेत्र के अन्दर होने से वहाँ अद्धा समय (काल) भी होता है।

रत्नप्रभा के चरमान्ताश्रयी देश विषयक भगो मे असयोगी एक और द्विकसयोगी पन्द्रह, यो कुल सोलह भग होते है। प्रदेशापेक्षया असयोगी एक और द्विकसयोगी दस, ये कुल ग्यारह भग होते है।

रत्नप्रभा के अधस्तन चरमान्त का कथन लोक के अधस्तन चरमान्तवत् करना चाहिए। विशेषता यह है कि लोक के नीचे के चरमान्त मे जीवदेश सम्बन्धी दो-दो भग बेइन्द्रिय आदि के मध्यम भग को छोड कर कहे गए है, परन्तु यहाँ पचेन्द्रिय के तीन भग कहने चाहिए। क्योकि रत्नप्रभा के नीचे के चरमान्त मे देवरूप पचेन्द्रिय जीवो के गमनागमन से पचेन्द्रिय का एक देश और पचेन्द्रिय के बहुत देश सम्भवित होते है। इसलिए यहाँ पचेन्द्रिय के तीन भग कहने चाहिए। द्वीन्द्रिय आदि तो रत्नप्रभा के निचले चरमान्त मे मरण-समुद्घात से जाते है। तभी उनका वहाँ सम्भव होने से वहाँ उनका एक देश ही सम्भवित है, बहुत देश सम्भवित नही, क्योकि रत्नप्रभा के अधस्तन चरमान्त का प्रमाण एक प्रतररूप है, इसलिए वहाँ बहुत देशो का समावेश हो नही सकता।

शर्करादि छह नरको से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक के चरमान्तो का कथन—इनके पूर्वादि चार चरमान्तो का कथन रत्नप्रभा के पूर्वादि चार चरमान्तो के समान करना चाहिए।

जिस प्रकार रत्नप्रभा के नीचे का चरमान्त कहा गया है, उसी प्रकार शर्कराप्रभादि छह नरको से लेकर अच्युत कल्प तक के ऊपर-नीचे के चरमान्त-सम्बन्धी जीवदेश-आश्रयी असयोगी एक, द्विकसयोगी ग्यारह, यो कुल १२ भग होते है। तथा प्रदेश की अपेक्षा से असयोगी एक और द्विकसयोगी दस, यो कुल ग्यारह-ग्यारह भग होते है। अर्थात्—शर्कराप्रभा का उपरितन एव अधस्तन चरमान्त रत्नप्रभा के अधस्तन चरमान्त के समान जानना चाहिए। यहाँ द्वीन्द्रिय आदि के दो-दो भग जीव देश की अपेक्षा मध्यम भगरहित होते हैं तथा पचेन्द्रिय के तीन भग होते है। जीवप्रदेश की अपेक्षा द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक सभी के प्रथम भग-रहित शेष दो-दो भग होते है। अजीव आश्रयी

रूपी अजीव के ४ और अरूपी अजीव के ६ भेद होते हैं। शर्कराप्रभा के समान शेष सभी नरक-पृथ्वियों की तथा सौधर्म से लेकर ईषत्प्राग्भारा तक की वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेषता यह है कि जीवदेश की अपेक्षा से अच्युत कल्प तक देवों का गमनागमन सम्भव होने से (वहाँ तक) पंचेन्द्रिय के तीन भग और द्वीन्द्रिय आदि के दो-दो भग होते हैं। नौ ग्रैवेयक तथा अनुत्तर विमानों मे तथा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे देवों का गमनागमन न होने से पचेन्द्रिय के भी दो-दो भग कहने चाहिए।[1]

कठिन शब्दार्थ—केमहालए—कितना बडा। आइल्ल—आदि (पहले) का। अद्धासमयो—काल। पुरच्छिमिल्ले—पूर्व दिशा का। हेट्ठिल्ले—नीचे का, अधस्तन। दाहिणिल्ले—दक्षिण दिशा का। उवरिल्ले—उपरितन, ऊपर का। मज्झिल्लविरहिओ—मध्यम भग से रहित।[2]

परमाणु की एक समय में लोक के पूर्व-पश्चिमादि चरमान्त तक गति-सामर्थ्य

१३. परमाणुपोग्गले णं भंते! लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति, पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति, दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ उत्तरिल्लं जाव गच्छति, उत्तरिल्लाओ० दाहिणिल्लं जाव गच्छति, उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्लं चरिमंतं एग० जाव गच्छति, हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति?

हंता, गोयमा! परमाणुपोग्गले णं लोगस्स पुरत्थिमिल्ल० तं चेव जाव उवरिल्लं चरिमंतं गच्छति।

[१३ प्र] भगवन्! क्या परमाणु-पुद्गल एक समय मे लोक के पूर्वीय चरमान्त से पश्चिमीय चरमान्त मे, पश्चिमीय चरमान्त से पूर्वीय चरमान्त मे, दक्षिणी चरमान्त से उत्तरीय चरमान्त मे, उत्तरीय चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त मे, ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त मे और नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्त मे जाता है?

[१३ उ] हाँ, गौतम! परमाणु पुद्गल एक समय मे लोक के पूर्वीय चरमान्त से पश्चिमीय चरमान्त मे यावत् नीचे के चरमान्त मे ऊपर के चरमान्त मे जाता है।

विवेचन—परमाणु पुद्गल एक समय मे सभी चरमान्तों तक इधर से उधर गति कर सकता है, यह तथ्य प्रस्तुत सूत्र मे प्रस्तुत किया गया है।

वृष्टिनिर्णयार्थ करादि संकोचन-प्रसारण में लगने वाली क्रियाएँ

१४. पुरिसे णं भंते! वासं वासति, वासं नो वासतीति हत्थं वा पायं वा बाहुं वा ऊरुं वा आउंटावेमाणे वा पसारेमाणे वा कतिकिरिए?

गोयमा! जाव च णं से पुरिसे वासं वासति, वासं नो वासतीति हत्थं वा जाव ऊरुं वा आउंटावेति वा पसारेति वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१५ ७१६, ७१७
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २५८२

२ वही, भा ५, पृ २५७५

[१४ प्र] भगवन् ! वर्षा बरस रही है अथवा (वर्षा) नही बरस रही है ?—यह जानने के लिए कोई पुरुष अपने हाथ, पैर, बाहु या ऊरु (जाघ) को सिकोडे या फैलाए तो उसे कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[१४ उ] गौतम ! वर्षा बरस रही है या नही ?, यह जानने के लिए कोई पुरुष अपने हाथ यावत् ऊरु को सिकोडता है या फैलाता है तो, उसे कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वर्षा का पता लगाने के लिए हाथ आदि अवयवो को सिकोडने और फैलाने मे कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातकी, ये पाचो क्रियाएँ एक या दूसरे प्रकार से लगती है, इस सिद्धान्त की प्ररूपणा की गई है।

महर्द्धिक देव का लोकान्त मे रहकर अलोक मे अवयव-संकोचन-प्रसारण-असामर्थ्य

१५. [१] देवे ण भते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे लोगते ठिच्चा पभू अलोगसि हत्थ वा आउटावेत्तए वा पसारेत्तए वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[१५-१ प्र] भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न देव लोकान्त मे रह कर अलोक मे अपने हाथ यावत् ऊरु को सिकोडने और पसारने मे समर्थ है ?

[१५-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चति 'देवे णं महिड्ढीए जाव लोगते ठिच्चा णो पभू अलोगसि हत्थ वा जाव पसारेत्तए वा' ?

गोयमा ! जीवाण आहारोवचिया पोग्गला, बोदिचिया पोग्गला, कलेवरचिया पोग्गला, पोग्गलमेव पप्प जीवाण य अजीवाण य गतिपरियाए आहिज्जइ, अलोए ण नेवत्थि जीवा, नेवत्थि पोग्गला, से तेणट्ठेण जाव पसारेत्तए वा।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ सोलसमे सए अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥ १६-८ ॥

[१५-२ प्र.] भगवन् ! क्या कारण है कि महर्द्धिक देव लोकान्त मे रह कर अलोक मे अपने हाथ यावत् ऊरु को सिकोडने और पसारने मे समर्थ नही ?

[१५-२ उ] गौतम ! जीवो के अनुगत आहारोपचित पुद्गल, शरीरोपचित पुद्गल और कलेवरोपचित पुद्गल होते है तथा पुद्गलो के आश्रित ही जीवो और अजीवो की गतिपर्याय कही गई है। अलोक मे न तो जीव है और न ही पुद्गल है। इसी कारण पूर्वोक्त देव यावत् सिकोडने और पसारने मे समर्थ नही है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—लोक मे रह कर अलोक में गति न होने का कारण—जीव के साथ रहे हुए पुद्गल आहाररूप मे, शरीररूप मे और कलेवररूप मे तथा श्वासोच्छ्वास आदि के रूप में उपचित होते है। अर्थात् पुद्गल जीवानुगामी स्वभाव वाले होते है। जिस क्षेत्र मे जीव होते हैं, वही पुद्गलो की गति होती है। इसी प्रकार पुद्गलो के आश्रित जीवो का और पुद्गलो का गतिधर्म होता है। यानी जिस क्षेत्र मे पुद्गल होते है उसी क्षेत्र मे जीवो और पुद्गलो की गति होती है। अलोक मे धर्मास्किाय न होने से वहाँ न तो जीव और पुद्गल है और न उनकी गति होती है।[1]

।। सोलहवाँ शतक : आठवाँ उद्देशक समाप्त ।।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१७

नवमो उद्देसओ : 'बलि'

नौवाँ उद्देशक : वलि (वैरोचनेन्द्र-सभा)

बलि-वैरोचनेन्द्र की सुधर्मासभा से सम्बन्धित वर्णन

१. कहि ण भते ! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो सभा सुहम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण तिरियमसखेज्जे० जहेव चमरस्स (स० २ उ० ८ सु० १) जाव बायालीसं जोयणसहस्साइ ओगाहित्ता एत्थ ण बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो रुयगिंदे नाम उप्पायपव्वए पन्नत्ते सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए एवं पमाणं जहेव तिगिंछिकूडस्स, पासायवडेसगस्स वि त चेव पमाण, सीहासण सपरिवार बलिस्स परियारेणं अट्ठो तहेव, नवरं रुयगिंदप्पभाइ ३ कुमुयाइं । सेसं त चेव जाव बलिचंचाए रायहाणीए अन्नेसिं च जाव निच्चे, रुयगिंदस्स णं उप्पायपव्वयस्स उत्तरेण छक्कोडिसए तहेव जाव चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं बलिस्स बइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो बलिचचा नामं रायहाणी पन्नत्ता; एगं जोयणसयसहस्सं पमाणं तहेव जाव बलिपेढस्स उववातो जाव आयरक्खा सव्व तहेव निरवसेस, नवरं सातिरेगं सागरोवमं ठिती पन्नत्ता । सेस त चेव जाव बली वइरोयणिंदे, बली वइरोयणिंदे ।

सेव भते ! सेव भते ! जाव विहरति ।

॥ सोलसमे सए : नवमो उद्देसओ समत्तो ॥ १६-९ ॥

[१ प्र] भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की सुधर्मा सभा कहाँ है ?

[१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे तिरछे असख्येय द्वीपसमुद्रो को उल्लघ कर इत्यादि, जिस प्रकार (दूसरे शतक के ८ वें उद्देशक सू. १ मे) चमरेन्द्र की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना, यावत् (अरुणवर द्वीप की बाह्य वेदिका से अरुणवर-द्वीप समुद्र मे) बयालीस हजार योजन अवगाहन करने के बाद वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि का रुचकेन्द्र नामक उत्पात-पर्वत है । वह उत्पात पर्वत १७२१ योजन ऊँचा है । उसका शेष सभी परिमाण तिगिञ्छकूट पर्वत के समान जानना चाहिए । उसके प्रासादावतसक का परिमाण उसी प्रकार जानना चाहिए । तथा बलीन्द्र के परिवार सहित सपरिवार सिंहासन का अर्थ भी उसी प्रकार जानना चाहिए । विशेषता यह है कि यहाँ रुचकेन्द्र (रत्नविशेष) की प्रभा वाले कुमुद आदि हैं । शेष सभी उसी प्रकार हैं । यावत् वह बलिचचा राजधानी तथा अन्यो का नित्य आधिपत्य करता हुआ विचरता है । उस रुचकेन्द्र उत्पातपर्वत के उत्तर से छह सौ पचपन करोड पैंतीस लाख पचास हजार योजन तिरछा जाने पर नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी मे पूर्ववत् यावत् चालीस हजार योजन जाने के पश्चात् वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की बलिचचा नामक राजधानी है । उस राजधानी का विष्कम्भ (विस्तार) एक लाख योजन है । शेष सभी प्रमाण पूर्ववत् (जानना चाहिए) यावत् बलिपीठ (तक का परिमाण भी

कहना चाहिए ।) तथा उपपात से लेकर यावत् आत्मरक्षक तक सभी बाते पूर्ववत् कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि (वलि-वैरोचनेन्द्र की) स्थिति सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है । शेष सभी बाते पूर्ववत् जाननी चाहिए । यावत् 'वैरोचनेन्द्र वलि है, वैरोचनेन्द्र वलि है' यहाँ तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—चमरेन्द्र और वलीन्द्र की सुधर्मा सभा मे प्रायः समानता—जिस प्रकार दूसरे शतक के आठवें उद्देशक मे चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी वलीन्द्र की सुधर्मा सभा के विषय मे कहना चाहिए । वहाँ जिस प्रकार तिगिञ्छकूट नामक उत्पात पर्वत का परिमाण कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी रुचकेन्द्र नामक उत्पातपर्वत का परिमाण कहना चाहिए । तिगिञ्छकूट पर्वत पर स्थित प्रासादावतसको का जो परिमाण कहा गया है, वही परिमाण रुचकेन्द्र उत्पातपर्वत स्थित प्रासादावतसको का है । प्रासादावतसको के मध्य भाग मे वलीन्द्र के सिहासन तथा उसके परिवार के सिहासनो का वर्णन भी चमरेन्द्र से सम्बन्धित सिंहासनो के समान जानना शाहिए । विशेष अन्तर यह है कि वलीन्द्र के सामानिक देवो के सिहासन साठ हजार हैं, जब कि चमरेन्द्र के सामानिक देवो के सिंहासन ६४ हजार है, तथा आत्मरक्षक देवो के आसन प्रत्येक के सामानिको के सिहासनो से चौगुने है । जिस प्रकार तिगिञ्छकूट मे तिगिञ्छ रत्नो की प्रभा वाले उत्पलादि होने से उसका अन्वर्थक नाम तिगिञ्छकूट है । उसी प्रकार रुचकेन्द्र मे रुचकेन्द्र रत्नो की प्रभा वाले उत्पलादि होने के कारण उसका अन्वर्थक नाम रुचकेन्द्रकूट कहा गया है । वलिचचा नगरी (राजधानी) का परिमाण कहने के पश्चात् उसके प्राकार, द्वार, उपकारिकालयन, (द्वार के ऊपर के गृह) प्रासादावतंसक, सुधर्मा सभा, सिद्धायतन (चैत्य-भवन) उपपातसभा, ह्रद, अभिषेकसभा, आलकारिकसभा और व्यवसायसभा आदि का स्वरूप और प्रमाण वलिपीठ के वर्णन तक कहना चाहिए ।[1]

॥ सोलहवां शतक : नौवां उद्देशक समाप्त ॥

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१८-७१९

(ख) भगवती (आगम प्र स, व्यावर) खण्ड १ श २ उ ८ पृ, २३५, २३७

दसमो उद्देसओ : 'ओही'

दसवाँ उद्देशक : 'अवधिज्ञान'

प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक अवधिज्ञान का वर्णन

१. कतिविधे ण भंते ! ओही पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविधा ओही पन्नत्ता । ओहीपयं निरवसेस भाणियव्वं ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! जाव विहरति ।

।। सोलसमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ।। १६-१० ।।

[१ प्र] भगवन् ! अवधिज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। यहाँ प्रज्ञापना सूत्र का ३३ वाँ अवधिपद सम्पूर्ण कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अवधिज्ञान : स्वरूप और भेद-प्रभेद—रूपी पदार्थों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा को लिए हुए होने वाला अतीन्द्रिय सम्यग्ज्ञान, अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिज्ञान, प्रज्ञापना-सूत्र के ३३ वे पद के अनुसार दो प्रकार का कहा गया है—भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक। भवप्रत्ययिक अवधि (ज्ञान) दो प्रकार के जीवो को होता है—देवो को और नारको को। मनुष्यो और तिर्यञ्च पचेन्द्रियो को क्षायोपशमिक अवधि होता है। इसका विशेष विवरण प्रज्ञापना सूत्र के ३३ वें अवधि पद से जान लेना चाहिए।[१]

।। सोलहवाँ शतक : दशम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१९

(ख) पण्णवणासुत्त भा १ (मू पा. टिप्पण) सू १९८२-२०३१ पृ. ४१५, ४१८

(श्री महावीर जैन विद्यालय से प्रकाशित)

एगारसमो उद्देसओ : 'दीव'

ग्यारहवाँ उद्देशक : द्वीपकुमार सम्बन्धी वर्णन

द्वीपकुमार देवो की आहार, श्वासोच्छ्वासादि की समानता-असमानता का निरूपण

१. दीवकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा० निस्सासा ?

नो इणट्ठे समट्ठे । एवं जहा पढमसए बितियउद्देसए दीवकुमाराणं वत्तव्वया (स० १ उ० २ सु० ६) तहेव जाव समाउयास मुस्सासनिस्सासा ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी द्वीपकुमार समान आहार वाले और समान उच्छ्वास-निश्वास वाले हैं ?

[१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है । प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक (सू ६) मे जिस प्रकार द्वीपकुमारो की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार की वक्तव्यता यहाँ भी, यावत् कितने ही सम आयुष्य वाले और सम-उच्छ्वास-निश्वास वाले होते हैं, तक कहनी चाहिए ।

द्वीपकुमारों में लेश्या की तथा लेश्या एवं ऋद्धि के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२ दीवकुमाराणं भंते ! कति लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, त जहा—कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

[२ प्र] भगवन् ! द्वीपकुमारो मे कितनी लेश्याएँ कही है ?

[२ उ] गौतम ! उनमे चार लेश्याएँ कही है । यथा—कृष्णलेश्या, यावत् तेजोलेश्या ।

३. एएसि ण भते ! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! - सव्वत्थोवा दीवकुमारा तेउलेस्सा, काउलेस्सा असंखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

[३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या से लेकर यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमारो मे कौन किससे यावत् विशेषाधिक है ?

[३ उ] गौतम ! सबसे कम द्वीपकुमार तेजोलेश्या वाले हैं । कापोतलेश्या वाले उनसे असख्यातगुणे है । उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक है और उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं ।

४. एतेसि णं भंते ! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! कण्हलेस्सेहिंतो नीललेस्सा महिड्ढिया जाव सव्वमहिड्ढिया तेउलेस्सा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति ।

।। सोलसमे सए : एगारसमो उद्देसओ समत्तो ।। १६-११ ।।

[४ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या से लेकर यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमारो मे कौन किससे अल्पर्द्धिक है अथवा महर्द्धिक है ?

[४ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या वाले द्वीपकुमारो से नीललेश्या वाले द्वीपकुमार महर्द्धिक है, (इस प्रकार उत्तरोत्तर महर्द्धिक है), यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमार सभी से महर्द्धिक है ।

हे भगवन् ! कह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १ से ४ तक) मे भवनपति देव निकाय के अन्तर्गत द्वीपकुमार देवो के आहार, उच्छ्वास-नि श्वास, आयुष्य आदि की समानता-असमानता तथा उनमे पाई जाने वाली लेश्याएँ, तथा किस लेश्या वाला किससे अल्प, बहुत आदि एव अल्पर्द्धिक-महर्द्धिक है ? इन तथ्यो का निरूपण किया गया है ।

।। सोलहवाँ शतक : ग्यारहवाँ उद्देशक समाप्त ।।

बारसमो उद्देसओ : 'उदही'

बारहवाँ उद्देशक : उदधिकुमार-सम्बन्धी वक्तव्यता

उदधिकुमारों में आहारादि की समानता-असमानता का निरूपण

१. उदधिकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा० ?

एव चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! ० ।

॥ सोलसमे सए : बारसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १६-१२ ॥

[१ प्र.] भगवन् ! सभी उदधिकुमार समान आहार वाले हैं ? इत्यादि पूर्ववत् समग्र प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! सभी वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है; यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

॥ सोलहवाँ शतक : बारहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

तेरसमो उद्देसओ : 'दिसा'

तेरहवाँ उद्देशक : दिशाकुमार-सम्बन्धी वक्तव्यता

दिशाकुमारों में आहारादि की समानता-असमानता का निरूपण

१. एवं दिसाकुमारा वि।

॥ सोलसमे सए : तेरसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १६-१३ ॥

[१] (जिस प्रकार द्वीपकुमारो के विषय मे कहा गया था) उसी प्रकार दिशाकुमारो के (आहार, उच्छ्वास नि.श्वास, लेश्या आदि के) विषय मे भी कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् (गौतम स्वामी) विचरते है।

॥ सोलहवाँ शतक : तेरहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

चउदसमो उद्देसओ : 'थणिया'

चौदहवाँ उद्देशक : स्तनितकुमार-सम्बन्धी वक्तव्यता

स्तनितकुमारों में आहारादि की समानता-असमानता का निरूपण

१. एव थणियकुमारा वि ।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ सोलसमे सए : चउदसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १६-१४ ॥

॥ सोलसमं सय समत्तं ॥

[१] (जिस प्रकार द्वीपकुमारो के विषय मे कहा गया था), उसी प्रकार स्तनितकुमारो के (आहार, उच्छ्वास-नि श्वास, लेश्या आदि के) विषय मे भी कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—चार उद्देशक : समान वक्तव्यता का अतिदेश—ग्यारहवे से लेकर चौदहवे उद्देशक तक सभी वक्तव्यताएँ समान है, केवल उन देवो के नामो मे अन्तर है । सभी भवनपति जाति के देव हैं ।

॥ सोलहवाँ शतक : चौदहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ सोलहवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

सत्तरसमं सयं : सत्तरहवाँ शतक

प्राथमिक

※ व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र का यह सत्तरहवा शतक है ।

※ इसमे भविष्य मे मोक्षगामी हाथियो का तथा सयत आदि की धर्म, अधर्म, धर्माधर्म मे स्थिति का, शैलेशी अनगार के द्रव्य-भावकम्पन का, क्रियाओ का, ईशानेन्द्र सभा का, पाच स्थावरो के उत्पाद एव आहारग्रहण मे प्राथमिकता का, तथा नागकुमार आदि भवनपतियो मे आहारदि की समानता-असमानता का १७ उद्देशको मे प्रतिपादन किया गया है ।

※ **प्रथम उद्देशक** मे कूणिक सम्राट् के उदायी और भूतानन्द नामक गजराजो की भावी गति तथा मोक्षगामिता का वर्णन है । तत्पश्चात् ताडफल को हिलाने गिराने तथा सामान्य वृक्ष के मूल, कन्द आदि को हिलाने-गिराने वाले व्यक्ति को, उक्त फलादि के जीव को, वृक्ष को, तथा उसके उपकारक को लगने वाली क्रियाओ की तथा शरीर इन्द्रिय और योग को निष्पन्न करने वाले एक या अनेक पुरुषो को लगने वाली क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे, औदयिक आदि छह भावो का अनुयोगद्वार के अतिदेशपूर्वक वर्णन है ।

※ **द्वितीय उद्देशक** मे सयत, असयत सयतासयत, सामान्य जीव तथा चौवीस दण्डकवर्त्ती जीवो के धर्म, अधर्म या धर्माधर्म मे स्थित होने की चर्चा की गई है। तदनन्तर इन्ही जीवो के बाल, पण्डित या बाल-पण्डित होने की अन्यतीर्थिकमत की निराकरण पूर्वक विचारणा की गई है । फिर अन्यतीर्थिक की जीव और जीवात्मा के एकान्त भिन्नत्व की मान्यता का खण्डन करके कथचित् भेदाभेद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है । अन्त मे, महर्द्धिक देव द्वारा मूर्त्त से अमूर्त्त बनाने अथवा अमूर्त्त से मूर्त्त आकार बनाने के सामर्थ्य का निषेध किया गया है ।

※ **तृतीय उद्देशक** मे शैलेशी अनगार की निष्प्रकम्पता का प्रतिपादन करके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव-एजना की तथा शरीर-इन्द्रिय-योग-चलना की चौवीसदण्डको की अपेक्षा चर्चा की गई है। अन्त मे सवेगादि धर्मो के अन्तिम फल-मोक्ष का प्रतिपादन किया गया है ।

※ **चतुर्थ उद्देशक** मे जीव तथा चौवीस दण्डकवर्त्ती जीवो द्वारा प्राणातिपातादि क्रिया स्पर्श करके की जाने की तथा समय, देश, प्रदेश की अपेक्षा से ये ही क्रियाएँ स्पृष्ट से लेकर आनुपूर्वीकृत की जाती हैं, इस तथ्य की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे, जीवो के दुख एव वेदना को वेदन के आत्मकर्तृत्व की प्ररूपणा की गई है ।

※ **पचम उद्देशक** मे ईशानेन्द्र को सुधर्मासभा का सागोपाग वर्णन है ।

※ **छठे से लेकर नौवें उद्देशक** तक मे रत्नप्रभादि नरकपृथ्वियो मे मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प से यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक मे पृथ्वीकायादि चार स्थावरो मे उत्पन्न होने योग्य

अधोलोकस्थ पृथ्वीकायादि मे पहले उत्पन्न होते हैं, पीछे पुद्गल (आहार) ग्रहण करते है? अथवा पहले आहार (पुद्गल) ग्रहण करते हैं, पीछे उत्पन्न होते है? इसी प्रकार सौधर्म कल्पादि मे मरण-समुद्घात करके रत्नप्रभादि सातो नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होने योग्य ऊर्ध्वलोकस्थ पृथ्वीकायादि के भी उत्पन्न होने और आहार (पुद्गल) ग्रहण करने की पहले-पीछे की चर्चा की गई है।

※ बारहवें उद्देशक मे एकेन्द्रियजीवो मे आहार, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य शरीर, आदि की समानता—असमानता की, तथा उनमे पाई जाने वाली लेश्याओ की और लेश्या वालो के अल्पवहुत्व की विचारणा की गई है।

※ तेरहवें से सत्तरहवें उद्देशक मे इसी प्रकार क्रमश: नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार और अग्निकुमार देवो मे आहार, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य, शरीर आदि की समानता-असमानना की तथा उनमे पाई जाने वाली लेश्याओ की एव उक्त लेश्या वालो के अल्पवहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

※ इस प्रकार सत्तरह उद्देशको मे कुल मिला कर विभिन्न जीवो से सम्वन्धित अध्यात्मविज्ञान की विशद विचारणा की गई है।[1]

□□

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ. ७७३ से ७९१ तक

सत्तरसमं सयं : सत्तरहवां शतक

सत्तरहवें शतक का मंगलाचरण

१. नमो सुयदेवयाए भगवतीए ।

[१] भगवती श्रुतदेवता को नमस्कार हो ।

विवेचन—श्रुतदेवता का स्वरूप—आवश्यक चूर्णि मे श्रुतदेवता का स्वरूप इस प्रकार है—जिससे समग्र श्रुतसमुद्र (या जिनप्रवचन) अधिष्ठित है, जो श्रुत की अधिष्ठात्री देवी है, जिसकी कृपा से शास्त्रज्ञान पढा-सीखा है, उस भगवती जिनवाणी या सरस्वती को श्रुतदेवता कहते हैं ।[1]

उद्देशकों के नामों की प्ररूपणा

२ कुंजर १ संजय २ सेलेसि ३ किरिय ४ ईसाण ५ पुढवि ६-७ दग ८-९ वाऊ १०-११ ।
एगिंदिय १२ नाग १३ सुवण्ण १४ विज्जु १५ वाय १६ ऽग्नि १७ सत्तरसे ।। १ ।।

[२] (संग्रहणी-गाथार्थ) (सत्तरहवें शतक मे) सत्तरह उद्देशक (कहे गये) हैं । (उनके नाम इस प्रकार हैं-)—(१) कुञ्जर, (२) संयत, (३) शैलेशी, (४) क्रिया, (५) ईशान, (६-७) पृथ्वी, (८-९) उदक, (१०-११) वायु, (१२) एकेन्द्रिय, (१३) नाग, (१४) सुवर्ण, (१५) विद्युत्, (१६) वायुकुमार, और (१७) अग्निकुमार ।

विवेचन—उद्देशको के नामो के अनुसार प्रतिपाद्य विषय—(१) प्रथम उद्देशक का नाम कुंजर है । कुंजर से आशय है—श्रेणिक राजा के पुत्र कूणिक राजा के उदायी एवं भूतानन्द नामक हस्तिराज । इसमे इन हस्तिराजो के विषय मे प्रतिपादन है—(२) **संयत**—द्वितीय उद्देशक में संयत आदि के विषय का प्रतिपादन है । (३) **शैलेशी**—तीसरे उद्देशक मे शैलेशी (योगो से रहित निष्कम्प) अवस्था प्राप्त अनगार विषयक कथन है । (४) चौथे क्रिया उद्देशक मे क्रिया विषयक वर्णन है । (५) पांचवें ईशान-उद्देशक मे, ईशानेन्द्र की सुधर्मा-सभा आदि का कथन है । (६-७) छठे-सातवे उद्देशक में पृथ्वीकाय-विषयक वर्णन है । (८-९) आठवे-नौवे मे अप्काय-विषयक वर्णन है । (१०-११) दसवे-ग्यारहवें उद्देशक मे वायुकाय-विषयक वर्णन है । (१२) बारहवें उद्देशक में एकेन्द्रिय जीव-स्वरूप का प्रतिपादन है । (१३-१७) तेरहवे से लेकर सत्तरहवे उद्देशक मे नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, वायुकुमार और अग्निकुमार से सम्बन्धित वक्तव्यता है । इस प्रकार सत्तरहवे शतक में सत्तरह उद्देशक कहे गए हैं ।[2]

---

१ आवश्यक चूर्णि अ ४

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७२९

पढमो उद्देसओ : 'कुंजर'

प्रथम उद्देशक : कुंजर (आदि-सम्बन्धी वक्तव्यता)

उदायी और भूतानन्द हस्तिराज के पूर्व और पश्चाद्भवो के निर्देशपूर्वक सिद्धिगमन-निरूपण

३. रायगिहे जाव एव वदासि—

[३] राजगृह नगर मे यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

४. उदायी ण भते ! हत्थिराया कओहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता उदायिहत्थिरायत्ताए उववन्ने ?

गोयमा ! असुरकुमारेहिंतो देवेहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता उदायिहत्थिरायत्ताए उववन्ने ।

[४ प्र] भगवन् ! उदायी नामक प्रधान हस्तिराज, किस गति से मर कर विना अन्तर के (सीधा) यहाँ हस्तिराज के रूप मे उत्पन्न हुआ ?

[४ उ] गौतम ! वह असुरकुमार देवो मे से मर कर सीधा (निरन्तर) यहाँ उदायी हस्तिराज के रूप मे उत्पन्न हुआ है ।

५. उदायी णं भते ! हत्थिराया कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिति, कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! इमीसे णं रतणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

[५ प्र] भगवन् ! उदायी हस्तिराज यहाँ से काल के अवसर पर काल करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

[५ उ] गौतम ! वह यहाँ से काल करके इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के एक सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास (नरक) मे नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा ।

६ से णं भते ! ततोहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अतं काहिति ।

[६ प्र] भगवन् ! (फिर वह) वहाँ (रत्नप्रभा पृथ्वी) से अन्तररहित निकल कर कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

[६ उ] गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सर्व दुखो का अन्त करेगा ।

७ भूयाणदे णं भंते ! हत्थिराया कतोहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता भूयाणंद० ? एवं जहेव उदायी जाव अंतं काहिति ।

[७ प्र] भगवन् ! भूतानन्द नामक हस्तिराज किस गति से मर कर सीधा भूतानन्द हस्तिराज रूप मे यहाँ उत्पन्न हुआ ?

[७ उ] गौतम ! जिस प्रकार उदायी नामक हस्तिराज की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार भूतानन्द हस्तिराज की भी वक्तव्यता, यावत् सब दु खो का अन्त करेगा, (तक) जाननी चाहिए ।

विवेचन—उदायी और भूतानन्द के भूत और भविष्य का कथन—उदायी और भूतानन्द श्रेणिक राजा के पुत्र कूणिक राजा के प्रधान हस्ती थे । प्रस्तुत ५ सूत्रों (सू ३ से ७ तक) मे इन दोनो के भूतकालीन भव (असुरकुमार देव भव) का और भविष्य मे प्रथम नरक का आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का कथन किया है ।[1]

कठिनशब्दार्थ—कम्रोहिंतो—कहाँ से—किस गति मे ? काहिइ—करेगा ।[2]

ताड़फल को हिलाने-गिराने आदि से सम्बन्धित जीवो को लगने वाली क्रिया

८ पुरिसे णं भंते ! तालमारुभइ, तालं आरुभित्ता तालाओ तालफलं पचालेमाणे वा पवाडेमाणे वा कतिकिरिए ?

गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तालमारुभति, तालमारुभित्ता तालाओ तालफलं पचालेइ वा पवाडेइ वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे । जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो ताले निव्वत्तिए तालफले निव्वत्तिए ते वि णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा ।

[८ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष, ताड के वृक्ष पर चढे और फिर उस ताड से ताड के फल को हिलाए अथवा गिराए तो उस पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[८ उ] गौतम ! जब तक वह पुरुष, ताड के वृक्ष पर चढ कर, फिर उस ताड से ताड के फल को हिलाता है अथवा नीचे गिराता है, तब तक उस पुरुष को कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है । जिन जीवो के शरीर से ताड का वृक्ष और ताड का फल उत्पन्न हुआ है, उन जीवो को भी कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है ।

९. अहे णं भंते ! से तालफले अप्पणो गरुययाए जाव पच्चोवयमाणे जाइं तत्थ पाणाइं जाव जीवियाओ ववरोवेति तएणं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तालफले अप्पणो गरुययाए जाव जीवियाओ ववरोवेति ताव च णं से पुरिसे काइयाए जाव चउहिं किरियाहिं पुट्ठे । जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो ताले निव्वत्तिए ते वि णं जीवा काइयाए जाव चउहिं किरियाहिं पुट्ठा । जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७७३-७७४
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२०

२ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ५, पृ २५९४

तालफले निव्वत्तिए ते वि ण जीवा काइयाए जाव पचहिं किरियाहिं पुट्ठा। जे वि य से जीवा अहे वीससाए पच्चोवतमाणस्स उवग्गहे वट्टंति ते वि णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

[९ प्र] भगवन्! यदि (उस पुरुष के द्वारा ताड फल को हिलाते और नीचे गिराते समय), वह ताडफल अपने भार (वजन) के कारण यावत् (स्वय) नीचे गिरता है और उस ताडफल के द्वारा जो जीव, यावत् जीवन से रहित हो जाते है, तो उससे उस (फल तोडने वाले) पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती है?

[९ उ] गौतम! जब तक वह पुरुष उस फल को तोडता है, और वह ताडफल अपने भार के कारण नीचे गिरता हुआ जीवो को, यावत् जीवित से रहित करता है, तब तक वह पुरुष कायिकी आदि चार क्रियाओ से स्पृष्ट होता है। जिन जीवो के शरीर से ताडवृक्ष निष्पन्न हुआ है, वे जीव भी कायिकी आदि चार क्रियाओ से स्पृष्ट होते है और जिन जीवो के शरीर से ताड-फल निष्पन्न हुआ है, वे जीव कायिकी आदि पाचो क्रियाओ से स्पृष्ट होते है। जो जीव नीचे पडते हुए ताडफल के लिए स्वाभाविक रूप से उपकारक (सहायक) होते है, उन जीवो को भी कायिकी आदि पाचो क्रियाए लगती है।

विवेचन—ताड़वृक्ष को हिलाने और उसके फल को गिराने से सम्बन्धित जीवो को लगने वाली क्रियाएँ—(१) जो पुरुष ताडवृक्ष को हिलाता है, अथवा उसके फल को नीचे गिराता है, वह ताडफल के जीवो की और ताडफल के आश्रित जीवो की प्राणातिपातक्रिया करता है और जो प्राणातिपातक्रिया करता है वह कायिकी आदि प्रारम्भ की चार क्रियाएँ अवश्य करता है। इस अपेक्षा से उस पुरुष को कायिकी आदि पाँचो क्रियाएँ लगती है (२) ताडवृक्ष और ताडफल निर्वर्तक जीवो को भी पूर्वोक्त पाचो क्रियाएँ लगती है, क्योकि वे स्पर्शादि द्वारा दूसरे जीवो का विघात करते है। (३) जब पुरुष ताडफल को हिलाता है या तोडता है, तत्पश्चात् जब वह फल अपने भार से नीचे गिरता है और उसके द्वारा अन्य जीवो की हिंसा होती है, तब उस पुरुष को चार क्रियाएँ लगती है, क्योकि ताडफल को हिलाने मे साक्षात् वधनिमित्त होते हुए भी ताडफल के गिरने से होने वाले जीवो के वध मे साक्षात् निमित्त नही है, परम्परानिमित्त है। इसलिए उसे प्राणातिपातिकी के अतिरिक्त शेष चार क्रियाएँ लगती है। (४) इसी प्रकार ताडवृक्ष निष्पादक जीवो को भी चार क्रियाएँ लगती हैं। (५) ताडफल के निष्पादक जीवो को पाचो क्रियाएँ लगती हैं, क्योकि वे प्राणातिपात मे साक्षात् निमित्त होते है। (६) नीचे गिरते हुए ताडफल के जो जीव उपकारक होते है, उन्हे भी पाच क्रियाएँ लगती है, क्योकि प्राणिवध मे वे प्राय निमित्त होते हैं। इस प्रकार फल के आश्रित ६ क्रियास्थान कहे गए हैं।

इन सूत्रो की विशेष व्याख्या पचम शतक के छठे उद्देशक मे उक्त धनुष फेंकने (चलाने) वाले व्यक्ति के प्रकरण से जान लेनी चाहिए।[1]

कठिनशब्दार्थ—तालमारुभइ—ताडवृक्ष पर चढे। **पचालेमाणे**—चलाता (हिलाता) हुआ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२१

(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति खण्ड १ (आगम प्र समिति) श ५ उ ६, सू १० से १२, पृ ४७०-४७१

पवाडेमाणे—नीचे गिराता हुआ। **णिव्वत्तिए**—निष्पन्न (उत्पन्न) हुआ। **गरुयत्ताए**—भारीपन से। **ववरोवेइ**—घात करता है। **पवाडेइ**—नीचे गिराता है।[1] **वीससाए**—स्वाभाविकरूप से।

वृक्ष के मूल, कन्द आदि को हिलाने आदि से सम्बन्धित जीवों को लगने वाली क्रिया प्ररूपणा

१०. पुरिसे ण भते ! रुक्खस्स मूल पचालेमाणे वा पवाडेमाणे वा कतिकिरिए ?

गोयमा ! जाव च णं से पुरिसे रुक्खस्स मूल पचालेति वा पवाडेति वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पर्चाहि किरियाहि पुट्ठे। जेसि पि य णं जीवाण सरीरेहितो मूले निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए ते वि ण जीवा काइयाए जाव पर्चाहि किरियाहि पुट्ठा।

[१० प्र] भगवन् ! कोई पुरुप वृक्ष के मूल को हिलाए या नीचे गिराए तो उसको कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[१० उ] गौतम ! जब तक वह पुरुष वृक्ष के मूल को हिलाता या नीचे गिराता है, तब तक उस पुरुप को कायिकी से लेकर यावत् प्राणातिपातिकी तक पाचो क्रियाएँ लगती है। जिन जीवो के शरीरो से मूल यावत् बीज निष्पन्न हुए हैं, उन जीवो को भी कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती हैं।

११. अहे ण भते ! से मूले अप्पणो गरुययाए जाव जीवियाओ ववरोवेति तओ णं भते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

गोयमा ! जाव च णं से मूले अप्पणो जाव ववरोवेति तावं च ण से पुरिसे काइयाए जाव चउहि किरियाहि पुट्ठे। जेसि पि य ण जीवाण सरीरेहितो कदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए ते वि णं जीवा काइयाए जाव चउहि० पुट्ठा। जेसि पि य णं जीवाणं सरीरेहितो मूले निव्वत्तिए ते वि ण जीवा काइयाए जाव पर्चाहि किरियाहि पुट्ठा। जे वि य से जीवा अहे वीससाए पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति ते वि णं जीवा काइयाए जाव पर्चाहि किरियाहि पुट्ठा।

[११ प्र] भगवन् ! यदि वह मूल अपने भारीपन के कारण नीचे गिरे, यावत् जीवो का हनन करे, तो (ऐसी स्थिति मे) उस मूल को हिलाने वाले और नीचे गिराने वाले पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[११ उ] गौतम ! जब तक मूल अपने भारीपन के कारण नीचे गिरता है, यावत् अन्य जीवो का हनन करता है, तब तक उस पुरुष को कायिकी आदि चार क्रियाएँ लगती है। जिन जीवो के शरीर से वह कन्द निष्पन्न हुआ है यावत् बीज निष्पन्न हुआ है, उन जीवो को कायिकी आदि चार क्रियाएँ लगती है। जिन जीवो के शरीर से मूल निष्पन्न हुआ है, उन जीवो को कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है। तथा जो जीव नीचे गिरते हुए मूल के स्वाभाविक रूप से उपकारक होते है, उन जीवो को भी कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है।

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २५९७

१२. पुरिसे णं भते ! रुक्खस्स कदं पचालेइ० ?

गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे जाव पर्चाहि किरियाहिं पुट्ठे । जेसिं पि य ण जीवाण सरीरेहिंतो कंदे[1] निव्वत्तिते ते वि ण जीवा जाव पर्चाहि किरियाहिं पुट्ठा ।

[१२ प्र] भगवन् ! जब तक वह पुरुष कन्द को हिलाता है या नीचे गिराता है, तब तक उसे कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है। जिन जीवो के शरीर से कन्द निष्पन्न हुआ है, वे जीव भी कायिकी आदि पाचो क्रियाओ से स्पृष्ट होते है ।

१३. अहे ण भते ! से कदे अप्पणो जाव चर्उहि० पुट्ठे । जेसिं पि य ण जीवाणं सरीरेहिंतो मूले निव्वत्तिते, खधे निवत्तिते जाव चर्उहि० पुट्ठा । जेसिं पि य ण जीवाणं सरीरेहिंतो कदे निव्वत्तिते ते वि णं जाव पर्चाहि० पुट्ठा । जे वि य से जीवा अहे वीससाए पच्चोवयमाणस्स जाव पर्चाहि० पुट्ठा ।

[१३ प्र] भगवन् ! यदि वह कन्द अपने भारीपन के कारण नीचे गिरे, यावत् जीवो का हनन करे तो उस पुरुष को कितनी क्रियाएँ लगती है ?

[१३ उ] गौतम ! उस पुरुप को कायिकी आदि चार क्रियाएँ लगती है। जिन जीवो के शरीर से मूल, स्कन्ध आदि निष्पन्न हुए है, उन जीवो को कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती है। जिन जीवो के शरीर से कन्द निष्पन्न हुए है, उन जीवो को कायिकी आदि पाचो क्रियाएँ लगती हैं। जो जीव नीचे गिरते हुए उस कन्द के स्वाभाविकरूप से उपकारक होते है, उन जीवो को भी पाच क्रियाएँ लगती है ।

१४. जहा कंदो एवं जाव बीयं ।

[१४] जिस प्रकार कन्द के विषय मे आलापक कहा, उसी प्रकार (स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल) यावत् बीज के विषय मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत पाचो सूत्रो (सू १० से १५ तक) मे वृक्ष के मूल और कन्द को हिलाते-गिराते समय हिलाने-गिराने वाले पुरुष को, तथा मूल एव कन्द के जीव, वृक्ष, एव उपकारक आदि को लगने वाली क्रियाओ का तथा इसी से सम्बन्धित स्कन्ध से बीज तक से सम्बन्धित क्रियाओ का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया है ।[2]

इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण मे मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज के विषय मे पूर्वोक्त छह क्रियास्थानो का निर्देश समझना चाहिए ।[3]

शरीर, इन्द्रिय और योग : प्रकार तथा इनके निमित्त से लगने वाली क्रिया

१५. कति णं भते ! सरीरगा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंच सरीरगा पन्नत्ता, तं जहा—ओरालिए जाव कम्मए ।

---

१. पाठान्तर— ' मूले निव्वत्तिते जाव बीए निव्वत्तिए ।'

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा. २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ, ७७४-७७५

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२१

[१५ प्र] भगवन्! शरीर कितने कहे गए है?
[१५ उ] गौतम! शरीर पाच कहे हैं। यथा—औदारिक यावत् कार्मण शरीर।

१६. कति ण भते! इदिया पन्नत्ता?

गोयमा! पच इदिया पन्नत्ता, तं जहा—सोतिंदिए जाव फासिंदिए।

[१६ प्र] भगवन्! इन्द्रियाँ कितनी कही गई है?
[१६ उ] गौतम! इन्द्रियाँ पाच कही गई है। यथा—श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय।

१७ कतिविधे ण भते! जोए पन्नत्ते?

गोयमा! तिविधे जोए पन्नत्ते, त जहा—मणजोए वइजोए कायजोए।

[१७ प्र] भगवन्! योग कितने प्रकार का कहा गया है?
[१७ उ] गौतम! योग तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—मनोयोग, वचनयोग और काययोग।

१८. जीवे णं भते! ओरालियसरीर निव्वत्तेमाणे कतिकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

[१८ प्र] भगवन्! औदारिक शरीर को निष्पन्न करता (बाधता या बनाता) हुआ जीव कितनी क्रिया वाला होता है?

[१८ उ] गौतम! (औदारिक शरीर को बनाता हुआ जीव) कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार और कदाचित् पाच क्रिया वाला होता है।

१९. एवं पुढविकाइए वि।

२०. एव जाव मणुस्से।

[१९-२०] इसी प्रकार (औदारिकशरीर निष्पन्नकर्त्ता) पृथ्वीकायिक (जीव से लेकर) यावत् मनुष्य तक (को लगने वाली क्रियाओ के विषय मे समझना चाहिए।)

२१. जीवा णं भते! ओरालियसरीर निव्वत्तेमाणा कतिकिरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

[२१ प्र] भगवन्! औदारिक शरीर को निष्पन्न करते हुए अनेक जीव कितनी क्रियाओ वाले होते हैं?

[२१ उ] गौतम! वे कदाचित् तीन, कदाचित् चार और पाच क्रियाओ वाले भी होते हैं।

२२. एव पुढविकाइया वि।

२३. एवं जाव मणस्सा।

[२२-२३] इसी प्रकार (दण्डकक्रम से) अनेक पृथ्वीकायिको से लेकर यावत् अनेक मनुष्यो तक पूर्ववत् कथन करना चाहिए।

२४. एवं वेउव्वियसरीरेण वि दो दंडगा, नवर जस्स अत्थि वेउव्वियं ।

[२४] इसी प्रकार वैक्रिय शरीर (निष्पन्नकर्ता) के विषय मे भी एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा से दो दण्डक कहने चाहिए। किन्तु उन्ही के विषय मे कहना चाहिए, जिन जीवो के वैक्रिय-शरीर होता है ।

२५. एवं जाव कम्मगसरीरं ।

[२५] इसी प्रकार (आहारक शरीर, तैजस शरीर) यावत् कार्मण शरीर तक कहना चाहिए।

२६. एव सोतिदियं जाव फासिदियं ।

[२६] इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय से (लेकर) यावत् स्पर्शेन्द्रिय तक (के निष्पन्नकर्ता के विषय मे) कहना चाहिए ।

२७. एवं मणजोगं, वइजोगं, कायजोगं, जस्स जं अत्थि त भाणियव्वं । एते एगत्त-पुहत्तेणं छव्वीस दंडगा ।

[२७] इसी प्रकार मनोयोग, वचनयोग और काययोग के (निष्पन्नकर्ता के) विषय मे जिसके जो हो, उसके लिए उस विषय मे कहना चाहिए। ये सभी मिल कर एकवचन-वहुवचन-सम्वन्धी छव्वीस दण्डक होते है ।

विवेचन—प्रस्तुत ११ सूत्रो (सू १५ से २५ तक) मे शरीर, इन्द्रिय और योग, इनके प्रकार तथा इनमे से प्रत्येक को निष्पन्न करने वाले जीव को एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा लगने वाली क्रियाओ की प्ररूपणा की गई है ।[१]

षड्विध भावो का अनुयोगद्वार के अतिदेशपूर्वक निरूपण

२८. कतिविधे णं भंते ! भावे पन्नत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे भावे पन्नत्ते, त जहा—उदइए उवसमिए जाव सन्निवातिए ।

[२८ प्र.] भगवन् ! भाव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२८ उ] गौतम ! भाव छह प्रकार के कहे गए है। यथा—औदयिक, औपशमिक यावत् सान्निपातिक ।

२९. से किं तं उदइए भावे ? उदइए भावे दुविहे पन्नत्ते, त जहा—उदइए य उदयनिप्फन्ने य । एव एतेणं अभिलावेण जहा अणुओगद्दारे छन्नाम तहेव निरवसेस भाणियव्व जाव से त्तं सन्निवातिए भावे ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तरसमे सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-१ ॥

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७७५-७७६

[२९ प्र] भगवन् ! औदयिक भाव किस प्रकार का कहा गया है ?

[२९ उ] गौतम ! औदयिक भाव दो प्रकार का कहा गया है। यथा—उदय और उदयनिष्पन्न।

इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा अनुयोगद्वार-सूत्रानुसार छह नामो की समग्र वक्तव्यता, यावत्—यह है वह सान्निपातिकभाव (तक) कहनी चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतमस्वामी) यावत् विचरते है।

विवेचन—औदयिक आदि छह भाव—भाव छह प्रकार के हैं—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक और सान्निपातिक। इनमे औदयिक का स्वरूप इसके भेदो मे स्पष्ट है। वे दो भेद यो हैं—उदय और उदयनिष्पन्न। उदय का अर्थ है—आठ कर्मप्रकृतियो का फलप्रदान करना। उदयनिष्पन्न के दो भेद है। यथा—जीवोदयनिष्पन्न, और अजीवोदयनिष्पन्न। कर्म के उदय से जीव मे होने वाले नारक, तिर्यंच आदि पर्याय जीवोदयनिष्पन्न कहलाते हैं। कर्म के उदय से अजीव मे होने वाले पर्याय अजीवोदयनिष्पन्न कहलाते है। जैसे कि औदारिकादि शरीर तथा औदारिकादि शरीर मे रहे हुए वर्णादि। ये औदारिकशरीरनामकर्म के उदय से पुद्गलद्रव्यरूप अजीव मे निष्पन्न होने से 'अजीवोदयनिष्पन्न' कहलाते है। बाकी पाच भावो का स्वरूप अनुयोगद्वार-सूत्र मे उक्त षट्नाम की वक्तव्यता से जान लेना चाहिए।[1]

।। सत्तरहवाँ शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६०४

देखें—नदिसुत्त अणुओगद्दाराइ च (महावीर जैन विद्यालय-प्रकाशित) सू २३३-५९, पृ १०८-१६

बीओ उद्देसओ : संजय

द्वितीय उद्देशक : संयत

संयत आदि जीवों के तथा चौवीस दण्डकों के सयुक्तिक धर्म, अधर्म एवं धर्माधर्म में स्थित होने की चर्चा-विचारणा

१. से नूणं भंते ! संयतविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए ? अस्संजयअविरयअपडिहयअपच्चक्खायपावकम्मे अधम्मे ठिए ? संजयासंजये धम्माधम्मे ठिए ?

हंता, गोयमा ! संजयविरय जाव धम्माधम्मे ठिए ।

[१ प्र.] भगवन् ! क्या संयत, प्राणातिपातादि से विरत, जिसने पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किया है, ऐसा जीव धर्म में स्थित है ? तथा असंयत, अविरत और पापकर्म का प्रतिघात एवं प्रत्याख्यान नहीं करने वाला जीव अधर्म में स्थित है ? एवं संयतासंयत जीव धर्माधर्म में स्थित होता है ?

[१ उ.] हाँ, गौतम ! संयत-विरत जीव धर्म में स्थित होता है, यावत् संयतासंयत जीव धर्माधर्म में स्थित होता है ।

२. एयंसि णं भंते ! धम्मंसि वा अहम्मंसि वा धम्माधम्मंसि वा चक्किया केयि आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२ प्र.] भगवन् ! क्या इस धर्म में, अधर्म में अथवा धर्माधर्म में कोई जीव बैठने या लेटने में समर्थ है ?

[२ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

३. से केणं खाइं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव धम्माधम्मे ठिए ?

गोयमा ! संजतविरत जाव पावकम्मे धम्मे ठिए धम्मं चेव उवसंपज्जित्ताणं विहरति । अस्संयत जाव पावकम्मे अधम्मे ठिए अधम्मं चेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । संजयासंजये धम्माधम्मे ठिए धम्माधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति, से तेणट्ठेणं जाव ठिए ।

[३ प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि यावत् धर्माधर्म में ... समर्थ नहीं है ?

[३ उ.] गौतम ! संयत, विरत और पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान करने वाला जीव धर्म में स्थित होता है और धर्म को ही स्वीकार करके विचरता है । असंयत, यावत् पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं करने वाला जीव अधर्म में ही स्थित होता है और अधर्म को ही

स्वीकार करके विचरता है, किन्तु संयतासयत जीव, धर्माधर्म मे स्थित होता है और धर्माधर्म (देश-विरति) को स्वीकार करके विचरता है। इसलिए हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

४. जीवा ण भते ! किं धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया धम्माधम्मे ठिया ?

गोयमा ! जीवा धम्मे वि ठिया, अधम्मे वि ठिया, धम्माधम्मे वि ठिया।

[४ प्र] भगवन् ! क्या जीव धर्म मे स्थित होते है, अधर्म मे स्थित होते है अथवा धर्माधर्म मे स्थित होते हैं ?'

[४ उ] गौतम ! जीव, धर्म मे भी स्थित होते हैं, अधर्म मे भी स्थित होते है और धर्माधर्म मे भी स्थित होते हैं।

५. नेरतिया णं पुच्छा।

गोयमा ! णेरतिया नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, नो धम्माधम्मे ठिया।

[५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, क्या धर्म मे स्थित होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[५ उ] नैरयिक न तो धर्म मे स्थित हैं और न धर्माधर्म मे स्थित होते है, किन्तु वे अधर्म मे स्थित है।

६. एवं जाव चउरिंदियाण।

[६] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक जानना चाहिए।

७. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! पंचिदियतिरिक्खजोणिया नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, धम्माधम्मे वि ठिया।

[७ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव क्या धर्म मे स्थित है ? इत्यादि प्रश्न।

[७ उ] गौतम ! पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव धर्म मे स्थित नही है, वे अधर्म मे स्थित है, और धर्माधर्म मे भी स्थित हैं।

८. मणुस्सा जहा जीवा।

[८] मनुष्यो के विषय मे जीवो (सामान्य जीवो) के समान जानना चाहिए।

९. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरइया।

[९] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के विषय मे नैरयिको के समान जानना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू १ से ९ तक) मे जीवो के सयत, असयत एव सयतासयत होने की तथा नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चौबीस दण्डकवर्त्ती जीवो के धर्म, अधर्म या धर्माधर्म मे स्थित होने की चर्चा-विचारणा की गई है।

धर्म-अधर्म आदि पर बैठना, सोना आदि—धर्म, अधर्म और धर्माधर्म, ये तीनो अमूर्त्त पदार्थ

हैं। सोना, बैठना आदि क्रियाएँ मूर्त्त आसन आदि पर ही हो सकती हैं। इसलिए अमूर्त्त धर्म, अधर्म आदि पर सोना-बैठना आदि क्रियाएँ अशक्य बताई हैं।[1]

धर्म, अधर्म और धर्माधर्म का विवक्षित अर्थ—धर्म शब्द से यहाँ सर्वविरति चारित्रधर्म, अधर्म शब्द से अविरति और धर्माधर्म शब्द से विरति-अविरति या देशविरति अर्थ विवक्षित है। दूसरे शब्दों मे इन्हें संयम, असंयम और संयमासंयम भी[2] कहा जा सकता है।

कठिनशब्दार्थ—**चक्किया**—समर्थ है। **आसइत्तए**—बैठने मे। **तुयट्टित्तए**—करवट बदलने या लेटने मे या सोने मे।[3]

अन्यतीर्थिक मत के निराकरणपूर्वक श्रमणादि में, जीवों में तथा चौबीस दण्डकों में बाल, पण्डित और बाल-पण्डित की प्ररूपणा

१०. अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति—'एवं खलु समणा पंडिया, समणोवासया बालपंडिया; जस्स णं एगपाणाए वि दंडे अनिक्खित्ते से णं एगंतबाले त्ति वत्तव्वं सिया' से कहमेयं भंते ! एवं ?

गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव वत्तव्वं सिया, जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु। अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु समणा पंडिया; समणोवासगा बालपंडिया; जस्स णं एगपाणाए वि दंडे निक्खित्ते से णं नो एगंतबाले त्ति वत्तव्वं सिया।

[१० प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि (हमारे मत मे) ऐसा है कि श्रमण पण्डित हैं, श्रमणोपासक बाल-पण्डित हैं और जिस मनुष्य ने एक भी प्राणी का दण्ड (वध) अनिक्षिप्त (छोडा हुआ नही) है, उसे 'एकान्त बाल' कहना चाहिए, तो हे भगवन् ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन कैसे यथार्थ हो सकता है ?

[१० उ] गौतम ! अन्यतीर्थिकों ने जो यह कहा है कि 'श्रमण पण्डित हैं' यावत् 'एकान्त बाल कहा जा सकता है', उनका यह कथन मिथ्या है। मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि श्रमण पण्डित हैं, श्रमणोपासक बाल-पण्डित है, परन्तु जिस जीव ने एक भी प्राणी के वध को निक्षिप्त किया (त्यागा) है, उसे 'एकान्त बाल' नही कहा जा सकता, (अपितु उसे 'बाल-पण्डित' कहा जा सकता है।)

११. जीवा णं भंते ! किं बाला, पंडिया, बालपंडिया ?

गोयमा ! जीवा बाला वि, पंडिया वि, बालपंडिया वि।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२३
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६०७

२ वही, भा ५, पृ २६०७

३ (क) वही, भा ५, पृ, २६०६
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२३

[११ प्र] भगवन् ! क्या जीव वाल है, पण्डित है अथवा वालपण्डित है ?

[११ उ] गौतम ! जीव वाल भी है, पण्डित भी है और वाल-पण्डित भी है ।

१२. नेरइया णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नेरइया बाला, नो पडिया, नो बालपडिया ।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक बाल है, पण्डित है अथवा वालपण्डित है ?

[१२ उ] गौतम ! नैरयिक वाल है, वे पण्डित नही है और न वाल-पण्डित है ।

१३. एव जाव चउरिंदियाण ।

[१३] इसी प्रकार (दण्डकक्रम से) यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक (कहना चाहिए ।)

१४. पंचिदियतिरिक्ख० पुच्छा ।

गोयमा ! पंचिदियतिरिक्खजोणिया वाला, नो पंडिया, वालपडिया वि ।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव वाल है ? (इत्यादि पूर्ववत्) प्रश्न ।

[१४ उ] गौतम ! पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक वाल है और वाल-पण्डित भी है, किन्तु पण्डित नही है ।

१५. मणुस्सा जहा जीवा ।

[१५] मनुष्य (सामान्य) जीवो के समान है ।

१६. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरतिया ।

[१६] वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक (इन तीनो का आलापक) नैरयिको के समान (कहना चाहिए ।)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो (सू १० से १६ तक) मे अन्यतीर्थिको के मत के निराकरणपूर्वक श्रमणादि में, सामान्य जीवो मे तथा नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चौवीस दण्डको मे वाल, पण्डित और वाल-पण्डित की प्ररूपणा की गई है ।[1]

अन्यतीर्थिक मत कहाँ तक यथार्थ-अयथार्थ ?—'श्रमण सर्वविरति चारित्र वाले होने के कारण 'पण्डित' हैं और श्रमणोपासक देशविरति चारित्र वाले होने के कारण वाल-पण्डित है, यहाँ तक तो अन्यतीर्थिको का मत ठीक है, किन्तु वे कहते है कि सभी जीवो के वध मे विरति वाला होते हुए भी जिसने सापराधी आदि या पृथ्वीकायादि मे से एक भी जीव का वध खुला रक्खा है, अर्थात् सव जीवो के वध का त्याग करके भी किसी एक जीव के वध का त्याग नही किया है, उसे भी 'एकान्त वाल' कहना चाहिए । श्रमण भगवान् महावीर इस मत का निराकरण करते हुए कहते हैं कि अन्यतीर्थिको की यह मान्यता मिथ्या है । जिस जीव ने आंशिक रूप मे भी प्राणी के वध की

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २, (मूलपाट-टिप्पणयुक्त) पृ. ७७८-७७९

विरति की है, उस जीव को 'एकान्तबाल' न कह कर, 'बाल-पण्डित' कहना चाहिए, क्योकि वह देशविरत है। जो देशविरत हो, उसे 'एकान्तबाल' कहना यथार्थ नही है।[1]

कठिन शब्दार्थ—एगपाणाए—एक प्राणी के। दडे—वध। अनिक्खित्ते—अनिक्षिप्त—छोडा नही है। आहंसु—कहा है।[2]

प्राणातिपात आदि मे वर्तमान जीव और जीवात्मा की भिन्नता के निराकरणपूर्वक जैन-सिद्धान्तसम्मत जीव और आत्मा की कथंचित् अभिन्नता का प्रतिपादन

१७. अन्नउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति जाव परूवेंति—"एव खलु पाणाइवाए मुसावाए जाव मिच्छादसणसल्ले वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया। पाणातिवायवेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे कोहविवेगे जाव मिच्छादसणसल्लविवेगे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया। उप्पत्तियाए जाव पारिणामियाए वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया। उग्गहे ईहा-अवाये धारणाए वट्टमाणस्स जाव जीवाता। उट्ठाणे जाव परक्कमे वट्टमाणस्स जाव जीवाया। नेरइयत्ते तिरिक्खमणुस्स-देवत्ते वट्टमाणस्स जाव जीवाया। नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए वट्टमाणस्स जाव जीवाया। एव कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए, सम्मदिट्ठीए ३।[3] एव चक्खुदंसणे ४[4], आभिणिबोहियनाणे ५[5], मतिअन्नाणे ३[6], आहारसन्नाए ४।[7] एव ओरालियसरीरे ५।[8] एव मणजोए ३।[9] सागारोवयोगे अणागारोवयोगे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाता" से कहमेयं भते ! एव ?

गोयमा ज ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति जाव मिच्छ ते एवमाहसु। अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—'एव खलु पाणातिवाए जाव मिच्छादसणसल्ले वट्टमाणस्स से चेव जीवे, से चेव जीवाता जाव अणागारोवयोगे वट्टमाणस्स से चेव जीवे, से चेव जीवाया'।

[१७ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य मे प्रवृत्त (वर्त्तते) हुए प्राणी का जीव अन्य है और उस जीव से जीवात्मा अन्य (भिन्न) है। प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण मे, क्रोधविवेक (क्रोध-त्याग) यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य-त्याग मे प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा उससे भिन्न है। औत्पत्तिकी बुद्धि यावत् पारिणामिकी बुद्धि मे वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२३

२ वही, पत्र ७२३

३ ३ अक-सूचित पाठ—'मिच्छद्दिट्ठीए सम्मामिच्छद्दिट्ठीए'।

४ ४ अक-सूचित पाठ—'अचक्खुदसणे ओहिदसणे केवलदसणे'।

५. ५ अक-सूचित पाठ—'सुतनाणे ओहिनाणे मणपज्जवनाणे केवलनाणे'।

६ ३ अक-सूचित पाठ—'सुतअन्नाणे विभगनाणे'।

७ ४ अक-सूचित-पाठ—'भयसन्नाए परिग्गहसन्नाए मेहुणसन्नाए'।

८ ५ अक-सूचित-पाठ—'वेउव्वियसरीरे आहारगसरीरे तेयगसरीरे कम्मगसरीरे'।

९ ३ अक-सूचित-पाठ—'वइजोए कायजोए'।

जीवात्मा उस जीव से भिन्न है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा मे वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा उससे भिन्न है। उत्थान यावत् पराक्रम मे वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है, जीवात्मा उससे भिन्न है। नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव मे वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है, जीवात्मा अन्य है। ज्ञानावरणीय से लेकर अन्तराय कर्म मे वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है, जीवात्मा भिन्न है। इसी प्रकार कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या तक मे, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि-सम्यग्-मिथ्यादृष्टि मे, इसी प्रकार चक्षुदर्शन आदि चार दर्शनो मे, आभिनिबोधिक आदि पाच ज्ञानो मे, मति-अज्ञान आदि तीन अज्ञानो मे, आहारसज्ञादि चार सज्ञाओ मे, एव औदारिक शरीरादि पाच शरीरो मे, तथा मनोयोग आदि तीन योगो मे और साकारोपयोग मे एव निराकारोपयोग मे वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। भगवन्! उनका यह मन्तव्य किस प्रकार सत्य हो मकता है?

[१७ उ] गौतम! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते है, यावत् वे मिथ्या कहते है। हे गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ—प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य मे वर्त्तमान प्राणी जीव है और वही जीवात्मा है, यावत् अनाकारोपयाग मे वर्त्तमान प्राणी जीव है और वही जीवात्मा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अन्यतीर्थिको के मत के—प्राणातिपातादि मे वर्त्तमान जीव और जीवात्मा पृथक्-पृथक् हैं, निराकरण-पूर्वक जैन सिद्धान्तसम्मत मत प्रस्तुत किया गया है।

वृत्तिकार ने यहाँ तीन मत जीव और जीवात्मा की पृथक्ता के सम्बन्ध मे प्रस्तुत किये है—(१) **सांख्यदर्शन का मत**—प्राणातिपातादि मे वर्त्तमान प्राणी से जीव अर्थात् प्राणो को धारण करने वाला 'शरीर' साख्यदर्शन की भाषा मे 'प्रकृति' भिन्न है। जीव यानी शरीर का सम्बन्धी—अधिष्ठाता होने से आत्मा—जीवात्मा, साख्यदर्शन की भाषा मे 'पुरुष' भिन्न है। साख्यमतानुसार प्रकृति कर्ता है, पुरुष अकर्ता तथा भोक्ता है। उसका कहना है कि प्राणातिपातादि मे प्रवृत्त होने वाला शरीर प्रत्यक्ष दृश्यमान है, इसलिए शरीर (प्रकृति) ही कर्ता है, आत्मा (पुरुष) नही। (२) **द्वितीयमत—द्वैतवादी दर्शन**—नारकादि पर्याय धारण करके जो जीता है, वह जीव है, वही प्राणातिपातादि मे प्रवृत्त होता है, किन्तु जीवात्मा नारकादि सब भेदो का अनुगामी जीवद्रव्य है। द्रव्य और पर्याय दोनो भिन्न भिन्न हैं, दोनो की भिन्नता का तथाविध प्रतिभास घट और पट की तरह होता है। इसलिए जीव और जीवात्मा दोनो भिन्न-भिन्न है। (३) **तीसरा वेदान्त (औपनिषदिक) मत**—जीव (अन्त करणविशिष्ट चैतन्य) भिन्न है और जीवात्मा (ब्रह्म) भिन्न है। जीव का ही स्वरूप जीवात्मा है। उनके मतानुसार जीव और ब्रह्म का औपाधिक भेद है। जीव ही प्राणातिपातादि विभिन्न क्रियाएँ करता है, इसलिए वही कर्ता है, किन्तु जीवात्मा (ब्रह्म) अकर्ता है। सभी अवस्थाओ मे जीव और जीवात्मा का भेद बताने के लिए ही प्राणातिपातादि क्रियाओ का कथन है।[1]

जैनसिद्धान्त का मन्तव्य—जीव अर्थात्—जीव विशिष्ट शरीर और जीवात्मा (जीव), ये कथचित् एक है, इन दोनो मे अत्यन्त भेद नही है। अत्यन्त भेद मानने पर देह से स्पृष्ट वस्तु का ज्ञान जीव को नही हो सकेगा तथा शरीर द्वारा किये हुए कर्मो का वेदन भी आत्मा को नही हो सकेगा। दूसरे के द्वारा किये हुए कर्मों का सवेदन दूसरे के द्वारा मानने पर अकृताभ्यागमदोष

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२४

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २६१२

आएगा। तथा अत्यन्त अभेद मानने पर परलोक का अभाव हो जाएगा। इसलिए जीव और आत्मा मे कथचित् भेद और कथचित् अभेद हैं।[1]

रूपी अरूपी नहीं हो सकता, न अरूपी रूपी हो सकता है

१८. [१] देवे ण भते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे पुव्वामेव रूवी भवित्ता पभू अरूविं विउव्वित्ताण चिट्ठित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[१८-१ प्र] भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न देव, पहले रूपी होकर (मूर्त्तरूप धारण करके) बाद मे अरूपी (अमूर्त्तरूप) की विक्रिया करने मे समर्थ है ?

[१८-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ—देवे ण जाव नो पभू अरूविं विउव्वित्ताण चिट्ठित्तए ?

गोयमा ! अहमेय जाणामि, अहमेय पासामि, अहमेय बुज्झामि, अहमेय अभिसमन्नागच्छामि—मए एय नायं, मए एय दिट्ठं, मए एयं बुद्ध, मए एय अभिसमन्नागय ज ण तहागयस्स जीवस्स सरूविस्स सकम्मस्स सरागस्स सवेयगस्स समोहस्स सलेसस्स ससरीरस्स ताओ सरीराओ अविप्पमुक्कस्स एव पण्णायति, तं जहा—कालत्ते वा जाव सुक्किलत्ते वा, सुब्भिगधत्ते वा, दुब्भिगधत्ते वा, तित्तत्ते वा जाव महुरत्ते वा, कक्खडत्ते वा जाव लुक्खत्ते वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव चिट्ठित्तए।

[१८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि देव (पहले रूपी होकर) यावत् अरूपीपन की विक्रिया करने मे समर्थ नही है ?

[१८-२ उ.] गौतम ! मैं यह जानता हूँ, मै यह देखता हूँ, मै यह निश्चित जानता हूँ, मै यह सर्वथा जानता हूँ; मैंने यह जाना है, मैंने यह देखा है, मैंने यह निश्चित समझ लिया है और मैंने यह पूरी तरह से जाना है कि तथा प्रकार के सरूपी (रूप वाले), सकर्म (कर्म वाले) सराग, सवेद (वेद वाले), समोह (मोहयुक्त) सलेश्य (लेश्या वाले), सशरीर (शरीर वाले) और उस शरीर से अविमुक्त जीव के विषय मे ऐसा सम्प्रज्ञात होता है। यथा—उस शरीरयुक्त जीव मे कालापन यावत् श्वेतपन, सुगन्धित्व या दुर्गन्धित्व, कटुत्व यावत् मधुरत्व, कर्कशत्व यावत् रूक्षत्व होता है। इस कारण, हे गौतम ! वह देव पूर्वोक्त प्रकार से यावत् विक्रिया करके रहने मे समर्थ नही है।

१९. सच्चेव ण भंते ! से जीवे पुव्वामेव अरूवी भवित्ता पभू रूविं विउव्वित्ताणं चिट्ठित्तए ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। जाव चिट्ठित्तए ?

गोयमा ! अहमेयं जाणामि, जाव ज ण तहागयस्स जीवस्स अरूविस्स अकम्मस्स अरागस्स

---

१ भग. (हिन्दीविवेचन), भा ५, पृ. २६१२

अवेदस्स अमोहस्स अलेसस्स असरीरस्स ताओ विप्पमुक्कस्स णो एवं पन्नायति, तं जहा—कालत्ते वा जाव लुक्खत्ते वा, से तेणट्ठेणं जाव चिट्ठित्तए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तरसमे सए : बीओ उद्देसओ समत्तो ॥ १७-२ ॥

[१९ प्र] भगवन् ! क्या वही जीव पहले अरूपी होकर, फिर रूपी आकार की विकुर्वणा करके रहने मे समर्थ है ?

[१९ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[प्र.] भंते ! क्या कारण है कि वह यावत् वैसा करके रहने मे समर्थ नही है ?

[उ] गौतम ! मै यह जानता हूँ, यावत् कि तथा-प्रकार के अरूपी, अकर्मी, अरागी, अवेदी, अमोही, अलेश्यी, अशरीरी और उस शरीर से विप्रमुक्त जीव के विषय मे ऐसा ज्ञात नही होता कि जीव मे कालापन यावत् रूक्षपन है । इस कारण, हे गौतम ! वह देव पूर्वोक्त प्रकार से विकुर्वणा करने मे समर्थ नही है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू १८-१९) मे दो प्रकार के सिद्धान्त को सर्वज्ञ प्रभु महावीर की साक्षी से प्रस्तुत किया गया है—

(१) कोई भी जीव (विशेषतः देव) पहले रूपी होकर फिर विक्रिया से अरूपित्व को प्राप्त करके नही रह सकता ।

(२) कोई भी जीव (विशेषत देव) पहले अरूपी होकर बाद मे विक्रिया से रूपी आकार बना कर नही रह सकता ।[1]

रूपी अरूपी क्यो नहीं हो सकता ?—कोई महर्द्धिक देव भी पहले रूपी (मूर्त्त) होकर फिर अरूपी (अमूर्त्त) कदापि नही हो सकता । सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् ने इसी प्रकार इस तत्त्व को अपने केवलज्ञानालोक मे देखा है । शरीरयुक्त जीव मे ही कर्मपुद्गलो के सम्बन्ध से रूपित्व आदि का ज्ञान सामान्यजन को भी होता है । इसलिए रूपी, अरूपी नहीं हो सकता ।

अरूपी भी रूपी क्यो नहीं हो सकता ?—कोई भी जीव, भले ही वह महर्द्धिक देव हो, पहले अरूपी (वर्णादिरहित) होकर फिर रूपी (वर्णादियुक्त) नही हो सकता, क्योकि अरूपी जीव कर्म-रहित, कायारहित, जन्ममरणरहित, वर्णादिरहित मुक्त (सिद्ध) होता है, और ऐसे मुक्त जीव को फिर से कर्मबन्ध नही होता । कर्मबन्ध के अभाव मे शरीर की उत्पत्ति न होने से वर्णादि का अभाव

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ७८०

होता है। अतः अरूपी होकर जीव फिर रूपी नहीं हो सकता। सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने अपने केवलज्ञानालोक में इस तत्त्व को इसी प्रकार देखा है।[1]

कठिनशब्दार्थ—**जाणामि**—विशेष रूप से जानता हूँ, **पासामि**—सामान्य रूप से जानता (देखना) हूँ। **बुज्झामि**—सम्यक् प्रकार से अवबोध करता हूँ, सम्यग्दर्शनयुक्त निश्चित ही जानता हूँ। **अभिसमन्नागच्छामि**—समस्त पहलुओं से सगतिपूर्वक सर्वथा जानता हूँ। **पण्णायति**—सामान्य जन द्वारा भी जाना जाता है।[2]

सत्तरहवां शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२५

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५ पृ २६१४-२६१५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२५

तइओ उद्देसओ : 'सेलेसी'

तृतीय उद्देशक : शैलेशी (अनगार की निष्कम्पता आदि)

शैलेशी-अवस्थापन्न अनगार मे परप्रयोग के विना एजनादिनिषेध

१, सेलेसिं पडिवन्नए ण भते ! अणगारे सदा समिय एयति वेयति जाव तं त भाव परिणमति ?

नो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थेगेण परप्पयोगेणं ।

[१ प्र] भगवन् ! शैलेशी-अवस्था-प्राप्त अनगार क्या सदा निरन्तर कापता है, विशेषरूप से कापता है, यावत् उन-उन भावो (परिणमनो) मे परिणमता है ?

[१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है । सिवाय एक परप्रयोग के (शैलेशी-अवस्था मे एजनादि सम्भव नही ।)

विवेचन – शैलेशी अवस्था और एजनादि—शैलेश अर्थात् पर्वतराज सुमेरु, उसकी तरह निष्कम्प-निश्चल-अडोल अवस्था को शैलेशी-अवस्था कहते है । शैलेशी अवस्था मे मन, वचन और काया के योगो का सर्वथा निरोध हो जाता है, इसलिए शैलेशी-अवस्थापन्न अनगार मन-वचन-काया से सर्वथा निष्कम्प रहता है । किन्तु परप्रयोग से अर्थात् कोई शैलेशी-अवस्थापन्न अनगार की काया को कम्पित करे तो कम्पन सम्भव है । कुछ व्याख्याकार इसकी व्याख्या यो करते हैं कि "शैलेशी अवस्था मे कम्पन होता ही नही अर्थात् शैलेशी अवस्था मे आत्मा अत्यन्त स्थिर रहती है, कम्पित नही होती । उस अवस्था मे परप्रयोग नही होता और परप्रयोग के विना कम्पन नही होता ।" तत्त्व केवलिगम्यम् ।[1]

कठिनशब्दार्थ—समिय : दो अर्थ—(१) सन्तत—निरन्तर, अथवा (२) सम्यक्गत-व्यवस्थित या प्रमाणोपेत । **एयति**—एजना करता है, कपित होता है । **वेयति**—विशेषरूप से कपित होता है ।[2]

एजना के पांच भेद

२. कतिविधा ण भते ! एयणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा एयणा पन्नत्ता, त जहा—दव्वेयणा खेत्तेयणा कालेयणा भवेयणा भावेयणा ।

---

१ (क) पाइअसद्दमहण्णवो मे सेलेसी शब्द पृ ९३१

(ख) नन्नत्थेगेण परप्पओगेण—योऽयनिषेध , सोऽन्यत्रैकस्मात् परप्रयोगात् ।
एजनादिकारणेषु मध्ये परप्रयोगेणैकेन शैलेश्यामेजनादि भवति न कारणान्तरेणेति भाव ।

— भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२६

(ग) भगवती, (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६१७

२ (क) 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' मे-समिय, समिअ शब्द पृ ८७१

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६१६

[२ प्र] भगवन् ! एजना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२ उ] गौतम ! एजना पाच प्रकार की कही गई है। यथा—(१) द्रव्य-एजना, (२) क्षेत्र-एजना, (३) काल-एजना, (४) भव-एजना और (५) भाव-एजना।

विवेचन—एजना : स्वरूप, प्रकार और अर्थ—योगो द्वारा आत्मप्रदेशो का अथवा पुद्गल-द्रव्यो का चलना (कापना) **'एजना'**—कहलाती है। एजना के पाच भेद हैं। **द्रव्यएजना**—मनुष्यादि जीव-द्रव्यो का, अथवा मनुष्यादि जीव-सम्पृक्त पुद्गल द्रव्यो का कम्पन। **क्षेत्रएजना**—मनुष्यादि-क्षेत्र मे रहे हुए जीवो का कम्पन। **काल-एजना**—मनुष्यादि-काल मे रहे हुए जीवो का कम्पन। **भाव-एजना**—औदयिकादि भावो मे रहे हुए नारकादि जीवो का, अथवा तद्गत पुद्गल द्रव्यो का कम्पन। **भव-एजना**—मनुष्यादि भव मे रहे हुए जीव का कम्पन।[1]

द्रव्यैजनादि पांच एजनाओं को चारों गतिओ की दृष्टि से प्ररूपणा

३. दव्वेयणा णं भंते ! कतिविधा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहा—नेरतियदव्वेयणा तिरिक्खजोणियदव्वेयणा मणुस्सदव्वेयणा देवदव्वेयणा।

[३ प्र] भगवन् ! द्रव्य-एजना कितने प्रकार की कही गई है ?

[३ उ] गौतम ! द्रव्य-एजना चार प्रकार की कही गई है। यथा—नैरयिकद्रव्यैजना, तिर्यग्योनिकद्रव्यैजना, मनुष्यद्रव्यैजना और देवद्रव्यैजना।

४. से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चति नेरतियदव्वेयणा, नेरइयदव्वेयणा ?

गोयमा ! जं णं नेरतिया नेरतियदव्वे वट्टिंसु वा, वट्टंति वा, वट्टिस्सति वा तेण तत्थ नेरतिया नेरतियदव्वे वट्टमाणा नेरतियदव्वेयण एइंसु वा, एयति वा, एइस्सति वा, से तेणट्ठेणं जाव दव्वेयणा।

[४ प्र.] भगवन् ! नैरयिक-द्रव्यैजना को नैरयिक-द्रव्यैजना क्यो कहा जाता है ?

[४ उ] गौतम ! क्योकि नैरयिक जीव, नैरयिकद्रव्य मे वर्तित (वर्त्तमान) थे, वर्त्तते है और वर्त्तेगे, इस कारण वहाँ नैरयिक जीवो ने, नैरयिकद्रव्य मे वर्त्तते हुए, नैरयिकद्रव्य की एजना पहले भी की थी, अब भी करते है और भविष्य मे भी करेंगे, इसी कारण से वह नैरयिकद्रव्यैजना कहलाती हैं।

५. से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चति तिरिक्खजोणियदव्वेयणा० ?

एव चेव, नवरं 'तिरिक्खजोणियदव्वे' भाणियव्व। सेस तं चेव।

[५ प्र] भगवन् ! तिर्यग्योनिकद्रव्य-एजना तिर्यग्योनिकद्रव्य-एजना क्यो कहलाती है ?

[५ उ] गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। विशेष यह है कि 'नैरयिकद्रव्य' के स्थान पर 'तिर्यग्योनिक द्रव्य' कहना चाहिए। शेष सभी कथन पूर्ववत्।

---

१. (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६१८
(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७२६

६. एव जाव देवदव्वेयणा ।

[६] इसी प्रकार (मनुष्यद्रव्य-एजना) यावत् देवद्रव्य-एजना के विषय मे जानना चाहिए ।

७. खेत्तेयणा ण भते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा पन्नत्ता, त जहा—नेरतियखेत्तेयणा जाव देवखेत्तेयणा ?

[७ प्र] भगवन् ! क्षेत्र-एजना कितने प्रकार की कही गई है ?

[७ उ] गौतम ! वह चार प्रकार की कही गई है । यथा—नैरयिकक्षेत्र-एजना (से लेकर) यावत् देवक्षेत्रएजना ।

८. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति—नेरइयखेत्तेयणा, नेरइयखेत्तेयणा ?

एव चेव, नवरं नेरतियखेत्तेयणा भाणितव्वा ।

[८ प्र] भगवन् ! इसे नैरयिकक्षेत्र-एजना क्यो कहा जाता है ?

[८ उ] गौतम ! नैरयिकद्रव्यएजना के समान सारा कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि नैरयिकद्रव्य-एजना के स्थान पर यहाँ नैरयिकक्षेत्र-एजना कहना चाहिए ।

९. एव जाव देवखेत्तेयणा ।

[९] इसी प्रकार यावत् देव-क्षेत्र-एजना तक पूर्ववत् कहना चाहिए ।

१०. एवं कालेयणा वि । एवं भवेयणा वि, जाव देवभावेयणा ।

[१०] इसी प्रकार काल-एजना, भव-एजना और भाव-एजना के विषय मे समझ लेना चाहिए । और इसी प्रकार नैरयिक कालादि-एजना से लेकर देव-भाव-एजना तक जानना चाहिए ।

विवेचन—द्रव्यादि एजना : चतुर्विध गतियो की अपेक्षा से—नैरयिक द्रव्य एजना इसलिए कहते हैं, कि नैरयिकजीव नैरयिकशरीर मे रहते हुए उस शरीर से एजना (हलचल या कम्पन) करते है, की है, और भविष्य मे करेगे । इसी प्रकार तिर्यञ्च, मनुष्य और देवसम्बन्धी द्रव्य-एजना भी समझ लेनी चाहिए । और इसी प्रकार क्षेत्रादि-एजना के विषय मे समझ लेना चाहिए ।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—वट्टिसु—वर्त्तते थे ।[2]

चलना और उसके भेद-प्रभेद-निरूपण

११. कतिविहा ण भते ! चलणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिविहा चलणा पन्नत्ता, त जहा—सरीरचलणा इंदियचलणा जोगचलणा ।

[११ प्र] भगवन् ! चलना कितने प्रकार की है ?

[११ उ] गौतम ! चलना तीन प्रकार की है, यथा—शरीरचलना, इन्द्रियचलना और योगचलना ।

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६१७

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२६

१२. सरीरचलणा णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा— ओरालियसरीरचलणा जाव कम्मगसरीरचलणा ।

[१२ प्र.] भगवन् ! शरीरचलना कितने प्रकार की है ?

[१२ उ.] गौतम ! शरीरचलना पांच प्रकार की है। यथा—औदारिकशरीरचलना, यावत् कार्मणशरीरचलना ।

१३. इंदियचलणा णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा—सोतिंदियचलणा जाव फासिंदियचलणा ।

[१३ प्र.] भगवन् ! इन्द्रियचलना कितने प्रकार की कही गई है ?

[१३ उ.] गौतम ! इन्द्रियचलना पांच प्रकार की कही गई है। यथा—श्रोत्रेन्द्रियचलना यावत् स्पर्शेन्द्रिय-चलना ।

१४. जोगचलणा णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पन्नत्ता, तं जहा—मणोजोगचलणा वइजोगचलणा कायजोगचलणा ।

[१४ प्र.] भगवन् ! योगचलना कितने प्रकार की कही गई है ?

[१४ उ.] गौतम ! योगचलना तीन प्रकार की कही गई है। यथा—मनोयोगचलना, वचन-योगचलना और काययोगचलना ।

विवेचन—त्रिविध चलना और उसके प्रभेद—सामान्य कम्पन या स्पन्दन को 'एजना' कहते हैं और वही एजना विशेष स्पष्ट हो तो उसे चलना कहते हैं। चलना शरीर, इन्द्रिय और योग से होती है, इसलिए इसके मूलभेद तीन कहे गए है, और उत्तरभेद १३ हैं—(पांचशरीर, पांच इन्द्रिय और तीन योग)।[1]

शरीरचलना : स्वरूप—शरीर—औदारिकादिशरीर की चलना, अर्थात्—उसके योग्य पुद्गलों का तद्रूप-परिणमन में जो व्यापार हो, वह शरीरचलना है। इसी प्रकार इन्द्रिय-चलना और योग-चलना का भी स्वरूप समझ लेना चाहिए।[2]

शरीरादि चलना के स्वरूप का सयुक्तिक निरूपण

१५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—ओरालियसरीरचलणा, ओरालियसरीरचलणा ?

गोयमा ! जं णं जीवा ओरालियसरीरे वट्टमाणा ओरालियसरीरपायोग्गाइं दव्वाइं ओरालिय-सरीरत्ताए परिणामेमाणा ओरालियसरीरचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा, से तेणट्ठेणं जाव ओरालियसरीरचलणा, ओरालियसरीरचलणा ।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७२७
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ५, पृ. ६१९

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७२७

[१५ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर-चलना को औदारिकशरीर-चलना क्यो कहा जाता है ?

[१५ उ] गौतम ! जीवो ने औदारिक शरीर मे वर्त्तते हुए, औदारिक शरीर के योग्य द्रव्यो को, औदारिक शरीर रूप मे परिणमाते हुए भूतकाल मे औदारिक शरीर की चलना की थी, वर्त्तमान मे चलना करते है, और भविष्य मे चलना करेगे, इस कारण से हे गौतम ! औदारिक शरीर मे सम्बन्धित चलना को औदारिकशरीर-चलना कहा जाता है ।

१६. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—वेउव्वियसरीरचलणा, वेउव्वियसरीरचलणा ?

एव चेव, नवर वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा ।

[१६ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर-चलना को वैक्रियशरीर-चलना किस कारण कहा जाता है ?

[१६ उ] पूर्ववत् (औदारिक शरीरचलना के समान) समग्र कथन करना चाहिए । विशेष यह है—औदारिक शरीर के स्थान पर 'वैक्रिय शरीर मे वर्तते हुए', कहना चाहिए ।

१७. एव जाव कम्मगसरीरचलणा ।

[१७] इसी प्रकार यावत्-कार्मण-शरीर चलना तक कहना चाहिए ।

१८. से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—सोतिंदियचलणा, सोतिंदियचलणा ?

गोयमा ! जं ण जीवा सोतिंदिए वट्टमाणा सोतिंदियपायोग्गाइ दव्वाइं सोतिंदियत्ताए परिणामेमाणा सोतिंदियचलण चलिंसु वा, चलति वा, चलिस्सति वा, से तेणट्ठेणं जाव सोतिंदियचलणा सोतिंदियचलणा ।

[१८ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय-चलना को श्रोत्रेन्दिय-चलना क्यो कहा जाता है ?

[१८ उ] गौतम ! चूकि श्रोत्रेन्द्रिय को धारण करते हुए जीवो ने श्रोत्रेन्द्रिय योग्य द्रव्यो को श्रोत्रेन्द्रिय-रूप मे परिणमाते हुए श्रोत्रेन्द्रियचलना की थी, वर्तमान मे (श्रोत्रेन्द्रियचलना) करते है और भविष्य मे करेगे, इसी कारण से श्रोत्रेन्द्रिय-चलना को श्रोत्रेन्द्रिय-चलना कहा जाता है ।

१९. एव जाव फासिंदियचलणा ।

[१९] इसी प्रकार यावत् स्पर्शेन्द्रियचलना तक जानना चाहिए ।

२०. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—मणजोगचलणा, मणजोगचलणा ?

गोयमा ! ज णं जीवा मणजोए वट्टमाणा मणजोगप्पायोग्गाइ दव्वाइं मणजोगत्ताए परिणामेमाणा मणचलणं चलिंसु वा, चलति वा, चलिस्सति वा, से तेणट्ठेणं जाव मणजोगचलणा, मणजोगचलणा ।

[२० प्र] भगवन् ! मनोयोग-चलना को मनोयोग-चलना क्यो कहा जाता है ?

[२० उ] गौतम ! चूकि मनोयोग को धारण करते हुए जीवो ने मनोयोग के योग्य द्रव्यो को मनोयोग रूप मे परिणमाते हुए मनोयोग की चलना की थी, वर्तमान मे मनोयोग-चलना करते है

और भविष्य मे भी चलना करेंगे; इसलिए हे गौतम ! मनोयोग से सम्बन्धित चलना को मनोयोग-चलना कहा जाता है।

२१. एवं वइजोगचलणा वि। एवं कायजोगचलणा वि।

[२१] इसी प्रकार वचनयोगचलना एव काययोगचलना के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू १५ मे २१ तक) मे औदारिकादि पाँच शरीरचलनाओ, श्रोत्रेन्द्रियादि पाच इन्द्रिय-चलनाओ एव मनोयोगादि तीन योगचलनाओ का सहेतुक स्वरूप वताया गया है।[1]

संवेग-निर्वेदादि उनचास पदों का अन्तिम फल : सिद्धि

२२. अह भंते ! सवेगे निव्वेए गुरु-साधम्मियसुस्सूसणया आलोयणया निंदणया गरहणया खमावणया सुयसहायता विओसमणया, भावे अपडिबद्धया विणिवट्टणया विवित्तसयणासणसेवणया सोतिंदियसवरे जाव फासिंदियसवरे जोगपच्चक्खाणे सरीरपच्चक्खाणे कसायपच्चक्खाणे सभोग-पच्चक्खाणे उवहिपच्चक्खाणे भत्तपच्चक्खाणे खमा विरागया भावसच्चे जोगसच्चे करणसच्चे मणसमन्नाहरणया वइसमन्नाहरणया कायसमन्नाहरणया कोहविवेगे जाव मिच्छादसणसल्लविवेगे, णाणसंपन्नया दंसणसंपन्नया चरित्तसंपन्नया वेदणअहियासणया मारणतियअहियासणया, एए णं भंते ! पदा किंपज्जवसाणफला पन्नत्ता समणाउसो ! ?

गोयमा ! सवेगे निव्वेए जाव मारणतियअहियासणया, एए णं सिद्धिपज्जवसाणफला पन्नत्ता समणाउसो ! ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! जाव विहरति।

॥ सत्तरसमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ॥ १७-३ ॥

[२२ प्र] आयुष्मन् श्रमण भगवन् ! सवेग, निर्वेद, गुरु-साधर्मिक-शुश्रूषा, आलोचना, निन्दना, गर्हणा, क्षमापना, श्रुत-सहायता, व्युपशमना, भाव मे अप्रतिबद्धता, विनिवर्त्तना, विविक्त-शयनासन-सेवनता, श्रोत्रेन्द्रिय-सवर यावत् स्पर्शेन्द्रिय-सवर, योग-प्रत्याख्यान, शरीर-प्रत्याख्यान, कषाय-प्रत्याख्यान, सम्भोग-प्रत्याख्यान, उपधि-प्रत्याख्यान, भक्त-प्रत्याख्यान, क्षमा, विरागता, भाव-सत्य, योगसत्य, करणसत्य, मन समन्वाहरण, वचन-समन्वाहरण, काय-समन्वाहरण, क्रोध-विवेक, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक, ज्ञान-सम्पन्नता, दर्शन-सम्पन्नता, चारित्र-सम्पन्नता, वेदना-अध्यासनता, और मारणान्तिक-अध्यासनता, इन पदो का अन्तिम फल क्या कहा गया है ?

[२२ उ] हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! सवेद, निर्वेद आदि यावत्—मारणान्तिक-अध्यासनता, इन सभी पदो का अन्तिम फल सिद्धि (मुक्ति) है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतमस्वामी), यावत् विचरते है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा २, पृ ७८२-७८३

विवेचन—संवेगादि धर्मों का अन्तिम फल—प्रस्तुत सूत्र मे संवेग आदि ४९ पदो का उल्लेख करके इनके आचरण का अन्तिम फल मोक्ष बताया गया है।

कठिनशब्दार्थ—संवेग—मोक्षाभिलाषा, **निर्वेद**—ससार से विरक्ति, **गुरुसाधर्मिक-शुश्रूषा**—दीक्षादि-प्रदाता आचार्य एव साधर्मिक साधुवर्ग की शुश्रूषा-सेवा। **आलोचना**—गुरु के समक्ष समस्त दोषो का प्रकाशन करना। **निन्दना**—अपने द्वारा स्वकीय दोषो के लिए पश्चात्ताप, आत्मनिन्दा। **गर्हणा**—दूसरे (बडो या सघ) के समक्ष अपने दोषो को प्रकट करना। **क्षमापना**—अपने अपराधो के लिए क्षमा मागना। अपने प्रति किये गए अपराधो की दूसरो को क्षमा देना। **व्युपशमनता**—उपशान्तता, दूसरो को क्रोध से निवृत्त करते हुए स्वय क्रोध का त्याग करना। **श्रुतसहायता**—शास्त्राध्ययन मे सहयोग देना। अथवा जिस साधक के लिए श्रुत ही एकमात्र सहायक हो, उसकी श्रुत-सहायता-भावना। **भाव-अप्रतिबद्धता**—हास्यादि भावो के प्रति आसक्ति न रखना। **विनिवर्त्तना**—पापो अथवा असयमस्थानो से विरति। **विविक्तशय्यासनसेवनता**—स्त्री-पशु-पडक से असंसक्त शयन आसन—अथवा उपाश्रय का सेवन करना। **श्रोत्रादि इन्द्रिय-संवर**—अपने-अपने विषय मे जाती हुई इन्द्रियो को रोकना। **योग-प्रत्याख्यान**—मन-वचन-काया के अशुभ व्यापारो को रोकना। **शरीर-प्रत्याख्यान**—शरीर मे आसक्ति का त्याग करना। **कषाय-प्रत्याख्यान**—क्रोधादि का त्याग। **सभोग-प्रत्याख्यान**—एक (पक्ति) मण्डली मे बैठकर साधुओ का भोजनादि व्यवहार करना 'सभोग' है, जिन-कल्पादि साधना या उत्कृष्ट प्रतिमा धारण करके उक्त सम्भोग का त्याग करना। **उपधि-प्रत्याख्यान**—अधिक उपधि का त्याग करना। **भक्त-प्रत्याख्यान**—संलेखना-सथारा करना अथवा उपवासादि करना। **क्षमा**—क्षान्ति। **विरागता**—वीतरागता, रागद्वेषविरतता। **भावसत्य**—शुद्ध अन्तरात्मता रूप पारमार्थिक भावो की यथार्थता। **योगसत्य**—मन-वचन-काया की एकरूपता। **करणसत्य**—प्रतिलेखनादि क्रियाएँ यथार्थ रूप से करना। मन, वचन, काया को वश मे रखना, क्रमश **मनःसमन्वाहरण, वचन-समन्वाहरण** और **काय-समन्वाहरण** है। क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक पापो का त्याग करना **क्रोधविवेक** यावत् **मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक** है। **वेदनाऽध्यासनता**—क्षुधादि वेदना को समभावपूर्वक सहन करना। **मारणान्तिकाध्यासनता**—मारणान्तिक कष्ट आने पर भी सहनशीलता रखना।[1]

॥ सत्तरहवां शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, ७२७

(ख) विशेष स्पष्टीकरण के लिए देखिये—उत्तराध्ययनसूत्र अ २९ तथा उसकी पाई टीका

चउत्थो उद्देसओ : 'किरिया'

चतुर्थ उद्देशक : क्रिया (आदि से सम्बन्धित वक्तव्यता)

जीव और चौवीस दण्डकों में प्राणातिपातादि पांच क्रियाओं की प्ररूपणा

१. तेण कालेणं तेण समएण जाव एव वयासी—

[१] उस काल उस समय मे राजगृह नगर मे यावत् श्रीगौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२. अत्थि ण भंते ! जीवाणं पाणातिवाएण किरिया कज्जति ?

हंता, अत्थि ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्राणातिपातक्रिया करते है ?
[२ उ] हाँ, गौतम ! करते है ।

३. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जति, अपुट्ठा कज्जति ?

गोयमा ! पुट्ठा कज्जति, नो अपुट्ठा कज्जति । एव जहा पढमसए छट्ठुद्देसए (स० १ उ० ६ सु० ७-११) जाव नो अणाणुपुव्विकडा ति वत्तव्वं सिया ।

[३ प्र] भगवन् ! वह (प्राणातिपातक्रिया) स्पृष्ट (आत्मा के द्वारा स्पर्श करके) की जाती है या अस्पृष्ट ?

[३ उ] गौतम ! वह स्पृष्ट की जाती है, अस्पृष्ट नही की जाती, इत्यादि समग्र वक्तव्यता प्रथम शतक के छठे उद्देशक (सू ७-११) मे कथित वक्तव्यता के अनुसार, यावत्—'वह क्रिया अनुक्रम से की जाती है, विना अनुक्रम के नही', (यहाँ तक) कहना चाहिए ।

४. एव जाव वेमाणियाणं; नवरं जीवाण एगिंदियाण य निव्वाघाएण छद्दिसिं; वाघाय पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं; सेसाण नियमं छद्दिसिं ।

[४] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए । विशेषता यह है कि (सामान्य) जीव और एकेन्द्रिय निर्व्याघात की अपेक्षा से, छह दिशा से आए हुए और व्याघात की अपेक्षा से कदाचित् तीन दिशाओ से, कदाचित् चार दिशाओ से और कदाचित् पाच दिशाओ से आए हुए कर्म करते हैं । शेष सभी जीव छह दिशा से आए हुए कर्म करते है ।

५. अत्थि णं भते ! जीवाण मुसावाएण किरिया कज्जति ?

हता, अत्थि ।

[५ प्र] भगवन् ! क्या जीव मृपावाद-क्रिया करते है ?

[५ उ] हाँ, गौतम ! करते है ।

६. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जति० ?

जहा पाणातिवाएण दडओ एव मुसावातेण वि ।

[६ प्र] भगवन् ! वह क्रिया स्पृष्ट की जाती है या अस्पृष्ट ?

[६ उ] गौतम ! प्राणातिपात के दण्डक (आलापक) के समान मृषावाद-क्रिया का भी दण्डक कहना चाहिए ।

७. एव अदिण्णादाणेण वि, मेहुणेण वि, परिग्गहेण वि । एव एए पच दडगा ।

[७] इसी प्रकार अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह (की क्रिया) के विषय मे भी जान लेना चाहिए । इस प्रकार (ये कुल) पाच दण्डक हुए ।

विवेचन—प्राणातिपातादि पांच क्रियाएँ : स्वरूप तथा विश्लेषण—प्रस्तुत प्रकरण मे प्राणातिपातादि क्रियाएँ कार्यकरणभावसम्बन्ध की अपेक्षा से कर्म (पापकर्म) अर्थ मे है । जीव जो भी प्राणातिपातादि क्रिया (कर्म) करते है, वह स्पृष्ट अर्थात्—आत्मा का स्पर्श होकर की जाती है, अस्पृष्ट नही । अगर आत्मा से अस्पृष्ट ये क्रियाएँ की जाने लगे तो अजीव या मृतप्राणी के द्वारा भी की जाने लगेंगी । सभी जीवो की अपेक्षा नियमत छह दिशा से की जाती है, किन्तु औघिक (सामान्य) जीव दण्डक मे और एकेन्द्रिय जीवो मे निर्व्याघात की अपेक्षा तो ये क्रियाएँ छहो दिशाओ से की जाती है । व्याघात की अपेक्षा से जब एकेन्द्रिय जीव, लोक के अन्त मे रहे हुए होते है, तब ऊपर और आसपास की दिशाओ मे अलोक होने से कर्मो के आने की सम्भावना नही है । इसलिए वे यथासम्भव कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाच दिशाओ से आए हुए कर्म (उपार्जित) करते हैं । शेष जीव लोक के मध्यभाग मे होने से नियमत छह दिशाओ से आए हुए कर्म उपार्जित करते हैं, क्योकि लोक के मध्य मे व्याघात नही होता ।

इस प्रकार प्राणातिपात आदि पाच पापकर्मो (क्रियाओ) के स्पृष्ट और अस्पृष्टविषयक पाच दण्डक है ।[1]

'जाव अणाणुपुव्विकडा' : सूचित पाठ और अर्थ—यहाँ प्रथम शतक, छठे उद्देशक, सू ७ के अनुसार 'पुट्ठा, कडा, अत्तकडा, आणुपुव्विकडा' (अर्थात्—स्पृष्ट, कृत, आत्मकृत, आनुपूर्वीकृत) ये पाच और पाच इससे विपरीत,—अस्पृष्ट, अकृत, अनात्मकृत, अनानुपूर्विकृत, ये पद सूचित हैं । तथा प्राणातिपात आदि पाच पापकर्मों के साथ प्रत्येक के पाच-पाच दण्डक सूचित किये गए है । इसका आशय यह है कि (१) ये क्रियाएँ जीव स्वय करते है, विना किये ये नही होती, (२) ये क्रियाएँ मन-वचन-काया से स्पृष्ट होती है, (३) ये क्रियाएँ करने से लगती है, विना किये नही लगती, फिर भले ही ये क्रियाएँ मिथ्यात्व आदि किसी कारण से की जाती है । (४) ये क्रियाएँ स्वय करने से (आत्मकृत) लगती है, ईश्वर, काल आदि दूसरे के करने से नही लगती । (५) ये क्रियाएँ अनुक्रम-पूर्वक कृत होती है ।[2]

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा २, पृ ७८४

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भ ५, पृ २६२५

२ भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र) खण्ड १ (श्री आगमप्र समिति), पृ ११०-१११

समय, देश और प्रदेश की अपेक्षा से जीव और चौवीस दण्डकों मे प्राणातिपातादि क्रियाप्ररूपणा

८. जं समय णं भंते ! जीवाणं पाणातिवाएणं किरिया कज्जति सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

एवं तहेव जाव वत्तव्वं सिया । जाव वेमाणियाणं ।

[८ प्र] भगवन् ! जिस समय जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं, उस समय वे स्पृष्ट क्रिया करते है या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

[८ उ] गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से, यावत्—'अनानुपूर्वीकृत नही की जाती है', (यहाँ तक) कहना चाहिए । इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिए ।

९. एव जाव परिग्गहेण । एते वि पच दडगा १० ।

[९] इसी प्रकार यावत् पारिग्रहिकी क्रिया तक कहना चाहिए । ये पूर्ववत् पाच दण्डक होते हैं ।।५।।

१०. जं देस णं भंते ! जीवाण पाणातिवाएण किरिया कज्जइ० ?

एव चेव । जाव परिग्गहेणं । एवं एते वि पंच दडगा १५ ।

[१० प्र] भगवन् ! जिस देश (क्षेत्रविभाग) मे जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते है, उस देश मे वे स्पृष्ट क्रिया करते है या अस्पृष्ट ?

[१० उ] गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए । यावत् पारिग्रहिकी क्रिया तक जानना चाहिए । इसी प्रकार ये (पूर्ववत्) पाच दण्डक होते है ।।१५।।

११. जं पदेसं ण भंते ! जीवाण पाणातिवाएण किरिया कज्जइ सा भते ! किं पुट्ठा कज्जइ० ?

एवं तहेव दंडओ ।

[११ प्र] भगवन् ! जिस प्रदेश मे जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते है, उस प्रदेश मे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

१२. एवं जाव परिग्गहेणं । एवं एए वीसं दडगा ।

[११ उ] गौतम ! पूर्ववत् दण्डक कहना चाहिए ।

[१२] इस प्रकार यावत् पारिग्रहिकी क्रिया तक जानना चाहिए । यो ये सब मिला कर वीस दण्डक हुए ।

विवेचन—समय, देश और प्रदेश की अपेक्षा से प्राणातिपातादि क्रिया : व्याख्या—जिस समय मे प्राणातिपात से क्रिया (पापकर्म) की जाती है उस समय मे, जिस देश अर्थात्—क्षेत्रविभाग मे प्राणातिपात से क्रिया की जाती है, उस देश मे, तथा जिस प्रदेश—अर्थात् लघुतम क्षेत्रविभाग मे प्राणातिपात से क्रिया की जाती है, उस प्रदेश मे, यह इन तीनो सूत्रो का आशय है । इसी को व्यक्त

करने के लिए यहाँ पाठ है—'ज समय' जं देसं, 'जं पएस'। प्राणातिपात से लेकर परिग्रह तक की पाचो क्रियाओ सम्बन्धी प्रत्येक के पाच-पाच दण्डक होते हैं। यो सब मिला कर ये २० दण्डक होते है।[1]

जीव और चौवीस दण्डको मे दुःख, दुःखवेदन, वेदना, वेदनावेदन का आत्मकृतत्व-निरूपण

१३. जीवाण भते ! किं अत्तकडे दुक्खे, परकडे दुक्खे, तदुभयकडे दुक्खे ?

गोयमा ! अत्तकडे दुक्खे, नो परकडे दुक्खे, नो तदुभयकडे दुक्खे।

[१३ प्र] भगवन् ! जीवो का दु ख आत्मकृत है, परकृत है, अथवा उभयकृत है ?

[१३ उ] गौतम ! (जीवो का) दु ख आत्मकृत है, परकृत नही, और न उभयकृत है।

१४. एव जाव वेमाणियाण।

[१४] इसी प्रकार (नैरयिको से लेकर) यावत् वैमानिको तक जानना चाहिए।

१५. जीवा णं भते ! किं अत्तकड दुक्ख वेदेंति, परकडं दुक्ख वेदेंति, तदुभयकड दुक्ख वेदेंति ?

गोयमा ! अत्तकडं दुक्खं वेदेंति, नो परकड दुक्खं वेदेंति, नो तदुभयकडं दुक्ख वेदेंति।

[१५ प्र] भगवन् ! जीव, आत्मकृत दु ख वेदते है, परकृत दु ख वेदते है या उभयकृत दु ख वेदते है ?

[१५ उ] गौतम ! जीव, आत्मकृत दु ख वेदते है, परकृत दु ख नही वेदते और न उभयकृत दु ख वेदते है।

१६. एव जाव वेमाणिया।

[१६] इसी प्रकार (नैरयिक से लेकर) यावत् वैमानिक तक समझना चाहिए।

१७. जीवाण भते ! किं अत्तकडा वेयणा, परकडा वेयणा० ? पुच्छा।

गोयमा ! अत्तकडा वेयणा, णो परकडा वेयणा, णो तदुभयकडा वेदणा।

[१७ प्र] भगवन् ! जीवो को जो वेदना होती है, वह आत्मकृत है, परकृत है अथवा उभयकृत है ?

[१७ उ] गौतम ! जीवो की वेदना आत्मकृत है, परकृत नही, और न उभयकृत है।

१८. एव जाव वेमाणियाण।

[१८] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक जानना चाहिए।

१९. जीवा ण भंते ! किं अत्तकड वेदणं वेदेंति, परकडं वेदणं वेदेंति, तदुभयकड वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! जीवा अत्तकडं वेदणं वेदेंति, नो परकड वेयणं वेएंति, नो तदुभयकडं वेयणं वेएति।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७२८

[१९ प्र] भगवन् ! जीव, आत्मकृत वेदना वेदते हैं, परकृत वेदना वेदते है, अथवा उभयकृत वेदना वेदते है ?

[१९ उ] गौतम ! जीव, आत्मकृत वेदना वेदते हैं, परकृत वेदना नही वेदते और न उभयकृत वेदना वेदते है ।

२०. एव जाव वेमाणिया ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ सत्तरसमे सए . चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-४ ॥

[२०] इसी प्रकार (नैरयिक से लेकर) यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतमस्वामी) यावत् विचरते है ।

विवेचन—जीवो के दुःख और वेदना से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत मे दु ख शब्द से दु.ख का अथवा मुख्यतया दु.ख के हेतुभूत कर्मो का ग्रहण होता है । दु ख से सम्बन्धित दोनो प्रश्नो का आशय यह है—दु ख के कारणभूत कर्म या कर्म का वेदन (फलभोग) स्वयकृत होता है या परकृत या उभयकृत ? जैनसिद्धान्त की दृष्टि से इसका उत्तर है—दु ख (कर्म) आत्मकृत है । इसी प्रकार वेदना शब्द से सुख और दु ख दोनो का या सुख-दु ख दोनो के हेतुभूत कर्मों का ग्रहण होता है । क्योकि साता-असाता वेदना भी कर्मजन्य होती है । इसलिए वह एव वेदना का वेदन दोनो ही आत्मकृत होते है ।

इन प्रश्नो से ईश्वर, देवी-देव या किसी परनिमित्त को दु ख देने या एक के बदले दूसरे के द्वारा दुःख भोग लेने अथवा दूसरे द्वारा वेदना देने या वेदना भोग लेने की अन्य धर्मों की भ्रान्त मान्यता का निराकरण भी हो जाता है । निष्कर्ष यह है कि ससार के समस्त प्राणियो के स्वकर्म-जनित दु ख या वेदना है, एव स्वकृत दुःख आदि का वेदन है[1] ।

॥ सत्तरहवाँ शतक : चौथा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१ (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ७२८ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६२९

(ख) स्वय कृत कर्म यदात्मना पुरा, फल तदीय लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट, स्वय कृत कर्म निरर्थक तदा ॥ —सामायिकपाठ ३०

पंचमो उद्देसओ : 'ईसाण'

पंचम उद्देशक : ईशानेन्द्र (की सुधर्मासभा)

ईशानेन्द्र की सुधर्मासभा का स्थानादि की दृष्टि से निरूपण

१. कहि ण भते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सभा सुहम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चदिम० जहा ठाणपए जाव मज्झे ईसाणवडेंसए। से ण ईसाणवडेंसए महाविमाणे अड्ढतेरस जोयणसयसहस्साइ एव जहा दसमसए (स० १० उ० ६ सु० १) सक्कविमाणवत्तव्वया, सा इह वि ईसाणस्स निरवसेसा भाणियव्वा जाव आयरक्ख त्ति। ठिती सातिरेगाइ दो सागरोवमाइ। सेस त चेव जाव ईसाणे देविंदे देवराया, ईसाणे देविंदे देवराया।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ सत्तरसमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-५ ॥

[१ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की सुधर्मा सभा कहाँ कही गई है ?

[१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त सम रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र और सूर्य का अतिक्रमण करके आगे जाने पर इत्यादि वर्णन यावत् प्रज्ञापना सूत्र के 'स्थान' नामक द्वितीय पद मे कथित वक्तव्यता के अनुसार, यावत्—मध्य भाग मे ईशानावतसक विमान है। वह ईशानावतसक महाविमान साढे बारह लाख योजन लम्बा और चौडा है, इत्यादि यावत् दशवे शतक (के छठे उद्देशक सू १) मे कथित शक्रेन्द्र के विमान की वक्तव्यता के अनुसार ईशानेन्द्र से सम्बन्धित समग्र वक्तव्यता यावत् आत्मरक्षक देवो की वक्तव्यता तक कहना चाहिए।

ईशानेन्द्र की स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् यावत् 'यह देवेन्द्र देवराज ईशान है, यह देवेन्द्र देवराज ईशान है', (यहाँ तक जानना चाहिए।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते है।

विवेचन—प्रस्तुत मे ईशानेन्द्र की सुधर्मा सभा का वर्णन प्रज्ञापना के स्थानपद एव भगवती के दशवे शतक के छठे उद्देशक सू. १ के अतिदेशपूर्वक किया गया है।[1]

कठिनशब्दार्थ—ईसाणवडेंसए—ईशानावतसक। **अद्धतेरस जोयणसय-सहस्साइ**—साढे बारह लाख योजन। **णिरवसेसा**—सम्पूर्ण।[2]

॥ सत्तरहवाँ शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १, पद २, सू १९८ पृ ७१ (श्री महावीर जैन विद्यालय) मे देखे।
(ख) देखें—भगवती सूत्र भा ४ (हिन्दी विवेचन) शतक १० उ. ६ सू १ मे

२ भगवती, (हिन्दी विवेचन) भा ५, पृ २६३०

छट्ठो उद्देसओ : 'पुढवी'

छठा उद्देशक : पृथ्वीकायिक (-मरणसमुद्घात)

मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक जीवो की उत्पत्ति एवं पुद्गलग्रहण में पहले क्या, पीछे क्या ?

१. [१] पुढविकाइए ण भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए समोहए, समोहण्णित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भते ! किं पुव्वि उववज्जित्ता पच्छा सपाउणेज्जा, पुव्वि वा सपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! पुव्वि वा उववज्जित्ता पच्छा सपाउणेज्जा, पुव्वि वा सपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ।

[१-१ प्र.] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे मरण-समुद्घात करके सौधर्मकल्प मे पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, वे पहले उत्पन्न होते है और पीछे आहार (पुद्गल) ग्रहण करते हैं अथवा पहले आहार ग्रहण करते है और पीछे उत्पन्न होते है ?

[१-१ उ] गौतम ! वे पहले उत्पन्न होते है और पीछे पुद्गल ग्रहण करते है, अथवा पहले वे पुदगल ग्रहण करते है और पीछे उत्पन्न होते है ।

[२] से केणट्ठेणं जाव पच्छा उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! पुढविकाइयाण तओ समुग्घाया पन्नत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणतियसमुग्घाए । मारणतियसमुग्घाएण समोहण्णमाणे देसेण वा समोहण्णति सव्वेण वा समोहण्णति, देसेण समोहन्नमाणे पुव्वि सपाउणित्ता पच्छा उववज्जिज्जा, सव्वेण समोहण्णमाणे पुव्वि उववज्जेत्ता पच्छा सपाउणेज्जा, से तेणट्ठेण जाव उववज्जिज्जा ।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया कि वे पहले यावत् पीछे उत्पन्न होते है ?

[१-२ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवो मे तीन समुद्घात कहे गए है । यथा—वेदना-समुद्घात, कपायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात । जब पृथ्वीकायिक जीव, मारणान्तिक-समुद्घात करता है, तब वह 'देश' से भी समुद्घात करता है और सर्व से भी समुद्घात करता है । जब देश से समुद्घात करता है, तब पहले पुद्गल ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है । जब सर्व से समुद्घात करता है, तब पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है । इस कारण पहले यावत् पीछे उत्पन्न होता है ।

२ पुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव समोहए, समोहन्नित्ता जे भविए ईसाणे कप्पे पुढवि० ।

एवं चेव ईसाणे वि ।

[२ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे मरण-समुद्घात करके ईशानकल्प मे पृथ्वीकायिक रूप मे उत्पन्न होने के योग्य है, वे पहले.... ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! पूर्ववत् (सौधर्म के समान) ईशानकल्प मे पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य जीवो के विषय मे जानना चाहिए ।

३. एवं जाव अच्चुए ।

[३] इसी प्रकार यावत् अच्युतकल्प के पृथ्वीकायिक के विषय मे समझना चाहिए ।

४. गेविज्जविमाणे अणुत्तरविमाणे ईसिपब्भाराए य एव चेव ।

[४] ग्रैवेयक विमान, अनुत्तर विमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

५. पुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए समोहते, समोहन्नित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे पुढवि० ।

एवं जहा रयणप्पभाए पुढविकाइओ उववातिओ एवं सक्करप्पभापुढविकाइओ वि उववाएयव्वो जाव ईसिपब्भाराए ।

[५ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, शर्कराप्रभा पृथ्वी मे मरण-समुद्घात करके सौधर्मकल्प मे पृथ्वीकायिक रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ?

[५ उ] जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवो का उत्पाद कहा, उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वीकायिक जीवो का उत्पाद यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक जानना चाहिए ।

६ एव जहा रयणप्पभाए वत्तव्वता भणिया एव जाव अहेसत्तमाए समोहतो ईसिपब्भाराए उववातेयव्वो । सेसं तं चेव ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। सत्तरसमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ।। १७-६ ।।

[६] जिस प्रकार रत्नप्रभा के पृथ्वीकायिक जीवो की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार यावत् अध सप्तम पृथ्वी मे मरण-समुद्घात से समवहत जीव का ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए ।

भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—मरण-समुद्घात और पुद्गल-ग्रहण—जब जीव मरण-समुद्घात करके, अपने शरीर को सर्वथा छोडकर, गेंद के समान एक साथ सभी आत्मप्रदेशो के साथ उत्पत्ति-स्थान मे जाता है, तब पहले उत्पन्न होता है, पीछे पुद्गल ग्रहण करता है। (आहार करता) है, किन्तु जब मरण-समुद्घात करके ईलिका गति से उत्पत्ति-स्थान मे जाता है, तब पहले आहार करता है और पीछे उत्पन्न होता है।[1]

कठिनशब्दार्थ—समोहए-समवहत—जिसने (मारणान्तिक) समुद्घात किया है। **उववज्जित्ता**—उत्पाद क्षेत्र मे जा कर। **सपाउणेज्ज**—पुद्गल ग्रहण करता है।[2]

॥ सत्तरहवां शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ७३०

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ७३०

सत्तमो उद्देसओ 'पुढवी'

सप्तम उद्देशक : पृथ्वीकायिक

सौधर्मकल्पादि मे मरणसमुद्घात द्वारा सप्तनरको मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक जीव की उत्पत्ति और पुद्गलग्रहण मे पहले क्या, पीछे क्या ?

१. पुढविकाइए ण भते ! सोहम्मे कप्पे समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भते ! किं पुव्विं० ?

सेस त चेव । जहा रयणप्पभापुढविकाइओ सव्वकप्पेसु जाव ईसिपब्भाराए ताव उववातिओ एवं सोहम्मपुढविकाइओ वि सत्तसु वि पुढवीसु उववातेयव्वो जाव अहेसत्तमाए । एव जहा सोहम्म-पुढविकाइओ सव्वपुढवीसु उववातिओ एव जाव ईसिपब्भारापुढविकाइयो सव्वपुढवीसु उववातेयव्वो जाव अहेसत्तमाए ।

सेव भते ! सेवं भते ! ० ।

।। सत्तरसमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-७ ।।

[१ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, सौधर्मकल्प मे मरण-समुद्घात करके इस रत्नप्रभा-पृथ्वी मे पृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य है, वे पहले उत्पन्न होते है और पीछे आहार (पुद्गल) ग्रहण करते हैं अथवा पहले आहार (पुद्गल)-ग्रहण करते है, और पीछे उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा-पृथ्वी के, पृथ्वीकायिक जीवो का सभी कल्पो मे यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे उत्पाद कहा गया, उसी प्रकार सौधर्मकल्प के पृथ्वीकायिक जीवो का सातो नरक-पृथ्वियो मे यावत् अध सप्तम पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए ।

इसी प्रकार सौधर्मकल्प के पृथ्वीकायिक जीवो के समान सभी कल्पो मे, यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवो का सभी पृथ्वियो मे, यावत् अध सप्तम पृथ्वी नक उत्पाद जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सप्तम उद्देशक मे सौधर्म कल्प आदि मे मरण-समुद्घात करके रत्नप्रभादि नरको मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक जीव पहले उत्पन्न होता है फिर आहार-पुद्गल ग्रहण करता है अथवा पहले आहार ग्रहण करता है और फिर उत्पन्न होता है ? इसका समाधान पूर्ववत् प्रस्तुत किया गया है ।

।। सत्तरहवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

अट्ठमो उद्देसओ ' 'दग'

अष्टम उद्देशक : (अधस्तन) अप्कायिक सम्बन्धी

रत्नप्रभा में मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्पादि में उत्पन्न होने योग्य अप्कायिक जीव की उत्पत्ति और पुद्गल-ग्रहण मे पहले क्या, पीछे क्या ?

१. आउकाइए ण भते ! इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए समोहते, समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए० ?

एव जहा पुढविकाइओ तहा आउकाइओ वि सव्वकप्पेसु जाव ईसिपब्भाराए तहेव उववातेयव्वो ।

[१ प्र] भगवन् ! जो अप्कायिक जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे मरण-समुद्घात करके सौधर्मकल्प मे अप्कायिक-रूप मे उत्पन्न होने के योग्य है ''इत्यादि प्रश्न ?

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे कहा, उसी प्रकार अप्कायिक जीवो के विषय मे सभी कल्पो मे यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक (पूर्ववत्) उत्पाद कहना चाहिए ।

२. एव जहा रयणप्पभआउकाइओ उववातिओ तहा जाव अहेसत्तमआउकाइओ उववाएयव्वो जाव ईसिपब्भाराए ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। सत्तरसमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-८ ।।

[२] रत्नप्रभा पृथ्वी के अप्कायिक जीवो के उत्पाद के समान यावत् अध सप्तमपृथ्वी के अप्कायिक जीवो तक का यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है; यो कह कर (गौतम स्वामी) यावत् विचरते है ।

।। सत्तरहवाँ शतक : आठवाँ उद्देशक समाप्त ।।

नवमो उद्देसओ : 'दग'

नौवाँ उद्देशक (ऊर्ध्व लोकस्थ) अप्कायिक (वक्तव्यता)

सौधर्मकल्प में मरणसमुद्घत करके सप्त नरकादि मे उत्पन्न होने योग्य अप्कायिक जीव की उत्पत्ति और पुद्गलग्रहण मे पहले क्या, पीछे क्या ?

१. आउकाइए ण भते ! सोहम्मे कप्पे समोहए, समोहन्नित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयेसु आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भते ! ० ?

सेसं तं चेव ।

[१ प्र] भगवन् ! जो अप्कायिक जीव, सौधर्म कल्प मे मरण-समुद्घात करके इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के घनोदधिवलयो मे अप्कायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, इत्यादि प्रश्न ?

[१ उ] गौतम ! शेष सभी पूर्ववत्, यावत् अध सप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिए ।

२. एव जाव अहेसत्तमाए ।

जहा सोहम्मआउकाइओ एव जाव ईसिपब्भाराआउकाइओ जाव अहेसत्तमाए उववातेयव्वो ।

[२] जिस प्रकार सौधर्मकल्प के अप्कायिक जीवो का नरक-पृथ्वियो मे उत्पाद कहा, उसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक के अप्कायिक जीवो का उत्पाद यावत् अध सप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिए ।

सेव भते ! सेव भते ! ० ।

।। सत्तरसमे सए : नवमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-९ ।।

भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर, (गौतम स्वामी) विचरते है ।

।। सत्तरहवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ।।

दसमो उद्देसओ : 'वाऊ'

दसवाँ उद्देशक : वायुकायिक (वक्तव्यता)

रत्नप्रभा में मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प मे उत्पन्न होने योग्य वायुकायिक जीव पहले उत्पन्न होते हैं या पहले पुद्गल ग्रहण करते हैं ?

१. वाउकाइए णं भंते ! इमीसे रतणप्पभाए जाव जे भविए सोहम्मे कप्पे वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण० ?

जहा पुढविकाइओ तहा वाउकाइओ वि, नवरं वाउकाइयाण चत्तारि समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा—वेदणासमुग्घाए जाव वेउव्वियसमुग्घाए। मारणंतियसमुग्घाएण समोहण्णमाणे देसेण वा समो०। सेसं तं चेव जाव अहेसत्तमाए समोहओ, ईसिपब्भाराए उववातेयव्वो।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

॥ सत्तरसमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-१० ॥

[१ प्र] भगवन् ! जो वायुकायिक जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी मे मरण-समुद्घात करके सौधर्मकल्प मे वायुकायिक रूप मे उत्पन्न होने के योग्य है, इत्यादि प्रश्न।

[१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिकजीवो के समान वायुकायिक जीवो का भी कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि वायुकायिक जीवो मे चार समुद्घात कहे गए है। यथा—वेदना-समुद्घात, यावत् वैक्रिय-समुद्घात। वे वायुकायिक जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हो कर देश से समुद्घात करते हैं, इत्यादि सब पूर्ववत् यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे समुद्घात कर । वायुकायिक जीवो का उत्पाद ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी तक जानना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् (गौतम-स्वामी) विचरते हैं।

॥ सत्तरहवाँ शतक : दसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

एगारसमो उद्देसओ : 'वाऊ'

ग्यारहवाँ उद्देशक : (ऊर्ध्व)-वायुकायिक (-वक्तव्यता)

सौधर्मकल्प मे मरणसमुद्घात करके सप्त नरकादि पृथ्वियो में उत्पन्न होने योग्य वायुकाय की उत्पत्ति एवं आहारग्रहण में प्रथम क्या ?

१. वाउकाइए ण भते ! सोहम्मे कप्पे समोहए, समोहन्नित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए तणुवाए घणवायवलएसु तणुवायवलएसु वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भते ! ० ?

सेसं त चेव ! एवं जहा सोहम्मवाउकाइओ सत्तसु वि पुढवीसु उववातिओ एवं जाव ईसिपब्भारावाउकाइओ अहेसत्तमाए जाव उववायेयव्वो ।

सेव भते ! सेव भते ! ० ।

।। सत्तरसमे सए : एकारसमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-११ ।।

[१ प्र] भगवन् ! जो वायुकायिक जीव, सौधर्मकल्प मे समुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी के घनवात, तनुवात, घनवात-वलय और तनुवातवलयो मे वायुकायिक रूप मे उत्पन्न होने योग्य हैं इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[१ उ] गौतम ! शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए । जिस प्रकार सौधर्मकल्प के वायुकायिक जीवो का उत्पाद सातो नरकपृथ्वियो मे कहा, उसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक के वायुकायिक जीवो का उत्पाद, यावत् अध सप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर, (गौतमस्वामी) यावत् विचरते हैं ।

।। सत्तरहवाँ शतक : ग्यारहवाँ उद्देशक समाप्त ।।१७-११।।

बारसमो उद्देसओ : 'एगिंदिय'

बारहवाँ उद्देशक : एकेन्द्रिय जीवो के आहारादि की समता-विषमता

एकेन्द्रिय जीवों मे समाहार आदि सप्त-द्वार-प्ररूपण

१. एगिंदिया ण भते ! सव्वे समाहारा, सव्वे समसरीरा ?

एवं जहा पढमसए बितियउद्देसए पुढविकाइयाण वत्तव्वया भणिया (स० १ उ० २ सु० ७) सा चेव एगिंदियाणं इहं भाणियव्वा जाव समाउया समोववन्नगा ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी एकेन्द्रिय जीव समान आहार वाले हैं ? सभी समान शरीर वाले है इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक (सू ७) मे जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो की वक्तव्यता कही है, वही यहाँ एकेन्द्रिय जीवो के विषय मे कहनी चाहिए, यावत् वे न तो समान आयुष्य वाले है और न ही एक साथ उत्पन्न हुए है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक (सू ५-६-७) मे उक्त जीवो के आहार, शरीर, उच्छ्वासनिश्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया, आयुष्य एव साथ उत्पन्न होना इत्यादि १० बातो के विषय मे समानता-असमानता का प्रश्न उठा कर प्रथमशतक द्वितीय उद्देशक के अतिदेशपूर्वक समाधान किया गया है ।[1]

एकेन्द्रियों मे लेश्या की, तथा लेश्या एवं ऋद्धि की अपेक्षा से अल्प-बहुत्व की प्ररूपणा

२. एगिंदियाण भंते ! कति लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा ।

[२ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवो मे कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

[२ उ] गौतम ! चार लेश्याएँ कही गई हैं । यथा—कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या ।

३. एतेसि णं भते ! एगिंदियाणं कण्हलेस्साणं जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगिंदिया तेउलेस्सा, काउलेस्सा अणंतगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

[३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या (से लेकर) यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रियो मे कौन किससे अल्प (बहुत, अधिक) यावत् विशेषाधिक है ?

---

१ भगवती शतक १, उ २, सू ५ से ७ तक मे देखिये ।
व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र खण्ड १ (आ. प्र समिति) पृ ४४-४६

[३ उ] गौतम ! सबसे थोडे एकेन्द्रिय जीव तेजोलेश्या वाले हैं, उनसे कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे हैं, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं, और उनसे कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय विशेषाधिक है ।

४. एएसि ण भते ! एगिदियाणं कण्हलेसा० इड्ढी ?

जहेव दीवकुमाराण (स० १६ उ० ११ सु० ४) ।

सेव भते ! सेव भते ! ० ।

।। सत्तरसमे सए : बारसमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-१२ ।।

[४ प्र] भगवन् ! इन कृष्णलेश्या वालो से लेकर यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रियो (तक) मे कौन अल्प ऋद्धि वाला है, और कौन महाऋद्धि वाला है ?

[४ उ] गौतम ! (सोलहवे शतक के ११ वे उद्देशक (सू. ४ मे) जिस प्रकार द्वीपकुमारो की ऋद्धि कही गई है, उसी प्रकार यहाँ एकेन्द्रियो मे भी कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतमस्वामी) यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र ३-४ मे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवो मे लेश्या, तथा उक्त लेश्याओ वाले एकेन्द्रियो के अल्पबहुत्व आदि की तथा लेश्या की तथा अल्पऋद्धि-महर्द्धिक की समानता-असमानता का प्रतिपादन अतिदेशपूर्वक किया गया है ।[1]

।। सत्तरहवाँ शतक : बारहवा उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती, श १६, उ १ सू ४ मे देखिये ।
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ५, पृ २६४१

तेरसमो उद्देसओ : 'नाग'

तेरहवाँ उद्देशक : नागकुमार (सम्बन्धी वक्तव्यता)

नागकुमारों में समाहारादि सप्त द्वारों की तथा लेश्या एवं लेश्या की अपेक्षा से अल्प-बहुत्व-प्ररूपणा

१. नागकुमारा ण भंते ! सव्वे समाहारा ?

जहा सोलसमसए दीवकुमारुद्देसए (स० १६ उ० ११ सु० १-४) तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव इड्ढी।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ।

॥ सत्तरसमे सए : तेरसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-१३ ॥

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी नागकुमार समान आहार वाले हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१ उ] गौतम ! जैसे सोलहवें शतक के (११ वें) द्वीपकुमार-उद्देशक मे (सूत्र १-४ मे) कहा है, उसी प्रकार सब कथन, यावत् ऋद्धि तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर (गौतमस्वामी) यावत् विचरते हैं।

॥ सत्तरहवाँ शतक : तेरहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

चोद्दसओ उद्देसओ : 'सुवण्ण'

चौदहवाँ उद्देशक : सुवर्णकुमार (सम्बन्धी वक्तव्यता)

सुवर्णकुमारो मे समाहारादि सप्त द्वारों की तथा लेश्या एवं लेश्या की अपेक्षा अल्प-बहुत्व की प्ररूपणा

१. सुवण्णकुमारा णं भते ! सव्वे समाहारा० ?

एव चेव ।

सेव भते ! सेव भते ! ० ।

।। सत्तरसमे सए : चोद्दसमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-१४ ।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी सुवर्णकुमार समान आहार वाले है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! इसकी समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् जाननी चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर (गौतमस्वामी) यावत् विचरते है ।

।। सत्तरहवाँ शतक : चौदहवाँ उद्देशक समाप्त ।।

पण्णरसमो उद्देसओ : 'विज्जु'

पन्द्रहवाँ उद्देशक : विद्युत्कुमार (सम्बन्धी वक्तव्यता)

विद्युत्कुमारों में समाहारादि की तथा लेश्या एवं लेश्या की अपेक्षा अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

१. विज्जुकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा० ?

एवं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! ० ।

॥ सत्तरसमे सए : पण्णरसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-१५ ॥

[१ प्र.] भगवन् ! क्या सभी विद्युत्कुमार देव समान आहार वाले हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ.] गौतम ! (विद्युत्कुमार-सम्बन्धी सभी वक्तव्यता) पूर्ववत् (समझना चाहिए ।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर यावत् विचरते हैं ।

॥ सत्तरहवाँ शतक : पन्द्रहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

सोलसमो उद्देसओ : 'वायु'

सोलहवाँ उद्देशक : वायुकुमार–(सम्बन्धी वक्तव्यता)

वायुकुमारो में समाहारादि सप्त द्वारों की तथा लेश्या एवं लेश्या की अपेक्षा अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

१. वाउकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा० ?

एव चेव ।

सेवं भते ! सेवं भते ! ० ।।

।। सत्तरसमे सए : सोलसमो उद्देसओ समत्तो ।। १७-१६ ।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी वायुकुमार समान आहार वाले है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ] (गौतम !) पूर्ववत् (समग्र वक्तव्यता समझनी चाहिए ।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते है ।

।। सत्तरहवाँ शतक : सोलहवाँ उद्देशक समाप्त ।।

सत्तरसमो उद्देसओ : 'अग्गि'

सत्तरहवाँ उद्देशक : अग्निकुमार–(सम्बन्धी वक्तव्यता)

अग्निकुमारो में समाहारादि सप्त द्वार तथा लेश्या एवं अल्पबहुत्वादि-प्ररूपणा

१. अग्गिकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा ?

एवं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! ० ।

॥ सत्तरसमे सए : सत्तरसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १७-१७ ॥

॥ सत्तरसमं सयं समत्तं ॥१७॥

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी अग्निकुमार समान आहार वाले हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ.] (गौतम !) पूर्वोक्त प्रकार से सभी कथन समझना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् (गौतमस्वामी) विचरते हैं ।

॥ सत्तरहवाँ शतक : सत्तरहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ सत्तरहवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

अट्ठारसमं सयं : अठारहवाँ शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति का यह अठारहवाँ शतक है। इसमे दश उद्देशक हैं।

* **प्रथम उद्देशक** का नाम **'प्रथम'** है। इसमे १४ द्वारो की अपेक्षा से प्रथम-अप्रथम तथा चरम-अचरम का निरूपण किया गया है। यह उद्देशक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जीव को जो भाव पहले कभी प्राप्त नही हुआ है, किन्तु पहली बार वह प्राप्त करता है, उसे प्रथम और जो भाव पहले भी प्राप्त हुआ है, वह अप्रथम कहलाता है। इसी प्रकार जिसका कभी अन्त होता है वह 'चरम' और जिसका कभी अन्त नही होता, वह 'अचरम' है।

* **दूसरे उद्देशक** का नाम **'विशाख'** है। इसमे भगवान् महावीर की सेवा मे विशाखानगरी मे उपस्थित देवेन्द्र शक्र के द्वारा सदलबल नाटक प्रदर्शित करने का वर्णन है। तत्पश्चात् शक्रेन्द्र के पूर्वभव का वृत्तान्त कार्तिक सेठ के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। शक्रेन्द्र के पूर्वभव के वृत्तान्त से यह स्पष्ट प्रेरणा भी मिलती है कि पूर्वजन्म मे निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर निरतिचार महाव्रतादि का पालन करने से ही इतनी उच्च स्थिति आगामी भव मे प्राप्त होती है।

* **तीसरे उद्देशक** मे माकन्दिक पुत्र अनगार द्वारा भगवान् से किये गए निम्नोक्त प्रश्नो का यथोचित समाधान अंकित किया गया है—(१) कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी पृथ्वी अप्-वनस्पतिकायिक जीव मर कर अन्तररहित मनुष्यभव से केवली होकर सिद्ध हो सकता है या नही ? (२) सर्वकर्मो का वेदन—निर्जरण करते तथा समस्त मरण से मरते हुए आदि विशेषण युक्त भावितात्मा अनगार के चरम निर्जरा के सूक्ष्म पुद्गल क्या समग्र लोक का अवगाहन करके रहे हुए है ? (३) उन चरमनिर्जरा-पुद्गलो को छद्मस्थ, मनुष्य या देव आदि जान सकते हैं या नही ? (४) बन्ध के प्रकार तथा भेदाभेद तथा आठो कर्मो के भाव बन्ध-सम्बन्धी प्रश्न हैं। (५) जीव के भूतकालीन तथा भविष्यत् कालीन पाप कर्म मे कुछ भेद है या नही ? है तो किस कारण से ? (६) आहार रूप से गृहीत पुद्गलो मे से नैरयिक कितना भाग ग्रहण करता है, कितना त्यागता है ? तथा उन त्यागे हुए पुद्गलो पर कोई बैठ, उठ या सो सकता है ?

* **चौथे उद्देशक** 'प्राणातिपात' मे कुछ प्रश्न है, जिनका समाधान किया गया है—(१) प्राणातिपात आदि ४८ जीव-अजीवरूप द्रव्यो मे से कितने परिभोग्य है, कितने अपरिभोग्य ? (२) कषाय और उनसे आठो कर्मो की निर्जरा कैसे होती है ? (३) चार प्रकार के युग्म तथा उनकी परिभाषा क्या है ? नैरयिकादि मे किन मे कौन-सा युग्म है ? (४) अन्धकवह्नि जीव जितने अल्पायु हैं, क्या उतने ही दीर्घायु हैं ?

* **पचम** 'असुर' उद्देशक मे चतुर्विध देवनिकायो मे से एक ही निकाय के एक आवास मे उत्पन्न दो देवो की सुन्दरता आदि मे, तथा एक ही नरकावास मे उत्पन्न दो नारको की वेदना मे

तारतम्य का कारण बताया गया है। तत्पश्चात् यह बताया गया है कि जो प्राणी जिस गति-योनि में उत्पन्न होने वाला है, वह उसके आयुष्य को उदयाभिमुख कर लेता है, वेदन तो वह उसी गति-योनि का करता है, जहाँ वह अभी है। उसके बाद एक ही आवास मे उत्पन्न दो देवो मे से एक स्वेच्छानुकूल विकुर्वणा करता और दूसरे स्वेच्छाप्रतिकूल, इसका कारण बताया गया है।

※ **छठे उद्देशक 'गुल'** मे—गुड आदि प्रत्येक वस्तु के वर्णादि का निश्चय और व्यवहार दोनो दृष्टियो से निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् परमाणु से लेकर सूक्ष्म अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक मे पाए जाने वाले वर्ण गन्धादि विषयक विकल्पो की प्ररूपणा है।

※ **सप्तम उद्देशक** 'केवली' मे सर्वप्रथम अन्यतीर्थिको की केवली-सम्बन्धी विपरीत मान्यता का निराकरण किया गया है। तत्पश्चात् उपधि और परिग्रह के प्रकार तथा किस जीव मे कितनी उपधि या परिग्रह पाया जाता है ? इसका निरूपण है। फिर नैरयिको से वैमानिको तक मे प्रणिधानत्रय की प्ररूपणा है। उसके पश्चात् मद्रुक श्रावक द्वारा अन्यतीर्थिको के पचास्तिकाय विषयक समाधान तथा श्रावक व्रत ग्रहण करने का प्रतिपादन है। फिर वैक्रियकृत शरीर का सम्बन्ध एक जीव से है या अनेक जीवो से, तथा कोई उन शरीरो के अन्तराल को छेदन-भेदनादि द्वारा पीड़ा पहुँचा सकता है ? देवासुरसग्राम मे दोनो किन शस्त्रो का प्रयोग करते है ? महर्द्धिक देव लवणसमुद्र धातकीखण्ड आदि के चारो ओर चक्कर लगाकर वापिस शीघ्र आ सकते है ? इत्यादि प्रश्न हैं। उसके बाद देवो के कर्माशो को क्षय करने का कालमान दिया गया है।

※ **आठवें उद्देशक 'अनगार'** में भावितात्मा अनगार को साम्परायिक क्रिया क्यो नही लगती ? इसका समाधान है। फिर अन्यतीर्थिको के इस आक्षेप का—'तुम असयत, अविरत यावत एकान्त बाल हो', का गौतम स्वामी द्वारा निराकरण किया गया है। तत्पश्चात् छद्मस्थ मनुष्य द्वारा तथा अवधिज्ञानी, परम अवधिज्ञानी एव केवलज्ञानी द्वारा परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक को जानने-देखने की शक्ति का वर्णन किया गया है।

※ **नौवें उद्देशक 'भविए'** मे नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के भव्यद्रव्यत्व का निरूपण किया गया है। भव्यद्रव्य नैरयिकादि की स्थिति का कालमान भी बताया गया है।

※ **दसवें उद्देशक 'सोमिल'** मे सर्वप्रथम भावितात्मा अनगार की वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य सम्बन्धी १० प्रश्न हैं। तत्पश्चात् परमाणु पुद्गलादि क्या वायुकाय से स्पृष्ट है या वायुकाय परमाणु पुद्गलादि से स्पृष्ट है ? क्या नरकादि के नीचे वर्णादि अन्योन्यबद्ध आदि है ? इसके पश्चात् सोमिल द्वारा यात्रा, यापनीय अव्याबाध और प्रासुकविहार सम्बन्धी पूछे गए प्रश्नो तथा सरिसव, मास, कुलत्था के भक्ष्याभक्ष्य सम्बन्धी एव एक-अनेकादि प्रश्नो का समाधान है। तत्पश्चात् सोमिल के प्रबुद्ध होने तथा श्रावकव्रत अगीकार करने का वर्णन है। □

अट्ठारसमं सयं : अठारहवाँ शतक

अठारहवें शतक के उद्देशको का नाम-निरूपण

१ पढमा १ विसाह २ मायंदिए य ३ पाणातिवाय ४ असुरे य ५ ।
गुल ६ केवलि ७ अणगारे ८ भविए ९ तह सोमिलऽट्ठारसे १० ॥१॥

[१] अठारहवें शतक मे दस उद्देशक है। यथा—(१) प्रथम, (२) विशाखा, (३) माकन्दिक, (४) प्राणातिपात, (५) असुर, (६) गुड, (७) केवली, (८) अनगार, (९) भविक तथा (१०) सोमिल।

विवेचन—दस उद्देशको मे प्रतिपाद्य विषय—(१) प्रथम उद्देशक मे जीवादि के विषय मे विविध पहलुओ से प्रथम-अप्रथम आदि का निरूपण है। **(२) द्वितीय उद्देशक** मे विशाखा नगरी मे भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित कार्तिक सेठ के पूर्वभव के रूप मे शक्रेन्द्र का वर्णन है। **(३) तीसरा उद्देशक**—माकन्दीपुत्र अनगार की पृच्छारूप है। **(४) चौथा उद्देशक**—प्राणातिपात आदि पाप और उनसे निवृत्ति के विषय मे है। **(५) पाँचवें उद्देशक** मे असुरकुमार देव सम्बन्धी वक्तव्यता है। **(६) छठे उद्देशक** मे निश्चय-व्यवहार से गुड आदि के वर्णादि का प्रतिपादन है। **(७) सातवें उद्देशक** मे केवली आदि से सम्बन्धित विविध विषयो का प्रतिपादन है। **(८) आठवें उद्देशक** मे अनगार से सम्बन्धित अन्यतीर्थिको के आक्षेपो का निराकरण है। **(९) नौवें उद्देशक** मे भव्य-द्रव्यनैरयिक आदि के विषय मे चर्चा है। और **(१०) दसवें उद्देशक** मे सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नो का समाधान है। इस प्रकार अठारहवे शतक के अन्तर्गत दश उद्देशक हैं।

पढमो उद्देसओ : 'पढमा'

प्रथम उद्देशक : 'प्रथम'

प्रथम-अप्रथम

जीव, चौबीस दण्डक और सिद्ध मे जीवत्व-सिद्धत्व की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

२. तेण कालेणं तेण समएण रायगिहे जाव एव वयासी—[1]

[२] उस काल और उस समय मे राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

३. जीवे णं भते ! जीवभावेण किं पढमे, अपढमे ?

गोयमा ! नो पढमे, अपढमे ।

[३ प्र] भगवन् ! जीव, जीवभाव से प्रथम है, अथवा अप्रथम ?

[३ उ] गौतम ! (जीव, जीवभाव की अपेक्षा से) प्रथम नही, अप्रथम है ।

४. एव नेरइए जाव वेमाणिए ।

[४] इस प्रकार नैरयिक से लेकर यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

५. सिद्धे ण भते ! सिद्धभावेण किं पढमे, अपढमे ?

गोयमा ! पढमे, नो अपढमे ।

[५ प्र] भगवन् ! सिद्ध-जीव, सिद्धभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[५ उ] गौतम ! (सिद्धजीव, सिद्धत्व की अपेक्षा से) प्रथम है, अप्रथम नही ।

६. जीवा णं भते ! जीवभावेणं किं पढमा, अपढमा ?

गोयमा ! नो पढमा, अपढमा ।

---

१. प्रस्तुत उद्देशक के प्रारम्भ मे उद्देशक के द्वारो से सम्बन्धित निम्नोक्त गाथा अभयदेववृत्ति आदि मे अकित है—

जीवाहारग-भव-सण्णि-लेसा-दिट्ठी य सजय कसाए ।
णाणे जोगुवओगे वेए य सरीर-पज्जत्ती ॥

अर्थात्—प्रस्तुत उद्देशक मे चौदह द्वार है—(१) जीव द्वार, (२) आहारक द्वार, (३) भवी द्वार, (४) सज्ञी द्वार, (५) लेश्या द्वार, (६) दृष्टि द्वार, (७) सयत द्वार, (८) कषाय द्वार, (९) ज्ञान द्वार, (१०) योग द्वार, (११) उपयोग द्वार, (१२) वेद द्वार, (१३) शरीर द्वार, (१४) पर्याप्ति द्वार ।

[६ प्र] भगवन्! अनेक जीव, जीवत्व की अपेक्षा से प्रथम है अथवा अप्रथम ?

[६ उ] गौतम! (अनेक जीव, जीवत्व की अपेक्षा से) प्रथम नही, अप्रथम है।

७. एव जाव वेमाणिया।

[७] इस प्रकार नैरयिक (से लेकर) यावत् अनेक वैमानिको तक (जानना चाहिए।)

८. सिद्धा ण० पुच्छा।

गोयमा! पढमा, नो अपढमा।

[८ प्र] भगवन्! सभी सिद्ध जीव, सिद्धत्व की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[८ उ] गौतम! वे सिद्धत्व की अपेक्षा से प्रथम है, अप्रथम नही।

विवेचन—(१) जीवद्वार—प्रस्तुत ७ सूत्रो (सू २ से ८ तक) मे जीवद्वार मे एक जीव, चौवीस दण्डकवर्ती जीव, अनेक जीव, एक सिद्ध जीव और अनेक सिद्ध जीवो के विषय मे प्रथम-अप्रथम की चर्चा की गई है।

प्रथमत्व-अप्रथमत्व का स्पष्टीकरण—प्रथमत्व और अप्रथमत्व की प्रतिपादक गाथा इस प्रकार है—

"जो जेण पत्तपुव्वो भावो, सो तेण अपढमो होइ।
सेसेसु होइ पढमो, अपत्तपुव्वेसु भावेसु॥"

अर्थात्—जिस जीव ने जो भाव पहले भी प्राप्त किया है, उसकी अपेक्षा से वह भाव 'अप्रथम' है। जैसे-जीव को जीवत्व (जीवपन) अनादिकाल से प्राप्त होने के कारण जीवत्व की अपेक्षा से जीव अप्रथम है, प्रथम नही, किन्तु जो भाव जीव को पहले कभी प्राप्त नही हुआ है उसे प्राप्त करना, उस भाव की अपेक्षा से 'प्रथम' है। जैसे—सिद्धत्व अनेक या एक सिद्ध की अपेक्षा से प्रथम है, क्योंकि वह (सिद्धभाव) जीव को पहले कदापि प्राप्त नही हुआ था। द्वितीय प्रश्न का आशय यह है कि जीवत्व पहले नही था, और प्रथम यानी पहले-पहल प्राप्त हुआ है, अथवा जीवत्व अप्रथम है, अर्थात्—अनादिकाल से अवस्थित है ?[1]

जीव, चौबीस दण्डक और सिद्धों मे आहारकत्व-अनाहारकत्व की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व का निरूपण

९. आहारए ण भते! जीवे आहारभावेण किं पढमे, अपढमे ?

गोयमा! नो पढमे, अपढमे।

[९ प्र] भगवन्! आहारकजीव, आहारकभाव से प्रथम है अथवा अप्रथम है ?

[९ उ] गौतम! वह आहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम नही, अप्रथम है।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्र ७३३

१०. एव जाव वेमाणिए ।

[१०] इसी प्रकार नैरयिक मे लेकर वैमानिक तक जानना चाहिए ।

११. पोहत्तिए एवं चेव ।

[११] बहुवचन मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

१२. अणाहारए ण भंते ! जीवे अणाहारभावेणं० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे ।

[१२ प्र] भगवन् ! अनाहारक जीव, अनाहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[१२ उ] गौतम ! (अनाहारकजीव, अनाहारकत्व की अपेक्षा से) कदाचित् प्रथम होता है, कदाचित् अप्रथम ।

१३. नेरतिए ण भंते ! ० ?

एव नेरतिए जाव वेमाणिए नो पढमे, अपढमे ।

[१३ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, अनाहारकभाव मे प्रथम है या अप्रथम ?

[१३ उ] गौतम ! वह प्रथम नही, अप्रथम है । इसी प्रकार नैरयिक मे लेकर वैमानिक तक (अनाहारकभाव की अपेक्षा मे) प्रथम नही, अप्रथम जानना चाहिए ।

१४. सिद्धे पढमे, नो अपढमे ।

[१४] सिद्धजीव, अनाहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम है, अप्रथम नही ।

१५. अणाहारगा णं भंते ! जीवा अणाहारभावेण० पुच्छा ।

गोयमा ! पढमा वि, अपढमा वि ।

[१५ प्र] भगवन् ! अनेक अनाहारकजीव, अनाहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम हैं या अप्रथम ?

[१५ उ.] गौतम ! वे प्रथम भी है और अप्रथम भी ।

१६. नेरतिया जाव वेमाणिया णो पढमा, अपढमा ।

[१६] इसी प्रकार अनेक नैरयिकजीवो मे लेकर अनेक वैमानिको तक (अनाहारकभाव की अपेक्षा से) प्रथम नही, अप्रथम हैं ।

१७. सिद्धा पढमा, नो अपढमा । एक्केक्के पुच्छा भाणियव्वा ।

[१७] सभी सिद्ध (अनाहारकभाव की अपेक्षा से) प्रथम है, अप्रथम नही ।

इसी प्रकार प्रत्येक दण्डक के विषय मे इसी प्रकार पृच्छा (करके समाधान) कहना चाहिए ।

विवेचन—(२) आहारकद्वार—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू ९ से १७ तक) मे आहारक एव अनाहारकभाव की अपेक्षा से शका-समाधान प्रस्तुत किया गया है ।

आहारक-अनाहारकभाव की अपेक्षा का आशय—सभी सिद्धजीव सदैव अनाहारक रहते है, इसलिए उनके विषय मे आहारकभाव की अपेक्षा से एकवचन-बहुवचन-परक प्रश्न नही किया गया है। ससारी जीव विग्रहगति मे अनाहारक रहते है, शेष समय मे आहारक। इसलिए एक या अनेक आहारकजीव या ससारी सभी जीव आहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम नही हैं, क्योकि अनादिभवो मे अनन्त बार उन्होने आहारकभाव प्राप्त किया है। ससारी जीव विग्रहगति मे ही अनाहारक होता है, इसलिए जब एक या अनेक ससारी जीव विग्रहगति मे होते हैं, तब वह अप्रथम होते हैं। क्योकि उन्हे विग्रहगति मे अनाहारकपन पहले अनन्त बार प्राप्त हो चुका है। किन्तु जब एक या अनेक ससारी जीव सिद्ध होते है तब अनाहारकभाव की अपेक्षा से उन्हे अनाहारकत्व पहले कभी प्राप्त नही हुआ था, इसलिए उन्हे प्रथम कहा गया है। १२ वे सूत्र मे इसी दृष्टि से कहा गया है—**'सिय पढमे, सिय अपढमे।'**, किन्तु नैरयिक से वैमानिक तक के जीव विग्रहगति मे अनन्त बार अनाहारकत्व प्राप्त कर चुके है, इस अपेक्षा से उन्हे अप्रथम कहा गया है। किन्तु एक या अनेक सिद्धजीव अनाहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम होते है, क्योकि उन्हे पहले कभी अनाहारकत्व प्राप्त नही हुआ था।[1]

भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक तथा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक के विषय मे भवसिद्धिकत्वादि दृष्टि से प्रथम-अप्रथम प्ररूपण

१८. भवसिद्धीए एगत्त-पुहत्तेण जहा आहारए (सु० ९-११)।

[१८] भवसिद्धिक जीव (भवसिद्धिकपन की अपेक्षा से) एकत्व-अनेकत्व दोनो प्रकार से (सू ९-११ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान प्रथम नही, अप्रथम है, इत्यादि कथन करना चाहिए।

१९. एव अभवसिद्धीए वि।

[१९] इसी प्रकार अभवसिद्धिक एक या अनेक जीव के विषय मे भी जान लेना चाहिए।

२०. नोभवसिद्धीए-नोअभवसिद्धीए णं भते ! जीवे नोभव० पुच्छा।

गोयमा ! पढमे, नो अपढमे।

[२० प्र] भगवन् ! नो-भवसिद्धिक-नो-अभवसिद्धिक जीव नोभवसिद्धिक-नो-अभवसिद्धिकभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[२० उ] गौतम ! वह प्रथम है, अप्रथम नही।

२१. णोभवसिद्धीय-नोअभवसिद्धीये ण भते ! सिद्धे नोभव० ?

एव चेव।

[२१ प्र] भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नोअभव सिद्धिक सिद्धजीव नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिकभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[२१ उ] पूर्ववत् समझना चाहिए।

---

१ भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ७३४

२२. एव पुहत्तेण वि दोण्ह वि ।

[२२] इसी प्रकार (जीव और सिद्ध) दोनो के वहुवचन-सम्वन्धी प्रश्नोत्तर भी समझ लेने चाहिए ।

विवेचन—(३) भवसिद्धिकद्वार—इसमे ५ सूत्रो (सू १८ से २२ तक) मे एक या अनेक भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक जीव तथा एक-अनेक नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्ध के विषय मे क्रमश भवसिद्धिकभाव अभवसिद्धिकभाव तथा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिकभाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व की चर्चा की गई है ।

परिभाषा—भवसिद्धिक का अर्थ है—भवान्त (ससार का अन्त) करके सिद्धत्व प्राप्त करने के स्वभाव वाला, भव्यजीव । अभवसिद्धिक का अर्थ है—अभव्य, जो कदापि ससार का अन्त करके सिद्धत्व प्राप्त नही करेगा । नोभवसिद्धिक-नो-अभवसिद्धिक का अर्थ है—जो न तो भव्य रहे है, न अभव्य, अर्थात् जो सिद्धत्व प्राप्त कर चुके हैं—सिद्ध जीव ।

भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक अप्रथम क्यो ?—भवसिद्धिक का भव्यत्व और अभवसिद्धिक का अभव्यत्व अनादिसिद्ध पारिणामिक भाव है, इसलिए दोनो क्रमश भव्यत्व व अभव्यत्व की अपेक्षा से प्रथम नही, अप्रथम हैं ।

दो सूत्र क्यो ?—जव नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक से सिद्ध जीव का ही कथन है, तव एक ही सूत्र से काम चल जाता, दो सूत्रो मे उल्लेख क्यो ? वृत्तिकार इसका समाधान करते है कि यहाँ पहला सूत्र केवल समुच्चय जीव की अपेक्षा से है, नारकादि की अपेक्षा से नही, और दूसरा सूत्र सिद्ध की अपेक्षा से है । इसलिए दोनो पृच्छा-सूत्रो के उत्तर के रूप मे इनको प्रथम वताया गया है ।[1]

जीव, चौबीस दण्डक एवं सिद्धो में संज्ञी-असंज्ञी-नोसंज्ञी-नोअसज्ञी भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

२३. सण्णी ण भंते ! जीवे सण्णिभावेणं कि० पुच्छा ।

गोयमा ! नो पढमे, अपढमे ।

[२३ प्र] भगवन् ! सज्ञीजीव, सज्ञीभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[२३ उ] गौतम ! (वह) प्रथम नही, अप्रथम है ।

२४. एव विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणिए ।

[२४] इसी प्रकार विकलेन्द्रिय (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) को छोड कर यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

२५. एवं पुहत्तेण वि ।

[२५] इनकी वहुवचन-सम्वन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार जान लेनी चाहिए ।

---

१ भगवती सूत्र, अ. वृत्ति, पत्र ७३४

२६. असण्णी एव चेव एगत्त-पुहत्तेण, नवरं जाव वाणमंतरा ।

[२६] असज्ञीजीवो को एकवचन-बहुवचन-सम्बन्धी (वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए) । विशेष इतना है कि यह कथन वाणव्यन्तरो तक ही (जानना चाहिए) ।

२७. नोसण्णो नोअसण्णी जीवे मणुस्से सिद्धे पढमे, नो अपढमे ।

[२७] नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्ध, नो-सज्ञी-नो-असज्ञीभाव की अपेक्षा प्रथम है, अप्रथम नही ।

२८. एवं पुहत्तेण वि ।

[२८] इसी प्रकार बहुवचन-सम्बन्धी (वक्तव्यता भी कहनी चाहिए) ।

विवेचन—(४) **संज्ञी-द्वार**—प्रस्तुत द्वार मे (सू २३ से २८ तक मे) सज्ञी, विकलेन्द्रिय को छोड कर वैमानिक के जीव, असज्ञी तथा नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्ध के विषय मे एकवचन-बहुवचन-सम्बन्धी वक्तव्यता क्रमश सज्ञी-असज्ञी भाव एव नो-सज्ञी-नोअसज्ञी भाव की अपेक्षा से कही गई है ।

फलितार्थ—सज्ञीजीव सज्ञो भाव की अपेक्षा से अप्रथम है, क्योकि सज्ञीपन अनन्त बार प्राप्त हो चुका है । तथा एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक को छोड कर दण्डक क्रम से नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीव भी सज्ञो भाव को अपेक्षा से अप्रथम हैं । असज्ञीजीव, एक हो या अनेक, असज्ञी भाव को अपेक्षा से अप्रथम है, क्योकि नैरयिक से लेकर वाणव्यन्तर तक सज्ञी होने पर भी भूतपूर्वगति की अपेक्षा से तथा नारक आदि मे उत्पन्न होने पर कुछ देर तक वहाँ (नरकादि मे) असज्ञित्व रहता है । असज्ञीजीवो का उत्पाद वाण-व्यन्तर तक होता है । पृथ्वीकाय आदि असज्ञी जीव तो असज्ञीभाव की अपेक्षा से अप्रथम हैं ही । नोसज्ञी-नो-असज्ञी जीव सिद्ध ही होते हैं, परन्तु यहाँ समुच्चय जीव और मनुष्य जो सिद्ध होने वाले हैं, इसलिए उनको भी नोसज्ञी-नोअसज्ञित्व की अपेक्षा से प्रथम कहा गया है । क्योकि यह भाव उन्हे पहले कभी प्राप्त नही हुआ था ।[1]

सलेश्यी, कृष्णादिलेश्यी एवं अलेश्यी जीव के विषय में सलेश्यादि भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

२९. सलेसे ण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! जहा आहारए ।

[२९ प्र] भगवन् ! सलेश्यी जीव, सलेश्यभाव से प्रथम है, अथवा अप्रथम ?
[२९ उ] गौतम ! (सू ९ मे उल्लिखित) आहारकजीव के समान (वह अप्रथम है ।)

३०. एव पुहत्तेण वि ।

[३०] बहुवचन की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए ।

---

१ भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ७३४

३१. कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा एवं चेव, नवर जस्स जा लेस्सा अत्थि ।

[३१] कृष्णलेश्यी से लेकर यावत् शुक्ललेश्यी तक के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेषता यह है कि जिस जीव के जो लेश्या हो, वही कहनी चाहिए ।

३२. अलेसे ण जीव-मणुस्स-सिद्धे जहा नोसण्णीनोअसण्णी (सु० २७) ।

[३२] अलेश्यीजीव, मनुष्य और सिद्ध के सम्बन्ध मे (सू २७ मे उल्लिखित) नो-सज्ञी-नो-असज्ञी के समान (प्रथम) कहना चाहिए ।

विवेचन—(५) लेश्याद्वार—प्रस्तुतद्वार मे (सू २९ से ३२ तक) मे सलेश्यी, कृष्णलेश्यी से लेकर शुक्ललेश्यी तक तथा अलेश्यी जीव, मनुष्य सिद्ध आदि के विषय मे क्रमश सलेश्यभाव एव अलेश्यभाव की अपेक्षा से अतिदेशपूर्वक कथन किया गया है ।

सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एवं मिश्रदृष्टि जीवो के विषय मे, एक-बहुवचन से सम्यग्दृष्टि-भावादि की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

३३. सम्मदिट्ठीए ण भते ! जीवे सम्मदिट्ठिभावेणं किं पढमे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे ।

[३३ प्र] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि जीव, सम्यग्दृष्टिभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम ?

[३३ उ.] गौतम ! वह कदाचित् प्रथम होता है, और कदाचित् अप्रथम ।

३४ एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए ।

[३४] इसी प्रकार एकेन्द्रियजीवो के सिवाय (नैरयिक से लेकर) यावत् वैमानिक तक समझना चाहिए ।

३५. सिद्धे पढमे, नो अपढमे ।

[३५] सिद्धजीव प्रथम है, अप्रथम नही ।

३६. पुहत्तिया जीवा पढमा वि, अपढमा वि ।

[३६] बहुवचन से सम्यग्दृष्टिजीव (सम्यग्दृष्टित्व की अपेक्षा से) प्रथम भी है, अप्रथम भी हैं ।

३७. एवं जाव वेमाणिया ।

[३७] इसी प्रकार (बहुवचन सम्बन्धी) यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए ।

३८. सिद्धा पढमा, नो अपढमा ।

[३८] बहुवचन से (सभी) सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नही ।

३९. मिच्छादिट्ठिए एगत्त-पुहत्तेणं जहा आहारगा (सु० ९-११) ।

[३९] मिथ्यादृष्टिजीव एकवचन और बहुवचन से, मिथ्यादृष्टिभाव की अपेक्षा से (सू ९-११ मे उल्लिखित) आहारक जीवो के समान (अप्रथम कहना चाहिए ।)

४०. सम्मामिच्छद्दिट्ठीए एगत्त-पुहत्तेणं जहा सम्मद्दिट्ठो (सु० ३३-३७), नवरं जस्स अत्थि सम्मामिच्छत्त ।

[४०] सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव के विषय मे एकवचन और बहुवचन से सम्यग्मिथ्यादृष्टि-भाव की अपेक्षा से (सू ३३-३७ मे उल्लिखित) सम्यग्दृष्टि के समान (कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि जिस जीव के सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो, (उसी के विषय मे यह आलापक कहना चाहिए ।)

विवेचव—(६) दृष्टिद्वार—प्रस्तुत द्वार मे (सू ३३ से ४० तक) एक या अनेक सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि के विषय मे सम्यग्दृष्टिभावादि की अपेक्षा से अतिदेश पूर्वक प्रथमत्व-अप्रथमत्व की प्ररूपणा की गई है ।

सभी सम्यग्दृष्टि जोव प्रथम अप्रथम किस अपेक्षा से ?—कोई सम्यग्दृष्टि जीव, जब, पहली बार सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है तब वह प्रथम है, और कोई सम्यग्दर्शन से गिर कर दूसरी-तीसरी बार पुन सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, तब वह अप्रथम है । एकेन्द्रिय जीवो को सम्यग्दर्शन प्राप्त नही होता, इसलिए एकेन्द्रियो के पाच दण्डक छोडकर शेष १६ दण्डको के विषय मे यहाँ कहा गया है ।

सिद्धजीव, सम्यग्दृष्टिभाव की अपेक्षा से प्रथम हैं, क्योकि सिद्धत्वानुगत सम्यक्त्व उन्हे मोक्षगमन के समय ही प्राप्त होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अप्रथम क्यो ?—मिथ्यादर्शन अनादि है, इसलिए सभी मिथ्यादृष्टि-जीव मिथ्यादृष्टिभाव की अपेक्षा से अप्रथम हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दृष्टिवत् क्यों ?—जो जीव पहली बार मिश्रदृष्टि प्राप्त करता है, उस अपेक्षा से वह प्रथम है, और मिश्रदृष्टि से गिरकर दूसरी तीसरी बार पुन मिश्रदृष्टि प्राप्त करता है, उस अपेक्षा से वह अप्रथम है । मिश्रदर्शन नारक आदि के होता है, इसलिए मिश्रदृष्टिवाले दण्डको के विषय मे ही यहाँ प्रथमत्व अप्रथमत्व का विचार किया गया है ।[1]

जीव, चौबीस दण्डक और सिद्धों में एकत्व-बहुत्व से संयतभाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

४१. सजए जीवे मणुस्से य एगत्त-पुहत्तेण जहा सम्मद्दिट्ठी (सु० ३३-३७) ।

[४१] सयत जीव और मनुष्य के विषय मे, एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा, सम्यग्दृष्टि जीव (की वक्तव्यता सू ३३-३७ मे उल्लिखित) के समान (जानना चाहिए ।)

४२. असंजए जहा आहारए (सु० ९-११) ।

[४२] असयतजीव के विषय मे [सू ९-११ मे उल्लिखित] आहारक जीव के समान (समझना चाहिए ।)

१. भगवतीसूत्र अ० वृत्ति, पत्र ७३४

४३. संजयासंजये जीवे पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्सा एगत्त-पुहत्तेण जहा सम्मद्दिट्ठी (सु० ३३-३७)।

[४३] संयतासंयत जीव, पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक और मनुष्य, (इन तीन पदों) में एकवचन और बहुवचन में (सू ३३-३७ में उल्लिखित) सम्यग्दृष्टि के समान (कदाचित प्रथम और कदाचित् अप्रथम) समझना चाहिए।)

४४. नोसंजए नोअसंजए नोसंजयासजये जीवे सिद्धे य एगत्त-पुहत्तेणं पढमे, नो अपढमे।

[४४] नो-संयत, नो-असंयत और नो-संयतासंयत जीव, तथा सिद्ध, एक वचन और बहुवचन से प्रथम हैं, अप्रथम नहीं।

विवेचन (७) संयतद्वार—प्रस्तुत द्वार में (सू ४१ से ४४ तक में) एक और अनेक संयत, असंयत, नोसंयत-नोअसंयत, नो-संयतासंयत जीव, मनुष्य और सिद्ध के विषय में अतिदेशपूर्वक प्रथमत्व-अप्रथमत्व का निरूपण किया गया है।

संयतपद में—जीवपद और मनुष्यपद दो ही पद आते हैं। सम्यग्दृष्टित्व की तरह संयतत्व भी प्रथम और अप्रथम दोनों है। प्रथम संयमप्राप्ति की अपेक्षा से प्रथम है और संयम से गिरकर अथवा अनेक बार मनुष्य जन्म में पुन पुन प्राप्त होने की अपेक्षा से अप्रथम है।

असंयत—एक जीव या बहुजीवों की अपेक्षा से अनादि होने के कारण आहारकवत् अप्रथम हैं।

संयतासंयत—जीवपद, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपद और मनुष्यपद में ही होता है, अत एक जीव या बहुजीवों की अपेक्षा से यह भी सम्यग्दृष्टिवत् देशविरति की प्राप्ति की दृष्टि से प्रथम भी है, अप्रथम भी।

नोसंयत-नो असंयत—जीव और सिद्ध होता है, यह भाव एक ही बार आता है, इसलिए प्रथम ही होता है।[1]

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धों में एकत्व-बहुत्व की दृष्टि से यथायोग्य सकषायादि भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण

४५. सकसायी कोहकसायी जाव लोभकसायी, एए एगत्त-पुत्तहेणं जहा—आहारए (सू० ९-११)।

[४५] सकषायी, क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी, ये सब एकवचन और बहुवचन से (सू ९-११ में उल्लिखित) आहारक के समान जानना चाहिए।

४६. अकसायी जीवे सिय पढमे, सिय अपढमे।

[४६] (एक) अकषायी जीव कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम होता है।

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्र ७३४-७३५

४७. एव मणुस्से वि ।

[४७] इसी प्रकार (एक अकषायी) मनुष्य भी (समझना चाहिए ।)

४८. सिद्धे पढमे, नो अपढमे ।

[४८] (अकषायी एक) सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नही ।

४९. पुहत्तेण जीवा मणुस्सा वि पढमा वि, अपढमा वि ।

[४९] बहुवचन से अकषायी जीव प्रथम भी हैं, अप्रथम भी ।

५०. सिद्धा पढमा, नो अपढमा ।

[५०] बहुवचन से अकषायी सिद्धजीव प्रथम है, अप्रथम नही ।

विवेचन—(८) कषायद्वार—प्रस्तुत द्वार मे (सू ४५ से ५० तक मे) एक अनेक सकषायी और अकषायी जीव, मनुष्य एव सिद्धो मे सकषायादि भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व अप्रथमत्व का निरूपण किया गया है ।

सकषायी अप्रथम क्यों ?—क्योकि सकषायित्व अनादि है, इसलिए यह आहारकवत् अप्रथम है ।

अकषायी जीव, मनुष्य और सिद्ध—एक हो या अनेक, यदि यथाख्यात चारित्री है, तो वे प्रथम है, क्योकि यह इन्हे पहली बार ही प्राप्त होता है, बार-बार नहीं । किन्तु अकषायी सिद्ध, एक हो या अनेक, वे प्रथम हैं, क्योकि सिद्धत्वानुगत अकषाय भाव प्रथम बार ही प्राप्त होता है ।[1]

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे एकवचन-बहुवचन से यथायोग्य ज्ञानि-अज्ञानिभाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्वनिरूपण

५१. णाणी एगत्त-पुहत्तेणं जहा सम्मद्दिट्ठी (सु० ३३-३७) ।

[५१] ज्ञानी जीव, एकवचन और बहुवचन से, (सू ३३-३७ मे उल्लिखित) सम्यग्दृष्टि के समान कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम होते है ।

५२. आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी एगत्त-पुहत्तेण एव चेव, नवरं जस्स ज अत्थि ।

[५२] आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् मन पर्यायज्ञानी, एकवचन और बहुवचन से, इसी प्रकार है । विशेष यह है जिस जीव के जो ज्ञान हो, वह कहना चाहिए ।

५३. केवलनाणी जीवे मणुस्से सिद्धे य एगत्त-पुहत्तेणं पढमा, नो अपढमा ।

[५३] केवलज्ञानी जीव, मनुष्य और सिद्ध, एकवचन और बहुवचन से, प्रथम है, अप्रथम नही ।

---

१ भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ७३५

५४. अन्नाणी, मतिअन्नाणी सुयअन्नाणी विभंगनाणी य एगत्त-पुहत्तेणं जहा आहारए (सु० ९-११)।

[५४] अज्ञानी जीव, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी, ये सब, एकवचन और बहुवचन से (सू. ९-११ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान (जानने चाहिए।)

विवेचन—(९) ज्ञानद्वार—प्रस्तुत द्वार मे (सू ५१ से ५८ तक मे) ज्ञानी, मतिज्ञानी आदि, तथा केवलज्ञानी जीव, मनुष्य और सिद्धो मे एकवचन और वहुवचन से, यथायोग्य प्रथमत्व—अप्रथमत्व का निरूपण किया गया है।

ज्ञानी आदि प्रथम—अप्रथम दोनों क्यो ?—ज्ञानद्वार मे समुच्चयज्ञानी या चार ज्ञान तक पृथक्-पृथक् या सम्मिलित ज्ञानधारक अकेवली प्रथमज्ञानप्राप्ति मे प्रथम होते हैं अन्यथा, पुन प्राप्ति में अप्रथम किन्तु केवली केवलज्ञान की अपेक्षा प्रथम हैं।

अज्ञानी प्रथम क्यों ?—अज्ञानी अथवा मति-श्रुत-विभगरूप-अज्ञानी आहारकजीव की तरह अप्रथम हैं, क्योकि अज्ञान अनादि रूप से और अनन्त वार प्राप्त होते रहते हैं।[1]

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धों में एकत्व-बहुत्व को लेकर यथायोग्य सयोगी-अयोगि-भाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्व कथन

५५. सयोगी, मणयोगी वइजोगी कायजोगी एगत्त-पुहत्तेणं जहा आहारए (सु० ९-११), नवरं जस्स जो जोगो अत्थि।

[५५] सयोगी मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव, एकवचन और बहुवचन से (सू. ९-११ में प्रतिपादित) आहारक जीवों के समान अप्रथम होते है। विशेष यह है कि जिस जीव के जो योग हो, वह कहना चाहिए।

५६. अजोगी जीव-मणुस्स-सिद्धा एगत्त-पुहत्तेण पढमा, नो अपढमा।

[५६] अयोगी जीव, मनुष्य और सिद्ध, एकवचन और वहुवचन से प्रथम होते हैं, अप्रथम नही।

विवेचन (१०) योगद्वार—प्रस्तुत द्वार मे (सू ५५-५६ मे) सभी सयोगी और सभी अयोगी जीवों के सयोगित्व-अयोगित्व की अपेक्षा से अप्रथमत्व एव प्रथमत्व का प्ररूपण किया गया है।

सयोगी अप्रथम और अयोगी प्रथम क्यो ?—योग सभी ससारी जीवो के होता ही है, फिर तीनो में से चाहे एक हो, दो हो तीनो हो, अत अप्रथम होते हैं, क्योकि ये अनादि काल मे, अनन्त वार प्राप्त हुए हैं, होगे और हैं। किन्तु अयोगी केवली जीव मनुष्य या सिद्ध की अयोगावस्था प्रथम वार ही प्राप्त होती है, अतएव उसे प्रथम कहा गया।[2]

---

१. भगवती, अ. वृत्ति, पत्र ७३५
२. भगवती, अ. वृत्ति, पत्र ७३५

जीव, चौवीस दण्डक एवं सिद्धों में एकवचन और बहुवचन से साकारोपयोग-अनाकारोपयोग भाव की अपेक्षा प्रथमत्व-अप्रथमत्वकथन

५७. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता एगत्त-पुहत्तेणं जहा अणाहारए (सु० १२-१७)।

[५७] साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त जीव, एकवचन और बहुवचन से (सू १२-१७ मे उल्लिखित) अनाहारक जीवो के समान है।

विवेचन—(११) उपयोगद्वार—प्रस्तुत द्वार (सू ५७) मे बताया गया है कि साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) तथा अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) वाले जीव, अनाहारक के समान, कथचित् प्रथम और कथचित् अप्रथम जानना चाहिए।

प्रथम और अप्रथम किस अपेक्षा से?—यह जीवपद मे सिद्ध जीव की अपेक्षा प्रथम और ससारी जीव की अपेक्षा अप्रथम हैं। अर्थात्—नैरयिक से लेकर वैमानिक दण्डक तक चौवीस दण्डकवर्ती ससारी जीवो मे ससारीजीवत्व की अपेक्षा से दोनो उपयोग प्रथम नही, अप्रथम हैं। सिद्धपद मे सिद्धत्व की अपेक्षा से सिद्धजीवो मे ये दोनो उपयोग प्रथम हैं, अप्रथम नही। क्योकि साकारोपयोग-अनाकारोपयोग-विशिष्ट सिद्धत्व की प्राप्ति प्रथम ही होती है।[1]

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धों मे एकवचन और बहुवचन से सवेद-अवेद भाव की अपेक्षा से यथायोग्य प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

५८. सवेदगो जाव नपुंसगवेदगो एगत्त-पुहत्तेणं जहा आहारए (सु० ९-११), नवरं जस्स जो वेदो अत्थि।

[५८] सवेदक यावत् नपुसकवेदक जीव, एकवचन और बहुवचन से, (सू ९-११ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान है। विशेष यह है कि, जिस जीव के जो वेद हो, (वह कहना चाहिए)।

५९. अवेदओ एगत्त-पुहत्तेण तिसु वि पएसु जहा अकसायी (सु० ४६-५०)।

[५९] एकवचन और बहुवचन से, अवेदक जीव, तीनो पदो अर्थात् जीव, मनुष्य और सिद्ध मे (सू ४६-५० मे उल्लिखित) अकषायी जीव के समान है।

विवेचन—(१२) वेद-द्वार—प्रस्तुत द्वार (सू ५८-५९) मे सवेदक एव अवेदक जीवो के वेदभाव-अवेदभाव की अपेक्षा से यथायोग्य प्रथमत्व-अप्रथमत्व की चर्चा की गई है।

सवेदी अप्रथम और अवेदी प्रथम क्यो?—ससारी जीवो के वेद अनादि होने से वे आहारक जीव के समान अप्रथम है, किन्तु विशेष यही है कि नारक आदि जिस जीव का नपुसक आदि वेद है, वह कहना चाहिए। अवेदक जीव, जीवपद और मनुष्यपद मे, अकषायी की तरह, कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है। सिद्धपद मे सिद्धत्व की अपेक्षा प्रथम ही है, अप्रथम नही।[2]

---

१ भगवती अ वृत्ति पत्र-७३५

२ भगवती, अ वृत्ति पत्र-७३५

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धों में एकवचन-वहुवचन से यथायोग्य सशरीर-अशरीर भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

६०. ससरीरी जहा आहारए (सु० ६-११)। एवं जाव कम्मगसरीरी, जस्स ज अत्थि सरीरं; नवरं आहारगसरीरी एगत्त-पुहत्तेणं जहा सम्मद्दिट्ठी (सु० ३३-३७)।

[६०] सशरीरी जीव, (सू ६-११ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान है। इसी प्रकार यावत् कार्मणशरीरी जीव के विषय मे भी जान लेना चाहिए। किन्तु आहारक-शरीरी के विषय मे, एकवचन और वहुवचन से, (सू. ३३-३७ मे उल्लिखित) सम्यग्दृष्टि जीव के समान कहना चाहिए।

६१. असरीरी जीवे सिद्धे एगत्त-पुहत्तेणं पढमा, नो अपढमा।

[६१] अशरीरी जीव और सिद्ध, एकवचन और वहुवचन से प्रथम है, अप्रथम नही।

विवेचन—(१३) शरीरद्वार—प्रस्तुत द्वार (सू ६०-६१) मे समस्त सशरीरी और अशरीरी जीवो के सशरीरत्व-अशरीरत्व की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व का निरूपण किया गया है।

सशरीरी जीव—आहारकशरीरी को छोडकर औदारिकादि शरीरधारी जीव को आहारक-जीववत् अप्रथम समझना चाहिए। आहारक शरीरी एक या अनेक जीव, सम्यग्दृष्टि के समान कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम है।

अशरीरी जीव—जीव और सिद्ध एकवचन से हो या वहुवचन से, प्रथम है, अप्रथम नही।[1]

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धों मे एकवचन और वहुवचन से, यथायोग्य पर्याप्ति भाव की अपेक्षा से प्रथमत्व-अप्रथमत्व निरूपण

६२. पंचहिं पज्जत्तीहिं, पंचहिं अपज्जत्तीहिं एगत्त-पुहत्तेण जहा आहारए (सु० ९-११)। नवर जस्स जा अत्थि, जाव वेमाणिया, नो पढमा, अपढमा।

[६२] पाच पर्याप्तियो से पर्याप्त और पाच अपर्याप्तियो से अपर्याप्त जीव, एकवचन और वहुवचन से, (सू ६-११ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान है। विशेष यह है कि जिसके जो पर्याप्ति हो, वह कहनी चाहिए। इस प्रकार नैरयिको से लेकर यावत् वैमानिको तक जानना चाहिए। अर्थात्—ये सव प्रथम नही, अप्रथम हैं।

विवेचन—(१४) पर्याप्तिद्वार—इस द्वार मे (सू ६२ मे) चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे पर्याप्तभाव-अपर्याप्तभाव की अपेक्षा से एकवचन-वहुवचन मे आहारकजीवो के अतिदेशपूर्वक प्रथमत्व अप्रथमत्व का यथायोग्य निरूपण किया गया है। अर्थात्—पर्याप्त और अपर्याप्तक सभी जीव अप्रथम हैं, प्रथम नही।[2]

---

१ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७३५

२ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७३५

प्रथम-अप्रथम-लक्षण निरूपण

६३. इमा लक्खणगाहा—

जो जेण पत्तपुव्वो भावो सो तेणऽपढमओ होति ।
सेसेसु होइ पढमो अपत्तपुव्वेसु भावेसु ।।१।।

[६३] यह लक्षण गाथा है—

(गाथार्थ—) जिस जीव को जो भाव (अवस्था) पूर्व (पहले) से प्राप्त है, (तथा जो अनादिकाल से है), उस भाव की अपेक्षा से वह जीव 'अप्रथम' है, किन्तु जिन्हे जो भाव पहले कभी प्राप्त नही हुआ है, अर्थात्—जो भाव प्रथम बार ही प्राप्त हुआ है, उस भाव की अपेक्षा से वह जीव प्रथम कहलाता है ।

विवेचन—सेसेसु : भावार्थ—यहाँ 'शेषेषु का भावार्थ है—जिन्हे जो भाव पहले कभी प्राप्त नही हुआ है, अर्थात्—जो भाव जिन्हे प्रथम बार ही प्राप्त हुआ है ।'[१४]

जीव, चौवीस दण्डक और सिद्धो मे, पूर्वोक्त चौदह द्वारों के माध्यम से जीवभावादि की अपेक्षा से, एकवचन-बहुवचन से यथायोग्य चरमत्व-अचरमत्व निरूपण

६४. जीवे ण भते ! जीवभावेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

गोयमा ! नो चरिमे, अचरिमे ।

[६४ प्र] भगवन् ! जीव, जीवभाव (जीवत्व) की अपेक्षा से चरम है या अचरम ?
[६४ उ] गौतम ! चरम नही, अचरम है ।

६५. नेरतिए णं भते ! नेरतियभावेणं० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे ।

[६५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, नैरयिकभाव की अपेक्षा से चरम है या अचरम ?
[६५ उ] गौतम ! वह (नैरयिक भाव से) कदाचित् चरम है, और कदाचित् अचरम है ।

६६. एवं जाव वेमाणिए ।

[६६] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

६७. सिद्धे जहा जीवे ।

[६७] सिद्ध का कथन जीव के समान जानना चाहिए ।

६८. जीवा णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो चरिमा, अचरिमा ।

[६८ प्र] अनेक जीवो के विषय मे चरम-अचरम-सम्बन्धी प्रश्न ?
[६८ उ] गौतम ! वे चरम नही, अचरम है ।

---

१४ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७३५

६९. नेरतिया चरिमा वि, अचरिमा वि ।

[६९] नैरयिकजीव, नैरयिकभाव से, चरम भी है, अचरम भी है ।

७०. एवं जाव वेमाणिया ।

[७०] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझना चाहिए ।

७१. सिद्धा जहा जीवा ।

[७१] सिद्धों का कथन जीवों के समान है ।

७२. आहारए सव्वत्थ एगत्तेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे । पुहत्तेण चरिमा वि, अचरिमा वि ।

[७२] आहारकजीव सर्वत्र एकवचन से कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम होता है । बहुवचन मे आहारक चरम भी होते है और अचरम भी ।

७३. अणाहारओ जीवो सिद्धो य; एगत्तेण वि पुहत्तेण वि नो चरिमा, अचरिमा ।

[७३] अनाहारक जीव और सिद्ध, एकवचन और बहुवचन से भी चरम नही है, अचरम है ।

७४ सेसट्ठाणेसु एगत्त-पुहत्तेणं जहा आहारओ (सु० ७२) ।

[७४] शेष (नैरयिक आदि) स्थानो मे (अनाहारक) एकवचन और बहुवचन से, (सू ७२ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान (कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम) जानना चाहिए ।

७५. भवसिद्धीओ जीवपदे एगत्त-पुहत्तेणं चरिमे, नो अचरिमे ।

[७५] भवसिद्धकजीव, जीवपद मे, एकवचन और बहुवचन से चरम है, अचरम नही ।

७६. सेसट्ठाणेसु जहा आहारओ ।

[७६] शेष स्थानो मे आहारक के समान है ।

७७. अभवसिद्धीओ सव्वत्थ एगत्त-पुहत्तेणं नो चरिमे, अचरिमे ।

[७७] अभवसिद्धिक सर्वत्र एकवचन और बहुवचन से, चरम नही, अचरम है ।

७८. नोभवसिद्धीय-नोअभवसिद्धीयजीवा सिद्धा य एगत्त-पुहत्तेण जहा अभवसिद्धीओ ।

[७८] नो-भवसिद्धिक—नो अभवसिद्धिक जीव और सिद्ध, एक वचन और बहुवचन से अभवसिद्धिक के समान है ।

७९. सण्णी जहा आहारओ (सु० ७२) ।

[७९] सञ्ज्ञी जीव (सू, ७२ मे उल्लिखित) आहारक जीव के समान हैं ।

८०. एवं असण्णी वि ।

[८०] इसी प्रकार असञ्ज्ञी भी (आहारक के समान है ।)

८१. नोसन्नीनोअसन्नी जीवपदे सिद्धपदे य अचरिमो, मणुस्सपदे चरिमो, एगत्त-पुहत्तेण ।

[८१] नो-सज्ञी-नो-असज्ञी जीवपद और सिद्धपद मे अचरम है, मनुष्यपद मे, एकवचन और बहुवचन से चरम है ।

८२. सलेस्सो जाव सुक्कलेस्सो जहा आहारओ (सु० ७२), नवरं जस्स जा अत्थि ।

[८२] सलेश्यी, यावत् शुक्ललेश्यी की वक्तव्यता आहारकजीव (सू ७२ मे वर्णित) के समान है । विशेष यह है कि जिसके जो लेश्या हो, वही कहनी चाहिए ।

८३ अलेस्सो जहा नोसण्णी-नोअसण्णी ।

[८३] अलेश्यी, नोसज्ञी-नोअसज्ञी के समान है ।

८४. सम्मद्दिट्ठी जहा अणाहारओ (सु० ७३-७४) ।

[८४] सम्यग्दृष्टि, (सू ७३-७४ मे उल्लिखित) अनाहारक के समान है ।

८५. मिच्छादिट्ठी जहा आहारओ (सु० ७२) ।

[८५] मिथ्यादृष्टि, (सू ७२ मे उल्लिखित) आहारक के समान है ।

८६. सम्मामिच्छद्दिट्ठी एगिंदिय-विगलिंदियवज्ज सिय चरिमे, सिय अचरिमे । पुहत्तेणं चरिमा वि, अचरिमा वि ।

[८६] सम्यग्-मिथ्यादृष्टि, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोडकर (एकवचन से) कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम हैं । बहुवचन से वे चरम भी है और अचरम भी ।

८७. संजओ जीवो मणुस्सो य जहा आहारओ (सु० ७२) ।

[८७] संयत जीव और मनुष्य, (सू ७२ मे उल्लिखित) आहारक के समान हैं ।

८८. असंजतो वि तहेव ।

[८७] असयत भी उसी प्रकार है ।

८९. संजयासंजतो वि तहेव; नवरं जस्स जं अत्थि ।

[८८] सयतासयत भी उसी प्रकार है । विशेष यह है कि जिसका जो भाव हो, वह कहना चाहिए ।

९०. नोसंजय-नोअसंजय नोसंजयासंजओ जहा नोभवसिद्धीय-नोअभवसिद्धीयो (सु० ७८) ।

[९०] नो-सयत-नोअसयत-नोसयतासयत, नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक के समान (सू ७८ के अनुसार) जानना चाहिए ।

९१. सकसायी जाव लोभकसायी सव्वट्ठाणेसु जहा आहारओ (सु० ८२) ।

[९१] सकषायी यावत् लोभकषायी, इन सभी स्थानो मे, आहारक के समान (सू ७२ के अनुसार) है ।

९२. अकसायी जीवपए सिद्धे य नो चरिमो, अचरिमो। मणुस्सपदे सिय चरिमो, सिय अचरिमो।

[९२] अकषायी, जीवपद और सिद्धपद में, चरम नहीं, अचरम है। मनुष्यपद में, कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम होता है।

९३. [१] णाणी जहा सम्मद्दिट्ठी (सु० ८४) सव्वत्थ।

[९३-१] ज्ञानी सर्वत्र (सू ८४ में उल्लिखित) सम्यग्दृष्टि के समान है।

[२] आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी जहा आहारओ (सू० ७२), जस्स जं अत्थि।

[९३-२] आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् मन पर्यवज्ञानी (सू. ७२ में उल्लिखित) आहारक के समान हैं। विशेष यह कि जिसके जो ज्ञान हो, वह कहना चाहिए।

[३] केवलनाणी जहा नोसण्णी-नोअसण्णी (सु० ८१)।

[९३-३] केवलज्ञानी (सू ८१ के अनुसार) नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी के समान है।

९४. अण्णाणी जाव विभंगनाणी जहा आहारओ (सु० ७२)।

[९४] अज्ञानी, यावत् विभंगज्ञानी, (सू ७२ में उल्लिखित) आहारक के समान है।

९५. सजोगी जाव कायजोगी जहा आहारओ (सु० ७२), जस्स जो जोगो अत्थि।

[९५] सयोगी, यावत् काययोगी, (सू ७२ के अनुसार) आहारक के समान है। विशेष—जिसके जो योग हो, वह कहना चाहिए।

९६. अजोगी जहा नोसण्णी-नोअसण्णी (सु० ८१)।

[९६] अयोगी, (सू. ८१ में उल्लिखित) नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी के समान है।

९७. सागारोवउत्तो अणागारोवउत्तो य जहा अणाहारओ (सु० ७३-७४)।

[९७] साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी (सू. ७३-७४ में उल्लिखित) अनाहारक के समान है।

९८. सवेदओ जाव नपुंसगवेदओ जहा आहारओ (सु० ७२)।

[९८] सवेदक, यावत् नपुंसकवेदक (सू. ७२ में उल्लिखित) आहारक के समान है।

९९. अवेदओ जहा अकसायी (सु० ९२)।

[९९] अवेदक (सू. ९२ में उल्लिखित) अकषायी के समान है।

१००. ससरीरी जाव कम्मगसरीरी जहा आहारओ (सु० ७२), नवरं जस्स जं अत्थि।

[१००] सशरीरी यावत् कार्मणशरीरी, (सू. ७२ में उल्लिखित) आहारक के समान है। विशेष यह है कि जिसके जो शरीर हो, वह कहना चाहिए।

१०१. असरीरी जहा नोभवसिद्धीय-नोअभवसिद्धीओ (सु० ७८)।

[१०१] अशरीरी के विषय मे (सू. ७८ मे उल्लिखित) नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक के समान (कहना चाहिए।)

१०२. पंचहिं पज्जत्तीहिं पचहिं अपज्जत्तीहिं जहा आहारओ (सु० ७२)। सव्वत्थ एगत्त-पुहत्तेणं दडगा भाणियव्वा।

[१०२] पाच पर्याप्तियो से पर्याप्तक और पाच अपर्याप्तियो से अपर्याप्तक के विषय मे (सू ७२ मे उल्लिखित) आहारक के समान कहना चाहिए।

सर्वत्र (ये पूर्वोक्त चौदह ही) दण्डक, एकवचन और बहुवचन से कहने चाहिए।

विवेचन—चरम-अचरम के चौदह द्वार—पूर्वोक्त १४ द्वारो के माध्यम से, उस-उस भाव की अपेक्षा से, एकवचन और बहुवचन से, चरमत्व- अचरमत्व का प्रतिपादन किया गया है।

चरम-अचरम का पारिभाषिक अर्थ—जिसका कभी अन्त होता है, वह 'चरम' कहलाता है, और जिसका कभी अन्त नही होता, वह अचरम कहलाता है। जैसे—जीवत्वपर्याय की अपेक्षा से जीव का कभी अन्त नही होता, इसलिए वह चरम नही, अचरम है।

नैरयिकादि उस-उस भाव की अपेक्षा चरम-अचरम दोनो—जो नैरयिक, नरकगति से निकलकर फिर नैरयिकभाव से नरक मे न जाए और मोक्ष चला जाए, वह नैरयिक भाव का सदा के लिए अन्त कर देता है, वह 'चरम' कहलाता है, इससे विपरीत अचरम। इसी प्रकार वैमानिक तक २४ दण्डको मे चरम-अचरम दोनो समझने चाहिए।

सिद्धत्व—का कभी अन्त (विनाश) नही होता, इसलिए वह 'अचरम' है।

आहारक आदि सभी पदो मे जीव कदाचित् चरम होता है, और कदाचित् अचरम। जो जीव मोक्ष चला जाता है, वह चरम है, उससे भिन्न आहारकादि अचरम हैं। अनाहारकत्व जीव और सिद्ध दोनो पदो मे होता है।

भवसिद्धिकादि मे चरमाचरमत्व-कथन—'भव्य अवश्यमेव मोक्ष जाता है, यह सिद्धान्तवचन है। मोक्ष प्राप्त होने पर भवसिद्धिकत्व (भव्यत्व) का अन्त हो जाता है। अत भव्यत्व की अपेक्षा से भवसिद्धिक चरम है। अभवसिद्धिक का अन्त नही होता, क्योकि वह कभी मोक्ष नही जाता, इसलिए अभवसिद्धिक अचरम है। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक सिद्ध होते है, उनमे सिद्धत्व-पर्याय का कभी अन्त नही होता, इसलिए अभवसिद्धिकवत् वे अचरम है।

सम्यग्दृष्टि आदि मे चरमाचरमत्व-कथन—सम्यग्दर्शन जीव और सिद्ध दोनो पदो मे होता है। इनमे से जीव अचरम है, क्योकि वह सम्यग्दर्शन से गिर कर पुन सम्यग्दर्शन को अवश्य प्राप्त करता है, किन्तु सिद्ध चरम है, क्योकि वे सम्यग्दर्शन से कभी गिरते ही नही।

जो सम्यग्दृष्टि नैरयिक आदि, नारकत्वादि के साथ सम्यग्दर्शन को पुन प्राप्त नही करेगे, वे चरम हैं और उनसे भिन्न अचरम है। मिथ्यादृष्टिजीव, आहारक की तरह कदाचित् चरम और

कदाचित् अचरम होते हैं। जो मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि का सदा के लिए अन्त करके मोक्ष मे चले जाते हैं वे मिथ्यादृष्टित्व की अपेक्षा से चरम है और उनसे भिन्न अचरम है। मिथ्यादृष्टि नैरयिक आदि जो मिथ्यात्वसहित नैरयिकादिपन पुन प्राप्त नही करेंगे, वे चरम है, उनसे भिन्न अचरम हैं। मिश्रदृष्टि की वक्तव्यता मे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय का कथन नही करना चाहिए, क्योकि ये दोनो कभी मिश्रदृष्टि नही होते। सिद्धान्तानुसार एकेन्द्रिय कदापि सम्यक्त्वी—यहाँ तक कि सास्वादन सम्यक्त्वी भी नही होते। इसलिए सम्यग्दृष्टि की वक्तव्यता मे एकेन्द्रिय का कथन नही करना चाहिए। इसी प्रकार जिसमे जो पर्याय सम्भव न हो, उसमे उसका कथन नही करना चाहिए। यथा—सज्ञीपद मे एकेन्द्रिय का और असज्ञीपद मे ज्योतिष्क आदि का कथन करना सगत नही है।

संज्ञी, असंज्ञी, नोसज्ञी-नोअसंज्ञी में चरमाचरमत्व—सज्ञी समुच्चयजीव १६ दण्डको मे, असज्ञी समुच्चयजीव २२ दण्डको मे एक जीव की अपेक्षा कदाचित् चरम कदाचित् अचरम हैं। बहुजीवापेक्षया चरम भी हैं, अचरम भी। नोसज्ञी-नोअसज्ञी समुच्चयजीव और सिद्ध एक जीवापेक्षया अथवा बहुजीवापेक्षया अचरम हैं। मनुष्य (केवली की अपेक्षा से) एकवचन-बहुवचन से चरम हैं, अचरम नही।

लेश्या की अपेक्षा से चरमाचरमत्व-कथन—सलेश्यी समुच्चयजीव २४ दण्डक, कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी समुच्चयजीव २२ दण्डक, तेजोलेश्यी समुच्चयजीव १८ दण्डक, पद्मलेश्यी शुक्ललेश्यी समुच्चयजीव ३ दण्डक, एकजीवापेक्षया कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है। बहुजीवापेक्षया चरम भी हैं, अचरम भी है। अलेश्यी, समुच्चयजीव और सिद्ध, एकजीवापेक्षया-बहुजीवापेक्षया अचरम हैं, चरम नही। अलेश्यी मनुष्य, एकजीव-बहुजीवापेक्षया चरम हैं, अचरम नही।

सयतादि मे चरमाचरमत्वकथन—सयत समुच्चयजीव और मनुष्य ये दोनो चरम और अचरम दोनो होते है। जिसको पुन सयम (सयतत्व) प्राप्त नही होता, वह चरम है, उससे भिन्न अचरम है। समुच्चयजीवो मे भी मनुष्य को सयम प्राप्त होता है, अन्य किसी जीव को नही। असयती समुच्चयजीव (२४ दण्डको मे) सयतत्व की अपेक्षा से एक जीव की दृष्टि से कदाचित् चरम, कदाचित् अचरम होता है। बहुजीवो की दृष्टि से चरम भी हैं, अचरम भी। सयतासयतत्व (देशविरतिपन), जीव, पचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य, इन तीनो मे ही होता है। इसलिए सयतासयत का कथन भी इसी प्रकार है। नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत (सिद्ध) अचरम होते हैं, क्योकि सिद्धत्व नित्य होता है, इसलिए वह चरम नही होता।

कषाय की अपेक्षा से चरमाचरमत्व—सकषायी भेदसहित जीवादि स्थानो मे कदाचित् चरम होते है, कदाचित् अचरम। जो जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे, वे चरम है शेष अचरम हैं। नैरयिकादि जो नारकादियुक्त सकषायित्व को पुन. प्राप्त नही करेंगे, वे चरम हैं, शेष अचरम है। अकषायी (उपशान्तमोहादि) तीन होते है—

समुच्चयजीव, मनुष्य और सिद्ध। अकषायी जीव और सिद्ध, एकजीव-बहुजीवापेक्षया अचरम है, चरम नही; क्योकि जीव का अकषायित्व से प्रतिपतित होने पर भी मोक्ष अवश्यम्भावी है, सिद्ध

कभी प्रतिपातित नही होता । अकषायिभाव से युक्त मनुष्यत्व को जो मनुष्य पुन प्राप्त नही करेगा, वह चरम है, जो प्राप्त करेगा, वह अचरम है ।

ज्ञानद्वार मे चरमाचरमत्व-कथन—ज्ञानी, जीव और सिद्ध सम्यग्दृष्टि के समान अचरम है, क्योकि जीव ज्ञानावस्था से गिर भी जाए तो भी वह उसे पुन अवश्य प्राप्त कर लेता है, अतः अचरम है । सिद्ध सदा ज्ञानावस्था मे ही रहते है, इसलिए अचरम है । शेष जिन जीवो को ज्ञानयुक्त नारकत्वादि की पुन. प्राप्ति नही होगी, वे चरम है शेष अचरम है । सर्वत्र से यहाँ तात्पर्य है, जिन जीवो मे 'सम्यग्ज्ञान' सम्भव है, उन सब मे अर्थात्—एकेन्द्रिय को छोडकर शेप जीवादि पदो मे । जो जीव आभिनिबोधिक आदि ज्ञान को केवलज्ञान हो जाने के कारण पुन प्राप्न नही करेंगे, वे चरम है, शेष अचरम हैं । केवलज्ञानी अचरम होते हैं । अज्ञानी, मतिअज्ञानी आदि कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम हैं, क्योकि जो जीव पुन अज्ञान को प्राप्त नही करेगा, वह चरम है, जो अभव्यजीव ज्ञान प्राप्त नही करेगा, वह अचरम है ।

आहारक का अतिदेश—जहाँ-जहाँ आहारक का अतिदेश किया गया है, वहाँ-वहाँ 'कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम हैं', यो कहना चाहिए ।[1]

चरम-अचरम-लक्षण-निरूपण

१०३. इमा लक्खणगाहा—

जो ज पाविहिति पुणो भावं सो तेण अचरिमो होइ ।
अच्चंतवियोगो जस्स जेण भावेण सो चरिमो ॥१॥

सेव भते ! सेव भते ! ० जाव विहरति ।

अट्ठारसमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥१८-१॥

[१०३] यह लक्षण-गाथा (चरम-अचरमस्वरूप प्रतिपादक) है—

[गाथार्थ—]जो जीव, जिस भाव को पुन प्राप्त करेगा, वह जीव उस भाव की अपेक्षा से 'अचरम' होता है, और जिस जीव का जिस भाव के साथ सर्वथा वियोग हो जाता है, वह जीव उस भाव की अपेक्षा 'चरम' होता है ॥१॥

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है'—कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—सू १०३ मे चरम और अचरम के लक्षण को स्पष्ट करने वाली गाथा प्रस्तुत की गई है । गाथा का भावार्थ स्पष्ट है ।

॥ अठारहवाँ शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१. भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ७३६-७३७

बीओ उद्देसओ : 'विसाह'

द्वितीय उद्देशक : 'विशाख'

विशाखा नगरी में भगवान् का समवसरण

१. तेण कालेणं तेण समयेण विसाहा नामं नगरी होत्था। वण्णओ। बहुपुत्तिए चेतिए। वण्णओ। सामी समोसढे जाव पज्जुवासति।

[१] उस काल एव उस समय मे विशाखा नाम की नगरी थी। उसका वर्णन औपपातिक-सूत्र के नगरीवर्णन के समान जानना चाहिए। वहाँ बहुपुत्रिक नामक चैत्य (उद्यान) था। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए। एक बार वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

विवेचन—विशाखा नगरी विशाखा नगरी आज कहाँ है? यह निश्चित रूप से कहा नही जा सकता। आज आन्ध्रप्रदेश मे समुद्रतट पर 'विशाखापट्टनम्' नगर बसा हुआ है। दूसरा 'बसाढ' है, जो उत्तरबिहार मे मुजफ्फरपुर के निकट है। विशाखानगरी मे भगवन् का पदार्पण हुआ था। वही इस उद्देशक मे वर्णित शक्रेन्द्र के पूर्वभव के सम्बन्ध मे सवाद हुआ था।

शक्रेन्द्र का भगवान् के सान्निध्य मे आगमन और नाट्य प्रदर्शित करके पुनः प्रतिगमन

२ तेणं कालेण तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरदरे एव जहा सोलसमसए वितिए उद्देसए (स० १६ उ० २ सु० ८) तहेव दिव्वेण जाणविमाणेण आगतो; नवर एत्थ आभियोगा वि अत्थि, जाव बत्तीसतिविहं नट्टविहिं उवदसेति, उव० २ जाव पडिगते।

[२] उस काल और उस समय मे देवेन्द्र देवराज शक्र, वज्रपाणि, पुरन्दर इत्यादि सोलहवें शतक के द्वितीय उद्देशक (सू ८) मे शकेन्द्र का जैसा वर्णन है, उस प्रकार से यावत् वह दिव्य यान-विमान मे बैठ कर वहाँ आया। विशेष बात यह थी, यहाँ आभियोगिक देव भी साथ थे, यावत् शकेन्द्र ने बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधि प्रदर्शित की। तत्पश्चात् वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे लौट गया।

विवेचन—सोलहवें शतक के द्वितीय उद्देशक का अतिदेश—सोलहवे शतक के द्वितीय उद्देशक सू ८ मे शकेन्द्र का वर्णन है। वहाँ शकेन्द्र जिस तैयारी के साथ, दलबल सहित सजधज कर श्रमण *भगवान् महावीर के समीप आया था,* उसी प्रकार से वह यहाँ (विशाखा मे भगवान् के समीप) आया। अन्तर इतना ही है कि वहाँ वह आभियोगिक देवो को साथ लेकर नही आया था, यहाँ आभियोगिक देव भी उसके साथ आए थे।

यान-विमान—वैमानिक देवो के विमान दो प्रकार के होते हैं, एक तो उनके सपरिवार आवास करने का होता है, दूसरा 'सवारी के काम मे आने वाला विमान होता है। यहाँ दूसरे प्रकार के विमान का उल्लेख है।

नाट्यविधि—नाट्यकला के बत्तीस प्रकारो का विधि-विधानपूर्वक प्रदर्शन।

गौतम द्वारा शक्रेन्द्र के पूर्वभव से सम्बन्धित प्रश्न, भगवान् द्वारा कार्तिक श्रेष्ठी के रूप में परिचयात्मक उत्तर

३. [१] 'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं जाव एव वदासी—जहा ततियसते ईसाणस्स (स० ३ उ० १ सु० ३४-३५) तहेव कूडागारदिट्ठंतो, तहेव पुव्वभवपुच्छा जाव अभिसमन्नागया? 'गोयमा' ई समणे भगवं महावीरे भगव गोतम एवं वदासी—"एवं खलु गोयमा !"

"तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था। वण्णओ। सहस्संबवणे उज्जाणे। वण्णओ।"

"तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे कत्तिए नामं सेट्ठी परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए णेगमपढमासणिए, णेगमट्ठसहस्सस्स बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कोडुंबेसु य एवं जहा रायपसेणइज्जे[1] चित्ते जाव चक्खुभूते, णेगमट्ठसहस्सस्स सयस्स य कुडुंबस्स आहेवच्च जाव करेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरति।

[३ प्र] 'भगवन् !' इस प्रकार (सम्बोधित कर) भगवान् गौतम ने, श्रमण भगवान् महावीर से पूछा—जिस प्रकार तृतीय शतक (के प्रथम उद्देशक के सू ३४-३५) मे ईशानेन्द्र के वर्णन में कूटागारशाला के दृष्टान्त के विषय मे तथा (उसके) पूर्वभव के सम्बन्ध मे प्रश्न किया है, उसी प्रकार यहाँ भी; यावत् 'यह ऋद्धि कैसे सम्प्राप्त हुई हैं',—तक (प्रश्न का उल्लेख करना चाहिए।)

[३ उ.] 'गौतम!' इस प्रकार सम्बोधन कर श्रमण भगवान् महावीर ने, भगवान् गौतमस्वामी से इस प्रकार कहा—

हे गौतम! ऐसा है कि उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे हस्तिनापुर नामक नगर था। उसका वर्णन (कहना चाहिए)। वहाँ सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। उसका वर्णन (करना चाहिए।)।

उस हस्तिनापुर नगर मे कार्तिक नाम का एक श्रेष्ठी (सेठ) रहता था। जो धनाढ्य यावत् किसी से पराभव न पाने (नही दबने) वाला था। उसे वणिको मे अग्रस्थान प्राप्त था। वह उन एक हजार आठ व्यापारियों (नैगमो=वणिकों) के बहुत-से कार्यों मे, कारणों मे और कौटुम्बिक व्यवहारो मे पूछने योग्य था, जिस प्रकार राजप्रसेनीय सूत्र मे चित्त सारथि का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत् चक्षुभूत था, यहाँ तक जानना चाहिए। वह कार्तिक श्रेष्ठी, एक हजार आठ व्यापारियो का आधिपत्य करता हुआ, यावत् पालन करता हुआ रहता था। वह जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता यावत् श्रमणोपासक था।

---

१. देखिए रायप्पसेणइय-सुत्तं (गुर्जरग्रन्थ०) कण्डिका १४५, पृ २७७-२७८

विवेचन—कार्तिक सेठ का सामान्य परिचय—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान् ने कार्तिक सेठ का सामान्य परिचय देते हुए कहा कि वह हस्तिनापुरनिवासी था, वह आढ्य, दीप्त, वित्त (विज्ञात या विख्यात) यावत् अपराभूत यानी किसी से दबने वाला नही था। वह नगर के १००८ व्यापारियो मे अग्रगण्य था, मेढी (केन्द्रीय स्तम्भ), प्रमाण, आधार और आलम्बन यावत् चक्षुरूप (नेता) था।

'कज्जेसु' इत्यादि शब्दों का भावार्थ—कज्जेसु—गृहनिर्माण तथा स्वजनसम्मान आदि कार्यों में, **कारणेसु**—अभीष्ट बातो के कारणो मे, कृषि, पशुपालन, वाणिज्यादि अभीष्ट वस्तुओ के विषय मे। **कोडुंबेसु**—कौटुम्बिक मनुष्यो के विषय मे।

राजप्रश्नीय पाठ का स्पष्टीकरण—मंतेसु—मन्त्रणाएँ करने या विचारविमर्श करने में। **गुज्झेसु**-लज्जायोग्य गुप्त या गोपनीय बातो के विषय मे। **रहस्सेसु**—सामाजिक या कौटुम्बिक रहस्यमय या एकान्त के योग्य बातो मे। **ववहारेसु**—पारस्परिक व्यवहारो मे, लेनदेन मे। **निच्छएसु**—निश्चयो मे—कई बातो का निर्णय करने मे।

आपुच्छणिज्जे—एक बार पूछने योग्य। **पडिपुच्छणिज्जे**—बारबार पूछने योग्य।

मेढी : आशय—जिस प्रकार भूसे मे से धान निकालने के लिए खलिहान के बीच मे एक स्तम्भ गाडा जाता है, जिसको केन्द्र मे रख कर उसके चारो ओर धान्य को गाहने के लिए बैल चक्कर लगाते है, इसी प्रकार जिसको केन्द्र मे रख कर सभी कुटुम्बीजन और व्यापारीगण, विवेचना करते थे, विचारविमर्श करते थे।

पमाणं—प्रत्यक्षादि प्रमाणवत् उसकी बात अविरुद्ध (प्रमाणित) होती थी। इसलिए उसको प्रमाणभूत मान कर उचित कार्य मे प्रवृत्ति या अनुचित से निवृत्ति की जाती थी।

आहारे : आधार—जैसे आधार, आधेय का उपकारक होता है, वैसे ही वह आधार लेने वाले लोगो के सर्व कार्यों मे उपकारी होता था।

आलबण—आलम्बन सहारा,—जैसे रस्सी आदि गिरते हुए के लिए आलम्बन (सहारा) होती है, वैसे ही वह विपत्ति मे या पतन के गड्ढे मे पडते हुए या पडे हुए के लिए आलम्बन था।

चक्खू : चक्षु—नेत्रवत् पथ-प्रदर्शक। जैसे नेत्र विविध कार्यों को या मार्ग को दिखाते है, वैसे ही वह प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप विविध कार्यों मे पथ-प्रदर्शक था।

चक्खुभूए इत्यादि : अभिप्राय—मेढी आदि पदो के आगे लगाया हुआ 'भूत' शब्द उपमार्थक है। यानी मेढी के तुल्य यावत् चक्षु के समान।[1]

णेगमट्ठसहस्सस्स—एक हजार आठ नैगमो अर्थात् वणिको का।

मुनिसुव्रतस्वामी से धर्मकथा-श्रवण और प्रव्रज्या ग्रहण की इच्छा

३. [२] **तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वये अरहा आदिगरे जहा सोलसमसए (स० १६ उ० ५ सु० १६) तहेव जाव समोसढे जाव परिसा पज्जुवासति।**

---

१. भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ७३९

"तए ण से कत्तिए सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ० एव जहा एक्कारसमसते सुदंसणे (स० ११ उ० ११ सु० ४) तहेव निग्गम्रो जाव पज्जुवासति ।"

"तए णं मुणिसुव्वए अरहा कत्तियस्स सेट्ठिस्स धम्मकहा जाव परिसा पडिगता ।"

"तए णं से कत्तिए सेट्ठी मुणिसुव्वय० जाव निसम्म हट्ठतुट्ठ० उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ मुणिसुव्वयं जाव एवं वदासी—'एवमेयं भंते ! जाव से जहेय तुब्भे वदह । जं नवरं देवाणुप्पिया ! नेगमट्ठसहस्सं आपुच्छामि, जेट्ठपुत्तं च कुडुंबे ठावेमि, तए णं अह देवाणुप्पियाण अतियं पव्वयामि' । 'अहासुह जाव मा पडिबंधं' ।"

[३-२] उस काल उस समय धर्म की आदि करने वाले अर्हत् श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर वहाँ (हस्तिनापुर मे) पधारे, यावत् समवसरण लगा । इसका समग्र वर्णन जैसे सोलहवें शतक (के पचम उद्देशक सू १६) मे है; उसी प्रकार (यहाँ समझना,) यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी ।

उसके पश्चात् वह कार्तिक श्रेष्ठी भगवान् के पदार्पण का वृत्तान्त सुन कर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, इत्यादि । जिस प्रकार ग्यारहवें शतक (उ ११ के सू ४) मे सुदर्शन-श्रेष्ठी का वन्दनार्थ-निर्गमन का वर्णन है, उसी प्रकार वह भी वन्दन के लिए निकला, यावत् पर्युपासना करने लगा ।

तदनन्तर तीर्थंकर मुनिसुव्रत अर्हत् ने कार्तिक सेठ (तथा उस विशाल परिषद्) को धर्मकथा कही, यावत् परिषद् लौट गई ।

कार्तिक सेठ, भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी से धर्म सुन कर यावत् अवधारण करके अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट हुआ, फिर उसने खडे होकर यावत् सविनय इस प्रकार कहा—'भगवन् ! जैसा आपने कहा, वैसा ही यावत् है । हे देवानुप्रिय प्रभो ! विशेष यह कहना है, मैं एक हजार आठ व्यापारी मित्रो से पूछूगा और अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौपूगा और तब मैं आप देवानुप्रिय के पास प्रव्रजित होऊँगा । (भगवान्—) देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वैसा करो, किन्तु (इस कार्य मे) विलम्ब मत करो ।

विवेचन—कार्तिक श्रेष्ठी द्वारा धर्मकथाश्रवण और प्रव्रज्याग्रहण की इच्छा—प्रस्तुत परिच्छेद मे कार्तिक सेठ द्वारा मुनिसुव्रत तीर्थंकर से धर्मश्रवण का अतिदेशपूर्वक वर्णन है । उसके मन मे भगवान् के निकट दीक्षा ग्रहण करने का विचार हुआ, उसका निरूपण है ।

व्यापारियो से पूछने का आशय—दीक्षा-ग्रहण से पूर्व कार्तिक सेठ अपना कौटुम्बिक भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपे और कौटुम्बिक जनो से अनुमति ले, यह तो उचित था, किन्तु अपने एक हजार आठ व्यापारिक मित्रो से पूछे, इसके पीछे आशय यह है कि वह इन सभी का अत्यन्त विश्वस्त, प्रामाणिक और आधारभूत व्यक्ति था, चुपचाप दीक्षा ले लेने से सबको आघात और विश्वासघात लगता, इसलिए उनसे पूछना सेठ ने आवश्यक समझा ।

एक हजार आठ व्यापारी-मित्रों से परामर्श, तथा उनकी भी प्रव्रज्या ग्रहण की तैयारी

३. [३] "तए णं से कत्तिए सेट्ठी जाव पडिनिक्खमइ, प० २ जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ णेगमट्ठसहस्स सद्दावेइ, स० २ एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मे निसते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुयिते । तए ण अहं देवाणुप्पिया ! संसारभयुव्विग्गे जाव पव्वयामि । तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! किं करेह ? किं ववसह ? के भे हिदइच्छिए ? के भे सामत्थे ?"

"तए णं त णेगमट्ठसहस्स तं कत्तिय सेट्ठिं एवं वदासी—'जदि ण देवाणुप्पिया संसारभयुव्विग्गा जाव पव्वइस्सति अम्हं देवाणुप्पिया ! किं अन्ने आलंवणे वा आहारे वा पडिवधे वा ? अम्हे वि णं देवाणुप्पिया ! ससारभउव्विग्गा भीता जम्मण-मरणाण देवाणुप्पिएहिं सद्धि मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतिय मुंडा भवित्ता अगाराओ जाव पव्वयामो' ।"

"तए ण से कत्तिए सेट्ठी तं नेगमट्ठसहस्स एवं वयासी—'जदि णं देवाणुप्पिया ! संसारभयुव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाण मए सद्धि मुणिसुव्वयस्स जाव पव्वयह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सएसु गिहेसु०[1] जेट्ठपुत्ते कुडुंवे ठावेह, जेट्ठ० ठा० २[2] पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरुहह, पुरिस० दुरु० २[3] अकालपरिहीणं चेव मम अंतिय पाउब्भवह' ।"

"तए ण त नेगमट्ठसहस्सं पि कत्तियस्स सेट्ठिस्स एतमट्ठं विणएण पडिसुणेत्ति, प० २ जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छइ, उवा० २ विपुल असण जाव उवक्खडावेति, उ० २ मित्तनाति० जाव तस्सेव मित्तनाति० जाव पुरतो जेट्ठपुत्ते कुडुंवे ठावेति, जे० ठा० २ तं मित्तनाति जाव जेट्ठपुत्ते य आपुच्छति, आ० २ पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूहति, पु० दुरू० २ मित्तणाति० जाव परिजणेणं जेट्ठपुत्तेहि य समणुगम्ममाणमग्गा (? ग्गे) सव्विड्ढीए जाव रवेणं अकालपरिहीणं चेव कत्तियस्स सेट्ठिस्स अंतियं पाउब्भवति ।

[३-३] तदनन्तर वह कार्तिक श्रेष्ठी यावत् (उस धर्म-परिषद् से) निकला और वहाँ से हस्तिनापुर नगर मे जहाँ अपना घर था वहाँ आया । फिर उसने उन एक हजार आठ व्यापारी मित्रों को वुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! वात ऐसी है कि मैंने अर्हन्त भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी से धर्म सुना । वह धर्म मुझे इष्ट, अभीष्ट और रुचिकर लगा । हे देवानुप्रियो ! उस धर्म को सुनने के पश्चात् मैं ससार (जन्ममरणरूप चातुर्गतिक ससार) के भय से उद्विग्न हो गया हूँ और यावत् मैं तीर्थंकर के पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ । तो हे देवानुप्रियो ! तुम सव क्या करोगे ? क्या

यहाँ कुछ प्रतियों मे अधिक पाठ मिलता है—

१ 'विपुल असण उवक्खडावेह, मित्तनाइ० जाव पुरओ ।'

२ ' मित्तनाइ जाव जेट्ठपुत्ते आपुच्छह आपु० २ ।'

३ ' मित्तनाइ जाव परिजणेण जेट्ठपुत्तेहि य समणुगम्ममाणमग्गा सव्विड्ढीए जाव रवेण ।'

प्रवृत्ति करने का विचार है ? तुम्हारे हृदय मे क्या इष्ट है ? और तुम्हारी क्या करने की क्षमता (शक्ति) है ?'

यह सुन कर उन एक हजार आठ व्यापारी मित्रो ने कार्तिक सेठ से इस प्रकार कहा—यदि आप ससारभय से उद्विग्न (विरक्त) होकर गृहत्याग कर यावत् प्रव्रजित होगे, तो फिर, देवानुप्रिय ! हमारे लिए (आपके सिवाय) दूसरा कौन-सा आलम्बन है ? या कौन-सा आधार है ? अथवा (यहाँ) कौन-सी प्रतिबद्धता रह जाती है ? अतएव, हे देवानुप्रिय ! हम भी ससार के भय से उद्विग्न हैं, तथा जन्ममरण के चक्र से भयभीत हो चुके है । हम भी आप देवानुप्रिय के साथ अगारवास का त्याग कर अर्हन्त मुनिसुव्रत स्वामी के पास मुण्डित होकर अनगार-दीक्षा ग्रहण करेगे ।

व्यापारी-मित्रो का अभिमत जान कर कार्तिक श्रेष्ठी ने उन १००८ व्यापारी-मित्रो से इस प्रकार कहा—यदि तुम सब देवानुप्रिय ससारभय से उद्विग्न और जन्ममरण से भयभीत होकर मेरे साथ भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी के समीप प्रव्रजित होना चाहते हो तो अपने-अपने घर जाओ, [प्रचुर अशनादि चतुर्विध आहार तैयार कराओ, फिर अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन आदि को बुलाओ, यावत् उनके समक्ष अपने) ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब का भार सौप दो । [फिर उन मित्र-ज्ञातिजन यावत् ज्येष्ठ-पुत्र को इस विषय मे पूछ लो] तब एक हजार पुरुषो द्वारा उठाने योग्य शिविका मे बैठ कर [और मार्ग मे मित्रादि एव ज्येष्ठपुत्र द्वारा अनुगमन किये जाते हुए, समस्त ऋद्धि से युक्त यावत् वाद्यो के घोषपूर्वक] कालक्षेप (विलम्ब) किये बिना मेरे पास आओ ।'

तदनन्तर कार्तिक सेठ का यह कथन उन एक हजार आठ व्यापारी-मित्रो ने विनयपूर्वक स्वीकार किया और अपने-अपने घर आए । फिर उन्होने विपुल अशनादि तैयार कराया और अपने मित्र-ज्ञातिजन आदि को आमन्त्रित किया । यावत् उन मित्र-ज्ञातिजनादि के समक्ष अपने ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब का भार सौपा । फिर उन मित्र-ज्ञाति-स्वजन यावत् ज्येष्ठपुत्र से (दीक्षाग्रहण करने के विषय मे) अनुमति प्राप्त की । फिर हजार पुरुषो द्वारा उठाने योग्य (पुरुष-सहस्रवाहिनी) शिविका मे बैठे । मार्ग मे मित्र ज्ञाति, यावत् परिजनादि एव ज्येष्ठपुत्र के द्वारा अनुगमन किये जाते हुए यावत् सर्व-ऋद्धि-सहित, यावत् वाद्यो के निनादपूर्वक अविलम्ब कार्तिक सेठ के समीप उपस्थित हुए ।

विवेचन—प्रस्तुत परिच्छेद (सू ३-३) मे कार्तिक सेठ द्वारा व्यापारी मित्रो से परामर्श, उनकी भी दीक्षा ग्रहण करने की मन स्थिति एव तत्परता जान कर उन्हे उसकी तैयारी करने के निर्देश तथा व्यापारीगण द्वारा उस प्रकार की तैयारी के साथ उपस्थित होने का वर्णन है ।

कठिन शब्दार्थ—उवक्खडावेह—तैयार कराओ । **कुडुंबे ठावेह**—कुटुम्ब के उत्तरदायी के रूप मे स्थापित करो—कुटुम्ब का भार सौपो । **रवेण**—वाद्यो के घोषपूर्वक । **अकाल-परिहीणं**—अधिक समय नष्ट न करके अर्थात् विलम्ब किये बिना । **पाउब्भवह**—प्रकट होओ—उपस्थित होओ ।[1]

एक हजार आठ व्यापारियों सहित दीक्षाग्रहण तथा संयमसाधना

[३-४] **"तए ण से कत्तिए सेट्ठी विपुल असण ४ जहा गगदत्तो (स० १६ उ० ५ सु० १६) जाव मित्तनाति० जाव परिजणेणं जेट्ठपुत्तेणं णेगमट्ठसहस्सेण य समणगम्ममाणमग्गे सव्विड्ढीए जाव**

१ भगवती सूत्र भाग ६ (प घेरवचन्द जी सम्पादित) पृ २६७०

रवेण हत्थिणापुर नगरं मज्झमज्झेणं जहा गगदत्तो (स० १६ उ० ५ सु० १६) जाव आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, जाव आणुगामियत्ताए भविस्सति, तं इच्छामि णं भंते ! णेगमट्ठसहस्सेणं सद्धि सयमेव पव्वावियं जाव धम्ममाइक्खितं।

"तए णं मुणिसुव्वए अरहा कत्तियं सेट्ठि णेगमट्ठसहस्सेणं सद्धि सयमेव पव्वावेइ जाव धम्ममाइक्खइ—एवं देवाणुप्पिया ! गतव्वं, एव चिट्ठियव्व जाव सजमियव्वं।

"तए णं से कत्तिए सेट्ठी नेगमट्ठसहस्सेण सद्धि मुणिसुव्वयस्स अरहओ इमं एयारूवं धम्मियं उवदेस सम्म सपडिवज्जति तमाणाए तहा गच्छति जाव सजमति।

"तए णं से कत्तिए सेट्ठी णेगमट्ठसहस्सेण सद्धि अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबभचारी।

[३-४] तदनन्तर कार्तिक श्रेष्ठी ने (शतक १६ उ ५ सू १६ मे उल्लिखित) गगदत्त के समान विपुल अशनादि आहार तैयार करवाया, यावत् मित्र ज्ञाति यावत् परिवार, ज्येष्ठपुत्र एव एक हजार आठ व्यापारीगण के साथ उनके आगे-आगे समग्र ऋद्धिसहित यावत् वाद्य-निनाद-पूर्वक हस्तिनापुर नगर के मध्य मे से होता हुआ, (शतक १६ उ ५ सू १६ मे वर्णित) गगदत्त के समान गृहत्याग करके वह भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी के पास पहुँचा यावत् इस प्रकार बोला—भगवन् ! यह लोक चारो ओर से जल रहा है, भन्ते ! यह ससार अतीव प्रज्वलित हो रहा है, (इसमे धर्म ही एकमात्र इहलोक परलोक के लिए हितकर, श्रेयस्कर, मोक्ष ले जाने मे समर्थ, एव) यावत् परलोक मे अनुगामी होगा। अत मैं (ऐसे प्रज्वलित ससार का त्याग कर) एक हजार आठ वणिको सहित आप स्वय के द्वारा प्रव्रजित होना और यावत् आप से धर्म का उपदेश-निर्देश प्राप्त करना चाहता हूँ।

इस पर श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकर ने एक हजार आठ वणिक्-मित्रो सहित कार्तिक श्रेष्ठी को स्वयं प्रव्रज्या प्रदान की और यावत् धर्म का उपदेश-निर्देश किया कि—देवानुप्रियो ! अव तुम्हे इस प्रकार चलना चाहिए, इस प्रकार खडे रहना चाहिए आदि, यावत् इस प्रकार सयम का पालन करना चाहिए।

एक हजार आठ व्यापारी मित्रो सहित कार्तिक सेठ ने भगवान् मुनिसुव्रत अर्हन्त के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक् रूप से स्वीकार किया तथा उन (भगवान्) की आज्ञा के अनुसार सम्यक् रूप मे चलने लगा, यावत् सयम का पालन करने लगा।

इस प्रकार एक हजार आठ वणिको के साथ वह कार्तिक सेठ अनगार वना, तथा ईर्यासमिति आदि समितियो से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारी वना।

विवेचन—प्रस्तुत परिच्छेद [३-४] मे कार्तिक सेठ द्वारा व्यापारीगण सहित अभिनिष्क्रमण, हस्तिनापुर के वाहर जहाँ भगवान् मुनि=मुव्रत स्वामी विराजमान थे, वहाँ पहुँचने और अपनी ससार से विरक्ति के उद्गारपूर्वक भगवान् से दीक्षा देने तथा मुनि धर्म का निर्देश करने की प्रार्थना, भगवान् द्वारा दिये गए मुनिधर्म मे यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने के निर्देश तथा तदनुसार धर्मोपदेश का सम्यक् स्वीकार एवं अनगार धर्म की सम्यक् रूप से साधना का वर्णन है।

कार्तिक अनगार द्वारा अध्ययन, तप, संलेखनापूर्वक समाधिमरण एवं सौधर्मेन्द्र के रूप में उत्पत्ति

[३-५] "तए ण से कत्तिए अणगारे मुणिसुव्वयस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं अंतियं सामाइयमाइयाइ चोद्दस पुव्वाइ अहिज्जइ, सा० अ० २ बहूहिं चउत्थछट्ठऽट्ठम० जाव अप्पाण भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइ सामण्णपरियाग पाउणति, ब० पा० २ मासियाए सलेहणाए अत्ताणं झोसेइ, मा० झो० २ सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेति, स० छे० २ आलोइय जाव काल किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जसि जाव सक्के देविंदत्ताए उववन्ने ।

"तए ण से सक्के देविंदे देवराया अहुणोववन्ने०" ।

सेस जहा गगदत्तस्स (स० १६ उ० ५ सु० १६) जाव अंतं काहिति, नवरं ठिती दो सागरोवमाइ सेस त चेव ।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ अट्ठारसमे सए बीओ उद्देसो समत्तो ॥ १८-२ ॥

इसके पश्चात् उस कार्तिक अनगार ने तथारूप स्थविरो के पास सामायिक से लेकर चौदह पूर्वों तक का अध्ययन किया। साथ ही बहुत से चतुर्थ (उपवास), छट्ठ (बेले), अट्ठम (तेले) आदि तपश्चरण से आत्मा को भावित करते हुए पूरे बारह वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया। अन्त मे, उसने एक मास की सल्लेखना द्वारा अपने शरीर को झूषित (कृश) किया, अनशन से साठ भक्त का छेदन किया और आलोचना-प्रतिक्रमण आदि करके आत्मशुद्धि की। यावत् काल के समय कालधर्म को प्राप्त कर वह सौधर्मकल्प देवलोक मे, सौधर्मावतसक विमान मे रही हुई उपपात सभा मे देवशय्या मे यावत् शक्र देवेन्द्र के रूप मे उत्पन्न हुआ।

इसी से कहा गया था—'शक्र देवेन्द्र देवराज अभी-अभी उत्पन्न हुआ है।'

शेष वर्णन शतक १६ उ ५ सू १६ मे प्रतिपादित गगदत्त के वर्णन के समान यावत्—'वह सभी दु खो का अन्त करेगा,' (यहाँ तक जानना चाहिए।) विशेष यह है कि उसकी स्थिति दो सागरोपम की है। शेष सब वर्णन गगदत्त के (वर्णन के) समान है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर श्रीगौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—इस परिच्छेद (३-५) मे कार्तिक अनगार के अध्ययन, तपश्चरण, तथा श्रामण्य-पर्याय के पालन की अवधि एव अन्त मे, एकमासिक सल्लेखना द्वारा अपनी आत्मशुद्धिपूर्वक समाधि-मरण का और आगामी (इस) भव मे देवेन्द्र शक्र देवराज के रूप मे उत्पन्न होने का तथा उसकी स्थिति का सक्षेप मे वर्णन है।

गंगदत्त और कार्तिक श्रेष्ठी—हस्तिनापुर मे कार्तिक सेठ तो वाद मे श्रेष्ठी हुए, उनसे बहुत पहले से गगदत्त श्रेष्ठी वने हुए थे। इन दोनो मे प्राय ईर्ष्याभाव रहता था। दोनो ने तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के पास दीक्षा अगीकार की थी। किन्तु श्रमणत्व की साधना मे तारतम्य होने से गगदत्त का जीव सातवे महाशुक्र देवलोक मे उत्पन्न हुआ, जवकि कार्तिक सेठ का जीव शक्रेन्द्र वना।[1]

कठिन शब्दार्थ—उववायसभाए—उपपात सभा (देवो के उत्पन्न होने के सभागार) मे। **देवसयणिज्जंसि**—देवशय्या मे (जहाँ देव उत्पन्न होते हैं)। **पाउणइ**—पालन करता है। **अहुणोववन्ने**—तत्काल उत्पन्न हुआ है।[2]

।। अठारहवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१. भगवतीसूत्र भा ६, (प घेवरचन्दजी), पृ २६७४

२ वही, पृ २६७३

तइओ उद्देसओ : मायंदिए

तृतीय उद्देशक : माकन्दिक

माकन्दीपुत्र द्वारा पूछे गए कापोतलेश्यी पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकायिकों को मनुष्य भवानन्तर सिद्धगतिसम्बन्धी प्रश्न के भगवान् द्वारा उत्तर—माकन्दी पुत्र द्वारा तथ्य प्रकाशन पर संदिग्ध श्रमणनिर्ग्रन्थों का भगवान् द्वारा समाधान उनके द्वारा क्षमापना

१. तेणं कालेणं तेण समएणं रायगिहे नाम नगरे होत्था। वण्णओ। गुणसिलए चेतिए। वण्णओ। जाव परिसा पडिगया।

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नाम का नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) था। उसका भी वर्णन करना चाहिए। यावत् परिषद् वन्दना करके वापिस लौट गई।

२. तेणं कालेण तेणं समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स जाव अतेवासी मागंदियपुत्ते नामं अणगारे पगतिभद्दए जहा मंडियपुत्ते (स० ३ उ० ३ सु० १) जाव[1] पज्जुवासमाणे एवं वयासी—से नूण भते! काउलेस्से पुढविकाइए काउलेस्सेहिंतो पुढविकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुस्स विग्गहं लभति, मा० ल० २ केवल बोहिं बुज्झइ, केव० बु० २ तओ पच्छा सिज्झति जाव[2] अत करेति ?

हंता, मागंदियपुत्ता! काउलेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेति।

[२ प्र] उस काल एवं उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी यावत् प्रकृतिभद्र माकन्दिकपुत्र नामक अनगार ने, (शतक ३, उद्देशक ३ सू १ मे वर्णित) मण्डितपुत्र अनगार के समान यावत् पर्युपासना करते हुए (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—'भगवन्! क्या कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिकजीव, कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिकजीवो मे से मरकर अन्तर-रहित (सीधा) मनुष्य शरीर प्राप्त करता है? फिर (उस मनुष्यभव मे ही) केवलज्ञान उपार्जित करता है? तत्पश्चात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होता है यावत् सर्वदु.खो का अन्त करता है?'

[२ उ] हाँ, माकन्दिकपुत्र! वह कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव यावत् सब दु खो का अन्त करता है।

---

१. 'जाव' पद सूचित पाठ—'पगइ-उवसते, पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभे इत्यादि।

२. जाव पद-सूचक पाठ—"बुज्झति, मुच्चति सव्वदुक्खाण ······ ।"

३ से नूणं भंते ! काउलेस्से आउकाइए, काउलेस्सेहिंतो आउकाइएहिंतो अणतर उव्वट्टित्ता माणुस्सं विग्गहं लभति, माणुस्सं विग्गहं लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झति जाव अंतं करेति ?

हंता, मागदियपुत्ता ! जाव अंतं करेति ।

[३ प्र] भगवन् ! क्या कापोतलेश्यी अप्कायिकजीव कापोतलेश्यी अप्कायिकजीवो मे से मर कर अन्तररहित मनुष्यशरीर प्राप्त करता है ? फिर केवलज्ञान प्राप्त करके यावत् सव दु खो का अन्त करता है ?

[४ उ] हाँ, माकन्दिकपुत्र ! वह यावत् सव दु खो का अन्त करता है ।

४. से नूणं भंते ! काउलेस्से वणस्सइकाइए० ?

एवं चेव जाव अंतं करेति ।

[४ प्र] भगवन् ! कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिकजीव के सम्बन्ध मे भी वही प्रश्न है ?

[४ उ] हाँ, माकन्दिकपुत्र ! वह भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) यावत् सव दु.खो का अन्त करता है ।

५. 'सेवं भते ! सेव भते !' त्ति मागदियपुत्ते अणगारे समणं भगवं महावीरं जाव नमसित्ता जेणेव समणे निग्गथे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ समणे निग्गंथे एवं वदासी—'एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से पुढविकाइए तहेव जाव अंतं करेति । एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से आउक्काइए जाव अंतं करेति । एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से वणस्सतिकाइए जाव अंतं करेति' ।

[५] 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यो कह कर माकन्दिक-पुत्र अनगार श्रमण भगवान् महावीर को यावत् वन्दना-नमस्कार करके जहाँ श्रमण निर्ग्रन्थ थे, वहाँ उनके पास आए और उनसे इस प्रकार कहने लगे—आर्यो ! कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव पूर्वोक्त प्रकार से यावत् सव दु खो का अन्त करता है, इसी प्रकार, हे आर्यो ! कापोतलेश्यी अप्कायिक जीव भी यावत् सव दु खो का अन्त करता है, और इसी प्रकार कापोतलेश्यी वनस्पति-कायिक जीव भी, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है ।

६. तए ण ते समणा निग्गंथा मागंदियपुत्तस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव एव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति ३, एयमट्ठं असद्दहमाणा ३ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, ते० उ० २ समणं भगवं महावीरं वंदति नमसति, व० २ एवं वयासी—एवं खलु भते ! मागदियपुत्ते अणगारे अम्हं एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—'एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से पुढविकाइए जाव अत करेति, एव खलु अज्जो ! काउलेस्से आउकाइए जाव अतं करेति, एवं वणस्सतिकाइए वि जाव अत करेति । से कहमेयं भते ! एव' ? 'अज्जो !' त्ति समणे भगव महावीरे ते समणे निग्गथे आमतित्ता एवं वयासी—ज णं अज्जो ! मागदियपुत्ते अणगारे तुब्भे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ— एव खलु अज्जो ! काउलेस्से पुढविकाइए जाव अतं करेति, एव खलु अज्जो ! काउलेस्से आउकाइए

जाव अत करेति, एवं खलु वणस्सइकातिए वि जाव अंत करेति' सच्चे णं एसमट्ठे, अहं पि णं अज्जो ! एवमाइक्खामि ४ एवं खलु अज्जो ! कण्हलेस्से पुढविकाइए कण्हलेस्सेहिंतो पुढविकाइएहिंतो जाव अतं करेति, एव खलु अज्जो ! नीललेस्से पुढविकाइए जाव अत करेति, एव काउलेस्से वि, जहा पुढविकाइए एव आउकाइए वि, एवं वणस्सतिकाइए वि, सच्चे णं एसमट्ठे ।

[६] तदनन्तर उन श्रमण निर्ग्रन्थो ने माकन्दिकपुत्र अनगार की इस प्रकार की प्ररूपणा, व्याख्या यावत् मान्यता पर श्रद्धा नही की, न ही उसे मान्य किया ।

[प्र] वे इस मान्यता के प्रति अश्रद्धालु बन कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आए । फिर उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! माकन्दीपुत्र अनगार ने हमसे कहा यावत् प्ररूपणा की कि कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक, कापोतलेश्यी अप्कायिक और कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिक जीव, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है । हे भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ?'

[उ] आर्यो ! इस प्रकार सम्बोधन करके, श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमण निर्ग्रन्थो से इस प्रकार कहा—'आर्यो ! माकन्दिकपुत्र अनगार ने जो तुमसे कहा है, यावत् प्ररूपणा की है, कि—'आर्यो ! कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक, कापोतलेश्यी अप्कायिक और कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिक, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है, यह कथन सत्य है । हे आर्यो ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ । इसी प्रकार कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकजीव, कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिको मे से मर कर, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है । इसी प्रकार हे आर्यो ! नीललेश्यी पृथ्वीकायिक भी यावत् सब दु खो का अन्त करता है, इसी प्रकार कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक भी यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है । जिस प्रकार पृथ्वीकायिक के विषय मे कहा है, उसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक भी, यावत् सर्वदु खो का अन्त करता है । यह कथन सत्य है ।

७. सेव भते ! सेव भंते ! त्ति समणा निग्गथा समण भगव महावीर वंदंति नमंसति, व० २ जेणेव मागदियपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छति, उवा० २ मागदियपुत्त अणगार वदति नमसति, व० २ एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेति ।

[७] हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है । यो कह कर उन श्रमण-निर्ग्रन्थो ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, और वे जहाँ माकन्दीपुत्र अनगार थे, वहाँ आए । उन्हे वन्दना-नमस्कार किया । फिर उन्होने (उनके कथन पर श्रद्धा न करने के कारण) उनसे सम्यक् प्रकार से विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना की ।

विवेचन—माकन्दीपुत्र अनगार के प्रश्नो का समाधान—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १ से ४ तक) मे माकन्दीपुत्र अनगार द्वारा पूछे गए कापोतलेश्यी पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकायिक जीव, अपने-अपने काय से मर कर अन्तररहित मनुष्य शरीर पाकर केवलज्ञानी बन कर सिद्ध हो सकते है या नही ? इन प्रश्नो का स्वीकृतिसूचक समाधान भगवान् द्वारा किया गया है । तत्पश्चात् सू ५ से ७ तक मे माकन्दीपुत्र द्वारा उसी तथ्य का प्ररूपण श्रमणनिर्ग्रन्थो के समक्ष करने, किन्तु उनके द्वारा मान्य

न करने और भगवान् महावीर के समक्ष शका व्यक्त करने पर उसी (पूर्वोक्त) समाधान को सत्य प्रमाणित करने पर श्रमण निर्ग्रन्थो द्वारा माकन्दीपुत्र से क्षमायाचना करने का प्रतिपादन है।

फलितार्थ—कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीव अपने-अपने काय से निकल कर सीधे मनुष्यभव प्राप्त करके उसी भव मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो सकता है। तेजस्काय और वायुकाय से निकला हुआ जीव मनुष्यभव प्राप्त नही कर सकता, इसलिए यहाँ उनकी अन्तक्रिया सम्बन्धी पृच्छा नही की गई है।[1]

८. तए ण से मागंदियपुत्ते अणगारे उट्ठाए उट्ठेइ, उ० २ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ समण भगव महावीरं वदति नमसति, वं० २ एवं वदासी—अणगारस्स णं भते ! भावियप्पणो सव्वं कम्म वेदेमाणस्स, सव्वं कम्मं निज्जरेमाणस्स, सव्वं मार मरमाणस्स, सव्व सरीरं विप्पजहमाणस्स, चरिमं कम्मं वेदेमाणस्स, चरिमं कम्म निज्जरेमाणस्स, चरिमं मारं मरमाणस्स, चरिमं सरीरं विप्पजहमाणस्स, मारणतियं कम्म वेदेमाणस्स, मारणंतियं कम्मं निज्जरेमाणस्स, मारणतियं मारं मरमाणस्स, मारणतियं सरीर विप्पजहमाणस्स जे चरिमा निज्जरापोग्गला, सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वं लोगं पि ण ते ओगाहित्ताणं चिट्ठंति ?

हंता, मागदियपुत्ता ! अणगारस्स ण भावियप्पणो जाव ओगाहित्ताणं चिट्ठंति।

[८ प्र] वह माकन्दिकपुत्र अनगार अपने स्थान से उठे और श्रमण भगवान् महावीर के पास आए। उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! सभी कर्मो को वेदते (भोगते) हुए, सर्वकर्मो की निर्जरा करते हुए, समस्त मरणो से मरते हुए, सर्वशरीर को छोडते हुए तथा चरम कर्म को वेदते हुए, चरम कर्म की निर्जरा करते हुए, चरम मरण से मरते हुए, चरमशरीर को छोडते हुए एव मारणान्तिक कर्म को वेदते हुए, निर्जरा करते हुए, मारणान्तिक मरण से मरते हुए, मारणान्तिक शरीर को छोडते हुए भावितात्मा अनगार के जो चरमनिर्जरा के पुद्गल है, क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं ? हे आयुष्मन् श्रमणप्रवर ! क्या वे पुद्गल समग्र लोक का अवगाहन करके रहे हुए हैं ?

[८ उ] हाँ, माकन्दिक-पुत्र ! तथाकथित (पूर्वोक्त) भावितात्मा अनगार के यावत् वे चरम निर्जरा के पुद्गल समग्र लोक का अवगाहन करके रहे हुए है।

विवेचन—भावितात्मा अनगार का अर्थ है—ज्ञानादि से जिसकी आत्मा वासित है। यहाँ केवली मे तात्पर्य है। **सर्व कर्म-वेदन-निर्जरण, सर्वमार-मरण, सर्वशरीरत्याग का तात्पर्य**—केवली के सर्व कर्म भवोपग्राही चार (वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र) कर्म होते है। इन्ही सर्व कर्मों का वेदन अर्थात्—अनुभव करना-भोगना। सभी भवोपग्राही कर्मों का निर्जरण अर्थात्—आत्मप्रदेशो से पृथक् होना। सभी आयुष्य के पुद्गलो की अपेक्षा से अन्तिम मरण सर्वमार है। सर्व अर्थात्

---

१ (क) भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ७४०

(ख) भगवतीसूत्र (प. घेवरचन्दजी) भाग-६, पृ २६७९

औदारिकादि समस्त शरीरो को छोडना—सर्वशरीरत्याग है । **चरम कर्म-वेदन-निर्जरण, चरममार-मरण एव चरमशरीरत्याग का तात्पर्य**—चरमकर्म वेदन एव निर्जरण का अर्थ है—आयुष्य के चरम समय मे वेदन करने योग्य कर्म का वेदन एव चरमकर्मो को आत्मप्रदेश से दूर करना कर्मनिर्जरण है । चरममारमरण का अर्थ है—आयुष्य के पुद्गलो के क्षय की अपेक्षा से चरम (अन्तिम) मरण से मृत्यु को प्राप्त । चरमशरीरत्याग—चरमावस्था मे जो शरीर है, उसे छोडना । **मारणान्तिक कर्म वेदन एव निर्जरण**—समस्त आयुष्यक्षयरूप मरण के अन्त यानी समीप को मरणान्त कहते है, अर्थात्—आयुष्य का चरमसमय । मरणान्त मे होने वाला मारणान्तिक, जो भवोपग्राहीत्रयरूप कर्म है, उसका वेदन एव निर्जरा । मारणान्तिकमार—मृत्यु के अन्तिम क्षणो के आयुर्दलिक की अपेक्षा से जो मार अर्थात् मरण हो, वह । मारणान्तिक—शरीरत्याग-आयुष्य के अन्तिम समय मे जो शरीर हो वह मारणान्तिक शरीर है, उसको छोडना मारणान्तिक शरीरत्याग है ।

चरिमा निज्जरापोग्गला · अर्थ—केवली के सर्वान्तिम जो निर्जीर्ण किये हुए कर्मदलिक है, वे चरम निर्जरा-पुद्गल है । इन पुद्गला को भगवान् ने सूक्ष्म कहा है । ये सम्पूर्ण लोक को अभिव्याप्त करके रहते हैं ।[1]

[९-१] छउमत्थे णं भते ! मणुस्से तेसिं निज्जरापोग्गलाण किंचि आणत्त वा णाणत्त वा० ?

एवं जहा इदियउद्देसए पढमे जाव वेमाणिया जाव तत्थ ण जे ते उवउत्ता ते जाणति पासंति आहारेंति, से तेणट्ठेणं निक्खेवो भाणितव्वो त्ति ण पासति, आहारेंति ।[2]

[९-१ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलो के अन्यत्व और नानात्व को जानता-देखता है ?

(९-१ उ] हे माकन्दिकपुत्र ! प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम इन्द्रियोद्देशक के अनुसार, यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए । यावत्—इनमे जो उपयोगयुक्त हैं, वे (उन निर्जरापुद्गलो को) जानते, देखते और आहाररूप मे ग्रहण करते है, इस कारण से हे माकन्दिकपुत्र ! यह कहा जाता है कि यावत् जो उपयोगरहित है, वे उन पुद्गलो को जानते-देखते नही, किन्तु उन्हे आहरण-ग्रहण करते हैं, इस प्रकार (यहाँ समग्र) निक्षेप (प्रज्ञापनासूत्र गत वह पाठ) कहना चाहिए ।

[९-२] णेरइया णं भते ! णिज्जरापोग्गला ण जाणति, ण पासंति, आहारेंति ?

एवं जाव पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं ।

[९-२ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक उन निर्जरापुद्गलो को नही जानते, नही देखते, किन्तु ग्रहण करते है ?

[९-३ उ] हाँ, वे उन निर्जरापुद्गलो को जानते-देखते नही. किन्तु ग्रहण करते है, इसी प्रकार यावत् पचेन्द्रियतिर्यंग्योनिक तक जानना चाहिए ।

---

१ भगवतीसूत्र, अ वृत्ति पत्र ७४१

२ यहा मौलिक सूत्र यही तक है । किन्तु वृत्तिकार ने इससे आगे का प्रज्ञापनासूत्रीय पाठ मूलवाचना मे स्वीकृत किया है । —स०

९. [३] मणुस्सा ण भंते ! णिज्जरापोग्गले किं जाणंति पासंति आहारेंति, उदाहु ण जाणंति ण पासंति णाहारेंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति ३, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति ।

[९-३ प्र.] भगवन् ! क्या मनुष्य उन निर्जरापुद्गलो को जानते-देखते है और ग्रहण करते हैं, अथवा वे नही जानते-देखते, और नही आहरण करते हैं ?

[९-३ उ.] गौतम ! कई मनुष्य उन पुद्गलो को जानते-देखते है और ग्रहण करते है, कई मनुष्य नही जानते-देखते, किन्तु उन्हे ग्रहण करते हैं ।

९. [४] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ--'अत्थेगइया जाणंति ३, अत्थेगइया न जाणंति, न पासंति, आहारेंति ?

गोयमा ! मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा---सण्णीभूया य असण्णीभूया य । तत्थ णं जे ते असण्णीभूया, ते न जाणंति, न पासंति, आहारेंति । तत्थ णं जे ते सण्णीभूया, ते दुविहा प० तं०---उवउत्ता अणुवउत्ता य । तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता, ते न जाणंति, न पासंति, आहारेंति । तत्थ णं जे ते उवउत्ता, ते जाणंति ३ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ---अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति, अत्थेगइया जाणंति ३ ।

[९-४ प्र.] भगवन् ! आप यह किस कारण से कहते है कि कई मनुष्य जानते-देखते और ग्रहण करते हैं, जब कि कई मनुष्य जानते-देखते नही, किन्तु ग्रहण करते है ?

[९-४ उ.] गौतम ! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए है । यथा---सञ्ज्ञीभूत और असञ्ज्ञीभूत । उनमे जो असञ्ज्ञीभूत हैं, वे (उन पुद्गलो को) नही जानते-देखते, किन्तु ग्रहण करते है । जो सञ्ज्ञीभूत मनुष्य हैं, वे दो प्रकार के हैं । यथा---उपयोगयुक्त और उपयोगरहित । उनमे जो उपयोगरहित हैं वे उन पुद्गलो को नही जानते-देखते, किन्तु ग्रहण करते हैं । मगर जो उपयोगयुक्त है, वे जानते-देखते हैं, और ग्रहण करते हैं । इस कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि कई मनुष्य नही जानते-देखते, किन्तु आहाररूप से ग्रहण करते हैं, तथा कई जानते-देखते हैं और ग्रहण करते हैं ।'

९. [५] वाणमंतर-जोइसिया जहा णेरइया ।

[९-५] वाणव्यन्तर और ज्योतिष्कदेवो का कथन नैरयिको के समान जानना चाहिए ।

९. [६] वेमाणिया णं भंते ! ते णिज्जरा पोग्गले किं जाणंति ३ ?

गोयमा ! जहा मणुस्सा, णवरं वेमाणिया दुविहा प० तं०---माइमिच्छद्दिट्ठि-उववण्णगा य अमाइसम्मदिट्ठी-उववण्णगा य । तत्थ णं जे ते माइमिच्छद्दिट्ठि-उववण्णगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति । तत्थ णं जे ते अमाइ-सम्मदिट्ठी-उववण्णगा ते दुविहा प० तं०---अणंतरोववण्णगा य, परंपरोववण्णगा य । तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा, ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति । तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते दुविहा प० तं०---पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति । तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते दुविहा प० तं०---उवउत्ता य

अणुवउत्ता य। तत्थ ण जे ते अणुवउत्तगा, ते ण जाणति, ण पासति, आहारेंति। (तत्थ णं जे ते उवउत्ता, ते णं जाणति, पासंति, आहारेंति य)।[1]

[९-६ प्र] भगवन्! वैमानिकदेव उन निर्जरापुद्गलो को जानते-देखते और उनका आहरण करते है या नही?

[९-६ उ] गौतम! मनुष्यो के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि वैमानिक देव दो प्रकार के है। यथा—मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। उनमे से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक है, वे नही जानते-देखते, किन्तु ग्रहण करते है, तथा उनमे से जो अमायी-सम्यग्दृष्टि उपपन्नक है, वे भी दो प्रकार के हैं। यथा—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। जो अनन्तरोपपन्नक होते है, वे नही जानते-देखते, किन्तु ग्रहण करते है। तथा जो परम्परोपपन्नक हैं, वे दो प्रकार के है। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। उनमे जो अपर्याप्तक हैं, वे उन पुद्गलो को नही जानते-देखते, किन्तु ग्रहण करते हैं। उनमे जो पर्याप्तक हैं, वे दो प्रकार के है, यथा—उपयोगयुक्त और उपयोगरहित। उनमे से जो उपयोगरहित है, वे नही जानते-देखते है, किन्तु ग्रहण करते है। [तथा जो उपयोगयुक्त है, वे जानते-देखते है और ग्रहण करते हैं।]

विवेचन—निर्जरापुद्गलो के जानने-देखने और आहरण करने के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर— प्रस्तुत सूत्र का फलितार्थ यह है कि केवली तो उक्त सूक्ष्म निर्जरापुद्गलो को, जो कि समग्रलोक को व्याप्त करके रहते हैं, जानते है, देखते है, इसलिए उनके विषय मे यहाँ प्रश्न नही पूछा गया है। प्रश्न पूछा गया है—छद्मस्थ के जानने आदि के विषय मे। जिसके लिए प्रज्ञापनासूत्र के पन्द्रहवें पद के प्रथम इन्द्रिय-उद्देशक का अतिदेश किया गया है।

फलितार्थ—छद्मस्थो मे भी जो विशिष्ट अवधिज्ञानादि-उपयोगयुक्त है, वे ही सूक्ष्म कार्मण (निर्जरा) पुद्गलो को जानते-देखते है, परन्तु जो विशिष्ट अवधिज्ञानादि के उपयोग से रहित हैं वे नही जानते-देखते। यही कारण है कि नैरयिक से लेकर दश भवनपति, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यञ्चपचेन्द्रिय तक के जीव तथा वाणव्यन्तर एवं ज्योतिष्क देव विशिष्ट अवधिज्ञानादि उपयोगयुक्त न होने से उक्त सूक्ष्म कार्मण (निर्जरा) पुद्गलो को जान-देख नही सकते।

मनुष्यसूत्र मे—असज्ञीभूत एव अनुपयुक्त मनुष्य सूक्ष्म कार्मण पुद्गलो को जान-देख नही सकते किन्तु जो मनुष्य सज्ञीभूत है, अर्थात् विशिष्ट अवधिज्ञानी है, तथा जो उपयोगयुक्त हैं, वे उन निर्जरा-पुद्गलो को जान-देख सकते है।

वैमानिक सूत्र में—जो वैमानिक देव अमायी-सम्यग्दृष्टि है, परम्परोपपन्नक है, पर्याप्तक है

---

१ यह पाठ प्रज्ञापनासूत्र का है, किन्तु कई प्रतियो मे भगवतीसूत्र के मूलपाठ के रूप मे माना गया है। इस सम्बन्ध मे दो अभिप्राय वृत्तिकार लिखते हैं कि यह पाठ प्रज्ञापनासूत्र से उद्धृत किया हुआ है, और प्रज्ञापनासूत्र की रचना-शैली प्राय गौतमस्वामी के प्रश्न और उत्तररूप होने से यहाँ प्रश्नकर्त्ता माकन्दिकपुत्र होने पर भी श्री गौतमस्वामी को सम्बोधित करके उत्तर दिया गया है। अत [ ] कोष्ठकान्तर्गत पाठ प्रज्ञापना के उस सलग्न पाठ का ग्रहण किया हुआ समझना चाहिए। दूसरा मत यह है कि प्रश्नकार माकन्दिकपुत्र हैं। अतएव 'गौतम' शब्द से यहाँ 'माकन्दिकपुत्र' का ही ग्रहण समझना चाहिए। —स०

तथा जो विशिष्ट अवधिज्ञानी उपयोगयुक्त हैं, वे ही उन सूक्ष्म कार्मण पुद्गलो को जान-देख सकते है। जो मायी-मिथ्यादृष्टि है, वे विपरीतद्रष्टा होने से उन पुद्गलो को जान-देख नही सकते।

आहाररूप से ग्रहण—आहार तीन प्रकार के हैं—ओज आहार, लोम आहार और प्रक्षेप आहार। त्वचा के स्पर्श से लोम आहार होता है, और मुख मे डालने से प्रक्षेप-आहार होता है, किन्तु कार्मण शरीर द्वारा पुद्गलो का ग्रहण करना ओज-आहार कहलाता है। यहाँ ओज-आहार का ग्रहण समझना चाहिए, जिसे चौबीस दण्डकवर्ती जीव ग्रहण करते है।[1]

आणत्त णाणत्तं . आशय—आणत्त-अन्यत्व-दो अनगारो सम्बन्धी पुद्गलो की पारस्परिक भिन्नता-पृथक्ता। णाणत्तं-नानात्व-वर्णादिकृत विविधता।[2]

बन्ध के मुख्य दो भेदों के भेद-प्रभेदों का तथा चौवीस दण्डकों एवं ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्म की अपेक्षा भावबन्ध के प्रकार का निरूपण

१०. कतिविधे णं भंते बंधे पन्नत्ते ?

मागदियपुत्ता ! दुविहे बंधे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वबधे य भावबधे य।

[१० प्र.] भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१० उ] माकन्दिकपुत्र ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—द्रव्यबन्ध और भावबन्ध।

११. दव्वबंधे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ? मागंदियपुत्ता ! दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—पयोगबंधे य वीससाबंधे य।

[११ प्र] भगवन् ! द्रव्यबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[११ उ] माकन्दिकपुत्र ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध।

१२. वीससाबंधे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ? मागदियपुत्ता ! दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—सादीयवीससाबंधे य अणादीयवीससाबंधे य।

[१२ प्र] भगवन् ! विस्रसाबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[११ उ] माकन्दिकपुत्र ! वह भी दो प्रकार का कहा गया है। यथा—सादि विस्रसाबन्ध और अनादि विस्रसाबन्ध।

१३. पयोगबंधे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ? मागंदियपुत्ता ! दुविहे पन्नत्ते तं जहा—सिढिलबंधणबंधे य घणियबंधणबंधे य।

---

१ I—भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्र ७४२

II—सरीरेणोयाहारो, तया य फासेण लोम आहारो। पक्खेवाहारो पुण कावलिओ होइ नायव्वो॥

२ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७४२

[१३ प्र] भगवन् ! प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१३ उ] माकन्दिकपुत्र ! वह भी दो प्रकार का कहा गया है। यथा—शिथिल-बन्धन-बन्ध और गाढ (घन) बन्धन-बन्ध।

१४. भावबंधे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ? मागंदियपुत्ता ! दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—मूलपगडिबंधे य उत्तरपगडिबधे य।

[१४ प्र] भगवन् ! भावबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१४ उ] माकन्दिकपुत्र ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—मूलप्रकृतिबन्ध और उत्तरप्रकृतिबन्ध।

१५. नेरइयाण भते ! कतिविहे भावबधे पन्नत्ते ? मागंदियपुत्ता ! दुविहे भावबधे पन्नत्ते, त जहा—मूलपगडिबधे य उत्तरपगडिबंधे य।

[१५ प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीवो का कितने प्रकार का भावबन्ध कहा गया है ?

[१५ उ] माकन्दिकपुत्र ! उनका भावबन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—मूल-प्रकृति-बन्ध और उत्तर-प्रकृति-बन्ध।

१६. एवं जाव वेमाणियाण।

[१६] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक (के भावबन्ध के विषय मे कहना चाहिए।)

१७. नाणावरणिज्जस्स णं भते ! कम्मस्स कतिविहे भावबंधे पन्नत्ते ? मागंदियपुत्ता ! दुविहे भावबंधे पन्नत्ते, तं जहा—मूलपगडिबधे य उत्तरपयडिबधे य।

[१७ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म का भावबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१७ उ] माकन्दिकपुत्र ! ज्ञानावरणीय कर्म का भावबन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—मूलप्रकृतिबन्ध और उत्तरप्रकृतिबन्ध।

१८. नेरइयाणं भंते ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स कतिविधे भावबधे पण्णत्ते ? मागंदियपुत्ता ! दुविहे भावबधे पन्नत्ते, तं जहा—मूलपगडिबधे य उत्तरपगडिबंधे य।

[१८ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो के ज्ञानावरणीय कर्म का भावबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१८ उ] माकन्दिकपुत्र ! उनके ज्ञानावरणीय कर्म का भावबन्ध भी दो प्रकार का कहा गया है। यथा—मूल-प्रकृति-बन्ध और उत्तर-प्रकृति-बन्ध।

१९. एवं जाव वेमाणियाणं।

[१९] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक के ज्ञानावरणीयकर्मजनित भावबन्ध के विषय मे कहना चाहिए।

२०. जहा नाणावरणिज्जेणं दंडओ भणिओ एवं जाव अंतराइएण भाणियव्वो ।

[२०] जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म-सम्बन्धी दण्डक कहा गया है, उसी प्रकार अन्तरायकर्म तक (दण्डक) कहना चाहिए ।

विवेचन—द्रव्यबन्ध, भावबन्ध और उसके भेद-प्रभेद—प्रस्तुत ११ सूत्रों (सू. १० से २० तक) मे बन्ध के दो भेद—द्रव्य और भावबन्ध करके उनके भेद-प्रभेद तथा भावबन्धजनित प्रकारो का निरूपण किया गया है ।

द्रव्यबन्ध : यहाँ कौन-सा ग्राह्य है ?—द्रव्यबन्ध आगम, नोआगम आदि के भेद से अनेक प्रकार का है; किन्तु यहाँ केवल 'उभय-व्यतिरिक्त द्रव्यबन्ध का ग्रहण करना चाहिए । तेल आदि स्निग्ध पदार्थों या रस्सी आदि द्रव्य का परस्पर बन्ध होना द्रव्यबन्ध है ।

भावबन्ध : स्वरूप, प्रकार और ग्राह्यभावबन्ध—भाव अर्थात् मिथ्यात्व आदि भावो के द्वारा अथवा उपयोग भाव से अतिरिक्त भाव का, जीव के साथ बन्ध होना, भावबन्ध कहलाता है । भावबन्ध के आगमत और नो-आगमत, ये दो भेद हैं । यहाँ नो-आगमत भावबन्ध का ग्रहण विवक्षित है ।

प्रयोगबन्ध, विस्रसाबन्ध : स्वरूप और प्रकार—जीव के प्रयोग से द्रव्यो का बन्ध होना प्रयोगबन्ध है और स्वाभाविक रूप से बन्ध होना विस्रसाबन्ध है । विस्रसाबन्ध के दो भेद है—सादिविस्रसाबन्ध और अनादि-विस्रसाबन्ध । बादलो आदि का परस्पर बन्ध होना (मिल जाना—जुड जाना) सादिविस्रसाबन्ध है और धर्मास्तिकाय आदि का परस्पर बन्ध, अनादि-विस्रसाबन्ध कहलाता है । प्रयोगबन्ध के दो भेद है—शिथिलबन्ध और गाढबन्ध । घास के पूले आदि का बन्ध शिथिलबन्ध है और रथचक्रादि का बन्ध गाढबन्ध है ।

भावबन्ध के भेद—भावबन्ध के दो भेद है—मूलप्रकृतिबन्ध और उत्तरप्रकृतिबन्ध । मूलप्रकृतिबन्ध के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि ८ भेद है, तथा उत्तरप्रकृतिबन्ध के कुल १४८ भेद हैं । उनमे से १२० प्रकृतियो का बन्ध होता है । जिस दण्डक मे जितनी प्रकृतियो का बन्ध होता हो, वह कहना चाहिए । यही भेद नैरयिको के मूल-उत्तरप्रकृतिबन्ध के समझने चाहिए ।[1]

जीव एवं चौवीस दण्डकों द्वारा किये गए, किये जा रहे तथा किये जाने वाले पापकर्मों के नानात्व (विभिन्नत्व) का दृष्टान्तपूर्वक निरूपण

२१ [१] जीवाणं भंते ! पावे कम्मे जे य कडे जाव जे य कज्जिस्सइ अत्थि याइ तस्स केयि णाणत्ते ?

हंता, अत्थि ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! जीव ने जो पापकर्म किया है, यावत् करेगा क्या उनमे परस्पर कुछ भेद (नानात्व) है ?

---

१ (क) भगवती सूत्र, अ. वृत्ति, पत्र ७४३

(ख) भगवती उपक्रम (प. मुनि श्री जनकरायजी तथा जगदीशमुनिजी म.) पृ. ३७५

[२१-१ उ] हाँ, माकन्दिकपुत्र ! (उनमे परस्पर भेद) है।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चति 'जीवाणं पावे कम्मे जे य कडे जाव जे य कज्जिस्सति अत्थि याइं तस्स णाणत्ते ?

मागंदियपुत्ता ! से जहानामए—केयि पुरिसे धणुं परामुसति, धणु प० २ उसुं परामुसति, उसुं प० २ ठाणं ठाति, ठा० २ आयतकण्णायतं उसुं करेति, आ० क० २ उड्ढं वेहासं उव्विहइ। से नूण मागंदियपुत्ता ! तस्स उसुस्स उड्ढं वेहास उव्वीढस्स समाणस्स एयति वि णाणत्तं, जाव त तं भावं परिणमति वि णाणत्तं ?'

हंता, भगवं ! एयति वि णाणत्त, जाव परिणमति वि णाणत्तं।'

से तेणट्ठेणं मागंदियपुत्ता ! एवं वुच्चति जाव त तं भाव परिणमति वि णाणत्तं।

[२१-२ प्र] भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते है कि जीव ने जो पापकर्म किया है, यावत् करेगा, उनमे परस्पर कुछ भेद है ?

[२१-२ उ] माकन्दिकपुत्र ! जैसे कोई पुरुष धनुष को (हाथ मे) ग्रहण करे, फिर वह बाण को ग्रहण करे और अमुक प्रकार की स्थिति (आकृति) मे खडा रहे, तत्पश्चात् बाण को कान तक खीचे और अन्त मे, उस बाण को आकाश मे ऊँचा फेंके, तो हे माकन्दिकपुत्र ! आकाश मे ऊँचे फके हुए उस बाण के कम्पन मे भेद (नानात्व) है, यावत्—वह उस-उस रूप मे परिणमन करता है। उसमे भेद है न ? (उत्तर-) हाँ, भगवन् ! उसके कम्पन मे, यावत् उसके उस-उस रूप के परिणाम मे भी भेद है।' (भगवान् ने कहा—) हे माकन्दिकपुत्र ! इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि उस कर्म के उस-उस रूपादि-परिणाम मे भी भेद (नानात्व) है।

२२. नेरतियाणं भते ! पावे कम्मे जे य कडे०।
एवं चेव।

[२२ प्र] भगवन् ! नैरयिको ने (अतीत मे) जो पापकर्म किया है, यावत् (भविष्य मे) करेंगे, क्या उनमे परस्पर कुछ भेद है ?

[२२ उ] (हाँ, माकन्दिकपुत्र ! उनमे परस्पर भेद है।) वह उसी प्रकार (पूर्ववत् समझना चाहिए।)

२३. एवं जाव वेमाणियाणं।

[२३] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक (जान लेना चाहिए।)

विवेचन—कृत पापकर्म के भूत-वर्तमान-भविष्यत्कालिक परिणामो मे भेद का दृष्टान्तपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२१-२२-२३) मे जीवो के द्वारा किये गए, किये जा रहे तथा भविष्य मे किये जाने वाले पापकर्मों के परिणामो मे परस्पर भेद को धनुष-बाण फेंकने के दृष्टान्त द्वारा सिद्ध किया गया है।

स्पष्टीकरण—जैसे किसी पुरुष द्वारा धनुप और वाण के अलग-अलग समय मे ग्रहण करने, फिर अमुक स्थिति मे खडे रह कर वाण को कान तक खींचने और तत्पश्चात् उसे ऊपर फेंकने के विभिन्न कम्पनो मे, उसके प्रयत्न की विशेषता से भेद होता है, इसी प्रकार जीव द्वारा किये हुए भूत, भविष्य एव वर्तमान काल के कर्मो मे भी तीव्रमन्दादि परिणामो के भेद से तदनुरूप कार्य-कारित्व रूप नानात्व-विभिन्नता समझ लेना चाहिए ।[1]

कठिन शब्दार्थ—**धणु**—धनुप । **उसु**—वाण । **परामुसइ**—ग्रहण करता है । **ठाणं ठाइ**—अमुक स्थिति (आकृति) मे खडा होता है । **उड्ढ वेहास**—ऊपर आकाश मे । **उव्विहइ**—फेंकता है । **णाणत्तं**—नानात्व-विभिन्नत्व, भेद । **एयति**-- कम्पन होता है ।[2]

चौवीस दण्डकों द्वारा आहार रूप में गृहीत पुद्गलों में से भविष्य में ग्रहण एवं त्याग का प्रमाण-निरूपण

२४. नेरतिया णं भते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हति तेसि णं भते ! पोग्गलाणं सेयकालसि कतिभागं आहारेंति, कतिभागं निज्जरेंति ?

मागंदियपुत्ता ! असंखेज्जइभाग आहारेंति, अणंतभागं निज्जरेंति ।

[२४ प्र] भगवन् ! नैरयिक, जिन पुद्गलो को आहार रूप से ग्रहण करते हैं, भगवन् ! उन पुद्गलो का कितना भाग भविष्यकाल मे आहार रूप से गृहीत होता है और कितना भाग निर्जरता (-त्यागा जाता) है ?

[२४ उ] माकन्दिकपुत्र ! (उनके द्वारा आहार रूप से गृहीत पुद्गलो के) असख्यातवे भाग का आहार रूप से ग्रहण होता है और अनन्तवें भाग का निर्जरण होता है ।

२५. चक्किया णं भते ! केयि तेसु निज्जरापोग्गलेसु आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे, अणाहरणमेयं वुइयं समणाउसो !

[२५ प्र] भगवन् ! क्या कोई जीव (उन निर्जरा पुद्गलो पर वैठने, यावत् सोने (करवट वदलने) मे समर्थ है ?

[२५ उ] माकन्दिकपुत्र ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है । आयुष्मन् श्रमण ! ये निर्जरा पुद्गल अनाधार रूप कहे गए हैं (अर्थात्—ये कुछ भी धारण करने मे असमर्थ है ।)

२६. एवं जाव वेमाणियाण ।

सेव भते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

अट्ठारसमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ॥ १८-३ ॥

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्र ७४३

२ (क) वही, पत्र ७४३

(ख) भगवती, (विवेचन) (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २६८९

[२६] इसी प्रकार यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' भगवन् ! यह इसी प्रकार है।' यो कह कर माकन्दिकपुत्र यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—आहार रूप से गृहीत पुद्गलो के ग्रहण और त्याग एवं उन पुद्गलों की धारण-शक्ति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे इन दो तथ्यो का निरूपण किया गया है।

आहार रूप मे गृहीत पुद्गलो का कितना भाग ग्राह्य और त्याज्य होता है ?—आहार रूप मे गृहीत पुद्गलो का असख्यातवाँ सार भाग ग्रहण किया जाता है और अनन्तवाँ भाग मलमूत्रादिवत् त्याग दिया जाता है।

निर्जरा पुद्गलो का सामर्थ्य—निर्जरा किये हुए पुद्गल अनाधारणरूप होते हैं, अर्थात् वे किसी भी वस्तु को धारण करने मे समर्थ नही होते।[1]

कठिन शब्दार्थ—सेयकालंसि—भविष्यत्काल मे अर्थात्—ग्रहण करने के अनन्तर काल मे। **निज्जरेंति**—निर्जरण करते है—मूत्रादिवत् त्याग करते है। **चक्किया**—शक्य। **आसइत्तए**—बैठने मे। **तुयट्टित्तए**—करवट बदलने या सोने मे।[2]

॥ अठारहवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ७४३

२ (क) वही, पत्र ७४३

(ख) भगवती सूत्र भा ६, (विवेचन—प घेवरचन्दजी), पृ २६९०

चउत्थो उद्देसओ : 'पाणातिवाय'

चतुर्थ उद्देशक : 'प्राणातिपात'

जीव और अजीव द्रव्यों में से जीवों के लिए परिभोग्य अपरिभोग्य द्रव्यों का निरूपण

१. तेण कालेण तेण समएण रायगिहे जाव भगवं गोयमे एवं वयासि—

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नगर मे, यावत् गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—

२. [१] अह भंते ! पाणातिवाए मुसावाए जाव मिच्छादसणसल्ले, पाणातिवायवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणे, पुढविकाए जाव वणस्सतिकाये, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाये जीवे असरीरपडिबद्धे, परमाणुपोग्गले, सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे, सव्वे य बादरबोंदिधरा कलेवरा; एए णं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य जीवाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! पाणातिवाए जाव एए णं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य अत्थेगतिया जीवाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अत्थेगतिया जीवाणं जाव नो हव्वमागच्छंति ।

[२-१ प्र] भगवन् ! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य और प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक (त्याग) तथा पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, एव धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीर-प्रतिबद्ध (शरीररहित) जीव, परमाणु पुद्गल, शैलेशी अवस्था-प्रतिपन्न अनगार, और सभी स्थूलकाय धारक (स्थूलाकार) कलेवर, ये सब (मिल कर) दो प्रकार के हैं—(इनमे से कुछ) जीवद्रव्य रूप (है) और (कुछ) अजीव-द्रव्य रूप । प्रश्न यह है कि क्या ये सभी जीवो के परिभोग मे आते हैं ?

[२-१ उ] गौतम ! प्राणातिपात से लेकर सर्वस्थूलकायधर कलेवर तक जो जीवद्रव्यरूप और अजीवद्रव्यरूप हैं, इनमे से कई तो जीवो के परिभोग मे आते है और कई जीवो के परिभोग मे नही आते ।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति 'पाणाइवाए जाव नो हव्वमागच्छति ?'

गोयमा ! पाणातिवाए जाव मिच्छादसणसल्ले, पुढविकाइए जाव वणस्सतिकाइए सव्वे य बादरबोंदिधरा कलेवरा, एए ण दुविहा-जीवदव्वा य अजीवदव्वा य, जीवाण परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । पाणातिवायवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे, धम्मत्थिकाये अधम्मत्थिकाये जाव

परमाणुपोग्गले, सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे, एए णं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य जीवाणं परिभोगत्ताए नो हव्वमागच्छति। से तेणट्ठेण जाव नो हव्वमागच्छति।

[२-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते है कि प्राणातिपातादि जीव-अजीवद्रव्य-रूप मे से यावत् कई तो जीवो के परिभोग मे आते है और कई जीवो के परिभोग मे नही आते?

[२-२ उ] गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पति-कायिक और सभी स्थूलाकार कलेवरधारी (द्वीन्द्रियादि जीव), ये सब मिल कर जीवद्रव्यरूप और अजीवद्रव्यरूप—दो प्रकार के है, ये सब, जीवो के परिभोग मे आते हैं। तथा प्राणातिपात-विरमण, यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य-विवेक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् परमाणु-पुद्गल एव शैलेशी-अवस्था प्राप्त अनगार, ये सब मिल कर जीवद्रव्यरूप और अजीवद्रव्यरूप—दो प्रकार के हैं। ये सब जीवो के परिभोग मे नही आते। इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि कई द्रव्य जीवो के परिभोग मे आते है और कई द्रव्य परिभोग मे नही आते।

विवेचन—प्राणातिपातादि ४८ द्रव्यो मे से जीवो के लिए कितने परिभोग्य कितने अपरि-भोग्य?—प्राणातिपात आदि १८ पापस्थान, अठारह पापस्थानो का त्याग, पाच स्थावर, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीरी जीव, परमाणु पुद्गल, शैलेशी अवस्थापन्न अनगार, स्थूलाकार वाले त्रसकाय कलेवर, ये ४८ द्रव्य सामान्यतया दो प्रकार के है। इनमे से कितने ही जीव रूप है और कितने ही अजीवरूप हैं, किन्तु प्रत्येक दो प्रकार के नही है। इनमे से पृथ्वीकायादि जीव द्रव्य हैं और धर्मास्तिकायादि अजीव द्रव्य हैं। प्राणातिपातादि अशुद्धस्वभावरूप और प्राणातिपातादि-विरमण शुद्धस्वभाव रूप जीव के धर्म है। इसलिए ये जीव रूप कहे जा सकते हैं। जब जीव प्राणातिपातादि का प्रवृत्ति रूप से सेवन करता है, तब चारित्रमोहनीय कर्म उदय मे आता है। उसके द्वारा चारित्रमोहनीयकर्मदलिक भोग के कारण होने से प्राणातिपात आदि जीव के परिभोग मे आते हैं। पृथ्वीकायादि का परिभोग तो गमन-शौचादि द्वारा स्पष्ट ही है। प्राणातिपात-विरमणादि जीव के शुद्ध स्वरूप होने से चारित्रमोहनीय कर्म के उदय के हेतुभूत नही होते। वधादि-विरति-रूप होने से ये प्राणातिपात-विरमणादि जीव रूप है। इसलिए वे जीव के परिभोग मे नही आते। धर्मास्तिकायादि चार द्रव्य अमूर्त्त है, परमाणु सूक्ष्म है और शैलेशीप्राप्त अनगार उपदेशादि द्वारा प्रेरणा नही करते, इसलिए ये १८+४+१+१=२४ द्रव्य अनुपयोगी होने से जीव के परिभोग मे नही आते। शेष २४ (अठारह पाप, पाच स्थावर और बादर कलेवर) जीव के परिभोग मे आते हैं।[1]

कठिन शब्दार्थ—जीवे असरीरप्रतिबद्धे—शरीररहित केवल शुद्ध जीव (आत्मा)। **बादर-बोंदिधरा कलेवरा**—स्थूलशरीरधारी जीवो (द्वीन्द्रियादि त्रस जीवो) के कलेवर।[2]

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्र ७४५

२ (क) वही, पत्र ७४५

(ख) भगवती विवेचन, भा ६ (प घेवरचन्दजी) पृ २६९३

कषाय : प्रकार तथा तत्सम्बद्ध कार्यों का कषायपद के अतिदेशपूर्वक निरूपण

३. कति ण भंते ! कसाया पन्नत्ता ? गोयमा ! चत्तारि कसाया पन्नत्ता, तं जहा—कसायपय निरवसेस भाणियव्व जाव निज्जरिस्संति लोभेण ।

[३ प्र] भगवन् ! कषाय कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! कषाय चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—इत्यादि प्रज्ञापना-सूत्र का चौदहवाँ समग्र कषाय पद, यावत् लोभ के वेदन द्वारा अष्टविध कर्मप्रकृतियो की निर्जरा करेंगे, यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—नैरयिको आदि की चार कषायो से निर्जरा—प्रस्तुत सूत्र ३ मे प्रज्ञापना सूत्र के चौदहवे कषाय पद का अतिदेश किया गया है । इसमे सारभूत तथ्य यह है कि नैरयिकादि जीवो के आठों ही कर्मप्रकृतियों की निर्जरा क्रोधादि चार कषायो के वेदन द्वारा होती है, क्योकि नैरयिकादि जीवो के आठो ही कर्म उदय मे रहते है और उदय मे आए हुए कर्मो की निर्जरा अवश्य होती है । नैरयिकादि कषाय के उदय वाले है । कषाय का उदय होने पर उसके वेदन के पश्चात् कर्मों की निर्जरा होती है । जैसे कि प्रज्ञापना मे कहा है—क्रोधादि के द्वारा वैमानिको आदि के आठो कर्मों की निर्जरा होती है ।[1]

युग्म : कृतयुग्मादि चार और स्वरूप

४ [१] कति णं भंते ! जुम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पन्नत्ता, तं जहा—कडजुम्मे तेयोए दावरजुम्मे कलिओए ।

[४-१ प्र] भगवन् ! युग्म (राशियाँ) कितने कहे गए है ?

[४-१ उ] गौतम ! युग्म चार कहे गए हैं । यथा—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति—जाव कलिओए ?

गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएण अवहारेण अवहीरमाणे चउपज्जवसिए से त्त कडजुम्मे । जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेण अवहीरमाणे तिपज्जवसिए से त्त तेयोए । जे ण रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए से त्तं दावरजुम्मे । जे ण रासी चउक्कएण अवहारेण अवहीरमाणे एगपज्जवसिए से त्तं कलिओये, से तेणट्ठेण गोतमा ! एव वुच्चति जाव कलिओए ।

[४-२ प्र] भगवन् ! आप किस कारण से कहते है कि यावत् कल्योज-पर्यन्त चार राशियाँ कही गई है ?

---

१ (क) भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्र ७४५

(ख) 'वेमाणिया ण भंते ! कईहि ठाणेहि अट्ठ कम्मपयडीओ निज्जरिस्सति ?'
'गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं, तं जहा—कोहेण जाव लोभेण ति ।'

—प्रज्ञापना पद १४, भा १, पृ २३४-२३६

[४-२ उ] गौतम ! जिस राशि मे से चार-चार निकालने पर, अन्त मे चार शेष रहे, वह राशि है—'कृतयुग्म'। जिस राशि मे से चार-चार निकालते हुए अन्त मे तीन शेष रहे, वह राशि 'त्र्योज' कहलाती है। जिस राशि मे से चार-चार निकालने पर अन्त मे दो शेष रहे, वह राशि 'द्वापर-युग्म' कहलाती है। और जिस राशि मे से चार-चार निकालते हुए अन्त मे एक शेष रहे, वह राशि 'कल्योज' कहलाती है। इस कारण से ये राशियाँ ('कृतयुग्म' से लेकर) यावत् 'कल्योज' कही जाती हैं।

विवेचन—युग्म तथा चतुर्विध युग्मों की परिभाषा—गणितशास्त्र की परिभाषा के अनुसार समराशि का नाम युग्म है और विषमराशि का नाम 'ओज' है। यहाँ जो राशि (युग्म) के चार भेद कहे गए हैं, उनमे से दो युग्म राशियाँ है और दो ओज राशियाँ है। तथापि यहाँ युग्म शब्द शास्त्रीय पारिभाषिक होने से युग्म शब्द से चारो प्रकार की राशियाँ विवक्षित हुई है। इसलिए चार युग्म अर्थात्—चार राशियाँ कही गई है। अगले प्रश्न (४-२) का आशय यह है कि कृतयुग्म आदि ऐसा नाम क्यो रखा गया? इन चारो पदो का अन्वर्थक नाम किस प्रकार से है? जिस राशिविशेष मे से चार-चार कम करते-करते अन्त मे चार ही बचे, उसका नाम **कृतयुग्म** है। जैसे १६, ३२ इत्यादि, इन सख्याओ मे से चार-चार कम करने पर अन्त मे चार ही बचते हैं। जिस राशि मे से चार-चार घटाने पर अन्त मे तीन बचते है, वह राशि **त्र्योज** है, जैसे १५, २३ इत्यादि सख्याएँ। जिस राशि मे से चार-चार कम करने पर अन्त मे दो बचते है, वह राशि द्वापर-युग्म राशि है, जैसे—६-१० इत्यादि सख्या। जिस राशि मे से चार-चार कम करने पर अन्त मे एक बचता है, वह राशि **'कल्योज'** कहलाती है, जैसे—१३-१७ इत्यादि। कृतयुग्म आदि सब पारिभाषिक नाम है।[1]

चौबीस दण्डक, सिद्ध और स्त्रियो में कृतयुग्मादिराशिप्ररूपणा

५. नेरतिया णं भंते ! किं कडजुम्मा तेयोया दावरजुम्मा कलिओया ?

गोयमा ! जहन्नपए कडजुम्मा, उक्कोसपए तेयोया, अजहन्नमणुक्कोसपदे सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोया।

[५ प्र] भगवन् ! नैरयिक क्या कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है, अथवा कल्योज है?

[५ उ] गौतम ! वे जघन्यपद मे कृतयुग्म है, उत्कृष्ट-पद मे त्र्योज है, तथा अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम) पद मे कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज है।

६. एवं जाव थणियकुमारा।

[६] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक (के विषय मे भी) (कहना चाहिए।)

७ वणस्सतिकातिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नपदे अपदा, उक्कोसपदे अपदा, अजहन्नमणुक्कोसपदे सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्र ७४५

(ख) भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १३, पृ १७-१८

[७ प्र.] भगवन् ! वनस्पतिकायिक कृतयुग्म है, (अथवा) यावत् कल्योजरूप है ?

[७ उ] वे जघन्यपद की अपेक्षा अपद है, और उत्कृष्टपद की अपेक्षा भी अपद है। अजघन्योत्कृष्टपद की अपेक्षा कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज रूप है।

८. बेइंदिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नपए कडजुम्मा, उक्कोसपए दावरजुम्मा, अजहन्नमणुक्कोसपए सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा।

[८ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रियजीवो के विषय मे भी इसी प्रकार का प्रश्न है ?

[८ उ] गौतम ! (द्वीन्द्रियजीव) जघन्यपद मे कृतयुग्म है और उत्कृष्टपद मे द्वापरयुग्म हैं, किन्तु अजघन्योत्कृष्ट पद मे कदाचित् कृतयुग्म, यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

९. एवं जाव चतुरिंदिया।

[९] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय पर्यन्त कहना चाहिए।

१०. सेसा एगिंदिया जहा बेंदिया।

[१०] शेष एकेन्द्रियो की वक्तव्यता, द्वीन्द्रिय की वक्तव्यता के समान समझना चाहिए।

११. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वेमाणिया जहा नेरतिया।

[११] पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिको से लेकर यावत् वैमानिको तक का कथन नैरयिको के समान (जानना चाहिए।)

१२. सिद्धा जहा वणस्सतिकाइया।

[१२] सिद्धो का कथन वनस्पतिकायिको के समान जानना चाहिए।

१३. इत्थीओ णं भंते ! किं कडजुम्माओ० पुच्छा। गोयमा ! जहन्नपदे कडजुम्माओ, उक्कोसपए कडजुम्माओ, अजहन्नमणुक्कोसपए सिय कडजुम्माओ जाव सिय कलियोगाओ।

[१३ प्र] भगवन् ! क्या स्त्रियाँ कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१३ उ] गौतम ! वे जघन्यपद मे कृतयुग्म है और उत्कृष्टपद मे भी कृतयुग्म हैं, किन्तु अजघन्योकृष्टपद मे कदाचित् कृतयुग्म हैं, और यावत् कदाचित् कल्योज है।

१४. एव असुरकुमारित्थीओ वि जाव थणियकुमारित्थीओ।

[१४] असुरकुमारो की स्त्रियो (देवियो) से लेकर यावत् स्तनितकुमार-स्त्रियो तक इसी प्रकार (पूर्ववत्) (समझना चाहिए।)

१५, एव तिरिक्खजोणित्थीओ।

[१५] तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियो का कथन भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

१६. एवं मणुस्सित्थीओ।

[१६] मनुष्य-स्त्रियो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

१७. एवं जाव वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियदेवित्थीओ ।

[१७] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की देवियो के विषय मे भी इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

विवेचन—नारक से वैमानिक तक तथा उनकी स्त्रियों और सिद्धो मे कृतयुग्मादि राशि-परिमाण-निरूपण—प्रस्तुत १३ सूत्रो (सू ५ से १७ तक) मे नैरयिक से लेकर वैमानिक तक तथा उनकी स्त्रियो और सिद्धो मे कृतयुग्मादिराशि का प्रतिपादन किया गया है ।

फलितार्थ—प्रश्न का आशय यह है कि नारक से वैमानिक तक तथा उनकी स्त्रियाँ क्या कृतयुग्मादि रूप हैं ? अर्थात् इनका परिमाण क्या कृतयुग्म-रूप है या अन्य प्रकार का है ? इसके उत्तर का आशय यह है कि जघन्यपद और उत्कृष्टपद, ये दोनो पद निश्चित सख्यारूप होते हैं । इसी से ये दोनो पद नियतसंख्या वाले नारकादि मे ही सम्भव हैं, अनियत सख्या वाले वनस्पति-कायिको एव सिद्धो मे नही । इसका एक कारण यह भी है कि नारकादिको मे जघन्यपद और उत्कृष्ट पद कालान्तर मे सम्भव है, जब कि वनस्पतिकायिक जीवो के विषय मे कालान्तर मे भी जघन्य और उत्कृष्ट पद सभवित नही होता । अत निश्चित सख्या वाले नैरयिक आदि की राशि का परिमाण इन पारिभाषिक शब्दो मे करते हुए कहते है कि जब वे अत्यन्त अल्प होते हैं, तब कृतयुग्म होते हैं, जब उत्कृष्ट होते है तब त्र्योज होते है तथा मध्यमपद मे वे चारो राशि वाले होते है । इसी प्रकार तिर्यञ्च पचेन्द्रिय, मनुष्य, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव-ये सब जघन्यपद मे कृतयुग्मराशि-परिमित है और उत्कृष्ट पद मे त्र्योजराशि-परिमित है । मध्यमपद मे कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वापरयुग्म और कदाचित् कल्योज है । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पृथ्वी-अप् तेजो-वायु रूप जीव जघन्यपद मे कृतयुग्म रूप एव उत्कृष्टपद मे द्वापरयुग्मपरिमित है, मध्यमपद मे चारो राशि वाले होते हैं । वनस्पतिकाय की सख्या निश्चित न होने से उनमे जघन्य और उत्कृष्ट पद घटित नही हो सकता, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं । यद्यपि जितने जीव परम्परा से मोक्ष मे चले जाते है, उतने जीव उनमे से घटते ही हैं, तथापि उसका अनन्तत्व कायम रहने से वह राशि अनिश्चित सख्यारूप मानी जाती है । वनस्पतिकाय के समान सिद्धजीवो मे भी जघन्यपद और उत्कृष्ट पद सम्भव नही होता, क्योकि सिद्ध जीवो की सख्या बढती जाती है, तथा अनन्त होने से उनका परिमाण अनियत रहता है ।

नारक सभी नपु सक होने से उनमे स्त्रियाँ सम्भव नही है । असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक की स्त्रियाँ (देवियाँ), तिर्यचयोनिक स्त्रियाँ, मनुष्यस्त्रियाँ तथा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की स्त्रियाँ जघन्य और उत्कृष्ट दोनो पदो मे कृतयुग्म-परिमित हैं । मध्यमपद मे कृतयुग्म आदि चारो राशियो वाली है ।[1]

अन्धकवह्नि जीवों में अल्पबहुत्व परिमाण-निरूपण

१८. जावतिया ण भते ! वरा अधगवण्हिणो जीवा तावतिया परा अधगवण्हिणो जीवा ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७४५

(ख) भगवती भाग १३, (प्रमेयचन्द्रिका टीका) पृ २२-२३

हंता, गोयमा ! जावतिया वरा अंधगवण्हिणो जीवा तावतिया परा अंधगवण्हिणो जीवा ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

अट्ठारसमे सए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ।। १८-४ ।।

[१८ प्र.] भगवन् ! जितने अल्प आयुष्य वाले अन्धकवह्नि जीव हैं, क्या उतने ही उत्कृष्ट आयुष्य वाले अन्धकवह्निजीव है ?

[१८ उ.] हाँ, गौतम ! जितने अल्पायुष्क अन्धकवह्नि जीव है, उतने ही उत्कृष्टायुष्क अन्धकवह्नि जीव हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अन्धकवह्नि : दो विशेषार्थ—(१) वृत्तिकार के अनुसार—अन्धक की संस्कृत-छाया 'अह्निप' होती है, जो वृक्ष का पर्यायवाची शब्द है। अतः अह्निप यानी वृक्ष को आश्रित करके रहने वाले अह्निपवह्नि अर्थात्—बादरतेजस्कायिकजीव। (२) अन्य आचार्यों के मतानुसार—अन्धक अर्थात् सूक्ष्मनामकर्म के उदय से अप्रकाशक (प्रकाश न करने वाली) वह्नि-अग्नि, अर्थात्—सूक्ष्म अग्निकायिक जीव। ये जितने अल्पायुष्य वाले है, उतने ही जीव दीर्घायुष्य वाले हैं।

कठिनशब्दार्थ—जावइया—जितने परिमाण मे, **तावइया**—उतने परिमाण मे। **वरा**=अवर यानी आयुष्य की अपेक्षा अर्वाग्भागवर्ती—अल्प आयुवाले। **परा**—प्रकृष्ट यानी स्थिति से उत्कृष्ट (दीर्घ) आयुष्य वाले।[1]

।। अठारहवां शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ।।

---

१. भगवती, अ. वृत्ति, पत्र ७४५-७४६

पंचमो उद्देसओ : 'असुरे'

पंचम उद्देशक : 'असुर'

एक निकाय के दो देवों में दर्शनीयता-अदर्शनीयता आदि के कारणो का निरूपण

१. [१] दो भंते ! असुरकुमारा एगसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमारदेवत्ताए उववन्ना। तत्थ णं एगे असुरकुमारे देवे पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे, एगे असुरकुमारे देवे से ण नो पासादीए नो दरिसणिज्जे नो अभिरूवे नो पडिरूवे, से कहमेय भते ! एव ? गोयमा ! असुरकुमारा देवा दुविहा पन्नत्ता, त जहा—वेउव्वियसरीरा य अवेउव्वियसरीरा य। तत्थ ण जे से वेउव्वियसरीरे असुरकुमारे देवे से ण पासादीए जाव पडिरूवे। तत्थ ण जे से अवेउव्वियसरीरे असुरकुमारे देवे से णं नो पासादीए जाव नो पडिरूवे।

[१-१ प्र] भगवन् ! दो असुरकुमारदेव, एक ही असुरकुमारावास मे असुरकुमारदेवरूप मे उत्पन्न हुए। उनमे से एक असुरकुमारदेव प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला (प्रासादीय), दर्शनीय, सुन्दर और मनोरम होता है, जबकि दूसरा असुरकुमारदेव न तो प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला होता है, न दर्शनीय, सुन्दर और मनोरम होता है, भगवन् ऐसा क्यो होता है ?

[१-१ उ] गौतम ! असुरकुमारदेव दो प्रकार के कहे गए है, यथा—वैक्रिय शरीर वाले (विभूषित शरीर वाले) और अवैक्रिय शरीर वाले (अविभूषित शरीर वाले)। उनमे से जो वैक्रिय शरीर वाले असुरकुमार देव होते हैं, वे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, सुन्दर और मनोरम होते है, किन्तु जो अवैक्रिय शरीर वाले है, वे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले यावत् मनोरम नही होते।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ 'तत्थ ण जे से वेउव्वियसरीरे तं चेव जाव नो पडिरूवे' ? 'गोयमा ! से जहानामए इहं मणुयलोगंसि दुवे पुरिसा भवंति—एगे पुरिसे अलंकियविभूसिए, एगे पुरिसे अणलंकियविभूसिए, एएसिं ण गोयमा ! दोण्ह पुरिसाणं कयरे पुरिसे पासादीए जाव पडिरूवे ? कयरे पुरिसे नो पासादीए जाव नो पडिरूवे ? जे वा से पुरिसे अलंकियविभूसिए, जे वा से पुरिसे अणलंकियविभूसिए ?'

'भगवं ! तत्थ ण जे से पुरिसे अलंकियविभूसिए से ण पुरिसे पासादीये जाव पडिरूवे, तत्थ ण जे से पुरिसे अणलंकियविभूसिए से ण पुरिसे नो पासादीए जाव नो पडिरूवे'। से तेणट्ठेणं जाव नो पडिरूवे।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि वैक्रिय शरीर वाले देव प्रसन्नता-उत्पादक यावत् मनोरम होते है, अवैक्रिय शरीर वाले नही होते ?

[१-२ उ] गौतम ! जैसे, इस मनुष्यलोक मे दो पुरुष हो, उनमे से एक पुरुष आभूषणो से अलकृत और विभूषित हो और एक पुरुष अलकृत और विभूषित न हो, तो हे गौतम ! (यह बताओ कि) उन दोनो पुरुषो मे कौन-सा पुरुष प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, यावत् मनोरम्य लगता है और कौन-सा प्रसन्नता उत्पादक यावत् मनोरम्य नही लगता ? जो पुरुष अलकृत और विभूषित है, वह अथवा जो पुरुष अलकृत और विभूषित नही है वह ?

(गौतम—) भगवन् ! उन दोनो मे से जो पुरुष अलकृत और विभूषित है, वही प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यावत् मनोरम्य है, और जो पुरुष अलकृत और विभूषित नही है, वह प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, यावत् मनोरम्य नही है ।

(भगवान्—) हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा गया है कि यावत् (जो अविभूषित शरीर वाले असुरकुमार हैं) वे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले यावत् मनोरम्य नही है ।

२. दो भते ! नागकुमारा देवा एगंसि नागकुमारावासंसि० ?

एवं चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! दो नागकुमारदेव एक नागकुमारावास मे नागकुमाररूप मे उत्पन्न हुए इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[२ उ] गौतम ! पूर्वोक्तरूप से समझना चाहिए ।

३. एव जाव थणियकुमारा ।

[३] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुसार तक (जानना चाहिए ।)

४. वामंतर-जोतिसिय-वेमाणिया एव चेव ।

[४] वाण-व्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे भी इसी प्रकार (समझना चाहिए ।)

विवेचन—एक ही निकाय के दो देवों में परस्पर अन्तर—प्रस्तुत चार सूत्रो (१-४) मे चारो प्रकार के देवो मे से एक ही आवास मे उत्पन्न होने वाले दो देवो मे प्रसन्नता, सुन्दरता और मनोरमता मे अन्तर का कारण क्रमश वैक्रियशरीरसम्पन्नता और अवैक्रियशरीरयुक्तता बताया गया है । वैसे तो प्रत्येक देव के वैक्रियशरीर भवधारणीय (जन्म से) होता है, किन्तु यहाँ अवैक्रियशरीर युक्त कहने का तात्पर्य है—अविभूषित शरीरयुक्त और वैक्रिय शरीरयुक्त कहने का अर्थ है—विभूषित शरीर वाला । आशय यह है कि कोई भी देव जब देवशय्या मे उत्पन्न होता है, तब सर्वप्रथम वह अलकार आदि विभूषा से रहित होता है । इसके पश्चात् क्रमश वह अलकार आदि धारण करके विभूषित होता है । अत यहाँ वैक्रिय शरीर का अर्थ विभूषित शरीर है और अवैक्रिय शरीर का अर्थ है—अविभूपित शरीर ।[1]

---

१ भगवतीसूत्र विवेचन (प घेवरचन्द जी), भा ४, पृ २७०२

चौवीस दण्डकों मे स्वदण्डकवर्ती दो जीवो मे महाकर्मत्व-अल्पकर्मत्वादि के कारणो का निरूपण

५. दो भंते ! नेरइया एगंसि नेरतियावासंसि नेरतियत्ताए उववन्ना । तत्थ णं एगे नेरइए महाकम्मतराए चेव जाव महावेदणतराए चेव, एगे नेरइए अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेदणतराए चेव, से कहमेयं भंते ! एवं ?

गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगा य, अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नगा य । तत्थ णं जे से मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नए नेरतिए से णं महाकम्मतराए चेव जाव महावेदणतराए चेव, तत्थ णं जे से अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नए नेरइए से णं अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेदणतराए चेव ।

[५ प्र] भगवन् ! दो नैरयिक एक ही नरकावास मे नैरयिकरूप से उत्पन्न हुए । उनमे से एक नैरयिक महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला और एक नैरयिक अल्पकर्मवाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है, तो भगवन् ! ऐसा क्यो होता है ?

[५ उ] गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये है । यथा—मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक । इनमे से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक नैरयिक है वह महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला है, और उनमे जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक नैरयिक है, वह अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है ।

६. दो भंते ! असुरकुमारा० ?

एवं चेव ।

[६ प्र] भगवन् ! दो असुरकुमारो के महाकर्म-अल्पकर्मादि विषयक प्रश्न ?

[६ उ] हे गौतम ! यहा भी उसी प्रकार (पूर्ववत्) समझना चाहिए ।

७ एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जा जाव वेमाणिया ।

[७] इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोडकर यावत् वैमानिक तक समझना चाहिए ।

विवेचन—नैरयिक से वैमानिक तक महाकर्मादि एवं अल्पकर्मादि का कारण—महाकर्म आदि चार पद हैं । यथा—महाकर्म, महाक्रिया, महा-आश्रव और महावेदना । इन चारो की व्याख्या पहले की जा चुकी है । महाकर्मता आदि का कारण मायीमिथ्यादृष्टित्व है, और अल्पकर्मता आदि का कारण अमायीसम्यग्दृष्टित्व है । एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवो मे इस प्रकार का अन्तर नही होता, क्योकि उनमे एकमात्र मायीमिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अमायीसम्यग्दृष्टि नही । इसलिए उनमे केवल महाकर्म आदि वाले ही है, अल्पकर्मादि वाले नही । इसीलिए यहा एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोडकर सभी दण्डको मे दो-दो प्रकार के जीव बताए है ।[1]

---

१ भगवती विवेचन भा ६ (प घेवरचन्दजी) पृ २७०३

चौबीस दण्डको मे वर्तमानभव और आगामीभव की अपेक्षा आयुष्यवेदन का निरूपण

८. नेरइए ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता जे भविए पचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भते ! कयरं आउयं पडिसवेदेति ?

गोयमा ! नेरइयाउयं पडिसवेदेति, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाउए से पुरओ कडे चिट्ठइ ।

[८ प्र] भगवन् ! जो नैरयिक मर कर अन्तर-रहित (सीधे) पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिको मे उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन् ! वह किस आयुष्य का प्रतिसवेदन करता है ?

[८ उ] गौतम ! वह नारक नैरयिक-आयुष्य का प्रति-सवेदन (अनुभव) करता है, और पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक के आयुष्य के उदयाभिमुख—(पुर कृत) करके रहता है ।

९. एव मणुस्सेसु वि, नवर मणुस्साउए से पुरतो कडे चिट्ठति ।

[९] इसी प्रकार (अन्तररहित) मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य जीव के विषय मे समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह मनुष्य के आयुष्य को उदयाभिमुख करके रहता है ।

१०. असुरकुमारे ण भते ! अणतरं उव्वट्टित्ता जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए० पुच्छा ।

गोयमा ! असुरकुमाराउय पडिसवेदेति, पुढविकाइयाउए से पुरतो कडे चिट्ठइ ।

[१० प्र] भगवन् ! जो असुरकुमार मर कर अन्तररहित पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने योग्य है, उसके विषय मे पूर्ववत् प्रश्न ?

[१० उ] गौतम ! वह असुरकुमार के आयुष्य का प्रतिसवेदन (अनुभव) करता है और पृथ्वीकायिक के आयुष्य को उदयाभिमुख करके रहता है ।

११. एव जो जहि भविओ उववज्जित्तए तस्स त पुरतो कड चिट्ठति, जत्थ ठितो त पडिसवेदेति जाव वेमाणिए । नवर पुढविकाइओ पुढविकाइएसु उववज्जतओ पुढविकाइयाउयं पडिसंवेदेति, अन्ने य से पुढविकाइयाउए पुरतो कडे चिट्ठति । एवं जाव मणुस्सो सट्ठाणे उववातेयव्वो, परट्ठाणे तहेव ।

[११] इस प्रकार जो जीव जहा उत्पन्न होने के योग्य है, वह उसके आयुष्य को उदयाभिमुख करता है, और जहा रहा हुआ है, वहा के आयुष्य का वेदन (अनुभव) करता है । इस प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए । विशेष यह है कि जो पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिको मे ही उत्पन्न होने योग्य है, वह अपने उसी पृथ्वीकायिक के आयुष्य का वेदन करता है और अन्य पृथ्वीकायिक के आयुष्य को उदयाभिमुख (पुर कृत) करके रहता है । इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक स्वस्थान मे उत्पाद के विषय मे कहना चाहिए । परस्थान मे उत्पाद के विषय मे पूर्वोक्तवत् समझना चाहिए ।

विवेचन—कौन किस आयु का वेदन करता है ?—सू ८ से ११ तक मे एक सैद्धान्तिक तथ्य

प्रस्तुत किया गया है कि जो जीव जब तक जिस आयु सम्बन्धी शरीर को धारण करके रहा हुआ है, वह तब तक उसी के आयुष्य का वेदन करता है, किन्तु वह मर कर जहा उत्पन्न होने के योग्य है उसके आयुष्य को उदयाभिमुख करता है। तथा उस शरीर को छोड देने के वाद ही वह जहा उत्पन्न होता है, वहा के आयुष्य का वेदन करता है। जैसे एक नैरयिक जब तक नैरयिक का शरीर धारण किये हुए है, तब तक वह नरक के आयुष्य का वेदन करता है, किन्तु वह मरकर यदि अन्तर रहित पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिको मे उत्पन्न होने योग्य है तो उसके आयुष्य को उदयाभिमुख कर रहता है, किन्तु नैरयिक शरीर को छोड देने के बाद जब वह तिर्यञ्च पचेन्द्रिय मे उत्पन्न होता है तो वहा के आयुष्य का वेदन करता है।[1]

चतुर्विध देवनिकायो में देवों की स्वेच्छानुसार विकुर्वणाकरण-अकरण-सामर्थ्य के कारणों का निरूपण

१२. दो भंते ! असुरकुमारा एगंसि असुरकुमारावाससि असुरकुमारदेवत्ताए उववन्ना। तत्थ ण एगे असुरकुमारे देवे 'उज्जुयं विउव्विस्सामी' ति उज्जुयं विउव्वइ, 'वकं विउव्विस्सामी' ति वक विउव्वइ, जं जहा इच्छति त तहा विउव्वइ। एगे असुरकुमारे देवे 'उज्जुयं विउव्विस्सामी' ति वकं विउव्वति, 'वक विउव्विस्सामी' ति उज्जुयं विउव्वति, जं जहा इच्छति णो तं तहा विउव्वति। से कहमेयं भते ! एव ?

गोयमा ! असुरकुमारा देवा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगा य अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नगा य। तत्थ णं जे से मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नए असुरकुमारे देवे से णं 'उज्जुयं विउव्विस्सामी' ति वकं विउव्वति जाव णो तं तहा विउव्वइ, तत्थ णं जे से अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नए असुरकुमारे देवे से 'उज्जुयं विउव्विस्सामी' ति उज्जुयं विउव्वति जाव तं तहा विउव्वइत्ति।

[१२ प्र] भगवन् ! दो असुरकुमार, एक ही असुरकुमारावास मे असुरकुमार रूप से उत्पन्न हुए, उनमे से एक असुरकुमार देव यदि वह चाहे कि मैं ऋजु (सरल) रूप से विकुर्वणा करूंगा, तो वह ऋजु-विकुर्वणा कर सकता है और यदि वह चाहे कि मैं वक्र (टेढे) रूप मे विकुर्वणा करूंगा, तो वह वक्र-विकुर्वणा कर सकता है। अर्थात् वह जिस रूप की, जिस प्रकार से विकुर्वणा करना चाहता है, उसी रूप की, उसी प्रकार से विकुर्वणा कर सकता है, जब कि एक असुरकुमारदेव चाहता है कि मैं ऋजु-विकुर्वणा करूं, परन्तु वक्ररूप की विकुर्वणा हो जाती है और वक्ररूप को विकुर्वणा करना चाहता है, तो ऋजुरूप की विकुर्वणा हो जाती है। अर्थात् वह जिस रूप को, जिस प्रकार से विकुर्वणा करना चाहता है, वह उस रूप की उस प्रकार से विकुर्वणा नही कर पाता; तो भगवन् ! ऐसा क्यो होता है ?

[१२ उ] गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा-मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। इनमे से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक असुरकुमार देव हैं, वह ऋजुरूप की विकुर्वणा करना चाहे तो वक्ररूप की विकुर्वणा हो जाती है, यावत् जिस रूप

---

१. भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७०५

की, जिस प्रकार से विकुर्वणा करना चाहता है, उस रूप की उस प्रकार से विकुर्वणा नहीं कर पाता किन्तु जो अमायिसम्यग्दृष्टि-उपपन्नक असुरकुमारदेव है, वह ऋजुरूप की विकुर्वणा करना चाहे तो ऋजुरूप की विकुर्वणा कर सकता है, यावत् जिस रूप की जिस प्रकार से विकुर्वणा करना चाहता है, उस रूप की उस प्रकार से विकुर्वणा कर सकता है।

१३. दो भंते ! नागकुमारा० ?

एवं चेव।

[१३ प्र] भगवन् ! दो नागकुमारों के विषय में पूर्ववत् प्रश्न है ?

[१३ उ] गौतम ! उसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए।

१४. एव जाव थणियकुमारा।

[१४] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक के विषय में (जानना चाहिए।)

१५. वाणमंतरा-जोतिसिय-वेमाणिया एव चेव।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

।। अट्ठारसमे सए : पचम उद्देसओ समत्तो ।।१८-५।।

[१५] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में भी इसी प्रकार (कथन करना चाहिए।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—स्वेच्छानुसार या स्वेच्छाविपरीत विकुर्वणा करने का कारण—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक, इन चार प्रकार के देवों में से कितने ही देव स्वेच्छानुकूल सीधी या टेढ़ी विकुर्वणा (विक्रिया) कर सकते हैं, इसका कारण यह है कि उन्होंने ऋजुतायुक्त सम्यग्दर्शन निमित्तक तीव्र रस वाले वैक्रियनामकर्म का बन्ध किया है और जो देव अपनी इच्छानुकूल सीधी या टेढी विकुर्वणा नहीं कर सकते, उसका कारण यह है कि उन्होंने माया-मिथ्यादर्शन-निमित्तक मन्द रस वाले वैक्रियनामकर्म का बन्ध किया है। इसलिए प्रस्तुत चार सूत्रों (१२ से १५ तक) में यह सिद्धान्त प्ररूपित किया गया है कि अमायी सम्यग्दृष्टिदेव स्वेच्छानुसार रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं जब कि मायी-मिथ्यादृष्टिदेव स्वेच्छानुसार रूपों की विकुर्वणा[1] नहीं कर सकते।

।। अठारहवाँ शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७४७, (ख) भगवती विवेचना भा. ६ (पं. घेवरचन्दजी), पृ २७०७

छट्ठो उद्देसओ : 'गुल'

छठा उद्देशक : 'गुड़' (आदि के वर्णादि)

फाणित-गुड़, भ्रमर, शुक-पिच्छ, रक्षा, मंजीठ आदि पदार्थों में व्यवहार-निश्चयनय की दृष्टि से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-प्ररूपणा

१. फाणियगुले णं भंते ! कतिवण्णे कतिगंधे कतिरसे कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! एत्थ दो नया भवंति, तं जहा—नेच्छयियनए य वावहारियनए य। वावहारियनयस्स गोड्डे फाणियगुले, नेच्छइयनयस्स पंचवण्णे दुगंधे पंचरसे अट्ठफासे पन्नत्ते।

[१ प्र] भगवन् ! फाणित (गीला) गुड कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाला कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! इस विषय मे दो नयो (का आश्रय लिया जाता) है। यथा—नैश्चयिक नय और व्यावहारिक नय। व्यावहारिक नय को अपेक्षा से फाणित-गुड मधुर (गौल्य) रस वाला कहा गया है और नैश्चयिक नय की दृष्टि से गुड पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाला कहा गया है।

२. भमरे ण भते ! कतिवण्णे० पुच्छा।

गोयमा ! एत्थ दो नया भवंति, तं जहा—नेच्छइयनए य वावहारियनए य। वावहारियनयस्स कालए भमरे, नेच्छइयनयस्स पचवण्णे जाव अट्ठफासे पन्नत्ते।

[२ प्र] भगवन् ! भ्रमर कितने वर्ण-गधादि वाला है ? इत्यादि प्रश्न ?

[२ उ] गौतम ! व्यावहारिक नय से भ्रमर काला है और नैश्चयिक नय से भ्रमर पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाला है।

३. सुयपिछे णं भते ! कतिवण्णे० ?

एवं चेव, नवरं वावहारियनयस्स नीलए सुयपिच्छे, नेच्छइयनयस्स पंचवण्णे० सेसं तं चेव।

[३ प्र] भगवन् ! तोते की पाखें कितने वर्ण वाली हैं ? इत्यादि प्रश्न ?

[३ उ] गौतम ! व्यावहारिक नय से तोते की पाखें हरे रग की हैं और नैश्चयिक नय से पाच वर्ण वाली, इत्यादि पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिए।

४. एवं एएणं अभिलावेणं लोहिया मजिट्ठी पीतिया हलिद्दा, सुक्किलए संखे, सुब्भिगंधे कोट्ठे, दुब्भिगंधे मयगसरीरे, तित्ते निंबे, कडुया सुंठी, कसाय-तुरए कविट्ठे, अंबा अंबलिया, महुरे खंडे, कक्खडे वइरे, मउए नवणीए, गरुए अये, लहुए उलुयपत्ते, सीए हिमे, उसिणे अगणिकाए, णिद्धे तेल्ले।

[४] इसी प्रकार इसी अभिलाप द्वारा, मजीठ लाल है, हल्दी पीली है, शख शुक्ल (सफेद) है, कुष्ठ (कूट)—पटवास (कपडे मे सुगन्ध देने की पत्ती) सुरभिगन्ध (सुगन्ध) है, मृतकशरीर (शव) दुर्गन्धित है, नीम (निम्ब) तिक्त (कडवा) है, सूठ कटुय (तीखी—चरपरी) है, कपित्थ (कविठ) कसैली है, इमली खट्टी है, खाड (शक्कर) मधुर है, वज्र कर्कश (कठोर) है, नवनीत (मक्खन) मृदु (कोमल) है, लोह भारी है, उलुकपत्र (बोरडी का पत्ता) हल्का है, हिम (बर्फ) ठण्डा है, अग्निकाय उष्ण (गर्म) है, तेल स्निग्ध (चिकना) है। किन्तु नैश्चयिक नय से इन सब मे पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श है।

५. छारिया णं भंते० पुच्छा।

गोयमा ! एत्थ दो नया भवंति, त जहा—नेच्छइयनए य वावहारियनए य। वावहारियनयस्स लुक्खा छारिया, नेच्छइयनयस्स पचवण्णा जाव अट्ठ फासा पन्नत्ता।

[५ प्र] भगवन् ! राख कितने वर्ण वाली है?, इत्यादि प्रश्न ?

[५ उ] गौतम ! व्यावहारिक नय से राख रूक्ष स्पर्श वाली है, और नैश्चयिक नय से राख पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श वाली है।

विवेचन—प्रत्येक वस्तु के वर्णादि का व्यावहारिक एवं नैश्चयिक नय की दृष्टि से निरूपण— व्यवहारनय लोकव्यवहार का अनुसरण करता है। वस्तुत व्यवहारनय व्यवहारमात्र को बताने वाला है। वह वस्तु के अनेक अशो मे से उतने ही अश को ग्रहण करता है, जितने अश से व्यवहार चलाया जा सकता है, शेष अन्य अशो के प्रति वह उपेक्षा भाव रखता है। नैश्चयिकनय वस्तुके मूलभूत स्वभाव को स्वीकार करता है। इसी दृष्टि से यहा गुड, भ्रमर, शुकपिच्छ, राख, तथा मजीठ, हल्दी आदि के विषय मे दोनो नयो की अपेक्षा से उत्तर दिया गया है। उदाहरणार्थ भौरा और हल्दी व्यवहारनय की दृष्टि से काला और पीली है किन्तु निश्चयनय की दृष्टि से उनमे पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श है।[1]

कठिन शब्दार्थ—फाणियगुले=गीला गुड=राब। **सुयपिच्छे**—तोते की पाख। **छारिया**=राख। **गोड्डे**=गौल्य अर्थात्—गौल्य (मधुर) रस से युक्त। **उलुयपत्ते**=दो रूप दो अर्थ—(१) उलुकपत्र=बेर के पत्ते (२) उलूकपत्र=उल्लू के पत्र यानी पख।[2]

परमाणु पुद्गल एवं द्विप्रदेशी स्कन्ध आदि में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शनिरूपण—

६. परमाणुपोग्गले णं भंते ! कइवण्णे जाव कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! एगवण्णे एगगंधे एगरसे दुफासे पन्नत्ते।

[६ प्र] भगवन् ! परमाणुपुद्गल कितने वर्ण वाला यावत् कितने स्पर्शवाला कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! वह एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श वाला कहा गया है।

---

१. भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १३, ६८-७१

२ (क) भगवतीसूत्र—विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७०९

(ख) भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १३, पृ ७०

७. दुपदेसिए णं भंते ! खंधे कतिवण्णे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय एगवण्णे सिय दुवण्णे, सिय एगगंधे सिय दुगंधे, सिय एगरसे सिय दुरसे, सिय दुफासे, सिय तिफासे, सिय चउफासे पन्नत्ते ।

[७ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध कितने वर्ण आदि वाला है ? इत्यादि प्रश्न ।

[७ उ] गौतम ! वह कदाचित् (अथवा कोई-कोई) एक वर्ण, कदाचित् दो वर्ण, कदाचित् एक गन्ध या दो गन्ध, कदाचित् एक रस या दो रस, कदाचित् दो स्पर्श, तीन स्पर्श और कदाचित् चार स्पर्श वाला कहा गया है ।

८. एवं तिपदेसिए वि, नवरं सिय एगवण्णे, सिय दुवण्णे, सिय तिवण्णे । एवं रसेसु वि । सेसं जहा दुपदेसियस्स ।

[८] इसी प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे भी जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि वह कदाचित् एक वर्ण, कदाचित् दो वर्ण और कदाचित् तीन वर्ण वाला होता है । इसी प्रकार रस के विषय मे भी, यावत् तीन रस वाला होता है । शेष सब द्विप्रदेशिक स्कन्ध के समान (जानना चाहिए ।)

९. एवं चउपदेसिए वि, नवरं सिय एगवण्णे जाव सिय चउवण्णे । एवं रसेसु वि । सेसं त चेव ।

[९] इसी प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के विषय मे भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि वह कदाचित् एक वर्ण, यावत् कदाचित् चार वर्ण वाला होता है । इसी प्रकार रस के विषय मे भी (जानना चाहिए ।) शेष सब पूर्ववत् है ।

१०. एवं पचपदेसिए वि, नवर सिय एगवण्णे जाव सिय पचवण्णे । एवं रसेसु वि । गंध-फासा तहेव ।

[१०] इसी प्रकार पचप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि वह कदाचित् एक वर्ण, यावत् कदाचित् पाच वर्ण वाला होता है । इसी प्रकार रस के विषय मे भी (समझना चाहिए ।), गन्ध और स्पर्श के विषय मे भी पूर्ववत् (जानना चाहिए ।)

११. जहा पंचपएसिओ एवं जाव असखेज्जपएसिओ ।

[११] जिस प्रकार पचप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार यावत् असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए ।

१२. सुहुमपरिणए ण भते ! अणंतपदेसिए खंधे कतिवण्णे० ?

जहा पचपदेसिए तहेव निरवसेसं ।

[१२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मपरिणाम वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है ?, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१२ उ] जिस प्रकार पचप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे कहा है, उसी प्रकार समग्र (कथन इस विषय मे करना चाहिए।)

१३. बादरपरिणए ण भते ! अणंतपएसिए खंधे कतिवण्णे० पुच्छा।

गोयमा ! सिय एगवण्णे जाव सिय पंचवण्णे, सिय एगगधे सिय दुगंधे, सिय एगरसे जाव सिय पंचरसे, सिय चउफासे जाव सिय अट्ठफासे पन्नत्ते।

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ अट्ठारसमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥ १८-६ ॥

[१३ प्र] भगवन् ! बादर (स्थूल) परिणाम वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध आदि वाला है ? इत्यादि प्रश्न।

[१३ उ] गौतम ! वह कदाचित् एक वर्ण, यावत् कदाचित् पाच वर्ण वाला, कदाचित् एक गन्ध या दो गन्ध वाला, कदाचित् एक रस यावत् पाच रस वाला, तथा चार स्पर्श यावत् कदाचित् आठ स्पर्श वाला होता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—परमाणु एवं द्विप्रदेशी आदि स्कन्धो मे वर्णादि का निरूपण—प्रस्तुत ८ सूत्रो (सू ६ से १३ तक) मे परमाणुपुद्गल से लेकर बादर परिणामवाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श का निरूपण किया गया है।

परमाणु मे वर्णादि विकल्प—परमाणुपुद्गल मे वर्णविषयक ५ विकल्प होते है, अर्थात् पाच वर्णों मे से कोई एक कृष्ण आदि वर्ण होता है।, गन्धविषयक दो विकल्प, या तो सुगन्ध या दुर्गन्ध। रसविषयक पाच विकल्प होते है, अर्थात्—पाच रसो मे से कोई एक रस होता है। और स्पर्शविषयक चार विकल्प होते हैं। अर्थात्—स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण, इन चार स्पर्शों मे से कोई भी दो अविरोधी स्पर्श पाए जाते हैं। यथा—शीत और स्निग्ध, शीत और रूक्ष, उष्ण और स्निग्ध या उष्ण और रूक्ष।

द्विप्रदेशी स्कन्ध मे वर्णादि विकल्प—द्विप्रदेशी स्कन्ध मे यदि एक वर्ण हो तो पाच विकल्प, और दो वर्ण (अर्थात् प्रत्येक प्रदेश मे पृथक्-पृथक् वर्ण) हो तो दस विकल्प होते है। इसी प्रकार गन्धादि के विषय मे समझ लेना चाहिए। द्विप्रदेशी स्कन्ध जब शीत, स्निग्ध आदि दो स्पर्श वाला होता है, तब पूर्वोक्त ४ विकल्प होते हैं। जब तीन स्पर्श वाला होता है, तब भी चार विकल्प होते है। यथा—दो प्रदेश शीत हो, वहाँ एक स्निग्ध और दूसरा रूक्ष होता है। इसी प्रकार दो प्रदेश उष्ण हो, तब दूसरा विकल्प होता है। दोनो प्रदेश स्निग्ध हो, तब उनमे एक शीत और एक उष्ण हो, तब तीसरा विकल्प बनता है। इसी प्रकार दोनो प्रदेश रूक्ष हो, तब चतुर्थ विकल्प बनता है। जब द्विप्रदेशी स्कन्ध चार स्पर्श वाला होता है, तब एक विकल्प बनता है। इसी प्रकार तीन प्रदेशी आदि स्कन्धो के विषय मे स्वय ऊहापोह करके घटित कर लेना चाहिए।

सूक्ष्म अनन्तप्रदेशी स्कन्ध में चार स्पर्श—पूर्वोक्त शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, ये चार स्पर्श पाए जाते है।

बादर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध मे चार से आठ स्पर्श तक--चार हो तो मृदु और कर्कश मे से कोई एक, गुरु और लघु मे से कोई एक, शीत और उष्ण मे से कोई एक और स्निग्ध एव रूक्ष मे से कोई एक, इस प्रकार चार स्पर्श पाए जाते है। पाच स्पर्श हो तो चार मे से किसी भी युग्म के दो और शेष तीन युग्मो मे से एक-एक। छह स्पर्श हो तो दो युग्मो के दो-दो, और शेष दो युग्मो मे से एक-एक, यो ६ स्पर्श पाए जाते है। सात स्पर्श हो तो तीन युग्मो के दो-दो, और एक युग्म मे से एक, और आठ स्पर्श हो तो चारो युग्मो के दो-दो स्पर्श पाए जाते है।[1]

।। अठारहवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र-७४८-७४९

(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचदजी) छठा भाग, पृ २७१३,

सत्तमो उद्देसओ : 'केवली'

सप्तम उद्देशक : 'केवली'

केवली के यक्षाविष्ट होने तथा दो सावद्य भाषाएँ बोलने के अन्यतीर्थिक आक्षेप का भगवान् द्वारा निराकरणपूर्वक यथार्थ समाधान

१. रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

२. अन्नउत्थिया णं भते ! एवमाइक्खति जाव परूवेंति—एव खलु केवली जक्खाएसेण आइस्सति, एव खलु केवली जक्खाएसेण आइट्ठे समाणे आहच्च दो भासाओ भासइ, तं जहा—मोस वा सच्चामोस वा। से कहमेय भते ! एव ?

गोयमा ! ज णं ते अन्नउत्थिया जाव जे ते एवमाहसु मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि ४—नो खलु केवली जक्खाएसेण आइस्सति, नो खलु केवली जक्खाएसेण आइट्ठे समाणे आहच्च दो भासाओ भासइ, तं जहा—मोसं वा सच्चामोस वा। केवली ण असावज्जाओ अपरोवघातियाओ आहच्च दो भासाओ भासति, त जहा—सच्च वा असच्चामोस वा।

[२ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है यावत् प्ररूपणा करते है कि केवली यक्षावेश से आविष्ट होते है और जव केवली यक्षावेश से आविष्ट होते हैं तो वे कदाचित् (कभी-कभी) दो प्रकार की भाषाएँ वोलते है—(१) मृषाभाषा और (२) सत्या-मृषा (मिश्र) भाषा। तो हे भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ?

[२ उ] गौतम ! अन्यतीर्थिको ने यावत् जो इस प्रकार कहा है, वह उन्होने मिथ्या कहा है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि केवली यक्षावेश से आविष्ट ही नही होते। केवली न तो कदापि यक्षाविष्ट होते है, और न ही कभी मृषा और सत्या-मृषा इन दो भाषाओ को वोलते है। केवली जव भी वोलते है, तो असावद्य और दूसरो का उपघात न करने वाली, ऐसी दो भाषाएँ वोलते है। वे इस प्रकार है—सत्यभाषा या असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा।

विवेचन—केवली यक्षाविष्ट नहीं होते न सावद्यभाषाएँ बोलते है—केवली अनन्त-वीर्य-सम्पन्न होने से किसी भी देव के आवेश से आविष्ट नही होते। और जव वे कदापि यक्षाविष्ट नही होते, तव उनके द्वारा मृषा और सत्यामृषा इन दो प्रकार की सावद्यभाषाएँ वोलने का सवाल ही नही उठता। फिर केवली तो राग-द्वेष-मोह से सर्वथा रहित, सदैव अप्रमत्त होते हैं, वे सावद्यभाषा वोल ही नही सकते।[१]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७४९

(ख) श्रीमद्भगवतीसूत्र (गुजराती अनुवाद), (प भगवानदास दोशी) खण्ड ४, पृ ६४

कठिन शब्दार्थ—जक्खाएसेण—यक्ष के आवेश से। **आइट्ठे**—आविष्ट—अधिष्ठित। **आहच्च**-कदाचित् या कभी-कभी। **असावज्जाओ**—असावद्य—निरवद्य (पाप-दोष-रहित)। **अपरोवघातियाओ**-अपरोपघातिक—दूसरो को आघात नही पहुँचाने वाली। **असच्चामोस—असत्यामृषा**—जो न तो सत्य हो, न मृषा हो, ऐसी आदेशादिवाचक व्यवहारभाषा।[1]

उपधि एवं परिग्रह : प्रकारत्रय तथा नैरयिकादि में उपधि एवं परिग्रह की यथार्थ प्ररूपणा

३. कतिविधे ण भते ! उवही पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे उवही पन्नत्ते, तं जहा—कम्मोवही सरीरोवही बाहिरभडमत्तोवगरणोवही।

[३ प्र] भगवन् ! उपधि कितने प्रकार की कही गई है ?

[३ उ] गौतम ! उपधि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—(१) कर्मोपधि, (२) शरीरोपधि और (३) बाह्यभाण्डमात्रोपकरणउपधि।

४. नेरइयाणं भते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहे उवही पन्नत्ते, त जहा—कम्मोवही य सरीरोवही य।

[४ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने प्रकार की उपधि होती है ?

[४ उ] गौतम ! उनके दो प्रकार की उपधि कही गई है। वह इस प्रकार—(१) कर्मोपधि और (२) शरीरोपधि।

५. सेसाण तिविहा उवही एगिंदियवज्जाण जाव वेमाणियाणं।

[५] एकेन्द्रिय जीवो को छोड कर यावत् वैमानिक तक शेष सभी जीवो के (पूर्वोक्त) तीन प्रकार की उपधि होती है।

६. एगिंदियाणं दुविहे, त जहा—कम्मोवही य सरीरोवही य।

[६] एकेन्द्रिय जीवो के दो प्रकार की उपधि होती है। यथा—कर्मोपधि और शरीरोपधि।

७. कतिविहे णं भंते ! उवही पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे उवही पन्नत्ते, तं जहा—सच्चित्ते अचित्ते मीसए।

[७ प्र] भगवन् ! (प्रकारान्तर से) उपधि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७ उ] गौतम ! (प्रकारान्तर से) उपधि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—सचित्त, अचित्त और मिश्र।

८. एवं नेरइयाण वि।

[८] इसी प्रकार नैरयिको के भी तीन प्रकार की उपधि होती है।

---

१ भगवती, विवेचन, भाग-६ (प घेवरचन्दजी) पृ २७१४

९. एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

[९] इसी प्रकार अवशिष्ट सभी जीवो के, यावत् वैमानिको तक के तीनो प्रकार की उपधि होती है।

१०. कतिविधे णं भंते! परिग्गहे पन्नत्ते?

गोयमा! तिविहे परिग्गहे पन्नत्ते, तं जहा—कम्मपरिग्गहे सरीरपरिग्गहे बाहिरगभंडमत्तोवगरणपरिग्गहे।

[१० प्र] भगवन्! परिग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

[१० उ] गौतम! परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) कर्म-परिग्रह, (२) शरीर-परिग्रह और (३) बाह्य भाण्ड-मात्रोपकरण-परिग्रह।

११. नेरतियाणं भंते! ०?

एव जहा उवहिणा दो दंडगा भणिया तहा परिग्गहेण वि दो दडगा भाणियव्वा।

[११ प्र] भगवन्! नैरयिको के कितने प्रकार का परिग्रह कहा गया है?

[११ उ] गौतम! जिस प्रकार (नैरयिको आदि की) उपधि के विषय मे दो दण्डक कहे गए है, उसी प्रकार परिग्रह के विषय मे भी दो दण्डक कहने चाहिए।

विवेचन—उपधि और परिग्रह : स्वरूप प्रकार और चौवीस दण्डको मे प्ररूपणा—उपधि का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ इस प्रकार है—**उपधीयते—उपष्टभ्यते आत्मा येन स उपधिः'** अर्थात्—जिससे आत्मा शुभाशुभ गतियो मे स्थिर की जाती है, वह उपधि है। उपधि की परिभाषा है—जीवन-निर्वाह मे उपयोगी शरीर, कर्म एव वस्त्रादि। यह दो प्रकार की है—आभ्यन्तर और बाह्य। कर्म और शरीर आभ्यन्तर उपधि है जबकि वस्त्र पात्रादि वस्तुएँ बाह्य उपधि है। उपधि के तीन भेदो मे एकेन्द्रिय को छोड कर शेप १९ दण्डकवर्ती जीवो के शरीररूप, कर्मरूप और बाह्य भाण्डमात्रोपकरणरूप उपधि होती है। एकेन्द्रिय के बाह्य-भाण्डमात्रोपकरण-उपधि नही होती।

नैरयिकादि जीवो के सचित्त उपधि शरीर आदि है, अचित्त उपधि उत्पत्ति-स्थान है, और, मिश्र-उपधि श्वासोच्छ्वासादिपुद्गलो से युक्त शरीर है, जो सचेतन-अचेतन दोनो रूप होने से मिश्रउपधि है।[1]

उपधि और परिग्रह मे अन्तर—इतना ही है कि जीवन-निर्वाह मे उपकारक कर्म, शरीर और वस्त्रादि उपधि कहलाते है, और वे ही जब ममत्वबुद्धि से गृहीत होते हैं, तब परिग्रह कहलाते हैं। उपधि के सम्बन्ध मे जैसी प्ररूपणा की गई है, वैसी ही प्ररूपणा परिग्रह के सम्बन्ध मे समझनी चाहिए।[2]

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५०

(ख) भगवतीसूत्र (गुजराती अनुवाद) (प भगवानदास दोशी) खण्ड ४, पृ ६४

२ वही, (प भगवानदासजी दोशी) खण्ड ४, पृ. ६५

प्रणिधान : तीन प्रकार तथा नैरयिकादि में प्रणिधान की प्ररूपणा

१२. कतिविधे ण भते ! पणिहाणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पणिहाणे पन्नत्ते, त जहा—मणपणिहाणे वइपणिहाणे कायपणिहाणे।

[१२ प्र] भगवन् ! प्रणिधान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१२ उ] गौतम ! प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) मन·प्रणिधान, (२) वचन-प्रणिधान और (३) काय-प्रणिधान।

१३. नेरतियाणं भते ! कतिविहे पणिहाणे पन्नत्ते ?

एव चेव।

[१३ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने प्रणिधान कहे गए है ?

[१३ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) (तीनो प्रणिधान इनमे होते है।)

१४. एवं जाव थणियकुमाराण।

[१४] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक जानना चाहिए।

१५. पुढविकाइयाणं० पुच्छा।

गोयमा ! एगे कायपणिहाणे पन्नत्ते।

[१५ प्र] भते ! पृथ्वीकायिक जीवो के प्रणिधान के विषय मे प्रश्न ?

[१५ उ] गौतम ! इनमे एकमात्र कायप्रणिधान ही होता है।

१६. एवं जाव वणस्सतिकाइयाण।

[१६] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक जानना चाहिए।

१७. बेइंदियाणं० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहे पणिहाणे पन्नत्ते, तं जहा—वइपणिहाणे य कायपणिहाणे य।

[१७ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रियजीवो के विषय मे प्रश्न ?

[१७ उ] गौतम ! उनमे दो प्रकार का प्रणिधान होता है। यथा—वचन-प्रणिधान और काय-प्रणिधान।

१८. एवं जाव चउरिंदियाण।

[१८] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक कहना चाहिए।

१९. सेसाणं तिविहे वि जाव वेमाणियाणं।

[१९] शेष सभी जीवो के, यावत् वैमानिको तक के तीनो प्रकार के प्रणिधान होते हैं।

विवेचन—प्रणिधान . स्वरूप, प्रकार एवं जीवो मे प्रणिधान की प्ररूपणा—मन, वचन और काययोग को किसी भी एक पदार्थ या निश्चित विषय-आलम्बन मे स्थिर करना प्रणिधान है। वह तीन प्रकार का है। एकेन्द्रिय जीवो मे एक कायप्रणिधान और विकलेन्द्रियजीवो मे दो-वचनप्रणिधान और कायप्रणिधान तथा पचेन्द्रियजीवो मे तीनो—मन-वचन-कायप्रणिधान पाए जाते है।[1]

दुष्प्रणिधान एवं सुप्रणिधान के तीन-तीन भेद तथा नैरयिकादि में दुष्प्रणिधान सुप्रणिधान-प्ररूपणा

२०. कतिविधे ण भंते ! दुप्पणिहाणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे दुप्पणिहाणे पन्नत्ते, त जहा—मणदुप्पणिहाणे जहेव पणिहाणेणं दंडगो भणितो तहेव दुप्पणिहाणेण वि भाणियव्वो।

[२० प्र] भगवन् ! दुष्प्रणिधान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२० उ] गौतम ! दुष्प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—मनो-दुष्प्रणिधान, वचन-दुष्प्रणिधान और काय-दुष्प्रणिधान। जिस प्रकार प्रणिधान के विषय मे दण्डक कहा गया है, उसी प्रकार दुष्प्रणिधान के विषय मे भी कहना चाहिए।

२१. कतिविधे ण भते ! सुप्पणिहाणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविधे सुप्पणिहाणे पन्नत्ते, त जहा—मणसुप्पणिहाणे वतिसुप्पणिहाणे कायसुप्पणिहाणे।

[२१ प्र] भगवन् ! सुप्रणिधान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२१ उ] गौतम ! सुप्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—मन सुप्रणिधान, वचन-सुप्रणिधान, और काय-सुप्रणिधान।

२२. मणुस्साण भते ! कतिविधे सुप्पणिहाणे पन्नत्ते ?

एवं चेव।

सेव भते ! सेवं भते ! जाव विहरति।

[२२ प्र.] भगवन् ! मनुष्यो के कितने प्रकार का सुप्रणिधान कहा गया है ?

[२२ उ.] गौतम ! मनुष्यो के तीनो प्रकार का सुप्रणिधान होता है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—दुष्प्रणिधान और सुप्रणिधान : स्वरूप, प्रकार और किन जीवो मे कितने-कितने ?—मन-वचन-काया की दुष्प्रवृत्ति की एकाग्रता को दुष्प्रणिधान और सुप्रवृत्ति की एकाग्रता को सुप्रणिधान

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५०

प्रकर्षेण नियते आलम्बने धान-धरण मन प्रभृतेरिति प्रणिधानम्।

(ख) भगवती चतुर्थ खण्ड (प भगवानदास दोशी), पृ ६५

कहते है। दुष्प्रणिधान तो चौवीस ही दण्डको मे पाया जाता है, किन्तु सुप्रणिधान केवल मनुष्य (सयत—साधु) मे ही पाया जाता है।[1]

अन्यतीर्थिकों द्वारा भगवत्प्ररूपित अस्तिकाय के विषय मे पारस्परिक जिज्ञासा

२३. तए ण समणे भगव महावीरे जाव वहिया जणवयविहार विहरइ।

[२३] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने यावत् बाह्य जनपदो मे विहार किया।

२४. तेण कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था। वण्णतो। गुणसिलए चेतिए। वण्णओ, जाव पुढविसिलावट्टओ।

[२४] उस काल उस समय राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ गुणशील नामक उद्यान था। उसका भी वर्णन करना चाहिए। यावत् वहाँ एक पृथ्वीशिलापट्ट था।

२५. तस्स णं गुणसिलस्स चेतियस्स अदूरसामते बहवे अन्नउत्थिया परिवसति, तं जहा—कालोदाई सेलोदाई एवं जहा सत्तमसते अन्नउत्थिउद्देसए (स ७ उ० १० सु० १—३) जाव से कहमेयं मन्ने एव ?

[२५] उस गुणशील उद्यान के समीप वहुत-से अन्यतीर्थिक रहते थे। यथा—कालोदायी, शैलोदायी इत्यादि समग्र वर्णन सातवे शतक के अन्यतीर्थिक उद्देशक के (उ १० सू १-३ मे कथित) वर्णन के अनुसार, यावत्—'यह कैसे माना जा सकता है ?' यहाँ तक समझना चाहिए।

विवेचन—अन्यतीर्थिको की भगवत्प्ररूपित अस्तिकायविषयक-जिज्ञासा—राजगृह नगर के वाहर गुणशील उद्यान के निकट कालोदायी, शैलोदायी शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्य-पालक, शैलपालक, शखपालक और सेहस्ती नामक अन्यतीर्थिक रहते थे। एक दिन वे सव एकत्र होकर धर्मचर्चा कर रहे थे कि प्रसगवश भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित अस्तिकाय की चर्चा छिड गई। वह इस प्रकार—ज्ञातपुत्र महावीर पंचास्तिकाय की प्ररूपणा करते है, यथा—धर्मास्तिकाय आदि। इनमे से जीवास्तिकाय सचेतन है, शेष चार अचेतन है। इनमे से पुद्गलास्तिकाय रूपी है, शेष चार अरूपी है। ज्ञातपुत्र महावीर के इस मत को कैसे यथार्थ माना जा सकता है ? क्योकि ये अदृश्य होने के कारण असम्भव हैं। आशय यह है कि इस पचास्तिकाय को सचेतनाचेतनरूप या रूपी-अरूपी-आदिरूप कैसे माना जा सकता है ?[2]

राजगृह मे भगवत्पदार्पण सुनकर मद्रुकश्रावक का उनके दर्शनवन्दनार्थ प्रस्थान

२६. तत्थ णं रायगिहे नगरे मद्दुए नाम समणोवासए परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूए अभिगय० जाव विहरइ।

[२६] उस राजगृह नगर मे धनाढ्य यावत् किसी से पराभूत न होने वाला, तथा जीवाजीवादि तत्त्वो का ज्ञाता, यावत् मद्रुक नामक श्रमणोपासक रहता था।

१ भगवती विवेचन, (प घेवरचन्दजी) भाग ६, पृ २७२०

२ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७२६, (ख) भगवती अ वृ, पत्र ७५३

२७. तए ण समणे भगव महावीरे अन्नदा कदायि पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव समोसढे। परिसा जाव पज्जुवासइ।

[२७] तभी अन्यदा किसी दिन पूर्वानुपूर्वीक्रम से विचरण करते हुए श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। वे समवसरण मे विराजमान हुए। परिषद् यावत् पर्युपासना करने लगी।

२८. तए णं मद्दुए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ० जाव हिदए ण्हाए जाव सरीरे सास्रो गिहाओ पडिनिक्खमति, सा० प० २ पायविहारचारेण रायगिहं नगरं जाव निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता तेसिं अन्नउत्थियाणं अदूरसामतेणं वीतीवयति।

[२८] मद्रुक श्रमणोपासक ने जब श्रमण भगवान् महावीर के आगमन का यह वृत्तान्त जाना तो वह हृदय मे अतीव हर्षित एव यावत् सन्तुष्ट हुआ। उसने स्नान किया, यावत् समस्त अलकारो से विभूषित होकर अपने घर से निकला। उसने पैदल चलते हुए राजगृह नगर के मध्य मे होकर प्रस्थान किया। चलते-चलते वह उन अन्यतीर्थिको के निकट से होकर जाने लगा।

विवेचन—मद्रुक श्रमणोपासक और भगवद्दर्शनार्थ उसकी पदयात्रा—राजगृहनिवासी मद्रुक श्रमणोपासक केवल धनाढ्य ही नही, सामाजिक, एव धार्मिकजनो मे अग्रणी, प्रसिद्ध एव प्रतिष्ठित था, जीव, अजीव, वन्ध, मोक्ष, सवर, निर्जरा आदि तत्त्वो का ज्ञाता था, किसी से दबने वाला नही था। भगवान् महावीर के प्रति उसकी अनन्य श्रद्धाभक्ति थी। जब उसने सुना कि भगवान् मेरे नगर मे पधारे है तो वह हृष्टतुष्ट होकर सब प्रकार से सुसज्जित होकर सात्त्विक वेषभूषा मे स्वय पैदल चल कर भगवान् के दर्शनो तथा प्रवचनादि श्रवण के लिए घर से निकला। राजगृह नगर के बीचो-बीच होकर उन अन्यतीर्थिको के निवास के निकट होकर जाने लगा, जहाँ वे बैठे धर्मचर्चा कर रहे थे। इस पाठ से मद्रुक की धर्मनिष्ठा, तत्त्वज्ञता, सामाजिकता तथा भगवान् के प्रति अनन्यभक्ति परिलक्षित होती है।[1]

मद्रुक को भगवद्दर्शनार्थ जाते देख अन्यतीर्थिकों की उससे पञ्चास्तिकाय सम्बन्धी चर्चा करने की तैयारी, उनके प्रश्न का मद्रुक द्वारा अकाट्य युक्तिपूर्वक उत्तर

२९. तए णं ते अन्नउत्थिया मद्दुयं समणोवासयं अदूरसामंतेण वीयीवयमाणं पासति, पा० २ अन्नमन्न सद्दावेंति, अन्नमन्न सद्दावेत्ता एवं वदासि—'एव खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमा कहा अवि उप्पकडा, इमं च णं मद्दुए समणोवासए अम्ह अदूरसामंतेण वीयीवयइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं मद्दुयं समणोवासयं एयमट्ठं पुच्छित्तए'त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अतियं एयमट्ठं पडिसुणेंति, अन्नमन्नस० प० २ जेणेव मद्दुए समणोवासए तेणेव उवागच्छति, उवा० २ मद्दुयं समणोवासयं एवं वदासी—एवं खलु मद्दुया! तव धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे णायपुत्ते पच अत्थिकाये पन्नवेइ जहा सत्तमे सते उन्नउत्थिउद्देसए (स० ७ उ० १० सु० ६ [१] जाव से कहमेय मद्दुया! एवं?

---

1 वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ८१७-८१८ के आधार से

[२६ प्र] तभी उन अन्यतीर्थिको ने मद्रुक श्रमणोपासक को अपने निकट से जाते हुए देखा। उसे देखते ही उन्होने एक दूसरे को बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! यह मद्रुक श्रमणोपासक हमारे निकट से होकर जा रहा है। हमे यह बात (पचास्तिकायसम्वन्धी तत्त्व) अविदित है, अत देवानुप्रियो! इस बात को मद्रुक श्रमणोपासक से पूछना हमारे लिए श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर वे परस्पर सहमत हुए और सभी एकमत होकर मद्रुक श्रमणोपासक के निकट आए। फिर उन्होने मद्रुक श्रमणोपासक से इस प्रकार पूछा—हे मद्रुक! बात ऐसी है कि तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पाच अस्तिकायो की प्ररूपणा करते है, इत्यादि सारा कथन सातवे शतक के अन्यतीर्थिक उद्देशक (उ. १० सू. ६-१) के समान समझना, यावत्—'हे मद्रुक! यह बात कैसे मानी जाए ?'

३०. तए ण से मद्दुए समणोवासए ते अन्नउत्थिए एव वयासि—जति कज्जं कज्जति जाणामो पासामो; अह कज्ज न कज्जति न जाणामो न पासामो।

[३० उ] यह सुन कर मद्रुक श्रमणोपासक ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—यदि वे धर्मास्तिकायादि कार्य करते है तभी उस पर से हम उन्हे जानते-देखते है, यदि वे कार्य न करते तो कारणरूप मे हम उन्हे नही जानते-देखते।

३१. तए ण ते अन्नउत्थिया मद्दुय समणोवासयं एवं वयासी—केस णं तुमं मद्दुया! समणोवासगाण भवसि जेण तुमं एयमट्ठं न जाणसि न पाससि ?

[३१ प्र] इस पर उन अन्यतीर्थिको ने (आक्षेपपूर्वक) मद्रुक श्रमणोपासक से कहा कि—हे मद्रुक! तू कैसा श्रमणोपासक है कि तू इस तत्त्व (पचास्तिकाय) को न तो जानता है और न प्रत्यक्ष देखता है (फिर भी मानता है) ?

३२. तए ण से मद्दुए समणोवासए ते अन्नउत्थिए एवं वयासि—'अत्थि ण आउसो! वाउयाए वाति ?

हंता, अत्थि।

तुब्भे णं आउसो! वाउयायस्स वायमाणस्स रूवं पासह ?

'णो तिण०।

अत्थि णं आउसो! घाणसहगया पोग्गला ?

हंता, अत्थि।

तुब्भे णं आउसो! घाणसहगयाण पोग्गलाणं रूवं पासह ?

णो ति०!

अत्थि ण आउसो! अरणिसहगते अगणिकाए ?

हता, अत्थि।

तुब्भे ण आउसो ! अरणिसहगयस्स अगणिकायस्स रूव पासह ?
णो ति० ।

अत्थि ण आउसो ! समुद्दस्स पारगताइ रूवाइ ?
हता, अत्थि ।

तुब्भे णं आउसो ! समुद्दस्स पारगयाइ रूवाइ पासह ?
णो ति० ।

अत्थि णं आउसो ! देवलोगगयाइं रूवाइं ?
हंता, अत्थि ।

तुब्भे ण आउसो ! देवलोगगयाइं रूवाइ पासह ?
णो ति० ।

एवामेव आउसो ! अह वा तुब्भे वा अन्नो वा छउमत्थो जइ जो ज न जाणति न पासति त सव्व न भवति एव भे सुबहुलोए ण भविस्सतीति' कट्टु ते अन्नउत्थिए एव पडिहणइ, एव प० २ जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उ० २ समणं भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण जाव पज्जुवासति ।

[३२ उ] तभी (इस आक्षेप का उत्तर देते हुए) मद्रुक श्रमणोपासक ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—

[प्र.] आयुष्मन् ! यह ठीक है न कि हवा वहती (चलती) है ?
[उ] हाँ, यह ठीक है ।

[प्र] हे आयुष्मन् ! क्या तुम वहती (चलती) हुई हवा का रूप देखते हो ?
[उ] यह (वायु का रूप देखना) अर्थ शक्य नही है ।

[प्र] आयुष्मन् ! नासिका के सहगत गन्ध के पुद्गल हैं न ?
[उ] हाँ, हैं ।

[प्र] आयुष्मन् ! क्या तुमने उन घ्राण सहगत गन्ध के पुद्गलो का रूप देखा है ?
[उ] यह वात (गन्ध का रूप देखना) भी शक्य नही है ।

[प्र] आयुष्मन् ! क्या अरणि की लकडी के साथ मे रहा हुआ अग्निकाय है ?
[उ] हा, है ।

[प्र] आयुष्मन् ! क्या तुम अरणि की लकडी मे रही हुई उस अग्नि का रूप देखते हो ?
[उ] यह वात तो शक्य नही है ।

[प्र.] आयुष्मन् ! समुद्र के उस पार रूपी पदार्थ है न ?
[उ] हाँ, हैं ।

[प्र] आयुष्मन् ! क्या तुम समुद्र के उस पार रहे हुए पदार्थों के रूप को देखते हो ?

[उ] यह देखना शक्य नही है।

[प्र] आयुष्मन् ! क्या देवलोको मे रूपी पदार्थ है ?

[उ.] हाँ है।

[प्र] आयुष्मन् ! क्या तुम देवलोकगत पदार्थो के रूपो को देखते हो ?

[उ] यह बात (देवलोकगत पदार्थो का रूप देखना) शक्य नही है।

(मद्रुक ने कहा—) इसी तरह, हे आयुष्मन् ! यदि मैं, तुम, या अन्य कोई भी छद्मस्थ मनुष्य, जिन पदार्थों को नही जानता या नही देखता, उन सव का अस्तित्व नही होता, ऐसा माना जाए तो तुम्हारी मान्यतानुसार लोक मे बहुत-से पदार्थो का अस्तित्व ही नही रहेगा, (अर्थात्—उन पदार्थो का अभाव हो जाएगा।), यो कहकर मद्रुक श्रमणोपासक ने उन अन्यतीर्थिको को प्रतिहत (हतप्रभ) कर दिया। उन्हे निरुत्तर करके वह गुणशील उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जहाँ विराजमान थे, वहा उनके निकट आया और पाच प्रकार के अभिगम से श्रमण भगवान् महावीर की सेवा मे पहुँच कर यावत् पर्युपासना करने लगा।

विवेचन—मद्रुक श्रावक ने अन्यतीर्थिको को निरुत्तर किया—मद्रुक के समक्ष उन अन्यतीर्थिको ने यह शका प्रस्तुत की कि ज्ञातपुत्र-प्ररूपित पचास्तिकाय को सचेतन—अचेतन या रूपी-अरूपी कैसे माना जाए, जवकि वह अदृश्यमान होने के कारण अस्तित्वहीन है ? क्या तुम धर्मास्तिकायादि को जानते-देखते हो ? मद्रुक ने कहा—किसी भी पदार्थ को हम उसके कार्य से जान—देख पाते है, जो पदार्थ कुछ भी कार्य न करे, निष्क्रिय रहे, उसे हम नही जान सकते। इतने पर भी अन्यतीर्थिको ने आक्षेप करते हुए कहा—"तुम भला कैसे श्रमणोपासक हो, जो धर्मास्तिकायादि को प्रत्यक्ष जानते-देखते नही हो, फिर भी मानते हो ?'

इसका मद्रुक ने अकाट्य युक्तियो के साथ उत्तर दिया—अच्छा, आप यह वताइये कि हवा चलती है, परन्तु क्या आप हवा का रूप देखते हैं ?, इसी प्रकार गन्धगत पुद्गल, अरणि मे रही हुई अग्नि, समुद्र के उस पार रहे हुए पदार्थ, देवलोक के पदार्थो आदि को क्या आप प्रत्यक्ष जानते-देखते है ? नही जानते-देखते, फिर भी आप उन पदार्थों को मानते है। यदि आपके मतानुसार जिन चीजो को हम, आप या अन्य छद्मस्थ मनुष्य प्रत्यक्ष नही जानते-देखते उन्हे न माने, तव तो ससार के बहुत-से पदार्थों का अभाव हो जाएगा। अत छद्मस्थ के धर्मास्तिकायादि को प्रत्यक्ष नही जानने-देखने मात्र से उनका अभाव सिद्ध नही होता, अपितु धर्मास्तिकायादि के कार्यो पर से (अनुमान प्रमाण से) उनके अस्तित्व को मानना और जानना चाहिए।

इस प्रकार उन अन्यतीर्थियो को हतप्रभ एव निरुत्तर कर दिया।[1]

कठिन शब्दार्थ—**घाणसहगया** = घ्राणसहगत—गन्धयुक्त । **पडिहणइ**—प्रतिहत = निरुत्तर।[2]

---

१ भगवती० विवेचन, भाग ६ (प घेवरचन्दजी), पृ २७२७

२ वही, भाग ६, पृ २७२३

मद्रुक द्वारा अन्यतीर्थिकों को दिये गए युक्तिसंगत उत्तर की भगवान् द्वारा प्रशंसा मद्रुक द्वारा धर्मश्रवण करके प्रतिगमन

३३. 'मद्दुया !' इ समणे भगवं महावीरे मद्दुय समणोवासय एव वयासि—सुट्ठु ण मद्दुया ! तुम ते अन्नउत्थिए एवं वयासि, साहु णं मद्दुया ! तुम ते अन्नउत्थिए एवं वयासि, जे ण मद्दुया ! अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरण वा अण्णात अदिट्ठ अस्सुत अमय अविण्णाय बहुजणमज्झे आघवेति पण्णवेति जाव उवदंसेति से ण अरहंताण आसायणाए वट्टति, अरहतपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए वट्टति, केवलीण आसायणाए वट्टति, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए वट्टति । त सुट्ठु ण तुमं मद्दुया ! ते अन्नउत्थिए एव वयासि, साहु ण तुम मद्दुया ! जाव एव वयासि ।

[३३] हे मद्रुक ! इस प्रकार सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने मद्रुक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—हे मद्रुक ! तुमने उन अन्यतीर्थिको को जो उत्तर दिया, वह समीचीन है, मद्रुक ! तुमने उन अन्यतीर्थिको को यथार्थ उत्तर दिया है । हे मद्रुक ! जो व्यक्ति बिना जाने, बिना देखे तथा बिना सुने किसी (अमुक) अज्ञात अदृष्ट, अश्रुत, असम्मत एव अविज्ञात अर्थ, हेतु, प्रश्न या विवेचन (व्याकरण=व्याख्या) का उत्तर बहुत-से मनुष्यो के बीच मे कहता है, बतलाता है यावत् उपदेश देता है, वह अरहन्त भगवन्तो की आशातना मे प्रवृत्त होता है, वह अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म की आशातना करता है, वह केवलियो की आशातना करता है, वह केवलि-प्ररूपित धर्म की भी आशातना करता है । हे मद्रुक ! तुमने उन अन्यतीर्थिको को इस प्रकार का उत्तर देकर बहुत अच्छा कार्य किया है । मद्रुक ! तुमने बहुत उत्तम कार्य किया, यावत् इस प्रकार का उत्तर दिया (और अन्यतीर्थिको को निरुत्तर कर दिया ।)

३४. तए ण मद्दुए समणोवासए समणेण भगवया महावीरेण एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ समणं भगव महावीरं वदति नमसति, वं० २ णच्चासन्ने जाव पज्जुवासति ।

[३४] श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर हृष्टतुष्ट यावत् मद्रुक श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और न अतिनिकट और न अतिदूर बैठकर यावत् पर्युपासना करने लगा ।

३५. तए णं समणे भगवं महावीरे मद्दुयस्स समणोवासगस्स तीसे य जाव परिसा पडिगया ।

[३५] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने मद्रुक श्रमणोपासक तथा उस परिषद् को धर्म-कथा कही । यावत् परिषद् लौट गई ।

३६. तए ण मद्दुए समणोवासए समणस्स भगवतो जाव निसम्म हट्ठतुट्ठ० पसिणाइ पुच्छति, प० पु० २ अट्ठाइं परियाइयति, अ० प० २ उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ समण भगव महावीर वंदति नमसइ जाव पडिगए ।

[३६] तत्पश्चात् मद्रुक श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर से यावत् धर्मोपदेश सुना, और उसे अवधारण करके अतीव हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ । फिर उसने भगवान् से प्रश्न पूछे, अर्थ

जाने (ग्रहण किये), और खडे होकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया यावत् अपने घर लौट गया ।

विवेचन—भगवान् द्वारा मद्रुक की प्रशसा एवं नवसिद्धान्त निरूपण—भगवान् ने मद्रुक द्वारा अन्यतीर्थिको को दिये गए युक्तिसगत उत्तर के लिए मद्रुक की प्रशसा की, उसके प्रशसनीय और धर्मप्रभावक कार्य को प्रोत्साहन दिया, साथ ही एक अभिनव सिद्धान्त का भी प्रतिपादन कर दिया कि जो व्यक्ति बिना जाने-सुने-देखे ही किसी अविज्ञात-अश्रुत-असम्मत अर्थ, हेतु और प्रश्न का उत्तर बहुजन समूह मे देता है, वह अर्हन्तो, केवलियो तथा अर्हत्प्ररूपित धर्म की आशातना करता है । इसका आशय यह है कि बिना जाने सुने मनमाना उत्तर दे देने से कई बार धर्म संघ एव सघनायक के प्रति लोगो की गलत धारणाएँ हो जाती है । वृत्तिकार इस कथन का रहस्य इस प्रकार बताते है कि भगवान् ने कहा—हे मद्रुक ! तुमने अच्छा किया कि अस्तिकाय को प्रत्यक्ष न जानते हुए, 'नही जानते', ऐसा सत्य-सत्य कहा । यदि तुमने नही जानते हुए भी, 'हम जानते है', ऐसा कहा होता तो अर्हन्त आदि के तुम आशातनाकर्ता हो जाते ।[1]

कठिन शब्दार्थ—**अण्णात**—अज्ञात । **अदिट्ठं**—नही देखे हुए । **अस्सुतं**—नही सुने हुए । **अमयं**—असम्मत—अमान्य । **अविण्णाय**—अविज्ञात । **आसायणाए वट्टति**—आशातना करने मे प्रवृत्त होता है—आशातना करता है । **अट्ठाइ परियाइयति**—अर्थों को ग्रहण करता है ।[2]

गौतम द्वारा पूछे गए मद्रुक की प्रव्रज्या एवं मुक्ति से सम्बद्ध प्रश्न का भगवान् द्वारा समाधान

३७. 'भंते !' त्ति भगव गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वं० २ एवं वयासि—पभू ण भते ! मद्दुए समणोवासए देवाणुप्पियाण अतियं जाव पव्वइत्तए ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । एवं जहेव सखे (स० १२ उ० १ सु० ३१) तहेव अरुणाभे जाव अतं काहिति ।

[३७] 'भगवन् !' इस प्रकार सम्बोधित कर, भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और फिर इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! क्या मद्रुक श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करने मे समर्थ है ?

[३७ उ] हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । इत्यादि सब वर्णन (शतक १२, उ १ सू ३१ मे वर्णित) शख श्रमणोपासक के समान समझना चाहिए । यावत्—अरूणाभ विमान मे देवरूप मे उत्पन्न होकर, यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा ।

विवेचन—गौतम स्वामी द्वारा मद्रुक की प्रव्रज्या एवं मुक्ति आदि से सम्बद्ध प्रश्न का

१ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७२६
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५३

२ भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १३, पृ १२७-१३१

३ पाठान्तर—महेसक्खे

भगवान् द्वारा समाधान—प्रस्तुत सू ३७ मे मद्दुक श्रमणोपासक द्वारा प्रव्रज्या-ग्रहण मे असमर्थ होने पर भी मद्दुक के उज्ज्वल भविष्य का कथन किया गया है।

महर्द्धिक देवों द्वारा संग्रामनिमित्त सहस्ररूपविकुर्वणासम्बन्धी प्रश्न का समाधान

३८. देवे णं भंते ! महिड्डीए जाव महासोक्खे[3] रूवसहस्सं विउव्वित्ता पभू अन्नमन्नेणं सद्धि सगामं संगामित्तए !

हंता, पभू।

[३८ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव, हजार रूपो की विकुर्वणा करके परस्पर एक दूसरे के साथ सग्राम करने मे समर्थ है ?

[३८ उ.] हा, गौतम ! (वह ऐसा करने मे) समर्थ है।

३९. ताओ णं भते ! बोदीओ किं एगजीवफुडाओ, अणेगजीवफुडाओ ?

गोयमा ! एगजीवफुडाओ, णो अणेगजीवफुडाओ।

[३९ प्र] भगवन् ! वैक्रियकृत वे शरीर, एक ही जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, या अनेक जीवो के साथ सम्बद्ध ?

[३९ उ] गौतम ! (वे सभी वैक्रियकृत शरीर) एक ही जीव से सम्बद्ध होते हैं, अनेक जीवो के साथ नही।

४०. ते णं भते ! तेसिं बोदीणं अंतरा किं एगजीवफुडा अणेगजीवफुडा ?

गोयमा ! एगजीवफुडा, नो अणेगजीवफुडा।

[४० प्र] भगवन् ! उन (वैक्रियकृत) शरीरो के बीच का अन्तराल-भाग क्या एक जीव से सम्बद्ध होता है, या अनेक जीवो से सम्बद्ध ?

[४० उ] गौतम ! उन शरीरो के बीच का अन्तराल भाग एक ही जीव से सम्बद्ध होता है, अनेक जीवो से सम्बद्ध नही।

विवेचन—महर्द्धिक देव द्वारा वैक्रियकृत अनेक शरीर . एक जीव से सम्बद्ध—देवो के द्वारा परस्पर संग्राम के निमित्त वैक्रिय शक्ति से वनाए हुए हजारो शरीर केवल एक ही जीव (वैक्रियकर्त्ता) से सम्वन्धित होते है।

कठिन शब्दार्थ—महासोक्खे—महान् सौख्यसम्पन्न। **बोदी**=शरीर। **एगजीवफुडाओ**—एक ही जीव से स्पृष्ट—सम्वद्ध। **बोंदीण अतरा**—विकुर्वित शरीरो के बीच का अन्तराल।[1]

उन छिन्नशरीरों के अन्तर्गतभाग को शस्त्रादि द्वारा पीडित करने की असमर्थता

४१. पुरिसे णं भते ! अतरे हत्थेण वा ?

एवं जहा अट्ठमसए ततिए उद्देसए (स० ८ उ० ३ सु० ६ [२]) जाव नो खलु तत्थ सत्थं कमति।

१ भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भाग १३, पृ १३५

[४१ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष, उन वैक्रियकृत शरीरो के अन्तरालो को अपने हाथ या पैर से स्पर्श करता हुआ, यावत् तीक्ष्ण शस्त्र से छेदन करता हुआ कुछ भी पीडा उत्पन्न कर सकता है ?

[४१ उ] गौतम ! (इसका उत्तर) आठवें शतक के तृतीय उद्देशक (सू ६-२ मे कथित कथन) के अनुसार समझना, यावत्—उन पर शस्त्र नही लग (चल) सकता ।

विवेचन—वैक्रियकृतशरीरो के छेदन-भेदनादि द्वारा पीड़ा पहुंचाने की असमर्थता—प्रस्तुत सू, ४१ मे पूर्वोक्त शरीरो के अन्तराल पर हाथ-पैर आदि या शस्त्रादि द्वारा पीडा पहुँचाने के सामर्थ्य का अष्टम शतक के तृतीय उद्देशक के अतिदेशपूर्वक निषेध किया गया है ।

देवासुर-संग्राम में प्रहरण-विकुर्वणा-निरूपण

४२. अत्थि णं भंते ! देवासुराणं संगामो, देवासुराणं संगामो ?

हंता, अत्थि ।

[४२ प्र] भगवन् क्या देवो और असुरो मे (कभी) देवासुर-सग्राम होता है ?

[४२ उ] हाँ, गौतम ! होता है ।

४३. देवासुरेसु णं भंते ! संगामेसु वट्टमाणेसु किं णं तेसिं देवाणं पहरणरयणत्ताए परिणमति ?

गोयमा ! जं णं ते देवा तणं वा कट्ठं वा पत्तं वा सक्करं वा परामुसति तं णं तेसिं देवाणं पहरणरयणत्ताए परिणमति ।

[४३ प्र] भगवन् ! देवो और असुरो मे संग्राम छिड़ जाने (प्रवृत्त हो जाने) पर कौन-सी वस्तु, उन देवो के श्रेष्ठ प्रहरण (शस्त्र) के रूप मे परिणत होती है ?

[४३ उ] गौतम ! वे देव, जिस तृण (तिनका), काष्ठ, पत्ता, या ककर आदि को स्पर्श करते हैं, वही वस्तु उन देवो के शस्त्ररत्न के रूप मे परिणत हो जाती है ।

४४. जहेव देवाणं तहेव असुरकुमाराणं ?

णो इणट्ठे समट्ठे । असुरकुमाराणं देवाणं निच्चं विउव्विया पहरणरयणा पन्नत्ता ।

[४४ प्र] भगवन् ! जिस प्रकार देवो के लिए कोई भी वस्तु स्पर्शमात्र से शस्त्ररत्न के रूप मे परिणत हो जाती है, क्या उसी प्रकार असुरकुमारदेवो (भवनपति—असुरो) के भी होती है ?

[४४ उ] गौतम ! उनके लिए यह बात शक्य नही है । क्योकि असुरकुमारदेवो के तो सदा वैक्रियकृत शस्त्ररत्न होते हैं ।

विवेचन—देवासुर-सग्राम और उनमें दोनो ओर से प्रयुक्त शस्त्रो का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (४२ से ४४ तक) मे देवासुरो के सग्राम से सम्बद्ध चर्चा है ।

देव और असुर कौन ?—प्रस्तुत मे देव शब्द से ज्योतिष्क और वैमानिक देवो का और असुर शब्द से भवनपति और वाणव्यन्तर देवो का ग्रहण किया गया है ।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५३ (ख) भगवती (विवेचन) भाग. ६ (प घेवरचन्दजी) पृ २७३०

देवासुर-संग्राम क्यों और किन शस्त्रों से?—वैदिक धर्म के ग्रन्थों में देवासुर-संग्राम अथवा देवदानव-संग्राम अत्यन्त प्रसिद्ध है। जैनशास्त्रों में यद्यपि सभी जाति के देवों के लिए 'देव' शब्द ही प्रायः प्रयुक्त है, किन्तु यहाँ असुर शब्द नीची जाति के देवों के लिए प्रयुक्त है। वे ईर्ष्या, द्वेष आदि के वश उच्चजातीय देवों के साथ युद्ध करते रहते हैं। संग्राम शस्त्रसाध्य है। इसलिए यहाँ प्रश्न किया गया है कि देवों और असुरों में संग्राम छिड़ जाने पर उनके पास शस्त्र कहाँ से आते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि देवों के अतिशय पुण्य के कारण जिस वस्तु का, यहाँ तक कि तिनके या पत्ते का भी वे शस्त्रबुद्धि से स्पर्श करते हैं, वही उनके शस्त्ररूप में परिणत हो जाता है, अर्थात् वही तीक्ष्ण शस्त्र का कार्य करता है। किन्तु उनकी अपेक्षा असुरों (भवनपति वाणव्यन्तर देवों) के मन्दतर पुण्य होने से उनके शस्त्र पहले से नित्य विकुर्वित होते हैं, वे ही काम में आते हैं, अन्य कोई भी वस्तु उनके छूने से शस्त्ररूप में परिणत नहीं होती।[1]

महर्द्धिक देवों का लवणसमुद्रादि तक चक्कर लगाकर आने का सामर्थ्य-निरूपण

४५. देवे णं भंते! महिड्ढीए जाव महासोक्खे[2] पभू लवणसमुद्दं अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छित्तए?

हंता, पभू।

[४५ प्र.] भगवन्! महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न देव लवणसमुद्र के चारों ओर चक्कर लगा कर शीघ्र आने (अनुपर्यटन करने) में समर्थ हैं?

[४५ उ.] हाँ, गौतम! (वे ऐसा करने में) समर्थ हैं।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७५३

(ख) "वर्तमान में भी कई आध्यात्मिक या दैवीशक्तिसम्पन्न व्यक्ति हैं, जो फूल की नाजुक पखुड़ी या कागज के टुकड़े को भी शस्त्र के रूप में परिणत कर उससे ऑपरेशन कर सकते हैं। रमन बाबा उर्फ रमन बच्चन मुजफ्फरपुर (बिहार) के निवासी हैं। वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से फूल की नाजुक पखुड़ी या फिर कागज के टुकड़े से जिस्म का कोई भी हिस्सा काट कर ऑपरेशन कर सकते हैं। एक 'अलौकिक शक्ति' भगवती द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक शक्ति के जरिये वे इस तरीके से ऑपरेशन करते हैं। रमन बाबा का कहना है कि इस तरीके से उन्होंने लगभग ८००० ऑपरेशन किये हैं। और वे भी सिर्फ दस मिनट में। इसमें मरीज को कोई दर्द नहीं हुआ और ऑपरेशन का निशान भी कुछ ही देर में गायब हो गया। डॉक्टरों ने जिन्हें लाइलाज कह दिया था, ऐसे कैंसर, लकवा, अलसर, ब्रेनहेमरेज आदि रोगों से पीड़ित रोगियों को ठीक किया है इस स्प्रीच्युअल सर्जरी से।"

—नवभारत टाइम्स ३।१।१९८५

जब दैवी शक्ति सम्पन्न मनुष्य भी ऑपरेशन के शस्त्र के रूप में कागज या फूल की पखुड़ी को प्रयुक्त कर सकते हैं, तब अतिशय पुण्यसम्पन्न देवों के लिए तृण, काष्ठ आदि को छूने से शस्त्र बन जाना असम्भव नहीं है।—सं.

२ पाठान्तर—'महेसक्खे'।

४६. देवे णं भंते ! महिड्ढीए एव धातइसंडं दीवं जाव।

हंता, पभू।

[४६ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुखी देव धातकीखण्ड द्वीप के चारो ओर चक्कर लगा कर शीघ्र आने मे समर्थ है ?

[४६ उ] हाँ, गौतम ! वे समर्थ हैं।

४७. एव जाव रुयगवर दीवं जाव ?

हंता, पभू। तेण परं वीतीवएज्जा नो चेव णं अणुपरियट्टेज्जा।

[४७ प्र] भगवन् ! क्या इसी प्रकार वे देव रुचकवर द्वीप तक चारो ओर चक्कर लगा कर आने मे समर्थ हैं ?

[४७ उ] हाँ, गौतम ! समर्थ है। किन्तु इससे आगे के द्वीप-समुद्रो तक देव जाता है, किन्तु उसके चारो ओर चक्कर नही लगाता।

विवेचन—महर्द्धिक देवो का अनुपर्यटन-सामर्थ्य—महर्द्धिक देव, लवणसमुद्र धातकीखण्ड, रुचकवरद्वीप आदि के चारो ओर चक्कर लगाकर शीघ्र आ सकते है, किन्तु इससे आगे के द्वीप-समुद्रो तक वे जा सकते है, मगर उनके चारो ओर चक्कर नही लगाते, क्योकि तथा-विध प्रयोजन का अभाव है।[1]

सभी देवों द्वारा अनन्त कर्मांशों को क्षय करने के काल का निरूपण—

४८. अत्थि णं भते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहन्नेण एक्केणं वा दोहि वा तोहि वा, उक्कोसेणं पर्चाहि वाससएहिं खवयति ?

हंता, अत्थि।

[४८ प्र] भगवन् ! क्या इस प्रकार के भी देव है, जो अनन्त (शुभकर्मप्रकृतिरूप) कर्माशो को जघन्य एक सौ, दो सौ या तीन सौ और उत्कृष्ट पाच सौ वर्षों मे क्षय कर देते है ?

[४८ उ] हाँ, गौतम ! (ऐसे देव) है।

४९. अत्थि णं भते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहन्नेणं एक्केण वा दोहि वा तीहि वा, उक्कोसेण पर्चाहि वाससहस्सेहिं खवयंति ?

हंता, अत्थि।

[४९ प्र] भगवन् ! क्या ऐसे देव भी है, जो अनन्त कर्माशो को जघन्य एक हजार, दो हजार या तीन हजार और उत्कृष्ट पाच हजार वर्षों मे क्षय कर देते है ?

[४९ उ] हाँ, गौतम ! (ऐसे देव) है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ८२१

५०. अत्थि णं भंते ! ते देवा जे अणते कम्मंसे जहन्नेण एक्केण वा दोहि वा तीहि वा, उक्कोसेणं पचहि वाससयसहस्सेहि खवयति ?

[५० प्र] भगवन् ! क्या ऐसे देव भी है, जो अनन्त कर्मांशो को जघन्य एक लाख, दो लाख, या तीन लाख वर्षो मे और उत्कृष्ट पाच लाख वर्षो मे क्षय कर देते हैं ?

[५० उ] हाँ, गौतम ! (ऐसे देव भी) है।

५१. कयरे णं भंते ! ते देवा जे अणते कम्मंसे जहन्नेण एक्केण वा जाव पचहि वाससतेहि खवयंति ? कयरे णं भते ! ते देवा जाव पंचहि वाससहस्सेहि खवयति ? कयरे ण भते ! ते देवा जाव पंचहि वाससतसहस्सेहि खवयंति ?

गोयमा ! वाणमंतरा देवा अणंते कम्मसे एगेण वाससएणं खवयति, असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अणते कम्मंसे दोहि वाससएहि खवयति, असुरकुमारा(?रिंदा) देवा अणते कम्मसे तीहि वाससएहि खवयति, गह-नक्खत्त-तारारूवा जोतिसिया देवा अणंते कम्मंसे चतुवास जाव खवयति, चंदिम-सूरिया जोतिसिंदा जोतिसरायाणो अणते कम्मसे पंचहि वाससएहि खवयति। सोहम्मीसाणगा देवा अणते कम्मसे एगेणं वाससहस्सेणं जाव खवयति, सणकुमार-माहिंदगा देवा अणंते कम्मंसे दोहि वाससहस्सेहि खवयंति, एवं एएणं अभिलावेणं बंभलोग-लंतगा देवा अणंते कम्मसे तीहि वाससहस्सेहि खवयंति, महासुक्क-सहस्सारगा देवा अणते० चउहि वाससह०, आणय-पाणय-आरण-अच्चुयगा देवा अणते० पंचहि वाससहस्सेहि खवयंति। हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा अणते कम्मसे एगेणं वाससयसहस्सेण खवयति, मज्झिमगेवेज्जगा देवा अणंते० दोहि वाससयसहस्सेहि खवयति, उवरिमगेवेज्जगा देवा अणते कम्मंसे तिहि वाससयसह० जाव खवयति, विजय-वेजयत-जयत-अपराजियगा देवा अणते० चउहि वास० जाव खवयति, सव्वट्ठसिद्धगा देवा अणंते कम्मसे पचहि वाससयसहस्सेहि खवयति। एए णं गोयमा ! ते देवा जे अणते कम्मसे जहन्नेण एक्केण वा दोहि तीहि वा उक्कोसेणं पचहि वाससएहि खवयंति। एए ण गोयमा ! ते देवा जाव पचहि वाससहस्सेहि खवयति। एए णं गोयमा ! ते देवा जाव पंचहि वाससयसहस्सेहि खवयंति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

अट्ठारसमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥ १८-७ ॥

[५१ प्र] हे भगवन् ! ऐसे कौन-से देव है, जो अनन्त कर्मांशो को जघन्य एक सौ वर्ष, यावत्—पाच सौ वर्षों मे क्षय करते हैं ? भगवन् ! ऐसे कौन-से देव हैं, जो यावत् पाच हजार वर्षों मे अनन्त कर्मांशो का क्षय कर देते हैं ? और हे भगवन् ! ऐसे कौन-से देव है, जो अनन्त कर्मांशो को यावत् पाच लाख वर्षों मे क्षय कर देते है ?

[५१ उ] गौतम ! वे वाणव्यन्तर देव है, जो अनन्त कर्मांशो को एक-सौ वर्षों मे क्षय कर देते है। असुरेन्द्र को छोड कर शेष सब भवनपति देव अनन्त कर्मांशो को दो सौ वर्षों मे, तथा

असुरकुमार देव अनन्त कर्मांशो को तीन सौ वर्षों मे, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देव चार सौ वर्षों मे और ज्योतिषीन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्र और सूर्य अनन्त कर्मांशो को पाँच सौ वर्षों मे क्षय कर देते हैं।

सौधर्म और ईशानकल्प के देव अनन्त कर्मांशो को यावत् एक हजार वर्षों मे खपा देते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देव अनन्त कर्मांशो को दो हजार वर्षों मे खपा देते हैं। इस प्रकार आगे इसी अभिलाप के अनुसार—ब्रह्मलोक और लान्तककल्प के देव अनन्त कर्मांशो को तीन हजार वर्षों मे खपा देते हैं। महाशुक्र और सहस्रार देव अनन्त कर्मांशो को चार हजार वर्षों मे, आनत-प्राणत, आरण और अच्युतकल्प के देव अनन्त कर्मांशो को पाच हजार वर्षों मे क्षय कर देते हैं। अधस्तन ग्रैवेयकत्रय के देव अनन्त कर्मांशो को एक लाख वर्ष मे, मध्यम ग्रैवेयकत्रय के देव अनन्त कर्मांशो को दो लाख वर्षो मे, और उपरिम ग्रैवेयकत्रय के देव अनन्त कर्मांशो को तीन लाख वर्षों मे क्षय करते हैं। विजय, वैजयत, जयन्त और अपराजित देव अनन्त कर्मांशो को चार लाख वर्षों मे क्षय कर देते हैं और सर्वार्थसिद्ध देव, अपने अनन्त कर्मांशो को पाँच लाख वर्षों मे क्षय कर देते हैं।

इसीलिए हे गौतम! ऐसे देव हैं, जो अनन्त कर्मांशो को जघन्य एक सौ, दो सौ या तीन सौ वर्षों मे, यावत् पाच लाख वर्षों मे क्षय करते हैं।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरने लगे।

विवेचन—देवो द्वारा अनन्त कर्मांशो को क्षय करने का कालमान—प्रस्तुत ४ सूत्रो (४८ से ५१ तक) मे चारो जाति के देवो के द्वारा अनन्त कर्मांशो को क्षय करने का कालमान बताया गया है। नीचे इसकी सारिणी दी जाती है—

देवो का नाम	कर्मक्षय करने का कालमान
१ वाणव्यन्तर देव	१०० वर्षो मे
२ असुरकुमार के सिवाय भवनपतिदेव	२०० वर्षो मे
३ असुरकुमार देव	३०० वर्षो मे
४ ग्रह-नक्षत्र-तारारूप ज्योतिष्कदेव	४०० वर्षो मे
५ ज्योतिषीन्द्र चन्द्र-सूर्य	५०० वर्षो मे
६ सौधर्म-ईशानकल्प के देव	१००० वर्षो मे
७ सनत्कुमार-माहेन्द्र देव	२००० वर्षो मे
८ ब्रह्मलोक लान्तक देव	३००० वर्षो मे
९ महाशुक्र-सहस्रार देव	४००० वर्षो मे
१० आनत-प्राणत-आरण-अच्युतकल्प देव	५००० वर्षो मे
११ अधस्तन ग्रैवेयक देव	एक लाख वर्ष मे
१२ मध्यम ग्रैवेयक देव	दो लाख वर्षो मे

देवो के नाम	कर्मक्षय करने का कालमान
१३ उपरितन ग्रैवेयक देव	तीन लाख वर्षों मे
१४ विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित देव	चार लाख वर्षों मे
१५ सर्वार्थसिद्ध देव	पाच लाख वर्षों मे[1]

अनन्तकर्मांश क्षय का तात्पर्य—यह है कि देवो के पुण्यकर्म प्रकृष्टतर और प्रकृष्टतम रस वाले होते है। अत यहाँ अनन्तकर्मांशो के क्षय करने का जो कालक्रम बताया है, वह उत्तरोत्तर प्रकृष्ट, प्रकृष्टतर और प्रकृष्टतम रसवाले कर्मों के क्षय का समझना चाहिए।[2]

जैसे व्यन्तरो के अनन्तकर्मपुद्गल अल्पानुभागवाले होने से शी ्र खप जाते है। उनकी अपेक्षा भवनपतियो के अनन्त कर्मपुद्गल प्रकृष्ट अनुभाग वाले होने से अधिक काल यानी २०० वर्षों मे खपते है।

॥ अठारहवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ८२१-८२२

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५३-७५४

अट्ठमो उद्देसओ : 'अणगारे'

आठवाँ उद्देशक : 'अनगार'

भावितात्मा अनगार के पैर के नीचे दबे कुर्कुटादि के कारण ईर्यापथिक क्रिया का सकारण निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१ प्र] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से यावत् इस प्रकार पूछा—

२. [१] अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो पुरओ दुहओ जुगमायाए पेहाए पेहाए रीयं रीयमाणस्स पायस्स अहे कुक्कुडपोते वा वट्टापोते वा कुलिंगच्छाए वा परियावज्जेज्जा, तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! अणगारस्स णं भावियप्पणो जाव तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जति, नो संपराइया किरिया कज्जति।

[२-१ प्र] भगवन् ! सम्मुख और दोनो ओर युगमात्र (गाडी के जुए प्रमाण) भूमि को देख-देख कर ईर्यापूर्वक गमन करते हुए भावितात्मा अनगार के पैर के नीचे मुर्गी का बच्चा, बतख (वर्तक) का बच्चा अथवा कुलिंगच्छाय (चीटी जैसा सूक्ष्म जीव) आ (या दब) कर मर जाए तो, भगवन् ! उक्त अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[२-१ उ] गौतम ! यावत् उस (पूर्वकथित) भावितात्मा अनगार को, यावत् ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नही लगती।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

जहा सत्तमसए सत्तुद्देसए (स० ७ उ० ७ सु० १ [२]) जाव अट्ठो निक्खित्तो।

सेवं भंते ! ० जाव विहरति।

[२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि पूर्वोक्त भावितात्मा अनगार को यावत् साम्परायिकी क्रिया नही लगती ?

[२-२ उ] गौतम ! सातवे शतक के सप्तम उद्देशक (के सू १-२) के अनुसार जानना चाहिए। यावत् अर्थ का निक्षेप (निगमन) करना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—भावितात्मा अनगार को साम्परायिक क्रिया क्यों नहीं लगती ? जिस भावितात्मा अनगार के क्रोधादि कषाय नष्ट हो गये है, उसके पैर के नीचे आकर यदि कोई जन्तु अकस्मात् मर जाता है तो उसे ईर्यापथिकी क्रिया ही लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं, क्योंकि साम्परायिकी क्रिया सकषायी जीवों को लगती है, अकषायी को नहीं। जैसा कि तत्त्वार्थ सूत्र मे कहा है—**'सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः'।**[1]

पुरओ दुहओ : विशेषार्थ : पुरओ—आगे-सामने, दुहओ—पीठ पीछे और दोनो पार्श्व (अगल बगल) मे।

भगवान् का जनपद-विहार, राजगृह में पदार्पण और गुणशील चैत्य में निवास

३. तए णं समणे भगवं महावीरे बहिया जाव विहरइ।

[३] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बाहर के जनपद मे यावत् विहार कर गए।

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव पुढविसिलावट्टए।

[४] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर मे (गुणशीलक नामक चैत्य था) यावत् पृथ्वीशिलापट्ट था।

५. तस्स णं गुणसिलस्स चेतियस्स अदूरसामंते बहवे अन्नउत्थिया परिवसंति।

[५] उस गुणशीलक उद्यान के समीप बहुत-से अन्यतीर्थिक निवास करते थे।

६. तए णं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे जाव परिसा पडिगता।

[६] उन दिनो मे (एक बार) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे, यावत् परिषद् (धर्मोपदेश श्रवण कर, वन्दना करके) वापिस लौट गई।

विवेचन—भगवान् का मुख्य रूप से विचरणक्षेत्र, निवासस्थान और पट्ट आदि—भगवान् का मुख्यतया विचरणक्षेत्र उन दिनो राजगृह नगर था। भगवान् वहाँ गुणशीलक उद्यान मे निवास-करते थे और मुख्यरूप से पृथ्वीशिला के बने हुए पट्ट पर विराजते थे। देवो द्वारा समवसरण की रचना की जाती थी। भगवान् समवसरण मे विराज कर धर्मोपदेश देते थे।

अन्यतीर्थिको द्वारा श्रमणनिर्ग्रन्थो पर हिंसापरायणता, असंयतता एवं एकान्तबालत्व के आक्षेप का गौतमस्वामी द्वारा समाधान, भगवान् द्वारा उक्त यथार्थ उत्तर की प्रशंसा

७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नामं अणगारे जाव उड्ढंजाणू जाव विहरइ।

[७] उस काल और उस समय मे, श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी (पट्टशिष्य)

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५४

(ख) भगवती विवेचन भा ६ (प घेवरचन्दजी) पृ २७३६-२७३७

श्री इन्द्रभूति नामक अनगार यावत्, ऊर्ध्वजानु (दोनो घुटने ऊँचे करके) यावत् तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

८. तए ण ते अन्नउत्थिया जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति, उवा० २ भगव गोयम एव वयासि—तुब्भे ण अज्जो ! तिविह तिविहेण अस्सजय जाव एगतबाला यावि भवह ।

[८] एक दिन वे अन्यतीर्थिक, श्री गौतम स्वामी के पास आकर कहने लगे—आर्यो ! तुम त्रिविध-त्रिविध से (तीन करण और तीन योग से) असयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो।

९. तए ण भगव गोयमे ते अन्नउत्थिए एवं वयासि—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण अस्सजय जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

[९ प्र] इस पर भगवान् गौतम स्वामी ने उन (आक्षेपकर्त्ता) अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—"हे आर्यो ! किस कारण से हम तीन करण-तीन योग से असयत, अविरत, यावत् एकान्त बाल है ?

१०. तए ण ते अन्नउत्थिया भगव गोयम एव वदासी—तुब्भे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा पाणे पेच्चेह अभिहणह जाव उवद्दवेह । तए ण तुब्भे पाणे पेच्चेमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविह तिविहेण जाव एगतबाला यावि भवह ।

[१० उ] तब वे अन्यतीर्थिक, भगवान् गौतम से इस प्रकार कहने लगे—हे आर्य ! तुम गमन करते हुए जीवो को आक्रान्त करते (दबाते) हो, मार देते हो, यावत्—उपद्रवित (भयाक्रान्त) कर देते हो। इसलिए प्राणियो को आक्रान्त यावत् उपद्रुत करते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत, यावत् एकान्त बाल हो।

११. तए ण भगव गोयमे ते अन्नउत्थिए एव वदासि—नो खलु अज्जो ! अम्हे रीय रीयमाणा पाणे पेच्चेमो जाव उवद्दवेमो, अम्हे ण अज्जो रीय रीयमाणा काय च जोय च रीय च पडुच्च दिस्स दिस्स पदिस्स पदिस्स वयामो । तए ण अम्हे दिस्स दिस्स वयमाणा पदिस्स पदिस्स वयमाणा णो पाणे पेच्चेमो जाव णो उवद्दवेमो । तए ण अम्हे पाणे अपच्चेमाणा जाव अणोद्दवेमाणा तिविह तिविहेण जाव एगतपडिया यावि भवामो । तुब्भे ण अज्जो ! अप्पणा चेव तिविह तिविहेण जाव एगंतबाला यावि भवह ।

[११ उ] (गौतम स्वामी-) यह सुन कर भगवान् गौतम स्वामी ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—आर्यो ! हम गमन करते हुए न तो प्राणियो को कुचलते है, न मारते है और न भयाक्रान्त करते हैं, क्योकि आर्यो ! हम गमन करते समय काया (शरीर की शक्ति को), योग को (सयम व्यापार को) और धीमी-धीमी गति को ध्यान मे रख कर देख-भाल कर विशेष रूप से निरीक्षण करके चलते हैं। अत हम देख-देख कर एव विशेष रूप से निरीक्षण करते हुए चलते हैं, इसलिए हम प्राणियो को न तो दबाते-कुचलते हैं, यावत् न उपद्रवित करते (पीडा पहुँचाते) है। इस प्रकार प्राणियो को आक्रान्त न करते हुए, यावत् पीडित न करते हुए हम तीन करण और तीन योग से यावत् एकान्त पण्डित है। हे आर्यो ! तुम स्वय ही त्रिविध-त्रिविध से असयत, अविरत यावत एकान्त बाल हो।

१२ तए णं ते अन्नउत्थिया भगवं गोयमं एवं वदासि—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव भवामो ?

[१२] इस पर वे अन्यतीर्थिक भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—आर्य ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध से यावत् एकान्त बाल हैं ?

१३. तए णं भगवं गोयमे ते अन्नउत्थिए एवं वयासि—तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पाणे पेच्चेह जाव उवद्दवेह । तए णं तुब्भे पाणे पेच्चेमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविहं जाव एगंतबाला यावि भवह ।

[१३] तब भगवान् गौतम स्वामी ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! तुम चलते हुए प्राणियों को आक्रान्त करते हो, यावत् पीडित करते हो । जीवों को आक्रान्त करते हुए यावत् पीडित करते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध से असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो ।

१४. तए णं भगवं गोयमे ते अन्नउत्थिए एवं पडिहणइ, प० २ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उ० २ समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वं० २ णच्चासन्ने जाव पज्जुवासति ।

[१४] इस प्रकार गौतम स्वामी ने उन अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर कर दिया । तत्पश्चात् गौतम स्वामी श्रमण भगवान महावीर के समीप पहुँचे और उन्हें वन्दना-नमस्कार करके न तो अत्यन्त दूर और न अतीव निकट यावत् पर्युपासना करने लगे ।

१५ 'गोयमा !' ई समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासि—सुट्ठु णं तुमं गोयमा ! ते अन्नउत्थिए एवं वयासि, साहु णं तुमं गोयमा ! ते अन्नउत्थिए एवं वदासि, अत्थि णं गोयमा ! मम बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था जे णं नो पभू एयं वागरणं वागरेत्तए जहा णं तुमं, तं सुट्ठु णं तुमं गोयमा ! ते अन्नउत्थिए एवं वयासि, साहु णं तुमं गोयमा ! ते अन्नउत्थिए एवं वदासि ।

[१५] 'गौतम !' इस नाम से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भगवान् गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—हे गौतम ! तुमने उन अन्यतीर्थिकों को अच्छा कहा, तुमने उन अन्यतीर्थिकों को यथार्थ कहा । गौतम ! मेरे बहुत-से शिष्य श्रमण निर्ग्रन्थ छद्मस्थ हैं, जो तुम्हारे समान उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं । जैसा कि तुमने उन अन्यतीर्थिकों को ठीक कहा; उन अन्य-तीर्थिकों को बहुत ठीक कहा ।

विवेचन—'कायं च जोयं च रीयं च पडुच्च दिस्स वयामो' : तात्पर्य—गौतम स्वामी ने उन अन्यतीर्थिकों के आक्षेप का उत्तर देते हुए कहा कि हम प्राणियों को कुचलते, मारते या पीडित करते हुए नहीं चलते, क्योंकि हम **(काय) शरीर** को देख कर चलते हैं, अर्थात्—शरीर स्वस्थ हो, सशक्त हो, चलने में समर्थ हो, तभी चलते हैं, तथा हम नंगे पैर चलते हैं, किसी वाहन का उपयोग नहीं करते, इसलिए किसी भी जीव को कुचलते-दबाते या मारते नहीं । फिर हम **योग**—अर्थात्—संयमयोग की अपेक्षा से ही गमन करते हैं । ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि के प्रयोजन से ही गमन करते

हैं, गोचरी आदि जाना हो, ग्रामानुग्राम विहार करना हो, या दया या सेवा का कोई कार्य हो, तभी चलते है, विना प्रयोजन गमन नही करते। और चलते समय भी चपलता, हडबडी और शीघ्रता से रहित ईर्यापथशोधनपूर्वक दाये-बाए, आगे-पीछे देख कर चलने है।

कठिन शब्दार्थ—**पेच्चेह**—कुचलते हो, **अभिहणह**—मारते हो, टकराते हो, **उवद्दवेह**—पीडित करते हो। **दिस्स दिस्स**—देख-देख कर। **पदिस्स पदिस्स**—विशेष रूप से देख कर।[2]

छद्मस्थ मनुष्य द्वारा परमाणु द्विप्रदेशिकादि स्कन्ध को जानने और देखने के सम्बन्ध में प्ररूपणा—

१६. तए णं भगव गोयमे समणेण भगवता महावीरेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ समण भगव महावीर वदति नमसति, व० २ एव वदासि—छउमत्थे णं भते ! मणुस्से परमाणुपोग्गलं किं जाणइ पासइ, उदाहु न जाणइ न पासइ ?

गोयमा ! अत्थेगतिए जाणति, न पासति; अत्थेगतिए न जाणति, न पासति।

[१६ प्र] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हृष्ट-तुष्ट होकर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य परमाणु-पुद्गल को जानता-देखना है अथवा नही जानता—नही देखता ?

[१६ उ] गौतम ! कोई (छद्मस्थ मनुष्य) जानता है, किन्तु देखता नही, और कोई जानता भी नही और देखता भी नही।

१७. छउमत्थे ण भते ! मणूसे दुपएसियं खध किं जाणति पासइ ?

एव चेव।

[१७ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य द्विप्रदेशी स्कन्ध को जानता-देखता है, अथवा नही जानता, नही देखता ?

[१७ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए।

१८. एव जाव असखेज्जपएसिय।

[१८] इसी प्रकार यावत् असख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक (को जानने देखने के विषय मे) कहना चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५५
(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७४०
२ (क) वही, भा ६, पृ २७३८-२७३९
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५५

१९. छउमत्थे ण भंते ! मणूसे अणंतपएसियं खंधं किं० पुच्छा ?

गोयमा ! अत्थेगतिए जाणति पासति; अत्थेगतिए जाणति, न पासति; अत्थेगतिए न जाणति, पासति; अत्थेगतिए न जाणति न पासति ।

[१९ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को जानता देखता है ? इत्यादि प्रश्न ?

[१९ उ] गौतम ! १. कोई जानता है, और देखता है, २ कोई जानता है, किन्तु देखता नही; ३. कोई जानता नही, किन्तु देखता है, और ४ कोई जानता भी नही और देखता भी नही ।

विवेचन—परमाणु एवं द्विप्रदेशिकादि स्कन्ध को जानने-देखने की छद्मस्थ की शक्ति— छद्मस्थ शब्द से यहाँ निरतिशय ज्ञानी (जो अतिशय ज्ञानधारी नही है, ऐसा) विवक्षित है । ऐसे छद्मस्थ मनुष्य को परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थविषयक ज्ञान एवं दर्शन होते हैं या नही होते ? यह प्रश्न का आशय है । इसके उत्तर का आशय यह है कि कई छद्मस्थ मनुष्यो को सूक्ष्म पदार्थविषयक ज्ञान तो होता है, किन्तु दर्शन नही होता । क्योंकि **'श्रुतोपयुक्तः श्रुतज्ञानी, श्रुतदर्शनाभावात्'**—श्रुतज्ञानी जिन सूक्ष्मादि पदार्थों को श्रुत के बल से जानता है, उन पदार्थों का दर्शन यानी प्रत्यक्ष ज्ञान या अनुभव उसे नही होता । इसीलिए यहाँ कहा गया है कि कितने ही छद्मस्थ मनुष्य परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान तो शास्त्र के आधार से कर लेते है, परन्तु उनके साक्षात् दर्शन से रहित होते हैं । **'श्रुतोपयुक्तातिरिक्तस्तु न जानाति, न पश्यति'** इस नियम के अनुसार जो छद्मस्थ श्रुत ज्ञानी मनुष्य श्रुतोपयोग से रहित होते हैं, वे सूक्ष्मादि पदार्थों को न तो जान पाते है, और न ही देख पाते है । इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध (द्व्यणुक अवयव) से लेकर असख्यातप्रदेशी स्कन्ध (तीन, चार, पाच, छह, सात और आठ, नौ, दश और सख्यात-प्रदेशी एवं असख्यात प्रदेशी स्कन्ध) तक के विषय मे भी समझना चाहिए ।[1]

अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को जानने-देखने के विषय मे चौभंगी—इस विषय मे चार भंग बताए गए है । यथा—(१) कोई छद्मस्थ मनुष्य स्पर्श आदि से उसे जानता है और चक्षु से देखता है । (२) कोई छद्मस्थ स्पर्शादि द्वारा उसे जानता तो है, परन्तु नेत्र के अभाव मे उसे देख नही पाता । (३) कोई छद्मस्थ मनुष्य स्पर्शादि का अविषय होने से उसे नही जान पाता, किन्तु चक्षु से उसे देखता है । यह तृतीय भंग है . जैसे दूरस्थ पर्वत आदि को कोई छद्मस्थ मनुष्य चक्षु के द्वारा देखता है, पर स्पर्शादि द्वारा उसे जानता नही । (४) तथा इन्द्रियो का अविषय होने से कोई छद्मस्थ मनुष्य न तो जान पाता है, और न ही देख पाता है, जैसे अन्धा मनुष्य ।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५५
(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १२, पृ १८१
२ (क) वही, भाग १२, पृ १८२
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५६

अवधिज्ञानी परमावधिज्ञानी और केवली द्वारा परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक को जानने-देखने के सामर्थ्य का निरूपण

२० आहोहिए ण भंते ! मणूस्से परमाणुपोग्गल० ? जहा छउमत्थे एवं आहोहिए वि जाव अणतपएसिय ।

[२० प्र] भगवन् ! क्या आधोऽवधिक (अवधिज्ञानी) मनुष्य, परमाणुपुद्गल को जानता देखता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२० उ] जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य के विषय मे कथन किया है, उसी प्रकार आधोऽवधिक मनुष्य के विषय मे समझना चाहिए । इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए ।

२१ [१] परमाहोहिए णं भंते ! मणूसे परमाणुपोग्गलं ज समय जाणइ तं समयं पासति, जं समय पासति त समय जाणति ? णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[२१/१ प्र] भगवन् ! क्या परमावधिज्ञानी मनुष्य परमाणु-पुद्गल को जिस समय जानता है, उसी समय देखता है ? और जिस समय देखता है, उसी समय जानता है ?

[२१-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ—परमाहोहिए ण मणूसे परमाणुपोग्गलं ज समय जाणति नो त समय पासति, ज समय पासति नो त समयं जाणइ ? गोयमा ! सागारे से नाणे भवति, अणागारे से दसणे भवति, से तेणट्ठेण जाव नो त समय जाणइ ।

[२१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हे कि परमावधिज्ञानी मनुष्य परमाणु-पुद्गल को जिस समय जानता है, उसी समय देखता नही हे और जिस समय देखता है, उस समय जानता नही है ?

[२१-२ उ] गौतम ! परमावधिज्ञानी का ज्ञान साकार (विशेष-ग्राहक) होता है, और दर्शन अनाकार (सामान्य-ग्राहक) होता है । इसलिए ऐसा कहा गया है कि यावत् जिस समय देखता है उस समय जानता नही ।

२२. एव जाव अणतपएसिय ।

[२२] इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए ।

२३. केवली ण भंते ! मणूसे परमाणुपोग्गल० ! जहा परमाहोहिए तहा केवली वि जाव अणतपएसिय ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

अट्ठारसमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ।। १८-८ ।।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या केवलज्ञानी जिस समय परमाणुपुद्गल को जानता है, उस समय देखता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२३ उ] गौतम ! जिस प्रकार परमावधिज्ञानी के विषय मे कहा है, उसी प्रकार केवलज्ञानी के लिए भी कहना चाहिए । और इसी प्रकार (का कथन) यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक (समझना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—अवधिज्ञानी, परमावधिज्ञानी और केवलज्ञानी के युगपत् ज्ञान-दर्शन की शक्ति विषयक प्ररूपणा—आधोऽवधिक का अर्थ है—सामान्य अवधिज्ञानी, परमावधिक का अर्थ है—उत्कृष्ट अवधिज्ञानी । परमावधिक को अन्तर्मुहूर्त मे अवश्यमेव केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है । परस्पर विरुद्ध दो धर्म वालो का एक ही काल मे एक स्थान मे होना सभव नही होता । तथा ज्ञान और दर्शन दोनो की क्रिया एक ही समय मे नही होती, क्योकि समय सूक्ष्मतम काल है, आँख की पलक झपकने मे असख्यात समय व्यतीत हो जाते हैं । जैसे कमल के सौ पत्तो को सूई से भेदन की प्रतीति तो एक साथ एक ही काल की होती है, परन्तु कमल के सौ पत्तो के एक साथ भेदन मे भी असख्यात समय लग जाते हैं ।[१]

॥ अठारहवां शतक आठवां उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५६ (ख) प्रमाणनयतत्त्वालोक परि १

नवमो उद्देसओ : 'भविए'

नौवाँ उद्देशक : भव्य (-द्रव्यनैरयिकादि)

नैरयिकादि चौबीस दण्डको मे भव्य-द्रव्यसम्बन्धित प्रश्न का यथोचित युक्तिपूर्वक समाधान

१. रायगिहे जाव एव वयासि—

[१] राजगृह नगर मे गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से यावत् इस प्रकार पूछा—

२ [१] अत्थि ण भंते ! भवियदव्वनेरइया, भवियदव्वनेरइया ? हंता, अत्थि ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या भव्य द्रव्य-नैरयिक—'भव्य-द्रव्य-नैरयिक' है ?
[२-१ उ] हाँ, गौतम ! है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ—भवियदव्वनेरइया, भवियदव्वनेरइया ? गोयमा ! जे भविए पचेंदियतिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा नेरइएसु उववज्जित्तए, से तेणट्ठेणं० ।

[२-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि भव्य-द्रव्य-नैरयिक—'भव्य-द्रव्य नैरयिक' है ?

[२-२ उ] गौतम ! जो कोई पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक या मनुष्य, (भविष्य मे) नैरयिको मे उत्पन्न होने के योग्य है, वह भव्य-द्रव्य-नैरयिक कहलाता है । इस कारण से ऐसा यावत् कहा गया है ।

३. एव जाव थणियकुमाराण ।

[३] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए ।

४. [१] अत्थि ण भंते ! भवियदव्वपुढविकाइया, भवियदव्वपुढविकाइया ? हंता, अत्थि ।

[४-१ प्र] भगवन् ! क्या भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक—भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक है ?
[४-१ उ] हाँ, गौतम ! (वह ऐसा ही) है ।

[२] से केणट्ठेण० ? गोयमा ! जे भविए तिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवे वा पुढविकाइएसु उववज्जित्तए, से तेणट्ठेण० ।

[४-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते हैं, कि भव्यद्रव्य-पृथ्वीकायिक—'भव्यद्रव्य पृथ्वीकायिक' है ।

[४-२ उ] गौतम ! जो तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य अथवा देव पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने के योग्य है, वह भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक कहलाता है ।

५. आउकाइय-वणस्सतिकाइयाण एवं चेव ।

[५] इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक के विषय मे समझना चाहिए ।

६. तेउ-वाउ-बेंदिय-तेइंदिय चउरिंदियाण य जे भविए तिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा ।

[६] अग्निकाय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याय मे जो कोई तिर्यञ्च या मनुष्य उत्पन्न होने के योग्य हो, वह भव्य-द्रव्य-अग्निकायिकादि कहलाता है ।

७. पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जे भविए नेरइए वा तिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवे वा पचेदियतिरिक्खजोणिए वा ।

[७] जो कोई नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य या देव, अथवा पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक जीव, पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिको मे उत्पन्न होने योग्य होता है, वह भव्य-द्रव्य-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक कहलाता है ।

८. एव मणुस्साण वि ।

[८] इसी प्रकार मनुष्यो के विषय मे (समझ लेना चाहिए ।)

९. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइया ।

[९] वाणव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिको के विषय मे नैरयिको के समान समझना चाहिए ।

विवेचन—भव्य और द्रव्य का पारिभाषिक अर्थ—मुख्यतया भविष्यत्काल की पर्याय का जो कारण है, वह 'द्रव्य' कहलाता है । कभी-कभी भूतकाल की पर्याय वाला भी 'द्रव्य' कहलाता है । जैसे—भूतकाल मे जो राजा था वर्तमान मे नही है, फिर भी वह 'राजा' कहलाता है । वह द्रव्य राजा है । इसी प्रकार भविष्य मे जो राजा होगा, वर्तमान मे नही, वह भी 'राजा' के नाम से कहा जाता है । वह भी 'द्रव्य राजा' है । यहाँ मुख्यतया भविष्यकाल की पर्याय के कारण को 'भव्य-द्रव्य' कहा गया है । किन्तु **'भवितुं योग्याः भव्याः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार भूतपर्याय वाले जीवो को भव्यद्रव्य नही कहा गया है । इसलिए भविष्यकाल मे जो जीव नारक-पर्याय मे उत्पन्न होने वाला है, चाहे वह पचेन्द्रिय तिर्यच हो, चाहे मनुष्य हो, वह जीव भव्य-द्रव्य-नैरयिक कहलाता है । वर्तमान पर्याय मे जो नैरयिक है, वह द्रव्यनैरयिक नही, भावनैरयिक है । भव्यद्रव्य तीन प्रकार के होते है—(१) एकभविक, (२) बद्धायुष्क और (३) अभिमुख-नामगोत्र । जो जीव विवक्षित एक—अमुक भव के अनन्तर ही अमुक दूसरे भव मे उत्पन्न होने वाले है, वे **'एकभविक'** है । जिन्होने पूर्वभव की आयु का तीसरा भाग आदि के शेष रहते ही अमुक भव का आयुष्य बाध लिया है, वे **'बद्धायुष्क'** है । तथा जो पूर्वभव का त्याग करने के अनन्तर, अमुक भव के आयुष्य, नाम और गोत्र का साक्षात् वेदन करते हैं, वे **'अभिमुख-नामगोत्र'** कहलाते है ।[१]

---

१ भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा १२ पृ १९७-१९८

चौबीस दण्डकों में भव्य-द्रव्यनैरयिकादि की स्थिति का निरूपण

१०. भवियदव्वनेरइयस्स ण भंते ! केवतियं काल ठिती पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[१० प्र] भगवन् ! भव्य-द्रव्य-नैरयिक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१० उ] गौतम ! उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) पूर्वकोटि वर्ष (करोड पूर्व वर्ष) की कही गई है ।

११. भवियदव्वअसुरकुमारस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं ।

[११ प्र] भगवन् ! भव्य-द्रव्य-असुरकुमार की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[११ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है ।

१२. एवं जाव थणियकुमारस्स ।

[१२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक जानना चाहिए ।

१३. भवियदव्वपुढविकाइयस्स णं पुच्छा । गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ।

[१३ प्र] भगवन् ! भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१३ उ] गौतम ! (उसकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की कही गई है ।

१४. एवं आउकाइयस्स वि ।

[१४] इसी प्रकार अप्कायिक की स्थिति (के विषय मे कहना चहिए) ।

१५. तेउ-वाऊ जहा नेरइयस्स ।

[१५] भव्यद्रव्य अग्निकायिक एव भव्य-द्रव्य-वायुकायिक की स्थिति नैरयिक के समान है ।

१६. वणस्सइकाइयस्स जहा पुढविकाइयस्स ।

[१६] वनस्पतिकायिक की स्थिति पृथ्वीकायिक के समान समझनी चाहिए ।

१७. बेइदिय-तेइंदिय-चतुरिंदियस्स जहा नेरइयस्स ।

[१७] (भव्यद्रव्य-) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय की स्थिति भी नैरयिक के समान जाननी चाहिये ।

१८. पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[१८] (भव्यद्रव्य-) पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम काल की है ।

१९. एवं मणुस्सस्स वि ।

[१९] (भव्यद्रव्य-) मनुष्य की स्थिति भी इसी प्रकार है ।

२०. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियस्स जहा असुरकुमारस्स ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

अट्ठारसमे सए : नवमो उद्देसओ समत्तो ॥ १८-९ ॥

[२०] (भव्यद्रव्य) वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देव की स्थिति असुरकुमार के समान है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—भव्य-द्रव्य नारकादि की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति—जो सञ्ज्ञी या असञ्ज्ञी अन्तर्मुहूर्त्त की आयु वाला जीव मर कर नरकगति मे जाने वाला है, उसकी अपेक्षा भव्य-द्रव्य-नैरयिक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है । उत्कृष्ट करोड पूर्व की आयु वाला जीव मर कर नरकगति मे जाए उसकी अपेक्षा से उत्कृष्ट स्थिति करोड पूर्व वर्ष की कही गई है ।

जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की आयु वाले मनुष्य या तिर्यञ्चपचेन्द्रिय की अपेक्षा से भव्यद्रव्य असुरकुमारादि की जघन्य स्थिति जाननी चाहिए । तथा देवकुरु—उत्तरकुरु से यौगलिक मनुष्य की अपेक्षा से तीन पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति समझनी चाहिए ।

भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट स्थिति ईशानकल्प (देवलोक) की अपेक्षा कुछ अधिक दो सागरोपम की है ।

भव्य-द्रव्य अग्निकायिक और वायुकायिक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट करोड पूर्व वर्ष की है, क्योकि देव और यौगलिक मनुष्य अग्निकाय और वायुकाय मे उत्पन्न नही होते । भव्यद्रव्यपचेन्द्रियतिर्यञ्च की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की बताई है, वह सातवें नरक के नारको की अपेक्षा से समझनी चाहिए । और भव्य द्रव्य मनुष्य की ३३ सागरोपम की स्थिति सर्वार्थसिद्ध से च्यवकर आने वाले देवो की अपेक्षा समझनी चाहिए ।[1]

॥ अठारहवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५६-७५७

दसमो उद्देसओ : 'सोमिल'

दसवाँ उद्देशक : 'सोमिल'

भावितात्मा अनगार के लब्धि-सामर्थ्य से असि-क्षुरधारा-अवगाहनादि का अतिदेशपूर्वक निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वदासि—

[१] राजगृह नगर मे भगवान् महावीर स्वामी से, गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२. [१] अणगारे ण भते ! भावियप्पा असिधारं वा खुरधार वा ओगाहेज्जा ?
हंता, ओगाहेज्जा ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार (वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य से) तलवार की धार पर अथवा उस्तरे की धार पर रह सकता है ?

[२-१ उ] हाँ, गौतम ! (वह) रह सकता है ।

[२] से ण तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । णो खलु तत्थ सत्थं कमति ।

[२-२ प्र] (भगवन् !) क्या वह वहाँ (तलवार या उस्तरे की धार पर) छिन्न या भिन्न होता है ?

[२-२ उ] (गौतम !) यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही । क्योकि उस (भावितात्मा) पर शस्त्र सक्रमण नही करता, (नही चलता ।)

३. एव जहा पचमसते (स० ५ उ० ७ सु० ६-८) परमाणुपोग्गलवत्तव्वता जाव अणगारे णं भते ! भावियप्पा उदावत्तं वा जाव नो खलु तत्थ सत्थ कमति ।

[३] इत्यादि सब पचम शतक के सप्तम उद्देशक (के सू ६-८) मे कही हुई परमाणु-पुद्गल की वक्तव्यता, यावत्—हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार उदकावर्त्त (जल के भवरजाल) मे यावत् प्रवेश करता है ? इत्यादि (प्रश्न तक तथा उत्तर मे) यावत् वहाँ शस्त्र सक्रमण नही करता, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

विवेचन—भावितात्मा अनगार का वैक्रियलब्धि-सामर्थ्य—यहा तीन सूत्रो (१-३) मे भावितात्मा अनगार के द्वारा वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य से खड्ग आदि शस्त्र पर चलने और प्रवेशादि करने का पचम शतक के अतिदेशपूर्वक प्रतिपादन किया गया है ।

प्रश्नोत्तर—इस प्रकरण मे भावितात्मा अनगार के वैक्रियलब्धि सामर्थ्य से सम्बद्ध निम्नोक्त प्रश्नोत्तर हैं—

	प्रश्न	उत्तर
१	तलवार या उस्तरे की धार पर रह सकता है ?	हाँ ।
२	क्या वह वहाँ छिन्न भिन्न होता है ?	नही ।
३	क्या वह अग्निशिखा मे से निकल सकता है ?	हाँ ।
४	अग्निशिखा से निकलता हुआ जल जाता है ?	नही जलता ।
५	पुष्कर-सवर्त मेघ के बीच मे से निकल सकता है ?	हाँ ।
६	इसके बीच मे से निकलते हुए क्या वह भीग जाता है ?	नही भीगता ।
७	गगा-सिंधु नदियो के प्रतिस्रोत (उल्टे प्रवाह) मे से होकर निकल सकता है ?	हाँ ।
८	उदकावर्त (पानी के भवरजाल) मे या उदकविन्दु मे प्रवेश कर सकता है ?	हाँ ।
९	प्रतिस्रोत मे से निकलता हुआ क्या वह स्खलित होता है ?	नही ।
१०	प्रवेश करते हुए क्या उसे जल का शस्त्र लगता है, यानी वह भीग जाता है ?	नही ।[1]

परमाणु, द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध तथा वस्ति का वायुकाय से परस्पर स्पर्शास्पर्श निरूपण

४. परमाणुपोग्गले णं भंते ! वाउयाएणं फुडे, वाउयाए वा परमाणुपोग्गलेणं फुडे ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गले वाउयाएणं फुडे, नो वाउयाए परमाणुपोग्गलेणं फुडे ।

[४ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल, वायुकाय से स्पृष्ट (व्याप्त) है, अथवा वायुकाय परमाणु-पुद्गल से स्पृष्ट है ?

[४ उ] गौतम ! परमाणु-पुद्गल वायुकाय से स्पृष्ट है, किन्तु वायुकाय परमाणु-पुद्गल से स्पृष्ट नही है ।

५. दुपएसिए णं भंते ! खंधे वाउयाएणं० ?

एव चेव ।

[५ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशिक-स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है या वायुकाय द्विप्रदेशिक-स्कन्ध से स्पृष्ट है ?

[५ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत् जानना चाहिए ।)

६. एवं जाव असंखेज्जपएसिए ।

[६] इसी प्रकार यावत् असख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक जानना चाहिए ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५७
(ख) भगवती उपक्रम पृ ३९२ (ग) भगवती सूत्र के थोकडे छठा भाग पृ ३७, थोकडा न १४३

७. अणतपएसिए ण भते ! खधे वाउ० पुच्छा ।

गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे वाउयाएणं फुडे, वाउयाए अणंतपएसिएणं खंधेणं सिय फुडे, सिय नो फुडे ।

[७ प्र] भगवन् ! अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है, अथवा वायुकाय अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध से स्पृष्ट है ?

[७ उ] गौतम ! अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है तथा वायुकाय अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध से कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नही होता ।

८. बत्थी णं भते ! वाउयाएणं फुडे, वाउयाए बत्थिणा फुडे ?

गोयमा ! बत्थी वाउयाएण फुडे, नो वाउयाए बत्थिणा फुडे ।

[८ प्र] भगवन् ! वस्ति (मशक) वायुकाय से स्पृष्ट है, अथवा वायुकाय वस्ति से स्पृष्ट है ?

[८ उ] गौतम ! वस्ति वायुकाय से स्पृष्ट है, किन्तु वायुकाय, वस्ति से स्पृष्ट नही है ।

विवेचन—परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशिकादि स्कन्ध एव वस्ति वायुकाय से तथा वायुकाय को इनसे स्पृष्टास्पृष्ट होने की प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ४ से ८ तक) मे परमाणु आदि का वायु से तथा वायु का परमाणु आदि से स्पृष्ट (व्याप्त)—अस्पृष्ट होने की प्ररूपणा की गई है । **वायु परमाणु-पुद्गल से स्पृष्ट-व्याप्त नहीं** है, क्योकि वायु महान् (बडी) है, और परमाणु प्रदेशरहित होने से अतिसूक्ष्म है, इसलिए वायु उसमे व्याप्त (बीच मे क्षिप्त) नही हो सकती, वह उसमे समा नही सकती । यही बात द्विप्रदेशी से असख्यप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे समझ लेनी चाहिए ।

अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे—अनन्तप्रदेशी स्कन्ध वायु से व्याप्त होता है, क्योकि वह वायु की अपेक्षा सूक्ष्म है । जब वायुस्कन्ध की अपेक्षा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध महान् होता है, तब वायु अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से व्याप्त होती है, अन्यथा नही । इसलिए मूलपाठ मे कहा गया है कि अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध वायु से व्याप्त होता है, और वायु अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से कदाचित् व्याप्त होती है, कदाचित् नही ।

मशक, वायु से व्याप्त है, वायु मशक से व्याप्त नहीं—मशक मे जब हवा भरी जाती है, तब मशक वायु से व्याप्त होती है, क्योकि वह समग्ररूप से उसके भीतर समाई हुई है । किन्तु वायुकाय, मशक से व्याप्त नही है । वह वायुकाय के ऊपर चारो ओर परिवेष्टित है ।

कठिन शब्दार्थ—**फुडे**—स्पृष्ट—व्याप्त या मध्य मे क्षिप्त । **बत्थी**—वस्ति—मशक ।[1]

सात नरक, बारह देवलोक, पांच अनुत्तरविमान तथा ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे परस्पर बद्धादि पुद्गल द्रव्यों का निरूपण

९. अत्थि णं भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे दव्वाइं वण्णओ काल-नील-लोहिय-

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७५७

(ख) भगवती विवेचन भा ६, (प घेवरचदजी) पृ २७५१-२७५३

हालिद्द-सुक्किलाइं, गंधओ सुब्भिगंध-दुब्भिगंधाइ, रसओ तित्त-कडु-कसाय-अंबिल-महुराइ, फासतो कक्खड-मउय-गरुय-लहुय-सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खाइं अन्नमन्नबद्धाइं अन्नमन्नपुट्ठाइ जाव[1] अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

हंता, अत्थि ।

[९ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के नीचे वर्ण से—काला, नीला, पीला, लाल और श्वेत, गन्ध से—सुगन्धित और दुर्गन्धित, रस से—तिक्त, कटुक, कसैला, अम्ल (खट्टा) और मधुर, तथा स्पर्श से—कर्कश (कठोर), मृदु (कोमल), गुरु (भारी), लघु (हल्का), शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष—इन बीस बोलों से युक्त द्रव्य क्या अन्योन्य (परस्पर) बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, यावत् अन्योन्य सम्बद्ध हैं ?

[९ उ] हाँ, गौतम ! (ये द्रव्य इसी प्रकार अन्योन्यबद्ध आदि) हैं ।

१०. एवं जाव अहेसत्तमाए ।

[१०] इसी प्रकार यावत् अध सप्तम-पृथ्वी तक जानना चाहिए ।

११. अत्थि णं भंते ! सोहम्मस्स कप्पस्स अहे० ?

एवं चेव ।

[११ प्र] भगवन् ! सौधर्म-कल्प के नीचे वर्ण से—इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न ?

[११ उ] गौतम ! (इसका उत्तर भी) उसी प्रकार (पूर्ववत्) है ।

१२. एवं जाव ईसिपब्भाराए पुढवीए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ ।

[१२] इसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—चतुःसूत्री द्वारा नरक, देवलोक एवं सिद्धशिला के नीचे के द्रव्यों का विश्लेषण—सात नरकभूमियों, बारह देवलोकों, नौ ग्रैवेयकों एवं पांच अनुत्तर विमानों तथा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे स्थित, तथाकथित वर्णादियुक्त परस्परबद्ध आदि द्रव्यों का निरूपण सू. ९ से १२ तक में किया गया है ।[2]

कठिन शब्दार्थ—अन्नमन्नबद्धाइं—परस्पर गाढ आश्लेष से बद्ध । **अन्नमन्न-पुट्ठाइ**—एक दूसरे से स्पृष्ट अर्थात्—चारों ओर से गाढ रूप से श्लिष्ट । **अन्नमन्न-ओगाढाइं**—एक क्षेत्राश्रित रहे हुए । **अन्नमन्नघडत्ताए**—परस्पर सामूहिक रूप से घटित = जुडे हुए ।[3]

---

१. जाव पद सूचक पाठ— 'अन्नमन्नओगाढाइ अन्नमन्नसिणेहपडिबद्धाइ इत्यादि पाठ ।

२. वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा. २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ. ८२८

३. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७५८

वाणिज्यग्राम नगरवासी सोमिल ब्राह्मण द्वारा पूछे गए यात्रादि सम्बन्धित चार प्रश्नों का भगवान् द्वारा समाधान

१३. तए ण समणे भगवं महावीरे जाव बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

[१३] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने यावत् बाहर के जनपदो मे विचरण किया ।

१४. तेण कालेण तेणं समएणं वाणियग्गामे नामं नगरे होत्था । वण्णओ । दूतिपलासए चेतिए । वण्णओ ।

[१४] उस काल उस समय मे वाणिज्यग्राम नामक नगर था । उसका वर्णन करना चाहिए । वहाँ द्युतिपलाश नाम का उद्यान (चैत्य) था । उसका वर्णन करना चाहिए ।

१५. तत्थ णं वाणियग्गामे नगरे सोमिले नामं माहणे परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूए रिव्वेद जाव सुपरिनिट्ठिए पंचण्हं खंडियसयाणं सयस्स य कुडुंबस्स आहेवच्चं जाव विहरइ ।

[१५] उस वाणिज्यग्राम नगर मे सोमिल नामक ब्राह्मण (माहन) रहता था । जो आढ्य यावत् अपराभूत था । तथा ऋग्वेद यावत् अथर्ववेद, तथा शिक्षा, कल्प आदि वेदागो मे निष्णात था । वह पाच-सौ शिष्यो (खण्डिको) और अपने कुटुम्ब पर आधिपत्य करता हुआ यावत् सुखपूर्वक जीवन-यापन करता था ।

१६. तए णं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे । जाव परिसा पज्जुवासइ ।

[१६] उन्ही दिनो मे (वाणिज्यग्राम के द्युतिपलश नामक उद्यान मे) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यावत् पधारे । यावत् परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी ।

१७. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'एव खलु समणे णायपुत्ते पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहसुहेण जाव इहमागए जाव दूतिपलासए चेतिए अहापडिरूवं जाव विहरति । तं गच्छामि णं समणस्स नायपुत्तस्स अतियं पाउब्भवामि, इमाइं च ण एयारूवाइं अट्ठाइ जाव वागरणाइं पुच्छिस्सामि, तं जइ मे से इमाइ एयारूवाइं अट्ठाइं जाव वागरणाइ वागरेहिति तो णं वदीहामि नमसीहामि जाव पज्जुवासीहामि । अह मे से इमाइं अट्ठाइं जाव वागरणाइ नो वागरेहिति तो णं एतेहिं चेव अट्ठेहि य जाव वागरणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरण करिस्सामि'त्ति कट्टु एवं सपेहेइ, ए० सं० २ ण्हाए जाव सरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडि० २ पादविहारचारेणं एगेणं खडियसएणं सद्धिं संपरिवुडे वाणियग्गाम नगर मज्झंमज्झेण निग्गच्छइ, नि० २ जेणेव दूतिपलासए चेतिए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति उवा० २ समणस्स भगवतो महावीरस्स अदूरसामते ठिच्चा समणं भगव महावीरं एव वदासि—जत्ता ते भते ! जवणिज्ज अव्वाबाहं फासुयविहारं ?

सोमिला ! जत्ता वि मे, जवणिज्जं पि मे, अव्वाबाहं पि मे, फासुयविहारं पि मे ।

[१७] जब सोमिल ब्राह्मण को भगवान् महावीर स्वामी के आगमन की बात मालूम हुई तो उसके मन में इस प्रकार का यावत् विचार उत्पन्न हुआ—पूर्वानुपूर्वी (अनुक्रम) से विचरण करते हुए तथा ग्रामानुग्राम सुखपूर्वक पदार्पण करते हुए ज्ञानपुत्र श्रमण (महावीर) यावत् यहाँ आए हैं, यावत् द्युतिपलाश उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके विराजमान हैं। अत: मैं श्रमण ज्ञातपुत्र के पास जाऊं और वहाँ जाकर इन और ऐसे अर्थ (बातें) यावत् व्याकरण (प्रश्नों के उत्तर) उनसे पूछूं। यदि वे मेरे इन और ऐसे अर्थों यावत् प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देंगे तो मैं उन्हें वन्दना-नमस्कार करूंगा, यावत् उनकी पर्युपासना करूंगा। यदि वे मेरे इन और ऐसे अर्थों और प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकेंगे तो मैं उन्हें इन्हीं अर्थों और उत्तरों से निरुत्तर कर दूंगा।' ऐसा विचार किया। तत्पश्चात् उसने स्नान किया, यावत् शरीर को वस्त्र और सभी अलंकारों से विभूषित किया। फिर वह अपने घर से निकला और अपने एक सौ शिष्यों के साथ (घिरा हुआ) पैदल चल कर वाणिज्यग्राम नगर के मध्य में होकर जहाँ द्युतिपलाश-उद्यान था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास आया और श्रमण भगवान् महावीर से न अतिदूर, न अतिनिकट खड़े होकर उसने उनसे इस प्रकार पूछा—

[प्र.] भंते! आपके (धर्म में) यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुकविहार है?

[उ.] सोमिल! मेरे (धर्म में) यात्रा भी है, यापनीय भी है, अव्याबाध भी है और प्रासुक-विहार भी है।

१८. किं ते भंते! जत्ता?

सोमिला! जं मे तव-नियम-संजम-सज्झाय-झाणावस्सगमादीएसु जोएसु जयणा से त्तं जत्ता।

[१८ प्र.] भंते! आपके यहाँ यात्रा कैसी है?

[१८ उ.] सोमिल! तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यक आदि योगों में जो मेरी यतना (प्रवृत्ति) है, वही मेरी यात्रा है।

१९. किं ते भंते! जवणिज्जं?

सोमिला! जवणिज्जे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे य।

[१९ प्र.] भगवन्! आपके यापनीय क्या है?

[१९ प्र.] सोमिल! यापनीय दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) इन्द्रिय-यापनीय और (२) नो-इन्द्रिययापनीय।

२०. से किं तं इंदियजवणिज्जे?

इंदियजवणिज्जे—जं मे सोतिंदियचक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं निरुवहयाइं वसे वट्टंति, से त्तं इंदियजवणिज्जे।

[२० प्र.] भगवन्! वह इन्द्रिय-यापनीय क्या है?

[२० उ.] सोमिल! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय, ये

(मेरी) पाचो इन्द्रियाँ निरुपहत (उपघातरहित) और वश मे (रहती) है, यह मेरा इन्द्रिय-यापनीय है।

२१. से किं त नोइंदियजवणिज्जे ?

नोइदियजवणिज्जे—ज मे कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना, नो उदीरेंति, से त्तं नोइंदियजवणिज्जे। से त्त जवणिज्जे।

[२१ प्र] भते ! वह नोइन्द्रिय-यापनीय क्या है ?

[२१ उ] सोमिल ! जो मेरे क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारो कषाय व्युच्छिन्न (नष्ट) हो गए है, और उदयप्राप्त नही हैं, यह मेरा नोइन्द्रिय-यापनीय है। इस प्रकार मेरे ये यापनीय है।

२२. किं ते भंते ! अव्वाबाहं ?

सोमिला ! जं मे वातिय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवातिया विविहा रोगायंका सरीरगया दोसा उवसता, नो उदीरेंति, से त्तं अव्वाबाहं।

[२२ प्र] भगवन् ! आपके अव्याबाध क्या है ?

[२२ उ] सोमिल ! मेरे वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातजन्य तथा अनेक प्रकार के शरीर सम्बन्धी रोग, आतक एवं शरीरगत दोष उपशान्त हो गए है, वे उदय मे नही आते। यही मेरा अव्याबाध है।

२३. किं ते भंते ! फासुयविहारं ?

सोमिला ! ज णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सभासु पवासु इत्थी-पसु-पंडगविवज्जियासु वसहीसु फासुएसणिज्ज पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि, से त्तं फासुयविहारं।

[२३ प्र] भगवन् ! आपके प्रासुकविहार कौन-सा है ?

[२३ उ] सोमिल ! आराम, (बगीचे), उद्यान (बाग), देवकुल (देवालय), सभा और प्रपा (प्याऊ) आदि स्थानो मे स्त्री-पशु-नपुसकवर्जित वसतियो (आवासस्थानो) मे प्रासुक, एषणीय पीठ (पीढा-बाजोट), फलक (तख्ता), शय्या, सस्तारक आदि स्वीकार (ग्रहण) करके मैं विचरता हूँ, यही मेरा प्रासुकविहार है।

विवेचन—सोमिल ब्राह्मण (माहन) के द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों के भगवान् द्वारा उत्तर—सोमिल ब्राह्मण परीक्षाप्रधान बनकर भगवान् के समीप पहुँचा था। वह यह सकल्प लेकर चला था कि अगर श्रमण ज्ञातपुत्र ने मेरे प्रश्नो के यथार्थ उत्तर दिये तो मैं उन्हे वन्दना-नमस्कार एव पर्युपासना करूंगा, अन्यथा नही। उसका अनुमान था कि मैं जिन गम्भीर अर्थ वाले शब्दो के अर्थ पूछूगा, श्रमण ज्ञातपुत्र को उनके अर्थों का ज्ञान नही होगा। इसलिए उसने भगवान् की योग्यता की परीक्षा करने हेतु यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुकविहार के सम्बन्ध मे प्रश्न किये थे, जिनके समीचीन उत्तर भगवान् ने दिये।[1]

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७५९

यात्रा आदि की परिभाषा—संयम के विषय मे प्रवृत्ति—यात्रा है, मोक्ष की साधना मे तत्पर पुरुषों द्वारा, इन्द्रिय आदि की वश्यतारूप धर्म को 'यापनीय' कहते हैं। शारीरिक-मानसिक बाधा-पीडा न होना 'अव्याबाध' है और निर्दोष एव प्रासुक शयन आसन स्थानादि का ग्रहण-उपभोग करना 'प्रासुकविहार' की परिभाषा है।[1]

सरिसव-भक्ष्याभक्ष्यविषयक सोमिलप्रश्न का भगवान् द्वारा यथोचित समाधान

२४. [१] सरिसवा ते भंते ! किं भक्खेया, अभक्खेया ?

सोमिला ! सरिसवा मे भक्खेया वि, अभक्खेया वि ।

[२४-१ प्र] भगवन् ! आपके लिए 'सरिसव' भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

[२४-१ उ] सोमिल ! 'सरिसव' मेरे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ सरिसवा मे भक्खेया वि, अभक्खेया वि ?

से नूणं सोमिला ! बभण्णएसु नएसु दुविहा सरिसवा पण्णत्ता, तं जहा— मित्तसरिसवा य धन्नसरिसवा य। तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवा ते तिविहा पन्नत्ता, त जहा—सहजायए सहवड्ढियए सहपंसुकीलियए; ते ण समणाणं निग्गंथाण अभक्खेया। तत्थ ण जे ते धन्नसरिसवा ते दुविहा पन्नत्ता, त जहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। तत्थ ण जे ते असत्थपरिणया ते ण समणाणं निग्गथाण अभक्खेया। तत्थ ण जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पन्नत्ता, त जहा—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य। तत्थ ण जे ते अणेसणिज्जा ते ण समणाण निग्गथाण अभक्खेया। तत्थ ण जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पन्नत्ता, त जहा—जाइता य अजाइया य। तत्थ णं जे ते अजाइता ते ण समणाण निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते जायिया ते दुविहा पन्नत्ता, त जहा—लद्धा य अलद्धा य। तत्थ ण जे ते अलद्धा ते ण समणाण निग्गथाणं अभक्खेया। तत्थ ण जे ते लद्धा ते णं समणाण निग्गंथाण भक्खेया। से तेणट्ठेण सोमिला ! एवं वुच्चइ जाव अभक्खेया वि।

[२४-२ प्र] भगवन् ! यह आप कैसे कहते हैं कि 'सरिसव' भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी ?

[२४-२ उ] सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मण नयो (शास्त्रो) मे दो प्रकार के 'सरिसव' कहे गए है। यथा—(१) मित्र-सरिसव (समान वय वाला मित्र) और धान्य-सरिसव (सर्षप—सरसो)। उनमे से जो मित्र-सरिसव हैं, वह तीन प्रकार के कहे गये है, यथा—(१) सहजात (एक साथ जन्मे हुए), (२) सहवर्धित (एक साथ बडे हुए) और सहपांशुक्रीडित (एक साथ धूल मे खेले हुए)। ये तीनो प्रकार के सरिसव श्रमणा निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है। उनमे से जो धान्यसरिसव है, वह भी दो प्रकार के कहे गये है, यथा—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। जो अशस्त्रपरिणत हैं, वे श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है। जो शस्त्रपरिणत है, वह भी दो प्रकार के हैं, यथा—एषणीय (निर्दोष) और अनेषणीय (सदोष)। अनेषणीय सरिसव तो श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है। एषणीय

---

१ (क) भगवतीविवेचन, पृ २७५९
(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ७५९

सरिसव दो प्रकार के हैं, यथा—याचित (माग कर लिये हुए) और अयाचित (बिना मागे हुए)। अयाचित श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है। याचित भी दो प्रकार के है, यथा—लब्ध (मिले हुए) और अलब्ध (नही मिले हुए)। अलब्ध श्रमण निर्ग्रन्थो-के लिए अभक्ष्य हैं और जो लब्ध है, वह श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए भक्ष्य है। इस कारण से, हे सोमिल! ऐसा कहा गया है कि--'सरिसव' मेरे लिए भक्ष्य भी है, और अभक्ष्य भी है।

विवेचन—'सरिसव' किस दृष्टि से भक्ष्य हैं, किस दृष्टि से अभक्ष्य ?—प्रस्तुत सू २४ मे सोमिल ब्राह्मण द्वारा छलपूर्वक उपहास करने की दृष्टि से भगवान् से पूछे गए 'सरिसव'-भक्ष्याभक्ष्य-विषयक प्रश्न का विभिन्न पहलुओ से दिया गया उत्तर अकित है।

'सरिसव' शब्द का विश्लेषण—'सरिसव' प्राकृतभाषा का श्लिष्ट शब्द है। संस्कृत मे इसके दो रूप होते है—(१) सर्षप और (२) सदृशवया। सर्षप का अर्थ है--सरसो (धान्य) और सरिसवया का अर्थ है—समवयस्क—हमजोली मित्र, या सहजात, सहक्रीडित। ये तीनो प्रकार के मित्रसरिसव श्रमणनिर्ग्रन्थ के लिए अभक्ष्य हैं। अब रहे सर्षपधान्य, वे भी अशस्त्रपरिणत, अनेषणीय, अयाचित और अलब्ध हो तो श्रमणनिर्ग्रन्थो के लिए अकल्पनीय-अग्राह्य (अग्राह्य) होने से अभक्ष्य है, किन्तु जो सर्षप एषणीय, (निर्दोष), शस्त्रपरिणत, याचित और लब्ध हैं, वे श्रमणनिर्ग्रन्थो के लिए भक्ष्य है।[1]

मास एवं कुलत्था के भक्ष्याभक्ष्यविषयक सोमिलप्रश्न का भगवान् द्वारा समाधान

२५. [१] मासा ते भते! किं भक्खेया, अभक्खेया? सोमिला! मासा मे भक्खेया वि, अभक्खेया वि।

[२५-१ प्र] भगवन्! आपके मत मे 'मास' भक्ष्य है या अभक्ष्य है?
[२५-१ उ] सोमिल! 'मास' भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

[२] से केणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि?

से नूणं सोमिला! बंभण्णएसु नएसु दुविहा मासा पन्नत्ता, तं जहा—दव्वमासा य कालमासा य। तत्थ णं जे ते कालमासा ते णं सावणादीया आसाढपज्जवसाणा दुवालस, तं जहा—सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे चेत्ते वइसाहे जेट्ठामूले आसाढे। ते णं समणाणं निग्गंथाण अभक्खेया। तत्थ णं जे ते दव्वमासा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—अत्थमासा य धण्णमासा य। तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—सुवण्णमासा य रुप्पमासा य; ते णं समणाणं निग्गंथाण अभक्खेया। तत्थ णं जे ते धन्नमासा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। एवं जहा धन्नसरिसवा जाव से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि।

[२५-२ प्र] भगवन्! ऐसा क्यो कहते हैं कि 'मास' भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी?
[२५-२ उ] सोमिल! तुम्हारे ब्राह्मण-नयो (शास्त्रो) मे 'मास' दो प्रकार के कहे गए हैं।

---

१ (क) भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७६० (ख) भगवती, विवेचन भा ६, (प घेवरचन्दजी) पृ २७६१

यथा—द्रव्यमास और कालमास। उनमे से जो कालमास है, वे श्रावण से लेकर आषाढ-मास-पर्यन्त बारह हैं। यथा—श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, और आषाढ। ये (बारह मास) श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हैं। द्रव्य-मास दो प्रकार का है। यथा—(१) अर्थमाष और (२) धान्यमाष। उनमे से अर्थमाष (सोना-चादी तोलने का माशा) दो प्रकार का है यथा—(१) स्वर्णमाष और (२) रौप्यमाष। ये दोनो माष श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हैं। धान्यमाष दो प्रकार का है—यथा—(१) शस्त्रपरिणत और (२) अशस्त्र-परिणत। इत्यादि सभी आलापक धान्य-सरिसव के समान कहने चाहिए, यावत् इसी कारण से, हे सोमिल! कहा गया है कि 'मास' भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

२६ [१] कुलत्था ते भंते! किं भक्खेया, अभक्खेया?

सोमिला! कुलत्था मे भक्खेया वि, अभक्खेया वि।

[२६-१ प्र] भगवन्! आपके लिए 'कुलत्थ' भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य है?
[२६-१ उ] सोमिल! 'कुलत्थ' मेरे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी हैं।

[२] से केणट्ठेण जाव अभक्खेया वि?

से नूण सोमिला! बंभण्णएसु नएसु दुविहा कुलत्था पन्नत्ता, त जहा—इत्थिकुलत्था य धन्नकुलत्था य। तत्थ णं जे ते इत्थिकुलत्था ते तिविहा पन्नत्ता, त जहा—कुलवधू ति वा कुलमाउया ति वा कुलधूया ति वा; ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते धन्नकुलत्था एवं जहा धन्नसरिसवा जाव से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि।

[२६-२ प्र] भगवन् ऐसा क्यो कहते है कि कुलत्थ यावत् अभक्ष्य भी है।

[२६-२ उ] सोमिल! तुम्हारे ब्राह्मणनयो (शास्त्रो) मे कुलत्था दो प्रकार की कही गई हैं। यथा—(१) स्त्रीकुलत्था (कुलस्था—कुलागना) और (२) धान्यकुलत्था (कुलथी धान)। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की कही गई है। यथा—(१) कुलवधू या (२) कुलमाता, अथवा (३) कुलकन्या। ये तीनो श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हैं। उनमे से जो धान्यकुलत्था है, उसके सभी आलापक धान्य-सरिसव के समान हैं, यावत्—'हे सोमिल! इसीलिए कहा गया है कि 'धान्यकुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है', यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—'मास' और 'कुलत्था' भक्ष्य कैसे और अभक्ष्य कैसे?—'मास' शब्द का विश्लेषण—'मास' प्राकृतभाषा का श्लिष्ट शब्द है। सस्कृत मे इसके दो रूप होते है—माष और मास। इन्हे ही दूसरे शब्दो मे द्रव्यमाष और कालमास कहा जाता है। कालरूप मास श्रावण से लेकर आषाढ तक १२ महीनो का है, वह श्रमणो के लिए अभक्ष्य है। द्रव्यमाष मे जो सोना चादी तोलने का माशा है (१२ माशे का एक तोला), वह अभक्ष्य है, किन्तु धान्यरूपमाष (उडद) शस्त्र-परिणत, एषणीय, याचित और लब्ध हो तो श्रमणो के लिए भक्ष्य है, किन्तु जो अशस्त्रपरिणत, अनेषणीय, अयाचित और अलब्ध हैं, वे अभक्ष्य-अग्राह्य है।[1]

---

१. (क) भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७६०, (ख) भगवती, विवेचन भा ६, (प घेवरचन्दजी) पृ २७६३

'कुलत्था शब्द का विश्लेषण—'कुलत्था' प्राकृतभाषा का शब्द है, संस्कृत मे इसके दो रूप बनते है—(१) कुलस्था और (२) कुलत्था। इन्हे ही दूसरे शब्दो मे स्त्रीकुलस्था और धान्यकुलत्था कहते हैं। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की है, जो श्रमण के लिए अभक्ष्य है। धान्यकुलत्था कुलथी नामक धान को कहते है। वह अशस्त्रपरिणत, अनेषणीय, अयाचित और अलब्ध हो तो श्रमणो के लिए अकल्पनीय अग्राह्य (सदोष) होने से अभक्ष्य है। किन्तु यदि वह शस्त्रपरिणत, एषणीय (निर्दोष), याचित और लब्ध हो तो भक्ष्य है।[1]

सोमिल द्वारा पूछे गए एक, दो, अक्षय, अव्यय, अवस्थित तथा अनेकभूत-भाव-भविक आदि तात्त्विक प्रश्नों का समाधान

२७ [१] एगे भवं, दुवे भव, अक्खए भवं, अव्वए भवं, अवट्ठिए भवं, अणेगभूय-भावभविए भव ?

सोमिला ! एगे वि अह जाव अणेगभूयभावभविए वि अह।

[२७-१ प्र] भगवन् ! आप एक है, या दो है, अथवा अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है अथवा अनेक-भूत-भाव-भविक है ?

[२७-१ उ] सोमिल ! मैं एक भी हूँ, यावत् अनेक-भूत-भाव-भविक (भूत, और भविष्यत्काल के अनेक परिणामो के योग्य) भी हूँ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव भविए वि अह ?

सोमिला ! दव्वट्ठयाए एगे अह, नाण-दसणट्ठयाए दुविहे अह, पएसट्ठयाए अक्खए वि अह, अव्वए वि अह, अवट्ठिए वि अह; उवयोगट्ठयाए अणेगभूयभावभविए वि अह। से तेणट्ठेणं जाव भविए वि अह।

[२७-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि मैं एक भी हूँ यावत् अनेक भूत-भाव-भविक भी हूँ ?

[२७-२ उ] सोमिल ! मैं द्रव्यरूप से (द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से) एक हूँ, ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से दो हूँ। आत्म-प्रदेशो की अपेक्षा से मैं अक्षय हूँ, अव्यय हूँ, और अवस्थित (कालत्रय स्थायी—नित्य) हूँ, तथा (विविध विषयो के) उपयोग की दृष्टि से मै अनेकभूत-भाव-भविक (भूत, और भविष्य के विविध परिणामो के योग्य) भी हूँ।

हे सोमिल ! इसी दृष्टि से (कहा था कि मैं एक भी हूँ,) यावत् अनेकभूत-भाव-भविक भी हूँ।

विवेचन—सोमिल के एक-अनेकादि-विषयक प्रश्न का भगवान् द्वारा समाधान—इस सूत्र मे छल, उपहास एव अपमान आदि भाव छोड कर सोमिल द्वारा तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा से प्रेरित हो कर पूछे गए प्रश्न का समाधान अंकित है। **एक हैं या दो ?**—सोमिल के द्विविधाभरे प्रश्न के उत्तर

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पृ २७६४, (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६०

मे भगवान् ने स्याद्वादशैली का आश्रय लेकर उत्तर दिया। आशय यह है कि मैं जीव (आत्मा) द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ, प्रदेशो की अपेक्षा से नही। ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो हूँ। एक ही पदार्थ किसी एक स्वभाव की अपेक्षा एक हो सकता है, वही पदार्थ दूसरे दो स्वभावो की अपेक्षा दो हो सकता है। इसमे किसी प्रकार का विरोध नही है। जैसे—देवदत्तादि कोई एक पुरुष एक ही समय मे उन-उन अपेक्षाओ से पिता, पुत्र, भ्राता, भतीजा, भानजा आदि कहला सकता है। इसीलिए भगवान् ने एक अपेक्षा से स्वय को एक और दूसरी अपेक्षा से दो कहा।[1]

अक्षय, अव्यय आदि किस दृष्टि से हैं ?—आत्मा के नित्यत्व अनित्यत्वपक्ष को लेकर सोमिल द्वारा पूछा गया था कि आप अक्षय आदि है अथवा यावत् अनेकभूतभाव-भविक है ? अक्षय, अव्यय अवस्थित आदि आत्मा के नित्य पक्ष से सम्बन्धित है और अनेकभूत-भाव-भविक अनित्यपक्ष से सम्बन्धित है। भगवान् ने दोनो पक्षो को स्वीकार करके स्याद्वाद शैली से उत्तर दिया है, जिसका आशय यह है कि आत्मप्रदेशो का सर्वथा क्षय न होने से मैं अक्षय हूँ, तथा आत्मा असख्य-प्रदेशात्मक होने से मैं अक्षत भी हूँ। कतिपयप्रदेशो का व्यय न होने से मैं अव्यय भी हूँ। आत्मा यद्यपि विविध गतियो एव योनियो मे जाता है, इस अपेक्षा से कथचित् अनित्य मानने पर भी उसकी असख्यप्रदेशिता कदापि नष्ट नही होती, इस दृष्टि से आत्मा अवस्थित (कालत्रयस्थायी) है, अर्थात् नित्य है। विविध विषयो के उपयोग वाला होने से आत्मा अनेक-भूतभाव-भविक भी है। आशय यह है कि अतीत और अनागतकाल के अनेक विषयो का बोध आत्मा से कथचित् अभिन्न होने से भूत भावी एव सत्ता के परिणामो (पर्यायो) की अपेक्षा से आत्मा का अनित्यपक्ष भी दोषापत्तिजनक नही है।[2]

सोमिल द्वारा श्रावकधर्म का स्वीकार

२८. एत्थ ण से सोमिले माहणे सबुद्धे समण भगव महावीर जहा खदओ (स० २ उ० १ सु० ३२-३४) जाव से जहेय तुब्भे वदह। जहा ण देवाणुप्पियाण अंतियं बहवे राईसर एवं जहा रायप्पसेणइज्जे चित्तो जाव दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, प० २ समण भगव महावीरं वदति नमंसति, व० २ जाव पडिगए। तए णं से सोमिले माहणे समणोवासए जाव अभिगय० जाव विहरइ।

[२८] भगवान् की अमृतवाणी सुन कर वह सोमिल ब्राह्मण सम्बुद्ध हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, इत्यादि सारा वर्णन (द्वितीय शतक, प्रथम उद्देशक के सू ३२-३४ मे उल्लिखित) स्कन्दक के समान जानना चाहिए, यावत्—उसने कहा—भगवन्! जैसा आपने कहा, वह वैसा ही है। जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के सान्निध्य मे बहुत-से राजा-महाराजा आदि, हिरण्यादि का त्याग करके मुण्डित होकर अगारधर्म से अनगार-धर्म मे प्रव्रजित होते है, उस प्रकार करने मे मैं अभी असमर्थ नही हूँ, इत्यादि सारा वृत्तान्त राजप्रश्नीय सूत्र (सूत्र २२० से २२२ तक पृ १४२-४४, आ प्र स) मे उल्लिखित चित्त सारथि के समान कहना, यावत्—बारह प्रकार के श्रावकधर्म को स्वीकार किया। श्रावकधर्म को अगीकार करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को

१-२ भगवती अ वृत्ति, पत्र, ७६०

वन्दन-नमस्कार करके यावत् अपने घर लौट गया । इस प्रकार सोमिल ब्राह्मण श्रमणोपासक हो गया । अब वह जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता होकर यावत् विचरने लगा ।

विवेचन—प्रस्तुत सू १८ मे वर्णन है कि भगवान् के द्वारा किये गए समाधान से सन्तुष्ट सोमिल ब्राह्मण प्रतिबुद्ध हुआ । उसने भगवान् से श्रद्धापूर्वक श्रावकधर्म स्वीकार किया । समग्र वृत्तान्त द्वितीय शतक मे कथित स्कन्दक एव राजप्रश्नीय सूत्र मे कथित चित्तसारथि के अतिदेशपूर्वक सक्षेप मे प्रतिपादित किया गया है ।

सोमिल के प्रव्रजित होने आदि के सम्बन्ध में गौतम के प्रश्न का भगवान् द्वारा समाधान

२९. 'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वं० २ एवं वदासि—पभू ण भंते ! सोमिले माहणे देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता ?

जहेव सखे (स० १२ उ० १ सु० ३१) तहेव निरवसेसं जाव अंतं काहिति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ अट्ठारसमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १८-१० ॥

॥ अट्ठारसमं सयं समत्तं ॥१८॥

[२९ प्र] 'भगवन् !' इस प्रकार सम्बोधित कर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! क्या सोमिल ब्राह्मण आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो कर अगारधर्म से अनगारधर्म मे प्रव्रजित होने मे समर्थ है ?' इत्यादि ।

[२९ उ] (इसके उत्तर मे-) शतक १२ उ १ सू ३१ मे कथित शख श्रमणोपासक के समान समग्र वर्णन, यावत्—सर्वदु खो का अन्त करेगा, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—सोमिल ब्राह्मण के भविष्य मे प्रव्रजित होने इत्यादि के सम्बन्ध मे श्री गौतमस्वामी द्वारा पूछे गए प्रश्न का प्रस्तुत सू २९ मे १२ वे शतक के अतिदेशपूर्वक समाधान प्रस्तुत किया गया है ।

॥ अठारहवाँ शतक : दसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ अठारहवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

एगूणवीसइमं सयं : उन्नीसवाँ शतक

प्राथमिक

* भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति) के इस उन्नीसवे शतक मे दश उद्देशक है।

* **प्रथम उद्देशक** का नाम—'लेश्या' है। इसमे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशानुसार लेश्या का स्वरूप, लेश्या का कारण, लेश्या का प्रभाव, सामर्थ्य तथा सम्वध्यमान लेश्या और अवस्थित लेश्या, इन दोनो लेश्याओ के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

* **द्वितीय उद्देशक** का नाम 'गर्भ' है। इसमे वताया गया है कि एक लेश्या वाला दूसरी लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है। जिस जीव के जितनी लेश्याए हो, उसके उतनी लेश्याओ मे लेश्यान्तर वाले के गर्भ मे परिणमन होना वताया है।

* **तृतीय उद्देशक** का नाम 'पृथ्वी' है। इसमे सर्वप्रथम स्यात्, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान आदि वारह द्वारो के माध्यम से पृथ्वीकायिक जीवो के विपय मे प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् अप्-तेजो वायु तथा वनस्पतिकायिको के साधारण शरीरादि के विषय मे पूर्वोक्त १२ द्वारो के माध्यम से कथन किया गया है। फिर पाच स्थावरो की अवगाहना की दृष्टि से अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है। तदनन्तर पाच स्थावरो मे सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तथा वादर-वादरतर का प्रतिपादन है। फिर पृथ्वीकाय के शरीर की महती अवगाहना का माप दृष्टान्तपूर्वक प्रदर्शित किया गया है।

* **चतुर्थ उद्देशक** 'महास्रव' है। इसमे नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा इन चारो के १६ भगो मे से पाए जाने वाले भगो का निरूपण है।

* **पचम उद्देशक** का नाम 'चरम' है। इसमे सर्वप्रथम नैरयिकादि चौवीस दण्डको मे चरमत्व एव परमत्व की प्ररूपणा है, साथ ही चरम नैरयिक आदि की अपेक्षा से परम नैरयिकादि महास्रवादि चतुष्क वाले है, तथा परम नैरयिकादि की अपेक्षा चरम नैरयिकादि अल्पास्रवादि चतुष्क वाले है, इत्यादि प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् निदा और अनिदा, ये वेदना के दो प्रकार वता कर इनका चौवीस दण्डको मे प्ररूपण किया गया है।

* **छठे उद्देशक** का नाम 'द्वीप' है। इसमे जम्बूद्वीप आदि द्वीपो और लवणसमुद्र आदि समुद्रो के सस्थान, लम्वाई, चौडाई, दूरी, इनमे जीवो की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध मे जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक वर्णन है।

* **सप्तम उद्देशक** का नाम 'भवन' है। इसमे चारो प्रकार के देवो मे १ भवनपतियो के भवनावास, वाणव्यन्तरो के भूमिगत नगरावास, ज्योतिष्क और वैमानिको के विमानावासो की सख्या, स्वरूप, किम्मयता आदि का सक्षिप्त वर्णन है।

* **अष्टम उद्देशक** का नाम 'निर्वृत्ति' है। इसमे जीव, कर्म, शरीर, इन्द्रिय, भाषा, मन, कषाय, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, सस्थान, सज्ञा, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, योग, उपयोग इन १९ बोलो की निर्वृत्ति (निष्पत्ति) के भेद तथा चौबीस दण्डकवर्ती जीवो मे उनकी प्ररूपणा की गई है।
* **नौवाँ उद्देशक** 'करण' है। इसमे सर्वप्रथम करण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये ५ भेद किये गए है। तदनन्तर शरीर, इन्द्रिय, भाषा, मन, कषाय, समुद्घात, सज्ञा, लेश्या, दृष्टि, वेद आदि करणो के भेदो की तथा किस जीव मे कौन-सा करण कितनी सख्या मे पाया जाता है, इसका लेखाजोखा दिया गया है। तत्पश्चात् पचविध पुद्गल करण के भेद-प्रभेदो का निरूपण है।
* **दसवें उद्देशक** का नाम वनचरसुर (वाणव्यन्तर देव) है। इसमे वाणव्यन्तर देवो के आहार, शरीर और श्वासोच्छ्वास की समानता की चर्चा की गई है। तदनन्तर उनमे पाई जाने वाली आदि की चार लेश्याओ की तथा किस लेश्या वाला वाणव्यन्तर किस लेश्या वाले से अल्पर्द्धिक या महर्द्धिक है, इत्यादि चर्चा की गई है।
* कुल मिला कर इस शतक मे जीवो से सम्बन्धित लेश्या, गर्भपरिणमन आदि की ज्ञातव्य चर्चा की गई है।

एगूणवीसइमं सयं : उन्नीसवाँ शतक

उन्नीसवें शतक के उद्देशकों के नाम

१. लेस्सा य १ गब्भ २ पुढवी ३ महासवा ४ चरम ५ दीव ६ भवणा ७ य ।
निव्वत्ति ८ करण ६ वणचरसुरा १० य एगूणवीसइमे ।। १ ।।

[१ गाथार्थ—] उन्नीसवें शतक मे ये दश उद्देशक हैं—(१) लेश्या, (२) गर्भ, (३) पृथ्वी, (४) महाश्रव, (५) चरम, (६) द्वीप, (७) भवन, (८) निर्वृत्ति, (९) करण और (१०) वनचर-सुर ।

विवेचन—दश उद्देशक—उन्नीसवें शतक मे १० उद्देशक इस प्रकार है—(१) प्रथम उद्देशक-लेश्या-विषयक है, (२) द्वितीय उद्देशक गर्भविषयक है, (३) तृतीय उद्देशक मे पृथ्वीकायिक आदि जीवों के विषय मे शरीर-लेश्यादि का वर्णन है । (४) चतुर्थ उद्देशक मे महाश्रवादिविषयक वर्णन है । (५) पचम उद्देशक मे जीवों के चरम, परमादि-विषयक वर्णन है । (६) छठे उद्देशक मे द्वीप-समुद्र-विषयक वर्णन है । (७) सप्तम उद्देशक मे भवन-विमानावासादि का वर्णन है । (८) आठवे उद्देशक मे जीव आदि की निर्वृत्ति का वर्णन है । (९) नौवाँ उद्देशक करण-विषयक है और (१०) दशवाँ उद्देशक वनचर-सुर (वाणव्यन्तर देव)-विषयक है ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६१

पढमो उद्देसओ : 'लेश्या'

प्रथम उद्देशक : 'लेश्या'

प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश पूर्वक लेश्यातत्त्वनिरूपण

२. रायगिहे जाव एवं वदासि—

[२] राजगृह नगर मे (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से गौतम स्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा—

३. कति ण भते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, त जहा, एवं पन्नवणाए चउत्थो लेसुद्देसओ भाणियव्वो निरवसेसो ।

सेवं भंते ! सेवं भते ! ० ।

॥ एगूणवीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ १९-१ ॥

[३ प्र] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी कही गई है ?

[३ उ] गौतम ! लेश्याएँ छह कही गई हैं। वे इस प्रकार है—(इत्यादि, इस विषय मे) यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के सत्तरहवे पद का चौथा लेश्योद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रज्ञापना-निर्दिष्ट लेश्या का तात्त्विक विश्लेषण—कृष्णादि द्रव्य के सम्बन्ध से आत्मा का परिणाम-विशेष लेश्या है । लेश्या वस्तुत. योगान्तर्गत द्रव्य रूप है । अर्थात्—मन-वचन-काय के योग के अन्तर्गत शुभाशुभ परिणाम के कारणभूत कृष्णादि वर्ण वाले पुद्गल ही द्रव्यलेश्या है । यह योगान्तर्गत पुद्गलो का ही सामर्थ्य है, जो आत्मा मे कषायोदय को बढाते है, जैसे पित्त के प्रकोप से क्रोध की वृद्धि होती है । अत वही द्रव्यलेश्या, जहा तक कषाय है, वहा तक उसके उदय को बढाती है । जब तक योग रहते हैं, तब तक लेश्या रहती है । योग के अभाव मे (१४ वे गुणस्थान मे) लेश्या नही होती ।

यहा विचारणीय यह है कि लेश्या योगान्तर्गत द्रव्यरूप है या योगनिमित्तक कर्मद्रव्यरूप है ? यदि इसे योगनिमित्तक कर्मद्रव्यरूप माने तो प्रश्न उठता है कि यह घातीकर्मद्रव्यरूप है या अघातीकर्मद्रव्यरूप ? यदि इसे घातीकर्मद्रव्यरूप मानते है तो सयोगीकेवली के घाती कर्म न होते हुए भी लेश्या क्यो होती है ? अत घातीकर्मद्रव्यरूप तो इसे नही माना जा सकता । इसे

अघातीकर्मद्रव्यरूप भी नही माना जा सकता, क्योकि अयोगी केवली के अघाती कर्म होते हुए भी लेश्या नही होती। अत लेश्या को योगान्तर्गत द्रव्यरूप मानना चाहिए।

योग-द्रव्यों के सामर्थ्य के विषय मे शका नही करनी चाहिए। जिस प्रकार ब्राह्मी ज्ञानावरण के क्षयोपशम का और मद्यपान ज्ञानावरणोदय का निमित्त होता है, वैसे ही योगजनित बाह्य द्रव्य भी कर्म के उदय या क्षयोपशमादि मे निमित्त बने, इसमे किसी शका को अवकाश नही है ?[1]

सम्बध्यमान लेश्या और अवस्थित लेश्या—कृष्णलेश्यादि-द्रव्य जब नीललेश्यादि द्रव्यो के साथ मिलते है, तब वे नीललेश्यादि के स्वभाव रूप मे तथा वर्णादि रूप मे परिणत हो जाते है। जैसे दूध मे छाछ डालने से वह दही रूप मे तथा वस्त्र को किसी रग के घोल मे डालने से वह उस वर्ण के रूप मे परिणत हो जाता है। परन्तु लेश्या का यह परिणाम सिर्फ तिर्यञ्च और मनुष्य की लेश्या की अपेक्षा से जानना चाहिए। देवो और नारको मे स्व-स्व-भव-पर्यन्त लेश्या-द्रव्य अवस्थित होने से अन्य लेश्याद्रव्यो का सम्बन्ध होने पर भी अवस्थित लेश्या अन्य लेश्या के रूप मे सर्वथा परिणत नही होती। अर्थात्—अवस्थित लेश्या अन्य लेश्या रूप मे बिलकुल परिणत नही होती, अपितु अपने मूल वर्णादि स्वभाव को छोडे बिना अन्य (सम्बध्यमान) लेश्या की छायामात्र धारण करती है। जैसे वैडूर्यमणि मे लाल डोरा पिरोने पर वह अपने नीलवर्ण को छोडे बिना लाल छाया को धारण करती है, इसी प्रकार कृष्णादि द्रव्य, अन्य लेश्याद्रव्यो के सम्बन्ध मे आने पर अपने पर अपने मूल स्वभाव या वर्णादि को छोड़े बिना, उसकी छाया (आकारमात्र) को धारण करते है।[2]

॥ उन्नीसवां शतक . प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ इसके विशेष वर्णन के लिए देखिये—प्रज्ञापना १७ वा पद टीका, पत्र ३३०

२ (क) देखिये—प्रज्ञापना १७ वाँ पद, टीका, पत्र ३५८-३६८

बीओ उद्देसओ : 'गब्भ'

द्वितीय उद्देशक : 'गर्भ'

एक लेश्या वाले मनुष्य से दूसरी लेश्यावाले गर्भ को उत्पत्ति विषयक निरूपण

१. कति ण भते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

एव जहा पन्नवणाए गब्भुद्देसो सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० !

॥ एगूणवीसइमे सए बीओ उद्देसओ समत्तो ॥ १९-२ ॥

[प्र १] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी कही गई है ?

[१ उ] इसके विषय मे प्रज्ञापनासूत्र के सत्तरहवे पद का छठा समग्र गर्भोद्देशक कहना चाहिए ।

"हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है" यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—किस लेश्या वाला, किस लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ? —प्रज्ञापना-निर्दिष्ट चिन्तन—प्रस्तुत उद्देशक मे बताया गया है कि कृष्णलेश्या वाला जीव कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है, इसी तरह नीललेश्या वाला जीव कृष्णादिलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है । इसी प्रकार कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए । इसी तरह कृष्णलेश्या वाला मनुष्य कृष्णलेश्या वाली स्त्री से कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है । इस प्रकार समस्त कर्मभूमिक एव अकर्मभूमिक मनुष्यो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए । केवल इतना ही विशेष है कि अकर्मभूमिक मनुष्य के प्रथम की चार लेश्याएँ होने से चार का ही कथन करना चाहिए ।[1]

॥ उन्नीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) इसके विस्तृत विवरण के लिए देखिये—प्रज्ञापना० पद १७, उ ५, पृ ३७३

(ख) श्रीमद् भगवतीसूत्र, खण्ड ४ (गुज अनु०) (प० भगवानदास दोशी) पृ० ८०

तइओ उद्देसओ : 'पुढवी'

तृतीय उद्देशक : पृथ्वी (कायिकादि)

बारह द्वारों के माध्यम से पृथ्वीकायिकजीव से सम्बन्धित प्ररूपणा

१. रायगिहे जाव एवं वयासि—

[१] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

२. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच पुढविकाइया एगयओ साधारणसरीरं बंधंति, एग० बं० २ ततो पच्छा आहारेंति वा परिणामेंति वा सरीरं वा बंधंति ?

नो तिणट्ठे समट्ठे, पुढविकाइया ण पत्तेयाहारा, पत्तेयपरिणामा, पत्तेयं सरीरं बंधंति प० ब २ ततो पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीर वा बधंति।

[२ प्र] भगवन् ! क्या कदाचित् दो यावत् चार-पाच पृथ्वीकायिक मिल कर साधारण शरीर बाधते हैं, बाध कर पीछे आहार करते है, फिर उस आहार का परिणमन करते है और फिर इसके बाद शरीर का बन्ध (आहारित एव परिणत किए गए पुद्गलो से पूर्व-बन्ध की अपेक्षा विशिष्ट बन्ध) करते है ?

[२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (यथार्थ) नही है। क्योकि पृथ्वीकायिक जीव प्रत्येक—पृथक्-पृथक् आहार करने वाले है और उस आहार को पृथक्-पृथक् परिणत करते हैं, इसलिए वे पृथक्-पृथक् शरीर बाधते हैं। इसके पश्चात् वे आहार करते है, उसे परिणमाते है और फिर शरीर बाधते हैं।

३. तेसि णं भते ! जीवाणं कति लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ ? तं जहा—कण्ह० नील० काउ० तेउ०।

[३ प्र.] भगवन् ! उन (पृथ्वीकायिक) जीवो के कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

[३ उ] गौतम ! उनमे चार लेश्याएँ कही गई हैं। यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोत-लेश्या और तेजोलेश्या।

४. ते णं भते ! जीवा किं सम्मद्दिट्ठी, मिच्छद्दिट्ठी, सम्मामिच्छद्दिट्ठी ?

गोयमा ! नो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

[४ प्र.] भगवन् ! वे जीव सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि है ?

[४ उ] गौतम ! वे जीव सम्यग्दृष्टि नही है, मिथ्यादृष्टि हैं, वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नही है।

५. ते णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी, नियमा दुअन्नाणी, तं जहा—मतिअन्नाणी य सुयअन्नाणी य।

[५ प्र] भगवन् ! वे जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी ?

[५ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नही हैं, अज्ञानी है। उनमे दो अज्ञान निश्चित रूप से पाए जाते हैं—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

६. ते ण भंते ! जीवा किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

गोयमा ! नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी।

[६ प्र] भगवन् ! क्या वे जीव मनोयोगी है, वचनयोगी है, अथवा काययोगी है ?

[६ उ] गौतम ! वे न तो मनोयोगी हैं, न वचनयोगी है, किन्तु काययोगी है।

७. ते ण भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।

[७ प्र] भगवन् ! वे जीव साकारोपयोगी हैं या अनाकारोपयोगी है ?

[७ उ] गौतम ! वे साकारोपयोगी भी है और अनाकारोपयोगी भी।

८. ते णं भंते ! जीवा किमाहारमाहारेंति ?

गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसियाइं दव्वाइ एव जहा पन्नवणाए पढमे आहारुद्देसए जाव सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति।

[८ प्र] भगवन् ! वे (पृथ्वीकायिक) जीव क्या आहार करते है ?

[८ उ] गौतम ! वे द्रव्य से—अनन्तप्रदेशी द्रव्यो का आहार करते हैं, इत्यादि वर्णन प्रज्ञापनासूत्र के (२८ वे पद के) प्रथम आहारोद्देशक के अनुसार यावत्—सर्व आत्मप्रदेशो से आहार करते है, यहाँ तक (जानना चाहिए।)

९ ते ण भंते ! जीवा जमाहारेंति त चिज्जति, ज नो आहारेंति तं नो चिज्जइ, चिण्णे वा से उद्दाति पलिसप्पति वा ?

हंता, गोयमा ! ते णं जीवा जमाहारेंति त चिज्जति, जं नो जाव पलिसप्पति वा।

[९ प्र] भगवन् ! वे जीव जो आहार करते है, क्या उसका चय होता है, और जिसका आहार नही करते, उसका चय नही होता ? जिस आहार का चय हुआ है, वह आहार (असारभाग-रूप मे) बाहर निकलता है ? और (साररूप भाग) शरीर-इन्द्रियादि रूप मे परिणत होता है ?

[९ प्र] गौतम ! वे जो आहार करते है, उसका चय होता है, और जिसका आहार नही करते, उसका चय नही होता, यावत् सारभागरूप आहार शरीर, इन्द्रियादिरूप मे परिणत होता है।

१०. तेसि णं भंते ! जीवाणं एवं सन्ना ति वा पन्ना ति वा मणो ति वा वई ति वा 'अम्हे णं आहारमाहारेमो' ?

णो तिणट्ठे समट्ठे, आहारेति पुण ते ।

[१० प्र] भगवन् ! उन जीवो को—'हम आहार करते हैं', ऐसी सज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन होते है ?

[१० उ] हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । अर्थात्—उन जीवो को हम आहार करते हैं, ऐसी सज्ञा, प्रज्ञा, आदि नही होते । फिर भी वे आहार तो करते है ।

११. तेसि ण भंते ! जीवाण एवं सन्ना ति वा जाव वयी ति वा अम्हे णं इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसवेदेमो ?

नो तिणट्ठे समट्ठे, पडिसंवेदेंति पुण ते ।

[११ प्र] भगवन् ! क्या उन जीवो को यह सज्ञा यावत् वचन होता है, कि हम इष्ट या अनिष्ट स्पर्श का अनुभव करते है ?

[११ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है, फिर भी वे वेदन (अनुभव) तो करते ही है ।

१२. ते णं भंते ! जीवा किं पाणातिवाए उवक्खाइज्जंति, मुसावाए अदिण्णा० जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति ?

गोयमा ! पाणातिवाए वि उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले वि उवक्खाइज्जंति, जेसिं पि ण जीवाणं ते जीवा 'एवमाहिज्जंति' तेसिं पि णं जीवाणं नो विण्णाए नाणत्ते ।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या वे (पृथ्वीकायिक) जीव प्राणातिपात मृषावाद अदत्तादान, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य मे रहे हुए है ?

[१२ उ] हाँ, गौतम ! वे जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य मे रहे हुए है । तथा वे जीव, दूसरे जिन पृथ्वीकायिकादि जीवो की हिंसादि करते है, उन्हे भी, ये जीव हमारी हिंसादि करने वाले हैं, ऐसा भेद ज्ञात नही होता ।

१३. ते ण भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ?

एवं जहा वक्कंतीए पुढविकाइयाणं उववातो तहा भाणितव्वो ।

[१३ प्र] भगवन् ! ये पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या ये नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, इत्यादि प्रश्न ?

[१३ उ.] गौतम ! जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद मे पृथ्वीकायिक जीवो का उत्पाद कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए ।

१४. तेसिं ण भंते ! जीवाणं केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ।

[१४ प्र] भगवन् ! उन पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१४ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है ।

१५. तेसि णं भते ! जीवाण कति समुग्घाया पन्नत्ता ?

गोयमा ! तओ समुग्घाया पन्नत्ता, त जहा—वेदणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणतिय-समुग्घाए ।

[१५ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

[१५ उ] गौतम ! उनके तीन समुद्घात कहे गए है। यथा—वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात और मारणान्तिक-समुद्घात ।

१६. ते ण भते ! जीवा मारणतियसमुग्घाएण कि समोहया मरति, असमोहया मरति ?

गोयमा ! समोहया वि मरति, असमोहया वि मरति ।

[१६ प्र] भगवन् ! क्या वे जीव मारणान्तिक समुद्घात करके मरते है या मारणान्तिक समुद्घात किये बिना ही मरते है ?

[१६ उ] गौतम ! वे मारणान्तिक समुद्घात करके भी मरते है और समुद्घात किये बिना भी मरते है ।

१७ ते णं भते ! जीवा अणतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति ? कहिं उववज्जति ?

एव उव्वट्टणा जहा वक्कंतीए ।

[१७ प्र.] भगवन् ! वे (पृथ्वीकायिक) जीव मरकर अन्तररहित कहाँ जाते है, कहाँ उत्पन्न होते है ?

[१७ उ] (गौतम !) यहाँ (प्रज्ञापनासूत्र के छठे) व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार उनकी उद्वर्तना कहनी चाहिए ।

विवेचन—बारह द्वारो के माध्यम से पृथ्वीकायिको के विषय मे प्ररूपणा—प्रस्तुत १७ सूत्रो (१ से १७ तक) मे पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे बारह पहलुओ से प्ररूपणा की गई । वृत्तिकार ने प्रारम्भ मे एक गाथा भी बारह द्वारो के नामनिर्देश की सूचित की है—

सिय-लेस-दिट्ठि-नाणे-जोगुवओगे तहा किमाहारो ।
पाणाइवाय—उप्पाय—ठिई—समुग्घाय—उव्वट्टी ॥

अर्थात्—(१) स्याद्द्वार, (२) लेश्याद्वार, (३) दृष्टिद्वार, (४) ज्ञानद्वार, (५) योगद्वार, (६) उपयोगद्वार, (७) किमाहारद्वार, (८) प्राणातिपात-द्वार (९) उत्पादद्वार, (१०) स्थितिद्वार, (११) समुद्घातद्वार और (१२) उद्वर्तना द्वार ।

स्याद्द्वार का स्पष्टीकरण—यहाँ स्याद्द्वार की अपेक्षा से प्रथम प्रश्न किया गया है कि क्या कदाचित् अनेक पृथ्वीकायिक मिल कर साधारण (एक) शरीर बाँधते है ? बाद मे आहार करते

है ? तथा उसका परिणमन करते है ? और फिर शरीर का वन्ध करते हैं ? सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाए तो सभी संसारी जीव प्रतिसमय निरन्तर आहार (पुद्गल) ग्रहण करते हैं, इसलिए प्रथम सामान्य शरीरवन्ध के समय भी आहार तो चालू ही है, तथापि पहले शरीर बाधने और पीछे आहार करने का जो प्रश्न किया गया है, वह विशेष आहार की अपेक्षा से किया गया है, ऐसा समझना चाहिए। इसका अर्थ है—जीव उत्पत्ति के समय पहले ओज-आहार करता है, फिर शरीर-स्पर्श द्वारा लोम-आहार करता है। तदुपरान्त उसे परिणमाता है और उसके वाद विशेष शरीरवन्ध करता है। उत्तर मे पृथ्वीकायिक जीवो के साधारण शरीर बाधने का स्पष्ट निषेध किया गया है, क्योकि वे प्रत्येकशरीरी ही हैं, इसलिए पृथक्-पृथक् शरीर बाधते है, आहार भी पृथक्-पृथक् करते है और पृथक् ही परिणमाते हैं। इसके वाद वे विशेष आहार, विशेष परिणमन और विशेष शरीरबन्ध करते हैं।

किमाहारद्वार—पृथ्वीकायिक जीवो के आहार के विषय मे प्रज्ञापनासूत्र के अट्ठाईसवें पद के प्रथम आहारोद्देशक का अतिदेश किया गया है। उसका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—**द्रव्य से**—अनन्तप्रदेशी द्रव्यो का, **क्षेत्र से**—असख्यातप्रदेशो मे रहे हुए, **काल से**—जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट-काल की स्थिति वाले और **भाव से**—वर्ण गन्ध, रस तथा स्पर्श वाले पुद्गलस्कन्धो का आहार करते हैं।

सज्ञादि का निषेध—पृथ्वीकायिक जीवो मे सज्ञा अर्थात्—व्यावहारिक अर्थ को ग्रहण करने वाली अवग्रहरूप बुद्धि, प्रज्ञा—अर्थात् सूक्ष्म अर्थ को विषय करने वाली बुद्धि, मन (मनोद्रव्यस्वभाव) तथा वाक्—(द्रव्यश्रुतरूप) नही होती। यही कारण है कि वे इस भेद को नही जानते कि हम वध्य (मारे जाने वाले) हैं और ये वधिक (मारने वाले) हैं। परन्तु उनमे प्राणातिपात क्रिया अवश्य होती हैं। क्योंकि प्राणातिपात से वे विरत नही हुए। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि जीवो मे वचन का अभाव होने पर भी मृषावाद आदि की अविरति के कारण वे मृषावाद आदि मे रहे हुए है।

उत्पादद्वार मे विशेष ज्ञातव्य—यह है कि पृथ्वीकायिकादि नैरयिको से आकर उत्पन्न नही होते, वे तिर्यञ्च, मनुष्य या देवो से आकर उत्पन्न होते है। उद्वर्तन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।[1]

कठिनशब्दार्थ—**चिज्जंति**—चय करते है। **चिण्णे वा से उद्दाइ**—चीर्ण यानी आहारित वह पुद्गलसमूह मलवत् नष्ट, (अपद्रव) हो जाता है। इसका सारभाग शरीर, इन्द्रियरूप मे परिणत होता है। **पलिसप्पति**—वाहर निकल जाता हे, विखर जाता है। **सव्वप्पणयाए**—सभी आत्मप्रदेशो से। **सण्णा इ**—सज्ञा, **पण्णा इ**—प्रज्ञा।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६३-७६४
(ख) भगवती भा ६, विवेचन (प घेवरचन्दजी) पृ २७७४-२७७८
(ग) भगवतीसूत्र खण्ड ४ (गुजराती अनुवाद) प भगवानदास दोशी, पृ ८२
(घ) प्रज्ञापना (पण्णवणासुत्त) भा १, सू ६५०, ६६९, पृ १७४-७६, १८०

पूर्वोक्त बारह द्वारों के माध्यम से अप्-तेजो-वायु-वनस्पतिकायिकों में प्ररूपणा

१८ सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच आउक्काइया एगयओ साहारणसरीरं बंधति, एग० बं० २ ततो पच्छा आहारेंति ?

एवं जो पुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो जाव उव्वट्टंति, नवरं ठिती सत्तवाससहस्साइं उक्कोसेणं, सेसं तं चेव।

[१८ प्र] भगवन् ! क्या कदाचित् दो, तीन, चार या पांच अप्कायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं और इसके पश्चात् आहार करते हैं ?

[१८ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिकों के विषय में जैसा आलापक कहा गया है, वैसा ही यहाँ भी यावत्—उद्वर्त्तना-द्वार तक जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि अप्कायिक जीवों की स्थिति उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है। शेष सब पूर्ववत्।

१९. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच तेउक्काइया० ?

एवं चेव, नवरं उववाओ ठिती उव्वट्टणा य जहा पन्नवणाए, सेसं तं चेव।

[१९ प्र] भगवन् ! कदाचित् दो, तीन, चार या पांच तेजस्कायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[१९ उ] गौतम ! इनके विषय में भी पूर्ववत् समझना चाहिए। विशेष यह है कि उनका उत्पाद, स्थिति और उद्वर्त्तना प्रज्ञापना-सूत्र के अनुसार जानना चाहिए। शेष सब बातें पूर्ववत् हैं।

२०. वाउकाइयाण एवं चेव, नाणत्तं—नवरं चत्तारि समुग्घाया।

[२०] वायुकायिक जीवों का कथन भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात होते हैं।

२१. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच वणस्सतिकाइया० पुच्छा।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। अणंता वणस्सतिकाइया एगयओ साधारणसरीरं बंधति, एग० बं० २ ततो पच्छा आहारेंति वा परिणामेंति वा, आ० प० २ सेसं जहा तेउक्काइयाणं जाव उव्वट्टंति। नवरं आहारो नियमं छद्दिसिं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, सेसं तं चेव।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या कदाचित् दो, तीन, चार या पांच आदि वनस्पतिकायिक जीव एकत्र मिल कर साधारण शरीर बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अनन्त वनस्पतिकायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं, फिर आहार करते हैं और परिणमाते हैं, इत्यादि सब अग्निकायिकों के समान यावत् उद्वर्त्तन करते हैं, तक (जानना चाहिए)। विशेष यह है कि उनका आहार नियमतः छह दिशा का होता है। उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। शेष सब पूर्ववत् समझना चाहिए।

विवेचन—पूर्वोक्त बारह द्वारो के माध्यम से अप्-तेजो-वायु-वनस्पतिकायिको के साधारण शरीरादि के विषय मे निरूपण—अप्कायिक जीवो के विषय मे स्थिति (उत्कृष्ट ७ हजार वर्ष) को छोड कर अन्य सब बाते पृथ्वीकायिक जीवो के समान है। अग्निकायिक जीवो के विषय मे भी उत्पाद स्थिति और उद्वर्त्तना को छोड कर अन्य सब बाते पृथ्वीकायिकवत् है। अग्निकायिक जीव तिर्यञ्च और मनुष्य मे से आकर उत्पन्न होते है। उनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन अहोरात्र की होती है। अग्निकाय से निकल (उद्वर्त्तन) कर जीव तिर्यंचो मे ही उत्पन्न होते हैं। वायुकायिक और अग्निकायिक जीवो की शेष बाते पृथ्वीकायिकवत् है। विशेष यह है कि पृथ्वीकायिक जीवो मे आदि की चार लेश्याएँ होती है, जब कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो मे आदि की तीन अप्रशस्त लेश्याएँ होती है। पृथ्वीकायिक जीवो मे आदि के तीन समुद्घात (वेदना, कषाय और मारणान्तिक) होते हैं, जब कि वायुकाय मे वैक्रियशरीर के सम्भव होने से वेदना, कषाय, मारणान्तिक और वैक्रिय, ये चार समुद्घात होते है। वनस्पतिकायिको मे अनन्त वनस्पतिकायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बाधते हैं, फिर आहार करते है। यहाँ वनस्पतिकायिक जीवो का आहार नियमत छह दिशाओ का बताया है, वह बादर निगोद (साधारण) वनस्पतिकाय की अपेक्षा सम्भवित है। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव लोकान्त के निष्कुटो (कोणो) मे भी होते है, उनके तीन, चार या पाच दिशाओ का आहार भी सम्भवित है। बादर निगोद वनस्पतिकायिक जीव लोकान्त के निष्कुटो मे नही होते, किन्तु वे लोक के मध्यभाग मे होते है।[1]

एकेन्द्रिय जीवो का जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा अल्प-बहुत्व

२२. एएसि ण भते! पुढविकाइयाण आउकाइयाणं तेउका० वाउका० वणस्सतिकाइयाणं सुहुमाण बादराण पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण जाव जहन्नुक्कोसियाए ओगाहणाए कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमनिओयस्स अपज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा ? सुहुमवाउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा २। सुहुमतेउकाइयस्स अपज्जत्तस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ३। सुहुमआउकाइयस्स अपज्जत्तस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ४। सुहुमपुढविका० अपज्जत्तस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ५। बादरवाउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ६। बादरतेउकाइयस्स अपज्जत्तयस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ७। बादरआउ० अपज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ८। बादरपुढविकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ९। पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयस्स बादरनिओयस्स य, एएसि ण अपज्जत्तगाण जहन्निया ओगाहणा दोण्ह वि तुल्ला असखेज्जगुणा १०-११। सुहुमनिगोयस्स पज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा १२। तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया १३। तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६४
(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६ पृ २७८०-८१

१४ । सुहुमवाउकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा १५ । तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया १६ । तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया० विसेसाहिया १७ । एवं सुहुमतेउकाइयस्स वि १८-१९-२० । एवं सुहुमआउकाइयस्स वि २१-२२-२३ । एव सुहुमपुढविकाइयस्स वि २४-२५-२६ । एव बादरवाउकाइयस्स वि २७-२८-२९ । एवं बायरतेउकाइयस्स वि ३०-३१-३२ । एव बादरआउकाइयस्स वि ३३-३४-३५ । एवं बादरपुढविकाइयस्स वि ३६-३७-३८ । सव्वेसिं तिविहेणं गमेणं भाणितव्व । बादरनिगोदस्स पज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ३९ । तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया ४० । तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया ४१ । पत्तेयसरीरबादरवणस्सतिकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहन्निया ओगाहणा असखेज्जगुणा ४२ । तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा असखेज्जगुणा ४३ । तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा असखेज्जगुणा ४४ ।

[२२ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म-बादर, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाओ मे से किसकी अवगाहना किसकी अवगाहना से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होती है ?

[२२ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प, अपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद की जघन्य-अवगाहना है । २. उससे असख्यगुणी है—अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक की जघन्य अवगाहना । ३ उससे अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यगुणी है । ४ उससे अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक की जघन्य अवगाहना असख्यगुणी है । ५ उससे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना असख्यगुणी है । ६ उससे अपर्याप्त बादर वायुकायिक की जघन्य अवगाहना असख्यगुणी है । ७ उससे अपर्याप्त बादर अग्निकायिक की जघन्य अवगाहना असख्यगुणी है । ८ उससे अपर्याप्त बादर अप्कायिक की जघन्य अवगाहना असख्यातगुनी है । ९ उससे अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । १०-११ उससे अपर्याप्त प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकायिक की और बादर निगोद की जघन्य अवगाहना दोनो की परस्पर तुल्य और असख्यातगुणी है । १२ उससे पर्याप्त सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना असख्यात-गुणी है । १३. उससे अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है । १४ उससे पर्याप्तक सूक्ष्म निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है । १५ उससे पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । १६ उससे अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है । १७ उससे पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है । १८-१९-२० उससे पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक की जघन्य, अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक की उत्कृष्ट तथा पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यात-गुणी एव विशेषाधिक है । २१-२२-२३ उससे पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक की जघन्य, अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक की उत्कृष्ट तथा पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुण एव विशेषाधिक है । २४-२५-२६ इसी प्रकार उससे पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की जघन्य, उससे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट तथा उससे पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यगुणी तथा विशेषाधिक होती है । २७-२८-२९ उससे पर्याप्त बादर वायुकायिक की जघन्य, अपर्याप्त बादर वायुकायिक की उत्कृष्ट एव पर्याप्त बादर वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी

तथा विशेषाधिक है । ३०-३१-३२ उससे पर्याप्त बादर अग्निकायिक की जघन्य, अपर्याप्त बादर अग्निकायिक की उत्कृष्ट एव पर्याप्त बादर अग्निकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यगुणी एव विशेषाधिक है । ३३-३४-३५ इसी प्रकार उससे पर्याप्त बादर अप्कायिक की जघन्य, अपर्याप्त बादर अप्कायिक की उत्कृष्ट एव पर्याप्त बादर अप्कायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी एव विशेषाधिक है । ३६-३७-३८ उससे पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की जघन्य, अपर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट तथा पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी तथा विशेषाधिक है । ३९ उससे पर्याप्त बादर निगोद की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । ४०. अपर्याप्त बादर निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है, और ४१ पर्याप्त बादर निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है । ४२ उससे पर्याप्त प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकायिक की जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है ४३ उससे अपर्याप्त प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी है और ४४ उससे पर्याप्त प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकायिक की उकृष्ट अवगाहना असख्यातगुणी है ।

विवेचन—फलितार्थ—पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और निगोद वनस्पतिकाय, इन पाचो के सूक्ष्म और बादर दो-दो भेद होते है । इनमे प्रत्येकशरीरी वनस्पति को मिलाने से ग्यारह भेद होते हैं । इनके प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद से २२ भेद हो जाते है । इनकी जघन्य अवगाहना और उत्कृष्ट अवगाहना के भेद से ४४ भेद होते है । इन्ही ४४ स्थावर जीवभेदो की अवगाहना का अल्प-बहुत्व यहाँ (प्रस्तुत सूत्र २२ मे) बताया गया है ।

पृथ्वी आदि की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग मात्र होने पर भी उसके असख्येय भेद होते हैं । इसलिए अगुल के असख्यातवे भाग की परस्परापेक्षा से असख्येयगुणत्व मे कोई विरोध नही आता । प्रत्येकशरीर वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट अवगाहना सहस्र योजन से कुछ अधिक की समझनी चाहिए ।[1]

एकेन्द्रिय जीवो मे सूक्ष्म-सूक्ष्मतरनिरूपण

२३ एयस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स वणस्सतिकाइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे ?, कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

गोयमा ! वणस्सतिकाए सव्वसुहुमे, वणस्सतिकाए सव्वसुहुमतराए ।

[२३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, इन पाँचो मे कौन-सी काय सब से सूक्ष्म है और कौन-सी सूक्ष्मतर है ।

[२३ उ] गौतम ! (इन पाचो कायो मे से) वनस्पतिकाय सबसे सूक्ष्म है, सबसे सूक्ष्मतर है ।

२४ एयस्स ण भते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे ?, कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

गोयमा ! वाउकाये सव्वसुहुमे, वाउकाये सव्वसुहुमतराए ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६५

[२४ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक, इन चारो में से कौन-सी काय सबसे सूक्ष्म है और कौन-सी सूक्ष्मतर है ?

[२४ उ] गौतम ! (इन चारो मे से) वायुकाय सब-से सूक्ष्म है, वायुकाय ही सबमे सूक्ष्मतर है।

२५. एतस्स ण भंते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे ? कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

गोयमा ! तेउकाये सव्वसुहुमे, तेउकाये सव्वसुहुमतराए ।

[२५ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और अग्निकायिक, (इन तीनो मे से) कौन सी काय सबसे सूक्ष्म है, कौन-सी सूक्ष्मतर है ?

[२५ उ] गौतम ! (इन तीनो मे से) अग्निकाय सबसे सूक्ष्म है, अग्निकाय ही सर्व-सूक्ष्मतर है।

२६. एतस्स ण भंते ! पुढविकाइयस्स आउक्काइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे ?, कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

गोयमा ! आउकाये सव्वसुहुमे, आउकाए सव्वसुहुमतराए ।

[२६ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक और अप्कायिक इन दोनो मे से कौन-सी काय सबसे सूक्ष्म है, कौन-सी सर्वसूक्ष्मतर है ?

[२६ उ] गौतम ! (इन दोनो कायो मे से) अप्काय सबसे सूक्ष्म है, और अप्काय ही सर्वसूक्ष्मतर है।

विवेचन—फलितार्थ—पृथ्वीकायादि पाचो कायो मे सबसे सूक्ष्म वनस्पतिकाय है। वनस्पति के सिवाय शेष चार कायो मे सर्वसूक्ष्म वायुकाय है। वायुकाय को छोड कर शेष तीनो कायो मे सर्वसूक्ष्म अग्निकाय है और अग्निकाय को छोड कर शेष दो कायो मे सर्वसूक्ष्म अप्काय है। इस प्रकार सूक्ष्मता का तारतम्य यहाँ बताया गया है।[1]

सव्वसुहुमतराए अर्थ—सबसे अधिक सूक्ष्म।[2]

एकेन्द्रिय जीवों में सर्वबादर सर्वबादरतरनिरूपण

२७. एयस्स ण भंते ! पुढविकाइयस्स आउ० तेउ० वाउ० वणस्सतिकाइयस्स य कयरे काये सव्वबादरे ?, कयरे काये सव्वबादरतराए ?

गोयमा ! वणस्सतिकाये सव्वबादरे, वणस्सतिकाये सव्वबादरतराए ।

[२७ प्र] भगवन् ! इन पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पति-कायिक मे से कौनसी काय सबसे बादर (स्थूल) है, कौन-सी काय सर्वबादरतर है ?

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ८३७-८३८

२ भगवती विवेचन (प घेवरचदजी) भा ६, पृ २७८६

[२७ उ] गौतम ! (इन पाचो मे से) वनस्पतिकाय सर्वबादर है, वनस्पतिकाय ही सबसे अधिक बादर है।

२८. एयस्स णं भंते ! पुढविकायस्स आउक्का० तेउक्का० वाउकायस्स य कयरे काये सव्वबायरे ?, कयरे काये सव्वबादरतराए ?

गोयमा ! पुढविकाए सव्वबादरे, पुढविकाए सव्वबादरतराए।

[२८ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक, इन चारो मे से कौन-सी काय सबसे बादर है, कौन-सी बादरतर है ?

[२८ उ] गौतम ! (इन चारो मे से) पृथ्वीकाय सबसे बादर है, पृथ्वीकाय ही बादरतर है।

२९. एयस्स णं भंते ! आउकायस्स तेउकायस्स वाउकायस्स य कयरे काये सव्वबायरे ?, कयरे काए सव्वबादरतराए ?

गोयमा ! आउकाये सव्वबायरे, आउकाए सव्वबादरतराए।

[२९ प्र] भगवन् ! अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय इन तीनो मे से कौन-सी काय सर्वबादर है, कौन-सी बादरतर है ?

[२९ उ] गौतम ! (इन तीनो मे से) अप्काय सर्वबादर है, अप्काय ही बादरतर है।

३०. एयस्स णं भंते ! तेउकायस्स वाउकायस्स य कयरे काये सव्वबादरे ?, कयरे काये सव्वबादरतराए ?

गोयमा ! तेउकाए सव्वबादरे, तेउकाए सव्वबादरतराए।

[३० प्र.] भगवन् ! अग्निकाय और वायुकाय, इन दोनो कायो मे से कौन-सी काय सबसे बादर है, कौन-सी बादरतर है ?

[३० उ] गौतम ! इन दोनो मे से अग्निकाय सर्वबादर है, अग्निकाय ही बादरतर है।

विवेचन—पांच स्थावरो मे बादर-बादरतर कौन ?—पाच स्थावरो मे सबसे अधिक बादर प्रत्येक वनस्पति की अपेक्षा वनस्पतिकाय है, वनस्पतिकाय को छोड कर शेष चार स्थावरो मे सर्वाधिक बादर है—पृथ्वीकाय। फिर पृथ्वीकाय के सिवाय शेष तीन स्थावरो मे सर्वाधिक बादर है—अप्काय। और अप्काय को छोडकर शेष दो स्थावरो मे सर्वाधिक बादर है—अग्निकाय। इस प्रकार बादर का तारतम्य बताया गया है।[1]

पृथ्वीशरीर की महाकायता का निरूपण

३१. केमहालए णं भंते ! पुढविसरीरे पन्नत्ते ?

गोयमा ! अणताणं सुहुमवणस्सतिकाइयाणं जावइया सरीरा से एगे सुहुमवाउसरीरे। असंखेज्जाणं सुहुमवाउसरीराणं जावतिया सरीरा से एगे सुहुमतेउसरीरे। असंखेज्जाणं सुहुमतेउकाइय-

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ८३८-८३९

सरीराणं जावतिया सरीरा से एगे सुहुमे आउसरीरे। असंखेज्जाणं सुहुमआउकाइयसरीराणं जावतिया सरीरा से एगे पुढविसरीरे। असखेज्जाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जावतिया सरीरा से एगे बायरवाउ-सरीरे असंखेज्जाणं बादरवाउकाइयाणं जावतिया सरीरा से एगे बादरतेउसरीरे। असंखेज्जाणं बादर-तेउकाइयाणं जावतिया सरीरा से एगे बायरआउसरीरे। असखेज्जाण बादरआउकाइयाण जावइया सरीरा से एगे बादरपुढविसरीरे, एमहालए णं गोयमा! पुढविसरीरे पन्नत्ते।

[३१ प्र] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवो का शरीर कितना बडा (महाकाय) कहा गया है?

[३१ उ] गौतम! अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवो के जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म वायुकाय का शरीर होता है। असख्यात सूक्ष्म वायुकायिक जीवो के जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म अग्निकाय का शरीर होता है। असख्य सूक्ष्म अग्निकाय के जितने शरीर होते है, उतना एक सूक्ष्म अप्काय का शरीर होता है। असख्य सूक्ष्म अप्काय के जितने शरीर होते है, उतना एक सूक्ष्म पृथ्वीकाय का शरीर होता है, असख्यसूक्ष्म पृथ्वीकाय के जितने शरीर होते है, उतना एक बादर वायुकाय का शरीर होता है। असख्य बादर वायुकाय के जितने शरीर होते है, उतना एक बादर अग्निकाय का शरीर होता है। असख्य बादर अग्निकाय के जितने शरीर होते है, उतना एक बादर अप्काय का शरीर होता है। असख्य बादर अप्काय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर पृथ्वीकाय का शरीर होता है। हे गौतम! (अप्काय आदि अन्य कायो की अपेक्षा) इतना बड़ा (महाकाय) पृथ्वीकाय का शरीर होता है।

विवेचन—पृथ्वीकाय के शरीर की महाकायता का माप—प्रस्तुत सू ३१ मे पृथ्वीकाय का शरीर दूसरे अप्कायादि की अपेक्षा कितना बडा है? इसे सदृष्टान्त निरूपण किया गया है।

मापकयंत्र—१—असख्य सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के शरीर—एक सूक्ष्म वायुशरीर

२—असख्य सूक्ष्म वायुकायिक-शरीर—एक सूक्ष्म अग्नि-शरीर
३—असख्य सूक्ष्म अग्नि-शरीर—एक सूक्ष्म अप्कायशरीर
४—असख्य सूक्ष्म अप्कायशरीर—एक सूक्ष्म पृथ्वीशरीर
५—असख्य सूक्ष्म पृथ्वीशरीर—एक बादर वायु-शरीर
६—असख्य बादर वायु-शरीर—एक बादर अग्नि-शरीर
७—असख्य बादर अग्नि-शरीर—एक बादर अप्कायशरीर
८—असख्य बादर अप्कायिकशरीर—एक बादर पृथ्वी-शरीर

पृथ्वीकाय के शरीर की अवगाहना

३२. पुढविकायस्स णं भते! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता?

गोयमा! से जहानामए रन्नो चाउरतचक्कवट्टिस्स वण्णगपेसिया सिया तरुणी बलवं जुगवं जुवाणी अप्पातंका, वण्णओ, जाव निउणसिप्पोवगया, नवरं 'चम्मेट्ठदुहणमुट्ठियसमाहयणिचितगत्तकाया' न भण्णति, सेस त चेव जाव निउणसिप्पोवगया, तिक्खाए वइरामईए सण्हकरणीए तिक्खेणं वइरामएणं वट्टावरएणं एग मह पुढविकाय जउगोलासमाणं गहाय पडिसाहरिय पडिसाहरिय पडिसखिविय

पडिसंखिविय जाव 'इणामेव' त्ति कट्टु तिसत्तखुत्तो ओपीसेज्जा। तत्थ णं गोयमा! अत्थेगइया पुढविकाइया आलिद्धा, अत्थेगइया नो आलिद्धा, अत्थेगइया सघट्टिया, अत्थेगइया नो सघट्टिया, अत्थेगइया परियाविया, अत्थेगइया नो परियाविया, अत्थेगइया उद्दविया, अत्थेगइया नो उद्दविया, अत्थेगइया पिट्ठा, अत्थेगइया नो पिट्ठा; पुढविकाइयस्स ण गोयमा! एमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता।

[३२ प्र] भगवन्! पृथ्वीकाय के शरीर की कितनी बडी (महती) अवगाहना कही गई है?

[३२ उ] गौतम! जैसे कोई तरुणी, बलवती, युगवती, युवावय-प्राप्त, रोगरहित इत्यादि वर्णन-युक्त यावत् कलाकुशल, चातुरन्त (चारो दिशाओ के अन्त तक जिसका राज्य हो, ऐसे) चक्रवर्ती राजा की चन्दन घिसने वाली दासी हो। विशेष यह है कि यहाँ चर्मेष्ट, द्रुघण, मौष्टिक आदि व्यायाम-साधनो से सुदृढ बने हुए शरीर वाली, इत्यादि विशेषण नही कहने चाहिए। (क्योकि इन व्यायामयोग्य साधनो की प्रवृत्ति स्त्री के लिए अनुचित एव अयोग्य होती है।) ऐसी शिल्पनिपुण दासी, चूर्ण पीसने की वज्रमयी कठोर (तीक्ष्ण) शिला पर, वज्रमय तीक्ष्ण (कठोर) लोढे (बट्टे) से लाख के गोले के समान, पृथ्वीकाय (मिट्टी) का एक बडा पिण्ड लेकर बार-बार इकट्ठा करती और समेटती (सक्षिप्त करती) हुई—'मैं अभी इसे पीस डालती हूँ', यो विचार कर उसे इक्कीस बार पीस दे तो हे गौतम! कई पृथ्वीकायिक जीवो का उस शिला और लोढे (शिलापुत्रक) से स्पर्श होता है और कई पृथ्वीकायिक जीवो का स्पर्श नही होता। उनमे से कई पृथ्वीकायिक जीवो का घर्षण होता है, और कई पृथ्वीकायिको का घर्षण नही होता। उनमे से कुछ को पीडा होती है, कुछ को पीडा नही होती। उनमे से कई मरते (उपद्रवित होते) है कई नही होते तथा कई पीसे जाते है और कई नही पीसे जाते। गौतम! पृथ्वीकायिक जीव के शरीर की इतनी बडी (या सूक्ष्म) अवगाहना होती है।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर की अवगाहना—प्रस्तुत सूत्र ३२ मे जो प्रश्न पूछा गया है, उसका शब्दश अर्थ होता है—पृथ्वीकायिक जीव की शरीरावगाहना कितनी बडी होती है? इस प्रश्न का समाधान दिया गया है कि चक्रवर्ती की बलिष्ठ एव सुदृढ शरीर वाली तरुणी द्वारा वज्रमय शिला पर पृथ्वी का बडा-सा गोला पूरी शक्ति लगा कर २१ बार पीसने पर भी बहुत-से पृथ्वीकण यो के यो रह जाते है, शिला पर उनका चूर्ण नही होता, वे घर्षणविहीन रह जाते है, इत्यादि वर्णन पर से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वीकाय के जीव अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहना वाले होते है।

कठिनशब्दार्थ—वण्णग-पेसिया—चदन पीसने वाली दासी। **जुगवं**—युगवती—उस युग मे यानी चौथे आरे मे पैदा हुई हो, ऐसी। **जुवाणी**—युवावस्था-प्राप्त। **अप्पातंका**—आतक अर्थात्-दु साध्य रोग से रहित। **निउणसिप्पोवगया**—शिल्प मे निपुणता-प्राप्त। **तिक्खाए वइरामइए सण्हकरणीए**—तीक्ष्ण—कठोर वज्रमय पीसने की शिला से। **वट्टावरएण**—प्रधान शिलवट्टे (शिलापुत्र—लोढे) से। **जउगोलासमाण**—लाख के गोले के समान। **पडिसाहरिय**—बारबार पिण्डरूप मे इकट्ठा करती हुई। **पडिसखिविय**—समेटती हुई। **ति-सत्तक्खुत्तो**—२१ बार। **उप्पीसेज्जा**—जोर

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७६७, (ख) भगवती विवेचन (प. घेवरचदजी) भा ६, पृ. २७९१

से (पूरी ताकत लगा कर) पीसे। **आलिद्धा**—लगते-चिपटते है, या स्पर्श करते है। **संघट्टिया**—रगडे जाते है, सघर्षित होते है। **परियाविया**—पीडित होते है। **उद्दविया**—मारे जाते है या उपद्रवित होते हैं। **पिट्ठा**—पिस जाते है। **एमहालिया**—इतनी महती-अतिसूक्ष्म। **चम्मेट्ठ-दुहण-मुट्ठिय-समाहय-णिचित गत्तकाया**—चर्मेष्ट, द्रुघण और मौष्टिकादि व्यायाम-साधनो से सुदृढ हुए शरीरयुक्त।

एकेन्द्रिय जीवों की अनिष्टतरवेदनानुभूति का सदृष्टान्त निरूपण

३३. पुढविकाइए ण भते ! अक्कते समाणे केरिसियं वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरति ?

गोयमा ! से जहानामए केयि पुरिसे तरुणे बलवं जाव निउणसिप्पोवगए एगं पुरिस जुण्ण जराजज्जरियदेह जाव दुब्बल किलत जमलपाणिणा मुद्धाणसि अभिहणिज्जा, से णं गोयमा ! पुरिसे तेण पुरिसेण जमलपाणिणा मुद्धाणंसि अभिहए समाणे केरिसियं वेयण पच्चणुभवमाणे विहरइ ?'

'अणिट्ठं समणाउसो !'

तस्स ण गोयमा ! पुरिसस्स वेदणाहिंतो पुढविकाए अक्कंते समाणे एत्तो अणिट्ठतरियं चेव अकंततरिय जाव अमणामतरियं चेव वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

[३३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव को आक्रान्त करने (दवाने या पीडित करने) पर वह कैसी वेदना (पीडा) का अनुभव करता है ?

[३३ उ] गौतम ! जैसे कोई तरुण, बलिष्ठ यावत् शिल्प मे निपुण हो, वह किसी वृद्धावस्था से जीर्ण, जराजर्जरित देह वाले यावत् दुर्बल, ग्लान (क्लान्त) के सिर पर मुष्टि से प्रहार करे (मुक्का मारे) तो उस पुरुष द्वारा मुक्का मारने पर वृद्ध कैसी पीडा का अनुभव करता है ?

[गौतम—] आयुष्मन् श्रमणप्रवर ! भगवन् ! वह वृद्ध अत्यन्त अनिष्ट पीड़ा का अनुभव करता है। (भगवान्—) इसी प्रकार, हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव को आक्रान्त किया जाने पर, वह उस वृद्धपुरुष को होने वाली वेदना की अपेक्षा अधिक अनिष्टतर (अप्रिय) यावत् अमनामतर (अत्यन्त अमनोज्ञ) पीडा का अनुभव करता है।

३४. आउयाए ण भते ! संघट्टिए समाणे केरिसिय वेयण पच्चणुभवमाणे विहरइ ?

गोयमा ! जहा पुढविकाए एव चेव।

[३४ प्र] भगवन् ! अप्कायिक जीव को स्पर्श या घर्षण (सघट्ट) किये जाने पर वह कैसी वेदना का अनुभव करता है ?

[३४ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवो के समान अप्काय के जीवो के विषय मे समझना चाहिए।

३५. एवं तेउयाए वि।

[३५] इसी प्रकार अग्निकाय के विषय मे भी जानना।

३६. एवं वाउकाए वि।

[३६] वायुकायिक जीवो के विषय मे भी पूर्ववत् जानना।

३७. एवं वणस्सतिकाए वि जाव विहरइ ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। एगूणवीसइमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ।। १९-३ ।।

[३७] इसी प्रकार वनस्पतिकाय भी पूर्ववत् यावत् पीडा का अनुभव करता है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—पांच स्थावर जीवो की पीड़ा का सदृष्टान्त निरूपण—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ३३ से ३७ तक) मे पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक जीवो की पीडा की बलिष्ठ युवक द्वारा सिर पर मुष्टिप्रहार से आहत जराजीर्ण अशक्त वृद्ध की पीड़ा से तुलना करके समझाया गया है । वह इसलिए कि पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवो को किस प्रकार की पीडा होती है, यह छद्मस्थ पुरुषो के इन्द्रियगोचर नही हो सकना और न उनके ज्ञान का विषय हो सकता है । इसलिए भगवान् ने जराजीर्ण वृद्ध पुरुष का दृष्टान्त देकर बतलाया है । वस्तुत पृथ्वीकायादि के जीव तो उक्त वृद्ध पुरुष की अपेक्षा भी अतीव अनिष्टतर अमनोज्ञ महावेदना का अनुभव करते हैं ।[1]

कठिन शब्दार्थ—अवकते—आक्रान्त, आक्रमण होने पर । **जमलपाणिणा**—मुष्टि से, दोनो हाथो से । **मुद्धाणसि**—मस्तक पर । **एत्तोवि**—इससे भी ।[2]

।। उन्नीसवां शतक तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती विवचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ. २७९३
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६७

२ (क) वही, पत्र ७६७
(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २७९२

चउत्थो उद्देसओ : 'महासवा'

चतुर्थ उद्देशक : 'महास्रव'

नैरयिकों में महास्रवादि पदों की प्ररूपणा

१. [1]सिय भते ! नेरइया महस्सवा, महाकिरिया महावेयणा महानिज्जरा ?

णो इणट्ठे समट्ठे १।

[१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (यथार्थ) नही है ।

२. सिय भते ! नेरइया महस्सवा महाकिरिया महावेदणा अप्पनिज्जरा ?

हता, सिया २।

[२ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले है ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! ऐसे होते है ।

३. सिय भते ! नेरइया महस्सवा महाकिरिया अप्पवेयणा महानिज्जरा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ३।

[३ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले होते है ?

[३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

४. सिय भते ! नेरइया महस्सवा महाकिरिया अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ४।

[४ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक महास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले है ?

[४ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

५. सिय भंते ! नेरइया महस्सवा अप्पकिरिया महावेदणा महानिज्जरा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ५।

---

१ अधिक पाठ—उद्देशक के प्रारम्भ मे किसी प्रति मे इस प्रकार का पाठ है—
'तेण कालेण तेण समएण जाव एव वयासी'—

[५ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले होते हैं ?

[५ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

६. सिय भंते ! नेरइया महस्सवा अप्पकिरिया महावेदणा अप्पनिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ६।

[६ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना तथा अल्पनिर्जरा वाले होते हैं ?

[६ उ.] यह अर्थ भी समर्थ नहीं है।

७. सिय भंते ! नेरतिया महस्सवा अप्पकिरिया अप्पवेदणा महानिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ७।

[७ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक महास्रव अल्पक्रिया, अल्पवेदना एवं महानिर्जरा वाले होते हैं ?

[७ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

८. सिय भंते ! नेरतिया महस्सवा अप्पकिरिया अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ८।

[८ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले होते हैं ?

[८ उ.] यह अर्थ भी समर्थ नहीं है।

९. सिय भंते ! नेरइया अप्पस्सवा महाकिरिया महावेदणा महानिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ९।

[९ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

[९ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१०. सिय भंते ! नेरइया अप्पस्सवा महाकिरिया महावेदणा अप्पनिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे १०।

[१० प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

[१० उ.] यह अर्थ भी समर्थ नहीं है।

११. सिय भंते ! नेरइया अप्पस्सवा महाकिरिया अप्पवेयणा महानिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ११।

[११ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

[११ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१२. सिय भते ! नेरइया अप्पस्सवा महाकिरिया अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ?

णो इणट्ठे समट्ठे १२।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले होते है ?

[१२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१३. सिय भते ! नेरइया अप्पस्सवा अप्पकिरिया महावेयणा महानिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे १३।

[१३ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

[१३ उ] यह अर्थ समर्थ नही है।

१४. सिय भंते ! नेरतिया अप्पस्सवा अप्पकिरिया महावेदणा अप्पनिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे १४।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

[१४ उ] यह अर्थ समर्थ नही है।

१५. सिय भते ! नेरइया अप्पस्सवा अप्पकिरिया अप्पवेदणा महानिज्जरा ?

नो इणट्ठे समट्ठे १५।

[१५ प्र] भगवन् ! नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले होते है ?

[१५ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१६. सिय भते ! नेरतिया अप्पस्सवा अप्पकिरिया अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ?

णो इणट्ठे समट्ठे १६। एते सोलस भंगा।

[१६ प्र] भगवन् ! नैरयिक कदाचित् अल्पास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले है ?

[१६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

ये सोलह भग (विकल्प) हैं।

विवेचन—महास्रवादि चतुष्क के सोलह भंगों में नैरयिक का भंग—प्रस्तुत १६ सूत्रों में महास्रवादि चतुष्क के १६ भंग दिये गए हैं। जीवों के शुभाशुभ परिणामों के अनुसार आस्रव, क्रिया, वेदना और निर्जरा, ये चार बातें होती हैं। परिणामों की तीव्रता के कारण ये चारों महान् रूप में और परिणामों की मन्दता के कारण ये चारों अल्प रूप में परिणत होती हैं। किन जीवों में किस की महत्ता और किस की अल्पता पाई जाती है? यह बताने हेतु आस्रवादि चार के सोलह भंग बनते हैं। सुगमता से समझने के लिए रेखाचित्र दे रहे हैं—('म' से महा और 'अ' से अल्प समझना।)

१ म म म म	५ म अ म म	९ अ म म म	१३ अ अ म म
२ म म म अ	६ म अ. म अ	१० अ म म अ	१४ अ. अ म अ
३ म म अ म	७ म अ अ म	११ अ म अ म	१५ अ अ अ म
४ म म अ अ	८ म अ अ अ	१२ अ म अ अ	१६ अ अ अ अ

नैरयिकों में इन सोलह भंगों में से दूसरा भंग ही पाया जाता है, क्योंकि नैरयिकों के कर्मों का बन्ध बहुत होता है, इसलिए वे महास्रवी हैं। उनके कायिकी आदि बहुत क्रियाएँ होती हैं, इसलिए वे महाक्रिया वाले हैं। उनके असातावेदनीय का तीव्र उदय है, इस कारण वे महावेदना वाले हैं। उनमें अविरति परिणामों के होने से सकामनिर्जरा तो होती नहीं, अकामनिर्जरा होती है, पर वह अत्यल्प होती है। इसलिए वे अल्पनिर्जरा वाले हैं। इस प्रकार नैरयिकों में महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा, यह द्वितीय भंग ही पाया जाता है।[1]

असुरकुमारों से लेकर वैमानिकों तक में महास्रव आदि चारों पदों की प्ररूपणा

१७. सिय भंते ! असुरकुमारा महस्सवा महाकिरिया महावेयणा महानिज्जरा ?

णो इणट्ठे समट्ठे। एवं चउत्थो भंगो भाणियव्वो। सेसा पण्णरस भंगा खोडेयव्वा।

[१७ प्र.] भगवन्! क्या असुरकुमार महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले होते हैं?

[१७ उ.] गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इस प्रकार यहाँ (पूर्वोक्त सोलह भंगों में से) केवल चतुर्थ भंग कहना चाहिए, शेष पन्द्रह भंगों का निषेध करना चाहिए।

१८. एवं जाव थणियकुमारा।

[१८] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

१९. सिय भंते ! पुढविकाइया महस्सवा महाकिरिया महावेयणा महानिज्जरा ?

हंता, सिया।

---

१. (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ७६७
(ख) भगवती विवेचन (पं. घेवरचन्दजी) भा. ६, पृ. २७९८-९९

[१९ प्र] भगवन्! क्या पृथ्वीकायिक जीव कदाचित् महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले होते है ?

[१९ उ] हाँ, गौतम! कदाचित् होते है।

२०. एवं जाव सिय भंते! पुढविकाइया अप्पस्सवा अप्पकिरिया अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ?

हंता, सिया १६।

[२० प्र] भगवन्! क्या इसी प्रकार पृथ्वीकायिक यावत् सोलहवें भग—अल्पास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले—कदाचित् होते है ?

[२० उ] हाँ, गौतम! वे कदाचित् यावत् सोलहवे भग तक होते है।

२१. एव जाव मणुस्सा।

[२१] इसी प्रकार यावत् मनुष्यो तक जानना चाहिए।

२२. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

सेव भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ एगूणवीसइमे सए चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥ १९-४ ॥

[२२] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिको के विषय मे असुरकुमारो के समान जानना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—असुरकुमारों से लेकर वैमानिकों तक महास्रवादि-प्ररूपणा—सूत्र १७ से २२ तक का फलितार्थ यह है कि भवनपति (असुरकुमारादि दश प्रकार के), वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे—महास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा—यह चौथा भंग पाया जाता है, शेष १५ भग नही पाए जाते, क्योकि ये चारो प्रकार के देव विशिष्ट अविरति से युक्त होने से महास्रव और महाक्रिया वाले होते है, तथा इन चारो मे असातावेदनीय का उदय प्राय नही होता, इसलिए वेदना अल्प होती है और निर्जरा भी प्राय: अशुभ परिणाम होने से अल्प होती है।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और मनुष्य इन सभी दण्डको मे परिणामानुसार कदाचित् पूर्वोक्त १६ ही भग पाये जाते है।[1]

खोडेयव्वा—निषेध करना चाहिए।[2]

॥ उन्नीसवाँ शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) फलितार्थगाथा—भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६८
(ख) **'वीएण उ नेरइया होति, चउत्थेण सुरगणा सव्वे।
ओरालसरीरा पुण सव्वेहिं पएहिं भणियव्वा ॥'**

२ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा. ६, पृ २८००

पंचमो उद्देसओ : 'चरम'

पंचम उद्देशक : 'चरम' (परम-वेदनादि)

चरम और परम आधार पर चौवीस दण्डकों में महाकर्मत्व-अल्पकर्मत्व आदि का निरूपण

१. अत्थि णं भंते ! चरमा वि नेरतिया, परमा वि नेरतिया ?

हंता, अत्थि ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक चरम (अल्पायुष्क) भी है और परम (अधिक आयुष्य वाले) भी हैं ?

[१ उ] हाँ, गौतम ! (वे चरम भी हैं, परम भी) हैं ।

२. [१] से नूणं भते ! चरमेहिंतो नेरइएहिंतो परमा नेरतिया महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महस्सवतरा चेव, महावेयणतरा चेव, परमेहिंतो वा नेरइएहिंतो चरमा नेरतिया अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पस्सवतरा चेव, अप्पवेयणतरा चेव ?

हंता, गोयमा ! चरमेहिंतो नेरइएहिंतो परमा जाव महावेयणतरा चेव; परमेहिंतो वा नेरइएहिंतो चरमा नेरइया जाव अप्पवेयणतरा चेव ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या चरम नैरयिको की अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महास्रव वाले और महावेदना वाले है ? तथा परम नैरयिको की अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पास्रव, और अल्पवेदना वाले है ?

[२-१ उ] हाँ, गौतम ! चरम नैरयिको की अपेक्षा परम नैरयिक यावत् महावेदना वाले हैं और परम नैरयिको की अपेक्षा चरम नैरयिक यावत् अल्पवेदना वाले है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ जाव अप्पवेयणतरा चेव ?

गोयमा ! ठिति पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ जाव अप्पवेयणतरा चेव ।

[२-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से कहते है कि यावत् परम नैरयिको की अपेक्षा चरम नैरयिक यावत् अल्पवेदना वाले हैं ?

[२-२ उ] गौतम ! स्थिति (आयुष्य) की अपेक्षा से (ऐसा है ।) इसी कारण, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि यावत्—'अल्पवेदना वाले हैं' ।

३. अत्थि ण भते ! चरमा वि असुरकुमारा, परमा वि असुरकुमारा ?

एवं चेव, नवर विवरीयं भाणियव्वं—परमा अप्पकम्मा चरमा महाकम्मा, सेस त चेव । जाव थणियकुमारा ताव एमेव ।

[३ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमार चरम भी है और परम भी है ?

[३ उ] हाँ, गौतम ! वे दोनो हैं, किन्तु विशेष यह है कि यहाँ (परम एव चरम के सम्बन्ध मे) (पूर्वकथन से) विपरीत कहना चाहिए। (जैसे कि—) परम असुरकुमार (अशुभ कर्म की अपेक्षा) अल्पकर्म वाले हैं और चरम असुरकुमार महाकर्म वाले है। शेष पूर्ववत्, यावत्—स्तनितकुमार-पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

४. पुढविकाइया जाव मणुस्सा एए जहा नेरइया।

[४] पृथ्वीकायिको से लेकर यावत् मनुष्यो तक नैरयिको के समान समझना चाहिए।

५. वाणमंतर-जोतिस-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

[५] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के सम्बन्ध मे असुरकुमारो के समान कहना चाहिए।

विवेचन—नैरयिकादि का चरम-परम के आधार पर अल्पकर्मत्वादि का निरूपण—प्रस्तुत ५ सूत्रो (१ से ५ तक) मे नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चरम और परम के आधार पर महा-कर्मत्व अल्पकर्मत्व आदि का निरूपण किया गया है।

'चरम' और 'परम' की परिभाषा—ये दोनो पारिभाषिक शब्द है। इनका क्रमशः अर्थ है—अल्प स्थिति (आयुष्य) वाले और दीर्घ स्थिति (लम्बी आयु) वाले।

चरम की अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्मादि वाले क्यो ? जिन नैरयिको की स्थिति अल्प होती है, उनकी अपेक्षा दीर्घ स्थिति वाले नैरयिको के अशुभकर्म अधिक होते है, इस कारण उनकी क्रिया, आस्रव और वेदना भी अधिकतर होती है। इसीलिए कहा गया है कि चरम की अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्म, महाक्रिया, महास्रव और महावेदना वाले होते हैं।

परम की अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्मादि वाले क्यो ?—परम नैरयिक दीर्घ स्थिति वाले होते हैं, अत उनकी अपेक्षा अल्पस्थिति वाले चरम नैरयिको के अशुभकर्मादि अल्प होने से वे अल्पकर्मादि वाले होते हैं। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय से लेकर मनुष्यो तक इसी प्रकार समझना चाहिए।

चारो प्रकार के देवो मे इनसे विपरीत—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे परम (दीर्घ स्थिति वालो) की अपेक्षा चरम (अल्प स्थिति वाले) देव महाकर्मादि वाले हैं, चरम देवो की अपेक्षा परम देव अल्पकर्मादि वाले हैं, क्योकि उनके (दीर्घ स्थिति वालो के) असाता वेदनीयादि अशुभकर्म अल्प होते हैं, इस कारण उनमे कायिकी आदि क्रियाएँ भी अल्प होती है, अशुभकर्मो का आस्रव भी कम होता है और उन्हे पीड़ा अत्यल्प होने से उनके वेदना भी अल्प होती है। चरम (अल्पस्थिति वाले) देव के अशुभ कर्म भी अधिक, क्रिया भी अधिक, आस्रव

---

१ (क) भगवती वृत्ति, पत्र ७६९

(ख) भगवती विवेचन (प. घेवरचदजी) भा ६, पृ, २८०४

और वेदना भी अधिक होती है। इसीलिए कहा गया है—परम की अपेक्षा चरम देव महाकर्मादि वाले होते हैं।[1]

वेदना : दो प्रकार तथा उनका चौवीस दण्डकों मे निरूपण

६. कतिविधा णं भंते! वेयणा पन्नत्ता?

गोयमा! दुविहा वेयणा पन्नत्ता, तं जहा—निदा य अनिदा य।

[६ प्र] भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

[६ उ] गौतम! वेदना दो प्रकार की कही गई है। यथा—निदा वेदना और अनिदा वेदना।

७. नेरइया णं भंते! किं निदाय वेयणं वेएंति, अनिदायं?

जहा पन्नवणाए जाव वेमाणिय त्ति।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ एगूणवीसइमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥ १९-५ ॥

[७ प्र] भगवन्! नैरयिक निदा वेदना वेदते हैं या अनिदा वेदना?

[७ उ] गौतम! (इसका उत्तर) प्रज्ञापना-सूत्र के (पैंतीसवे पद मे उल्लिखित कथन) के अनुसार यावत्—वैमानिको तक जानना चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—नैरयिकादि में दो प्रकार की वेदना—प्रस्तुत दो सूत्रो मे वेदना के दो प्रकार तथा नैरयिकादि मे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक उनकी प्ररूपणा की गई है।

निदा और अनिदा वेदना—ये दोनो शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द हैं। निदा के मुख्य अर्थ यहाँ वृत्तिकार ने किये हैं—(१) निदा-ज्ञान, सम्यग्विवेक आभोग, उपयोग, तथा (२) निदा अर्थात्—जीव का नियत दान यानी शोधन (शुद्धि)। इन दोनो अर्थ वाली निदा से युक्त वेदना भी निदावेदना है। अर्थात्—सम्यग्विवेकपूर्वक, ज्ञानपूर्वक या उपयोगपूर्वक (आभोगपूर्वक) वेदी जाने वाली वेदना को निदा वेदना कहते हैं। यही वेदना निश्चित रूप से जीव की शुद्धि करने वाली है। इसके विपरीत अज्ञानपूर्वक अनाभोग—(अनजानपन मे) वेदी जाने वाली वेदना को अनिदा वेदना कहते हैं।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७६९

(ख) से नूण भंते! चरमेहिंतो असुरकुमारेहिंतो परमा असुरकुमारा अप्पकम्मतरा चेव अप्पकिरियतरा चेवेत्यादि। —अ वृ पत्र ७६९

२ (क) भगवती, अ, वृत्ति, पत्र ७६९

(ख) भगवती खण्ड ४ (गुजराती अनुवाद) (प भगवानदास दोशी) पृ ८९

प्रज्ञापनानिर्दिष्ट तथ्य का सक्षिप्त निरूपण—नैरयिक जीवो को दोनो प्रकार की वेदना होती है। जो सज्ञी जीवो से जाकर उत्पन्न होते है, वे निदा वेदना वेदते है और असज्ञी से जाकर उत्पन्न होने वाले अनिदा वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार आदि देवो के विषय मे भी जानना चाहिए। पृथ्वीकायिक आदि से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवो तक केवल 'अनिदा' वेदना वेदते हैं। पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और वाणव्यन्तर, ये नैरयिको के समान दोनो प्रकार की वेदना वेदते हैं। ज्योतिष्क और वैमानिक भी दोनो प्रकार की वेदना वेदते है। किन्तु दूसरो की अपेक्षा उनके कारण मे अन्तर है। जो मायी मिथ्यादृष्टि देव है, वे अनिदा वेदना वेदते है जबकि अमायी सम्यग्दृष्टि देव निदावेदना वेदते है।[1]

॥ उन्नीसवाँ शतक : पञ्चम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र पद-३५, पत्र ५५६-५५७

(ख) भगवतीसूत्र, खण्ड ४, (गुजराती अनुवाद) (प भगवानदासजी), पृ ८९

छट्ठो उद्देसओ : 'दीव'

छठा उद्देशक : द्वीप (—समुद्र-वक्तव्यता)

जीवाभिगमसूत्र-निर्दिष्ट द्वीप-समुद्र-सम्बन्धी वक्तव्यता

१. कहि णं भंते ! दीव-समुद्दा ?, केवतिया ण भते ! दीव-समुद्दा ?, किंसठिया ण भते ! दीव-समुद्दा ?

एव जहा जीवाभिगमे दीव-समुद्दुद्देसो सो चेव इह वि जोतिसमडिउद्देसगवज्जो भाणियव्वो जाव परिणामो जीवउववाओ जाव अणतखुत्तो।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। एगूणवीसइमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ।। १९-६ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! द्वीप और समुद्र कहाँ है ? भगवन् ! द्वीप और समुद्र कितने हैं ? भगवन् ! द्वीप-समुद्रो का आकार (सस्थान) कैसा कहा गया है ?

[१ उ] (गौतम !) यहाँ जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति मे, ज्योतिष्क-मण्डित उद्देशक को छोड कर, द्वीप-समुद्र-उद्देशक (मे उल्लिखित वर्णन) यावत् परिणाम, जीवो का उत्पाद और यावत् अनन्त वार तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है'—यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—द्वीप-समुद्र कहाँ, कितने और किस आकार के ?—प्रस्तुत उद्देशक मे द्वीप-समुद्र सम्बन्धी वक्तव्यता जीवाभिगमसूत्र तृतीय प्रतिपत्ति के अतिदेशपूर्वक प्रतिपादन की गई है । जीवाभिगम मे द्वीपसमुद्रोद्देशक मे वर्णित 'ज्योतिष्कमण्डित' प्रकरण को छोड देना चाहिए । तथा परिणाम और उत्पाद तक का जो वर्णन द्वीपसमुद्र से सम्बन्धित है, वही यहाँ जानना चाहिए ।

द्वीप समुद्रों का सक्षिप्त परिचय—स्वयम्भूरमण समुद्र तक असंख्यात द्वीप और समुद्र है । जम्बूद्वीप इनमे से विशिष्ट द्वीप है, जिसका सस्थान (आकार) चन्द्रमा या थाली के समान गोल है । शेष सब द्वीप-समुद्रो का सस्थान चूडी के समान वलयाकार गोल है । क्योकि ये एक दूसरे को चारो ओर से घेरे हुए हैं । इनमे जीव पहले अनेक वार या अनन्त वार उत्पन्न हो चुके हैं ।

परिणाम और उपपात से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर—[प्र] (१) भगवन्! क्या सभी द्वीप-समुद्र पृथ्वी के परिणामरूप हैं? (२) भगवन्! क्या द्वीप-समुद्रों में सर्वजीव पहले पृथ्वीकायादिरूप में कई बार उत्पन्न हुए हैं? इन प्रश्नों के उत्तर में भगवान् ने कहा है—हाँ, गौतम! सभी जीव अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं।[1]

॥ उन्नीसवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७६९-७७०

(ख) जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, पत्र १७६-२७३, सू. १२३-१९० (आगमोदय)

(ग) भगवती विवेचन (पं. घेवरचन्दजी) भा. ६, पृ. २८०६

सत्तमो उद्देसओ : 'भवणा'

सप्तम उद्देशक : भवन (-विमानावाससम्बन्धी)

चतुर्विध देवों के भवन-नगर-विमानावास-संख्यादि-निरूपण

१. केवतिया णं भंते ! असुरकुमारभवणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चोयट्ठि असुरकुमारभवणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ।

[१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने लाख भवनावास कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! असुरकुमारो के चौसठ लाख भवनावास कहे गए है ।

२. ते ण भंते ! किमया पन्नत्ता ?

गोयमा ! सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा । तत्थ ण बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमति विउवक्कमति चयति उववज्जति, सासया ण ते भवणा दव्वट्ठयाए, वण्णपज्जवेहि जाव फासपज्जवेहि असासया ।

[२ प्र] भगवन् ! वे भवनावास किससे बने हुए है ?

[२ उ.] गौतम ! वे भवनावास रत्नमय हैं, स्वच्छ, श्लक्ष्ण (चिकने या कोमल) यावत् प्रतिरूप (सुन्दर) है । उनमे बहुत-से जीव और पुद्गल उत्पन्न होते है, विनष्ट होते है, च्यवते है और पुन उत्पन्न होते हैं । वे भवन द्रव्यार्थिक रूप से शाश्वत है, किन्तु वर्णपर्यायो, यावत् स्पर्शपर्यायो की अपेक्षा से अशाश्वत हैं ।

३. एव जाव थणियकुमारावासा ।

[३] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारावासो तक जानना चाहिए ।

४. केवतिया ण भंते ! वाणमतरभोमेज्जनगरावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा वाणमतरभोमेज्जनगरावाससयसहस्सा पन्नत्ता ।

[४ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवो के भूमिगत नगरावास कितने लाख कहे गए हैं ?

[४ उ] गौतम ! वाणव्यन्तर देवो के भूमि के अन्तर्गत असख्यात लाख नगरावास कहे गए हैं ।

५. ते ण भंते ! किमया पन्नत्ता ?

सेस त चेव ।

[५ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तरो के वे नगरावास किससे बने हुए है ?

[५ उ] गौतम ! समग्र वक्तव्यता पूर्ववत् समझनी चाहिए ।

६. केवतिया णं भंते ! जोतिसियविमाणावाससयसहस्सा० पुच्छा ?

गोयमा ! असंखेज्जा जोतिसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

[६ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवो के विमानावास कितने लाख कहे गए हैं ?

[६ उ] गौतम ! (उनके विमानावास) असंख्येय लाख कहे गए है ।

७. ते णं भंते ! किंमया पन्नत्ता ?

गोयमा ! सव्वफालिहामया अच्छा, सेसं तं चेव ।

[७ प्र] भगवन् ! वे विमानावास किस वस्तु से निर्मित है ?

[७ उ] गौतम ! वे विमानावास सर्वस्फटिकरत्नमय है और स्वच्छ हैं; शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए ।

८. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवतिया विमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा० ।

[८ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे कितने लाख विमानावास कहे गए है ?

[८ उ] गौतम ! उसमे बत्तीस लाख विमानावास कहे गए हैं ।

९. ते णं भंते ! किंमया पन्नत्ता ?

गोयमा ! सव्वरयणामया अच्छा, सेसं तं चेव ।

[९ प्र] भगवन् ! वे विमानावास किस वस्तु के बने हुए है ?

[९ उ] गौतम ! वे सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

१०. एवं जाव अणुत्तरविमाणा, नवरं जाणियव्वा जत्तिया भवणा विमाणा वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। एगूणवीसइमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।। १९-७ ।।

[१०] इसी प्रकार (का वर्णन सौधर्मकल्प से लेकर) यावत्—अनुत्तरविमान तक कहना चाहिए । विशेष यह कि जहाँ जितने भवन या विमान (शास्त्र-निर्दिष्ट) हो, (उतने कहने चाहिए ।)

'हे भगवन ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम-स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—देवो के भवनावासों और विमानावासो की संख्यादि—प्रस्तुत १० सूत्रो (सू. १ से १० तक) मे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के भवनावास, नगरावास एवं विमानावासो की सख्या कितनी-कितनी है ? किस वस्तु से वे निर्मित ? तथा वे कैसे है ? इत्यादि सब वर्णन इस उद्देशक मे किया गया है ।

नीचे लिखे रेखाचित्र से इस उद्देशक का वक्तव्य सरलता से समझ मे आ जाएगा—

देव-नाम	भवनावास, विमानावास या नगरावास कथचित् शाश्वत-अशाश्वत	किंमय	कैसे ?	कितने ?
भवनपति देव	भवनावास	सर्व रत्न मय	स्वच्छ, श्लक्ष्ण, निर्मल कोमल, घृष्ट मृष्ट, कान्तिमय, मलविहीन, उद्योत सहित, प्रसन्नताजनक दर्शनीय, अतिरम्य	६४ लाख
वाणव्यन्तर देव	भूमिगत नगरावास	सर्व रत्न मय		असख्यात लाख
ज्योतिष्क देव	विमानावास	सर्व स्फटिक मय		असख्यात लाख
वैमानिक सौधर्मकल्प देव	विमानावास	सर्व रत्न मय		बत्तीस लाख
ईशान कल्प	" "	" " "	" "	२८ लाख
सनत्कुमार कल्प	" "	" " "	" "	१२ लाख
माहेन्द्र कल्प	" "	" " "	" "	८ लाख
ब्रह्मलोक कल्प	" "	" " "	" "	४ लाख
लान्तक कल्प	" "	" " "	" "	५० हजार
महाशुक्र कल्प	" "	" " "	" "	४० हजार
सहस्रार कल्प	" "	" " "	" "	६ हजार
आणत-प्राणत	" "	" " "	" "	४००
आरण-अच्युत	" "	" " "	" "	३००
नौ ग्रैवेयक अनुत्तर विमान	" "	" " "	" "	क्रमश ९ और ५[1]

कठिनशब्दार्थ—दव्वट्ठयाए—द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से। **किंमया**—किससे बने है, कैसे है ? **सव्वफालिहामया**—सर्वस्फटिकरत्नमय।

वक्कमंति : विशेषार्थ—जो पहले वहाँ कभी उत्पन्न नही हुए हैं, वे उत्पन्न होते है।

विउक्कमंतिः—(१) विशेषरूप से उत्पन्न होते है, (२) विनष्ट होते है।

चयंतिः—च्यवते है, मरते है, च्युत होते है—निकलते है।

उववज्जंतिः—पुन उत्पन्न होते है।

।। उन्नीसवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

---

१. (क) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भा. १३, पृ ४१२-४१३
   (ख) वियाहपण्णत्ति भा २, मू पा टि. पृ ८४५

२ भगवती विवेचन भा. ६ (प. घे), पृ. २८०७-८। (ख) भगवती भा १३, (प्र चं टीका), पृ ४०७

अट्ठमो उद्देसओ : 'निव्वत्ति'

आठवाँ उद्देशक : निर्वृत्ति

जीव निर्वृत्ति के भेद-प्रभेद का निरूपण

१. कतिविधा ण भते ! जीवनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा जीवनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—एगिंदियजीवनिव्वत्ती जाव पंचिंदिय-जीवनिव्वत्ती ।

[१ प्र] भगवन् ! जीवनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[१ उ] गौतम ! जीवनिर्वृत्ति पाच प्रकार की कही गई है । यथा—एकेन्द्रिय-जीवनिर्वृत्ति यावत् पचेन्द्रिय-जीवनिर्वृत्ति ।

२. एगिंदियजीवनिव्वत्ती ण भंते ! कतिविधा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविधा पन्नत्ता, त जहा—पुढविकाइयएगिंदियजीवनिव्वत्ती जाव वणस्सइकाइय-एगिंदियजीवनिव्वत्ती ।

[२ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-जीव-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[२ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार की कही गई है । यथा—पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-जीव-निर्वृत्ति यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-जीवनिर्वृत्ति ।

३. पुढविकाइयएगिंदियजीवनिव्वत्ती णं भंते ! कतिविधा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविकाइयएगिंदियजीवनिव्वत्ती य बायरपुढवि० ।

[३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-जीवनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[३ उ] गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है । यथा—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-जीव-निर्वृत्ति और बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-जीवनिर्वृत्ति ।

४. एव एएण अभिलावेणं भेदो जहा वड्डगबधे (स० ८ उ० ९ सु० ९०-९१) तेयगसरीरस्स जाव—

सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातियकप्पातीतवेमाणियदेवपंचेंदियजीवणिव्वत्ती णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—पज्जत्तगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातिय जाव देवपंचेंदिय-जीवनिव्वत्ती य अपज्जगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपचेंदियजीवनिव्वत्ती य ।

१६. एवं एगिंदियवज्जं जस्स जा भासा जाव वेमाणियाणं।

[१६] इस प्रकार एकेन्द्रिय को छोड कर यावत्—वैमानिक तक, जिसके जो भाषा हो, उसके उतनी भाषानिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

१७. कतिविहा णं भंते ! मणनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा मणनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—सच्चमणनिव्वत्ती जाव असच्चामोसमणनिव्वत्ती।

[१७ प्र] भगवन् ! मनोनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[१७ उ] गौतम ! मनोनिर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है। यथा—सत्यमनोनिर्वृत्ति, यावत् असत्यामृषामनोनिर्वृत्ति।

१८. एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

[१८] इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड कर यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

१९. कतिविहा णं भंते ! कसायनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा कसायनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—कोहकसायनिव्वत्ती जाव लोभकसायनिव्वत्ती।

[१९ प्र] भगवन् ! कषाय-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९ उ] गौतम ! कषायनिर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है। यथा—क्रोधकषायनिर्वृत्ति यावत् लोभकषायनिर्वृत्ति।

२०. एवं जाव वेमाणियाणं।

[२०] इसी प्रकार यावत् वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए।

२१. कतिविधा णं भंते ! वण्णनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा वण्णनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—कालवण्णनिव्वत्ती जाव सुक्किलवण्णनिव्वत्ती।

[२१ प्र] भगवन् ! वर्णनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[२१ उ] गौतम ! वर्णनिर्वृत्ति पाँच प्रकार की कही गई है। यथा—कृष्णवर्णनिर्वृत्ति, यावत् शुक्लवर्णनिर्वृत्ति।

२२. एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

[२२] इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिक-पर्यन्त समग्र वर्णनिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

२३. एवं गंधनिव्वत्ती दुविहा जाव वेमाणियाणं।

[२३] इसी प्रकार दो प्रकार की गन्ध-निर्वृत्ति, यावत् वैमानिकों तक कहनी चाहिए।

[८ प्र] भगवन् ! शरीरनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?
[८ उ] गौतम ! शरीरनिर्वृत्ति पाच प्रकार की कही गई है। यथा—औदारिक-शरीरनिर्वृत्ति यावत् कार्मणशरीरनिर्वृत्ति।

९. नेरतियाण भते ! ०

एय चेव ।

[९ प्र] भगवन् ! नैरयिको की कितने प्रकार की शरीरनिर्वृत्ति कही गई है ?
[९ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

१०. एवं जाव वेमाणियाणं, नवरं नायव्वं जस्स जति सरीराणि ।

[१०] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। विशेष यह कि जिसके जितने शरीर हो, उतनी निर्वृत्ति कहनी चाहिए।

११. कतिविधा ण भते ! सव्विंदियनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा सव्विंदियनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—सोतिंदियनिव्वत्ती जाव फासिंदिय-निव्वत्ती ।

[११ प्र] भगवन् ! सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?
[११ उ] गौतम ! सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति पाच प्रकार की कही गई है। यथा—श्रोत्रेन्द्रिय-निर्वृत्ति यावत् स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्ति।

१२. एवं जाव नेरइया जाव थणिकुमाराणं ।

[१२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर यावत् स्तनितकुमार-पर्यन्त जानना चाहिए।

१३. पुढविकाइयाण पुच्छा ।
गोयमा ! एगा फासिंदियसव्विंदियनिव्वत्ती पन्नत्ता ।

[१३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की कितनी इन्द्रियनिर्वृत्ति कही गई है ?
[१३ उ] गौतम ! उनकी एक मात्र स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्ति कही गई है।

१४. एव जस्स जति इंदियाणि जाव वेमाणियाणं ।

[१४] इसी प्रकार जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो, उतनी इन्द्रियनिर्वृत्ति यावत्—वैमानिक-पर्यन्त कहनी चाहिए।

१५ कतिविधा णं भंते ! भासानिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा भासानिव्वत्ती पन्नत्ता, त जहा—सच्चभासानिव्वत्ती, मोसभासानिव्वत्ती, सच्चामोसभासानिव्वत्ती, असच्चामोसभासानिव्वत्ती ।

[१५ प्र] भगवन् ! भाषानिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?
[१५ उ] गौतम ! भाषा-निर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है। यथा—सत्यभाषानिर्वृत्ति, मृषाभाषानिर्वृत्ति, सत्यामृषाभाषा-निर्वृत्ति और असत्याऽमृषा-भाषानिर्वृत्ति।

१६. एवं एगिंदियवज्जं जस्स जा भासा जाव वेमाणियाणं ।

[१६] इस प्रकार एकेन्द्रिय को छोड कर यावत्—वैमानिक तक, जिसके जो भाषा हो, उसके उतनी भाषानिर्वृत्ति कहनी चाहिए ।

१७. कतिविहा णं भंते ! मणनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा मणनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—सच्चमणनिव्वत्ती जाव असच्चामोसमणनिव्वत्ती ।

[१७ प्र] भगवन् ! मनोनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[१७ उ] गौतम ! मनोनिर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है । यथा—सत्यमनोनिर्वृत्ति, यावत् असत्यामृषामनोनिर्वृत्ति ।

१८. एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं ।

[१८] इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड कर यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए ।

१९. कतिविहा णं भंते ! कसायनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा कसायनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—कोहकसायनिव्वत्ती जाव लोभकसायनिव्वत्ती ।

[१९ प्र] भगवन् ! कषाय-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९ उ] गौतम ! कषायनिर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है । यथा—क्रोधकषायनिर्वृत्ति यावत् लोभकषायनिर्वृत्ति ।

२०. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[२०] इसी प्रकार यावत् वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए ।

२१. कतिविधा णं भंते ! वण्णनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा वण्णनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—कालवण्णनिव्वत्ती जाव सुक्किलवण्णनिव्वत्ती ।

[२१ प्र] भगवन् ! वर्णनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[२१ उ] गौतम ! वर्णनिर्वृत्ति पांच प्रकार की कही गई है । यथा—कृष्णवर्णनिर्वृत्ति, यावत् शुक्लवर्णनिर्वृत्ति ।

२२. एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं ।

[२२] इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिक-पर्यन्त समग्र वर्णनिर्वृत्ति कहनी चाहिए ।

२३. एवं गंधनिव्वत्ती दुविहा जाव वेमाणियाणं ।

[२३] इसी प्रकार दो प्रकार की गन्ध-निर्वृत्ति, यावत् वैमानिकों तक कहनी चाहिए ।

२४. रसनिव्वत्ती पंचविहा जाव वेमाणियाण।

[२४] इसी तरह पाच प्रकार की रस-निर्वृत्ति, यावत् वैमानिको तक कहनी चाहिए।

२५. फासनिव्वत्ती अट्ठविहा जाव वेमाणियाणं।

[२५] आठ प्रकार की स्पर्श-निर्वृत्ति भी यावत् वैमानिक-पर्यन्त कहनी चाहिए।

२६ कतिविधा णं भते! सठाणनिव्वत्ती पन्नत्ता?

गोयमा! छव्विहा संठाणनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—समचउरंससठाणनिव्वत्ती जाव हुडसठाणनिव्वत्ती।

[२६ प्र] भगवन्! सस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

[२६ उ] गौतम! सस्थान-निर्वृत्ति छह प्रकार की कही गई है। यथा—समचतुरस्र-सस्थान-निर्वृत्ति यावत् हुण्डक-सस्थान-निर्वृत्ति।

२७. नेरतियाण पुच्छा।

गोयमा! एगा हुंडसठाणनिव्वत्ती पन्नत्ता।

[२७ प्र] भगवन्! नैरयिको के सस्थान-निर्वृति कितने प्रकार की कही गई है?

[२७ उ] गौतम! उनके एकमात्र हुण्डक-सस्थान निर्वृत्ति कही गई है।

२८. असुरकुमाराण पुच्छा।

गोयमा! एगा समचउरससठाणनिव्वत्ती पन्नत्ता।

[२८ प्र] भगवन्! असुरकुमारो के कितने प्रकार की सस्थाननिवृत्ति कही गई है?

[२८ उ] गौतम! उनके एक मात्र समचतुरस्रसस्थान निर्वृत्ति कही गई है।

२९. एव जाव थणियकुमाराण।

[२९] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार-पर्यन्त कहना चाहिए।

३०. पुढविकाइयाण पुच्छा।

गोयमा! एगा मसूरचदासठाणनिव्वत्ती पन्नत्ता।

[३० प्र] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवो के सस्थाननिर्वृत्ति कितनी है?

[३० उ] गौतम! उनके एकमात्र मसूरचन्द्र-(मसूर की दाल के समान)-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

३१. एव जस्स ज सठाण जाव वेमाणियाण।

[३१] इस प्रकार जिसके जो सस्थान हो, तदनुसार निर्वृत्ति, यावत् वैमानिको तक कहनी चाहिए।

३२. कतिविधा ण भते! सन्नानिव्वत्ती पन्नत्ता?

गोयमा ! चउव्विहा सन्नाणिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—आहारसन्नानिव्वत्ती जाव परिग्गह-सन्नानिव्वत्ती ।

[३२ प्र] भगवन् ! संज्ञानिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[३२ उ] गौतम ! संज्ञा-निर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है, यथा—आहारसंज्ञानिर्वृत्ति यावत् परिग्रह-संज्ञानिर्वृत्ति ।

३३. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[३३] इस प्रकार (नैरयिको से लेकर) यावत् वैमानिको तक, (संज्ञानिर्वृत्ति का कथन करना चाहिए ।)

३४. कतिविधा णं भंते ! लेस्सानिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! छव्विहा लेस्सानिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—कण्हलेस्सानिव्वत्ती जाव सुक्कलेस्सा-निव्वत्ती ।

[३४ प्र] भगवन् ! लेश्यानिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[३४ उ] गौतम ! लेश्यानिर्वृत्ति छह प्रकार की कही गई है, यथा—कृष्णलेश्यानिर्वृत्ति यावत् शुक्ल-लेश्यानिर्वृत्ति ।

३५. एवं जाव वेमाणियाणं, जस्स जति लेस्साओ ।

[३५] इस प्रकार (नैरयिको से लेकर) यावत् वैमानिक-पर्यन्त (लेश्यानिर्वृत्ति यथायोग्य कहनी चाहिए ।) परन्तु जिसके जितनी लेश्याएँ हो, उतनी ही लेश्यानिर्वृत्ति कहनी चाहिए ।

३६. कतिविधा णं भंते ! दिट्ठिनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिविहा दिट्ठिनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा- सम्मद्दिट्ठिनिव्वत्ती, मिच्छादिट्ठिनिव्वत्ती, सम्मामिच्छादिट्ठिनिव्वत्ती ।

[३६ प्र] भगवन् ! दृष्टि-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई ?

[३६ उ] गौतम ! दृष्टिनिर्वृत्ति तीन प्रकार की कही गई है । यथा—सम्यग्दृष्टिनिर्वृत्ति, मिथ्यादृष्टिनिर्वृत्ति और सम्यग्मिथ्यादृष्टिनिर्वृत्ति ।

३७. एवं जाव वेमाणियाणं, जस्स जतिविधा दिट्ठी ।

[३७] इसी प्रकार यावत् वैमानिक-पर्यन्त (दृष्टिनिर्वृत्ति कहनी चाहिए ।) परन्तु, जिसके जो दृष्टि हो, (तदनुसार दृष्टि-निर्वृत्ति कहना चाहिए ।)

३८. कतिविहा णं भंते ! नाणनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा नाणनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियनाणनिव्वत्ती जाव केवलनाणनिव्वत्ती ।

[३८ प्र] भगवन् ! ज्ञाननिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई ?

[३८ उ] गौतम ! ज्ञान-निर्वृत्ति पाच प्रकार की कही गई है, यथा—आभिनिवोधिक-ज्ञान-निर्वृत्ति, यावत् केवलज्ञान-निर्वृत्ति ।

३९. एव एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं, जस्स जति नाणा ।

[३९] इस प्रकार एकेन्द्रिय को छोड कर जिसमे जितने ज्ञान हो, तदनुसार उसमे उतनी ज्ञाननिर्वृत्ति (कहनी चाहिए ।)

४०. कतिविधा णं भंते ! अन्नाणनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिविहा अन्नाणनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—मइअन्नाणनिव्वत्ती सुयअन्नाणनिव्वत्ती विभगनाणनिव्वत्ती ।

[४० प्र] गौतम ! अज्ञान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[४० उ] गौतम ! अज्ञान-निवृत्ति तीन प्रकार की कही गई है, यथा—मति-अज्ञान-निर्वृत्ति, श्रुत-अज्ञान-निर्वृत्ति और विभगज्ञान-निर्वृत्ति ।

४१. एवं जस्स जति अन्नाणा जाव वेमाणियाणं ।

[४१] इस प्रकार यावत् वैमानिक-पर्यन्त, जिसके जितने अज्ञान हो, (तदनुसार अज्ञान-निर्वृत्ति कहनी चाहिए ।)

४२. कतिविधा णं भंते ! जोगनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोगनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा—मणजोगनिव्वत्ती, वइजोगनिव्वत्ती, कायजोगनिव्वत्ती ।

[४२ प्र] भगवन् ! योग-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[४२ उ] गौतम ! योगनिर्वृत्ति तीन प्रकार की कही गई है । यथा—मनोयोग-निर्वृत्ति, वचन-योग-निर्वृत्ति और काय-योग-निर्वृत्ति ।

४३ एवं जाव वेमाणियाण, जस्स जतिविधो जोगो ।

[४३] इस प्रकार यावत् वैमानिको तक जिसके जितने योग हो, (तदनुसार उतनी योग-निर्वृत्ति कहनी चाहिए ।)

४४. कतिविधा णं भंते ! उवयोगनिव्वत्ती पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा उवयोगनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा— सागारोवयोगनिव्वत्ती, अणागारोवयोग-निव्वत्ती ।

[४४ प्र] भगवन् ! उपयोग-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

[४४ उ] गौतम ! उपयोग-निर्वृत्त दो प्रकार की कही गई है, यथा—साकारोपयोग-निर्वृत्ति और अनाकारोपयोग-निर्वृत्ति ।

४५. एवं जाव वेमाणियाणं ।[1]

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ एगूणवीसइमे सए अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥ १९-८ ॥

[४५] इस प्रकार उपयोग-निर्वृत्ति (का कथन) यावत् वैमानिक-पर्यन्त (करना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—कर्म, शरीर आदि १८ बोलों की निर्वृत्ति के भेद तथा चौबीस दण्डकों में पाई जाने वाली उस-उस निर्वृत्ति की यथायोग्य प्ररूपणा—प्रस्तुत ४१ सूत्रों (सू. ५ से ४५ तक) में निर्वृत्ति के कुल १९ बोलों (द्वारों) में से प्रथम बोल—जीवनिर्वृत्ति को छोड कर शेष निम्नोक्त १८ बोलों की निर्वृत्ति के भेद तथा चौवीस दण्डकों में पाई जाने वाली उस-उस निवृत्ति का संक्षेप में कथन किया गया है ।

२. **कर्मनिर्वृत्ति**—जीव के राग-द्वेषादिरूप अशुभभावों से जो कार्मण वर्गणाएँ ज्ञानावरणीयादि रूप परिणाम को प्राप्त होती हैं, उसका नाम कर्मनिर्वृत्ति है । यह कर्मसम्पादनरूप है और आठ प्रकार की है, जो चौवीस दण्डकों में होती है ।

३. **शरीरनिर्वृत्ति**—विभिन्न शरीरों की निष्पत्ति शरीरनिवृत्ति है । नारकों और देवों के वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीरों की तथा मनुष्यों और तिर्यञ्चों के (जन्मत) औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरों की निर्वृत्ति होती है ।

४. **सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति**—समस्त इन्द्रियों की आकार के रूप में रचना सर्वेन्द्रिय-निर्वृत्ति है । यह पांच प्रकार की है, जो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों में होती है ।

५. **भाषानिर्वृत्ति**—एकेन्द्रिय जीव के भाषा नहीं होती, उसके सिवाय जिस जीव के ४ प्रकार की भाषाओं में जो भाषा होती है, उस जीव के उस भाषा की निर्वृत्ति कहनी चाहिए ।

६. **मनोनिर्वृत्ति**—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के सिवाय शेष वैमानिकपर्यन्त समस्त संज्ञी पंचेन्द्रिय (समनस्क) जीवों के ४ प्रकार की मनोनिर्वृत्ति होती है ।

---

१. अधिक पाठ—उद्देशक की परिसमाप्ति पर अन्य प्रतियों में निम्नोक्त दो द्वार-संग्रहणीगाथाएँ मिलती हैं—

जीवाण निव्वत्ती कम्मप्पगडी-सरीर-निव्वत्ती ।
सव्विदिय-निव्वत्ती भासा य मणे कसाया य ॥ १ ॥
वण्णे गंधे रसे फासे संठाणविही य होइ बोद्धव्वो ।
लेसा दिट्ठी णाणे उवओगे चेव जोगे य ॥ २ ॥

अर्थ—१ जीव, २ कर्मप्रकृति, ३ शरीर, ४ सर्वेन्द्रिय, ५ भाषा, ६ मन, ७ कषाय, ८ वर्ण, ९ गन्ध, १० रस, ११ स्पर्श, १२ संस्थान, १३ संज्ञा, १४ लेश्या, १५ दृष्टि, १६ ज्ञान, १७ अज्ञान, १८ योग और १९ उपयोग, इन सबकी निर्वृत्ति का कथन इस उद्देशक में किया गया है ।

७. कषायनिर्वृत्ति—यह क्रोधादिचतुष्क कषायनिर्वृत्ति सभी ससारी जीवो के होती है।

८-९-१०-११. वर्णादिचतुष्टयनिर्वृत्ति—ये चारो निर्वृत्तियाँ चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के होती हैं।

१२. सस्थान-निर्वृत्ति—सस्थान अर्थात् शरीर के आकारविशेष की निर्वृत्ति। यह छ प्रकार की होती है। जिस जीव के जो सस्थान होता है, उसके वैसी सस्थान-निर्वृत्ति होती है। यथा—नारको और विकलेन्द्रियो के हुण्डक सस्थान होता है, भवनपति आदि चारो प्रकार के देवो के समचतुरस्र सस्थान होता है, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और मनुष्यो के छहो प्रकार के सस्थान होते है। पृथ्वीकायिक जीवो के मसूर की दाल के आकार का, अप्कायिक जीवो के जलबुद्बुदसम, तेजस्कायिक जीवो के सूचीकलाप जैसा, वायुकायिक जीवो के पताका जैसा और वनस्पतिकायिक जीवो के नानाविध सस्थान होता है। तदनुसार उसकी निर्वृत्ति समझनी चाहिए।

१३. सज्ञानिर्वृत्ति—आहारादि सज्ञाचतुष्टय निर्वृत्ति चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के होती है।

१४, लेश्यानिर्वृत्ति—जिस जीव मे जो-जो लेश्याएँ हो उसके उतनी लेश्यानिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

१५ दृष्टिनिर्वृत्ति—त्रिविध दृष्टिनिर्वृत्तियो मे से जिन जीवो मे जितनी दृष्टियाँ पाई जाती हो उनके उतनी दृष्टिनिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

१६-१७. ज्ञान-अज्ञान निर्वृत्ति—आभिनिबोधिकादि रूप से जो ज्ञान की परिणति होती है उसे ज्ञाननिर्वृत्ति कहते है। यो तो एकेन्द्रिय जीवो के सिवाय नारको से लेकर वैमानिक तक के सब जीवो मे ज्ञाननिर्वृत्ति होती है, परन्तु समस्त ज्ञाननिर्वृत्तियाँ सबको नही होती। किसी को एक किसी को दो, तीन या चार ज्ञान तक होते है। अत जिसे जो ज्ञान हो, उसी की निर्वृत्ति उस जीव के होती है। अज्ञाननिर्वृत्ति भी इसी प्रकार समझ लेनी चाहिए।

१८ योगनिर्वृत्ति—त्रिविध योगो मे से जिस जीव के जो योग हो, उसी की निर्वृत्ति होती है।

१९. उपयोगनिर्वृत्ति—द्विविध है, जो समस्त ससारी जीवो के होती है।[1]

॥ उन्नीसवाँ शतक : आठवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भाग १३, पृ ४२५ से ४४७ तक के आधार पर।

नवमो उद्देसओ : 'करण'

नौवाँ उद्देशक : करण

द्रव्यादि पंचविध करण और नैरयिकादि में उनकी प्ररूपणा

१. कतिविधे ण भंते ! करणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे करणे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वकरणे खेत्तकरणे कालकरणे भवकरणे भावकरणे ।

[१ प्र] भगवन् ! करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! करण पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) द्रव्य-करण (२) क्षेत्र-करण (३) काल-करण (४) भव-करण और (५) भाव-करण ।

२. नेरतियाणं भंते ! कतिविधे करणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे करणे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वकरणे जाव भावकरणे ।

[२ प्र] भगवन् ! नैरयिकों के कितने करण कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! उनके पांच प्रकार के करण कहे गए हैं, यथा—द्रव्यकरण, यावत्—भावकरण ।

३. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[३] (नैरयिकों से लेकर) यावत्—वैमानिकों तक इसी प्रकार (का कथन करना चाहिए ।)

विवेचन—करण : स्वरूप, प्रकार और चौवीस दण्डकों में करणों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों में करणों के प्रकार और नैरयिकादि में पाए जाने वाले करणों का निरूपण किया गया है ।

जिसके द्वारा कोई क्रिया की जाए अथवा क्रिया के साधन को करण कहते हैं । अथवा कार्य या करने रूप क्रिया को भी करण कहते हैं । वैसे तो निर्वृत्ति भी क्रिया रूप है, परन्तु निर्वृत्ति और करण में थोड़ा-सा अन्तर है । क्रिया के प्रारम्भ को करण कहते है और क्रिया की निष्पत्ति (समाप्ति—पूर्णता) को निर्वृति कहते हैं ।

द्रव्यकरण—दातली (हंसिया) और चाकू आदि द्रव्यरूप करण द्रव्यकरण है । अथवा तृणशलाकाओं (तिनके की सलाइयों) (द्रव्य) से करण अर्थात् चटाई आदि बनाना द्रव्यकरण है । पात्र आदि द्रव्य में किसी वस्तु को बनाना भी द्रव्यकरण है ।

क्षेत्रकरण—क्षेत्ररूप करण (बीज बोने का क्षेत्र-खेत) क्षेत्रकरण है । अथवा शालि आदि धान का क्षेत्र आदि बनाना क्षेत्रकरण है । अथवा किसी क्षेत्र से अथवा क्षेत्रविशेष में स्वाध्यायादि करना भी क्षेत्रकरण है ।

कालकरण—कालरूप करण, या काल के द्वारा, अथवा किसी काल मे करना, या काल—अवसरादि का करना कालकरण है।

भवकरण—नारकादि रूप भव करना या नारकादि भव से या भव का अथवा भव मे करना भवकरण है।

भावकरण—भावरूप करण, अथवा किसी भाव मे, भाव से या भाव का करना भावकरण है।

चौबीस दण्डको मे ये पाचो ही करण पाए जाते है।[1]

शरीरादि करणों के भेद और चौबीस दण्डको में उनकी प्ररूपणा

४. कतिविधे णं भंते ! सरीरकरणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविधे सरीरकरणे पन्नत्ते, त जहा—ओरालियसरीरकरणे जाव कम्मगसरीरकरणे।

[४ प्र] भगवन् ! शरीर-करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! शरीरकरण पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—औदारिक शरीर-करण यावत् कार्मण-शरीर-करण।

५. एव जाव वेमाणियाणं, जस्स जति सरीराणि।

[५] इसी प्रकार (नैरयिको से लेकर) यावत् वैमानिको तक जिसके जितने शरीर हो उसके उतने शरीर-करण कहने चाहिए।

६. कतिविधे ण भंते ! इंदियकरणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविधे इंदियकरणे पन्नत्ते, त जहा—सोतिंदियकरणे जाव फासिंदियकरणे।

[६ प्र] भगवन् ! इन्द्रिय-करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! इन्द्रिय-करण पाच प्रकार का कहा गया है, यथा—श्रोत्रेन्द्रिय-करण यावत् स्पर्शेन्द्रिय-करण।

७. एवं जाव वेमाणियाण, जस्स जति इंदियाइं।

[७] इसी प्रकार (नैरयिको से लेकर) यावत्—वैमानिको तक जिसके जितनी इन्द्रियाँ हो उसके उतने इन्द्रिय-करण कहने चाहिए।

८ एव एएण कमेण भासाकरणे चउव्विहे। मणकरणे चउव्विहे। कसायकरणे चउव्विहे। समुग्घायकरणे सत्तविधे। सण्णाकरणे चउव्विहे। लेस्साकरणे छव्विहे। दिट्ठिकरणे तिविधे। वेदकरणे तिविहे पन्नत्ते, त जहा—इत्थिवेदकरणे पुरिसवेयकरणे नपुंसगवेयकरणे। एए सव्वे नेरइयाई दडगा जाव वेमाणियाण। जस्स ज अत्थि त तस्स सव्व भाणियव्व।

[८] इसी प्रकार क्रम से चार प्रकार का भाषाकरण है। चार प्रकार का मन करण है। चार प्रकार का कषायकरण है। सात प्रकार का समुद्घात-करण है। चार प्रकार का सज्ञाकरण है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७३

छह प्रकार का लेश्या-करण है। तीन प्रकार का दृष्टि-करण है। तीन प्रकार का वेदकरण कहा गया है, यथा—स्त्री-वेद-करण, पुरुष-वेद-करण और नपुंसक-वेद-करण।

नैरयिक आदि से लेकर यावत् वैमानिक-पर्यन्त चौवीस दण्डकों में इन सब करणों की प्ररूपणा करनी चाहिए, विशेष यह कि जिसके जो और जितने करण हों, वे सब कहने चाहिए।

विवेचन—शरीरादि करणों की प्ररूपणा—शरीर पांच हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। इन्द्रिय पांच हैं—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय। चार प्रकार की भाषा—सत्यभाषा, असत्यभाषा, मिश्रभाषा और व्यवहारभाषा। चार प्रकार का मन—सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, मिश्रमनोयोग और व्यवहारमनोयोग। चार प्रकार का कषाय—क्रोध, मान माया, लोभ। चार संज्ञाएँ—आहारसंज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह-संज्ञा। सात प्रकार का समुद्घात-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और केवली-समुद्घात। छह लेश्याएँ—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल। तीन दृष्टियाँ—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। तीन वेद—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। इस प्रकार शरीर से लेकर वेद करण तक द्रव्यकरण के अन्तर्गत हैं।[1]

प्राणातिपात-करण : पांच भेद, चौवीस दण्डकों में निरूपण

९. कतिविधे णं भंते! पाणातिवायकरणे पन्नत्ते?

गोयमा! पंचविधे पाणातिवायकरणे पन्नत्ते, तं जहा—एगिंदियपाणातिवायकरणे जाव पंचेंदियपाणातिवायकरणे।

[९ प्र] भगवन्! प्राणातिपातकरण पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—एकेन्द्रिय-प्राणातिपातकरण यावत् पंचेन्द्रिय-प्राणातिपातकरण।

१०. एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

[१०] इस प्रकार (नैरयिकों से लेकर) यावत्—वैमानिकों तक (चौवीस दण्डकों में इन सब (पंचविध प्राणातिपात) का कथन करना चाहिए।

विवेचन—पंचविध प्राणातिपातकरण—एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव पांच प्रकार के हैं, इसलिए उनके प्राणातिपातरूप करण भी पांच प्रकार के बताए हैं। ये पंचविध प्राणातिपातकरण समग्र संसारी-जीवों में पाए जाते हैं। ये भावकरण के अन्तर्गत हैं।[2]

पुद्गलकरण : भेद-प्रभेद-निरूपण

११. कइविधे णं भंते! पोग्गलकरणे पन्नत्ते?

गोयमा! पंचविधे पोग्गलकरणे पन्नत्ते, तं जहा—वण्णकरणे गंधकरणे रसकरणे फासकरणे संठाणकरणे।

[११ प्र] भगवन्! पुद्गल-करण कितने प्रकार का कहा गया है?

---

१ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भाग १३, पृ. ४५६-४५७

२ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भाग १३, पृ. ४६२

[११ उ] गौतम ! पुद्गल-करण पाच प्रकार का कहा गया है, यथा—वर्णकरण, गन्धकरण, रसकरण, स्पर्शकरण और सस्थानकरण ।

१२ वण्णकरणे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविधे पन्नत्ते, त जहा—कालवण्णकरणे जाव सुक्किलवण्णकरणे ।

[१२ प्र] भगवन् ! वर्णकरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१२ उ] गौतम ! वर्णकरण पाच प्रकार का कहा गया है । यथा—कृष्णवर्णकरण यावत् शुक्लवर्ण-करण ।

१३. एव भेदो—गंधकरणे दुविधे, रसकरणे पंचविधे, फासकरणे अट्ठविधे ।

[१३] इसी प्रकार पुद्गलकरण के वर्णादि-भेद (कहने चाहिए ।) (यथा—) दो प्रकार का गन्धकरण, पाच प्रकार का रस-करण एव आठ प्रकार का स्पर्शकरण ।

१४. सठाणकरणे ण भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविधे पन्नत्ते, त जहा—परिमंडलसठाणकरणे जाव आयतसंठाणकरणे ।[1]

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति जाव विहरति ।

।। एगूणवीसइमे सए नवमो उद्देसओ समत्तो ।। १९-९ ।।

[१४ प्र] भगवन् ! सस्थान-करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१४ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है । यथा—परिमण्डल-सस्थानकरण यावत्—आयत-सस्थान-करण ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कहकर यावत् गौतम-स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—पुद्गलकरण के भेद-प्रभेदो का निरूपण—इन चार सूत्रो मे पुद्गलो के २५ भेदो को करण रूप मे निरूपित किया गया है । पुद्गल के भेद सुगम हैं ।

।। उन्नीसवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ।।

---

१ करणभेद-प्रभेद-दर्शिनीगाथाद्वय नवम-उद्देशक की समाप्ति के बाद मिलती हैं—

दव्वे खेत्ते काले भवे य भावे सरीरकरणे य । इदियकरणे भासामणे कसाए समुग्घाए ।। १ ।।

सन्ना लेसा दिट्ठि वेए पाणाइवाय-करणेय । पोग्गलकरणे वन्नेगधेरसे य फासे य सठाणे ।। २ ।।

दसमो उद्देसओ : 'वणचरसुरा'

दसवाँ उद्देशक : 'वाणव्यन्तर देव'

वाणव्यन्तरो में समाहारादि-द्वार-निरूपण

१. वाणमतरा ण भते ! सव्वे समाहारा० ?

एवं जहा सोलसमसए दीवकुमारुद्देसओ (स० १६ उ० ११) जाव अप्पिड्ढीय त्ति ।

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ एगूणवीसइमे सए दसमो उद्देसओ समत्तो ॥ १९-१० ॥

॥ एगूणवीसइमं सयं समत्तं ॥ १९ ॥

[१ प्र] भगवन् ! क्या सभी वाणव्यन्तर देव समान आहार वाले होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] (गौतम !) (इसका उत्तर) सोलहवे शतक के (११ वे उद्देशक) द्वीप-कुमारोद्देशक के अनुसार यावत्—अल्पर्द्धिक-पर्यन्त जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इस प्रकार कह कर गौतम-स्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन—प्रश्न और उत्तर का स्पष्टीकरण—यहाँ प्रश्न इस प्रकार से है—'क्या सभी वाणव्यन्तर समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान श्वासोच्छ्वास वाले होते हैं ?' इसके उत्तर मे १६ वे शतक के ११ वे उद्देशक मे कहा गया है—यह अर्थ समर्थ (यथार्थ) नही है। इसके पश्चात् इसी उद्देशक मे प्रश्न है—वाणव्यन्तर देवो के कितनी लेश्याएँ होती है ? उत्तर है—कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या तक चार लेश्याएँ होती हैं। फिर प्रश्न किया गया है—भगवन् ! कृष्णलेश्या से लेकर तेजोलेश्या तक वाले इन वाणव्यन्तर देवो मे किस लेश्यावाला व्यन्तर किस लेश्या वाले व्यन्तर से अल्पर्द्धिक या महर्द्धिक है ? उत्तर दिया गया है—कृष्णलेश्या वाले वाणव्यन्तरो की अपेक्षा नील लेश्या वाले वाणव्यन्तर महर्द्धिक है, यावत्—इनमे सबसे अधिक महाऋद्धिवाले तेजोलेश्या वाले वाणव्यन्तर है। इसी तरह तेजोलेश्यावाले वाणव्यन्तरो से कापोतलेश्या वाले वाणव्यन्तर अल्पर्द्धिक है, कापोतलेश्या वालो से नीललेश्या वाले और नीललेश्या वालो से कृष्णलेश्या वाले वाणव्यन्तर अल्पर्द्धिक है। इस प्रकार १६ वे शतक के द्वीपकुमारोद्देशक की वक्तव्यता का यहाँ तक ही ग्रहण करना चाहिए ।[1]

॥ उन्नीसवाँ शतक : दसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ उन्नीसवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७३

(ख) भगवती भाग १३, (प्रमेयचन्द्रिका टीका) पृ ४६६-४७०

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सभाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए है, जिसका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलो के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. **निर्घात**—विना वादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या वादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक**—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त**—कभी किसी दिशा मे विजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जव तक यक्षाकार दीखता रहे तव तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. **धूमिका-कृष्ण**—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होना है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध पडती है। वह धूमिका कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धु ध पडती रहे तव तक स्वाध्याय नही करना चारिए।

९. **मिहिकाश्वेत**—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध मिहिका कहलाती है। जव तक यह गिरती रहे, तव तक अस्वाध्याय काल है।

१० **रज-उद्घात**—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जव तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्वन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ **हड्डी, मांस और रुधिर**—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से वस्तुएँ उठाई न जाएँ तव तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्वन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। वालक एव वालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. **अशुचि**—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान**—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्रग्रहण**—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम वारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. **सूर्यग्रहण**—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, वारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२ प्रातः, साय, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात. सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडो पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

□□

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलावचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दरावाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, व्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, वेंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री कवरलालजी वैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खीवराजजी चोरड़िया, मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१०. श्री एस. वादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४ श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटगी
५. श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी वोकड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

सरक्षक

१ श्री विरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी महता, मेडता सिटी
४ श्री शा० जडावमलजी माणकचन्दजी वेताला, वागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, व्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचदजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी वोथरा, चागाटोला
९. श्रीमती सिरेकुँवर वाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचदजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री वस्तीमलजी मोहनलालजी वोहरा (KGF) जाडन
११ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचदजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूवचन्दजी गादिया, व्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, व्यावर
१५ श्री इन्द्रचदजी वैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, वालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी वोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचदजी सागरमलजी वेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी वैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचदजी भागचदजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचदजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरीलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जबरचदजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचन्दजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीमूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी वोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, वैंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, वैंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जमराज जी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी वोहरा, पीपलिया कला
६२. श्री हरकचदजी जुगराजजी वाफना, वैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी वाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी वाफणा, व्यावर
७२. श्री गगारामजी इन्द्रचदजी वोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री वालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, वोलारम
७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, व्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भैरू दा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीमूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी वागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भवरलालजी वाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री वालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, व्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी
९५ श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचदजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
१०३ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भैरूदा
१११ श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेडता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बैगलोर
११८. श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर) मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकु वर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगडीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क , बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड